श्रीगौडपादाचार्य-विरचिता

सुभगोदयस्तुतिः

श्रीविद्या-सिद्धान्त-साधना तथा 'राजराजेश्वरी' हिन्दी टीका समन्विता

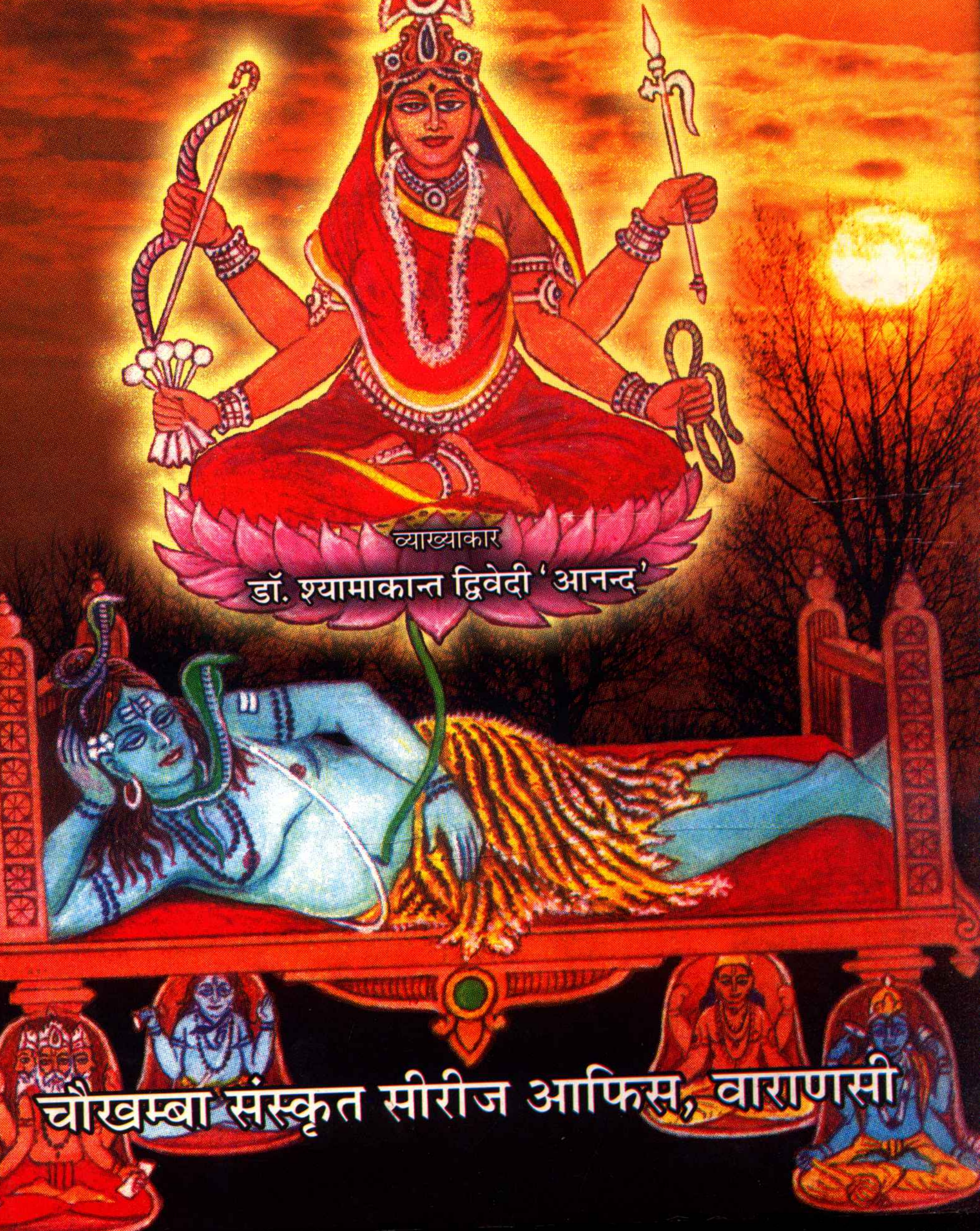

व्याख्याकार

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१३९
***

श्रीगौडपादाचार्य-विरचिता

सुभगोदयस्तुतिः

श्रीविद्या-सिद्धान्त-साधना तथा 'राजराजेश्वरी' हिन्दी टीका समन्विता

व्याख्याकार
डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
एम. ए., पी-एच. डी., व्याकरणाचार्य
एम. एड., डी. लिट्.
(उ० प्र० संस्कृत एकेडमी द्वारा अनेकधा पुरस्कृत)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०६७, सन् २०१०

ISBN : 978-81-7080-341-6

प्रकृत ग्रन्थ के विषयक्रम, रेखाचित्र, चित्र आदि का
सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा स्वायत्तीकृत है।

[redacted]
[redacted]

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० ११९८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

विषयानुक्रमणिका

विषय **पृष्ठांक**

दो शब्द १-२
प्रस्तावना ३-१५१

(प्रथम खण्ड)

प्रथम अध्याय (श्रीविद्या-सिद्धान्त और साधना) ३-३४
ग्रन्थकार गौड़पादाचार्य और उनकी कृतियाँ ३
गौड़पादाचार्य और अद्वैतवाद ३
गौड़पाद माण्डूक्यकारिकाकार के रूप में ५
गुरु-परम्परा और गौड़पादाचार्य ७
आचार्य गौड़पाद का जीवन-परिचय ८
आचार्य शंकर एवं गौड़पादाचार्य १०
शैवाद्वेत, शाक्ताद्वैत एवं शाङ्करकेवलाद्वैत १०
गौड़पादाचार्य का आविर्भावकाल १४
आचार्य गौड़पाद—कृतित्व और दार्शनिक दृष्टि १५
माण्डूक्यकारिका १५
सांख्यकारिका-भाष्य (गौड़पाद-प्रणीत) ३१
द्वितीय अध्याय ('सुभगोदयस्तुति' और गौड़पादाचार्य) ३५-१२४
सुभगोदयस्तुति और गौड़पादाचार्य के सिद्धान्त ३५
सुभगा और सुभगोदय ३५
'श्रीविद्या' का सैद्धान्तिक पक्ष ३९
षट्त्रिंशतत्त्व और उनका वर्गीकरण ४४
भगवती का त्रिखण्डात्मक, अमात्मक एवं षट्चक्रात्मक स्वरूप ५३
भगवती का स्वरूप ५४
भगवती का षोडशी स्वरूप और उसकी विशिष्टता ५८
भगवती की पूजा ५८
पूजा एवं षोढ़ा ऐक्य का प्रभाव ६५
द्वादश विद्यायें ७७
श्रीविद्या साधना की साधन-सम्पत्ति ८०
गौड़पादोक्त साधना-विधान ८३
गौड़पादोक्त श्रीविद्या साधना में योग की भूमिका ८९
नाड़ी योग और अमृत प्रवाह ९५
चन्द्रमा से अमृत-स्राव ९५
सूर्य चन्द्र योग एवं कुण्डलिनी योग ९६
यंत्र और वर्णमाला
षट्चक्र और उनका विवरण

विषय **पृष्ठांक**
भगवती की ध्यान साधना ९९
भगवती की पूजा के चक्र स्थान १०१
श्रीविद्या-साधना में ऐक्य विधान १०२
पञ्चदशीविद्या के वर्णों का श्री चक्र एवं पिण्डस्थ षट्चक्रों के साथ ऐक्य १०८
'ज्ञानार्णवतन्त्र के आधार पर पञ्चदशी विद्या के वर्णों का श्रीचक्र के साथ ऐकात्म्य १०९
'कला' एवं चरण का ऐक्य ११२
'बिन्दु' का 'नाद' से ऐक्य ११३
पिण्डस्थ षट्चक्रों एवं श्रीचक्र में ऐक्य ११४
आचार्य लक्ष्मीधर द्वारा प्रस्तुत ऐक्यानुसन्धान का स्वरूप ११६
श्रीविद्या में ऐक्यानुन्धान के दो रूप ११६
'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्' ११७
तृतीय अध्याय (श्रीविद्या सिद्धान्त और साधना) **१२५-१९५**
'श्रीचक्र' और उसका स्वरूप १२५
'श्रीविद्या'—सिद्धान्त और साधना (परशुराम की दृष्टि) १२५
श्री चक्र और उसका स्वरूप १२६
चतुर्दशार चक्र १३०
श्रीचक्र का महत्त्व १३२
दशारद्वय १३३
स्पन्दत्रय एवं चक्र १३५
अष्टार चक्र १३५
श्रीविद्या की उपासना में श्रीयंत्र १३७
श्रीचक्र विवरण १४४
तान्त्रिक पूजा में निहित सिद्धान्त १४५
अ-क-थ चक्र १४८
भगवती ललिता की पूजा १४९
देवी के साथ तादात्म्य की भावना १४९
शाक्ताद्वैत और काश्मीरीय अद्वैत का स्वरूप १५०
श्रीयन्त्र और भगवती ललिता की पूजा १५१
कौलमत और समयिमत १५४
मातृका और पीठ में ऐक्य १५९
श्रीविद्या के षड्विध संकेतितार्थ १६०
श्रीविद्योपासना और अन्तर्याग १६१
श्रीचक्र १६२
श्रीविद्या—सिद्धान्त और साधना १६५
श्रीविद्योपासना में निर्धारित क्रम विधान १६९

विषय **पृष्ठांक**
'परशुराम कल्पसूत्र' और श्रीविद्योपासना १७०
गणपति (चित्र) १७५
गणेश यंत्र १७६
ललिता क्रम १८०
पराक्रम १८९
होमविधि १९१
सर्वसाधारण क्रम १९२

द्वितीय खण्ड

(मूल श्लोक एवं उनकी व्याख्या)

भगवती की मंगलाचरणात्मक वन्दना (श्लोक क्र. १) १९९
भगवती की स्वरूप एवं उसके साक्षात्कार के साधन (श्लोक क्र. २) २०४
षट्ग्रंथि भेदन एवं मन का चन्द्रमा में लय (श्लोक क्र. ३) २१०
क्षुधार्त कुण्डलिनी का चन्द्रना को डसना (श्लोक क्र. ४) २४०
भगवती का चन्द्रकलात्मक 'परकला' का स्वरूप (श्लोक क्र. ५) २४६
भगवती कुण्डलिनी की विविध अवस्थायें (श्लोक क्र. ६) २५३
कुलगृह (भगवती का राजसौध) (श्लोक क्र. ७) २५९
भगवती का षट्चक्रात्मक राजसदन (श्लोक क्र. ८) २८५
भगवती के रणरज और कालतत्त्व (श्लोक क्र. ९) २९४
श्रीचक्रस्थ नवचक्रों एवं पिण्डस्थ षट्चक्रों एवं पिण्डस्थ षट्चक्रों में अन्तर्सम्बन्ध (श्लोक क्र. १०) ३०२
शिवचक्र-शक्ति चक्र अतन्तर्संबंध (श्लोक क्र. ११) ३२२
शिवशक्ति में षड्विध ऐक्य एवं सामयिकों की सपर्या का विधान (श्लोक क्र. १२) ३२७
कला, नाद, बिन्दु, शिव-शक्ति में ऐक्य एवं समयमत की पूजा (श्लोक क्र. १३) ३३६
'मणिपूरक चक्र' में भगवती का साक्षात्कार (श्लोक क्र. १४) ३४५
षोढ़ा ऐक्य (श्लोक क्र. १५) ३५३
भगवती त्रिपुरा का स्वरूप (श्लोक क्र. १६) ३५८
श्रीचक्रस्थ योनियाँ एवं विभिन्न उपचक्र (श्लोक क्र. १७) ३६२
कौल एवं मिश्रमत का खण्डन एवं समयाचार का प्रतिपादन (श्लोक क्र. १८) ३८१
पञ्चदशाक्षरी विद्या और उसका स्वरूप (श्लोक क्र. १९) ३९२
श्रीविद्या के खण्डत्रय (श्लोक क्र. २०) ३९४
अकार एवं क्षकार का महत्त्व (श्लोक क्र. २१) ३९६
समयाचार में पूजा-विधान कर स्वरूप (श्लोक क्र. २२) ४०४

विषय — **पृष्ठांक**

पञ्चदशी मंत्र के लय का स्थान (श्लोक क्र. २३) ४०९
विश्व की भगवती परा भट्टारिका के साथ ऐक्य एवं वर्णों की यन्त्र के साथ एकता (श्लोक क्र. २४) ४१६
वर्णों की यंत्र, तिथि एवं नित्याओं के साथ श्रीविद्या की एकता (श्लोक क्र. २५) ४२२
षोडशी कला का सर्वकारणत्व की दृष्टि से सर्वोच्च महत्त्व (श्लोक क्र. २६) ४३७
'क्षकार का सर्वातिशायी महत्त्व (श्लोक क्र. २७) ४४१
मणिपूर चक्र एवं भगवती का स्वरूप (श्लोक क्र. २८) ४४५
संवित्कमल में संवित पूजा (श्लोक क्र. २९) ४५२
विशुद्धि चक्र कला, नित्या, तिथि (श्लोक क्र. ३०) ४५३
'समया' की पूजा, शुक्तपक्ष एवं ग्रथित्रय (श्लोक क्र. ३१) ४६०
अमावस्या तिथि पर पूजा का निषेध (श्लोक क्र. ३२) ४८६
अमावस्या का यौगिक स्वरूप (श्लोक क्र. ३३) ४९७
ब्रह्मग्रंथि का उद्भेदन (श्लोक क्र. ३४) ५०३
'श्रीचक्र' 'सरघा' बैन्दव स्थान (श्लोक क्र. ३५) ५०७
देवी का स्वरूप (श्लोक क्र. ३६) ५०९
षट्चक्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य (श्लोक क्र. ३७) ५१२
कुण्डलिनी शक्ति का जागरण (श्लोक क्र. ३८) ५१६
साम्य के प्रकार और उसका महत्त्व (श्लोक क्र. ३९) ५२१
वशिनी आदि शक्तियों की वर्णात्मकता (श्लोक क्र. ४०) ५२२
'श्रीचक्र' के प्रस्तारत्रय की विवेचना (श्लोक क्र. ४१) ५२४
षट्चक्रों में 'तामिश्र चक्र' (श्लोक क्र. ४२) ५३०
कौलों की पूजा का विरोध (श्लोक क्र. ४३) ५३८
नवात्मा शिव के नौ व्यूह (श्लोक क्र. ४४) ५४४
भगवती की पूजा के दो प्रकार (श्लोक क्र. ४५) ५४८
सहस्रार से उत्पन्न मूलभूत चक्रद्वय (श्लोक क्र. ४६) ५५०
सहस्रार का सर्वोत्पादक स्वरूप (श्लोक क्र. ४७) ५७०
एक ही 'परमबिन्दु' से समस्त चक्रों का उद्भव (श्लोक क्र. ४८) ५९२
कौलों और समयमार्गियों की उपासना में भेद (श्लोक क्र. ४९) ५९८
श्रीविद्या-सम्बद्ध शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय (श्लोक क्र. २०) ६०१
परमसौभाग्य स्वरूप सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति (श्लोक क्र. ५१) ६०२
यथा स्वेच्छा निर्विघ्न यात्रा करने एवं पीयूषपान की सिद्धि (श्लोक क्र. ५२) ६०५

—०—

दो शब्द

वैदिककाल के ऋषियों के अन्तःकरण में एक उत्कण्ठा हुई कि **'कस्मै देवाय हविषा विधेम?'** इसी उत्कण्ठा का बीज अंकुरित-पुष्पित-फलित होकर अपने फलों में समाधानों का माधुर्य लेकर परिपक्व हुआ और उसे खाकर ऋषियों ने कहा—

१. **'अथातो धर्म-जिज्ञासा'** (जैमिनिः मीमांसा सूत्र) किन्तु इस 'जिज्ञासा' से बुद्धि और हृदय दोनों सन्तुष्ट नहीं हुए तब अन्य ऋषियों ने कहा—

२. **'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा'** (व्यासः ब्रह्मसूत्रः) किन्तु वेदान्त का यह निर्गुण, निराकार, हृदयहीन, शुष्क, अवाङ्मनसगोचर, निष्क्रिय एवं निष्करुण ब्रह्म भक्तों को सन्तुष्ट नहीं कर सका अतः पुनः—

'कस्मै देवाय हविषा विधेम?' का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। अनुसंधित्सु एवं तत्त्वबुभुत्सु ऋषियों ने अपनी समाधि में इस समस्या का भी समाधान खोज निकाला और कहा—

३. **'अथातो शक्ति-जिज्ञासा'** ('शाक्तदर्शनम्' "शक्ति सूत्रम" आचार्य हयग्रीव, अगस्त्य) यह 'शक्ति-जिज्ञासा' ही यथार्थ समाधान सिद्ध हुई। यद्यपि यह भी 'ब्रह्मजिज्ञासा' ही थी, किन्तु यह 'शक्तिरूप ब्रह्म निर्गुण-निराकार-निस्पृह-निष्क्रिय-निष्करुण नहीं प्रत्युत सगुण, साकार, सस्पृह, सक्रिय एवं कारुण्यपरिपूरित भी था। इसकी विद्या भी वेदों की 'ब्रह्मविद्या' ही थी—

१. 'इयं ह्यग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी।।'[1]

२. 'एषा श्रीभुवनसुन्दरी ब्रह्मविद्या' (शा. द. १।२।७)

सृष्टि के आदि में मूल शक्ति के रूप में कौन स्थित था? इसके उत्तर में ऋषियों ने कहा—

१. 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् । २. (१२।३।१) 'आत्मा वा इदमग्र आसीत्' (१२।३।२) और अन्त में कहा—'देवी ह्येकाग्रे आसीत्' (११।३।१) 'देवी ह्येकाग्र आसीत्।' (१२।३।२५)। 'शक्ति' ही ईश्वर है—

'शक्तिरीश्वर इति हयग्रीवः' (२।२।१७) जगत-कारण 'पराशक्ति' है।

'कारणं भुवनसुन्दरी पराशक्तिरिति।।' (२।४।१३)[2]

---

[1] शाक्त दर्शनम् (१८।४।२४), [2] शाक्तदर्शनम् ।

वैदिक ऋषि जानते थे कि चाहे व्यक्ति हो और चाहे समाज, चाहे राष्ट्र हो और चाहे विश्व; यदि 'पूर्णत्व' और 'अमृतत्व' की प्राप्ति करनी हो या 'अभ्युदय' एवं 'नि:श्रेयायस' की संप्राप्ति करनी हो या 'प्रेय' एवं 'श्रेय' के दुरारोह, अभ्रंलिह शिखर पर पदार्पण करना हो, तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'शक्ति' की ही आपश्यकता होगी और उसी का आलम्बन ग्रहण करना होगा।

'शक्तिमान' (शिव) भी 'शक्ति के बिना पङ्गु हैं—

"शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं।
न चैदेवं देवो न खलु कुशलस्पन्दितुमपि॥"

बिना 'शक्ति' की सहायता के परमशिव कुछ भी कर पाने में अशक्त है—

"परोऽपशक्तिरहित: शक्त्या युक्तों भवेद्यदि,
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तश्शक्त एव हि॥"

'शिव' शब्द के 'श' वर्ण में 'इकार' ही शक्ति है। इस 'इकार रूप शक्ति' को हटा लेने पर स्वयं शिव भी मात्र 'शव' रह जाता है।

वैदिककाल में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, उनके **'श्रीचक्र'** उनकी **'श्रीविद्या'** एवं कुण्डलिनी शक्ति के रूप में 'शक्ति' की पूजा प्रचलित थी और आज भी दक्षिण भारत में यत्र-तत्र उनकी पूजा प्रचलित है किन्तु उत्तर भारत में यह लगभग पूर्णत: अज्ञात है।

वेदों की माता गायत्री की भी माता पराशक्ति **भगवती महात्रिपुरसुन्दरी** की पूजा आज भी सबसे बड़ी आवश्यकता है। भगवती त्रिपुरा की साधना 'शक्ति' की साधना है। यह वैदिक संस्कृति का पुनरुद्धार है, यह—'अहं देवी न चान्योस्मि' अर्थात् मैं शक्ति का स्वरूप हूँ—मैं साक्षात् देवी हूँ—मैं शक्ति का अवतार हूँ"—की प्रत्यभिज्ञा है। यदि भारत को अपनी उन्नति करना है, अपना खोया हुआ गुरुत्व प्राप्त करना है और शक्तिशाली राष्ट्र बनना है, तो 'शक्ति' की उपासना करनी ही होगी। इसकी उपासना—'अहमस्मि', अहमिदम्' एवं 'इदमहम्' की उपासना हे—यह 'अहं' एवं 'इदम्' में सामानाधिकरण्य की साधना है—'वसुधैव कुटुम्बकम्' की साधना है। यह 'शुद्धविद्या' की उपासना है—पूर्णत्व की साधना है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज के व्यवस्थापक महोदय ने इस दिशा में गौड़पादाचार्यप्रणीत् 'सुभगोदय-स्तुति' को प्रकाशित करने की जो सहमति व्यक्त की है वह उसी उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में अग्रपद होने की दिशा में एक श्लाघ्य प्रयास है। इसके लिए मैं उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

२९-२-२००८
शुक्रवार

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
जमुआ. पो. वैढ़न, सीधी (मध्यप्रदेश)
मो. ०९८२६३०७०१७

प्रस्तावना

'श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परतरे देवि! त्रिलोकीमहा,
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम्।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपु:,
स्वान्ते मे स्फुरतु त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयं वाङ्मयम्।'

—ऋषि दुर्वासा—'त्रिपुरा-महिम्नस्तोत्र'

शाक्त दर्शन के महान आचार्य, 'श्रीविद्या' के अन्यतम साधक, 'समयाचार' के प्रकाशस्तंभ एवं आचार्य शङ्कर के परम गुरु 'गौड़पादाचार्य' की 'श्रीविद्या' सम्बंधिनी कृति 'सुभगोदय-स्तुति' श्री विद्या का अन्यतम ग्रंथ है। यद्यपि आचार्य गौड़पाद ने 'श्रीविद्या' पर 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' नामक सूत्र-ग्रंथ भी लिखा है किन्तु वह भी 'सुभगोदय स्तुति' के समतुल्य नहीं है।

'परशुराम कल्पसूत्र', 'नित्योत्सव', 'योगिनी हृदय', 'नित्याषोडशिकार्णव', 'ज्ञानार्णव', 'कामकलाविलास', 'वरिवस्यारहस्यम्', 'सौन्दर्यलहरी', 'सुभगोदय (शिवानन्द), 'सुभगोदय वासना' (शिवानन्द), भावनोपनिषद् 'सोभाग्य हृदय स्तोत्र' (शिवानन्द) 'ललितासहस्रनाम' 'सौभाग्य सुधोदय' (अमृतानन्द), 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' (क्रोधभट्टारक दुर्वासा) एवं 'लक्ष्मीधरा' (लक्ष्मीधर) आदि दर्जनों ग्रंथ हैं, जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, 'श्रीचक्र' एवं श्री विद्या आदि विषयों पर प्रकाश डालते हैं किन्तु जो सामग्री 'सुभगोदयस्तुति' में प्रस्तुत की गई है वह अन्य ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। 'कौलमत' एवं 'समयतम' की विभाजक रेखायें कौंन-सी हैं? दोनों मतों की दार्शनिक दृष्टियों में क्या भेद है? वेदान्त की अद्वैत दृष्टि से 'समयाचार' की अद्वैत दृष्टि में क्या भेद है? 'कुण्डलिनी की 'कुमारी' 'योषित' एवं 'पतिव्रता' अवस्थायें क्या हैं? एक ही 'महाबिन्दु' से समस्त चक्रों की एवं विराट विश्व की उत्पत्ति कैसे हुई?—इन समस्त विषयों पर आचार्य गौड़पाद ने जिस विस्तार से प्रकाश डाला है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'श्रीविद्या' एवं 'श्रीविद्या-साधना' के मुख्यतम अवयव—१. भगवती महात्रिपुर सुन्दरी, (२) श्रीविद्या, ३. श्रीचक्र, ४. षोडशी-विज्ञान, ५. पञ्चदशाक्षरी विद्या और उसकी सर्वानुस्यूतता एवं ६. विश्वाहन्तात्मक विराट अद्वैतवाद आदि तत्त्व हैं। 'श्रीयन्त्र' भगवती का **आसन** है, उनका **शरीर** है, शिवशक्ति के रहने का **निलय**

है, समस्त नित्याओं—योगिनियों—कलाओं-वाग्वृत्तियों, शक्तियों, त्रिवेदों, यंत्रों, मंत्रों, लोक-लोकान्तरों, वर्णों एवं मातृकाओं आदि सभी का **मूल उत्स** है। इतना ही नहीं समस्त विश्व का एवं ३६ तत्त्वों का भी यही निलय है। यह विराट विश्व का ज्यामितिक चित्र है। **भावनोपनिषदकार** के अनुसार—'नवचक्ररूपं श्री चक्रम्' अर्थात् "स्वकीयो। देह एव त्रैलोक्यमोहनादिनव चक्रसमष्टिरूप श्रीचक्राभिन्नः।[१]

'तंत्रराजतंत्र' में कहा गया है—

"**श्रीचक्रे सिद्धयः** प्रोक्ता रसा नियतिसंयुताः ।
ऊर्मयः पुण्य-पापे च ब्राह्मयाद्या मातरस्स्मृताः ॥"

शिवानन्द मुनि 'सुभगोदयवासना' में कहते हैं कि मैं 'श्रीचक्र' का भजन तो करता हूँ किन्तु यह 'श्रीचक्र' भूर्जपत्र पर अङ्कित त्रिकोण, दशार, चतुर्दशार आदि की समष्टि मात्र नहीं है प्रत्युत् यह शिवशक्तिमय विश्वाकार रचना है तथा अहन्ता-इदन्ता का अविभागात्मक तथा रसातमक बीज है—

'अहन्तेदन्तयोर्बीजमविभागरसात्मकम् ।
शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम् ॥'

—सुभगोदय वासना (९)

भगवती अपने से पृथक, **'मणिद्वीप'** में निवास करने वाली कोई पृथक सत्ता नहीं हैं प्रत्युत् वह साधक की स्वात्मा हैं—

'सदानन्दपूर्णः स्वात्मैव परदेवता ललिता।।[२]

भगवती के हाथों में गृहीत अस्त्र, शस्त्र आदि भी भौतिक वस्तुओं से अधिक आध्यात्मिक हैं। इसीलिए 'रहस्यनामसाहस्त्र' में कहा गया है—

"रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला ।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्र सायका ॥"

'तन्त्रराजतंत्र' भी इसकी पुष्टि करता है—

"..................तन्मात्राः पुष्पसायकाः ।
मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग उदीरितः ।
द्वेषस्स्यादङ्कुश प्रोक्तः क्रमेण वर वर्णिनि ॥"

---

१. भावनोपनिषद-भाष्य (भास्करराय),
२. भावनोपनिषद,

वशिनी आदि शक्तियाँ भी Symbolic हैं—

"शीतोष्णसुखदुःखेच्छा गुणाः प्रोक्ताः क्रमेण वै ।
वशिन्याद्याश्शक्तयस्स्युः....................... ॥"[१]

'शीतोष्णसुखदुःखेच्छास्सत्वं रजस्तमो वशिन्यादिशक्तयोऽष्टौ॥२०॥[२]

ब्राह्मी आदि शक्तियाँ क्या हैं? ये सभी Symbolic हैं—

'नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिभादयः।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमया ब्राह्मयाद्यष्ट शक्तयः॥११॥"[३]

क्या 'श्रीचक्र' विश्व का Model मात्र है? नहीं। यह त्रिपुरामय है—

'एवमेतन्महाचक्रं महाश्रीत्रिपुरामयम् ॥[४]

'वामकेश्वर तंत्र' भी समस्त बाह्योपासना को अस्वीकार करता हुआ भगवती के सारे अस्त्र-शस्त्रों को प्रतीकात्मक मानता है और 'विश्वाहङ्कार' के पुष्प से भगवती की पूजा करने का परामर्श देता हुआ कहता है—

'पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ ।
शब्द स्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः ।
करणेन्द्रिय चक्रस्थां देवी संवित्स्वरूपिणीम् ।
विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक ॥'

—वामकेश्वर तन्त्र

भगवती कौंन हैं? आचार्य शङ्कर कहते हैं कि हे भगवती ! तुम सूर्य-चन्द्र रूपी स्तन धारण करके स्थित शंभु का शरीर हो—

'शरीरं त्वं शम्भोश्शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं"

भगवती चिन्मयी आत्मा है—बैन्दवकला है—

आनन्द रूपा आत्मा है—

'सहस्रदलकमलान्तस्स्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम् तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते। सैव त्रिपुरसुन्दरी॥"

—(लक्ष्मीधरा)

---

१. तंत्रराज तंत्र
२. भावनोपनिषद
३. भावनोपनिषद
४. वामकेश्वरी मनम् (१/४१)

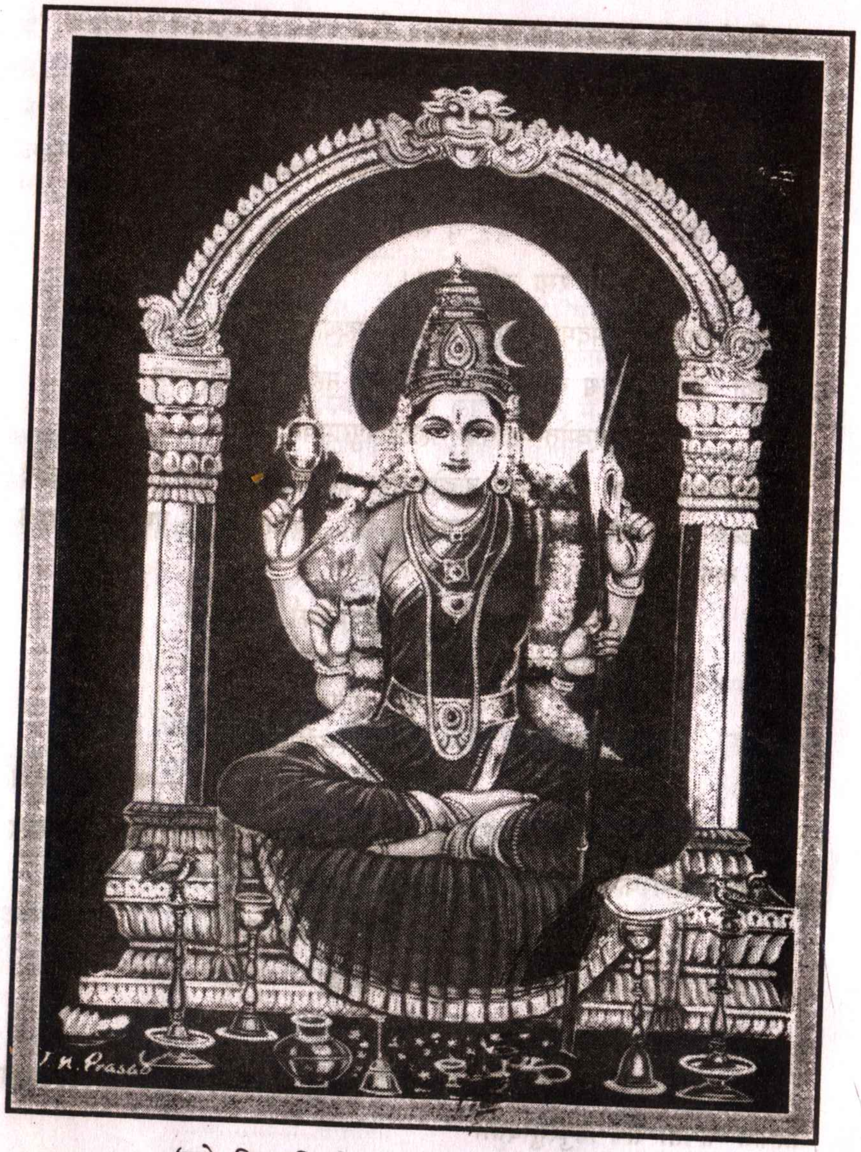

'परो हि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन।
शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेत्॥
शक्त्य बिना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते।
ज्ञातेनापि महेशानि शर्म कर्म न किञ्चन॥

—नित्याषोडशिकार्णव।

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी

(एक आख्यानात्मक परिचय)

देवी भागवत पुराण में एक कथा आती है कि प्रजापति दक्ष ने एक यज्ञ-महोत्सव किया, किन्तु उसमें शिव एवं सती को आमंत्रित नहीं किया। सती ने अनामंत्रित होकर और शिवाज्ञा का तिरस्कार करके उस यज्ञ में जाने की आकांक्षा व्यक्त की। शिव के विरोध करने पर वे क्रोध में कालाग्नि के समान भयानक रूप बनाकर शिव के समक्ष प्रकट हुईं। स्वयं शिव भी उस विकराल रूप को देखकर भयाक्रान्त हो गए और दौड़ने लगे। भगवती ने उन्हें रोकने के लिए दसों दिशाओं में दस रूप बनाकर उनका मार्ग रोक लिया।

भगवती सती द्वारा जो १० रूप धारण किए गए थे उनमें ही 'षोडशी' और 'त्रिपुरसुन्दरी' भी थे।

भगवती द्वारा धारण किये गए दस रूप

१	२	३	४	५
काली	तारा	लोकेशी कमला	भुवनेश्वरी	छिन्नमस्ता
६	७	८	९	१०
षोडशी	त्रिपुरसुन्दरी	बगलामुखी	धूमावती	मातङ्गी

भगवती सती शिव से कहती हैं—

'न पश्यसि महादेव! सती मां पुरतः स्थिताम्।
काली[१] तारा[२] च लोकेशी[३] कमला भुवनेश्वरी[४]॥
छिन्नमस्ता[५] षोडशी[६] च सुन्दरी[७] बगलामुखी[८]।
धूमावती[९] च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै॥''[1]

शिव के सामने 'काली', ऊर्ध्व में 'तारा', दाहिनी ओर 'छिन्नमस्ता'', बायीं ओर 'भुवनेश्वरी', पीछे 'बगलामुखी', अग्निकोण में 'धूमावती', नैऋत्यकोण में 'त्रिपुरसुन्दरी', वायव्य कोण में 'मातङ्गी', ईशानकोण में 'षोडशी' एवं सामने दक्षिणाभिमुख 'भैरवी' स्थित हो गईं।[2]

---

१. त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्॥'' —त्रिपुर ता० उप०

२. देवी भागवत पुराण (अध्याय-८)

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के अवतार के सन्दर्भ में ब्रह्माण्ड पुराण में भण्डासुर की कथा आती है।

भण्डासुर का वध करने के उद्देश्य से ही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का आविर्भाव हुआ था।

भगवती त्रिपुरा—श्रीचक्र त्रिपुरा की पुरी है—

"चन्द्रमण्डलगलत्पीयूष धारावृतां पुरीं श्रीचक्र रूपां त्रिपुरायाः पुरं।।"

आचार्य भास्कर कहते हैं कि—

"तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा।।[1]

इसीलिए कहा गया है कि भगवती पुरातन एवं मूर्तित्रयात्मक हैं इसलिए उन्हें त्रिपुरा कहा जाता है—

"मूर्तित्रयस्यापि पुरातनत्वात्तदम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।"

गौडपादीय सूत्र में भी कहा गया है—

'तत्त्वत्रयेणभिदेति' अर्थात् 'एकमेव ब्रह्म तत्त्वत्रपेण भिद्यते।'

—(भास्कर रायः सौभाग्य भास्करः १७६)

त्रिपुरार्णवकार की दृष्टि—त्रिपुरार्णव में कहा गया है—

"नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्णा पिंगला इडा।
मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।
तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा मता।।"

—त्रिपुरार्णव

'कालिकापुराण' में व्यक्त दृष्टि—

'कालिका पुराण' में कहा गया है कि—

१. 'त्रिकोणं मण्डलं चास्या'

२. 'सर्व त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरामता।।'

३. 'देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा।
त्रैलोक्यं त्रिपुरी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं।
तत्सर्वं **त्रिपुरेति** नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः।।

---

[1] सौभाग्य भास्कर (ल. स. १७६) भगवती 'त्रिपुरा' क्यों कही जाती हैं? त्रिपुर क्या है? '**पुरत्रयं** च **चक्र**स्यसोमसूर्यानलात्मकम्।'—रुद्रायामल

'लघुस्तव' में कहा गया है—

"त्रिपुरा परमा शक्तिः।"

भगवती वामादि**त्रितय**, इच्दादि**त्रितय** से युक्त हैं इस कारण भी वे **'त्रिपुरा'** कही जाती हैं।

अमृतानन्द की दृष्टि—

आचार्य अमृतानन्द कहते हैं—

'त्रिपुरा देव्या धामतत्त्व पीठ लिङ्ग मातृकादिभ्यस्त्रिभ्योऽपि पुरा या विद्यते सा **त्रिपुरा**देवी।।"[1]

महाकाल-विरचित 'त्रिपुरास्तोत्र' में भगवती त्रिपुरा के त्रित्व को स्तुति के बहाने इस प्रकार कहा गया है—

'त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका त्रिये।।'
त्रिगुणात्मा त्रिविधा च **त्रिबिन्दु त्रित्वमानिनी।**
त्रिभूषा च **त्रिरूपा** च त्रिपुरायै नमो नमः।।[2]

'सर्वोल्लास तंत्र' में कहा गया है—

१. त्रिपुर सुन्दरी का योनिस्थान 'त्रिकोण' है। वहाँ तीन रेखायें हैं। वे ही 'त्रिपुरात्मिका' भी हैं। इस 'त्रिपुर' में त्रिपुरारि के साथ 'त्रिपुरादेवी' निवास किया करती हैं।

'त्रिपुर'—१. शून्य, २. चन्द्र एवं ३. वारुण ही **त्रिपुर** है।

'योनिस्थानं हि विज्ञेयं महात्रिपुरसुन्दरीम्
तस्यास्त्रिरेखाविज्ञेया त्रिपुरात्रिपुरात्मिका।
त्रिपुरे त्रिपुराद्देवी त्रिपुरारिसमन्विता।
शून्यं चन्द्र वारुणाश्च त्रिपुरं परिकल्पितम्।।[3]

पुरत्रय क्या है?

रुद्रयामलोक्त मत—

'पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
महालक्ष्म्या पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः।।

---

[1] योगिनी हृदयदीपिका।

[2] सर्वोल्लास तंत्र में उद्धृत (३/४०)

[3] सर्वोल्लास तन्त्र (३/४५)

— × — × — × — × — × — × — × — × — × — ×—

त्रिखण्डं मात्टका चक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् ।
त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणं च मिश्रकम् ॥
चक्रं चन्द्रमयं चैव दशारद्वितयं तथा ।
चतुर्दशारं वह्नेस्तु चतुश्चक्रं च भानुमत ।
एतत्प्रसादादिन्द्राद्या वसवोष्टौ मरुद्गणाः ।
ये ये समृद्धाः लोकेऽस्मिन् त्रिपुरा चक्रसेवकाः ॥[1]

(क) 'पुरि श्री चक्रमध्ये हिरण्मयः कोशः सहस्रदल कमल कोश इत्यर्थः।[2]

(ख) अमृतेन आवृतां चन्द्रमण्डलगलत्पीयूषधारावृतां
पुरीं श्री चक्ररूपां त्रिपुरायाः पुरं यो वेद।

(ग) यो वै तां ब्रह्मणो वेद। अमृतेनावृतां पुरीम् । (वेद)

(घ) 'सोमसूर्यानलात्मकत्वात् श्रीचक्रस्य'—वेद

(ङ) पूः श्री विद्यानगरम्

(च) इच्छा शक्तिः ज्ञान शक्तिः क्रियाशक्तिस्वरूपिणी ।
सर्वाधारा सुप्रतिष्ठा सदसद्रूप धारिणी ॥[3]

पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम् ।
महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः ॥[4]

आचार्य अमृतानन्द भगवती के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"देशकालानावच्छिन्ना, परममहद्रूपा, स्वभावसुन्दरी परप्रकाशात्मकपरमशिव सामरस्यपरिपूर्णपरानन्दशालिनी विमर्श शक्तिः श्री महात्रिपुरसुन्दरी॥[5]

विश्व और त्रिपुरा देवी—(परिणामवाद)

यह षट्त्रिंशदात्म निःशेषः जगत भगवती का अपना ही रूपान्तर है—परिणाम है। यथा दूध का परिणाम दही है, उसी प्रकार शक्ति का परिणाम है।

---

१. रुद्रायामल
२. लक्ष्मीधरा
३. ललिता सहस्रनाम (१८१)
४. रुद्रायामल
५. यो० ह० दी० (१/३५)

आचार्य भास्करराय एवं अमृतानन्द की दृष्टि—

अमृतानन्द कहते हैं—

अतएव शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणामत इत्यर्थः यथा क्षीरं दध्याकारेण पिरणमते तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते। तदुक्तं प्रत्यभिज्ञायाम्—'चितिः स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि हेतुः।'

'विश्वाकारप्रथा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मना परिणता विमर्श शक्ति॥'[1]

विश्व के प्रति अन्य दृष्टियाँ—

(क) "स्वेच्छाविश्वमयोल्लेखखचितं विश्वरूपकम् ।
चैतन्यमात्मनों रूपं निसर्गानन्दसुन्दरम् ॥"

(ख) 'जगच्चित्रं समालिख्यस्वेच्छातूलिकयात्मनि ।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान शिवः ॥"

(ग) 'निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते ।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥'

(घ) 'विश्वाकार प्रथाधार निजरूपशिवाश्रयम् ।
कामेश्वराङ्क पर्यङ्कनिविष्टमतिसुन्दरम् ॥'

चिदात्मभित्तौ विश्वस्य प्रकाशामर्शने यदा ।
करोति स्वेच्छया पूर्ण, विचिकीर्षा समन्विता ॥[4]

भगवती जिस 'सुधासिन्धु' में रहती हैं, वह कोई अन्य नहीं है वह सहस्रार ही है—

'बैन्दवस्थाने सहस्रारे सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपे चिन्तामणिगृहे ।'[5]

भगवती का स्वरूप कैसा है ?

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी देवी बिन्दुत्रय चक्र (सर्वानन्दमय चक्र) में भगवान कामेश्वर की क्रोड में स्थित हैं। उन्होंने चन्द्रमा की एक कला को अपने मस्तक पर आभूषण के रूप में धारण कर रखा है। वे अपने हाथों में १. पाश, २. अंकुश,

---

१. (१/५२) योगिनी हृदय दीपिका
२. (१/५०) योगिनी हृदय
३. (१/५२) योगिनी हृदय
४. योगिनी हृदय (१।५६)
५. लक्ष्मीधरा

३. इक्षु-धनुष, ४. पञ्चबाण धारण किए हुए हैं। चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि उनके नेत्रत्रय हैं।

> 'आसीनां बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी।
> कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा।
> पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसून शरयञ्च काञ्चित् स्वकरा।
> बालारुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया ॥'[१]

चतुश्शती के अनुसार—

> इच्दाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम्।
> क्रियाशक्तिमये बाण धनुषी दधदुज्जवला ॥

(पाश = 'इच्छाशक्ति।' अङ्कुश = 'ज्ञानशक्ति। धनुष बाण = 'क्रियाशक्ति।')

भगवती चक्रशरीरिणी हैं—

> 'एवं रूपं परं तेजः **श्रीचक्रवपुषा** स्थितम्।'[२]
> 'कला विद्या पराशक्ति श्रीचक्राकाररूपिणी।
> 'तन्मध्ये वैन्दवं स्थान तत्रास्ते परमेश्वरी।
> सदाशिवेन सम्पृक्ता सर्वतत्वातिगा सती ॥'
> 'विश्वाकारप्रभाधार निजरूपशिवात्मकम्।
> कामेश्वराङ्कपर्यङ्कनिविष्टमतिसुन्दरम् ॥'
> 'बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
> पाशाङ्कुशधरां चापं धारयन्तीं शिवां प्रिये ॥'

१. बिन्दु (सर्वानन्दमय चक्र) की 'चक्रेश्वरी' श्री ललिता महाचक्रेश्वरी हैं। योगिनी चक्र—परापर रहस्य योगिनियाँ हैं।

२. त्रिकोण (सर्वसिद्धिप्रदचक्र)— चक्रस्थ मूल शक्तियाँ हैं—

१. कामेश्वरी, २. वज्रेश्वरी, ३. भगमालिनी।। चक्रेश्वरी—त्रिपुराम्बा।

योगिनी चक्र—अति रहस्य योगिनी चक्र इसी प्रकार अन्य शक्तियाँ भी 'श्रीचक्र' में अवस्थित हैं।

भगवती का स्वरूप—

१. कर्णसंस्तुतावली में कहा गया है—

> 'भवानि ! श्री हस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमधो,
> धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रक्शुकवरम्।

---

[१] का० क० वि० (३७-३८)

[२] (चतुश्शती)

> अथ द्वाभ्यां मुद्राभयवरदानैकरसिके
> क्वणद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां च विभृषे।।'

२. सुभगोदयकार कहते हैं—

> 'सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
> पाशाङ्कुशधनुर्बाणंहस्तां ध्यायेत् सुसाधकः ॥'

३. भगवती के स्थूल शरीर का प्रतीकात्मक अर्थ—

(भगवती का रहस्यात्मक सूक्ष्म स्वरूप)

> पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ।
> शब्दस्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः।
> करणेन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्।
> विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत् सर्वसिद्धिभाक ॥'[१]

१. भगवती के हाथों में गृहीत 'पाश' और 'अङ्कुश' ('पाश' एवं 'अंङ्कुश' नहीं प्रत्युत) राग एवं द्वेष हैं। (अर्थात् भगवती रागद्वेष को अपने वशीभूत करने के कारण रागद्वेष के मनोविकारों से अतीत हैं।

२. भगवती के हाथों के 'बाण' लोहे के बाण नहीं है, प्रत्युत् वे यथार्थतः 'शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध' नामक (पञ्चभूतों के) 'गुण' एवं 'पञ्चतन्मात्रायें' एवं मन की वे संवेदनायें हैं, जो मानव-मन में भयानक मनोविकारों के रूप में आविर्भूत होती हैं। भगवती इनसे भी अतीत हैं।

३. भगवती संवितस्वरूपा हैं—'देवीं संवित्स्वरूपिणीम्'।

४. भगवती के स्तन मांस के स्तन नहीं है प्रत्युत् वे 'सूर्य' और 'चन्द्रमा' हैं। भगवती के नेत्र भी मांस के नेत्र नहीं अपितु वे भी 'सूर्य' और 'चन्द्र' ही हैं। वे ही भगवती ताटङ्कयुग्म भी हैं—

> 'सूर्य चन्द्रौस्तनौ देव्याः तावेव नयने स्मृतौ।
> उभौ ताटङ्कयुगलमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥'

४. नित्याषोडशिकार्णवकार की दृष्टि—इस ग्रन्थ में भगवती का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

> 'शक्तिबीजे पराशक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी।
> एवं देवी त्र्यक्षरा तु महात्रिपुरसुन्दरी।।'

५. बहवृचोपनिषद में प्रतिपादित दृष्टि—'बहवृचोपनिषद' में कहा गया है कि

---

[१] वामकेश्वर तन्त्र

भगवती 'पराशक्ति हैं। वे शांभवी विद्या हैं। वे 'कादिविद्या' हैं। वे ही 'हादि' एवं 'सादि' विद्या हैं। वे ही पुरत्रयवासिनी, देशकालातीत एवं प्रत्यक् चिति हैं—वे ही बाहर, भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं—

१. 'सैषा पराशक्तिः। सैषा शांभवी विद्या कादिविद्येति वा हादि विद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।

२. 'सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकाल वस्त्वन्तरा-सङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक चितिः॥'

भगवती ही अद्वैत रूप में सारे द्वैत अस्तित्वों में स्थित हैं। सारा द्वैत प्रपञ्च उनके अद्वैत का प्रपञ्चीकरण (विस्तार) मात्र है, अतः सारी सृष्टि (जगत) में अकेली वे ही 'एक' रूप में विद्यमान हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता है ही नहीं। यही बात इन शब्दों में इस प्रकार कही गई है—

'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत् ।'

वही 'कामकला' एवं 'शृङ्गारकला' भी हैं—

'कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।'

वही सृष्टिकर्त्री हैं—'सैव जगदण्डमसृजत।'

उसी ने ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र को भी जन्म दिया—'तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुऽजीजनत रुद्रोऽजीजनत्।' उसी ने सारे मरुद्गणों को जन्म दिया—'सर्वे मरुद्गण अजीजनत्'।

उसी शक्ति ने सारे गन्धर्व, अप्सरायें, किन्नर, वादित्रवादी, सारे भोग्य, समस्त शाक्त, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज एवं जरायुजों को जन्म दिया। उसी ने मानव, स्थावर, जङ्गम एवं सारे प्राणियों को जन्म दिया। उसने सबको जन्म दिया—'सर्वभिजीजनत् ॥'[1]

भगवती सबकी अन्तरातमा हैं और उनसे अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु अनात्मक एवं असत्य है—

'सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा।'' —(बह्वृचो०)

भगवती 'ब्रह्मसंवित्ति' एवं सच्चिदानन्दलहरी' आदि हैं।[2]

'अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी विभाति।..... सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी त्वं चाहं च सर्वं विश्वं

---

१. बह्वृचोपनिषद ।

२. बह्वृचोपनिषद ।

सर्वदेवता। इतरत सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताऽख्यं वस्तु तदद्वितीयम खण्डार्थं परं ब्रह्म॥[1]

इस प्रकार भगवती महात्रिपुरसुन्दरी सर्वात्मक हैं। सारे देवता, सारा विश्व एवं सब कुछ भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही तो हैं। वे ही अद्वितीय एवं अखण्ड परब्रह्म हैं।

वे भगवती ही षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातङ्गी, कल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुण्डा, चण्डी, वाराही, तिरस्करिणी राजमातङ्गी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढा, प्रत्यङ्गिरा धूमावती, सावित्री, सरस्वती गायत्री एवं ब्रह्मानन्दकला भी हैं।[2]

६. भावनोपनिषदकार की दृष्टि—

'भावनोपनिषद्' में कहा गया है कि—'कामेश्वरी सदानन्दघमा पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता।'' —(भावनोपनिषदः ८)

अर्थात् भगवती कामेश्वरी स्वात्मैक्यरूपा देवता हैं।

इच्छा शक्ति ही महात्रिपुरसुन्दरी हैं[3]—

'इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी।'

भगवती के 'श्रीचक्र' का पूजन ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय का अभेदात्मक भावन (परामर्श) है—

'ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम् ।'

भगवती के हाथों में गृहीत भौतिक वस्तुएँ अभौतिक हैं और उसका रहस्यार्थ इस प्रकार है—

'शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्चतन्मात्राः पञ्च पुष्प बाणा मन इक्षुधनुः। वश्यो बाणो रागः पाशो द्वेषोऽङ्कुशः।'

भगवती की आवरण देवता भी प्रतीकात्मक हैं—

वशिन्यादि देवता क्या हैं? ये इस प्रकार हैं—

'शीतोष्णसुखदुःखेच्छासत्वरजस्तमोगुणा वशिन्यादि शक्तयोऽष्टौ ।'

देवता क्या हैं?—'अव्यक्तमहत्तत्वाहंकारकामेश्वरी वज्रेश्वरीभगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणाग्रगा देवताः।

१५ तिथियाँ क्या हैं?—ये अधिदेवता हैं, 'नित्या' नामक शक्तियाँ हैं और पञ्चदशी विद्या के १५ वर्ण हैं—

---

१. बह्वृचोपनिषद्

२. बह्वृचोपनिषद

३. भावनोपनिषद।

'पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनं पञ्चदशनित्या श्रद्धाऽनुरूपाऽधिदेवता।'[१]

भगवती के श्रीचक्र के त्रिकोणाग्र देवता निम्नाङ्कित हैं—

'अव्यक्तमहत्तत्वाहंकारकामेश्वरी वज्रेश्वरीभगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणाग्रगा देवता:।'[२]

भगवती के 'श्रीचक्र' के 'चतुर्दशार' के देवता भी प्रतीकात्मक हैं—(नाड़ियाँ हैं)—

'अलम्बुसा कुहुर्विश्वोदरी वरुणा हस्तिजिह्वा यशस्वत्यश्विनी गान्धारी पूषा शङ्खिनी सरस्वतीडा पिङ्गला सुषुम्ना चेति चतुर्दश नाड्यः सर्वसंषोभिण्यादि चतुर्दशारदेवता:।'

भगवती के श्री चक्र के बहिर्दशार' के देवता इस प्रकार हैं—

'प्राणापान व्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्त धनञ्जया दश वायवः सर्वसिद्धिप्रदाऽऽदिबहिर्दशारदेवता:।[३]

'दशार' के देवता कौन हैं?—

'एता दश धनकला: सर्वज्ञत्वाद्यन्तर्दशारदेवता: ।'[४]

७. 'नित्याषोडशिकार्णव' में कहा गया है कि भगवती त्रिपुरा परमा एवं आद्या शक्ति हैं। वे ही समस्त त्रैलोक्योत्पादिका हैं—

'त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जातादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका ॥'

प्रलयकाल में वे भगवती ही सारे जगत, उसके उपादानों को तथा ३६ तत्त्वों को कवलीकृत करके स्थित रहती हैं—

'कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।
अस्यां परिणतायां तु न कश्चित् पर इष्यते ॥'

भगवती शक्ति हैं।

शक्ति स्वतंत्र हैं—'शक्तिः स्वतंत्रेति हयग्रीवः॥ (२।४।१६) यही शाक्त दार्शनिकों की मान्यता है। शैव दार्शनिक शिव को 'स्वतंत्र' मानते हैं। शाक्त जगत का कारण 'शक्ति' को मानते हैं। 'अतः कारणं शक्तिरेवेति ह्यग्रीवः' (३।२।९) शक्ति शब्द वाच्या भुवनेश्वरी (३।२।३) एका शक्ति कारणम् (१।४।२१) विचित्रजगन्निर्माणादिसामर्थ्यरूपा शक्तिः॥ (१।१।७) शक्तिस्त्रिजननी। (१।४।१) शक्तिरेव सर्वकारणमिति हयग्रीवः। (३।४।२२) कारणं शक्तिः भुवनेश्वरी। (४।१।१-२) शक्तिरधिष्ठानम् (७।४।१६) ओं ह्रीं ब्रह्माभिन्न शक्तिः (८।३।१५) 'शक्तिरेवेति हयग्रीवः' (१२।२।१३) ब्रह्मरंध्रे

---

१. भावनोपनिषद
२. भावनोपनिषद
३. भावनोपनिषद
४. भावनोपनिषद

पराशक्ति। (१३।२।१३) (१३।२।१८) देवता पराशक्तिः (१४।३।२४) यत्कर्त्री (१२ 'शक्तिसूत्रः' अगस्त्य) ऊर्णनाभिः इस (१।३६)।

'शक्ति ऊर्णनाभिवत है जिसे जाला बनाने के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नहीं होती। वह माता-पिता दोनों हैं :— यन्मातापितरौ (१।८९)

श्री चक्र शरीर है—'शरीरं श्री चक्रम्' (४।३८) 'विद्या' केवल 'पञ्चदशीविद्या' मात्र है—'विद्यापञ्चदशी' (१७।३।११)

अद्वैतवाद ही साधना की चरम परिणति एवं सिद्धि है—अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव। (१७।३।१६) स वै ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति (शक्तिसूत्र १।१२६) यत्प्रसादाज्जीवन्मुक्तोजीवं परं ब्रह्मैव भवति। (२।३८) प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोवशिष्यते (१३।५४ मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति॥' (३।५४)

भगवती सर्वयोनि है—

'सा योनिः सर्वदेवानां शक्तीनां चाप्यनेकधा।
अग्नीषोमात्मिका योनिस्तस्याः सर्वं प्रवर्तते ॥'[१]

जिस प्रकार समस्त वृक्ष बीज का ही विकास है और सूक्ष्म रूप में बीज या बीजाङ्कुर का स्वरूप है, उसी प्रकार 'भगवती' भी बीज एवं बीजाङ्कुरवत हैं—

'कवलीकृतनिश्शेषा बीजाङ्कुरतया स्थिता।'

वे तीन रूपों में व्यक्त होती हैं। उनके ये तीन रूप ये हैं—१. वामाशक्ति २. ज्येष्ठा शक्ति ३. रौद्री शक्ति।

'वामाशिखा ततो ज्येष्ठा शृङ्गाटाकारतां गता।
रौद्री तु परमेशानि जगद्ग्रसनरूपिणी ॥'
'वामा संसारिणामीशा प्रभुशक्तिर्विधायिनी।
ज्येष्ठा तु सुप्रबुद्धानां बुभुत्सूनां च रौद्रिका ॥'
वामा संसारवमना ज्येष्ठा शिवमयी यतः।
द्रावयित्री रुजां रोद्धी चाखिलकर्मणाम् ॥'[२]

समस्त विश्व की जो 'परमाशक्ति' है, जो सम्पूर्ण जगत् की 'परमेश्वरी है और जो 'ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की स्वामिनी' है, वही भगवती त्रिपुरा है—

'एषा सा परमा शक्तिरेकैव परमेश्वरी।
त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी ॥'

---

१. (ने० त० ७।१०)
२. नित्याषोडशिकार्णव

चूँकि भगवती १. इच्छाशक्ति, २. ज्ञानशक्ति, एवं ३. क्रियाशक्ति के रूपों में त्रिविधाकाराकारित होकर प्रकट हुई हैं अतः उन्हे 'त्रिपुरा' कहा गया है—

'ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ।
त्रैलोक्यं संसृजत्येषा 'त्रिपुरा' परिकीर्त्यते ॥'[1]

भगवती के इन तीन रूपों का स्वरूप क्या है? उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. **ज्ञानशक्ति** = वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्षरूपिणी॥
२. **क्रियाशक्ति** = कामराजे कामकला कामरूपा क्रियात्मिका॥
३. **इच्छाशक्ति** = शक्तिबीजे पराशक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी॥

'एवं देवी त्र्यक्षरा तु महात्रिपुरसुन्दरी ।
पारम्पर्येण विज्ञाता भवबन्धविमोक्षिणी ॥'[2]

जगत उसका स्वनिर्मित चित्र है—

'जगच्चित्रं समालिख्य स्वात्मतूलिकयात्मनि ।
स्वयमेव तदालोक्य प्रीणाति जगदीश्वरी ॥'

वह ग्रह, शशि, नक्षत्र, योगिनी आदि भी है और मंत्र भी है—

'गणेशग्रह नक्षत्र योगिनी राशिरूपिणीम् ।
देवीं मंत्रमयी नौमि मातृका पीठरूपिणीम् ॥'[3]

शिव में विमर्शरूपा सहजस्फुरणात्मिका शक्ति का निवास है। शिव उसी शक्ति के संयोग से—१. सृष्टि, २. स्थिति एवं संहार तीनों व्यापार निष्पादित करते हैं—

'नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः ।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति ॥'[4]

उसी शक्ति का परिणाम यह समस्त सृष्टि है—

'सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा ।
अर्थभयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः ॥'[5]

परिणामवाद—जगत् शक्ति का 'परिणाम' है।

शक्ति का यह परिणामन चार रूपों में व्यक्त हुआ—

---

१. नित्याषोडशिकार्णव
२. नित्याषोडशिकार्णव
३. नित्याषोडशिकार्णव
४. वरिवस्यारहस्यम्
५. वरिवस्यारहस्यम्

(क) अर्थमयी सृष्टि (ख) शब्दमयी सृष्टि
(ग) चक्रमयी सृष्टि (घ) देहमयी सृष्टि

(क) 'अर्थमयी सृष्टि' = शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्वरूपा।
(ख) 'शब्दमयी सृष्टि = परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीरूप सृष्टि।
(ग) 'चक्रमयी सृष्टि' = बिन्दु से भूगृहान्त श्रीचक्र।
(घ) 'देहमयी सृष्टि' = स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सृष्टि।

यहाँ 'विमर्श शक्ति' जो जगत् का मूल कारण है—

१. यह 'आनन्द' रूपांश है। २. यही 'स्फुरण' है।
३. यही 'परा अहन्ता' है। ४. यही 'ललिता भट्टारिका है।
५. यही 'त्रिपुरसुन्दरी' है।
६. 'ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतंत्रता चित्स्वरूपता चेति ।
एतेऽहंतायाः किल पर्यायाः सद्भिरूच्यन्ते ॥'[1]

भास्करराय शक्ति के विषय में कहते हैं—

१. 'स्फुरणान्वयि ज्ञानमेव प्रकाशाभिधं ब्रह्म। तच्च सर्वज्ञत्व सर्वेश्वरत्व-सर्वकृर्तत्व-पूर्णत्व-व्यापकत्वादि शक्तिसंवलितम्।

२. 'तस्य चानन्दरूपांश, एव स्फुरणं, परा अहंता, विमर्शः परालिलता महारिका, त्रिपुरसुन्दरीत्यादि पदैर्व्यवह्रियते।''

विवर्तवाद और परिणामवाद में से शाक्त तंत्र 'परिणामवाद' का ही समर्थन करता है। आचार्य शङ्कर स्वयं कहते हैं—

'त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा ।'

'शिव' प्रकाश स्वरूप हैं और विमर्शरूप अथवा स्फूर्तिरूप 'शक्ति' में प्रविष्ट होते हैं और फिर 'बिन्दु' का रूप धारण लेते हैं। (शिव द्वारा विमर्श शक्ति में प्रवेश एवं वहाँ बिन्दु का रूप धारण कर लेना।)

शिव की भाँति विमर्श शक्ति भी शिव में अनुप्रविष्ट होती है और तदनन्तर बिन्दु संवर्द्धित होता है।

(शिव में शक्ति के प्रवेश से बिन्दु का संवर्द्धन) तदनन्तर उस संवर्द्धित बिन्दु से नाद (स्त्रीतत्त्व) निर्गत होता है।

बिन्दु और नाद मिलकर 'मिश्रबिन्दु' हो जाते हैं। ये पुरुष एवं नारी के प्रतीक हैं।

---

१. विरूपाक्षापञ्चाशिका

ये तीनों मिलकर एक संयुक्त बिन्दु बन जाते हैं।

(१) श्वेत, (२) रक्त एवं (३) मिश्र बिन्दु—तीनों मिलकर एक हो जाते हैं और 'कामकला' कहे जाते हैं।

यहाँ चार शक्तियों का सामरस्य है।

(क) **मूल बिन्दु**—यह विश्व का उपादान है।

(ख) **नादतत्त्व**—इसके आधार पर बिन्दु-संवर्धन से जन्म लेने वाले तत्त्वों का नामकरण होता है। बिन्दु एवं नाद दोनों में उत्कट प्रेम रहता है, किन्तु इतने मात्र से सृष्टि प्रारम्भ नहीं हो जाती। वे केवल अर्थ एवं वाक् के उपादान हैं।

इनके साथ (३) श्वेत पुरुष बिन्दु एवं (४) रक्त स्त्री बिन्दु रूप में दो उत्पादक शक्तियों का योग होता है।

जब ये चारों तत्त्व मिलकर 'कामकला' का रूप धारण कर लेते हैं। अब 'वागर्थमय सृष्टि' आरम्भ हो जाती है।

जब स्त्री तत्त्व प्रथम बार बिन्दु में प्रविष्ट होता है, तब नाद के साथ 'हार्धकला' नामक एक अन्य तत्त्व भी विकसित होता है।

उच्चतमा देवी 'कामकला' हैं और सूर्य (संयुक्त बिन्दु) उसका मुख है। अग्नि और चन्द्र (रक्त एवं श्वेत बिन्दु) उसके स्तन एवं 'हार्धकला' उसकी 'योनि' है। इससे सृष्टि आरम्भ होती है। इस प्रकार देवी सृष्टि-विधायिका है। उसे परा, ललिता, भट्टारिका एवं त्रिपुरसुन्दरी कहते हैं।

शिव 'अ' अक्षर है और शक्ति 'ह' है। 'ह' 'अर्धकला' है। नारी तत्त्व या योनि 'ह' के आकार का अर्धभाग (हार्धकला) है। यह अर्धकला या 'ह' शिव के प्रतीक 'अ' अक्षर से मिलकर **'कामकला'** या **त्रिपुरसुन्दरी** का प्रतीकात्मक रूप है, जो शिव और शक्ति के संयोग का फल है। वह 'अहं' कहलाती है और 'अहं' से युक्त है। इसी कारण उसके सभी विकास (पूरी सृष्टि) अहङ्कार से युक्त है।

सभी आत्माएँ त्रिपुरसुन्दरी की रूप मात्र हैं और जब वे देवी चक्रों के साथ 'कामकला विद्या' और ज्ञान का अभ्यास कर लेती हैं, तो वे त्रिपुरसुन्दरी हो जाती हैं। 'अ' एवं 'ह' वर्णमाला के प्रथम एवं अन्तिम अक्षर हैं और सभी अक्षर इनके मध्य में स्थित हैं तथा उनके माध्यम से सभी शब्द (सम्पूर्णवाक्) उनके अन्तर्गत हैं।

यथा **त्रिपुरसुन्दरी से समस्त अर्थ आविर्भूत हुआ करते हैं।** तदवत अर्थ के व्यञ्जक **समस्त शब्द भी त्रिपुरसुन्दरी से ही उत्पन्न होते हैं।** इसलिए उसका नाम 'परा' है। शक्ति 'परावाक्' है और सृष्टि उसका परिणाम है न कि विवर्त। यह शांभवदर्शन है।

'अहं देवी न चान्योस्मि' की भावना एक आदर्शानुभूति है, जिसकी निरन्तर पुनरावृत्ति आवश्यक है।

पूर्णाहन्ता—शिवशक्ति-यामल का **पूर्ण अहं परामर्श** 'पूर्णाहन्ता' कहलाता है। यह निर्विकल्पक ज्ञान है। 'स्वातन्त्र्य शक्ति' द्वारा ही इसमें विभाजन होता है और यह 'पूर्णाहन्ता' अपने विभाजन के रूप में (१) पश्यन्ती, (२) मध्यमा एवं (३) वैखरी वाक् के रूप में रूपान्तरित हो जाती है।

परमतत्त्व की तीन शक्तियाँ हैं—

(१) 'परा' या 'अनुत्तरा' शक्ति = इसका नामान्तर है—चित् शक्ति।

(२) 'परापरा शक्ति' = इसका नाम है—इच्छा शक्ति।

(३) 'अपरा शक्ति' = इसका नाम है—ज्ञान शक्ति।

परमेश्वर की मुख्य शक्तियाँ

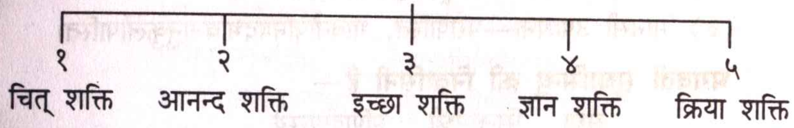

भगवती चन्द्रमा की 'षोडशी कला' हैं—

'सहस्रदल' में जो चन्द्रमा है, उसमें अमृत का निवास है। उसमें १६वीं कला को 'महात्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं। इसके नाम पर ही 'षोडशीविज्ञान' की नींव पड़ी।

देवी के शरीर, गुरु के देह एवं शिष्य में अभिन्नता—

देव्या देहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च।
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते॥

'देवी' गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि, मंत्र, मात्तृका एवं पीठ से अभिन्न हैं—

'गणेशग्रहनक्षत्र योगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि तात्तृकां पीठरूपिणीम्॥'

भगवती 'श्रीचक्र' से अभिन्न हैं—

'कामकलाविलास' में कहा गया है—

'सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत् यदा।'

देवी का मुख्य निवास बिन्दुमय चक्र में है—

'आसीना बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी।
कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा॥'

देवी का स्थूल स्वरूप इस प्रकार है—

'पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसूनशर पञ्चकाञ्चितस्वकरा।
बालारुणारुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया ।।'

'देवी' पुरुष, नारी एवं निष्कल तीनों स्वरूप वाली हैं—
शास्त्रों में कहा गया है—

'पुंरुपं वा स्मरेद् देवीं स्त्री रूपं वा विचिन्तयेत्।
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणम् ।।'

उपासना-विधि की दृष्टि से श्रीविद्या के तीन रूप

(१) स्थूलोपासना, (२) सूक्ष्मोपासना, (३) परोपासना (कायिकी। वाचिकी। मानसी)

(१) 'कायिकी उपासना'—स्थूलोपास्तिः
(२) 'वाचिकी उपासना'—सूक्ष्मोपास्ति, (चक्रार्चन)।
(३) 'मानसी उपासना—परोपास्ति, भावनोपनिषदभावनानुकुलोपास्ति।

भगवती सुधासिन्धु की निवासिनी हैं—

सुधा सिन्धुमध्ये मणिद्वीपरम्ये,
सुकल्पद्रुमाकल्पकादम्बसन्त्रे ।
स्फुरत्स्वर्ण सिंहासने रत्नपीठे,
भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्नपूर्णाम् ।।

भगवती का दिव्य धाम—भगवती महात्रिपुरसुन्दरी जिस अमृतायित दिव्य धाम में रहती हैं वह अमृत-समुद्र के मध्य में स्थित है। उसका पूर्ण वर्णन 'भैरव यामल' में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम् ।।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।'
'अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृताकाश्च चतुष्पाद महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा ।।'
—भैरवयामल, वाकमकेश्वर महातंत्र, बहुरूपाष्टक विद्या।

प्रश्न यह उठता है कि महात्रिपुरसुन्दरी को कुण्डलिनी एवं भैरवी से भी अभिन्न माना गया है और कुण्डलिनी तथा भैरवी का स्थान 'मूलाधार चक्र' माना गया है। भगवती मूलाधार का त्याग करके यदि ऊर्ध्वयात्रा करती हैं, तो वह 'सहस्त्रार चक्र' की यात्रा करती है, फिर उसका निवास 'सुधासिन्धु', 'मणिमण्टप', 'चिन्तामणिगृह', 'शिवात्मक महामञ्च', 'शिवार्क मण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्' आदि में कैसे सम्भव है?

आचार्य शङ्कर ने उन्हें सहस्त्रार-निवासिनी भी कहा है—

"सहस्त्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।"

लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर ने इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया है कि यह 'सुधासिन्धु' बाह्यजगत का कोई अमृतसमुद्र नहीं है। उसकी खोज विश्व में करना व्यर्थ है। यह प्रत्येक मानव के शरीर के भीतर ही स्थित है।

भगवती षट्चक्रों में भी रहती हैं—

मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रंथिविभेदिनी।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रंथिविभेदिनी।
आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रंथिविभेदिनी ।।[१]

भगवती का दिव्य धाम—भगवती ललिता (आनन्द भैरवी) कल्पवृक्ष से परिवृत अमृत-सिन्धु में नीप या कदम्ब वृक्षों से घिरे हुए मणिमण्डप में निवास करती हैं। उस मण्डप में चिन्तामणि गृह है। इसमें त्रिपुरसुन्दरी ईशानी अपनी आवरण देवताओं से सेवित तथा शिव, सदाशिव तथा महेशान के रूप में स्थित मञ्च, पर्यङ्क एवं उपबर्हण तथा ब्रह्मा, हरि, रुद्र एवं ईश्वर के रूप में अवस्थित पायों वाले पर्यङ्क पर समासीन रहती हैं।

भगवती का ध्यान—भगवान सदाशिव ने भगवती के ध्यान का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्टपमध्यगाम्।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम्।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् जपमाचरेत् ।।'

उस मण्डप में जिसमें भगवती रहती हैं 'चिन्तामणि' नामक गृह स्थित है। वे जिस मञ्च पर निवास रकती हैं, उसके पायों के रूप में ब्रह्मदेव, हरि, रुद्र एवं ईश्वर स्थित हैं।

---

[१] (ल० स०)

'आनन्द भैवव' या महाभैरव ९ व्यूहों की आत्मा हैं। वे ९ व्यूहों से निर्मित हैं। **महाभैरव ही देवी की आत्मा हैं। देवी भी ९ व्यूहों की आत्मा हैं।** इस प्रकार आनन्द भैरव एवं आनन्द भैरवी में सामरस्य है और दोनों अभिन्न हैं। सृष्टि-क्रिया में महाभैरवी एवं संहार में महाभैरव प्रधान हैं।

शाक्तों का विधि-विधान शाम्भव दर्शन पर आधृत है, जो शिव को **'प्रकाश'** एवं शक्ति को **'विमर्श'** कहते हैं और दोनों को अभिन्न मानते हैं।

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि भगवती सुधासिन्धु में स्थित 'मणिगृह' में रहती हैं—

'सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो
रगम्ये रश्मीनां समय सहिते त्वं विहरसे।'[1]

कौलों एवं समयमार्गियों का मत : (गौड़पाद)

(१) त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे।
(२) चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति॥

आचार्य शङ्कर ने भी उस 'चिदानन्दलहरी' रूपा भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को सुधासिन्धु-निवासिनी कहा तो किन्तु उन्होंने उनके दो निवास स्थानों को उल्लिखित किया है।

(१) मूलाधार चक्र (कुलकुण्ड)—

'सुधाधारासारैश्चरण युगलान्तर्विगलितैः,
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि॥'

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि में कुलकुण्ड—

(१) 'कुः पृथिवीतत्त्वं लीयते यत्रतत्कुलं आधारचक्रम्। लक्षणया सुषुम्नामार्गः कुलमित्युच्यते॥ अतएव कौलाः कुलपूजकाः आधारसेवका इति कौलत्वं।'

(२) 'कुलमार्गस्य सुषुम्नाया मूले यत्कुण्डं कमल कन्दाकारं आधारकन्दं तस्मिन् कुहरिणि, कमलकन्दमध्यस्थितछिद्रतुल्यं छिद्रं यस्य कुण्डस्य तत्तथोक्तम्। आधारकन्द मध्य स्थित सुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा तत्र कुण्डलिनी शक्तिः वर्तत इति तात्पर्यम्॥'[2]

---

१. सुभगोदय स्तुति (७)
२. आचार्य लक्ष्मीधर (लक्ष्मीधरा १०)

वामकेश्वर महातन्त्र में प्रतिपादित दृष्टि—इस तन्त्र में एवं योग तथा तंत्र के प्रत्येक ग्रंथ में कुण्डलिनी का निवास स्थान 'मूलाधार चक्र' ही कहा गया है। उसमें कहा गया है—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽऽशुभा।

उसके अवस्थान का स्वरूप इस प्रकार है—

मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता।
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।
वाटवाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ।
रुद्रग्रंथिं ततो भित्वा विष्णुग्रथिं भिनत्यतः।
ब्रह्मग्रंथिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निवृतिकारणम्॥

भगवती के दोनों चरणों से ही अमृत धारायें प्रवाहित होती रहती हैं और वह उस अमृतधारा से प्रपञ्च को सींचती रहती हैं—

'सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः॥'[1]

(२) सहस्रार—आचार्य शङ्कर ने भी भगवती का परस्थान सहस्रार को ही स्वीकार किया है और कहा है कि भगवती मूलाधार चक्र से चलकर पाँचों तत्त्वों का लय करते हुए एवं षट्चक्रों का भेदन करते हुए अपने परस्थान 'सहस्रार' में अपने पति परमशिव के साथ विहार करती हैं—

(क) भगवती की सहस्रारोन्मुख यात्रा—इस यात्रा का वर्णन करते हुए आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे॥'[2]

---

१. सौन्दर्य लहरी
२. सौन्दर्यलहरी (९)

(ख) भगवती का 'सुधासिन्धु' में निवास—आचार्य शङ्कर कहते हैं कि भगवती 'सुधासिन्धु' के मध्य 'मणिद्वीप' के 'चिन्तामणिगृह' में निवास करती हैं—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन् चिदानन्दलहरीम्॥'

'भैरव यामल' में कहा गया है कि—

'तत्र चिन्मामणिकृतं देव्यामन्दिरमुत्तमम्।'

भगवती कुण्डलिनीस्वरूप भी हैं—

अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।'[1]

कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप

'कुण्डलिनी' शिव की शक्ति है।

स्वच्छन्दसंग्रहकार की दृष्टि—'स्वच्छन्दसंग्रह' में कहा गया है कि, कुण्डलिनी, परमशिव की जो प्रमुख शक्तियाँ हैं, उनमें— (१) इच्छा शक्ति, (२) ज्ञान शक्ति एवं (३) क्रिया शक्ति है—

'इच्छाज्ञानक्रियारूपां कुण्डलीम् परमेश्वरीम्।
प्रसुप्तभुजगाकारां मातृकारूपिणीं शिवाम्॥'
'पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः।
रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु चिन्मयम्॥'

वामकेश्वर तन्त्र में प्रतिपादित कुण्डलिनी का स्वरूप

'वामकेश्वर तन्त्र' में भगवती कुण्डलिनी का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह इस प्रकार है—

'भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिताः।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽशुभा।
मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता॥'

---

[1] सौन्दर्य लहरी (१०)

कुण्डलिनी की तीन अवस्थायें

१. 'कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति'।
२. 'ततो योषिद् परा'।
३. कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकाल भुजगी।
'ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाश कमले॥'
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्कार रसिका।'[1]

(१) अधः कुण्डलिनी : वाग्भव कूट : अग्नि खण्ड
(२) मध्य कुण्डलिनी : कामराज कूट : सूर्य खण्ड
(३) ऊर्ध्व कुण्डलिनी : शक्ति कूट : सोम खण्ड
(४) परा कुण्डलिनी : तूर्य कूट : परा खण्ड

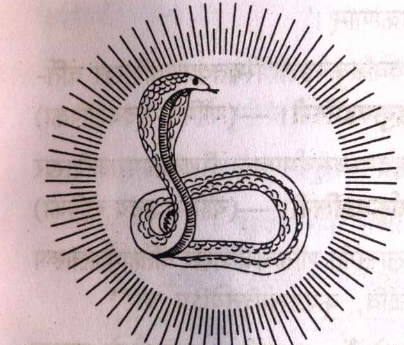

कुण्डलिनी

'शक्तिः कुण्डलिनीति विश्व जननव्यापार बद्धोद्यमां।
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भऽर्भकत्वं नरा।[2]

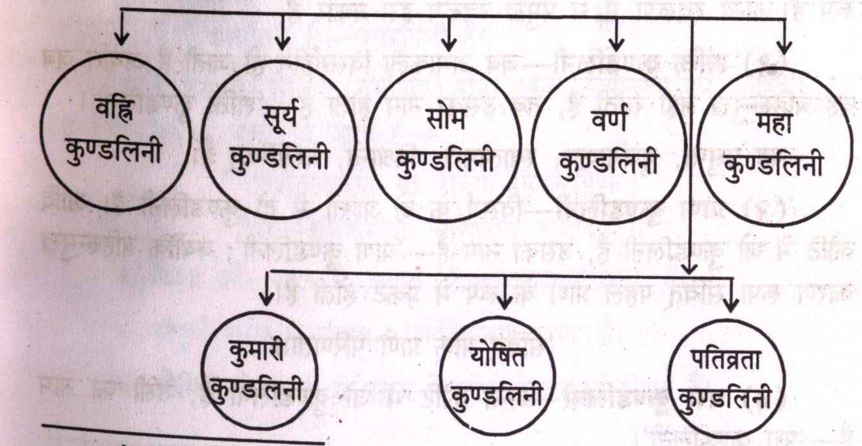

---

[1] सुभगोदय स्तुति (६)
[2] योगिनी हृदय

कूट और कुण्डलिनी—

'वाग्भव
कूट'
कुण्डलिनी
'कामराज
कूट'
कुण्डलिनी
'शक्ति
कूट'
कुण्डलिनी

आचार्य अमृतानन्द की दृष्टि—

(१) 'कूटत्रये कूटानां वाग्भव-कामराज-शक्तिबीजाख्यानां त्रये कुण्डलीत्रितये॥ कुण्डलीनां त्रितयम् ।

(२) 'वह्निसूर्यसोमकुण्डलिनीनां त्रये चक्राणाम् ।'

(३) '**त्रैलोक्यमोहनादि**चक्रत्रयस्याधारस्थवह्निकुण्डली स्थितवाग्भवशिखर वर्तिकामकलान्तर्गतमहार्धकलारूप **वह्निकुण्डलिनी।**'—(योगिनी हृदयदीपिका)

(ग) '**सर्वसौभाग्यदायकादि** चक्रस्य हृदयस्थसूर्यमण्डल स्थितकामराजशिखर वर्तिकामकलान्तर्गतहार्धकलारूप **सूर्यकुण्डलिनी।**'—(योगिनी हृदय दीपिका)

(५) '**सर्वरोगहरादिचक्र**त्रयस्य बिन्दुमण्डलान्तर्गत शक्तिबीजशिखर वर्तिहार्धकलारूप **सोमकुण्डलिनी।**' 'कूटत्रये महादेवि, कुण्डलीत्रितयेऽपि च॥'[१]

आचार्य भास्करराय 'सेतुबन्ध' में कहते हैं—भगवती कुण्डलिनी के अनन्त रूप हैं। अन्य स्वरूपों में से प्रमुख स्वरूप इस प्रकार हैं—

(१) शक्ति कुण्डलिनी—जब अमाकला विसर्गहीन हो जाती है अर्थात् जब वह बहिरुन्मुख नहीं रहती है, तब उसका नाम होता है—'शक्ति कुण्डलिनी'।

यह प्रसुप्त, भुजंगाकार, स्वात्ममात्र, विश्रान्त, परसम्वित् है।

(२) प्राण कुण्डलिनी—विसर्ग के दो प्रान्तों में दो कुण्डलिनी हैं। आदि कोटि में जो कुण्डलिनी है, उसका नाम है—'प्राण कुण्डलिनी'; क्योंकि बहिरुन्मुख कारण रूपा संवित् पहले प्राण के रूप में प्रकट होती है।

'संवित् प्राक् प्राणे परिणता॥'

(३) परा कुण्डलिनी—अन्त कोटि में जो कुण्डलिनी है, उसी का नाम है—'परा कुण्डलिनी'।

---

[१] (यो० हृ०)

यह स्वात्मविश्रान्त परा संवित है, जो कि अन्तरुन्मुख है।

(४) उर्ध्व कुण्डलिनी—'ऊर्ध्व कुण्डलिनी' देह में अवस्थित मध्य नाड़ी के ऊर्ध्व प्रान्त का नाम है। 'ऊर्ध्व कुण्डलिनी' में शक्ति का पूर्ण विकास होता है।

नासा पुट के ऊर्ध्व स्पन्दन से क्रमशः सूक्ष्म प्राण-शक्ति को जागतृ करके उसके द्वारा भ्रूमध्य का भेद करते हुए ऊर्ध्वकुण्डलिनी में प्रवेश करना पड़ता है।

ब्रह्मरंध्र के ऊपर की स्थिति ही 'ऊर्ध्वकुण्डलिनी' है, जो उन्मेष-अप्राप्त समस्त विश्व को गर्भ में धारण करके प्रसुप्त सर्पवत है। इसी की भित्ति पर सृष्टि का उल्लास होता है।

समस्त तत्त्वों एवं भुवनों का एक मात्र यही अधिष्ठान है। इसके ऊपर 'व्यापिनी' कला है।

(५) अधः कुण्डलिनी—शक्ति के पूर्णत्व की आख्या **'ऊर्ध्व कुण्डलिनी'** है, तो संकोच के पूर्णत्व का स्थान **'अधः कुण्डलिनी'** है।

शक्ति को प्रगुणित करके अधः कुण्डलिनी का स्थान प्राप्त किया जाता है।

कुण्डलिनी तत्त्व और कुण्डलिनी योग

(१) आचार्य लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि—

आचार्य लक्ष्मण देशिकेन्द्र कहते हैं—

१. भगवती कुण्डलिनी 'सर्वगा' हैं—अर्थात् सर्वव्याप्त हैं।

२. वे विश्वरूपिणी हैं—जगद्रूपिणी हैं।

३. वे शिव की सन्निधि (समीपता) प्राप्त करके नित्यानन्दा एवं गुणत्रयात्मिका (सत्व-रज-तम से युक्त) हो जाती हैं—

'ततश्चैतन्यरूपा सा सर्वगा विश्वरूपिणी ।
शिवसन्निधिमासाद्य नित्यानन्द गुणोदया ॥'[१]

४. दिशा और काल से अतीत 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्ना' हैं।

५. संपूर्ण शरीर में व्याप्त—'सर्वदेहानुगा शुभा' हैं।

६. योगियों के हृदय में पङ्कज में नृत्य करती हुई स्थित हैं।

---

[१] (शारदातिलकम् प्रथम पटल ५१)

७. सम्पूर्ण प्राणियों के मूलाधार चक्र में विद्युत के समान स्फुरित होने वाली एवं शंखावर्त के सभी वस्तुओं को आच्छादित (आवृत) करने वाली हैं—

'योगिनां हृदयाम्भोजे नृत्यन्ती नित्यमञ्जसा।
आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युदाकृतिः ॥५३॥
शंखावर्तक्रमाद देवी सर्वमावृत्य तिष्ठति।

८. कुण्डलीभूत सर्प के समान आकार वाली और सर्पिणी की अंगश्री वाली हैं—

'कुण्डलीभूतसर्पाणामङ्गश्रियमुपेयुषी ॥'

९. समस्त देवसमूह से युक्त, कल्याणरूपा, समस्त मंत्रों से युक्त, समस्त ३६ तत्त्वों से युक्त, सर्वव्यापक एवं सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं—

सर्वदेवमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्त्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतराविभुः ॥ (५५)

१०. धामत्रय (स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल) की जननी, शब्दब्रह्मरूपा, ४२ वर्णों वाली, भूतलिपिमन्त्रमयी, पञ्चाशद्वर्णमातृकारूपा, सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहने वाली, इस मन्त्रमय जगत की जननी एवं परदेवता हैं—

'त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी।
द्विचत्वारिंशद्वर्णात्मा पञ्चाशद्धर्णरूपिणी ॥५६॥'
विश्वात्मना प्रबुदध्वा वा सा सूते मन्त्रमयं जगत् ॥५७॥[1]

भगवती कुण्डलिनी दो प्रकार की सृष्टि करती हैं—

(१) शब्द सृष्टि (२) अर्थ-सृष्टि।

भगवती कुण्डलिनी के विविध स्वरूप

भगवती एक गुणित, द्विगुणित, त्रिगुणित, चतुर्गुणित, पञ्चगुणित, षड्गुणित, सप्तगुणित, अष्टगुणित, नवगुणित, दशगुणित, एकादशगुणित, द्वादशगुणित, त्रयोदशगुणित, चतुर्दशगुणित,, द्वात्रिंशद्गुणित, षट्त्रिंशोद्गुणित, द्विचत्वारिशत्गुणित, आदि अनेक रूपों में प्रकट होकर सर्वाकार, सर्वरूप एवं सर्वात्मक बन जाती हैं।

---

[1] (शारदातिलकम्)

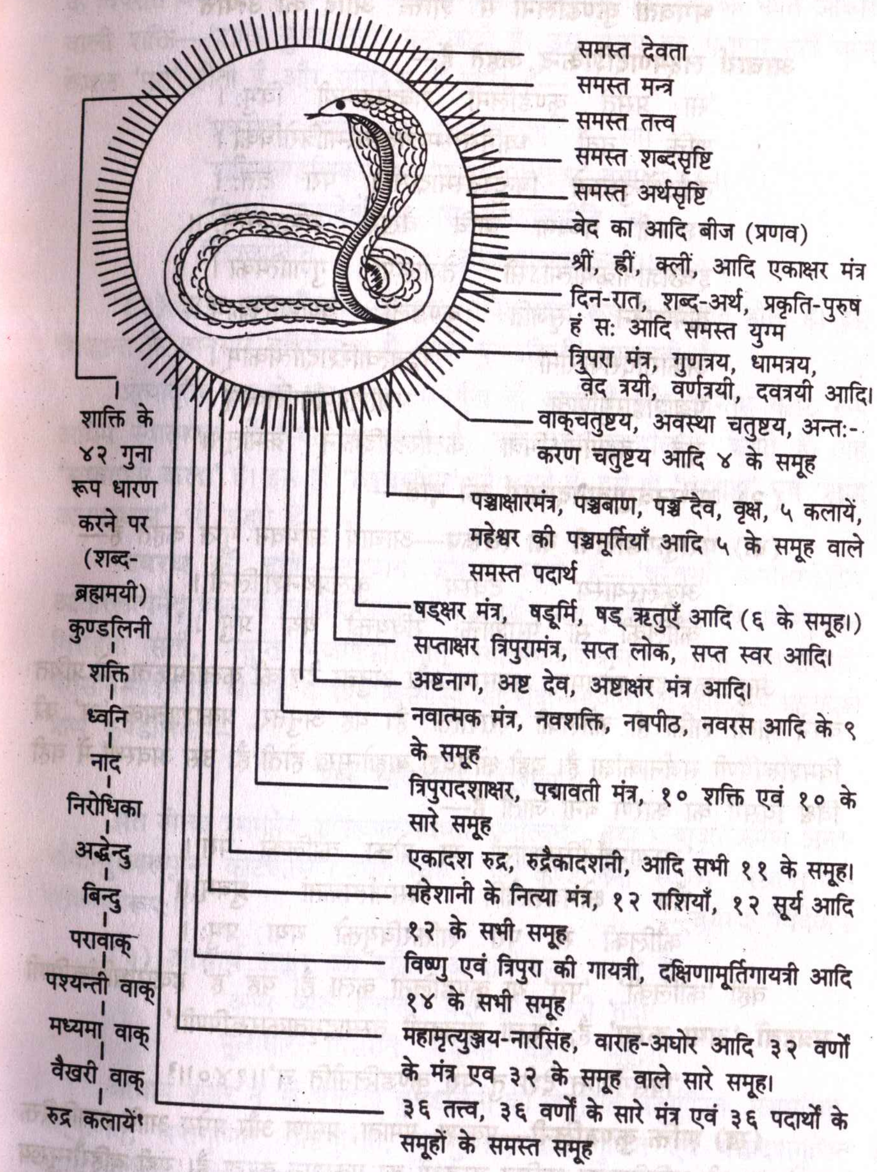
समस्त देवता
समस्त मन्त्र
समस्त तत्त्व
समस्त शब्दसृष्टि
समस्त अर्थसृष्टि
वेद का आदि बीज (प्रणव)
श्रीं, ह्रीं, क्लीं, आदि एकाक्षर मंत्र
दिन-रात, शब्द-अर्थ, प्रकृति-पुरुष हं सः आदि समस्त युग्म
त्रिपुरा मंत्र, गुणत्रय, धामत्रय, वेद त्रयी, वर्णत्रयी, दवत्रयी आदि।
वाक्चतुष्टय, अवस्था चतुष्टय, अन्तः-करण चतुष्टय आदि ४ के समूह
पञ्चाक्षारमंत्र, पञ्चबाण, पञ्च देव, वृक्ष, ५ कलायें, महेश्वर की पञ्चमूर्तियाँ आदि ५ के समूह वाले समस्त पदार्थ
षड्क्षर मंत्र, षडूर्मि, षड् ऋतुएँ आदि (६ के समूह।)
सप्ताक्षर त्रिपुरामंत्र, सप्त लोक, सप्त स्वर आदि।
अष्टनाग, अष्ट देव, अष्टाक्षंर मंत्र आदि।
नवात्मक मंत्र, नवशक्ति, नवपीठ, नवरस आदि के ९ के समूह
त्रिपुरादशाक्षर, पद्मावती मंत्र, १० शक्ति एवं १० के सारे समूह
एकादश रुद्र, रुद्रैकादशनी, आदि सभी ११ के समूह।
महेशानी के नित्या मंत्र, १२ राशियाँ, १२ सूर्य आदि १२ के सभी समूह
विष्णु एवं त्रिपुरा की गायत्री, दक्षिणामूर्तिगायत्री आदि १४ के सभी समूह
महामृत्युञ्जय-नारसिंह, वाराह-अघोर आदि ३२ वर्णों के मंत्र एव ३२ के समूह वाले सारे समूह।
३६ तत्त्व, ३६ वर्णों के सारे मंत्र एवं ३६ पदार्थों के समूहों के समस्त समूह
शक्ति के ४२ गुना रूप धारण करने पर (शब्द-ब्रह्ममयी) कुण्डलिनी
शक्ति
ध्वनि
नाद
निरोधिका
अर्द्धेन्दु
बिन्दु
परावाक्
पश्यन्ती वाक्
मध्यमा वाक्
वैखरी वाक्
रुद्र कलायें¹

(षट्त्रिंशतश्चतत्त्वानां शैवानां रचयत्यसौ॥

—(शा. ति. १०६)

---

[1] सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्तिरोधिका

भगवती कुण्डलिनी से 'शक्ति' आदि की उत्पत्ति

आचार्य लक्ष्मणदेशिकेन्द कहते हैं—

'सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका।
ततोऽर्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः।
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरी शब्दजन्मभूः॥
इच्छाज्ञानक्रियात्माऽसौ तेजोरूपा गुणात्मिका।
क्रमेणानेन सृजति कुण्डली वर्णमालिकाम्॥
अकारादिसकारानां द्विचत्वारिंशदात्मिकाम्।
पञ्चाशद्वारगुणिता पञ्चाशद्वर्णमालिकाम्।
सूते तद्वर्णतोऽभिन्ना कलारुद्रादिकान् क्रमात्॥'[1]

(२) अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि—

(क) पराकुण्डलिनी का स्वरूप—आचार्य अभिवन गुप्त कहते हैं—

अकुलस्यास्य देवस्य कुलप्रथनशालिनी।
कौलिकी सा पराशक्तिः रवियुक्तो यया प्रभुः॥[2]

अकुलरूप इस द्योतमन, अनारव्य और अनुत्तर देव की कुलात्मकता को प्रथित करने वाली शक्ति ही कौलिकी 'पराशक्ति' है। यह अनुत्तर, प्रकाशात्मक 'अ' की विमर्शरूपिणी सर्जनाकांक्षा है। यही क्षोभवश बाह्योन्मुख होती है। उस अवस्था में वही विश्व विसर्ग का कारण बना जाती है—

'अस्यान्तर्विसिसृक्षासौ या प्रोक्ता कौलिकी परा।
सैव क्षोभवशादेति विसर्गात्मकतां ध्रुवम्॥'
'कौलिकी सा परा शक्तिरवियुक्तो यया प्रभुः।

वही 'कौलिकी', 'परा' या कुण्डलिनी कला है। यह 'ह' हकारार्धार्धरूपिणी **सत्रहवीं 'अमा कला'** है; 'कला सप्तदशी तस्मादमृताऌाररूपिणी।'

'विसर्गप्रान्त देशे तु परा कुण्डलिनीति च'॥१४०॥[3]

(ख) शक्ति कुण्डलिनी—प्रकाश, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय आदि अनतिरिक्त रहते हुए भी अतिरिक्तवत भासित वस्तुओं का प्रकाशन करता है। यही बहिरौन्मुख्य

के विपरीत जब स्वात्ममात्र में ही विश्रान्त होता है तो सोये हुए सर्प की भाँति आकार वाली शक्ति—'शक्ति कुण्डलिनी' बन जाती है। उस समय वह परापरा नहीं वरन् केवल 'परा' होती है और संविद्रूपा ही रहती है—

'प्रकाश्यं सर्ववस्तूनां विसर्गरहिता तु सा।
'शक्तिकुण्डलिका' चैव 'प्राणकुण्डलिका' तथा॥१३९॥
'विसर्ग प्रान्तदेशे तु परा कुण्डलिनीति च।
शिवव्योतेति परमं ब्रह्मात्मस्थानमुच्यते॥१४०॥

(३) प्राण कुण्डलिनी—प्रथमतः संवित् प्राण रूप में परिणत होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार बहिरौन्मुख में 'प्राण कुण्डलिनी' कहलाती है।

प्रत्यावृत्ति क्रम से पुनः जब अन्तर्मुख हो जाती है और अन्तिम कोटि रूप अग्रिम स्वात्ममात्र में स्थित हो जाती है, उसे 'परा कुण्डलिनी' कहते हैं। यह **'सप्तदशी कला'** है। इसे ही **'शिवव्योम'** भी कहते हैं। इसे ही **'परब्रह्म'** एवं **'शुद्ध आत्मस्थान'** भी कहते हैं।

जयरथ की दृष्टि—आचार्य जयरथ कहते हैं—'वस्तूनां अनतिरेकेऽपि अतिरिक्तत्वेनेव प्रकाश्यं तत्तन्नियतप्रकाशात्मिकेत्यर्थः, सैव पुनर्विसर्गेण बहिर्भावौन्मुख्येन विरहिता सती, प्रसुप्त भुजगाकारत्वात् स्वात्ममात्रविश्रान्ता 'शक्ति कुण्डलिनी' परासंविन्मात्ररूपेति यावत्, अतएव विसर्गस्य बहिर्भावौन्मुख्यात्मकादिकोटिरूपे प्रान्तदेशे प्राण कुण्डलिका—

'प्राक् संवित्प्राणो परिणता॥'

इति नीत्या प्रथममेव प्राणरूपतामवभासयन्तीत्यर्थः, तथा प्रत्यावृतिक्रमेण अन्तर्भावौन्मुख्यरूपान्त कोट्यात्मनि प्रान्ते स्वरूपे 'परा कुण्डलिनी' स्वात्म परिश्रान्त परसंविन्मात्ररूपः॥''
—जयरथ 'विवेक'।

(३) आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'अप्य व्यक्तं प्रलपति यदा कुण्डलिनी तदा।
मूलाधारे विसरति सुषुम्ना वेष्टनी मुहुः॥'

आचार्य शङ्कर ने भी भगवती कुण्डलिनी को त्रिगुणित चतुर्गुणित, पञ्चगुणित, षड्गुणित, सप्तगुणित, अष्टगुणित, दशगुणित, द्वादशगुणित एवं पञ्चादशगुणित आदि भेदों से अनेक रूपात्मक बताया है।

(४) पूर्णानन्द यति की दृष्टि—प्रत्यावर्तित कुण्डलिनी—

'लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली।
नित्यानन्दमहोदयात् कुलकथान्मूले विशेत् सुन्दरी।

---

[1] शारदातिलकम् (प्रथम पटल)
[2] तन्त्रालोक (३।६७)
[3] तन्त्रालोक (१/१३९-१४०)

तद् दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं।
योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्ड स्थितम् ।।'

कुण्डलिनी मूलाधार में **'स्वयंभूलिङ्ग'** के समीप 'वैखरीभाव' से, अनाहत में 'मध्यमाभाव' से **'बाण लिङ्ग'** को, भ्रूमध्यस्थ आज्ञा चक्र में **'इतर लिङ्ग'** को 'पश्यन्ती' भाव से एवं सहस्रार के **'परंबिन्दु'** के समीप पराभाव से मोहित करती है।

शाक्तानन्दतरङ्गिणीकार का कथन है—

'कला कुण्डलिनी सैव नाद शक्तिः शिवोदिता।
तस्योपरि मनोध्यायेच्चित्कलामी समाश्रिताम्।
प्रदीपकलिकाकारां कुण्डल्यभेदरूपिणीम् ।।'

कुण्डलिनी वर्णरूपा है—

तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाविर्भवति मद्यपद्यादिभेदतः ।।

कुण्डलिनी स्वयंभू लिङ्ग को वेष्टित करके स्थित है—

'ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम्।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम् ।।'

कुण्डलिनी की स्थिति—कुण्डलिनी ब्रह्मद्वार में रहती है—

'ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति।
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्यतद् द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ।।'

कल्पसूत्रकार की दृष्टि—कल्पसूत्रकार कहते हैं—

'चित्रिणीशून्यविवरे संजाताम्भोरुहाणि षट्।
तत्पत्रेषु महादेवी भुजङ्गी विहरन्ति च ।।'

कालीचरण कहते हैं—'भजङ्गी कुण्डलिनी महादेवी चित्रिणी शून्ये चित्रिणीनाड्या मध्यरन्ध्रे यद् विवरमिस्ततो बहिर्गमन पथस्तेन पथा चक्रभेद क्रमेण षडम्भोरुहाणि सञ्जाता सम्प्राप्ता सती तत्तु पत्रेषु विहरति दीप्यते।

—श्लोकार्थपरिष्कारिणी

'श्रीविद्या' एवं अनुबन्ध चतुष्टय—

यद्यपि अनुबन्ध चतुष्टय का सम्बन्ध किसी पुस्तक से होता है विद्या से नहीं तथापि विशिष्ट विद्या-सम्बद्ध ग्रंथ का अनुबन्ध चतुष्टय तत्तत्सम्बद्ध विद्या का परिचय तो देता ही है। 'योगिनी हृदय' त्रिपुरा सम्प्रदाय का ग्रंथ है और श्री सम्प्रदाय से सम्बद्ध है। इस ग्रंथ का अनुबन्ध चतुष्टय श्रीविद्या का भी परिचायक है।

अनुबन्ध चतुष्टय

(१)	(२)	(३)	(४)
'अधिकारी'	'विषय'	'प्रयोजन'	'सम्बन्धः'
'मुमुक्षुरधिकारी'	'स्वसंविद्देवता विषयः'	मोक्षः प्रयोजनम्'	प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः सम्बंधः'[1]

भगवती की पूजा के तीन मुख्य स्तम्भ

'योगिनी हृदय' में इन्हें तीन 'संकेत' कहा गया है—

'चक्र सङ्केतको मन्त्र पूजासङ्केतकौ तथा।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्याः सङ्केतः परमेश्वरि ।।'[2]

आचार्य भास्करराय कहते हैं कि सङ्केतत्रय के ज्ञान से साधक ब्रह्म हो जाता है—

'सङ्केतत्रय ज्ञाने ब्रह्मभवति ।।'

'प्रकाशविमर्शसामरस्यरूपिणी परा शक्ति' के तीन सङ्केत हैं।[3]

'विद्या' क्या है?

'सा विद्या या विमुक्तये।।'

विद्या वही है जिसके द्वारा प्राणी की मुक्ति हो जाय। हय मुक्तिदायिनी विद्या कौन है? शिवसूत्रकार कहते हैं कि उस विद्या का स्वरूप 'अहं' और 'इदं' में सामानाधिकरण्य है।

(१) उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि—आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि—'अहं' एवं 'इदम्' में सामानाधिकरण्य की बुद्धि (अनुभूत्यात्मक दृष्टि, निष्ठा) रखना ही 'सद्विद्या' है—

'सामानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदंधियोः ।।'[4]

'संसारिणामैश्वर्यस्य आत्मनः प्रत्यभिज्ञाने 'विद्या' पशुभावे माया।'[5]

---

१. योगी अमृतानन्द 'योगिनीहृदय दीपिका'
२. प्रत्यभिज्ञाकारिका (३/३)
३. प्रत्यभिज्ञाकारिका (३/७)
४. प्रत्यभिज्ञाकारिका (३/३)
५. प्रत्यभिज्ञाकारिका वृत्ति (३/७)

(१) 'अहमस्मि'

(२) 'अहमिदम्'

(३) 'इदमहम्'

'सद्विद्या' का स्वरूप—'अहं' और 'इदम्' में सामानाधिकरण्य 'वेद्यवेदकयोरेकचिन्मात्रविश्रान्तरेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमद्वमिति विश्वात्मनो मतिः 'शुद्ध' विद्या'।[1]

'विश्वाहन्ता' की अनुभूति ही 'सद्विद्या' है। वेदान्त में जगत को मिथ्या एवं परमात्मा तथा जीव को सत्य मानने के कारण जीव या परमात्मा के साथ विश्वैक्य की बात सोचना भी संभव नहीं है; क्योंकि 'क्षर' एवं 'अक्षर', 'जड़' और 'चेतन', 'नित्य एवं अनित्य', में अभेद कैसा? किन्तु शैव-शाक्त दार्शनिकों की दृष्टि तो यह है कि 'अहं' और 'इदम्' (वेदक + वेद्य; जीव एवं जगत्) में जब तक अभेद की अनुभूति नहीं होती या 'शुद्धविद्या' (सद्विद्या) का उदय नहीं होता तब तक मुक्ति नहीं होती।

शिवसूत्रकार की दृष्टि—शिवसूत्रकार ने इसी कारण कहा कि 'विश्व' (आत्मा जीवात्मा एवं परमात्मा से पृथक) कोई असत् वस्तु नहीं है।

श्रीविद्या का महत्त्व—यह कहा गया है कि करोड़ों जिह्वाओं से, करोड़ों सहस्र वाक्यों द्वारा भी यदि षोडशाक्षरी विद्या की महिमा का वर्णन किया तब भी उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता—

'वाक्य कोटि सहस्रैस्तु जिह्वा कोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्या षोडशाक्षरीम्॥'

चूँकि 'श्रीविद्या' स्वयमेव 'श्रीचक्र' में स्थित है और 'श्रीविद्या' से ही ३६ तत्त्व एवं यह निखिल 'षट्त्रिंशदात्मजगत' उत्पन्न हुआ है। अतः शिवसूत्रकार का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि—

'स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्॥' (३/३०)

('शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं, तथा अयपि स्वस्याः संविदात्मनः शक्तेः प्रचयः क्रिया शक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्॥'[2]

सारांश यह कि जगत को अपना ही विभव मानना और अनन्त विकल्पों को भी अपने से पृथक न मानकर अपनी आत्मा का ही स्वरूप मानना यही 'महेश्वरत्व' है—

१. 'सोऽहं ममायं विभव इत्येवं परिजानतः।
विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता॥'[3]

---

[1] प्रत्यभिज्ञाकारिका वृत्ति (३/३)

[2] शिवसूत्रविमर्शिनी। —आचार्य क्षेमराज

[3] प्रत्यभिज्ञाकारिका (३/१२)

२. विश्वरूपोऽहमिदमिव्यखण्डामर्शबृंहितः।
स्वात्मैव सर्वजन्तूनांमेक एव महेश्वरः॥

३. 'विश्व' पशुपति का शरीराङ्ग है—
'स्वाङ्गरूपेषुभावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या॥'[1]

महात्रिपुरसुन्दरी ही विश्व का कारण है।

'पूर्णाहन्ता की दृष्टि ही 'शुद्धविद्या' की मूल दृष्टि है। यह दृष्टि द्विविधात्मक है। यथा—

'अहं' और 'इदं' में अभेद—

(१) 'अहमिदम्' ('सदाशिव')
(२) 'इदमहम्' ('इश्वर')
[विश्व के साथ एकात्म्य

एक में 'अहं' प्रधान है और 'इदम्' गौण है तो दूसरे में 'इदम्' प्रधान है और 'अहं' गौण है। दोनों में इदम् की एकता है।

'श्रीविद्या' की औपनिषदिक भूमिका—'श्रीविद्या' का वेदों में भी उल्लेख है, जो इस प्रकार है—

'कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहाहसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहासकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमातादि विद्या॥'

मन्त्र, विद्या एंव श्रीविद्या

'मन्त्र' वर्ण-समष्टि नहीं है; क्योंकि वर्ण-समष्टि तो पशुभावस्थ ध्वनि मात्र है—

'पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवलः पूर्णरूपिणः।
सौषुम्णेऽध्वन्युच्चारिताः पतित्वं प्राप्नुवन्ति ते॥'

'मन्त्र' शिवधर्मा हैं—

'तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपाः निरञ्जनाः।
सह साधक चित्तेन यथार्थ तनैते शिवधर्मिणः॥'[2]

'मंत्र' अपने यथार्थ स्वरूप में दो 'सर्वबलशाली' होते हैं—वे शिवधर्मा हैं—

तदाक्रम्य बलंमन्त्रासर्वज्ञवबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणनीव देहिनः॥ —स्पन्दकारिका

मन्त्रार्थ तो देवता का स्वस्वरूप है; क्योंकि वाच्यवाचक-नाम-नामी-मंत्र-देवता में अभेद है—

---

[1] प्रत्यभिज्ञाकारिका (४/४) (४/१२)

[2] स्पन्दकारिका

'मन्त्रार्थं देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि।
वाच्यवाचकभावेन अभेदो मंत्रदेवयोः ॥'

मन्त्र की अवस्थायें

(१)		(२)
पशु अवस्था	('मंत्राश्चैतन्यसहिताः	पशुपति-अवस्था
(सुषुप्त)	सर्वसिद्धकरा	(जाग्रत)
(अचेतन = मूर्च्छित)	स्मृताः')	(चैतन्यान्वित)

चैतन्य की रश्मियाँ ही 'मन्त्र हैं।

'मन्त्राश्चिन्मरीचयः।'

'नाद' का आविर्भाव ही मंत्र को मंत्र एवं जप को जप बनाता है अन्यथा जड़ वर्ण तो जड़ मात्र हैं वे मंत्र कैसे बन सकते हैं? फिर जड़ वर्णों का उच्चारंण 'जप' कैसे कहला सकता है?

नादोत्थान या नादविर्भाव ही मंत्रत्व एवं जपत्व है।

जप— 'संयम्येन्द्रियग्रामं प्रोचरेन्नादमान्तरम्।
एष एव जपः प्रोक्तो न तु बाह्य जपो जपः।
'तत्स्वरूपं जपः प्रोक्तो भावाभावदच्युतः।
'कथा जपः' (शिवसूत्र ३/१७)

जप— भूयो भूयः परे भावे भावना भाव्यते हि या।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः ॥[१]

इसीलिए कहा गया है—

'चैतन्यरहितं मंत्रं यो जपेत् स च पापकृत ॥'

श्रीविद्या के उपासकों के तीन मत हैं—

(१) 'समयमत' (२) 'कौलमत' (३) 'मिश्रमत'

'यद्वा समयमतं कौलमतं मिश्रमतं चेति विद्योपास्तौ मततत्रयम्।'
—(भास्कर राय ल० स० १४४)

(क) ब्रह्माण्डपुराणकार का मत—ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि—

'...तेभ्योऽपि ललितामन्त्रादशभेदविभेददिताः।
तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन।

---

[१] विज्ञान भैरव

लोपामुद्रा कामराज इतिं ख्यातिमुपागतौ।
हादिस्तु लोपामुद्रा स्यात् कामराजस्तु कादिका ॥'[१]

(ख) ज्ञानार्णवतन्त्रकार का मत—ज्ञानार्णवतन्त्र में कहा गया है कि—'श्री सम्प्रदाय' से सम्बद्ध १२ विद्यायें हैं।[२]

ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार 'श्रीसम्प्रदाय' में प्रतिपादित ललिता-मन्त्र १० भेदों में विभाजित है।

'सुन्दरी महोदय' (शङ्करानन्दनाथ-रचित) में भी ज्ञानार्णव का मत स्वीकार करके १२ विद्यायें स्वीकार की गई हैं। इनमें प्रथिततम विद्यायें दो हैं—

(१) 'लोपामुद्रा' : 'हादिविद्या' :
(२) कामराजोपासिता : 'कादिविद्या' :

हादिविद्या—पुण्यानन्द, अमृतानन्द आदि आचार्य हादिविद्यानुयायी हैं।

कादिविद्या—भास्करराय 'कादि विद्या सम्प्रदाय' के अनुयायी हैं।

सौभाग्य विद्या सम्प्रदाय परम्परा की अनेक शखायें हैं और चिरकाल से प्रचलित हैं। 'श्रीविद्या' ही वह विद्या है, जो मोक्षैकस्वरूपा है—

'मोक्षैकहेतुविद्या च श्रीविद्या नात्र संशयः।'

'श्रीविद्या' एवं 'श्रीचक्र' का इतिहास : वैदिक पृष्ठभूमि

'श्रीविद्या' एवं 'श्रीचक्र' उतने ही प्रचलित हैं जितने की वेद। वेदकाल से ही श्रीविद्या एवं श्रीचक्र की उपासना (अद्यपर्यन्त) प्रचलित है।

वेद और श्रीविद्या—श्रुतियों में कहा गया है—

'अष्टाचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्याँ हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषाऽऽवृतः ॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदं अमृतेनावृतां पुरीम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च। आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः ॥
विभ्राजमानाँ हरिणीम्। यशसा संपरीवृताम्।
पुरँ हिरण्यमयीं ब्रह्मा। विवेशाप राजिता।
पराङेत्यज्यामयी। पराङेत्यनाशकी।
इह चामुत्र चान्वेति। विद्वान् देवासुरानुभयान्।
यत्कुमारी मन्द्रयते। यद्योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किंच क्रियते। अग्निस्तदनुवेधति ॥'

---

[१] ब्रह्माण्डपुराण (४/३८/३-१०)
[२] ज्ञानार्णव तंत्र (द्वादश पटल)

(१) श्री चक्र का स्वरूप—'अष्टाचक्रा'—

(१) अष्टकोण (२) दशकोणद्वितय (३) चतुर्दशकोण
(४) अष्टपत्र (५) षोडशपत्र (६) त्रिक्लय त्रिरेखा

नवद्वारा—९ संख्यक त्रिकोणात्मक द्वार।[1]

'देवानांपूरयोध्या'—

(१) देवताओं का 'पूः' (श्रीविद्यानगर)।

(२) 'दीव्यन्तीति देवाः' = २५ तत्त्व। इन २५ तत्त्वों का 'पूः' = अधिष्ठान। (३) सूर्य-चन्द्रमा-अग्नि का 'पूः' अर्थात् सोमसूर्यानलात्मक 'श्रीचक्र' पुरत्रय की समष्टि = 'पूः'।

(३) 'अयोध्या' = मन्दभाग्य वालों के लिए असाध्य।

(४) 'तस्याँ हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषाऽऽवृतः ॥'

उस 'पुर' (श्रीचक्र) के मध्य 'हिरण्मयकोश' (सहस्रदलकमलकोश)। बैन्दवस्थान में सहस्र दलकमल स्थित है।)

'स्वर्गोलोको ज्योतिषाऽऽवृतः'—उस सहस्रदलकमल कोश की ज्योति से स्वर्गलोक आवृत (आच्छादित) है।[2]

श्रीविद्या की उपासना का फल—

'यो वै तां ब्रह्मणो वेद। अमृतेनावृतां पुरीम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च। आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः ॥'

'ब्रह्मणः' = ब्रह्मस्वरूपा भगवती के अमृत धारा से आवृत) (अर्थात् चन्द्र मण्डल से स्रवित अमृत धारा से आवृत) पुरी (श्री चक्र रूप पुरी अर्थात् जो कि भगवती त्रिपुरा की पुरी है।) को जो जानता है (अर्थात् जो उसका ज्ञानपूर्वक अर्चन करता है) उस विद्वान अर्चक को 'ब्रह्म च ब्रह्मा च' (ब्रह्मस्वरूपाभगवती एवं ब्रह्म रूप भगवान दोनों) 'च' + 'च' = (चकार द्वय) सम्मिलित रूप में, बैन्दव स्थान में (सहस्रार में, सुधासिन्धु के मध्य स्थित 'मणिद्वीप' के 'चिन्तामणिगृह' में) अर्थात् श्रीपुर में सामरस्यात्मक स्थिति में समासीन भगवती एवं भगवान दोनों अपने श्रीयंत्र के उपासकों को या प्रजा को जीवन (आयु) एवं कीर्ति (यश) दोनों प्रदान करते हैं।

श्रीपुर में शिवशक्ति दोनों का निवास—

'पराङेत्यज्यामयी। पराङेत्यनाशकी।'

---

[1] लक्ष्मीधरा
[2] लक्ष्मीधरा

अर्थात् अधोमुखी (पराङ) चक्ररूपिणी शिवशक्ति के मध्य शक्ति 'अज्यामयी (अविनश्वरा, ज्यानिरहिता, नित्या) एवं अनाशी (दुःखरहिता एवं आनन्दमयी) रूप में अवस्थित है। या— (अज्या = अ + ज्या)— वह ज्या (भूमि अर्थात् पञ्चभूत समष्टि) से युक्त नहीं है। वह मनस्त्वादिमयी है। वह शिव चक्रात्मकचतुर्योन्योत्मिका है; क्योंकि शिवयोनियाँ अवाङ्मुख होने के कारण **'बैन्दव स्थान'** से नीचे अवस्थित है।

अनाशकी = अर्थात् नाशरहिता। शक्तिचक्रात्मकपञ्चयोन्यात्मिका है।

पराङ् —अधोमुखी गति है। शिवयोनियों की अपेक्षा शक्तियोनियाँ अवाङ्मुख हैं। शिवयोनि + शक्तियोनि परस्पर अवाङ्मुख हैं।

चक्रवेत्ता को प्राप्य फल—

'इह चामुत्र चान्वेति। विद्वान् देवासुरानुभयान्।'

'देव' = 'दीव्यन्तीति देवाः एकादशेन्द्रियाणि।'' = ११ इन्द्रियाँ। **'असुरा'** = असवः प्राणाः प्राणदिपञ्चवायवः तान् रान्ति आददत् इति पञ्च तन्मात्रा उच्यन्ते। **'असुर'** = ५ तन्मात्रायें। **'उभयान्'** = उभयत्र। देवता और असुर दोनों से **अन्वित** माया—शुद्धविद्या-महेश्वर-एवं सदाशिवको।

जो 'विद्वान् २५ तत्त्वों के समूह को जानकर, शिवशक्ति सम्पुटात्मक, पञ्चविंशतितत्त्वलक्षणात्मक षड्विंशतत्त्व को जानता है वह 'इह चामुत्र' अर्थात् इह लोक एवं परलोक दोनों में सार्ष्टि—सालोक्य—सामीप्य—सारुप्य एवं सायुजय रूप पञ्चविधात्मक मुक्ति से समलंकृत हो जाता है।

देवता एवं असुर दोनों के ज्ञान का उपाय—

'यत्कुमारी मन्द्रयते। यद्योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किंच क्रियते। अग्निस्दनुवेधति ॥'

अर्थात् (१) जिस चक्र में 'कुमारी' अर्थात् कौमारावस्थापन्न अर्थात् सुप्तोत्थिता कुण्डलिनी मन्द स्वर करती है (मन्द्रयते)। कुमारी कुण्डलिनी सुप्तोत्थित सर्पवत मन्द्रस्वर करती है। 'यद्योषित' अर्थात् जिस चक्र में कुलयोषित् विष्णुग्रंथि पर्यन्त जाकर आनन्दमग्न होती है। कहा भी गया है—

'कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा राति विष्णोः प्रभेदने ॥'[1]

जिस चक्र में 'पतिव्रता' कुण्डलिनी देवी अपने पति सदाशिव के साथ सहस्रदलकमल में विहार किया करती है।

---

[1] सनत्कुमार

‘अरिष्टं यत्किञ्चित क्रियते’—रिष्ट = शुभाभावः रिष्टं क्षेमे शुभाभावे’ **‘अरिष्ट’** = शुभा अमृतास्वादमय। **यत्किंच क्रियते** = अर्थात् जो करती है उसकी **‘अग्निस्तदनुवेधति’**—स्वाधिष्ठानगत अग्नि सहायता करती है।

इस प्रकार अभ्यास के द्वारा वायु से अग्नि को जलाकर अग्निशिखानुविद्धविलीन चन्द्रमण्डल से स्रवित पीयूष-प्रवाह के अनुभव में पञ्चविंशतितत्वातीता परमेश्वरी को जानना सुकर होता है।

श्रीचक्रविद्योपासना का फल—

‘अशृतासश्शृतासश्च यज्वानो येऽप्ययज्वनः। स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते’

‘अशृतासः’ = अपक्व। अक्षपित अन्तःकरण कालुष्य वाला। ‘यज्वानो’ = यजनशील त्रैवर्णिक। ‘अयज्वनः’ = यागरहित शूद्रः—

‘तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लप्तः ॥’’ (श्रुति)
‘‘चक्रविद्योपासने शूद्राणामपि अधिकार चोदनात् ॥’’

चक्रविद्योपासनागत साधक स्वर्ग की अपेक्षा नहीं रखते।

श्रीचक्रविद्या के अतिरिक्त अन्यदेवोपासना की अनिष्टता—

‘इन्द्रमग्निं च ये विदुः । सिकता इव संयन्ति।
रश्मिभिः समुदीरिताः । अस्माल्लोकादमुष्माच्च ॥’

अर्थात् जो इन्द्र एवं अग्नि आदि देवताओं की उपासना करते हैं, वे बालुकाकण की भाँति ‘संयन्ति’—भ्रष्ट होते हैं। **रश्मिभिः** = रश्मियों के द्वारा (यम पाशों के द्वारा) **समुदीरिताः** = परिबद्ध हो जाते हैं। **अस्माल्लोकादमुष्माच्च** = इस लोक से सभी भ्रष्ट हो जाते हैं।

श्रुतियों में कहा गया है—

‘अन्धः तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ॥’

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—यह **‘पञ्चदशाक्षरी विद्या’** ऋग्वेद में भी वर्णित है[1]—

‘इयं पञ्चदशाक्षरी विद्या ऋग्वेदे आम्नाता
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तः ॥’[2]

१६ कलाओं से युक्त श्री बीज ईकार युक्त है अतः वेदसिद्ध है।

---

[1] १. लक्ष्मीधरा (५)

[2] २. (ऋ. ५।४७।४)

षोडशाक्षरी श्रीविद्या की विशिष्टता

‘श्रीविद्या’ की महिमा का निर्वचन इस प्रकार किया गया है—

(१) १०० करोड़ जिह्वाओं एवं सहस्र कोटि वाक्यों द्वारा भी षोडशाक्षरी श्रीविद्या की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

(२) चूँकि भगवती की ‘श्रीविद्या’ परावाक्यात्मक है अतः इस अक्षरातीत विद्या का वर्णन वैखरी वाक्यों सें सम्भव नहीं है।

(३) इस मुक्तिभुक्ति प्रदायिनी ‘श्रीविद्या’ के स्वरूप-निर्वचन एवं माहात्म्य-वर्णन में स्वयं ‘पश्यन्ती’ एवं ‘मध्यमा’ वाक् भी असमर्थ हैं।

(४) इस श्रीविद्या का मात्र एक बार किया हुआ जप सहस्रों वाजपेय यज्ञ के निष्पादन, सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा एवं काशी आदि साढ़े तीन करोड़ तीर्थों की यात्राओं से भी महत्तर है, अतः वे उसकी बराबरी नहीं कर सकते। यह परम गोप्तव्या है, अतः भले ही व्यक्ति अपना शिर काट कर दे दे किन्तु यह विद्या न दे। यही शास्त्रादेश है—

‘वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम् ।
वैखरीवाच्यभावत्वादशक्ता गुणवर्णने ।
यतो निरक्षरं वस्तु परा तत्रैव कारणम् ।
मूकीभूता हि पश्यन्ती मध्यमा मध्यमा भवेत् ।
ब्रह्मविद्यास्वरूपा हि भुक्तिभुक्ति फलप्रदा ।
एकोच्चारेण देवेशि ! वाजपेयस्य कोटयः ।
अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥
काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विताः ।
तुलां नार्हन्ति देवेशि ! नात्र कार्या विचारणा ।
एकोच्चारेण गिरिजे किं पुनर्ब्रह्म केवलम् ।
षोडशार्णा महाविद्या न प्रकाश्या कदाचन ।
राज्यं देय शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ॥’

‘श्रीविद्या’ पञ्चभूतमयी है, विश्वमयी है। ‘श्रीविद्या’ पाँच महाभूतों से युक्त है—

‘हः’ : व्योम	‘क’ : वायु	‘र’ : अग्नि	‘स’ : जल	‘ल’ : पृथ्वी
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)

‘ह’, ‘क’, ‘र’, ‘स’ एवं ‘ल’ : ये वर्ण ‘पञ्चदशाक्षरी विद्या’ के वर्ण हैं।

वर्णों की पञ्चभूतात्मकता

कहा गया है कि—

'हकार व्योम सम्भूतं, ककारात्तु, प्रभञ्जनः।
रेफादग्नि सकाराच्च जलतत्त्वस्य संभवः।
लकारात्पृथिवी जाता तस्मा विश्वमयी च सा॥'

भगवती का यन्त्रात्मक स्वरूप 'श्रीचक्र' है—

श्रीचक्र शिव और पार्वती दोनों का शरीर भी है—

'शरीरं त्वं शम्भोः'[1]

'पञ्चदशाक्षरी विद्या' अलभ्य है—

शास्त्रों में इसकी अलभ्यता को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम्।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी॥'

१. **उन्मनी श्रीविद्या :** क ए ई ल हीं ह क ह ल ह्रीं, ह स क ल ह्रीं।
२. **वरुणोपासित श्रीविद्या :** क ए ई ल हीं, ह क ह ल ह्रीं, स ह क ल ह्रीं।
३. **धर्मराजोपासि श्रीविद्या :** क ए क ल ह्रीं ह क ह ह्रीं, स ह क ल ह्रीं।
४. **वह्नि-उपासित श्रीविद्या :**क स क ल ह्रीं, ह स ल क·ल ह्रीं, स क ल र ल ह्रीं।
५. **नागराज उपासित श्रीविद्या :**ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल र ल ह्रीं।
६.-**वायुदेवोपासिता श्रीविद्या :**क ए र ल र ह्रीं, ह क ल र ह ल ह्रीं, स र क ल र ह्रीं।
७. **बुधोपासिता श्रीविद्या :**क ए ई र ल ह्रीं, ह क ह ल र ह्रीं, स ह क ल र ह्रीं।
८. **ईशानोपासिता श्रीविद्या :**क ह ल ह्रीं, ह क ल ह ल ल र ह्रीं स क ल ह्रीं।
९. **रति-उपासित श्रीविद्या :**—क ए ई ल ह्रीं ह० स०।
१०. **नारायणोपासिता श्रीविद्या :**कादि स० ह० क० विलोममिलिता।
११. **ब्रह्मोपासिता श्रीविद्या :** क ए ई ल ह्रीं ह क ह स र ह्रीं ह स क ल ह्रीं।
१२. **जीवोपासिता श्रीविद्या :**ह स क ल ह्रीं, ह क ह स र ह्रीं, ह स क ल ह्रीं।
१३. **लोपामुद्रोपासिता श्रीविद्या :** ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं।
१४. **मनूपासिता श्रीविद्या :** क ह ए ई ल ह्रीं, ह क ए ई ल ह्रीं स क ए ई ल ह्री।
१५. **नन्दिपूजिता श्रीविद्या :** स ए ई ल ह्रीं, स ह क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं।

---

[1] (सौन्दर्यलहरी ३४)

---

* मन्त्र और यन्त्र की परस्परानुस्यूतता *

* पञ्चदशाक्षरी मंत्र और उसके साथ यन्त्र का तादात्म्य *

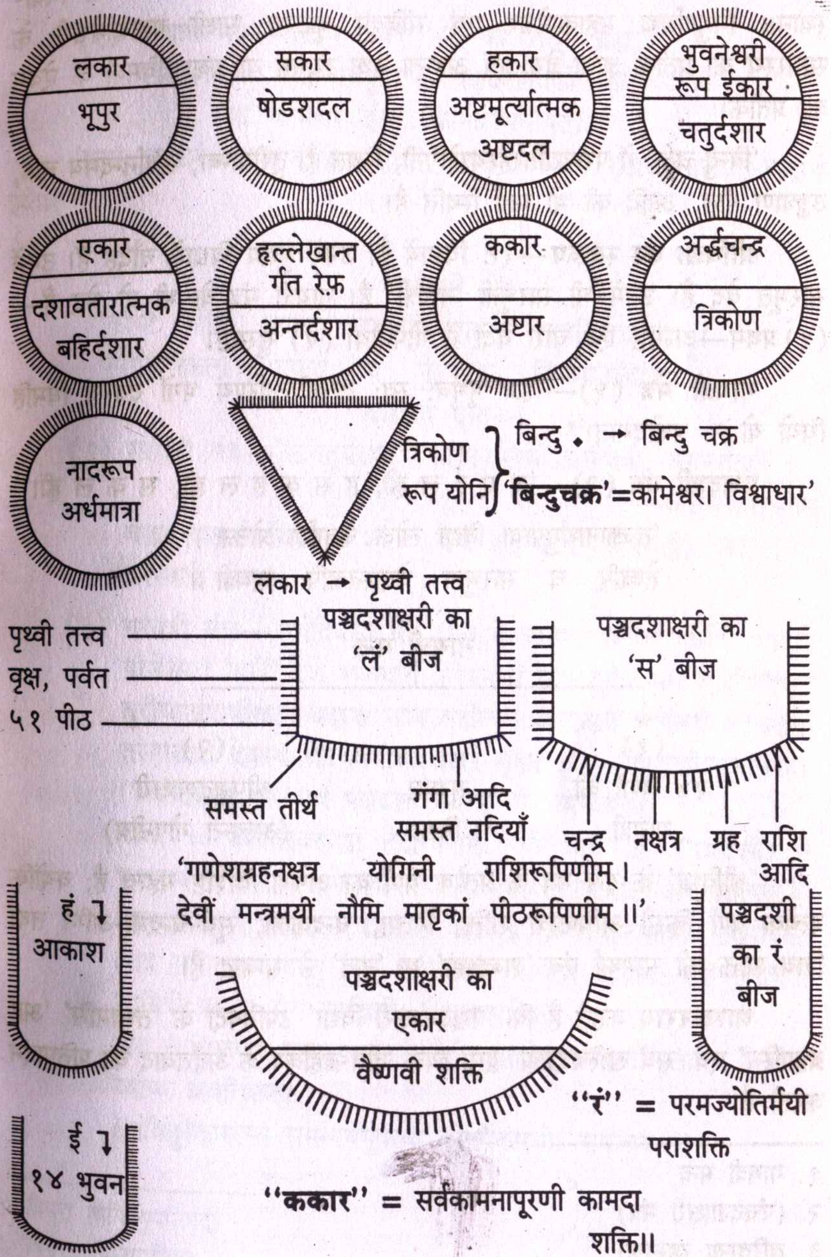
लकार
भूपुर
सकार
षोडशदल
हकार
अष्टमूर्त्यात्मक अष्टदल
भुवनेश्वरी रूप ईकार
चतुर्दशार
एकार
दशावतारात्मक बहिर्दशार
हल्लेखान्त र्गत रेफ़
अन्तर्दशार
ककार
अष्टार
अर्द्धचन्द्र
त्रिकोण
नादरूप अर्धमात्रा
त्रिकोण रूप योनि
बिन्दु • → बिन्दु चक्र
'बिन्दुचक्र'=कामेश्वर। विश्वाधार'
लकार → पृथ्वी तत्त्व
पृथ्वी तत्त्व
वृक्ष, पर्वत
५१ पीठ
पञ्चदशाक्षरी का 'लं' बीज
समस्त तीर्थ
गंगा आदि समस्त नदियाँ
पञ्चदशाक्षरी का 'स' बीज
चन्द्र
नक्षत्र
ग्रह
राशि आदि
हं ↴ आकाश
पञ्चदशाक्षरी का एकार
वैष्णवी शक्ति
पञ्चदशी का रं बीज
ई ↴ १४ भुवन

'गणेशग्रहनक्षत्र योगिनी राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्॥'

"रं" = परमज्योतिर्मयी पराशक्ति

"ककार" = सर्वकामनापूरणी कामदा शक्ति॥

अर्थचन्द्र—विश्वयोनि 'बिन्दु' = महाकामेश्वरी।

बिन्दु—सर्वानन्दमयचक्रा (ब्रह्म)। महाकामेश्वरी एवं महाकामेश्वर का निवास्थान।। निगुर्णब्रह्म महाकामेश्वर एवं संविद्रूप कूटस्थ साक्षी महाकामेश्वरी के सामरस्य का प्रतीक ज्ञाता-ज्ञेय एवं अहन्ता तथा इदन्ता या प्रकाशविमर्श के ऐक्य का प्रतीक।

'बिन्दु चक्र' में परापरातिरहस्ययोगिनी, स्थित है। तुरीयाम्बा, सर्वानन्दमय चक्र, उड्डयाण पीठ, आदि की भी यहाँ स्थिति है।

श्रीविद्या का स्वरूप—१८ विद्यायें हैं। उनमें मुख्य विद्यायें चौदह हैं। उनमें सारभूत वेद हैं। उनमें भी सारभूता 'गायत्री' है। गायत्री मंत्र के भी दो भेद हैं—(१) प्रथम—अस्पष्ट एवं चारों वेदों में गोपनीय। (२) सुस्पष्ट।

गायत्री मंत्र (१)—'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धिमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।'[1]

पंचदशी मंत्र (२)—'क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं।'[2]

'तज्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दश प्रोक्ताः ।
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री ।।'[3]

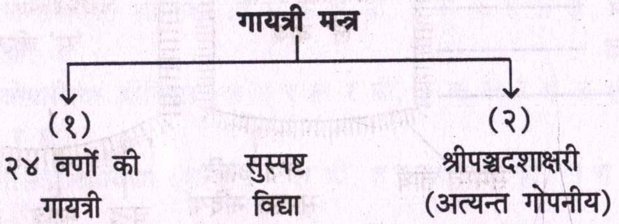

'श्रीविद्या' के इस मंत्र के प्रत्येक वर्ण का अपना विशिष्ट महत्व है; क्योंकि प्रत्येक वर्ण किसी अधिष्ठात्री शक्ति, नित्या, चन्द्रकला, सूर्य-चन्द्रमा-अग्नि तथा शिव-शक्ति की सामर्थ्य एंव 'शब्दब्रह्म' या 'नाद' से सम्बद्ध है।

भास्करराय कहते हैं कि 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' उपनिषदों के 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' एवं 'सर्वं खल्विदंब्रह्म' द्वारा व्यक्त जीव-ब्रह्मैक्य के अद्वैतवाद का प्रतिपादन करती है।

---

[1] गायत्री मन्त्र
[2] (पंचदशाक्षरी मंत्र)
[3] वरिवस्या रहस्यम्।

गायत्री मन्त्र एवं पञ्चदशी मन्त्र में एकात्मकता

(१) गायत्री मंत्र—'तत्'। गायत्री मन्त्र का 'तत्' (ब्रह्म)।

पञ्चदशी का 'वाग्भवकूट'—'पञ्चदशीविद्या' का 'क' = 'ब्रह्म'।

'क' कामेश्वर 'ईश्वरः कामोऽभिधीयते।।'[1]

'कामः ककारं व्याप्नोति काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात्त-त्पदार्थ इति।।'[2]

× × × × × × ×

पञ्चदशी मंत्र

'कामो. योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहाहसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहासकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या ।।'[3]

वाग्भव कूट—

(२) गायत्री मंत्र—'सवितुर्वरण्यं' 'सवितुर्वरेण्यं' प्रसवित्री' जगन्माता।

—वरिवस्यारहस्यम्

पञ्चदशाक्षरी विद्या—'ए' = देवी कामेश्वरी। (सरस्वती) देवी) ('ऐं' सरस्वती बीज।)

(३) गायत्री मंत्र—'भर्गोदेवस्य धी' (धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान परमेश्वरः। 'भर्गो' देवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं **सर्वान्तरभूतं तुरीयाक्षरामीकारं पदानां** मध्य वर्तीत्येव व्याख्यातं भर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येव**मीकाराक्षरं** गृह्यते।। —त्रिपुरतापिन्यूपनिषद।

"भर्गोदेवस्य धी' एवं पञ्चदशी के 'ई' में समन्वय है।

भर्गो = ज्योतिस्वरूपा। देदीप्यमान। 'धी' एवं 'ई' (पञ्चदशी) में एकात्म्य है। दोनों में सामानाधिकरण्य है। मध्यवर्ती तुरीयाक्षर अर्धमात्रात्मक है।

पञ्चदशाक्षरी विद्या—(पञ्चदशी का) 'ई' = सर्वान्तर्यामी। सर्वपोषक। (तत्र सवितृशब्दार्थस्तु 'षूङ् प्राणिप्रसवे' सविता प्राणिनः सूते तदभिन्ना सावित्री प्रसूते। सेयं **सावित्रीः त्रिपुराशक्तिः।**

सैव व्यष्टिरूपेण महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलं मूलाधार त्रिकोणं व्याप्य अवतिष्ठते।

(सवितुरेकाररस्य समन्वयमुक्त्वा वरेण्यैकारयोः समन्वयः।।)

× × × × × × ×

---

[1] त्रिपुरा तापिन्युपनिषद्।
[2] त्रिपुरातापिन्युपनिषद्
[3] शाङ्खायन श्रुति।

(४) **गायत्री मन्त्र**—'महि' = पृथ्वीमण्डल। मही बीज लकारेण महीमण्डलमुक्तं।

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र—'ल' (पृथ्वी)।

(५) **गायत्री मन्त्र**—'धियो यो नः प्रचोदयात् ' गायत्री एवं पञ्चदशी के मन्त्राक्षर परस्पर के मन्त्राक्षरों के प्रतिनिधि हैं—प्रतीक हैं—प्रतिनिधि हैं—तदर्थक हैं।

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र—'ह्रीं' (माया बीजलज्जाबीज)।

(६) **गायत्री मंत्र का चौथा चरण**—'धियो यो नः प्रचोदयात्'।

पञ्चदशी मन्त्र का—'ह्रीं' (माया बीज। लज्जा बीज)

गायत्री मन्त्र और पञ्चदशी विद्या का 'कामराजकूट'

जिस प्रकार गायत्री मन्त्र एवं वाग्भवकूट के मन्त्राक्षर परस्पर प्रतीक हैं, उसी प्रकार गायत्रीमन्त्र के अक्षर पञ्चदशी मन्त्र के 'कामराजकूट' के अक्षरों के भी प्रतीक हैं—दोनों मन्त्रों के अक्षर एक ही अर्थ सङ्केतिक करते हैं—अतः दोनों में साम्य है।

गायत्री के अक्षर	पञ्चदशी के अक्षर
१. 'तत् सवितुः वेरण्यम्' (अक्षर त्रय)	'ह' 'स' 'क' के (अक्षर त्रय) के बोधक
२. 'भर्गो देवस्य धीः' (षडक्षर)	'ह' (चतुर्थवर्ण)
३. भर्गो देवस्य धी।	'स' 'क' तृतीय कूट के दो वर्ण (द्वितीय एवं तृतीय कूटों शेष वर्णों का उद्धार उपर्युक्त रीति से करना चाहिए।)

कूटत्रय एवं शक्तियों में तादात्म्य

(क) ब्रह्मा-भारती,	वामा-इच्छा		(१) वाग्भवकूट
(ख) हरि-क्षिति,	ज्येष्ठा-ज्ञान	मिथुनत्रय =	(२) कामराजकूट
(ग) शिव-अपर्णा	रौद्री-इच्छा		(३) शक्तिकूट

—वरिवस्यारहस्यम् (६०-६५)

तीन समष्टियाँ (पुरुष-नारी का संघात) = 'शान्ता' एवं 'अम्बिका' रूप में तीन 'ईकार'।—

भारती, सकल एवं ब्रह्मा आदि आरंभ होने वाले 'त्रिकनय' = माया (ह्रीं) से रहित कूटत्रय के बोधक। 'माया' (ह्रींकार) का चतुर्थ मिथुन है = शिवशक्ति का बोधक है। पञ्चदशीमन्त्र में १५ वर्ण हैं, किन्तु अनेक वर्णों की पुनरुक्ति भी है अतः पुनरुक्ति को छोड़कर गिनें तो 'पञ्चदशीविद्या' में मात्र सात ही अक्षर प्रयुक्त हुए हैं।

पञ्चदशी विद्या के सात मूलाक्षरः—क, ए, ई, ल, ह्रीं, ह, स।

मन्त्र (विद्या) के वर्णों की	३	१	३	३	२	३	= संख्या = १५
पुनरुक्ति संख्या वर्ण	क	ए	ल	ह्रीं	ह	स	= मन्त्राक्षार = ०७
							(मूलाक्षर)

परदेवता = वामादिक सप्त शक्तियों की समष्टि।

परदेवता = षट्त्रिंशत तत्त्व ॥ ('वरिवस्यारहस्यम्')

'अहं'—'अ' = शिव। **'ह'** = शक्ति। **'ई'** = कामकला।

'वर्ण'—गुणा। **कामकलात्रय** = ईकार-स्पर्श चतुष्ट्य ३लकार = लोकत्रय। मन्त्रगत = ३ककार = (१) सकल, (२) प्रलयाकल, (३) विज्ञानाकाल।

पञ्चदशाक्षरीमन्त्रगत हल्लेखात्रय को छोड़कर अवशिष्ट अक्षरों में स्थित 'अकार'—क, ल, ह, स, क, ह, ल, स क ल में स्थित १० अकार = 'जीव'।

११रहवाँ स्वर **'एकार'** = जीव का वाचक एवं विद्या का प्राण। **'बिन्दुत्रय'** = रुद्र, ईश्वर, सदाशिव। नादत्रय = शान्ति, शक्ति। शम्भु।

महाविद्या के ३७ पद = ३६ तत्त्व और सैंतिसहवाँ तत्त्वातीत तत्त्व।

जन्यजनक में अभेद = वाच्यवाचक में अभेद = ब्रह्म एवं जगत, जगत एवं विद्या में अभेद।

परमशिव = जागतिक पदार्थ दीक्षा, गुरु एवं परमशिव में अभेद (श्लोक क्र० २/८२)

भगवती पराम्बा (इच्छा, ज्ञान, क्रिया = सतोगुण = राजोगण = तमोगुण = अग्नि-सोम-सूर्य = इन ९ के संयोग से त्रिनेत्री पराम्बा ग्रहरूपा है। (२/८४)

'श्रीविद्या' का अपने संघटक अक्षरों के साथ तादात्म्य है।

तृतीय कूट का प्रतीकार्थ—समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म सकल है। ककार + एकार + अकार = सृष्ट्यादि के वाचक। 'ई' = तिरोधान एवं अनुग्रह। ह स = आनन्द के वाचक। 'क' = सत्य का वाचक। 'ह'—अनन्त का वाचक। 'ल' = ज्ञान का प्रतीक। 'सकल' = जीव का वाचक। सकल = जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति। सकल = 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

'द्वादशविद्या' एवं 'श्रीविद्या' के द्वादशोपासक

(क) १. आदि विद्या, २. शक्ति शिवविद्या, ३. लोपामुद्रा विद्या, ४. क्रोध मुनिविद्या, ५. मानवी विद्या, ६. चान्द्री विद्या, ७. कौबेरी विद्या, ८. नन्दिविद्या, ९. प्रभाकरी विद्या, १० ष०मुखीविद्या, ११, परमशिव-विद्या एवं १२. वैष्णवी विद्या।

(ख) **द्वादशोपासक**—१. मनु, २. चन्द्र, ३. कुबेर, ४. लोपामुद्रा, ५. मन्मथ, ६. अगस्त्य, ७. अग्नि, ८. सूर्य, ९. इन्दु, १० स्कन्द, ११. शिव एवं १२. क्रोधभट्टारक (दुर्वासा)।

द्वितीय कूट के 'ह' 'स' 'क' तीन वर्णों द्वारा, गायत्री मंत्र के'तत् सवितुर्वरेण्यम्' के बोधक हैं।

पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या	**गायत्री मन्त्र**
द्वि०कूट = 'ह' 'स' 'क'	'तत् सवितुर्वरेण्यम्' (तत् + सवितुः + वरेण्यम्)[क]
'ह' (चतुर्थ 'ह')	'भर्गो देवस्य धी'

'परोरजसे सावदोम्'—यह चतुर्थ चरण है। यह अस्पष्ट है। गायत्री का द्वितीय एवं पर रूप 'श्रीविद्या' ही है।

'परोरजसे सावदोम्'—परज्योति अमल (रजशून्य) है। 'परोरजसेऽसावदोमित्येवं कूटं कामकलाऽऽलयं षडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामैति भगवांश्चैतस्माद्य एवं वेद॥२२॥'[२]

श्रीविद्या की सन्तानें—'श्रीविद्या' की दो सन्तानें हैं—(क) कामराज सन्तान, (ख) लोपामुद्रा सन्तान।

पञ्चदशाक्षरी विद्या और उसका स्वरूप

'श्रीविद्या' वेदों में प्रतिपादित ब्रह्मविद्या है—

विद्या का स्वरूप—

'कामोयोनिः कमला वज्रपाणि र्गुहाहसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहासकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमदिविद्या ॥'[३]

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्

क. 'सवितुर्वरेण्यमिति षूङ् प्राणिप्रसवे सविता प्राणिनः सूते प्रसूते शक्तिः सूते॥

२. त्रिपुरातापिन्यूपनिषद्

३. शांखायन श्रुति

'काम' (क), 'योनि' (ए), 'कमला' (ई), 'वज्रपाणि' (इन्द्र = ल), 'गुहा' (ह्रीं) ह, स (मातरिश्वा = वायु 'क')। 'अभ्र' (आकाश = हा), 'इन्द्र' (ल), 'गुहा' ('ह्रीं), स क ल, (माया = ह्रीं)।

मंत्रोद्धार के बाद मंत्र का स्पष्ट स्वरूप—'क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं। ('पञ्चदशाक्षरी विद्या')॥

१५वर्णों वाली 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' के विभाग

(१)	(२)	(३)
'वाग्भवकूट'	'कामराजकूट'	'शक्तिकूट'
(१८ वर्ण)	(२२ वर्ण)	(१८ वर्ण)
(१) 'कादि विद्या'	'हादिविद्या' 'लोपामुद्रा विद्या'	'सादिविद्या'
(२) क, ए, ई, ल, ह्रीं	ह स क ह ल ह्रीं	स क ल ह्रीं

'एवं च प्रथम-तृतीये कूटे अष्टादशवर्णात्मके ।
मध्य कूटं तु चतुरधिकम् संहत्याष्टपञ्चादशद्वर्णात्मिका वेधेति सिद्धम् ।'

मन्त्रावयव—३ककार, १ एकार, १ ईकार, ३ लकार, ३ ह्रींकार, २ हकार, २ सकार ॥ (१५ वर्ण)[१]

'पञ्चदशीविद्या' में १५ वर्ण भी और १८ वर्ण भी।

'तंत्रराजतंत्र' 'सौन्दर्यलहरी' आदि ग्रन्थों से 'हादिविद्या' का ही प्रथमोद्धार दृष्टिगोचर होता है किन्तु—

'श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा'—वाक्य के अनुसार 'त्रिशती', 'त्रिपुरोपनिषद', 'योगिनी हृदय' आदि के अनुसार तो 'कादिविद्या' का ही प्राधान्य प्रमाणित होता है।

'पञ्चदशीविद्या' में **भास्करराय** ने १५ एवं ५८ वर्ण क्यों माने?

---

१. 'पञ्चदशीविद्या' में १५ वर्ण भी हैं और ५८ भी ।

'प्रथमेऽष्टादशवर्णा द्वाविंशतिरक्षराणि मध्ये स्युः ।
प्रथमेन तुल्यमन्त्यं संघाते नाष्टपञ्चाशत ॥'

—वरिवस्यारहस्यम् (१४)

१५ वर्ण—'क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं।

५८ वर्ण— (क) 'वाग्भवकूट' (ख) 'कामराजकूट' (ग) 'शक्तिकूट
१८ वर्ण २२ वर्ण १८ वर्ण
१८ + २२ + १८ = ५८ वर्ण।

(क) वाग्भव कूट के १८ वर्ण—

क + अ, (२), ए (१), 'ई' (१), ल + अ (२) = ६
'ह्रीं'—ह् + अ, र + अ, ई + बिन्दु आदि 'ह्रीं' के = + १२
= १८ वर्ण

'हल्लेखायाः स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।
बिन्द्वर्धचन्द्रोधिन्यो नाद नादान्तशक्तियः।
व्यापिकासमनोन्मन्य इति द्वादश संहतिः ॥'[1]

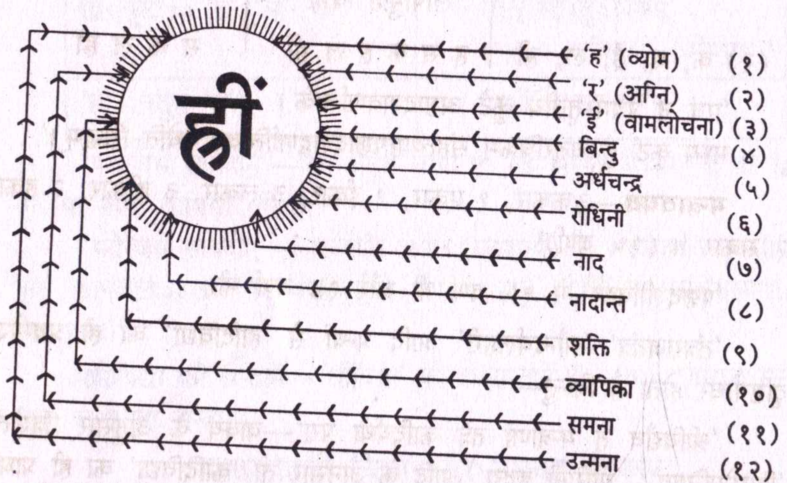
ह्रीं
'ह' (व्योम) (१)
'र' (अग्नि) (२)
'ई' (वामलोचना) (३)
बिन्दु (४)
अर्धचन्द्र (५)
रोधिनी (६)
नाद (७)
नादान्त (८)
शक्ति (९)
व्यापिका (१०)
समना (११)
उन्मना (१२)

१. क + अ = २, ए (१), ई (१), ल + अ = २ = ६ वर्ण
२. 'ह्रीं' के १२ वर्ण
= + १२ वर्ण
= १८ वर्ण

(ख) कामराजकूट के २२ वर्ण—'ह स क ह ल ह्रीं'
ह् + अ (२), स् + अ (२), क् + अ (२), ह + अ (२) ल् + अ = (२), १० वर्ण + 'ह्री' के १२ वर्ण = १० + १२ = २२ वर्ण

---

[1] १. (वरि० १२)

(ग) शक्तिकूट के १८ वर्ण—

स + अ (२), क + अ (२), 'ल' (२) = ६
एवं 'ह्रीं' के १२ अवयव = ६ + १२ = १८ वर्ण।
१८ + २२ + १८ = ५८ वर्ण

श्रीविद्या के १२ सम्प्रदाय

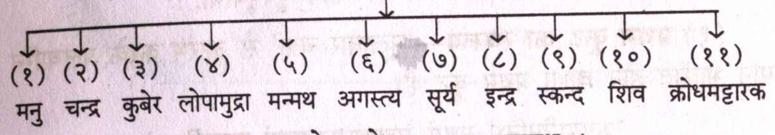
(१) मनु
(२) चन्द्र
(३) कुबेर
(४) लोपामुद्रा
(५) मन्मथ
(६) अगस्त्य
(७) सूर्य
(८) इन्द्र
(९) स्कन्द
(१०) शिव
(११) क्रोधमट्टारक

'मनुश्चन्द्रः कुबेरश्चलोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्ति सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारकोदेव्या द्वादशामी उपासकाः ॥'

इस श्लोक में १२हवें सम्प्रदाय के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है तथापि १२ सम्प्रदाय कहे अवश्य गए हैं।

श्रीविद्या का उपासना क्रम

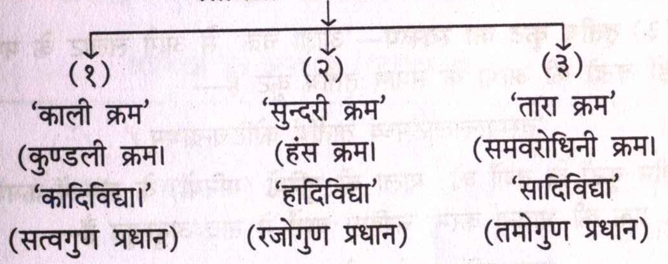
(१)
'काली क्रम'
(कुण्डली क्रम।
'कादिविद्या।'
(सत्वगुण प्रधान)
(२)
'सुन्दरी क्रम'
(हंस क्रम।
'हादिविद्या'
(रजोगुण प्रधान)
(३)
'तारा क्रम'
(समवरोधिनी क्रम।
'सादिविद्या'
(तमोगुण प्रधान)

मंत्र का उच्चारण-काल : मात्रा २५६ लव

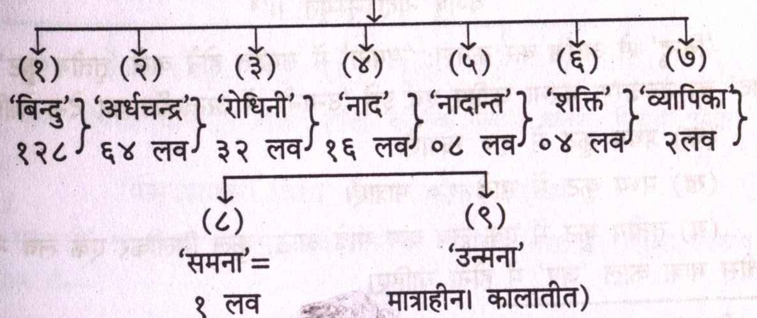
(१) 'बिन्दु' १२८
(२) 'अर्धचन्द्र' ६४ लव
(३) 'रोधिनी' ३२ लव
(४) 'नाद' १६ लव
(५) 'नादान्त' ०८ लव
(६) 'शक्ति' ०४ लव
(७) 'व्यापिका' २लव
(८) 'समना'= १ लव
(९) 'उन्मना' मात्राहीन। कालातीत)

भास्करराय की दृष्टि—'उन्मनायास्तु नास्त्येव कालः॥ 'योगिनी हृदय' 'चक्रसंकेत' आदि ग्रंथों के अनुसार तो 'द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भाग 'उन्मनाकालः'।

नियम तो यह है कि—

(१) 'बिन्दु' का मात्राकाल = अर्धमात्राकाल है।

(२) उत्तरवर्ती वर्णों का उच्चारणकाल अपने पूर्ववर्ती वर्णों से यथाक्रम आधा-आधा होता जाता है।

'बिन्दोरर्धं' मात्रा परे परे चापि पूर्वपूर्वार्धाः ।[1]

(१) **प्रथम कूट का स्वरूप**—'मूलाधार चक्र' से आरंभ करके प्रलयाग्नि के समान भासित होने वाला प्रथम कूट है।

'प्रलयाग्निनिभं प्रथमं मूलाधारादनाहतं स्पृशति ॥'

यह अनाहत को स्पर्श करता है।

(२) **द्वितीय कूट का स्वरूप**—अनाहत से आगे करोड़ों सूर्यों की भाँति आभा वाला दूसरा कूट है—

'द्वितीयकूटं तु कोटिसूर्याभम् ।'[2]

द्वितीय कूट आज्ञा चक्र का स्पर्श करता है।

(३) **तृतीय कूट का स्वरूप**—'आज्ञा चक्र' से आगे ललाट के मध्य भाग में करोड़ों चन्द्रों की आभा के समान तृतीय कूट है—

'तस्माल्ललाटमध्यं तार्तीयं कोटिचन्द्राभम् ।'

तीन कूटों के वर्णों को, माला की गुरियों (मनियों) के रूप में क्रमशः एक के ऊपर एक की भावना करनी चाहिए। वर्णों में नाद अनुस्यूत हैं—

'मालामणिवद्वर्णाः क्रमेण भाव्या अपर्युपरि ॥'
'वर्णेषु नादोऽनुस्यूतः ॥'[3]

'बिन्दु' से आरंभ कर क्रमशः 'समना' में समाप्त होने वाले 'तृतीय कूट' के 'नाद' का उच्चारण करना चाहिए एवं इसे 'उन्मनी' में अन्तर्लीन कर देना चाहिए।

(क) प्रथम कूट में १० मात्राएँ।

(ख) मध्य कूट में साढ़े १० मात्राएँ।

(ग) तृतीय कूट में एक लव कम साढ़े आठ, कुल मिलाकर एक लव न्यून उन्तीस मात्रा काल 'जप' में होना चाहिए।

---

[1] वरिवास्यारहस्यम् १/१६
[2] वरिवस्यारहस्यम् १/२०
[3] भास्करराय

जप का स्वरूप क्या है?—

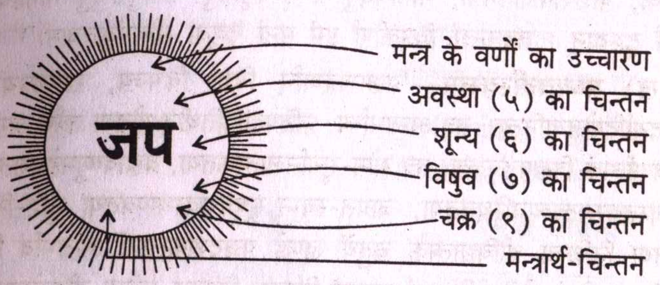

'एवमवस्थाशून्य विषुवन्ति चक्राणि पञ्चषद् सप्ता।
नव च मनोरर्थांश्च स्मरतोऽर्णोच्चरणं तु **'जपः'** ॥'

श्रीविद्या के अङ्ग[1]

(१) अन्तरङ्ग ('दुर्लभअङ्ग')
(२) बहिरङ्ग

श्रीविद्या के अन्तरङ्ग ('दुर्लभअङ्ग')

(१) वर्णसंख्या
(२) मंत्रोद्धार
(३) उच्चारण-मात्रा-काल
(४) उच्चारण-स्थान
(५) प्रयत्न
(६) रूप
(७) विभिन्न स्थितियाँ

श्रीविद्या के बहिरङ्ग[2]

(१) ऋषि
(२) छन्द
(३) देवता
(४) विनियोग
(५) बीज
(६) शक्ति
(७) कीलक
(८) न्यास
(९) ध्यान
(१०) नियम
(११) पूजा

'पञ्चदशाक्षरी विद्या' का लोकोत्तर स्वरूप

'पञ्चदशी' श्री विद्या श्रेष्ठतमा एवं लोलोत्तर सर्वोच्च विद्या है। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

---

[1] भास्करराय
[2] वरिवस्यारहस्यम् (२।१६०)

(क) **आरंभिक स्वरूप**—'अनङ्गः पूर्वं विद्यारत्नं पञ्चाशद्वर्णात्मकं, षोडश-नित्यात्मकं, षोडशकलात्मकं, नानावेदेषु नाना स्मृतिषु नानापुराणेषु नानाविधागमेषु विप्रकीर्णं दृष्टवान् । तदनन्तरं विप्रकीर्णं इमं मन्त्रं दृष्ट्वा सीवनंकृतवान।'[1]

(ख) **मध्यवर्तीस्वरूप**—'पञ्चाशद्वर्णान् त्रिधा विभज्य, खण्डत्रयं कृत्वा त्रिपुरसुन्दर्यादिषोडशनित्याः तत्र अन्तर्भाव्य, प्रतिपदादितिथीन् षोडश तत्रैव अन्तर्भाव्य, पञ्चदशवर्णात्मकं त्रिखण्डंकृत्वा, तत्र सोम-सूर्यानलात्मकतया, ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकतया, सत्व-रजस्तमस्तत्वव्यवस्थिततया, जाग्रत-स्वप्न,सुषुप्त्यवस्थापन्नतया सृष्टि-स्थितिलय हेतुभूततया निश्चित्य श्रीविद्यात्मके चतुर्थे खण्डे पञ्चदशकलानां अन्तर्भावं निश्चित्य, भुवनेश्वरी प्रभृतीनां योगिनीविद्यानां नवानां त्रिकस्य त्रिकस्य एकैक ह्रींकारेणाअन्तर्भावं अङ्गीकृत्य।'[2]

(ग) **श्रीविद्या के महत्व का चरमस्वरूप**—(१) सर्वभूतात्मकं, (२) सर्वमन्त्रात्मकं, (३) सर्वतत्त्वात्मकं, (४) सर्वावस्थात्मकं, (५) सर्वदेवात्मकं, (६) सर्ववेदार्थात्मकं, (७) सर्वशब्दात्मकं, (८) सर्वशक्त्यात्मकं, (९) त्रिगुणात्मकं, (१०) त्रिखण्डं, (११) त्रिगुणातीतं, (१२) सादार्व्यांपर पर्यायं, (१३) षड्विंशशिवशक्ति-संपुटात्मकं—निश्चित्य वर्णपञ्चदशकेन मूलविद्यां असीव्यत् ।''[3]

यही है षोडशीविद्या, (श्रीविद्या) का स्वरूप एवं उसका महत्व।। श्रीविद्या—सर्वभूतात्मक, सर्वमन्त्रात्मक, सर्वतत्त्वात्मक, सर्वदेवात्मक, सर्वशक्त्यात्मक, एवं शिवशक्तिसंपुटात्मक आदि है।

'श्रीविद्या' नक्षत्ररूपा, राशिरूपा, ग्रहरूपा, गणेशरूपा, शिवशक्तिरूपा, देवीरूपा, सर्वनित्यारूपा, सर्वतिथिरूपा, सर्वकलारूपा, सर्वदेवरूपा, सर्वतत्त्वरूपा, सर्वावस्थारूपा आदि अनन्त रूपों वाली है एवं अनन्त शक्तियों से आपूरित है।

ललिता-विद्या और उसका वर्गीकरण

'ब्रह्माण्ड पुराण' में (४।३८।८-१०) कहा गया है कि—

"तेभ्योऽपि ललितामन्त्रा दशभेदविभेदिताः ।
तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन ।
लोपामुद्रा कामराज इति ख्यातिमुपागतौ ।
हादिस्तु लोपामुद्रा स्यात् कामराजस्तु कादिका ।"

यहाँ 'ललिता मंत्र' को दशधा ही वर्गीकृत होने की बात कही गई है।

---

१. वरिवस्यारहस्यम् ३२
२. वरिवस्यारहस्यम्
३. वरिवस्यारहस्यम्

'श्रीविद्या' (ललिता-मंत्र) का विभाजन

ब्रह्माण्डपुराणप्रतिपादित मत
(श्रीविद्या के १० भेद हैं।)

ज्ञानार्णवतंत्रोक्त मत
(श्रीविद्या के १२ भेद हैं।)

तंत्र के त्रिपुरा सम्प्रदाय से सम्बद्ध है—

"वामकेश्वर तंत्र"। इसका एक भाग है—'नित्याषोडशिकार्णव'। 'नित्याषोडशिकार्णव' के ३ विमर्श ही 'योगिनी हृदय' नामक ग्रन्थ है।

काश्मीर के त्रिक दर्शन में भी यह ग्रंथ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है किन्तु वहाँ इसकी व्याख्या पृथक दृष्टि से की गई है।

'सुन्दरी महोदय' (शङ्करानन्द-रचित)। श्रीविद्या के द्वादश भेद हैं।

प्रमुख विद्यायें

'लोपामुद्रा विद्या'
'हादिविद्या'

कामराजोपासिता
'कादिविद्या'

१. पुण्यानन्द नाथ
२. अमृतानन्दनाथ
(हादिविद्यानु-यायियों में प्रख्यात दार्शनिक)।

१. भास्करराय
(कादिविद्या सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य)

पुण्यानन्द नाथ विरचित **'कामकला विलास'**। काश्मीर चौखम्बा संस्कृत सीरीज का ग्रन्थ क्र० १३) त्रिक दर्शन को भी मान्य है।

'हादि सम्प्रदाय'
'हादिविद्या'

'कादि सम्प्रदाय'
'कादिविद्या'

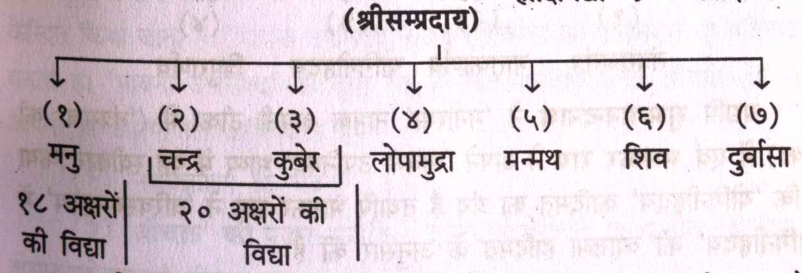

(कहीं-कहीं पर इन्द्र एवं अग्नि के स्थान पर नन्दी एवं विष्णु के नाम हैं।)
१२ सम्प्रदाय के स्थान पर प्रमुखतम सम्प्रदाय (जो आज़तक प्रचलित हैं) दो हैं—
(१) 'कामदेव सम्प्रदाय' (कामराजविद्या १५ अक्षारों की है।)
(२) 'लोपामुद्रा सम्प्रदाय' (लोपामुद्रा विद्या १५ अक्षरों की है।)

'बह्वृचोपनिषद' में तीन मतों का उल्लेख है—

(१) 'कादिमत', (२) 'हादिमत', (३) 'सादिमत'

कामराज विद्या के दो भेद

(१)
शाक्त
ऊर्ध्वाम्नास से सम्बद्ध
(नपुंसकता के दोष से मुक्त)

(२)
शाम्भव
पूर्वाम्नाय-सम्बद्ध
(दोष-युक्त)

'कादिविद्या'—१५ वर्णों से युक्त है। (तंत्रराज तंत्र) एवं 'त्रिपुरा उपनिषद' कादि मत के ग्रंथ हैं)

'हादिविद्या'—यह भी १५ वर्णों से युक्त है। ('बह्वृचोपनिषद') में 'कादि', 'हादि' एवं 'सादि' विद्याओं का वर्णन किया गया है।)

ऋषि दुर्वासा १३ अक्षरों वाली 'हादिविद्या' की उपासना किया करते थे। उनका ग्रंथ 'ललिता-स्तवरत्न' है। 'परशम्भुस्तोत्र' भी क्रोध भट्टारक दुर्वासा की रचना है। दुर्वासा ने 'महिम्नस्तोत्र' भी लिखा है।

कतिपय विद्वान यह कहते हैं कि 'योगिनी हृदय' 'कादिमत' के प्रमुख चार ग्रंथों में से एक है।

'कादिमत' के प्रधान चार ग्रंथ

(१) तंत्रराजतंत्र
(२) मातृकार्णव
(३) योगिनीहृदय
(४) त्रिपुरार्णव

यद्यपि **सुभगानन्दनाथ** ने 'मनोरमा' नामक अपनी टीका में ('तंत्रराज' की टीका) में एवं **भास्कर राय** ने अपने 'भावना उपनिषद' भाष्य में यह स्वीकार किया है कि 'योगिनीहृदय' कादिमत का ग्रंथ है तथापि भास्कर राय ने 'वरिवस्यारहस्य' में 'योगिनीहृदय' की व्याख्या हादिमत के अनुसार की है।

(SUPREME GODDESS)

परादेवी की तीन प्रकार की पूजाएँ (१) 'बहिर्याग', (२) 'जप' एवं (३) 'अन्तर्याग' के रूप में तीन प्रकार की हैं।

'त्रिपुरतापिन्युपनिषद' आदि उपनिषद 'बहिर्याग' एवं 'जप' पर किन्तु 'भावनोपनिषद' ध्यानपद्धति के माध्यम से आन्तरिक पूजा पर बल देता है। इसके अनुसार 'श्रीचक्र' पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

कामराजविद्या
१५ वर्ण = कादिविद्या

(१)
शाक्त
(ऊर्ध्वाम्नाय)
(कीलक के दोष
से मुक्त

(२)
शाम्भव
(पूर्वाम्नाय)

लोपामुद्राविद्या

(१)
१५ वर्ण
शाक्त

(२)
='हादिविद्या'
शाम्भव

'भावनोपनिषद' यह बताता है कि 'श्रीचक्र' पर ध्यान कैसे केन्द्रित किया जाय? ध्यान की यह प्रक्रिया (कतिपय विद्वानों के मतानुसार) दो प्रकार की है—इसकी दो तांत्रिक पद्धतियाँ हैं—(१) कादि सम्प्रदायानुसार, (२) हादिसम्प्रदायानुसार।

'अन्तर्याग' साधना की वह पद्धति है जिसमें शरीर के भीतर चक्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। 'भावना उपनिषद' कादि दृष्टिकोण का अनुसरण या प्रतिपादन करता है। 'भावना उपनिषद' की दृष्टि यह है कि 'मानवशरीर ही श्रीचक्र है।' वह अपनी ही आत्मा की अभिव्यक्ति है—

(१) 'नवचक्ररूपं श्री चक्रम्' (३)

(२) **'श्रीचक्र' की पूजन-पद्धति**—'ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयंहविः ज्ञाता होता, ज्ञातृज्ञान-ज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्र-पूजनम्' (१०)

भास्करराय की दृष्टि—श्रीचक्र एवं मानवशरीर अभिन्न हैं। 'स्वकीयोदेह एव त्रैलोक्यमोहनादिनवचक्रसमष्टिरूप श्री चक्राभिन्नः॥' (भावनोपनिषद-भाष्य)

इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ—

(१) एक ओर शरीर आत्मा से भिन्न नहीं है अभिन्न है अतः निःशेष ब्रह्माण्ड या निखिल प्रपञ्च भी आत्मा से भिन्न नहीं है।

(२) चन्द्रमा की (दर्शा, दृष्टा आदि) १५ कलायें प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त समस्त तिथियों से तथा १५ नित्याओं (कामेश्वरी से चित्रा पर्यन्त समस्त नित्याओं) से अभिन्न हैं।

(३) १६हवीं कला 'सादाख्या' (षोडशी) ललिता से अभिन्न है। 'सादाख्या' महात्रिपुरसुन्दरी स्वयं है।

'नित्यायें' नित्य शक्तियाँ हैं और वे 'श्रीचक्र' में निवास करती हैं। 'तिथि चक्र' (Wheel of Time) के भीतर ही 'श्रीचक्र' है। तिथियाँ २१६०० श्वासों से भी अभिन्न हैं। ये २१६०० श्वासें मनुष्य की प्रतिदिन की श्वासें हैं। 'काल' का पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड से यही संबन्ध है। जहाँ तक 'देश' की बात है वह पुराण-साहित्य के अनुसार समस्त १४ भागों में और जम्बूद्वीप से मधुरोद (मधुर जल के समुद्र) पर्यन्त स्थित है। नित्यामण्डल इस प्रकार घूमता है कि प्रत्येक नित्या अपनी वार्षिक यात्रा में किसी विशिष्ट देश खण्ड (Space-division) के सम्पर्क में आती है। नित्यायें मेरु से आरंभ करती हैं और सोलहवें में 'परव्योमन' से आरंभ करती हैं। यही 'देश-चक्र' है। 'योगिनीहृदय' की आन्तर उपासना-पद्धति विशिष्ट तो है ही किन्तु साथ ही वह प्राचीन परम्परा से सम्बद्ध है। 'महार्थमञ्जरी' 'चिद्गगनचन्द्रिका' एवं क्रम सम्प्रदाय के कतिपय ग्रंथों में इस विषय पर पुष्कल प्रकाश डाला गया है।

'योगिनीहृदयदीपिकाकार' अमृतानन्द ('कामकलाविलास' के प्रणेता) पुण्यानन्द के शिष्य एवं 'षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह' एवं 'सौभाग्यसुभगोदय' के प्रणेता है। 'योगिनीहृदय' की व्याख्या अमृतानन्द एवं भास्करराय दोनों ने पृथक्-पृथक् दृष्टियों से की है अतः दोनों व्याख्यायें पृथक्-पृथक् हैं।

'योगिनी हृदय' में 'श्रीचक्र' को एक नव्य दृष्टि से परिभाषित करते हुए कहा गया है कि—

'नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्॥'[१]

विश्व क्या है? परमाशक्ति स्वयं ही विश्वरूपा है। जब वह अपनी स्फुरता को देखता है तभी सृष्टि-चक्र की उत्पत्ति हो जाती है—

---

[१] योगिनीहृदय (१।३३।९)

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥'

षोडशी विज्ञान—इस त्रैपुर विद्या को 'श्रीविद्या' कहा जाता है।

'श्रीविद्या' एवं 'श्रीसम्प्रदाय' नामकरण का रहस्य

प्र० भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की 'विद्या' (मन्त्र) को 'श्रीविद्या' एवं इस विद्या के अनुयायी उपासकों के सम्प्रदाय को 'श्रीसम्प्रदाय' क्यों कहा जाता है? 'श्री' क्या है?

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'षोडशीकला' नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वन्तो मन्त्रः॥ एतस्यैव बीजस्य नाम **श्रीविद्येति।** श्री बीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।[१]

(२) 'एवं षोडशनित्यानां प्रकृतिभूताः ककारादयः। ताश्च 'षोडशनित्याः' शुक्लप्रतिपदमारभ्य पौर्णामास्यन्ततिथिरूपाः। कृष्णपक्षप्रतिपदमारभ्य अमावास्यान्तन्त तिथिरूपाः। एता एव चन्द्रकलाभिधानाः। 'चन्द्रकला' एवं प्रतिपदादि तिथय इति सुप्रसिद्धम्। यथोक्तं ज्योतिश्शास्त्रे—

'प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्ल कृष्णयोः॥'

(३) 'चन्द्रस्य प्रथमायाः कलायाः प्रतिपदिति नामधेयम्। सैव कलात्मिका सूर्यमण्डलान्निर्गता। कृष्णपक्षे तु सूर्यमण्डलं प्रविष्टा। एवं शुक्लपक्षे सूर्यमण्डलान्निर्गता द्वितीया कला द्वितीया तिथिः। कृष्णपक्षे तु सूर्यमण्डलं प्रविष्टा द्वितीया कला द्वितीया तिथिरिति। एवं सर्वत्र ऊहनीयम्। अतश्च पञ्चदशकलाव्यवधानं सूर्यचन्द्रयो र्यत्र सा 'पौर्णमासी'। पञ्चदश्यां कलायां सूर्यचन्द्रयोरत्यन्तंसंयोगः। सा अमावस्येति ज्ञेयम्।

(४) 'अतः कौलमते चन्द्रकलात्मिकानां षोडशानां नित्यानां प्रतिदिनं एकस्या एवानुष्ठानम्। सर्वासां **'समयिमते'**। षोडश्याः कलायास्तु पञ्चदश स्वपि तिथिषु अनुष्ठानं सिद्धम्' पञ्चदशानां नित्यानां तत्रै अन्तर्भावात्॥''[२]

* उपासना क्रम *

---

[१] लक्ष्मीधरा,

[२] लक्ष्मीधरा (३२)

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना का तिथि-विधान

	(१) उपास्या या ध्येया कला के ध्यान की तिथि	(२) उपास्या (ध्येया) कला का नाम
१.	प्रतिपदा तिथि	त्रिपुरसुन्दरी कला
२.	द्वितीया तिथि	कामेश्वरी कला
३.	तृतीया तिथि	भगमालिनी कला
४.	चतुर्थी तिथि	नित्याक्लिन्ना कला
५.	पञ्चमी तिथि	भेरुण्डा कला
६.	षष्ठी तिथि	वह्निवासिनी कला
७.	सप्तमी तिथि	महाविधेश्वरी
	सप्तमी तिथि	या महावज्रेश्वरी कला
८.	अष्टमी तिथि	रौद्री रौद्रीकला
९.	नवमी तिथि	त्वरिता कला
१०.	दशमी तिथि	कुलसुन्दरी कला
११.	एकादशी तिथि	नीलपताका कला
१२.	द्वादशी तिथि	विजया कला
१३.	त्रयोदशी तिथि	सर्वमङ्गला कला
१४.	चतुर्दशी तिथि	ज्वाला कला
१५.	पञ्चदशी तिथि	मालिनी कला

चन्द्रमा की १५ कलायें भगवती की पञ्चदशी विद्या के १५ वर्णों के रूप हैं। भगवती की पंचदशी विद्या के १५ वर्णों के रूप हैं।

प्र०—समस्त तिथियों पर उपास्था कौंन है?

उ०—(१) 'सर्वासु तिथिषु चिद्रूपारव्या कला षोडशी उपास्या।'

(२) "प्रतिपदि या 'त्रिपुरसुन्दरी' कथिता सा चिद्रूपात्मिका न भवति, चिद्रपात्मिकाया: मूलविद्याया: भिन्नत्वेन अनुष्ठानात्। × **मंत्रभेदश्च** — स मन्त्र: प्रतिपद्येव अनुष्ठेयो न द्वितीयादामिति॥"[1]

---

[1] लक्ष्मीधरा (३२)

(३) सहस्त्रदलकमलान्तस्सिथ चन्द्रमण्डलं **'बैन्दवस्थानम्'**। तत्कला **चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति** गीयते। सैव 'त्रिपुरसुन्दरी'।[1]

(१) श्रीचक्र रूप चन्द्र विम्ब में मात्र एक ही कला है और उसे 'परमाकला' कहते हैं— वही मिलकर १६ कलायें बन जाती हैं—

'श्रीचक्ररूप चन्द्रबिम्बे एकैव कला, सा परमाकला। मिलित्वा षोडश कला: षोडशेन्दो: कला भानो: द्विद्वदिश दशानले। सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृका चक्ररूपिणी।"

(२) एता: पञ्चशत्कला: पञ्चाशद्वर्णात्मिका: पञ्चदशाक्षरी मन्त्रे अन्तर्भूता:।[2]

त्रिपुर सुन्दरी के दो रूप

(१)
प्रतिपदा तिथि पर उपास्या एवं ध्येया चन्द्रकला (अचिद्रूपा, मूलविद्या-भिन्ना त्रिपुर सुन्दरी।)

(२)
१. समस्त तिथियों पर उपास्या
२. चिद्रूपा एवं मूलविद्याभिन्ना
३. षोडशीरूपा एवं लक्ष्मीबीज
४. बैन्दवस्थानस्थिता
५. आनन्दरूपा, आत्मारूपा
६. सहस्त्रदलकमलस्था
७. चन्द्रमा की १६हवीं कला 'श्री'

१६ कलायें—प्र० १५ कलायें कौंन हैं? उनका वैदिक नाम क्या है?

(क) १५ कलाओं का नाम तो प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी आदि मासिक तिथियाँ हैं।

(ख) इनका वैंदिक नाम इस प्रकार है—

*** शुक्लपक्ष की १५ कलाओं की वैदिक आख्या (नाम) ***

(१) दर्शा
(२) दृष्टा
(३) दर्शिता
(४) विश्वरूपा
(५) सुदर्शना
(६) आप्यायमाना
(७) आप्यायमाना
(८) आप्याया
(९) सूनृता
(१०) इरा
(११) आपूर्यमाणा
(१२) आपूर्यमाणा
(१३) पूरयन्ती
(१४) पूर्णा
(१५) पौर्णमासी

---

[1] लक्ष्मीधरा (३२)
[2] लक्ष्मीधरा: (३२)

'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
'षोडशी' तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी ॥'

कलाओं या तिथियों के खण्ड

- (१) 'आग्नेय खण्ड'
- (२) 'सौर खण्ड'
- (३) 'चान्द्रखण्ड'

आग्नेय खण्ड

- (१) दर्शाकला
- (२) दृष्टाकला
- (३) दर्शताकला
- (४) विश्वरूपा कला
- (५) सुदर्शनाकला

सौर खण्ड

- (१) आप्यायमाना कला
- (२) आप्यायमाना कला
- (३) आप्याया कला
- (४) सूनृता कला
- (५) इरा कला

चान्द्र खण्ड

- (१) आपूर्यमाणा कला
- (२) आपर्यूमाणा कला
- (३) पूरयन्ती कला
- (४) पूर्णा कला
- (५) पौर्णमासी कला

ये समस्त कलायें नित्यायें हैं। ये 'नित्या' नामक शक्तियाँ हैं।

* कलाओं का सविस्तार परिचय *

कलाओं का 'आग्नेय खण्ड'

- (१) दर्शा कला (शिवतत्त्वात्मिका कला)
- (२) दृष्टा कला (शक्तितत्वात्मिका कला)
- (३) दर्शता कला (मायातत्त्वात्मिका कला)
- (४) विश्वरूपा कला (शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका कला)
- (५) सुदर्शना कला (जलतत्त्वात्मिका कला)

आग्नेय खण्ड

- (१) अधिदेवता (अग्नि) (कामदेव सर्वत्र अधिदेवता हैं।)
- (२) अधिष्ठात्री (कामेश्वरी) (कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री हैं।)

* कलाओं का सौर खण्ड *

- (१) आप्यायमाना कला (तेजस्तत्वात्मिका)
- (२) आप्यायमाना कला (वायुतत्त्वात्मिका)
- (३) आप्याया कला (मनस्तत्त्वात्मिका)
- (४) इरा कला (आकाशतत्त्वात्मिका)
- (५) आपूर्यमाण कला (विद्यातत्त्वात्मिका)

* सौर खण्ड *

- (१) देवता (सूर्य)
- (२) कामदेव (सर्वत्र अधिदेवता हैं।)
- (३) कामेश्वरी (सर्वत्र अधिष्ठात्री देवी हैं।)

'आपूर्यमाणा कला' चन्द्रखण्डान्तर्गता होने पर भी सौरखण्ड में उसका अन्तर्भाव कर लिया गया है।

'इरा कला' एवं 'आपर्यूमाण कला' इन दोनों में ऐक्य है।

* सौम खण्ड *

- (१) आपूर्यमाण कला (महेश्वर तत्त्वात्मिका)
- (२) पूरयन्ती कला (परतत्त्वात्मिका)
- (३) पूर्णा कला (आत्मतत्त्वात्मिक)
- (४) पौर्णमासी कला (सदाशिवतत्त्वात्मिका)

* सौमखण्ड *

- (१) अधिदेवता (सोम)
- (२) सर्वत्र अधिदेव (कामदेवसर्वत्र अधिदेवता हैं।)
- (३) सर्वत्र अधिष्ठात्री (कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री देवी हैं।)

नित्य कला—'नित्या कला सादाख्यतत्त्वात्मिका।। षोडशार विशुद्धि चक्र में—पूर्वक्रम से सोलहों दिशाओं में ये समस्त १५ कलायें परिभ्रमण करती रहती हैं। **'सुभगोदय'** में कहा गया है कि **'आज्ञा चक्र'** के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल की १६ कलायें हैं। इसमें (**सुभगोदय** में) कहा गया है कि **'षोडशार'** में (विशुद्धि चक्र के १६ दलों पर) १६ कलायें नहीं केवल १५ कलायें ही परिभ्रमण करती हैं। **'षोडशी कला'** का अवस्थान मात्र 'सहस्रदलकमल' में ही है किन्तु वहाँ स्थित रहकर भी वह नित्या 'षोडशीकला' अपने प्रभापटल को १५ कलाओं को देकर वहाँ अप्रत्यक्षतः परिभ्रमण करती रहती हैं।[1]

कृष्णपक्ष की रात्रियों के वैदिक नाम—ये कृष्णपक्ष की रात्रियाँ 'आधार चक्र' में अवस्थित हैं। यहीं 'अमावस्या' भी तो स्थित है। समयी इन रात्रियों में नहीं प्रत्युत् शुक्लपक्ष की रात्रियों में ही (चन्द्रकला के संचार के कारण) कुण्डलिनी-प्रबोधन आदि करते हैं। कुण्डलिनी-जागरण रात्रि में ही करणीय है दिन में नहीं।

शुक्लपक्ष की रात्रियों में ही कलात्व रहता है अतः—'अतएव कुण्डलिनी प्रबोधो रात्रावेव न दिवा, दिवसानां मधुनः स्रावकत्वात् ।।''

'यान्यहनि। ते मधुवृषाः।। (तै० ब्रा० ३।१०-१०)

कृष्णपक्ष की रात्रियों के नाम

(१) सुता (२) सुन्वती (३) प्रसुता (४) सूयमाना
(५) अभिषूयमाण (६) पीती (७) प्रपा (८) संपा
(९) तृप्ति (१०) तर्पयन्ती (११) कान्ता (१२) काम्या
(१३) कामजाता (१४) आयुष्मती (१५) कामदुधा

—(तै० ब्रा० ३।१।१०-१)

'रात्रावेव चन्द्रकलारूपायाः श्री विद्यायाः अनुष्ठानं न च दिवसे इति उपदेशः।।'[2]

* शुक्लपक्ष के दिनों के नाम *

(१) संज्ञान (२) विज्ञान (३) प्रज्ञान (४) जानद्
(५) अभिजानत (६) संकल्पमान (७) प्रकल्पमान (८) उपकल्पमान
(९) उपक्लृप्त (१०) क्लप्त (११) श्रेय (१२) वसीय
(१३) आयत (१४) संभूत (१५) भूतम

---

१. 'षोडश्याः कलायाः सहस्रदलकमले एव अवस्थान'—लक्ष्मीधरा
२. (लक्ष्मीधरा ३२)

* कृष्णपक्ष के दिनों के नाम *

(१) प्रस्तुत (२) विष्टुत (३) संस्तुत (४) कल्याण
(५) विश्वरूप (६) शुक्र (७) अमृत (८) तेजस्वि
(९) तेजः (१०) समिद्ध (११) अरुण (१२) भानुमन
(१३) मरीचि (१४) मद (१५) तपस्वत[1]

उपासना योग्य समय का विधान

(१) 'परिशेषवृत्या अमावास्यायां उपासना निषेधः। न तु सर्वस्मिन् कृष्णपक्षे। अतश्च सर्वासु रात्रिषु, अमावास्या व्यविरिक्तासु उपासना, न सर्वेषु दिवसेषु।।'' 'अमावस्या' तिथि उपासना के लिए निक्षिद्ध है। —लक्ष्मीधरा (३२)

(२) 'शुक्लपक्षदिवसेष्वपि न अनुष्ठानमिति ध्येयम् ।'[2]

* श्रीविद्या और सहस्रार *

'श्रीविद्या' की साधना (१) 'श्रीचक्र' (श्रीयन्त्र) (२) 'श्रीविद्या' (पञ्चदशाक्षरी विद्या) एवं (३) श्रीविद्या की अधिष्ठात्री देवता 'महात्रिपुरसुन्दरी' की साधना होते हुए भी (यह) मुख्यतः 'सहस्रार' ('सहस्रदल पद्म') की साधना है।

(१) 'श्रीविद्या' के मूल मन्त्र में १५ वर्ण हैं, किन्तु १५ वर्णों का भी मूल वर्ण सोलहवाँ वर्ण है और वह 'सहस्रार' के चन्द्रमा में स्थित है।

(२) 'श्रीविद्या' की अधिष्ठात्री देवी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का यथार्थ स्वरूप 'षोडशी' कहलाता है। 'षोडशी' सहस्रार के मध्यस्थित चन्द्रमा की १६हवीं कला का नाम है और यही षोडशी कला 'भगवती महात्रिपुरसुन्दरी' भी है। अतः उनका एक नाम 'षोडशी' भी है।

(३) 'पञ्चदशी मंत्र' 'षोडशी विद्या' तभी कहा जाता है जब पञ्चदशी मंत्र के साथ (गुरुमुख प्राप्त) १६हवाँ वर्ण जोड़ दिया जाता है, किन्तु यह १६हवाँ वर्ण भी सहस्रार के मध्य स्थित चान्द्र कला का स्वरूप है।

निष्कर्ष—श्रीविद्या-साधना के तीन मुख्य घटक हैं—

[१] 'श्रीविद्या' (पञ्चदशाक्षरी मंत्र)—यह सहस्रार (सहस्रदलपद्म) से सम्बद्ध है।

[२] 'षोडशी'' (महात्रिपुरसुन्दरी = श्रीविद्या की उपास्या देवता)—ये सहस्रार की चान्द्रकला हैं।

[३] 'श्रीयंत्र'—'सहस्रार' ही यथार्थ 'श्रीचक्र' है अतः 'श्री यंत्र' का भी सम्बन्ध 'सहस्रार से है।

---

१. (तै० ब्रा० ३।१०-१०)
२. लक्ष्मीधरा

(१) 'बैन्दवस्थानं श्रीचक्रस्य मध्यस्थितं'

(२) 'समयिनां मते श्रीचक्रमेव चन्द्रमण्डलम् ॥ (१०)

(३) इन्दुमण्डलात्मकं श्री चक्रं (११)

(४) शिरस्थितसहस्रदलकमलान्तर्गतश्रीचक्रात्मक शशिबिम्ब।

'श्रीविद्या' के १५ अक्षर चन्द्रमा की १५ कलायें हैं और १६हवाँ अक्षर चन्द्रमा की 'षोडशी कला' है अतः देवी के —(पञ्चदशाक्षरी एवं षोडशाक्षरी)—

(१) 'पञ्चदशाक्षरी' (पञ्चदशी) एवं

(२) 'श्रीविद्या' षोडशीविद्या। षोडशी-विज्ञान

१६ अक्षरों से निर्मित त्रिपुरा मंत्र—दोनों मंत्रों का सम्बन्ध 'सहस्रार' के चन्द्रमा की कलाओं से है।

श्री विद्या के प्रत्येक वर्ण चन्द्रमा की प्रत्येक कला के साथ एवं उसकी प्रत्येक तिथि के साथ सम्बद्ध हैं। इतना ही नहीं चन्द्रमा की तिथियाँ नित्यायें हैं और पञ्चदशी के प्रत्येक अक्षर भी नित्यारूप है। ये नित्यायें भी सहस्रार के चन्द्रमा में स्थित हैं।

लक्ष्मीधर कहते हैं—'विद्यायाः प्रतिपदादिषोडशदिनेषु कलावृद्धिक्षययोः वक्ष्यमाणत्वात् । चन्द्रमण्डलमेतदेव।।'

'चन्द्रमण्डलं श्रीचक्रमेवेति ।'

श्री विद्या के ककारादिक वर्ण षोडश नित्याओं के जनक हैं। प्रतिपदा आदि तिथियाँ चन्द्रकलायें हैं जो कि 'पूर्णिमा' या 'अमवास्या' पर्यन्त समस्त तिथियाँ हैं और ये तिथियाँ नित्यारूपा भी हैं। ये सभी अर्थात् पञ्चदशी के वर्ण, तिथियाँ, चन्द्रकलायें एवं नित्यायें सभी 'श्रीविद्या' एवं सहस्रारस्थ चन्द्रमा से सम्बद्ध हैं। 'षोडशीकला' शकार + रेफ़ + ईकार एवं 'बिन्दु' से युक्त हैं।

'षोडशीकला नाम शकार—रेक—ईकार—बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्री बीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम् । एवं षोडशनित्यानां प्रकृतिभूताः ककारादयः। ताश्च षोडश नित्याः शुक्लप्रतिपदमारभ्य पौर्णमास्यन्ततिथि रूपाः कृष्णपक्ष प्रतिपदमारभ्य अमावस्यान्ततिथि रूपाः। एतएव चन्द्रकलाभिधानाः।।'[1]

(क) त्रिपुरसुन्दरी के मंत्र में १६ वर्ण हैं।

(ख) सहस्रारस्थ चन्द्र की १६ कलायें हैं।

(ग) पञ्चदशी का एक वर्ण (श्रीं) षोडशकलात्मक है।[2]

[४] भगवती का निवास भी सहस्रार में ही है।

आचार्य शंकर कहते हैं—

'सहस्रारेपद्मेसह रहसि पत्या विहरसे ॥' (९)

यह 'सहस्रार' भगवती का 'सुधासिन्धु' भी है।

---

[1] लक्ष्मीधरा (३२)

[2] एको वर्णाः षोडशकलात्मकः (लक्ष्मीधराः ३२)

भगवती 'सुधासिन्धु' में रहती हैं—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ॥' (८)

'महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा,
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादहरीम्' ॥२१॥

—कह कर आचार्य भगवती को षटचक्रों की 'महाटवी' की निवासिनी भी कहते हैं किन्तु ये षट्चक्र श्री चक्र के अङ्ग हैं और श्री चक्र को सहस्रार से अभिन्न माना गया है अतः सभी दृष्टियों से श्रीविद्या में 'सहस्रार' का सर्वाधिक महत्व प्रतिपादित किया गया है।

सन्दनसंहिताकार का मत—'सनन्दनसंहिता' में कहा गया है कि १६ नित्यायें 'चक्रविद्या' (श्रीयंत्र-सम्बंधिनी विद्या) एवं चान्द्रकलाओं की अङ्ग हैं—

(१) 'षोडशनित्याः स्वरात्मिकाः पञ्चदशाक्षरीमन्त्रगत एकारादिभूत अकार विसर्गात्मक सकाराभ्यां संगृहीताः जीवकलारूपाः बैन्दवस्थाने स्थापितः तत्रैव अन्तर्भूताः।'

(२) 'षोडशनित्याः चन्द्रकलायाः चक्रविद्याया अङ्गभूताः।'

(३) 'षोडश नित्यानां श्री चक्रे अङ्गतया अन्तर्भावः।'

सनत्कुमारसंहिताकार का मत—'चक्रविद्यायां षोडशनित्यानां अङ्गत्वं प्रतिपादितम्।' सनत्कुमार कहते हैं—श्रीचक्रस्याङ्गभूताः नित्याः वशिन्यादिभिः द्विकंद्विकं मेलयित्वा बैन्दवं त्रिकोणं विहाय अष्टसु कोणेष्वन्तर्भाव्याः।।'' मध्ये त्रिपुरसुन्दरी अन्तर्भाव्या। अष्टवर्गासु अष्ट वशिन्यादयः, षोडशनित्याः। द्वादश योगिन्यः— एवं चत्वारिंशत्।'[1]

भगवती 'बैन्दवस्थान' (सहस्रार) की कला हैं। वे ही 'चिन्मयी कला' आनन्दरूपा आत्मा एवं त्रिपुरसुन्दरी हैं। 'सहस्रदलकमलान्तस्थित चन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम् तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते। सैव सुन्दरी।' (३२)

'सर्वासु तिथिषु चूपाख्या कला षोडशी उपास्या। प्रतिपदि या त्रिपुरसुन्दरी कथिता सा चिद्रूपात्मिका न भवति।'[2]

[५] भगवती की उपासना का स्थान भी 'सहस्रार' है।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर सामयिकों की पूजा का स्थान 'सहस्रार' बताते हुए कहते हैं—(१) 'समयिनां मते समयस्य सादार व्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ।'[3]

(२) 'समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या। सहस्रकमले तु तिरकारिणी प्रसारणा पर्यन्तं दर्शनमेव समाराधनम् ।'[4]

---

[1] (लक्ष्मीधरा)

[2] (लक्ष्मीधरा ३२)

[3] (लक्ष्मीधरा : २७)

[4] (लक्ष्मीधरा : ४१)

(१) चन्द्रमा की षोडशी कला ही 'महात्रिपुरसुन्दरी' है।
(२) चन्द्रमा की १६ कलायें ही 'श्रीविद्या के १६ वर्ण हैं।
(३) चन्द्रमागत सुधासिन्धु ही त्रिपुरसुन्दरी का परम धाम या निवासस्थान है।
(४) सहस्रार की पूजा ही सामयिकों की यथार्थ पूजा है।

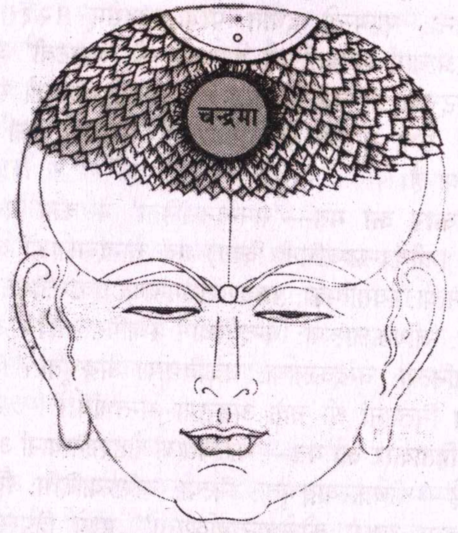

SAHASRARA CHAKRA

*** सहस्रार चक्र ***

'शिरः पद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते।
पतत्रीणां तल्पे परमशिवरूपं निजगुरुम्।'[1]
'शिरः पद्मेमहादेवस्तथैव परमो गुरुः।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये।
तदंशं चिन्तयेद देवि बाह्ये गुरु चतुष्टयम्।
तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च ॥'
'इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नर वरो।
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने ॥
समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः।
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥'

---

१. अन्नदाकल्प।
२. निर्वाण तंत्र/कंकालमालिनीतंत्र
३. षट्चक्र निरूपणम् (४५)

सहस्रार का स्वरूप

'श्रीविद्या' एवं उसकी उपासना में 'सहस्रार' का इतना महत्व होने के कारण 'सहस्रार' के पूर्णस्वरूप को भी जान लेना आवश्यक है।

'सहस्रार' १००० दलों का कमल है। इसे 'सहस्रार' (१००० अरों वाला) भी कहते हैं। यह सप्तम चक्र है और परमशिव का निवासस्थान है। यही कुल-अकुल के सामरस्य का स्थान है।

[१] आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद ने सहस्रार के 'महाबिन्दु' से ही मूलतः दो चक्र (१) 'मूलाधार' एवं (२) 'स्वाधिष्ठान' और उनके माध्यम से शेष चार चक्रों का आविर्भाव बताया है। वे कहते हैं कि 'सहस्रार' ही **'बिन्दु'** बन जाता है और उसी से (१) समस्त जगत एवं (२) मूलाधार-स्वाधिष्ठान का आविर्भाव होता है—

'सहस्रारं बिन्दुर्भवति च तो बैन्दवगृहं
तदेततस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।
ततो मूलाधाराद्वितयमभवत्तछशदलं
सहस्राराज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत् ॥'[1]

बिन्दु १० भेदों में विभक्त हो जाता है—

'दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः ॥'

[२] शिवसंहिताकार की दृष्टि—(१) ब्रह्मरंध्र में जो चक्र है वह सहस्रार कहलाता है। इसके कन्द में जो योनि है उसमें चन्द्रमा है। उस त्रिकोणाकार योनि से चन्द्रामृत सदैव स्रवित होता रहता है। वह चन्द्रामृत इड़ा नाड़ी द्वारा धारा रूप में प्रवाहित होता रहता है। इस अमृतवहा नाड़ी को 'गंगा' कहते हैं। **'इड़ा नाड़ी'** आज्ञा पद्म के के दक्षिण भाग से वाम नासापुट में प्रवाहित होती है। इड़ा-पिंगला के मध्य का स्थान 'वाराणसी' कहलाता हैं। 'आज्ञापद्म' के वामभाग से दक्षिण नासापुट द्वारा पिंगला नाड़ी प्रवाहित होती है। यह 'असी' कहलाती है।

(२) मूलाधार चक्र की योनि (कन्द) में जो सूर्य रहता है वह विषस्राव करता रहता है और वही विष पिंगला नाड़ी द्वारा प्रवाहित होता रहता है। यह नाड़ी दक्षिण नासापुट में प्रवाहित होती है।

'ब्रह्मरंध्रं हि यत् पद्मं सहस्रारं व्यवस्थितम्।
तत्र कन्दे हि या योनिस्तास्यां चन्द्रो व्यवस्थितः ॥'

---

१. सुभगोदय स्तुति (४७)

अत: ऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम् ।
अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम् ॥

'आज्ञाकमल' से ऊपर तालुमूल में 'सहस्रदल कमल' शोभित है। वहीं सुषुम्णा का स्थान है।

तालुस्थान में पहले चक्र के कन्द में पश्चिम की मुख किए हुए योनि स्थित है। उसके मध्य में सुषुम्णा का मूल है। यही विवर 'ब्रह्मरंध्र' है। सुषुम्णा के उस रन्ध्र में चिच्छक्ति कुण्डलिनी स्थित है। सहस्रार की योनि के नीचे चन्द्रमा है। कपाल-विवर में क्षीरसागर का ध्यान करना चाहिए—

'शिर: कपाल विवरेध्यायेद् दुग्धमहोदधिम्'
तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्र विचिन्तयेत् ॥

उसी स्थान में **'सहस्रारपद्म'** में स्थित चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिए। कपाल-विवर में सोलह कला से युक्त चन्द्रमा है।

तालु के ऊर्ध्व भाग में दिव्य रूप **'सहस्रार पद्म'** है। यह ब्रह्माण्ड रूपी देह के बाहर स्थित एवं मुक्तिप्रद है। यही कमल **'कैलास'** है। यहाँ **'अकुल महेश'** निवास करते हैं।

[३] **षट्चक्रनिरूपणकार की दृष्टि**—महानाद के ऊपर **'शंखिनी'** नामक नाड़ी है। उसके शिखर देश में **'विसर्ग'** नामक शक्ति के नीचे पूर्णचन्द्रवत शुभ्रसहस्रदलकमल है जो कि निम्नाभिमुख है। उस **'सहस्रदल कमल'** की कर्णिका के मध्य परमामृतसमूह से स्निग्धदीप्ति वाला, रश्मियों को स्फुरित करता हुआ पूर्ण चन्द्रमण्डल है। उसके मध्य में 'त्रिकोण' है। उसके मध्य में बिन्दुरूप शून्य है। वह बिन्दुरूप शून्य जो परमाह्लादयुक्त है, 'निर्वाण कला' के साथ विद्यमान चन्द्र की सोलहवीं कला के द्वारा निर्मल प्रकाश फैलाता है। इसी स्थान में **'परमशिव'** के रूप में प्रसिद्ध देव है जो कि शून्याकार, सर्वात्मा एवं अज्ञाननाशक है।

निरन्तर अमृतधारा का वर्षण करता हुआ परमशिव **'परमहंस'** कहलाता है। इसी **'सहस्रार पद्म'** में 'अमा' नामक सोलहवीं कला विद्यमान है—

'अत्रास्ते शिशुसूर्यसोदर कला चन्द्रस्य या 'षोडशी'।

'अमा कला' या षोडशी—(१) यह निष्कलङ्क, प्रात: कालीन सूर्य की कला के समान रक्तवर्ण वाली है। यह कमल के सूक्ष्म तन्तु के सौवें भाग के समान सूक्ष्म है।

करोड़ों विद्युत के समान कोमल शरीर वाली यह 'अमाकला' निम्नाभिमुखी एवं अत्यन्त चमकीली है—

'अत्रास्ते शिशुसूर्यसोदरकला चन्द्रस्य या षोडशी
शुद्धा नीरज सूक्ष्मतन्तु शतधाभागैरूपा परा।
विद्युत्कोटि समान कोमल तनूर्विद्योतिताऽधोमुखी
नित्यानन्द परम्पराऽतिविगलत् पीयूष-धाराधरा ॥४६॥

निर्वाण कला—श्रेष्ठतमा **'निर्वाण'** नामक कला 'अमाकला' के अन्तर्गत है जो कि केशाग्र के हजारहवें भाग के समान सूक्ष्म है। वह समस्त प्राणियों के हृदय में चैतन्य स्वरूप से रहने वाली है और नित्यज्ञान प्रदा, समस्त सूर्यों के समान एवं अर्धचन्द्राकारा है। (१)

परमबिन्दु—'निर्वाणकला' के मध्य देश में अपूर्व **'निर्वाण शक्ति'** स्थित है। यह कोटिसूर्यप्रभा है। यह त्रिभुवनजननी, केशाग्रभाग के करोड़हवें भाग के समान है और निरन्तर अमृतप्रवाहिनी है। यह समस्त प्राणियों का प्राण है। यह तत्त्वज्ञान प्रकाशिनी है। (२)

उस 'निर्वाणशक्ति' के मध्य स्थित शून्य में 'नित्यानन्द' नामक शिवपद है। यह निर्मल, नित्य, योगिगम्य, सर्वसुखस्वरूप, ब्रह्मपद या विष्णुपद या हंसपद या आत्मसाक्षात्कार का स्थान है। (३)

पिण्ड और श्रीयन्त्र में अभेद है—सामयिकों ने षट्चक्रों एवं श्रीचक्र की ९ योनियों में ऐक्य माना और पिण्ड-ब्रह्माण्ड में एकता देखी।

शरीर में जो षट्चक्र हैं वे भी चक्र के ही भाग हैं—

श्रीयंत्र : ९ चक्र		**पिण्डस्थ षट्चक्र**
(१) 'त्रिकोण'	=	'आधार चक्र'
(२) 'अष्टकोण'	=	'स्वाधिष्ठान चक्र'
(३) 'दशार'	=	'मणिपूरक चक्र'
(४) 'द्वितीय दशार'	=	'अनाहत चक्र'
(५) 'चतुर्दशार	=	'विशुद्धि चक्र'
(६) 'शिवचक्र चतुष्टय	=	'आज्ञा चक्र'
(७) 'बिन्दुस्थान चतुरश्र'	=	'सहस्रदल कमल'

आचार्य लक्ष्मीधर 'श्रीचक्र' के भीतर भी ऐक्य प्रतिपादित करते हैं यथा—

(१) 'बिन्दुत्रिकोणयोरैक्यं'

(२) 'अष्टकोणाष्टदलाम्बुजयोः'

(३) 'दशारयुग्मषोडशदलाम्बुजयोः'

(४) 'चतुर्दशारभूपुरयोरैक्यम्'

(५) 'शिवशक्त्योः ऐक्यम्'

श्रीविद्योपासना में आन्तर पूजा एवं अद्वैतवाद—आचार्य लक्ष्मीधर ने इस बात पर बार-बार जोर दिया है कि समयमार्गी बाह्यपूजा में निष्ठा न रखकर केवल आन्तर पूजा में निष्ठा रखते हैं और इसीलिए **लक्ष्मीधर** कहते हैं—

'समयिनां सहस्रकमल पर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या। सहस्रकमले तु तिरस्करिणी-प्रसारणपर्यन्तं दर्शनमेव समाराधनम् ।'[१]

'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्वस्य सर्पया सहस्रदलकल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।।'[२]

(१) **'अहं' में अद्वैत**—प्रत्येक व्यक्ति की पहचान एवं उसकी स्वतंत्र सत्ता का सूचक शब्द है 'मैं' (अहं)। प्रत्येक व्यक्ति 'अहं' शब्द द्वारा, (संसार के प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक पदार्थ एवं प्रत्येक सत्ता से पृथक) अपनी अकेली, सर्व-पृथक एवं स्वतंत्र सत्ता के रूप में प्रत्यभिज्ञा करता है। 'पर' से पृथक अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध ही 'स्व' या 'अहं' का बोध है। 'श्रीविद्या' इस 'मैं' (अहं) को भी अपूर्ण मानती है और यह सिद्धान्त प्रतिपादित करती है कि आदर्श एवं तात्विक 'अहं' तो 'अ' एवं 'ह' (शिव एवं शक्ति) की अद्वैतस्थिति है—

'अहकारौशिवशक्ती शून्याकारौ परस्परा शिलष्टौ ।' (४१)

यह 'अहं' शिव-शिक्त का सामरस्यात्मक स्वरूप वाला ब्रह्म है—

'स्फुरणप्रकाशरूपावुपनिषदुक्तं परं ब्रह्म ।।' (६९)

(२) **'बिन्दु' शिवशक्ति का अद्वैत भाव है**[२]—सिसृक्षु ब्रह्म 'शक्ति' को देखता हुआ 'बिन्दु' का रूप धारण करता है और उस बिन्दु में रक्त बिन्दु (शक्ति) प्रवेश करता है। यही द्वयात्मक अद्वय वाला बिन्दु सृष्टि का आदि कारण बनता है—

'विश्वसिसृक्षावशतः स्वार्धां शक्तिं विलोकद् ब्रह्म ।
बिन्दूभवति तमिन्दुं प्रविशति शक्तिस्तु रक्त बिन्दुतया ।'

---

१. लक्ष्मीधरा
२. वरिवस्यारहस्यम् (२१।७०)

(३) **'विद्या' का शब्द एवं अर्थ के साथ अद्वैतभाव है।** इसी अद्वैतभाव के कारण जगत अहन्ताभय है।

'वागार्थसृष्टिबीजं तेनाहंतामयं विश्वम् ।।'

(४) **देवी, मन्त्र एवं जगत में अद्वैत हैं**[१]—

'तेनाम्बामनु जगतामभेद एवात्र भावार्थः ।'[२]

(५) **श्रीविद्या का पञ्चभूतों एवं पञ्चतन्मात्राओं के साथ अद्वैत है**—'श्रीविद्या' पञ्चभूतों एवं पञ्चतन्मात्राओं के साथ अभेदात्क सम्बंध रखने के कारण अद्वैतभावापन्न है। इस दृष्टि को ही 'श्रीविद्या' का **'संप्रदायार्थ'** भी कहते हैं—

'व्योमादि जनक ह क र लार्णौर्घटनेन पञ्चभूतमयी ।
पञ्चचतुस्त्रिद्वयेकगशब्दादि गुणात्मपञ्चदश वर्णा ।।'[३]

(६) **ककार एवं उपासकत्रय में अभेद है**—

'ककारत्रयवाच्यास्तु सकला प्रलयाकलाः ।
विज्ञानकेवलाश्चेति त्रिप्रकारा उपासकाः ।।' (७७)

(७) **श्री विद्या के १० 'अकार' एवं 'ए' का का जीव के साथ अभेद**—

'अकारैर्दशसंख्या कैरुच्यन्ते जीवराशयः ।
विद्यायाः प्राणाभूतः संस्तद्वाच्येका दशः स्वरः ।।'[४]

(८) **श्रीविद्यागत बिन्दुत्रय रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव से अभेद**—

'बिन्दुभिस्त्रिभिरुच्यन्ते रुद्रेश्वर सदाशिवाः ।'[५]

(९) **श्रीविद्या गत नादय** (अर्धचन्द्र) का शान्ति-शक्ति-शंभु के साथ अभेद या **अद्वैतभाव (तादात्मय)**—

'शान्तिः शक्तिच शंभुश्च नादत्रितयबोधनाः ।।[६]

(१०) **'महाविद्या' का छत्तीस तत्त्वों के साथ अभेद**—

'एवं सप्तत्रिंशत्संख्याकपदैर्महाविद्या ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वानां तत्त्वातीतस्य चाभिधात्रीयम् ।।[७]

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (२।७३)
२. वरिवस्यारहस्यम् (७३)
३. वरिवस्याहरस्यम् (७४)
४. वरिवस्यारहस्यम्-(७८)
५. तत्रैव (७९)
६. तत्रैव (७९)
७. तत्रैव (८०)

(११) **विद्या एवं जगत में अभेद है**—यथा जनक एवं जात (जन्य), कारण एवं कार्य में अभेद है, उसी प्रकार ब्रह्म एवं जगत तथा जगत एवं विद्या में भी कोई भेद नहीं है। इसे ही **'संप्रदायार्थ'** भी कहते हैं।[1]

'जन्यजनकयोर्भेदाभावाद् वाच्यस्य वाचकेनापि।
ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु **संप्रदायार्थः** ॥' (८१)

(१२) परमशिव एवं अन्य पदार्थों में, परशिव एवं दीक्षा गुरु तथा परमशिव एवं अपने में भी अभेद है।

यह अभेद दर्शन ही श्रीविद्या का **'निगमार्थ'** कहलाता है—

'परमशिवे निष्कलता तदभिन्नत्वं स्वदेशिकेन्द्रस्य।
तत्करुणातः स्वस्मिन्नपि तदभेदो निगमार्थः ॥' (८२)

(१३) देवी और गणेश में अभेद है। —वरि० (८३)

(१४) देवी और ग्रह में अभेद है। —वरि० (८४)

(१५) देवी और नक्षत्र में अभेद है। —वरि० (८५)

(१६) देवी और योगिनियों में अभेद है। —वरि० (८६)

(१७) देवी और राशि में अभेद है। —वरि० (८७)

(१८) 'श्रीविद्या' और गणेश में अभेद है। —वरि० (८८)

(१९) 'श्रीविद्या' और ग्रहों में अभेद है। —वरि० (८९)

(२०) 'श्रीविद्या' और नक्षत्रों में भी अभेद है। —वरि० (९३)

'विद्यान्तर्भूतशक्त्याद्यैः शाक्तैः षड्भिरक्षाक्षरैः।
योगिनीत्त्वं च विद्याया **राशित्वं** चान्त्यवर्जितैः ॥'

(२१) 'श्रीविद्या' और योगिनी और राशिरूपिणी है।—वरि० (९४) (९०)

(२२) 'श्रीविद्या' और देवी में अभेद है। —वरि० (९१)

(२३) 'श्रीविद्या' और गणेश, ग्रह, नक्षत्र योगिनी एवं राशि के साथ अभेद है। —वरि० (९१)

(२४) 'श्रीचक्र' और नक्षत्र में भी अभेद है। —वरि० (९३)

(२५) 'श्रीचक्र' और 'योगिनी' में अभेद है। —वरि० (९४)

(२६) 'श्रीचक्र' और 'राशि' में अभेद है। —वरि० (९५)

---

[1] वरिवस्यारहस्यम् (८१)

---

(२७) 'श्रीचक्र' और 'विद्या' में अभेद है। —वरि० (९६)

(२८) मातृका के वर्ण (श्रीविद्या) और पीठ में अभेद हैं। —वरि० (९७)

(२९) ककारत्रय एवं ईकार तथा बिन्दु में अभेद है। —वरि० (९९)

(३०) हल्लेखाओं एवं सर्वसिद्धि तथा सर्वरोगहरचक्र में अभेद है।[1]

(३१) दो हकार एवं एका तथा सर्वरक्षाकर, सर्वार्थसाधक एवं सर्वसौभाग्यदायक चक्र में अभेद है।[2]

(३२) दो सकार एवं सर्वसंक्षोभण-सर्वाशापरिपूरक में अभेद है।

(३३) लकार एवं चतुरस्र (त्रैलोक्यमोहन) में अभेद है।

(३४) **'गुरु' और देवता-विद्या-चक्र में अभेद है**—

'एतत्त्रितयाभिन्नः स्वगुरुस्तदभेदभावनादार्ढ्यात्।'

(३५) **'शिष्य' और देवता-विद्या-चक्र में अभेद है**[3]—

'देव्या देहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च।
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सन् प्रकाशते॥'

(३६) **देवी, श्रीविद्या, श्रीचक्र, स्वगुरु एवं शिष्य में अभेद है**—

'इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति।
पञ्चानामपिभेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोयम्॥'[4]

इसे ही श्रीविद्या का 'कौलिकार्थ' भी कहा जाता है।

(३७) **कुण्डलिनी और विद्या तथा देवी में अभेद है।** इस अभेद-दर्शन को ही 'रहस्यार्थ' भी कहते हैं—

'साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः ॥' (१०७)

(३८) **अपने एवं ब्रह्म में भी अभेद है।** इस अभेद-दर्शन को श्रीविद्या का 'महातत्त्वार्थ' कहा गया है—

'ब्रह्मणि परे नियोज्य स्वात्मातदभेद संप्राप्त्यै।
एष महातत्वार्थः श्रीविद्यायाः शिवेनोक्तः ॥' (१०८)

(३९) **श्रीविद्या और उसके घटक अक्षरों में अभेद है।** इस अभेद-दर्शन को ही 'नामार्थ' एवं 'शब्दरूपार्थ' कहते हैं।

---

[1] वरि० (९९)
[2] वरि० (९९)
[3] वरि० (१०१)
[4] वरि० (१०२)

(४०) देवी के ३०० नाम एवं 'श्रीविद्या' के अक्षरों में अभेद है।

(४१) भगवती के नाम के एकदेशांश एवं सामग्र नाम में भी अभेद है। समस्त नाम का अर्थ नाम के एक-एक अंश का अर्थ है।

(४२) 'श्रीमंत्र' के 'वाक्कूट', 'कामराजकूट' एवं 'शक्तिकूट' का भगवती के (क) किरीट से कण्ठ (ख) कण्ठ से कटि एवं (ग) कटि से पादाग्र तक शरीर के तीन भागों में एकता है।

कूटत्रय' एवं देवी के शरीर में अभेद है—

> 'श्रीमद्वग्भवकूटैकस्वरूप मुखपङ्कजा।
> कण्ठाधः कटिपर्यन्त मध्य कूट स्वरूपिणी।
> शक्तिकूटैकतापन्नः कट्यधोभागधारिणी।
> मूलमन्त्रात्मिका मूल कूटत्रयकलेवरा॥'

(४३) प्रथम कूट के ६ वर्ग एवं ब्रह्माभारती, विष्णु-लक्ष्मी एवं रुद्र-पार्वती में अभेद है।

(४४) **'श्रीविद्या'** के ईकार एवं ६ देवताओं में अभेद है। 'प्रथम कूट' के (क् +अ, ए, ई, ल् + अ = ६ वर्ण = १ ब्रह्मा-भारती, २ विष्णु-लक्ष्मी (३) रुद्र-पार्वती = तीन त्रिक॥ ६ वर्ण + ३ देवदम्पति त्रिक में भी अभेद है।

(४५) प्रत्येक अक्षर एवं शक्ति में अभेद है।

(४६) अक्षरों एवं नाम इच्छादि शक्तियों में भी अभेद है। यह अभेद दर्शन ही **'शाक्तार्थ'** है—

> 'वामेच्छादिक शक्तिमयत्वोक्तेरेष शाक्तार्थः॥'[1]

१. ३ ककार + २ हकार = 'शैवभाग'
२. शेष अक्षर शक्ति अक्षर हैं।
३. 'ह्री' उभयात्मक है।

> 'कत्रयं हृद्वयं चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः।
> शेषाणि शक्त्यक्षराणि ह्रींकार उभयात्मकः॥'[2]

(४७) 'ह्रीं' में शिव-शक्ति अभेद है—सामरस्य है —वरि० (११९)

(४८) 'श्रीविद्या' के कूटत्रय के साथ मूलार्थ का अभेद है। —वरि० (१२०) यह विद्या का 'सामरस्यार्थ' है।

'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों ही'—यही श्री विद्या 'सामरस्यार्थ' है।

---

[1] वरिवस्याहरस्यम् (१०७)

[2] वरिवस्याहरस्यम् (११८)

> 'ब्रह्मैव शिवः शक्तिश्चेति प्रत्येककूटार्थः।
> शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामस्यार्थः॥'—वरि० (१२०)

कूटत्रय का अर्थ

(१)

'वाग्भवकूट'

(सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति) (ऋग्वेदात्मक) 'क ए ई ल ह्रीं' 'विधिहरिगिरि शैरीऽयं ब्रह्मेति **प्रथमकूटार्थः॥** (२।१३६)

(२)

कामराजकूट

(शौर्य, धन, स्त्री एवं कीर्ति का आधिक्य) (यजुर्वेदात्मक) 'ह स क ह ल ह्रीं' 'ह स क' = हँसता हुआ मुख। 'हस' = आनन्द, 'क' = सूर्य, 'ह' = चन्द्रमा।

द्वितीय कूट का अर्थ

'ब्रह्म अति असीम आनन्द स्वरूप एवं चिद्रूप है।'

'तेनात्यमितानन्दं चिद्ब्रह्मेति **द्वितीय कूटार्थः।'** (१।१३८)

(३)

शक्तिकूट

क्रिया विफरिणाम। 'ह' = समस्त जगत की संहत्री (सामवेदात्मक) 'स क ल ह्रीं'।

तृतीय कूट का अर्थ

'समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म स क ल है।' यही विद्या का **'सगुणार्थ'** है। 'यह सब ब्रह्म है।'

(स क ल का अर्थ)

'जीव एवं ब्रह्म में ऐक्य है।' यह 'महावाक्यार्थ' है। सकल कलाभिः सहितं सकलं ब्रह्म तु **तृतीय-कूटार्थः।'** (२।१४०)

तृतीय कूट का अर्थ—ब्रह्म-जीव में तादाम्य। 'स क ल' = जीव का वाचक है। जीव की भी ३ अवस्थायें हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। शक्ति बीज 'ह्रीं' है। 'ह्रीं, ब्रह्म का वाचक है।

श्रीविद्या और उसकी उपासना—एक विहंगमावलोकन

'श्रीविद्या' वेदों की ब्रह्मविद्या है। श्रीविद्योपासना के मुख्य आकर ग्रथों में (१) परशुरामकल्पसूत्र, (२) प्रपञ्चसार तंत्र, (३) सौन्दर्यलहरी, (४) श्रीविद्यारत्नसूत्र, (५) सुभगोदय स्तुति, (६) योगिनीहृदय (नित्याहृदय, सुन्दरीहृदय), (७) तन्त्रराजतन्त्र (८) ललितास्तवरत्न (दुर्वासा), (९) त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र (दुर्वासा) आदि ग्रंथ हैं। 'श्रीविद्या' की दृष्टि से इन ग्रंथों की प्रधान भूमिका है। 'भावनोपनिषद' 'त्रिपुरोपनिषद्',

'त्रिपुरतापिन्युपनिषद' 'बह्वृचोपनिषद' 'देव्युपनिषद' आदि उपनिषद भी भगवती त्रिपुरा एवं **'श्रीविद्या'** पर पुष्कल प्रभाव डालते हैं। 'वामकेश्वरतंत्र' **'श्रीविद्या'** का प्रधान ग्रंथ है किन्तु यह **'कौलमार्ग'** से सम्बद्ध है। 'वामकेश्वरतन्त्र' के दो भाग हैं।

वामकेश्वर तन्त्र

(१) योगिनी हृदय (तीन पटल)
(२) वामकेश्वरी तन्त्र (पाँच पटल)

'श्रीविद्या' से सम्बद्ध शाक्तदर्शन की 'कौलशाखा' का प्रवर्तक (कौलमार्ग-प्रवर्तक) मत्स्येन्द्रनाथ को माना जाता है किन्तु कौलमार्गी इसे शिव-प्रवर्तित मानते हैं। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने 'तन्त्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'सकलकुलशास्त्रावतार-मच्छन्दविभु' कहा है।[१] इस 'कौलसम्प्रदाय' में नाथनामान्त अनेक आचार्य हुए हैं। यह भी कहा गया है कि 'कौलसम्प्रदाय' से ही 'सौभाग्यविद्या सम्प्रदाय' प्रवर्तित हुआ।

'श्रीविद्या-साधना' 'षोढ़ा-साधना' एवं 'त्रैपुर-साधना' आदि सभी साधनाओं में भगवती त्रिपुरसुन्दरी एवं चिन्मय, चिद्रूप शिव के साथ 'सामरस्य की साधना' ही मुख्यतः अभिप्रेत है। साधक अपनी प्राणाहुति को हव्य बनाकर त्रैपुर-साधना की प्राणाग्नि को पुष्ट से पुष्टतर करता है। 'परशुराम कल्पसूत्र' (श्री क्रमः २९) के एक सूत्र की व्याख्या करते हुए **वृत्तिकार रामेश्वर** कहते हैं कि जब साधक साधना की चरम भूमि में महात्रिपुरसुन्दरी एवं परमशिव के निमीलनोन्मीलन में अपनी प्राणाहुति समर्पित करता है तो अमृतत्त्व के निकट पहुँच जाता है। परशुराम अमृतत्त्व की इस आकांक्षा को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

'अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्त्राजय स्त्रावय स्वाहेति।''[२]

भगवती की पूजा—भगवती की **'पूजा'** ज्ञान एवं योग दोनों से होती है। भगवती त्रिपुर सुन्दरी की उपासना भक्ति-मार्ग से भी होती है। इसमें भगवती को जननी माना जाता है—

'सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननी मज्जगदिदम् ।'

[१] **भावनोपनिषदकार की दृष्टि**—'भावनोपनिषदकार' में भगवती की पूजा के यथार्थ स्वरूप का (आन्तर याग का) अत्युत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है—

---

१. तन्त्रालोक (प्र०अ० ७)
२. श्रीक्रम २९

(१) 'उपचार' = 'अस्ति नास्तीति कर्तव्यता उपचारः।'
(२) 'आवाहन' = 'बाह्याभ्यन्तःकरणानां रूपग्रहणयोग्यताऽस्तित्वत्यावहनम्।'
(३) 'आसन' = 'तस्य बाह्याभ्यन्तःकरणानामेकरूपविषय ग्रहणामासनम्।'
(४) 'पाद्य' = 'रक्तशुक्लपदैकीकरणं पाद्यम्।'
(५) 'अर्घ्य' = 'उज्ज्वलदामोदानन्दासनं दानमर्घ्यम्।'
(६) 'आचमनीय' = 'स्वच्छं स्वतः सिद्धमित्याचमनीयम्।'
(७) 'स्नान' = 'चिच्चन्द्रमयीसर्वाङ्गस्त्रवणं स्नानम्।'
(८) 'वस्त्र' = 'चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्फुरणं वस्त्रम्।'
(९) 'ब्रह्मसूत्र' = 'प्रत्येकं सप्तविंशतिधा भिन्नत्वेनेच्छाज्ञानक्रियाऽऽत्मकब्रह्मग्रन्थि-मद्रसतन्तुब्रह्मनाडी ब्रह्मसूत्रम्।'
(१०) 'विभूषण' = 'स्वव्यतिरिक्तवस्तुसङ्गरहितस्मरणं विभूषणम्।'
(११) 'गन्ध' = 'स्वच्छस्वपरिपूरणानुस्मरणं गन्धः।'
(१२) 'कुसुम' = 'समस्तविषयाणां मनसः स्थैर्यणानुसंधानं कुसुमम्।'
(१३) 'धूप' = 'तेषामेव सर्वदा स्वीकरणं धूपः।'
(१४) 'दीप' = 'पवनावच्छिन्नोर्ध्वज्वलनसच्चिद्‌दुल्काऽऽकाशदेहो दीपः।'
(१५) 'नैवेद्य' = 'समस्त यातायात वर्ज्यं नैवेद्यम्।'
(१६) 'ताम्बूल' = 'अवस्थात्रयैकीकरणं ताम्बूलम्।'
(१७) 'प्रादक्षिण्य' = 'मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूल पर्यन्तं गतागतरूपेण प्रादक्षिण्यम्।'
(१८) 'नमस्कार' = 'तुर्यावस्था नमस्कारः।'
(१९) 'होम' = 'सत्वमस्ति कर्तव्यमकर्तव्यमौदासीन्यनित्यात्मविलापनं होमः।'
(२०) 'ध्यान' = 'स्वयं तत्पादुकानिमज्जनं परिपूर्णध्यानम् ।' —भावनोपनिषद।
(२१) 'देवता' = 'स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।'[१]

[२] **समयाचारानुयायी तांत्रिक आचार्य शंकर की दृष्टि**—आचार्य शंकर ने भवगती की पूजा के आदर्श स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

---

१. एतन्तु पूजयेद्देवी कौलिकं सिद्धिमिच्छता ॥२४॥
अर्चयेन्मानसैः पुष्पैः सुगन्धैर्धपदीपितैः ।
'अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयेन्द्रियनिग्रहम् ।
तृतीयन्तु दया पुष्पं भावपुष्पश्चतुर्थकम् ॥२५॥
पञ्चमन्तु क्षमापुष्पं षष्ठं क्रोधविनिर्जितम् ।
सप्तमं ध्यानपुष्पन्तु ज्ञानपुष्पन्तु अष्टमम् ॥२६॥
एतत् पुष्पविधिं ज्ञात्वा अर्चयेल्लिङ्गमानज्ञम् ।'—कौलज्ञाननिर्णय

'जपो जल्पशिल्पं सकलमपि मुद्रा-विरचनां,
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामःस्संवेशस्सुखमखिलमात्मापणदृशा,
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥'

अर्थात् यथार्थ पूजा की उच्चतम स्थिति में 'जल्प' ही मन्त्रजप बन जाता है, सारी क्रियायें ही 'मुद्रा' बन जाती हैं, अपना चलना फिरना ही भगवान की प्रदक्षिणा बन जाता है, अपना खाना-पीना ही 'आहुति' बन जाता है, अपना सोना ही 'प्रणाम' बन जाता है, समस्त सुखोपभोगों में आत्मसमर्पण की दृष्टि और इस प्रकार सारा विलास तुम्हारी पूजा बन जाय।

पूजा का स्वरूप है क्या?

[३] **विज्ञानभैरवकार की दृष्टि**—'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि पुष्प आदि बाह्य वस्तुओं को भगवान को समर्पित करके साधक जो अपनी प्रेम-दृष्टि को दृढ़ता प्रदान करता है वह पूजा नहीं है। वस्तुतः पूजा तो निर्विकल्प पर व्योम (परचिदाकाश) में बोध भैरव के प्रति दृढास्था है—उसमें लय है—

'पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मतिः क्रियते दृढ़ा ।
निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः ॥'

(२२) (क) 'ध्यान' = 'ध्यानं हि निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया ।
न तु ध्यानं शरीराक्षिमुख हस्तादिकल्पना ॥'

(२३) (ख) 'होम' = 'महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम् ।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतनास्रुचा ॥'

(२४) (ग) 'याग' = 'यागोऽत्रपरमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा ।
क्षपणात् सर्वपापानां त्राणात् सर्वस्य पार्वति ॥'[१]

[४] **ललिता सहस्रनाम में प्रतिपादित दृष्टि—**

भगवती की पूजा का सामान्य स्वरूप—'ललिता सहस्रनाम' नामक ग्रंथ में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का संक्षिप्त पूजन-विधान इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

(१) पूजाधिकार एवं पूजा करने का अधिकारी—भगवती की पूजा करने का अधिकारी कौन है? किसे इसका ज्ञान प्रदान किया जाय एवं किसे नहीं?

---

[१] विज्ञान भैरव

आचार्य हयग्रीव ने ऋषि अगस्त्य से कहा—

(१) 'ब्रूयाच्छिष्याय भक्ताय रहस्यमपि देशिकः ।
भवता न प्रदेयं स्यादभक्ताय कदाचन ॥'

(२) 'न शठाय न दुष्टाय नाविश्वासाय कर्हिचित् ।
श्रीमातृभक्तियुक्ताय, श्रीविद्याराजवेदिने ॥'

(३) 'उपासकाय शुद्धाय, देयं नाम सहस्रकम् ।
यानि नाम सहस्राणि, सद्यः सिद्धिप्रदानि वै ॥'

पूजा-विधि—(१) प्रातः स्नान-क्रिया, (२) सन्ध्या-कर्म, (३) पूजागृह में प्रवेश, (४) चक्रराज की पूजा।

'प्रातःस्नात्वा विधानेन, सन्ध्याकर्म समाप्य च ।
पूजागृहं ततो गत्वा, चक्रराजं समर्चयेत् ॥' (फलश्रुति)

चक्रराज की पूजा—(बेल के पत्तों, कमल या तुलसी पुष्प से चक्रराज की पूजा करनी चाहिए।)

'बिल्वपत्रैश्चक्रराजे, योऽर्चयेल्ललिताऽम्बिकाम् ।
पद्मैर्वातुलसीपुष्पैरभिर्नाम सहस्रकैः ।
सद्यः प्रसादं कुरुते, तत्र सिंहासनेश्वरी ।'
विद्यां जपेत् सहस्रं वा, त्रिशतं शतमेव वा ।
रहस्यनाम साहस्रमिदं पश्चात् पठेन्नरः ॥

प्रारम्भ में चक्रराज की पूजा क्यों की जाय?—हयग्रीव कहते हैं कि श्रीचक्र भगवती के रहने का घर है—

'श्री चक्रराजनिलया श्री मत् त्रिपुरसुन्दरी ।
श्री शिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताऽम्बिका ॥'

चूँकि जो व्यक्ति जहाँ रहता है उसकी वहीं पूजा की जाती है अतः चूँकि भगवती चक्रराज में रहती हैं अतः चक्रराज में ही उनकी पूजा करनी चाहिए।

प्रथम सोपान—चक्राधिराज की अभ्यर्चना ।

द्वितीय सोपान—पञ्चदशाक्षरी विद्या का जप ।

तृतीय सोपान—ललिता सहस्रनाम का पाठ ।

'चक्राधिराजमभ्यर्च्य, जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्,
जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्रकम् ॥'

यदि कोई व्यक्ति 'पञ्चदशाक्षरी मंत्र' का जप करने एवं 'श्रीचक्र' की पूजा करने में भी असमर्थ हो तो उसे 'ललितासहस्रनाम' मात्र का पाठ कर लेना चाहिए।

ललितासहस्रनाम के पाठ का नियम—

'इदं नाम सहस्रं तु, कीर्तयेन्नित्यकर्मवत्।
चक्रराजार्चनं देव्या, जपो नाम्नां च कीर्तनम्।'
भक्तस्य कृत्यमेतावदन्यदभ्युदयं विदुः।
भक्तस्यावश्यकमिदं नाम साहस्रकीर्तनम्।
'जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नाम सहस्रकम्।'

क्रम एवं नियम—

श्री चक्रे मां समभ्यर्च्य, जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्
पश्चान्नाम सहस्रं मे, कीर्तयेन्मम तुष्टये।
मामर्चयतु वा मा वा, विद्यां जपतु वा न वा।
कीर्तयेन्नाम साहस्रमिदं मत् प्रीतये सदा।

फल—

'मतप्रीत्या सकलान् कामांल्लभते नाम संशयः।
तस्मान्नाम साहस्रं मे कीर्तयध्वं सदाऽदरात्॥'

भगवती की पूजा के विशिष्ट दिन एवं विशिष्ट अवसर

आचार्य हयग्रीव ने ऋषि अगस्त्य से कहा—

नित्यं सङ्कीर्तनाशक्त कीर्तयेत् पुण्यवासरे।
संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्म त्रितयेऽयने।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां सितायां शुक्रवासरे।
कीर्तयेन्नाम साहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः।
पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकां
पञ्चोपचोरैः सम्पूज्य पठेन्नाम सहस्रकम्॥
सर्वरोगाः प्रणश्यन्ति दीर्घायुष्यं च विन्दति।
अयमायुष्करो नाम प्रयोगः कल्पनोदितः॥
ज्वरार्तं शिरसि स्पृष्ट्वा पठेन्नाम सहस्रकम्।
तत् क्षणात् प्रशमं याति शिरस्तोदोज्वरोऽपि च॥
सर्वव्याधिनिवृत्यर्थं स्पृष्ट्वा भस्म जपेदिदम्।
तद भस्म धारणादेव नश्यन्ति व्याधयो क्षणात्।

'सुधासागर मध्यस्थां ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम्।
यः पठेन्नामसाहस्रं विषं तस्य विनश्यति॥'

ललिता सहस्रनाम में प्रतिपादित दृष्टि क्या है?

समर्चन की विधि क्या है?

(१) समर्चयेत् सदा भक्त्या तस्य तुष्यति सुन्दरी।
(२) पद्मैर्वा तुलसीपुष्पैः कल्हारैर्वा कदम्बकैः।
चम्पकैर्जाति-कुसुमैर्मल्लिका करवीरकैः।
उत्पलैर्बिल्वपत्रैर्वा कुन्द केसर पाटलैः।
अन्यैः सुगन्धि-कुसुमैः केतकी-माधवीमुखैः।
तस्य पुण्यं फलं वक्तुं न शक्नोति महेश्वरः।

पूजा की तिथियाँ एवं दिन—

प्रतिमासं पौर्णमास्यामेभिर्नाम सहस्रकैः।
रात्रौ यश्चक्रराजस्थामर्चयेत् परदेवताम्।
स एव ललितारूपस्तद् रूपा ललिता स्वयम्।
न तयोर्विद्यते भेदो, भेदकृद पापकृद् भवेत्।
महानवभ्यां यो भक्तः श्रीदेवीं चक्रमध्यगाम्।
अर्चयेन्नामसाहस्रैस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता।

दिन—

यस्तु नाम साहस्रेणा, शुक्रवारे समर्चयेत्।
चक्रराजे महादेवीं तस्य पुण्य-फलं शृणु।
सर्वान् कामानवाप्येह सर्वसौभाग्यसंयुतः।
पुत्र-पौत्रादि-संयुक्तो भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्॥
अन्ते श्रीललितादेव्याः सायुज्यमति दुर्लभम्॥
धनार्थी धनमाप्नोति यशोऽर्थी चाप्नुयाद् यशः।
विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां, नाम सहस्रकीर्तनात्॥
नानेन सदृशं स्तोत्रं भोगमोक्षप्रदं मुने।
कीर्तनीयमिदं तस्माद् भोगमोक्षार्थिभिर्नरैः॥[१]

[४] **योगिनीहृदयकारकी दृष्टि**—भगवती की पूजा के तीन रूप बताए गए हैं— (१) 'परापूजा', (२) 'अपरापूजा', (३) 'परापरापूजा'।

---

[१] ललितासहस्रनाम।

(१) 'तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरि तृतीया च परापरा।'

(१)
परा पूजा

(२)
अपरा पूजा

(३)
एवं ज्ञानमयेदेवि !

(१) 'प्रथमाद्वैत भावस्था सर्वप्रसरगोचरा।'
(२) द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।'
(३) 'उत्तमा सा परा ज्ञेया'
(४) 'चिल्लयलक्षणाद्वैतप्रथा **परापूजे**त्यर्थः।—अमृतानन्द

अपरापूजा—'चतुरस्रादिबैन्दवान्तश्री चक्रसदनावरणदेवतार्चनमपरा पूजेत्यर्थः।'

* भगवती की उपासना : विरोधाभास *

कतिपय ध्यातव्य बिन्दु—दृष्टि-भेद—'परशुरामकल्पसूत्र' (वाराही क्रम २३) में आचार्य परशुराम भगवती की उपासना में 'षोडशोपचारों' का महत्व स्वीकार करते हैं किन्तु लक्ष्मीधर नहीं।

(क) परशुराम कहते हैं—

(१) 'पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानवासोगन्धपुष्पधूपदीपनीराजनाछत्रचामरदर्पणरक्षाचमनीयनैवेद्यपानीयताम्बूलाख्यषोडशोपचारक्लृप्त्यन्ते।' —(प०क०सू० २३)

(२) 'कवच'—'कवचमन्त्रेण इन्धनैराच्छाद्य' —(होम० १०)

(३) 'आहुति'—'कर्मसिद्ध्यर्थमेतावदाहुतीः करिष्यामिति।'—(होमविधिः २३)
'अथ प्रधानदेवतायै दशाहुतीर्जुहुयात्॥' (होम० २२)

(४) 'पञ्चोपचार'—'देवतामवाह्यपञ्चोपचारैरूपचर्य' —(होम०२०)

(५) 'बलि'—'बलिं प्रदायं' (होमविधिः २५)

(६) 'प्रदक्षिणा' 'नमस्कार' 'जप' 'स्तोत्र'
'प्रदक्षिणनमस्कारजपस्तात्रैः सन्तोष्य' (२०) (ललितानवावरणपूजा क्रमः)

(७) गन्ध-पुष्प-अक्षत-दीपदान आदि—
'गन्धपुष्पाक्षतादींश्च दक्षिणभागे दीपानभितो दत्वा..........।' —(प०क०सू० श्रीक्रम ११)

(८) प्राणायाम—'त्रिः प्राणानायम्य' —(श्रीक्रम १३)

(ख) लक्ष्मीधर की दृष्टि—यह भी ध्यातव्य है कि 'समयाचार' सम्प्रदाय में उन्हीं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा में (जिसमें कौलमत में पञ्चोपचार एवं षोडशोपचार आदि की अनिवार्यता की गई है) पञ्चोपचार, षोडशोपचार आदि सारे बाह्य पूजा विधानों को अस्वीकार किया गया है—

(१) 'समयिमते बाह्याराधनं दूरत एव निरस्तम्। षोडशोपचाररूपपूजाङ्गकलापश्च ततोऽपि दूरत एव।। (४१)

तेषां षट्चक्रपूजा न नियता, अपितु सहस्रकमल एवं पूजा।' 'श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति।।' (३२) 'समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं आन्तर पूजा कर्तव्या।। (४१)

(२) 'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव।

'हृदयकमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम्।'[१]

भगवती श्रीविद्या की उपासना के अङ्ग

श्रीविद्या के अन्तरङ्ग एवं बाह्याङ्ग का तुलनात्मक महत्व—आन्तरिक अङ्ग दुर्लभ हैं। ये अन्तर्मुखी साधकों के द्वारा गृहीत हैं। इनकी संतुष्टि ही 'वरिवस्यारहस्यम्' का भी मूल उद्देश्य है—

'दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदाद्रित्यम्॥'
'तोषायैषा तेषामतः प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या॥'

पूजा में बाह्याडम्बरों का स्थान—'श्रीविद्या-साधना' में बाह्याडम्बरों, प्रदर्शनों या औपचारिकताओं के लिए कोई स्थान नहीं है—

बाह्याडम्बरात्मक उपासना 'प्राणहीन शरीर' या 'सूत्रहीन पुतली' की भाँति व्यर्थ है—

'एतामुत्सृज्य जडैः क्रियमाणा बाह्यडम्बरोपास्तिः।
प्राणविहीनेव तनुर्विगलितसूत्रेव पुत्तलिका॥'

इसीलिए **'सनत्कुमार संहिता'** में कहा गया है—

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
साक्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्॥
बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।
आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषुलोकेषु सर्वदा॥'

---

[१] लक्ष्मीधरा (३३) —(सौन्दर्यलहरी की टीका)—आचार्य लक्ष्मीधर

आचार्य लक्ष्मीधर भी कहते हैं—

'श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्य ते ।'[१]

लक्ष्मीधर कहते हैं—'एतं ऋषिं मन्मथं विदित्वा नगरं श्रीचक्रात्मकं न प्रविशेत् ऋषिज्ञानपूर्वकं श्रीचक्रात्मकं नगरं न पूजयेत् । बाह्यपूजां न कुर्यादिति निषेधविधिः। बाह्यपूजायामेव ऋषिच्छन्दः प्रभृतिज्ञानर्वूकत्वम् । आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायां ऋष्यादि ज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव।'

भगवती की श्रीचक्रस्थ पूजा कैसे की जाय?

'त्रिपुरतापिन्युपनिषद' में कहा गया है—

'क्षीरेण स्नापिते देवि चन्दनेन विलेपिते ।
बिल्वपत्रार्चिते देवि ! दुर्गेऽहं शरणं गतः ।।'

यह पूजा करके फिर 'माया लक्ष्मीमंत्र' से पूजन करना चाहिए—'एतैमन्त्रैर्भगवतीं यजेत् । ततो देवी प्रीता भवति स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतैमन्त्रैर्यजति स ब्रह्मपश्यति-सर्व पश्यति सोऽमृतत्वं च गच्छति।[३]

भगवती का ध्यान—'त्रिपुरतापिन्युपनिषद् ' में भगवती की ध्यान प्रक्रिया इस तरह निरूपित की गई है। उन 'कामाख्या' तुरीयरूपा तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपपीठदेवतापरिवृता, सकलकलाव्यापिनी, सामोदा, सपरागा, सहृदया, सामृता, सदोदिता, सकला, सेन्द्रिया, पराविद्यात्मिका, त्रिकूटा, त्रिपुरा, परमामाया, परा वैष्णवी, भगवती को हृदयकमलकर्णिका में समासीन करके उनका ध्यान करना चचाहिए। वे महावश्यकरी, मदनोन्मादनकारिणी, धनुर्वाणधारिणी, चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनी, चन्द्रकला, सप्तदशी, महानित्या, सर्वलक्ष्मीमयी, निरञ्जन, त्रिकूटा, स्मितमुखी, सुन्दरी, महामाया, सर्वसुभगा, चित्कला, महात्रिपुरा, पराभैरवी एवं महाकुंण्डलिनी के स्वरूप में स्थित हैं। अतः 'परांभैवरीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं' 'हृदयकलकर्णिकायां'' 'ध्यानयोगेन ध्यायेत् ।।[४]

गुरु-पूजन और गुरु-महत्व—अन्य रहस्य-विद्याओं की भाँति श्रीसम्प्रदाय में भी गुरु को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। श्रीसम्प्रदायानुसार गुरु का निवास **'अकथ चक्र'** में है। इसीलिए **भास्करराय** वहीं गुरु की वन्दना करते हुए कहते हैं—

'अकथासनं हलक्षान्तरं समासाद्य मामकं ज्ञानम् ।
मामकमेवानन्दं मह्यं ददतो जयन्ति गुरुचरणाः ।।'[५]

---

१. लक्ष्मीधरा (३२)
२. लक्ष्मीधरा (३२)
३. त्रिपुरतापिन्युपनिषद्
४. त्रिपुरतापिन्युपनिषद् (१/३९)
५. वरिवस्यारहस्यम् (२/१६६)

'श्री गुरोः सदनम्' (५६) सूत्र के रूप में प्रस्तुत 'श्रीगुरुः परमकारणभूता शक्तिः' सूत्र द्वारा **भावनोपनिषदकार** ने तथा **परशुरामकल्पसूत्रकार** ने 'एकगुरुपास्तिरसंशयः (१/२०) कहकर गुरु का सर्वातिशायी महत्व बताया है। 'ओघत्रयं (दिव्यौघ, 'सिद्धोघ' एवं 'मानवौघ') के रूप में भी गुरुत्रय की पूजा की अनिवार्यता स्थापित करके 'श्रीविद्यासम्प्रदाय' में गुरु को लोकोत्तर स्थान दिया गया है। तंत्रशास्त्र गुरु को देवत्रय का स्थान देता है और यह स्वीकार करता है कि—

'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।'

तांत्रिक जप—जप के तांत्रिक स्वरूप में—(१) ९ चक्रों, (२) ५ अवस्थाओं, (३) सप्तविषुवों, (४) ६ शून्यों आदि जपाङ्गों को विशिष्ट स्थान दिया गया है।

* चक्र नवक *

९ चक्रों में ९ शक्तियाँ स्थित हैं। वे शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'तत्राद्या त्रिपुरा देवी द्वितीया त्रिपुरेश्वरी ।
तृतीया च तथा प्रोक्ता देवी त्रिपुरसुन्दरी ।
चतुर्थी च महादेवी देवी त्रिपुरवासिनी ।
पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात् षष्ठी त्रिपुरमालिनी ।।
सप्तमी त्रिपुरासिद्धिरष्टमी त्रिपुराम्बिका ।
नवमी तु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी ।
पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते ।।[१]

'श्रीयंत्र' या 'श्रीचक्र' तो एक है किन्तु वह ९ चक्रों की समष्टि है। उनके नाम एवं उनका स्वरूप इस प्रकार है—

'अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत् ।
चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम् ।।'
'आदिमं भू त्रयेण स्याद्, द्वितीयं 'षोडशारकम् ।'
अन्यदष्टदलं प्रोक्तं मनुकोणमनन्तरम् ।।
पञ्चम दशकोणं स्यात् षष्ठं चापि दशारकम् ।
सप्तमं वसुकोणं स्यान्मध्यत्र्यस्त्रमथाष्टकम् ।
नवमं त्र्यस्त्रमध्यं स्यात् तेषां नामान्यतः शृणु ।।

९ चक्र

'त्रैलोक्यमोहनं चक्र' 'सर्वाशापरिपूरकम् ।
'सर्वसंक्षोभणं' गौरि 'सर्वसौभाग्यदायकम् ।।

---

१. योगिनीहृदय (मंत्र संकेत ९-१२)

'सर्वार्थसाधकं चक्रं' 'सर्वरक्षाकरं' परम्।
'सर्वरोगहरं' देवि! 'सर्वसिद्धिमयं' तथा।
'सर्वानन्दमयं' चापि नवमं शृणु सुन्दरी।
परिपूर्णं महाचक्रमजरामरकारकम्॥'[१]

* विस्तार-भय के कारण यहाँ जप के सारे अङ्गों को प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

* विषुव *

मन्त्र-जप के अङ्गों में एक अङ्ग 'विषुव' भी है। उसके सात भेद हैं।

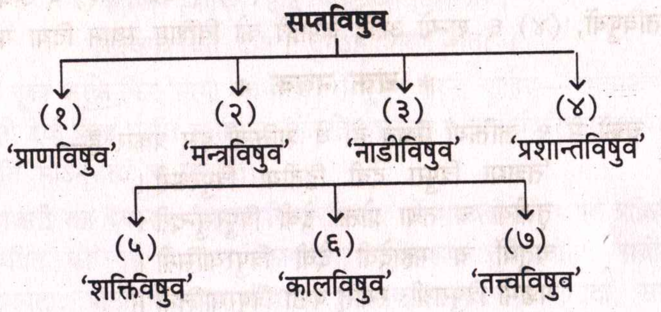

[१] **प्राणविषुव**—'उन्मनी' में रूप-रहित ६ महाशून्य की भावना करनी चाहिए।

(१) प्राण, (२) आत्मा, (३) मनस् के संयोग को 'प्राण विषुव' कहते हैं।

'प्राणात्ममानसानां संयोगः प्राणविषुवाख्यः॥' (४३)

[२] **मन्त्रविषुव**—प्रथम कूट के नाद एवं व्यष्टि-समष्टि के भेद से अनाहत से आरम्भ करे ब्रह्मरंध्र तक उत्पन्न होने वाले नाद एवं चारों बीज तथा आत्मा की नादमय विभावना को **'मन्त्रविषुव'** कहते हैं।

[३] **नाड़ीविषुव**—मूलाधारोत्थित नाद के उच्चारण से ब्रह्मरन्ध्र तक षट्चक्रों की द्वादश ग्रंथियों को सुषुम्ना के मार्ग से ही ग्रंथियों का भेदन करता हुआ नाड़ी-नाद एवं वर्णों के संयोग को **'नाड़िकाविषुव'** कहते हैं।

[४] **प्रशान्तविषुव**—(रेफ़ एवं कामकला (ई) तथा बिन्दु से आरम्भ करके 'ह्रीं' के नादान्त तक एक सूक्ष्मतर नाद उत्पन्न होता है।) इस सूक्ष्मनाद का शक्ति के साथ विलय **'प्रशान्तविषुव'** कहा जाता है।

[५] **'शक्तिविषुव'**—शक्ति के साथ लीन इस नाद की भावना 'समना' में लीन रूप में करनी चाहिए। इसे **'शक्तिविषुव'** कहते हैं।

---

[१] योगिनी हृदय (मंत्र संकेत)

[६] **कालविषुव**—उक्त नाद की भावना 'समना' एवं 'उन्मनी' में करने पर उसे **'कालविषुव'** कहा जाता है।

'समनागतमुन्मन्यामेते द्वे शक्तिकालविषुवाख्ये।'

[७] **तत्त्वविषुव**—ककार से उन्मना पर्यन्त एवं अकुल से उन्मना पर्यन्त प्रदेशों में स्थित श्रीविद्या कूटों के अवयवों को व्याप्त करते हुए समस्त ३१७ त्रुटियों एवं साढ़े तीन निमेषों को व्याप्त करता हुआ नाद 'तत्त्वज्ञान' का कारण होता है। शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति का मूल हेतु **'तत्त्वविषुव'** कहा जाता है।

भगवती की साधना की प्रक्रिया

भगवती की पूजा के तीन रूप हैं— (१) 'परापूजा', (२) 'परापूजा', (३) 'अपरापूजा'। 'दीक्षा' देवी उपासना की प्रारंभिक आवश्यकता है। पूजा के तीन स्तर हैं—

[१] **प्रथम प्रकार या स्तर**—प्रथमतः देवी का इस प्रकार का ध्यान करना पड़ता है कि वे महापद्मवन में शिव के अङ्क पर समासीन हैं। उनका विग्रह आनन्दमय है, सबका कारण है और आत्मा से अभिन्न है।

[२] **उपासना का द्वितीय प्रकार या स्तर**—इस सोपान पर भगवती के श्रीयंत्र की पूजा करनी होती है। यह बाह्ययागपरक है।

[३] **उपासना का तृतीय प्रकार या स्तर**—इसमें ज्ञानाप्ति के अतिरिक्त भगवती के साक्षात्कार का प्रयास किया जाता है। यही सामरस्य की साधना है। यही **'परापूजा'** है।

चक्रपूजा—'चक्रपूजा' भूर्जपत्र, रेशमी वसन, स्वर्णपत्र आदि पर नौ योनियों के मण्डल के मध्य एक योनि तथा योनि में बिन्दु बनाकर चक्र की पूजा की जाती है। पूरामण्डल 'श्रीचक्र' कहलाता है।

पूजा की दृष्टि से शाक्तों के तीन वर्ग हैं—

(१) 'कौल'— (क) पूर्व कौल, (ख) उत्तरकौला। (२) 'मिश्र' (३) 'समयी'।

'कौलमार्गी' प्रत्यक्ष नारी की पूजा करते हैं। **'कौल'** मदिरा, मांस, मत्स्य, मधुर (सुरा) मैथुन पञ्चमकारों को साधना का अङ्ग मानते हैं। 'समयी' कौलमार्गियों के बाह्ययाग एवं वामाचार से दूर रहते हैं।[१]

---

[१] भण्डारकर : वै०शै० और अन्य धार्मिकमत।

श्रीविद्या में मुक्ति का स्वरूप

श्रीविद्या की साधना से सर्वोच्च उपलब्धि के रूप में कौन-सी उपलब्धि समागत होती है? श्रीविद्या-साधना में सिद्धि प्राप्त होने से मुख्यतः निम्नाङ्कित फल या सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—

(१) भगवती के साथ 'सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति—
'परं सौभाग्यं यतदिह तव सायुज्यपदवी ।'[१]
(२) 'तदैक्यं षोढ़ा वा भवति चतुर्धेति च तथा ।'
(३) 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की सिद्धि।
(४) 'चक्रेश्वरत्व' या 'जीवन्मुक्ति' की प्राप्ति ।
(५) 'पूर्णाहन्ता' की प्राप्ति।
(६) शिव-शक्ति के साथ सामरस्याधिगम ।
(७) मणिद्वीप में भगवती के साथ एकीभूत होकर निवास ।

मुक्ति क्या है?

मणिद्वीप में निवास ही मुक्ति है।

(१) अतोमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः । (१०।४।१८)
(२) 'मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः ।' (९।२।१९)
(३) 'सर्वलोकमणिद्वीप वासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः । (९।४।१४)
'मणिद्वीप में निवास ही मुक्ति है।' सर्वलोकोमणिद्वीपम् (८।४।१)

'अद्वैतवाद' वेदान्त एवं शक्तिदर्शन दोनों का सिद्धान्त है। 'अभेदभावनाद् भेदनाशः' (७।४।२३) 'अतः परमार्थ ब्रह्म इदमग्र आसीत् ।' (१२।२।३३) 'न भेदो ब्रह्मात्मनो' (७।१।२२) 'नाभेदो ब्रह्मशक्त्योः' (७।४।१७) 'अद्वैतावस्थानरूपनिर्विकल्प-संपन्नो ब्रह्मीभूतः॥' (१०।४।१५)—शाक्तदर्शनम्।

* श्री चक्र *

५ शक्ति एवं ४ वह्नि (शिव) से निर्मित तेजस्त्रयात्मक होने से श्रीचक्र प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय रूप से पुरत्रयात्मक है।

श्री यन्त्र

ब्रह्माण्ड रूप
पिण्डाण्ड रूप

---

[१] गौड़पाद (सुभगोदय स्तुति)

प्रमातृपुर के चक्र	प्रमाणपुर के चक्र	प्रमेयपुर के चक्र
बिन्दु, त्रिकोण, अंष्टार अष्टदल (आग्नेयखण्ड) (प्रमातृपुर)	दशारद्वय, चतुरस्त्ररूप (सौरखण्ड)	चतुर्दशार, षोडशदल (चान्द्रखण्ड) (प्रमेयपुर)

श्री चक्रः 'श्री चक्रं शिवयोर्वपुः ॥'

* चक्र के पुर *

'पुरत्रयश्च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम् ।''

चक्रों के प्रकार

शक्ति चक्र	शिव चक्र
(अधोमुखी त्रिकोण) त्रिकोण, अष्टार अन्तर्दशार। बर्हिदशार, चतुर्दशार	(वह्नि चक्र) (ऊर्ध्वमुखी चक्र), बिन्दु। अष्टदल, षोडशदल। भूपुर (चतुरस्त्र)

चक्र—'चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्मण्डाकारमीश्वरि'

त्रिपुरसुन्दरी का चक्र ब्रह्माण्डाकार है।

भावनोपनिषद — 'नव चक्रमयो देहः।'

'त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् ।'

'श्रीयन्त्र' को (१) सृष्टि, (२) स्थित, (३) प्रलय के रूप में स्थित माना जाता है।

(क) 'बिन्दु चक्र' = प्रकृति स्वरूप
(ख) शेष ८ चक्र = प्रकृति-विकृति चक्र।
(ग) बिन्दु, त्रिकोण अष्टार = 'सृष्टि चक्र।'
(घ) दशाद्वय, चतुर्दशार = 'स्थिति चक्र'।
(ङ) अष्टदल, षोडशदल, भूपुर (चतुरस्त्र) = 'संहार चक्र'।
(सम्पूर्ण श्रीचक्र त्रितयात्मक है।)

(क) बिन्द्वादि भूपुरान्त चक्र = 'सृष्टि क्रम।'
(ख) भूपुरादि बिन्द्वन्त चक्र = 'संहार क्रम।'

लक्ष्मीधर की दृष्टि—चन्द्रमण्डल ही 'श्री चक्र' है—

'बाह्यास्थितमपि चन्द्रमण्डलं 'श्रीचक्रमेवेति ।' —(लक्ष्मीधरा) लक्ष्मीधर

योगी अमृतानन्द की दृष्टि—योगी अमृतानन्द 'श्रीचक्र' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

'श्री चक्रनाम नान्यत्किञ्चित् अपितु स्वसंविद्देवतायाः प्रसररूपान्तः करण-चतुष्टयाव्यक्तमहदहङ्कृतितन्मात्र दशेन्द्रिय तद्वृत्ति तद्विषयतत्पुर्यष्टकषोडशविकार धातु-प्रपञ्च एव श्रीचक्रात्मना स्फुरति।'

आचार्य भास्करराय की दृष्टि—आचार्य भास्कर राय 'श्रीचक्र' को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

'तेनैकदेवी नानाधर्मवैशिष्ट्येन भिन्ना सती रेखा त्रयात्मक शृंगाटकवपुषा त्रिकोण देहेन श्री चक्रे शोभत।'[१]

अर्थात् भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ही 'श्री चक्र' में त्रिकोण के रूप में अविस्थित रहा करती हैं।

योगिनीहृदयकार का मत—'योगिनी हृदय' में कहा गया है कि—

'चक्रं कामकला रूपं प्रसारपरमार्थतः।'

अर्थात् श्री चक्र का कामकलारूपत्व ही परमार्थ है **'बैन्दव चक्र'** तद्रूप ही है। श्रीचक्र कामकलाक्षर से ही प्रसृत हुआ है।

भास्कर राय कहते हैं—

'कामकलायाः सकाशात् सम्पूर्णास्य चक्रस्योत्पन्नत्वात्सर्वं चक्रं काकलारूपमेव।'

जो जिसका प्रसार होता है वह (प्रसार का कारक) ही उस प्रसृत पदार्थ का पारमार्थिक रूप होता है यथा घट का मृतिका, पट का तन्तु उसी प्रकार श्रीचक्र का पारमार्थिक स्वरूप 'कामकला' है।[२]

'यो यत्प्रसरः स तदीय पारमार्थिकं स्वरूप यथा।
घटो मृत्प्रसरस्तस्य पारमार्थिकं स्वरूप मृदेव।
'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।।'

कामकलाविलासकार का मत

आचार्य पुण्यानन्द कहते हैं कि—

(१) **'कामकला विद्या'** चक्रक्रमात्मिका है।

(२) जो इस रहस्य को जानता है वह महात्रिपुर सुन्दरी के स्वरूप वाला हो जाता है—

---

१. (सेतुबन्ध)
२. (योगिनीहृदयदीपिक/सेतुबन्ध)
३. (सेतुबन्ध)

'इति कामकला विद्यादेवी चक्रक्रमात्मिका सेयम्।' विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरी रूपा।'[१]

'श्री चक्र' चिदानन्दघन है—

योगिनीहृदयकार का मत—योगिनीहृदय में कहा गया है कि यह नवयोन्यात्मक, नवात्मक, नवधाभिन्नमन्त्रक श्री चक्र चिदानन्दघन है—

'नयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्।।'[२]

* श्री चक्र की त्रिधा स्थिति *

(श्री चक्र के तीन भेद)

(१)	(२)	(३)
'सकल'	'सकलनिष्कल'	'निष्कल'
(आज्ञान्तकुलाद्याज्ञापर्यन्तं चतुरस्रादि त्रिकोणान्तं चक्राष्टकं स्थूलं भावयेत्। तद्भावनं 'सकलम्'	(ततो बिन्दुमास्योन्मन्यन्तं सूक्ष्मसूक्ष्मतरचक्रभागान् भावयेत्। तद्भावनं 'सकल निष्कलम्।	परे स्थाने महाबिन्दौ शुद्ध शून्य संविदं भावयेत्। तद्भावनं 'निष्कलम्'।
—(अमृतानन्द)	—(अमृतानन्द)	—(अमृतानन्द)

—योगिनीहृदयदीपिका—अमृतानन्द

गौड़पादाचार्य की दृष्टि में श्रीचक्र का स्वरूप—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि भगवती त्रिखण्डात्मक ९ चक्रों के अतिरिक्त षट्चक्रों में सदन के भी निवास करती हैं—

'त्रिखण्डं चक्रं शुचि रविशशाङ्कात्मकतया,
मयूरवैः षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्डकलितैः।
पृथिव्यादौ तत्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृतं,
भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्र-सदनम्।।'[३]

---

१. कामकला विलास
२. योगिनीहृदय (च० सं० १/१३)
३. योगिनीहृदय (च० सं० १/१३)

* श्री चक्र से सर्वोत्पत्ति *

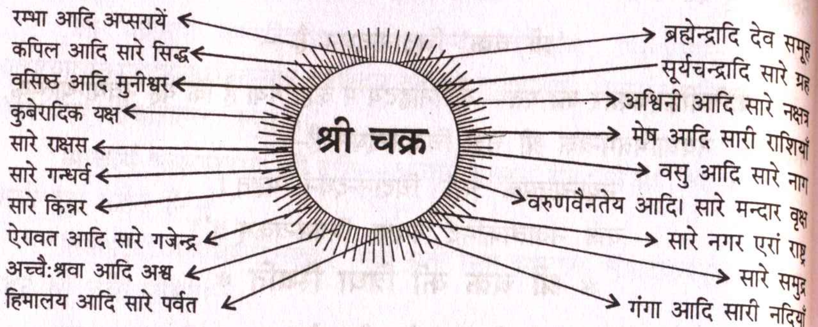
श्री चक्र
रम्भा आदि अप्सरायें
कपिल आदि सारे सिद्ध
वसिष्ठ आदि मुनीश्वर
कुबेरादिक यक्ष
सारे राक्षस
सारे गन्धर्व
सारे किन्नर
ऐरावत आदि सारे गजेन्द्र
अच्चै:श्रवा आदि अश्व
हिमालय आदि सारे पर्वत
ब्रह्मेन्द्रादि देव समूह
सूर्यचन्द्रादि सारे ग्रह
अश्विनी आदि सारे नक्षत्र
मेष आदि सारी राशियाँ
वसु आदि सारे नाग
वरुणवैनतेय आदि। सारे मन्दार वृक्ष
सारे नगर एरां राष्ट्र
सारे समुद्र
गंगा आदि सारी नदियाँ

* योगिनीहृदयोक्त श्री चक्र का स्वरूप *

'यस्य विज्ञानमात्रेण त्रिपुराज्ञानवान् भवेत्।
चक्रस्य नवधात्वं च कथयामि तव प्रिये॥
आदिमं भूत्रयेणस्याद् द्वितीयं षोडशारकम्।
अन्यदष्टदलं प्रोक्तं मनुकोणमनन्तरम्।
पञ्चमं दशकोणं स्यात् षष्ठं चापि दशारकम्।
सप्तमं वसुकोणं स्यान्मध्यत्र्यस्रमथाष्टमम्।
नवमं त्र्यस्रमध्यं स्यात् तेषां नामान्यतः शृणु।
त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्।
सर्वसंक्षोभणं गौरि सर्वसौभाग्यदायकम्।
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं परम्।
सर्वरोगहरं देवि! सर्वसिद्धमयं तथा।
सर्वानन्दमयं चापि नवमं शृणु सुन्दरि॥
अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
परिपूर्णं महाचक्रमजरामरकारकम्।
एवमेव महाचक्रसङ्केतः परमेश्वरि।
कथितस्त्रिपुरादेव्या जीवन्मुक्तिप्रवर्तकः॥'[1]

श्रीचक्र के पादोदक की महिमा—'सर्वोल्लास तन्त्र' में श्रीचक्र के पादोदक की अनन्त महिमा बताई गयी है और कहा गया है कि—

गङ्गा, पुष्कर, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, गौतमी, गङ्गाद्वार, गया, प्रयाग, बदरी, वाराणसी, सिन्धु, रेवा, सेतुबन्ध, सरस्वती प्रभृति ब्रह्माण्डान्तर्गत समस्त तीर्थ समूह में स्नान करने से कोटि गुणित अधिक फलदायी श्री चक्र के पादोदक है—

---

[1] योगिनीहृदय (चक्रसङ्केत)

'गङ्गा-पुष्कर-नर्मदासु यमुना-गोदावरी-गौतमी।
गङ्गाद्वार-गया-प्रयाग-बदरी-वाराणसी सिन्धुषु।
रेवा-सेतु-सरस्वती-प्रभृतिषु ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
तीर्थस्नान सहस्रकोटिफलदं श्रीचक्र-पादोदकम्॥'[1]

श्रीचक्र की महिमा—शास्त्रकारों ने 'श्रीचक्र' की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है—

'सम्यक् शत् क्रतून कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्॥'

अर्थात् जो पुण्य १०० यज्ञों को निष्पादित करने से प्राप्त होता है वह मात्र 'श्रीचक्र' के दर्शन से ही प्राप्त हो जाता है।

* श्री विद्या ही मोक्षसाधिका है अन्य शास्त्र–नहीं।*

' न शिल्पादि ज्ञानयुक्ते विद्वच्छब्दः प्रयुज्यते।
मोक्षैकहेतुविद्या च श्रीविद्या नात्र संशयः॥'

'श्री चक्र' और नौ संख्या का महत्व

(एक तांत्रिक दृष्टि)

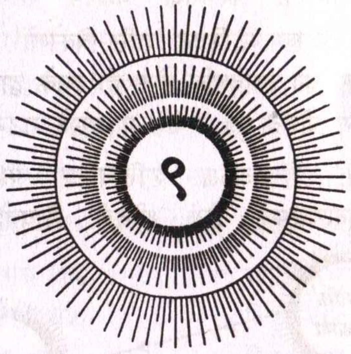

(श्री यंत्र और ९ संख्या)

(१) यह सर्वोच्च संख्या है। इससे बड़ी कोई संख्या हीं है ही नहीं।

(२) ९ संख्या में शिव-तेज एवं शक्ति-तेज से निर्मित है।

---

[1] सर्वोल्लास तन्त्र (४४/३७)

(३) ५ शक्ति चक्र, ४ शिव चक्र अर्थात् ९ योनियों से ही 'श्रीचक्र' का निर्माण होता है।

(४) 'श्रीचक्र' (९ योनियों वाला चक्र) शिव-शक्ति का शरीर है।

(५) 'श्रीचक्र' (९ योनियों वाला) शक्ति का आसन है।

(६) ९ योनियों वाला श्री चक्र शक्ति का 'यंत्र' है। अर्थात् शक्ति का ज्यामितीय रेखांकन है।

(७) ९ योनियों वाला 'श्रीचक्र'—ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त चित्र है।

(८) ९ योनियों वाले 'श्रीचक्र' में १४ भुवन, ३ लोक, त्रिदेव, ३३ कोटि, देव, सरे मंत्र, सारे ऋषि, सारे विश्वबीज, सारी प्रकृति, ३६ तत्त्व, (माया, महामाया आदि सभी कुछ) समाहित है।

(९) ९ योनियों वाले 'श्रीचक्र' की पूजा के बिना शक्ति की पूजा नहीं होती।

* श्रीचक्र की उत्पत्ति *

'योगिनी हृदय' (चक्र संकेत) में कहा गया है—

'तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसंभवः।
एतच्चक्रावतारन्तु कथयामि तवानघे।
यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥'[1]

५ वह्नि-त्रिकोणों के रूप में स्थित 'शक्ति-त्रिकोणों' एवं ४ शिव त्रिकोणों के सम्मिलन से ही 'श्रीचक्र' का आविर्भाव होता है। इनके द्वारा ९ योनियों का संयोग होता है और यही संयोग श्रीचक्र की उत्पत्ति या उसके गठन का कारण बनता है—

'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः॥'

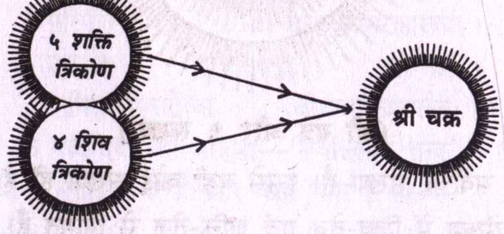

---

१. योगिनीहृदयदीपिका (६) (२)

विश्वोत्पत्ति और परमाशक्ति का सम्बंध—विश्व परमाशक्ति का ही अपना स्वरूप है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः॥'[1]

अमृतानन्द कहते हैं कि यदि यह प्रश्न किया जाय कि अक्रिय परमशिव तत्त्वात्मक चक्र को कैसे उत्पन्न कर सकता है? शिव तो तटस्थ हैं फिर वे सृष्टि कैसे कर सकते हैं? **अमृतानन्द** इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि प्राणियों के अदृष्ट-परिपाक के फलस्वरूप पराशक्ति स्वान्तःसंहत विश्व की सृष्टि करने की इच्छा द्वारा अपनी स्वेच्छा से विश्वरूपिणी बनकर विश्व का सृजन किया करती है अर्थात् विमर्शरूपिणी पराशक्ति प्राणियों के अदृष्ट के कारण जब अपनी स्वनिष्ठ स्फुरता का साक्षात्कार करती है तब चक्र स्वयं उत्पन्न हो जाता है।—

'स्फुरतात्मनः पयेत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥'[2]

चूँकि जगत सृष्टि के पूर्व भी शक्ति में संस्थित रहता है अतः वह (शक्ति) 'स्वान्तः संहृत विश्व' का सृजन नहीं **'उन्मीलन'** करती है। 'विश्वमुन्मीलयति'—

भास्करराय कहते हैं—

'सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादि चक्रस्य सम्भव उत्पत्तिर्भवतीत्यर्थः।'[3]

'स्फुरत्ता' का क्या अर्थ है?

(क) अमृतानन्द—'विश्वसर्जनमेव पराशक्तेः स्फुरता तस्याः सृष्टिरूपत्वात्।'

(ख) भास्करराय—'स्फुरतापदस्य सृष्टिरित्यर्थो युज्यत एव।'

(ग) 'प्राथमिकी वृत्तिरिच्छाज्ञानक्रियात्मिका शान्ता नाम्नो यदा जाता तत्काल एव चक्रस्य संभवः—'इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः।'[4]

(घ) 'आत्मनिष्ठां स्फुरत्ताम्। सा च सृष्टिरेव।'

चक्र और उनमें अवस्थित उनकी अधिष्ठात्री शक्तियाँ

(१) सर्वानन्दमय चक्र	महात्रिपुरसुन्दरी
(२) सर्वसिद्धप्रद चक्र	त्रिपुराम्बा
(३) सर्वरोगहर चक्र	त्रिपुरसिद्धा

---

१. योगिनीहृदय (चक्रसङ्केत)
२. (योगिनीहृदय ९)
३. सेतुबन्ध (भास्करराय)
४. सेतुबन्ध

(४) सर्वरक्षाकर चक्र	त्रिपुरमालिनी	
(५) सर्वार्थसाधक चक्र	त्रिपुरा श्री	**नवावरण के ९ देवता**
(६) सर्वसौभाग्यदायक चक्र	त्रिपुर वासिनी	
(७) सर्वसंक्षोभणचक्र चक्र	त्रिपुरसुन्दरी	
(८) सर्वाशापरिपूरक चक्र	त्रिपुरेशी	
(९) त्रैलोक्यमोहन चक्र	त्रिपुरा	

नवावरण के ९ देवताओं के नाम—प्रकटा, गुप्ता, गुप्ततरा, परा, सम्प्रदाया, कुलकौला, निगर्भा, अतिरहस्या, परापररहस्या, परापरातिरहस्या आदि।

* चक्रों के नामकरण में भी अद्वैतवाद की अनुस्यूतता *

* चक्रों के नामकरण का रहस्यार्थ *

[१] **त्रैलोक्यमोहन चक्र**—अमृतानन्द इस चक्र के अर्थ का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि—

'लोक्यत इति लोकः' लोक्यतेऽनेनेति लोकः, लोकयतीति लोकः—इति कर्म-करण-कर्तृव्युत्पत्या मेय-मान-मातृलक्षणं 'त्रैलोक्यम्' तस्य 'मोहनं' तिरोधायक **मद्वैतप्रतीत्युत्पादनेन**।।'

—योगिनीदीपिका (चक्र संकेत ८२)

[२] **सर्वाशापरिपूरक चक्र**—'आशा' नाम अतृप्तस्य पदार्थान्तरेषु स्पृहा तस्याः सर्वस्याः स्पृहायाः परिपूरकं नित्यपरिपूर्णतृप्तिलक्षण **परमशिवसामरस्य** प्रतिपादनेन।

—योगिनीदीपिका

अतृप्त व्यक्ति (सतृष्ण व्यक्ति) की पदार्थान्तरों में जो तृष्णा निवास करती है उसको पूर्णतया परिपूर्ण करने वाला एवं नित्य तृप्ति प्रदान करने वाला जो परमशिव-सामरस्य है। उसका प्रतिपादन करने के कारण इस चक्र की आरव्या 'सर्वाशा परिपूरक' है।

[३] **सर्वसंक्षोभण चक्र**—'सर्वसंक्षोभणं सर्वस्य क्षित्यादेः शिवान्तस्योपर्युपरि तत्त्वक्रमेण संक्षोभस्तस्य संहारलक्षणस्य कारकं भेद प्रपञ्चलयरूपत्वात् ।

—योगिनीहृदयदीपिका (८२)

क्षिति से शिव पर्यन्त समस्त तत्त्वों के संक्षोभ का संहार (प्रपञ्च का लय) कराने वाला होने के कारण इस चक्र का नाम 'सर्वसंक्षोभण चक्र' है।

[४] **सौभाग्यदायक चक्र**—'सर्वसौभाग्यदायकं सर्वसौभाग्यं सर्वस्पृहणीता तस्या दायकम्, सर्वस्पृहणीयपरप्रेमास्पद परमशिवैक्यप्रतिपादनेन।'

सभी व्यक्तियों में समस्त के सौभाग्यों को प्राप्त करने की इच्छा स्वभावतः

विद्यमान रहती है। उसको प्रदान करने वाला होने के कारण अर्थात् सर्व स्पृहणीय एवं परमप्रेमास्पद परमशिव के साथ एकता-प्राप्ति स्वरूप 'सर्वसौभाग्य' प्रदान करने वाला होने के कारण ही इसे **'सर्वसौभाग्यदायकचक्र'** कहते हैं।[१]

[५] **सर्वार्थसाधक चक्र**—'सर्वार्थसाधकं सर्वेषां वैदिकानां तांत्रिकाणां क्रियाणामर्थः प्रयोजनं परमशिवप्राप्तिः।'

कवियों ने कहा भी है—

> 'बहुधा ह्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सन्ति भूतले।
> त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।'

अर्थात् समस्त (वैदिक एवं तांत्रिकों) साधकों या उपासकों का अर्थ (प्रयोजन) परमशिव-प्राप्ति है और यह चक्र उस प्रयोजन को पूर्ण करता है अतः इसका नाम **'सर्वाथसाधक चक्र'** है।[२]

[६] **सर्वरक्षाकर चक्र**—'सर्वरक्षाकरं रक्षा नाम प्रतिकूल पदार्थादुपरतिः परिहारः षट्त्रिंशतत्त्वात्मकं सर्वमेव प्रतिकूलपदार्थः, तस्मात् सर्वस्माद् रक्षां शिवाहम्भावभावनालक्षणां करोति। तदुक्त 'परापञ्चाशिकायाम्'—

> 'अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः ।
> पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वभावमशिवापहम् ।।'[३]

अपने से प्रतिकूल पदार्थों से उपरति या उनका परिहार ही **'रक्षा'** है। समस्त ३६ तत्त्व प्रतिकूल पदार्थ ही हैं। उन ३६ तत्त्वों से रक्षारूप 'शिवाहंभावना' का साक्षात्कार ही **'सर्वरक्षा'** है और इस सर्वरक्षा का विधायक चक्र ही **'सर्वरक्षाकर चक्र'** है।

[७] **सर्वरोगहर चक्र**—'सर्वरोगहरं भेदलक्षणं षट्त्रिंशत्वात्मकं सर्वमेवं रोगस्तस्य हरम् अभेदप्रतीतिहेतुत्वात्।'

कहा भी गया है—

> 'विकल्परूपरोगाणां हारिणी खेचरी परा ।'[४]

जो भी षट्त्रिंशदात्मक है वह सब कुछ भेदात्मक है अतः वह सब कुछ रोगस्वरूप है। चूँकि यह चक्र इस भेदवृत्ति रूप रोग का विनाशक है अतः इसकी आख्या **'सर्वरोगहर'** है।[५]

---

[१] योगिनीहृदयदीपिका (८२)
[२] योगिनीहृदयदीपिका
[३] योगिनीहृदयदीपिका (८२)
[४] यो० हृ० सं०१ श्लोक ४१
[५] यो०हृ०दीपिका।

[८] **सर्वसिद्धिमय चक्र**—'सर्वसिद्धिमयं सर्वस्य सिद्धिरूत्पत्तिः स्थितिः संहारश्च तन्मयम्, त्रिकोणस्य सृष्टिस्थिति संहारहेतुत्वात्।

तदुक्तमीश्वरप्रयभिज्ञायाम्—'चितः स्वतंत्रा विश्वसिद्धिहेतुः' इति।

चूँकि समस्त पदार्थों की 'सिद्धि'—उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार—से यह चक्र युक्त है और त्रिकोण इन उक्त तीन व्यापारों का विधायक भी है अतः सर्वस्वतंत्रा परमस्वातंत्र्यरूपा परमा शैवी शक्ति से युक्त होने के कारण इस चक्र की आख्या **'सर्वसिद्धिमय चक्र'** है।

[९] **सर्वानन्दमय चक्र**—(बिन्दु) (रक्तबिन्दु)—'सर्वानन्दमयं शिवशक्तिलक्षण प्रकाशविमर्शसामरस्यरूपत्वात्। अत्र सर्वत्र प्रवृत्तिः निमित्तभेदाभावादद्वैतविश्रान्तिरे व परमार्थः।[१]

आनन्दस्वरूप शिव एवं शक्ति से युक्त एवं प्रकाश-विमर्श-सामरस्य से परिपूर्ण होने के कारण इस चक्र का नाम **'सर्वानन्दमय चक्र'** है। इसी सर्वानन्दपरिपूर्ण चक्र में अद्वैतात्मक विश्रान्ति प्राप्ति कराने के कारण यह चक्र **'सर्वानन्दमय चक्र'** कहलाता है। यह अद्वैतविश्रान्ति ही 'परमार्थ' है।[२]

इन नौ चक्रों में एक ही 'महात्रिपुरसुन्दरी' नौ नाम-रूपों में स्थित हैं।

'महात्रिपुरसुन्दरी' का अर्थ—'अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी'—'महादेवी' महती देशकालैरनाकलितत्वात्। देवीद्योतनार्था देवी पदाभिधेया विमर्शरूपा।' 'महात्रिपुरसुन्दरी' महती अनावरणा चिद्रूपिणी 'त्रिपुरा' तुर्यरूपत्वात् 'सुन्दरी' स्वात्मतया सर्वस्य स्पृहणीयत्वात्। एवंविधा स्वसंविद्देवता पूज्या वक्ष्यमाणपरादि त्रिविधरूपया पूज्या भावनीया॥[३]

आवरण देवताओं की पूजा के दो क्रम हैं—

(१) **सृष्टि क्रम**—नवयोन्यादिभूगृहान्तपूजने सृष्टिक्रमः।
क्योंकि यही क्रम जगत की उत्पत्ति का भी क्रम भी है।
(२) **संहार-क्रम**—सृष्टि क्रम का विपरीत क्रम संहार क्रम है।

'परिपूर्णं महाचक्रमजरामरकारकम्।''[४]
'अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।'[५]

शिव चक्र एवं शक्ति चक्र में ऐक्य

'त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वय तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्ति चक्राणि पञ्च च॥'

---

[१] अमृतानन्दः योगिनीहृदयदीपिका
[२] योगिनीहृदयदीपिका
[३] अमृतानन्द
[४] (चक्र संकेत)
[५] (च०सं० ८४)

'बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं षोडशपत्रकम्।
चतुरस्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्॥'[१]

(१) 'त्रिकोण' (श्री चक्र के मध्य स्थित चक्र) 'मूलाधार चक्र' है।
(२) 'अष्टार' (श्री चक्र में स्थित) 'स्वाधिष्ठान चक्र' है।
(३) 'अन्तर्दशार (श्री चक्र में स्थित) 'मणिपूर चक्र' है।
(४) 'बाह्यदशार' (श्री चक्र में स्थित) 'अनाहत चक्र' है।
(५) 'चतुर्दशार (श्री चक्र में स्थित) 'विशुद्ध चक्र' है।
(६) 'शिवचक्र' (बैन्दवस्थानीय)-(शिवस्थानीय) 'आज्ञा चक्र' है।

* शिव-चक्र एवं शक्ति-चक्र में ऐक्य *

(१) बिन्दु एवं त्रिकोण में ऐक्य।
(२) अष्टकोण एवं अष्टदल कमल में ऐक्य।
(३) दशारयुग्म एवं षोडशदलपद्म में ऐक्य।
(४) चतुर्दशार एवं भूपुर में ऐक्य।[२]

'भैरवयामल' में कहा गया है—

'त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टं अष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके।
शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसम्बंधं को जानाति स चक्रवित्।
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
मनुकोणं चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट् क्रमात्।
मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्धयाख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः।
तवाधारस्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपशिवश्शिवः स्मृतः
अविनाभावसम्बन्धः तस्माद्बिन्दुत्रिकोणयोः॥'[३]

शिव और शक्ति का सदन 'श्रीचक्र' सृष्टि का अनुपमेय अप्रतिम एवं विश्वगर्भित सर्वोच्च घर है जिससे बड़ा घर कोई हो ही नहीं सकता।

---

[१] सुभगोदय स्तुति (१०)
[२] लक्ष्मीधरा (९)
[३] भैरवयामल

षट्चक्र, नवचक्र एवं सम्पूर्ण विश्व को आत्मगर्भित करके स्थित 'श्री चक्र' निम्न स्वरूप का है—

(१) इसमें ३ पुर हैं, ३ खण्ड हैं।

(२) यह सूर्य,चन्द्र एवं अग्नि के रूप में स्थित ३ खण्डों से निर्मित है।

(३) पृथिवी आदि ५ महाभूतों, शब्द-स्पर्श आदि ५ तन्मात्राओं एवं ३६० किरणों वाला, ६ चक्रों से निर्मित, ९ चक्रों से अन्तर्गर्भित, अग्नि की १०८, सूर्य की ११६, चन्द्रमा की १३६ किरणों (कलाओं) से आलोकित एवं कालातीत है—

'शतं चाष्टौ वह्ने शतमपि कलाः षोडशरवेः ।
शतं षट् च त्रिंशत्सितमय मयूरवाश्चरणजाः ।
य एते षष्टिश्च त्रिशतमभवं स्त्वच्चरणजाः ।
महाकौलैस्तस्मान्न हि तव शिवे ! कालकलंना ॥'[१]

* चन्द्रमण्डल ही 'श्रीचक्र' है। *

'इन्दुमण्डलात्मकं श्री चक्र'।[२]

यह तो ज्ञात ही है कि शिर में चन्द्रमण्डल स्थित है। श्रीचक्र का चन्द्रमण्डल से अभिन्न सम्बंध है। **आचार्य लक्ष्मीधर** कहते हैं कि—

'शिरस्स्थितं चन्द्रमण्डलं सर्वयोगशास्त्रसिद्धम् ।
ततु समयिनां मते श्रीचक्रमेव ।'[३]

(१) चन्द्रमण्डल षोडशकलात्मक है।

(२) 'श्री विद्या' का प्रतिपदा आदि तिथियों के अनुरूप ही १६दिनों से सम्बंध है। इन १६ दिनों में चान्द्र कलाओं में क्षय-वृद्धि होती रहती है। अतः श्री विद्या भी चन्द्रमण्डल ही की भाँति है।

सुभगोदयकार की दृष्टि—सुभगोदय में कहा गया है कि बाह्य स्थित होने पर भी चन्द्रमण्डल 'श्री चक्र' ही है—

'बाह्यस्थितमपि चन्द्रमण्डलं श्री चक्रमेवेति ।'

यही 'महारहस्य' है।[४]

यह भी ध्यातव्य है कि तांत्रिक समाम्नाय में देवता का यांत्रिक रूप वासनाभेद से जगत का ही रूप है।

प्रत्येक यन्त्र में सबसे बाहर 'चतुष्कोण' ही स्थित रहता है और उसे **'भूपुर'**

---

१. सुभगोदय स्तुति (९)
२. लक्ष्मीधर
३. लक्ष्मीधराः (१०)
४. लक्ष्मीधरा

कहा जाता है। यह भूपुर ही विश्वरूप नगर का प्राकार है। उसमें निर्मित किसी भी मार्ग से उसमें प्रविष्ट होकर भीतर की ओर अग्रपद होते हुए आगे बढ़ना ही साधना-मार्ग की यात्रा है और केन्द्रस्थ बिन्दु (अन्तिम भूमि) तक पहुँचना ही प्रत्येक साधक का लक्ष्य होता है।

श्री चक्र में प्रविष्ट होकर क्रमशः तत्त्वातीतावस्था में चलने के मार्ग में तीन सोपान हैं—

(क) चतुष्कोण से 'त्रिकोण' तक : 'सकल मार्ग'
(ख) बिन्दु से 'उन्मना' तक : 'सकल निष्कलमार्ग'।
(ग) 'महाबिन्दु' : निष्कल मार्ग'।

सकल निष्कल मार्ग—बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादात्त, शक्ति व्यापिका (यापिनी) समना, उन्मना।

सकल मार्ग में—

(१) 'मूलाधार चक्र' में —'अग्नि बिम्ब'
(२) 'अनाहत चक्र' में—'सूर्य बिम्ब'
(३)'विशुद्ध चक्र' में—'चन्द्र बिम्ब' दिखाई पड़ते हैं।

श्री चक्र और उसका स्वरूप—'इन्दुमण्डल ही श्रीचक्र है।'

आचार्य शंकर कहते हैं—

'चतुर्भिश्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि,
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः ।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रत्रिवलय,
त्रिरेखाभिः सार्धं तवशरणकोणाः परिणताः ॥'[१]

अन्यत्र भी इसका स्वरूप निर्वचन किया गया है—

'बिन्दु त्रिकोण वसुकोण दशार युग्म,
मन्वश्र नागदलसंयुत षोडशारम् ।
वृत्तत्रिभूपुरयुतं परितश्चतुर्द्वाः,
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।''[२]

* श्री चक्र का स्वरूप *

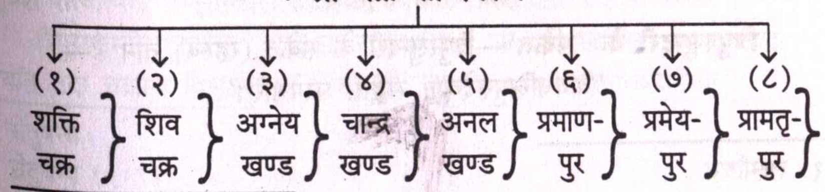

---

१. लक्ष्मीधरा
२. वृत्तत्रयं च ध्रणीसदनत्रयं च, श्री चक्रराजमुदितं परदेवतायाः।

श्री चक्र में ४४ कोण	श्री चक्र में २४ सन्धियाँ	श्री चक्र में मर्म स्थान २८	श्री चक्र लेखन प्रकार (क) 'सृष्टिक्रम' = समयमार्ग (ख) 'सहारक्रम' = कौलमार्ग

९ योनियाँ

'द्विरेखासङ्गमस्थानं सन्धिरित्यभिधीयते।
त्रिरेखासङ्गमस्थानं 'मर्म' मर्मविदो विदुः ॥'

अष्टदल-षोडशदल-मेखलात्रय-भूपुरत्रयाणां शिवचक्राणां त्रिरेखा सङ्गमस्थानत्वाभावेऽपि वाचनिकी मर्मसंज्ञा।

'चन्द्र ज्ञान विद्या' में कहा गया है—

'मन्श्रद्विदशाराष्ट कोण वृत्तचतुष्टयम्।
अष्टाविंशतिमर्माणि चतुर्विंशतिसन्धयः ॥'

(क) 'कौल चक्र' में—कोण संख्या नहीं है।

(ख) 'समय चक्र' में—चतुष्कोण के मध्य में बिन्दु स्थित है।

(ग) 'कौलचक्र' में—बिन्दु त्रिकोण मध्यगत है।

'कौलचक्र' में कोणसंख्या इसलिए नहीं है क्योंकि वहाँ नवत्रिकोण है। ९ त्रिकोणों के मेलन से ही 'मर्म-सन्धियाँ' उत्पन्न होती हैं।[1]

शिर में स्थित **'सहस्रदलकमल'** के अन्तर्गत श्री चक्रात्मक शशिबिम्ब के मध्य में भगवती के श्री चरण स्थित हैं। उनके चरणों के जल से अर्थात् सुधामय जल से साधक के शरीर को संप्लावित करके भगवती (जो कि भुजङ्गिनी के रूप में अवस्थित हैं) आधार कुण्ड में प्रविष्ट होकर और सुषुम्ना-पथ को रोक कर सो जाती हैं।[2]

शक्ति-समूह ही की संज्ञा है—'चक्र'

आचार्य भास्करराय कहते हैं—

'चक्रं शक्ति समूहः॥'[3]

त्रिपुरसुन्दरी के 'संकेत'—त्रिपुरसुन्दरी के संकेत (रहस्य) तीन हैं—

'त्रिविधस्त्रिपुरादेव्याः सङ्केतः परमेश्वरि।'

---

१. लक्ष्मीधरा

२. लक्ष्मीधरा

३. (सेतुबन्ध १/७)

* भगवती के सङ्केतत्रय *

(१) चक्र-सङ्केतक (चक्र का रहस्य)	(२) मन्त्र-सङ्केतक (तन्त्र का रहस्य)	(३) पूजा-सङ्केतक (पूजा का रहस्य)

'त्रिपुरा-चक्र' का अर्थ है—त्रैपुर शक्ति-समूह।

विश्वरूपिणी शक्ति का आत्मस्फुरत्तादर्शन ही श्रीचक्र की उत्पत्ति का कारण है।

* श्री चक्र की उत्पत्ति एवं आत्मस्फुरण-साक्षात्कार *

योगिनीहृदयकार कहते हैं—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः।'

'प्राथमिकी वृत्तिरिच्छाज्ञानक्रियात्मिका शान्ता नाम्नो यदा जाता तदा तत्काल एवं चक्रस्य सम्भवः—

'इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः।'[1]

('स्फुरत्ता' = सृष्टि। आत्मनिष्ठां स्फुरत्तां। सा च सृष्टिरैव वा। स्फुरत्तापदस्य सृष्टिरित्यर्थो युज्यत एव। सेयं स्फुरत्तारूपा सृष्टिरेव क्रिया।[2]

'आत्मस्फुरण' के दो रूप

(१) 'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी। स्फुरत्तामात्मनः पश्ये त्तदा चक्रस्य सम्भवः। —योगिनीहृदय (चक्र सङ्केत ९)	(२) 'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला। अम्बिका रूपमापन्ना 'परावाक्' समुदीरिता।' —योगिनीहृदय (१/३६)

चक्रोत्पत्ति—'विश्वसर्जनमेव पराशक्तेः स्फुरत्ता, तस्याः सृष्टि रूपत्वात्। तदा षट्त्रिंश तत्त्वात्मकविश्वसृष्टिकाले चक्रस्य विश्वमयस्य परदेव्रता चक्रस्य सम्भवः।'[3]

त्रिपुरानाम्नी पराशक्तिः 'यदा सा परमाशक्तिः।' सा देवी स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादि चक्रस्य सम्भव उत्पत्तिर्भवति॥[4]

---

१. सेतुबन्ध

२. सेतुबन्ध (१/९)

३. अमृतानन्द

४. सेतुबन्ध (१/९)

परावागोत्पत्ति—'सा परमा सर्ववर्णांशभूत विमर्शरूपा कला विमर्श शक्तिः आत्मनः' परशिवस्य स्फुरणं पश्यन्त्यादि क्रमेण वैखरीपर्यन्तं विमर्शनम् पश्येद् द्रष्टुभिच्छेत् तदा परमा शान्तात्मिका भूत्वा अम्बिका रूपमापन्ना प्रकांशांशमात्राया अम्बिकायाः सामरस्यमापन्ना 'परावाक्' समुदीरिता।[१]

३६वें श्लोक की व्याख्या करते हुए **सेतुबन्धकार** कहते हैं—

(१) 'यदा सा परमाशक्तिः' (९) इति श्लोके या वृत्तिरीक्षणात्मिका शान्तानाम्नी विश्वकारणत्वेन वर्णिता, तया हि शब्दार्थसृष्टिद्वयमुत्पाद्यते।

(२) **अर्थ-सृष्टि**—'तत्रार्थ सृष्टेब्रह्मविष्णुरूद्राः कारणानि। त एव शक्तिं बिना कार्याक्षमत्वाच्छक्तिविशिष्टतया विभाव्यमाना वामाज्येष्ठारौद्र्य इत्युच्यन्ते।

(३) **शब्द-सृष्टि**—'शब्दसृष्टेः कारणानि पश्यन्ती मध्यमावैखर्यः। कारणानामपि कारण्मीक्षणम् । ईक्षण इच्छादित्रयसमष्टिः।

'परमा इति पदं शान्तपरम् इति ।[२]

* इन्दुमण्डल ही यथार्थ श्री चक्र है *

'इन्दुमण्डलात्मकं श्री चक्र'[३]

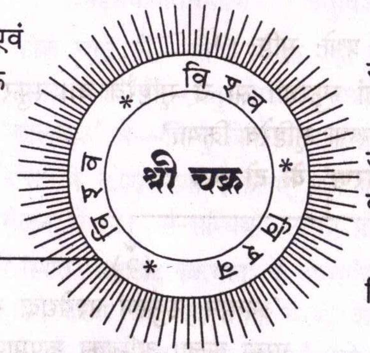

* जगत शक्ति का परिणाम या रूपान्तर है। श्री चक्र ब्रह्माण्ड रूप है*

* जगत भी श्री चक्र ही है क्योंकि जगत 'श्री चक्र' की ही तो बाह्याभिव्यक्ति है *

* श्री चक्र विश्व का एक ज्यामितीय चित्र है। *

श्री चक्र एवं जगत दोनों शिवशक्त्यात्मक हैं—

'शिवशक्त्यात्मकं विद्धिजगदेतच्चराचरम् ॥'

* शरीर स्वयं श्री 'श्री चक्र' है *

'त्वगसृङ्मांसमेदोस्थि धातवः शक्तिमूलकाः ।
मज्जाशुक्रप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः ॥
नव धातुरियं देहो नव योनि समुद्भवः ।
दशमी योनिरेकैव परा शक्तिस्तदीश्वरी ॥'[४]

---

[१] अमृतानन्द
[२] सेतुबन्धः।
[३] लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा
[४] कामिकागम

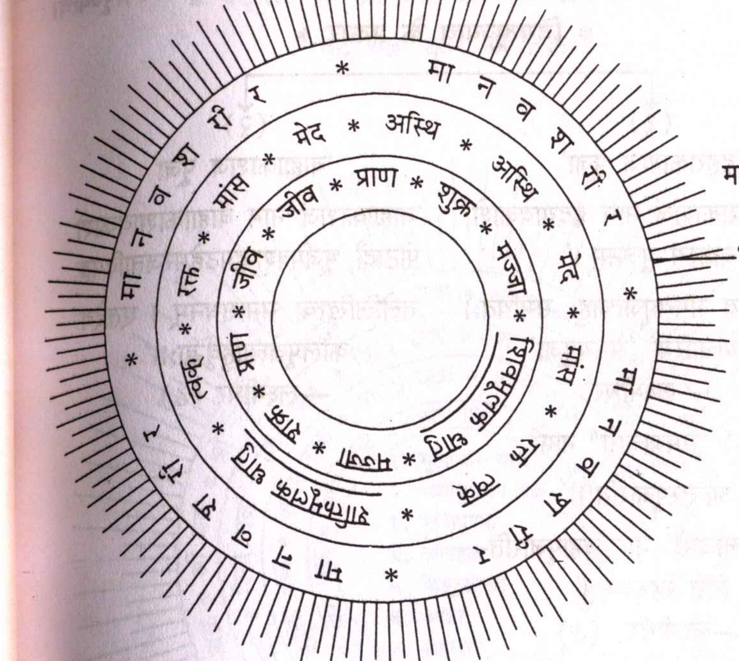
मानवशरीर
त्वक् * रक्त * मांस * मेद * अस्थि
अस्थि * मेद * मांस * रक्त * त्वक्
जीव * प्राण * शुक्र * मज्जा
प्राण * जीव
शिवमूलक धातु
शुक्र * मज्जा
शक्तिमूलक धातु
मानव शरीर
एवं
'श्री चक्र'

'देवी मन्दिर' = ४३ त्रिकोणों वाल श्री चक्र॥

'सुधासिन्धु' = 'सहस्रकमलान्तर्गत चन्द्रमण्डलमध्यवर्ती सुधासिन्धुरेव भगवत्या विहरणस्थानमिति 'सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे' इति 'सुधासिन्धोर्मध्ये' इति च श्लोकद्वयस्थैक एवार्थ इति रहस्यम् ।[१]

सारांश यह कि—सहस्रदलकमल के अन्दर जो चन्द्रमण्डल है वही 'सुधासिन्धु' है और वही भगवती का विहरणस्थान **'सहस्रार'** है। **'सुधासिन्धु'** एवं **'सहस्रार'** दोनों शब्द एकार्थक हैं। भेद केवल यह है कि **'सहस्रार'** में ही **'सुधासिन्धु'** (चन्द्रस्थान) स्थित है।

'बैन्दवस्थान' श्री चक्र के मध्य स्थित है।

(१) 'सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ॥'

(२) 'सहस्रारे पद्मे सह रहसि' पत्या विहरसे ॥'

---

[१] लक्ष्मीधरा (श्लोक ९)

* 'श्री चक्र' का नामान्तर **'वियच्चक्र'** भी है। वियच्चक्रत्व = वियत्पूज्यत्व।

* वियत्पूज्यत्व के प्रकार *

(१)
'दहराकाशज पूजा'

(१) 'दहराकाशजं नाम हृदयावकाशे
चक्रस्य पूजनम्।'

(२) 'इयमेव समयपूजत्याहुः समयितः।'
समयाचारियों 'समयपूजा'
—लक्ष्मीधर

(३) 'समयाचारो' नाम
आन्तरपूजारतिः।'

(४) 'कुलाचारो' नाम बह्यपूजारति-
रिति रहस्यम्।'
—लक्ष्मीधराः (८)

(२)
'बाह्याकाशज पूजा'

'बाह्याकाशजं नाम बाह्याकाशावकाशे
पीठादौ भूर्जपत्रशुद्धपटहेमरजतादिपट्ट
तलेलिखित्वा समाराधनम्। एतदेव
कौलपूजेत्याहुर्वृद्धाः।।'
—लक्ष्मीधर (८)

* 'श्री चक्र' शिव और शक्ति का शरीर है *

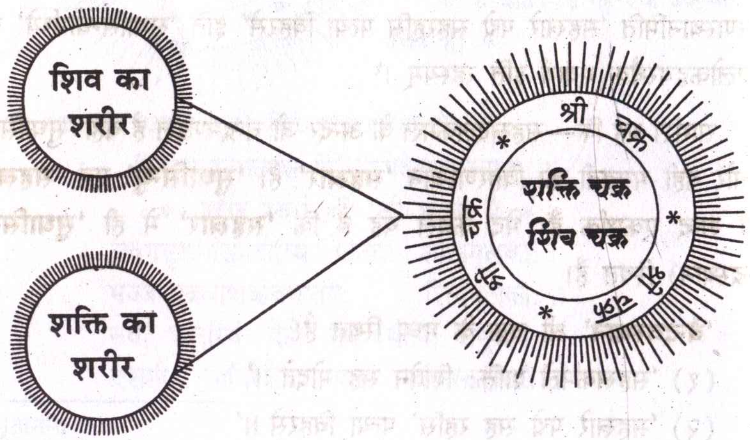
शिव का शरीर
शक्ति का शरीर
श्री चक्र
शक्ति चक्र
शिव चक्र

---

* षट्चक्र भी श्री चक्र का एक अंग ही है *

षट् चक्र और श्री चक्र

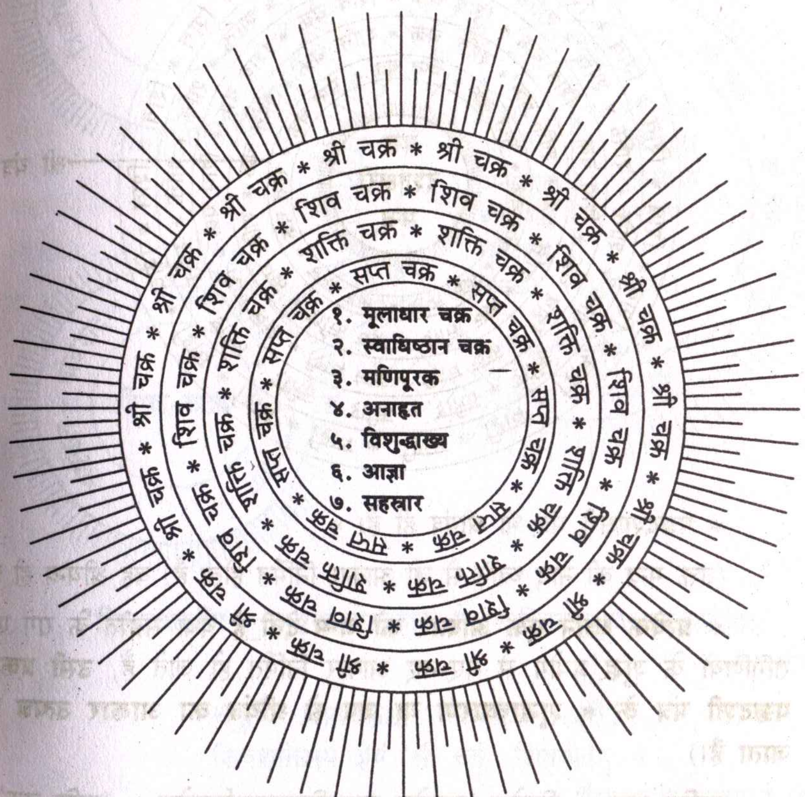
श्री चक्र
शिव चक्र
शक्ति चक्र
सप्त चक्र
१. मूलाधार चक्र
२. स्वाधिष्ठान चक्र
३. मणिपूरक
४. अनाहत
५. विशुद्धाख्य
६. आज्ञा
७. सहस्रार

* षट्चक्ररूप श्री चक्र *

('श्रीयंत्र के ९ चक्रों को षट्चक्रात्मक माना जाता है। अत: षट्चक्र भी श्री चक्र के रूपान्तर हैं।

* पञ्चदशाक्षरी मन्त्र एवं श्री चक्र *

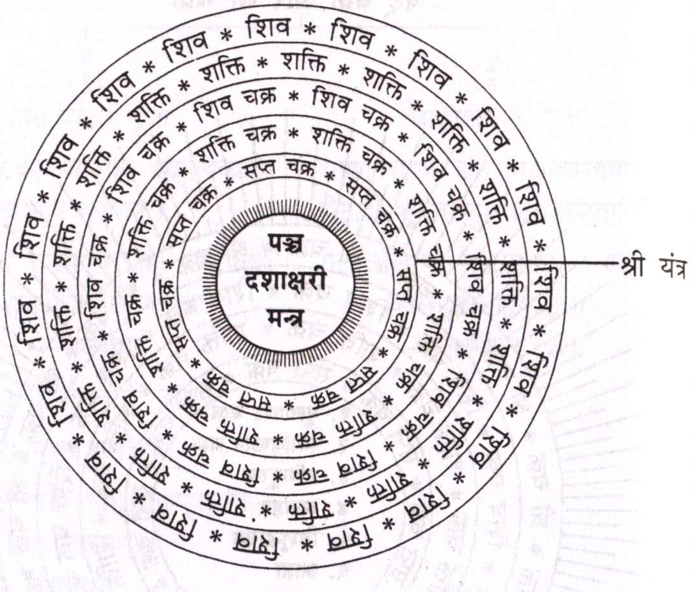
शिव * शिव * शिव
शक्ति * शक्ति * शक्ति
शिव चक्र * शिव चक्र
शक्ति चक्र * शक्ति चक्र
सप्त चक्र * सप्त चक्र
पञ्च
दशाक्षरी
मन्त्र
श्री यंत्र

* पञ्चदशाक्षरी मंत्र. भी श्रीयंत्र ही है। *

(उक्त मन्त्र की नाद ध्वनि से जो आकार निर्मित होता है, वह श्रीयन्त्र ही है।

*** प्रत्येक ध्वनि एक आकार को जन्म देती है** यथा सङ्गीत के राग एवं रागिणियों के शुद्ध प्रयोग से नए-नए आकार निर्मित हो जाते हैं, **उसी प्रकार पञ्चदशी मंत्र के * शुद्धाच्चारण या जप से श्रीयंत्र का आकार उत्पन्न हो जाता है।**)

शक्ति-चक्र— त्रिकोण-अष्टकोण दशारद्वितयचतुर्दशकोण ५ 'शक्ति-चक्र'

शिव-चक्र—अष्टदल-षोडशदल-मेखला-त्रितय-भूपुरत्रय ४ 'शिव-चक्र'। इत्यादौ 'शक्तिचक्राणि'।

"शक्ति-चक्राणित्रिकोणाष्टकोणदशारद्वितय चतुर्दशकोणात्मकानि पञ्च चक्राणि।।"[१]

---

[१] लक्ष्मीधरा।।

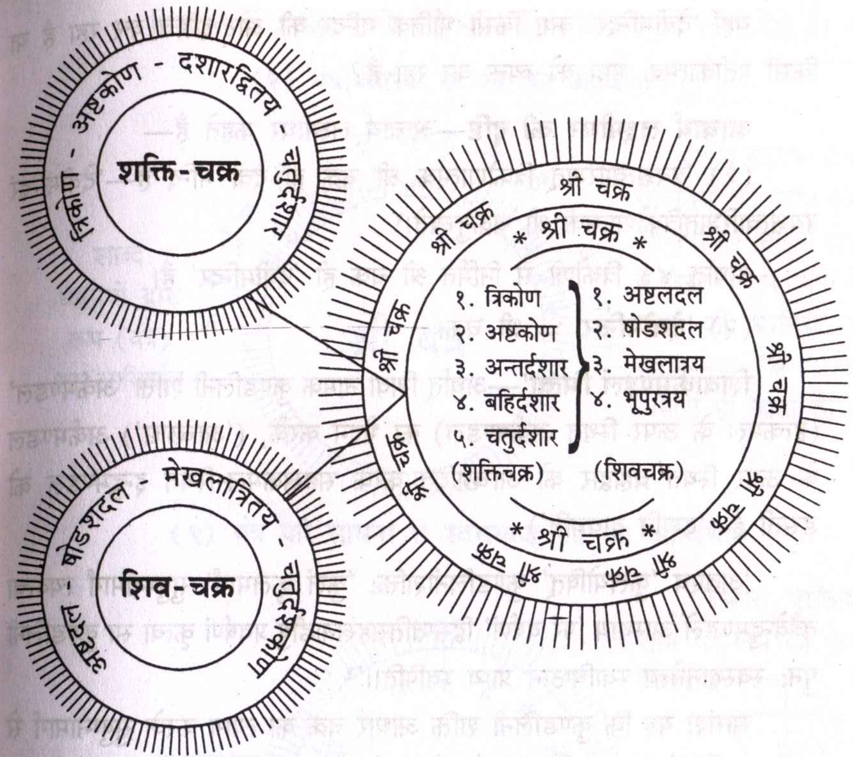
शक्ति-चक्र
त्रिकोण - अष्टकोण - दशारद्वितय - चतुर्दशार
शिव-चक्र
अष्टदल - षोडशदल - मेखलात्रितय - चतुर्दशकोण
श्री चक्र
* श्री चक्र *
१. त्रिकोण
२. अष्टकोण
३. अन्तर्दशार
४. बहिर्दशार
५. चतुर्दशार
(शक्तिचक्र)
१. अष्टलदल
२. षोडशदल
३. मेखलात्रय
४. भूपुरत्रय
(शिवचक्र)
* श्री चक्र *

'**शिवचक्राणि** तु अष्टदलषोडशदल मेखलात्रितयभूपुरत्रयात्मकानीति।।'

—लक्ष्मीधरा

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्तिमयं ज्ञेयं 'श्री चक्रं' शिवयोर्वपुः ॥

—भैरवयामल/चन्द्रज्ञान विद्या

× × × × × × × ×

भगवान शिव कहते हैं—

'त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणाद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च।
बिन्दुश्चाष्टदलं पद्म पद्मं षोडशपत्रकम्।
चतुरस्त्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्।

—शिव (भैरवयामल)

यहाँ 'देवीमन्दिर' क्या किसी भौतिक मन्दिर की ओर इङ्गित कर रहा है या किसी प्रतीकात्मक भाव को व्यक्त कर रहा है?

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'त्रयश्चत्वारिंशत् त्रिकोणात्मक श्री चक्र ही देवी मन्दि है—'देवीमन्दिरं त्रयश्चत्वारिंशत्त्रिकोणात्मकं श्री चक्रमुच्यते।[1]

अर्थात् ४३ त्रिकोणों से निर्मित श्री चक्र ही 'देवीमन्दिर' है।

(२) **'देवीमन्दिर'** = श्री चक्र।

शिवार्कमण्डलं भित्वा'—अर्थात् शिवा नामक कुण्डलिनी शक्ति 'अर्कमण्डल' (हृत्कमल के ऊपर स्थित अर्कमण्डल) का भेदन करके, ('आच्छाद्य') अर्कमण्डल के ऊपर स्थित ब्रह्मद्वार को आच्छादित करके सहस्रकमल-स्थित इन्दुमण्डल को डसती है ('दशति द्रावयति')

'अतएव 'कुलयोषित्' कुण्डलिनीशक्तिः 'कुलं कुलमार्गं' सुषुम्नामार्गं त्यक्त्वा तत्रैवेन्दुमण्डले आस्थाय 'परं वर्षणं' द्विसप्ततिसहस्रनाडीषु प्रवर्षणं कृत्वा सा कुण्डलिनी पुनः स्वस्थानमेत्य स्वाधिष्ठानं प्राप्य स्वपिति॥'[2]

सारांश यह कि कुण्डलिनी शक्ति आधार चक्र का त्याग करके सुषुम्नामार्ग से यात्रा करती हुई सहस्रार में जाती है और वहाँ हसस्रारस्थ चन्द्रमा को डसती है। इस सर्पदंश से प्रवाहित अमृत से वह ७२००० नाड़ियों को अमृत से सींचती है और फिर सुषुम्ना-पथ से प्रत्यावर्तन-यात्रा करती हुई पुनः **'मूलाधार चक्र'** में आकर या **'स्वाधिष्ठान'** में आकर वहाँ सो जाती है।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि आचार्य शंकर ने जो यह कहा है कि—

(१) 'सुधासिन्धोर्मध्ये'

(२) 'सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।'

इसमें 'सुधासिन्धु' का अर्थ है—'बैन्दवस्थान' "नवयोनिष्वधः स्थितशिवात्मकयोनि चतुष्कस्योपरि ऊर्ध्वस्थितशक्त्यात्मक योनिपञ्चकाधः प्रदेशस्य बैन्दवस्थानस्य नाम सुधासिन्धुरिति।'[3]

---

१. लक्ष्मीधरा

२. लक्ष्मीधरा

३. लक्ष्मीधरा (८)

* सिद्धान्त = प्रत्येक ध्वनि एक ज्यामितिक आकार को जन्म देती है। *

(१) मंत्रोच्चारण से यंत्र का आविर्भाव

शाब्द ध्वनियों द्वारा रूप (यंत्र) का आविर्भाव

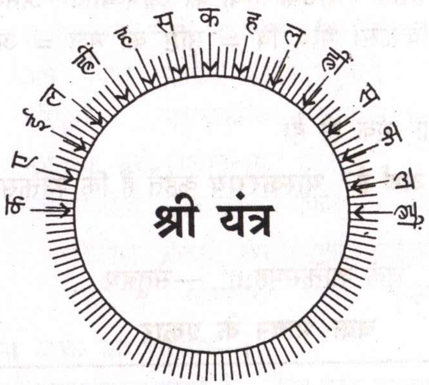

(शुद्ध सरगमा राग-रागिनियों की ध्वनि हास आकारों का निर्माण होता है उसी प्रकार मंत्र के वर्णों की ध्वनियों से स्वसम्बद्ध 'यंत्र' का निर्माण हो जाता है।

(२) यंत्र की साधना से स्वसम्बद्ध मंत्र का आविर्भाव

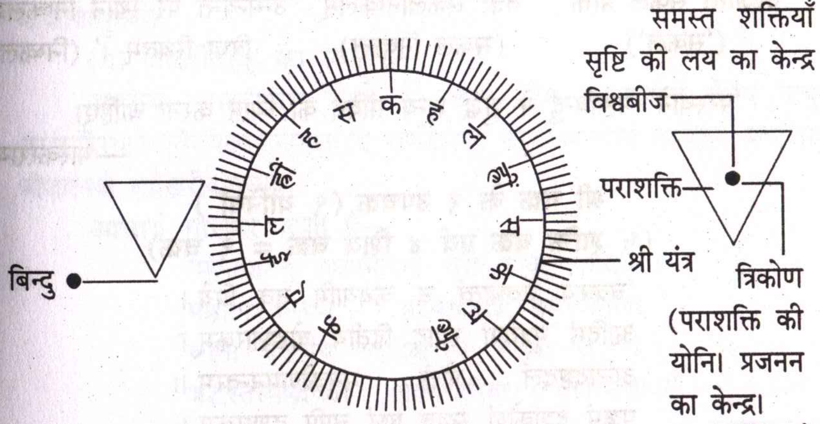
समस्त शक्तियाँ सृष्टि की लय का केन्द्र
विश्वबीज
पराशक्ति
बिन्दु
स
क
ह
ल
ह्रीं
ह
स
क
ल
ह्रीं
क
ए
ई
ल
ह्रीं
श्री यंत्र
त्रिकोण
(पराशक्ति की योनि। प्रजनन का केन्द्र।

बिन्दु से त्रिकोण एवं त्रिकोण से अन्य कोणों एवं श्री चक्र का जन्म होता है।

नाद

↓

मंत्रों की ध्वनियाँ = सृष्टि की कारणभूत शक्तियाँ

↓

विश्व = मंत्र रूपों की अभिव्यक्ति

'यंत्र' एवं 'मंत्र' परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। 'यंत्र' मंत्र बन जाता है। 'मंत्र' यंत्र बन जाता है। प्रत्येक ध्वनि एक प्रकार की ज्यामितीय आकृति का निर्माण करता है।

निरन्तराभ्यास या संततोपासना से 'यंत्र' शक्ति का रूप धारण कर लेता है। साधक अनेक वैश्विक गतिविधियों को नियंत्रित कर लेने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

यंत्र की सविध उपासना→वैश्विक तत्त्वों की अभिव्यक्ति→अनेक मा० शक्तियाँ प्राप्त→चित शक्ति का विकास। भौ० वि = सृष्टि का मूल = अणु + योगी = 'शक्ति'।

'मंत्र' 'यंत्र' 'देवता' एक ही हैं।

'चक्र' का क्या अर्थ है? भास्करराय कहते हैं कि शक्तिसमूह का नाम ही 'चक्र' है—

'चक्रं शक्तिसमूहः॥' —सेतुबंध

चक्र-भावन के प्रकार

'सकल'	'सकलनिष्कल'	'निष्कल'
'आज्ञान्तं सकलं प्रोक्तं'	'ततः सकलनिष्कलम्'	'उन्मन्यन्तं परे स्थाने निष्कलञ्च त्रिधा स्थितम् ।'
('सकल')	(सकल निष्कल)	(निष्कल)

'परस्थाने' महाबिन्दु में शुद्ध शून्य संविद का ध्यान करना चाहिए।

—भास्करराय

श्री चक्र के ९ उपचक्र (९ योनियाँ)
(५ शक्ति चक्र एवं ४ शिव चक्र = ९ चक्र)

'चक्रस्य नवधात्वं च कथयामि तव प्रिये।
आदिमं मूत्रयेण स्याद् द्वितीयं षोडशारकम्।
अन्यदष्टदलं प्रोक्तं मनुकोणमनन्तरम्॥
पञ्चमं दशकोणं स्यात् षष्ठं चापि दशारकम्।
सप्तत्रमं वसुकोणं स्यान्मध्यत्र्यस्त्रमथाष्टमम्॥
नवमं त्र्यस्त्रमध्यं स्यात् तेषां नामान्यतः शृणु।'

—योगिनीहृदय (चक्रसंकेत)

* चक्र नवक *

'योगिनीहृदय' में श्री चक्र में नवयोन्यात्मक नव चक्रों का वर्णन किया गया है। वह इस प्रकार है—

'त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्।
सर्वसंक्षोभणं गौरि ! सर्वसौभाग्यदायकम्॥

सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं परम्।
सर्वरोगहरं देवि ! सर्वरक्षाकरं परम्।
सर्वरोगहरं देवि ! सर्वसिद्धमयं तथा।
सर्वानन्दमयं चापि नवमं शृणु सुन्दरि।
अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
परिपूर्णं महाचक्रमजरामरकारकम्॥—योगिनीहृदय (चक्रसंकेत)

'नव योन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधाभिन्नमन्त्रकम्॥'—योगिनीहृदय (चक्रसंकेत १३)

'त्रिकोणे बैन्दवं शिलष्टमष्टारैऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्त्रके॥'

मध्यमा वाक् का स्वरूप—

आचार्य भास्करराय कहते हैं—'अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्ययात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्द प्रकाशरूप नादमय सन्मध्यमावागित्युच्यते।

(घ) वैखरीवाक् का स्वरूप—

आचार्य भास्करराय कहते हैं—'अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादि वर्णरूपपरं श्रोत्रग्रहणयोग्य स्पष्टतर प्रकाशरूप बीजात्मकं सद्वैखरीवागुच्यते॥'

आचार्य भास्कर कहते हैं—

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगोबुद्धियुङ्मध्यमाख्यः
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवन-प्रेरिता वर्ण-संज्ञा॥'

—प्रपञ्चसार तन्त्र

नित्यातन्त्रकार की दृष्टि—

'नित्यातन्त्र' में कहा गया है—

'मूलाधारे समुत्पन्नः **पराख्यो** विजृंम्भितः।
स एवोर्ध्वतयानीतः स्वाधिष्ठाने विजृंभितः।
पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः।
अनाहते बुद्धितत्त्व समेतो **मध्यमाभिधः**॥

(१) 'मूलाधार चक्र' में—'परावाक्'। नाभि देश से नीचे।
(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' में—'पश्यन्तीवाक्'। नाभि देश।

(३) 'अनाहत चक्र' में—'मध्यमावाक्'।

(४) 'विशुद्धाख्य चक्र में'—'वैखरीवाक्'।

('तथा तयोर्ध्वनन्त्रः सन्विशुद्धौ कण्ठदेशतः वैखर्याख्य॥'')

तीन वाणियों मनुष्य नहीं जानते हैं अतः कहा गया है कि—'चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति॥' (वेद)

श्रीचक्र में अन्तर्भूत लोक-लोकान्तर

'श्री चक्र' अनन्तब्रह्माण्डों की समष्टि भी है अतः यह ब्रह्माण्डस्वरूप है। इसमें अन्तर्निविष्ट एवं अन्तर्भूत लोक-लोकान्तरों का अवस्थान इसके पृथक्-पृथक् उपचक्रादि अङ्गों में है।

* श्री यन्त्र और उसके नवचक्र *

(१) महाबिन्दु
(२) बिन्दु
(३) त्रिकोण
(४) अष्टार
(५) अन्तर्दशार
(६) चतुर्दशार
(८) अष्टदल
(८) षोडशदल
(९) भूपुर

* श्री यन्त्र और उसके नवचक्र *

(१) सर्वानन्दमय चक्र
(२) सर्वसिद्धिप्रद चक्र
(३) सर्वरोग हर चक्र
(४) सर्वरक्षाकर चक्र
(५) सर्वार्थ साधक चक्र
(६) सर्वसौभाग्यदायक चक्र
(८) सर्वसंक्षोभण कारक चक्र
(८) सर्वाशापरिपूरक चक्र
(९) त्रैलोक्यमोहन-चक्र

भैरवयामल में कहा गया है कि—

> 'चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि।'

यदि 'श्री-चक्र' ब्रह्माण्डाकार है तो ब्रह्माण्ड का कौन-सा लोक 'श्री-चक्र' के किस चक्र में हैं?

श्री-चक्र और उसमें लोक-लोकान्तरों का अवस्थान

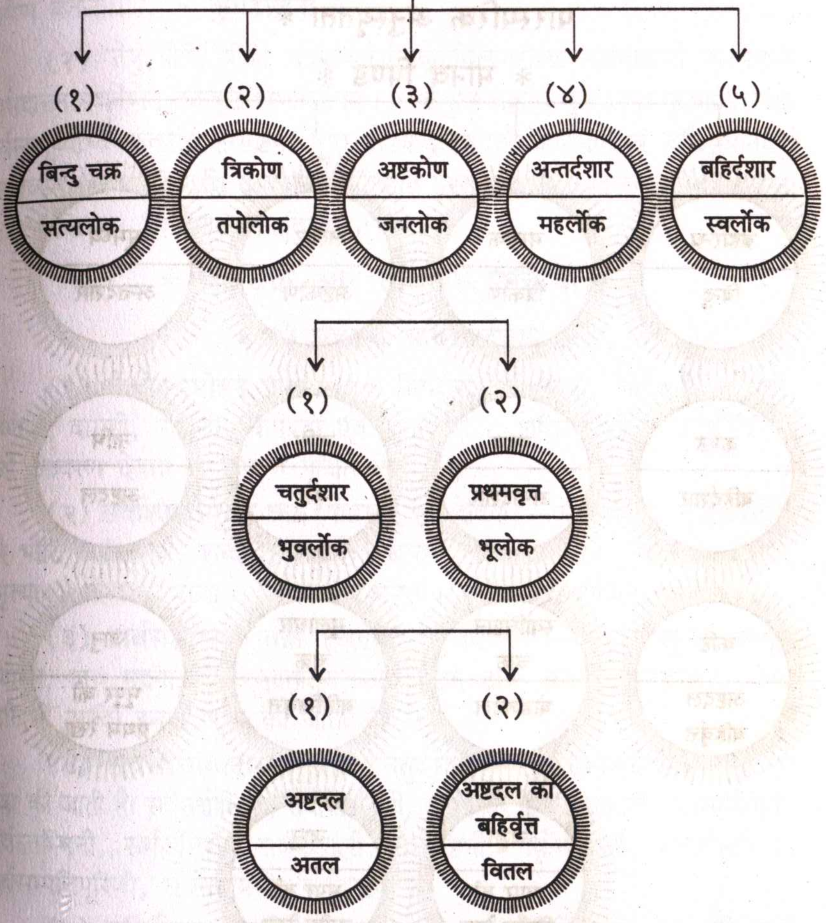
(१)
बिन्दु चक्र
सत्यलोक
(२)
त्रिकोण
तपोलोक
(३)
अष्टकोण
जनलोक
(४)
अन्तर्दशार
महर्लोक
(५)
बहिर्दशार
स्वर्लोक
(१)
चतुर्दशार
भुवर्लोक
(२)
प्रथमवृत्त
भूलोक
(१)
अष्टदल
अतल
(२)
अष्टदल का बहिर्वृत्त
वितल

श्री चक्र और लोक-लोकान्तर

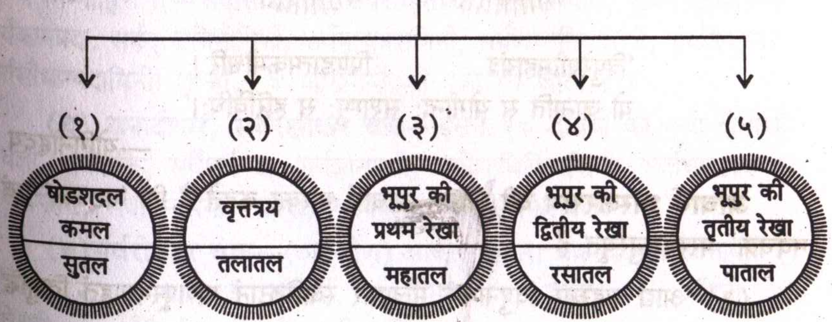
(१)
षोडशदल कमल
सुतल
(२)
वृत्तत्रय
तलातल
(३)
भूपुर की प्रथम रेखा
महातल
(४)
भूपुर की द्वितीय रेखा
रसातल
(५)
भूपुर की तृतीय रेखा
पाताल

* मानव पिण्ड, षट्चक्र एवं नव चक्रों की पारस्परिक अनुस्यूतता *

* मानव पिण्ड *

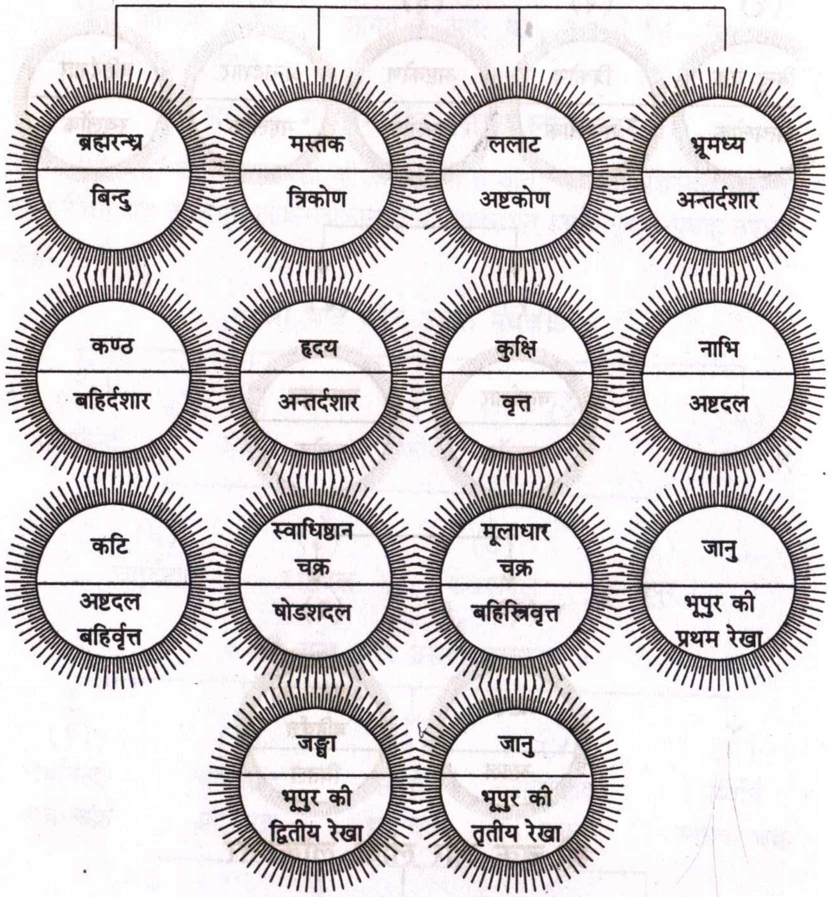
ब्रह्मरन्ध्र
बिन्दु
मस्तक
त्रिकोण
ललाट
अष्टकोण
भ्रूमध्य
अन्तर्दशार
कण्ठ
बहिर्दशार
हृदय
अन्तर्दशार
कुक्षि
वृत्त
नाभि
अष्टदल
कटि
अष्टदल बहिर्वृत्त
स्वाधिष्ठान चक्र
षोडशदल
मूलाधार चक्र
बहिस्त्रिवृत्त
जानु
भूपुर की प्रथम रेखा
जङ्घा
भूपुर की द्वितीय रेखा
जानु
भूपुर की तृतीय रेखा

'त्रिपुरेशीमहायंत्र पिण्डात्मकमीश्वरि ।
यो जानाति स योगीन्द्रः सशम्भुः स हरिर्विधिः।'

—योगिनीहृदय

आचार्य भास्करराय की दृष्टि—आचार्य भास्कर कहते हैं कि 'षट्चक्र' एवं 'नवचक्र' परस्परानुस्यूत हैं—

(१) 'आद्यं सहस्रारं विषुनामकं मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतं विशुद्धि लम्बिकाग्रं भ्रूमध्यश्चेति नवसु स्थानेषु त्रैलोक्यमोहनादि सर्वानन्दमयान्तानि नव चक्राणि क्रमेण वर्तन्त।।' *** कुण्डलिनी त्रय ***

(२) 'तेषु त्रीणि त्रीणि चक्राण्येकैकं कूटमित्येवरीत्या नवचक्राणां कूटत्रयस्य चाभेदात्तत्तत्स्थानेष्वेव तत्तत्कूटं विभावनीयम् । ततश्चाकुल चक्रस्य मूलमारभ्य मूलमाधारस्याग्र पर्यन्तमूर्ध्वोर्ध्व ककाराद्यक्षरपञ्चकं भूपुर-षोडशदलाष्टदलैर्यथाभागमभिन्नं वह्निसमानवर्णं विभाव्यम् । तदग्रे हि **वह्नि कुण्डलिनी** तिष्ठति तस्याश्च वाग्भवीयहृल्लेखान्त्यकामकला याश्चाभेदश्चिन्त्यः तयोरेकस्थानपातित्वात्।।'—

* श्री चक्र और तन्निहित शक्तियाँ *

* श्री चक्रस्थ आवरणदेवता

(१) त्रैलोक्यमोहन चक्र—१० सिद्धियाँ एवं ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी ८ शक्तियों की प्रकट योगिनियाँ (जो आवरण देवता के रूप में पूजित होती हैं।)

(२) सर्वाशापरिपूरक चक्र (षोडशार १६ देवियाँ)—कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी की भाँति अहंकारा०, शब्दा०, स्पर्शा०, रूपा०, रसा०, गंधा०, चिन्ता०, धैर्या०, स्मृत्या०, नामा०, बीजा०, आत्मा०, अमृता० एवं शरीराकर्षिणी।

(३) सर्वसंक्षोभण चक्र (अष्टार) (गुप्तयोनियाँ)—अनङ्गकुसुमा, अनङ्ग, मेखला, अ० मदना; अ० मदनातुरा, अ० रेखा, अ० वेगिनी, अनङ्गाकुशा, अ० मालिनी आदि। इनकी पूजा की जाती है।

(४) सर्वसौभाग्यदायक चक्र (चतुर्दशार)—१४ सम्प्रदाय योगिनियों की पूजा की जाती है। सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वरञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वद्वन्द्वकरी।

(५) वहिर्दशार, सर्वार्थसाधक चक्र—१० योगिनियों की पूजा की जाती है। ये निम्नाङ्कित हैं—सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पतप्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमंगलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमिनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वाङ्गसुन्दरी, सर्वसौभाग्यदायिनी। (इन्हीं १० योगिनियों की पूजा की जाती है।)

(६) अन्तर्दशार, सर्वरक्षाकर चक्र—इसमें १० देवियों की पूजा होती है। सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यपदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा-सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा।

(७)सर्वरोगहर चक्र—(अष्टकोण) आकार-अष्टार। चक्रस्थ मूल शक्तियाँ। १. वशिनी, २. कामेश्वरी, ३. मोदिनी, ४. विमला, ५. अरुणा, ६. जयिनी, ७. सर्वेश्वरी, ८. कौलिनी। चक्रेश्वरी = त्रिपुरासिद्ध।।

(८) सर्वरोगहर—सर्वसिद्धिप्रद एवं सर्वानन्दमय चक्र में भी योगिनियों की पूजा की जाती है।

* चक्र *

(१) **'महाबिन्दु'**—(आकार = रक्तबिन्दु के भीतर गुप्त श्वेत बिन्दु। चक्रस्थमूलशक्ति = पराशक्ति चक्रेश्वरी = प्रकाशविमर्शरूपिणी पराभट्टारिका।

(२) **'बिन्दु'**—चक्रस्थ मूल शक्ति ललिताम्बा। चक्रेश्वरी—श्रीललिता महाचक्रेश्वरी। योगिनीचक्र = परापर रहस्ययोगिनी चक्र।

(३) 'सर्वसिद्धिप्रद चक्र' (त्रिकोण)

१. चक्रस्थ मूल शक्तियाँ—कामेश्वरी। वज्रेश्वरी। भगमालिनी।

२. चक्रेश्वरी = त्रिपुराम्बा।

श्री चक्र

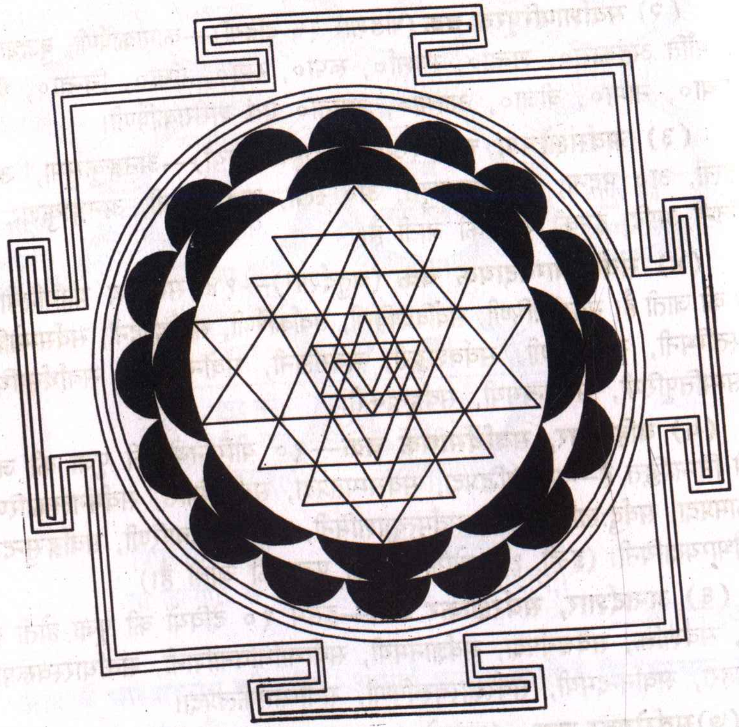

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

आचार्य पुण्यानन्द की दृष्टि—

बिन्दुद्वय एवं विद्या तथा देवता में अभेद है—

'बिन्दुद्वितयं यद्वदभेदविहीनं परस्परं तद्वत्।
विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः ॥'[१]

वाक एवं अर्थ दोनों परस्पर नित्यसंयुक्त हैं और ये दोनों शिवशक्तिमय हैं। ये शिवशक्ति सृष्टि-स्थिति-लय के रूप में तीन रूपों में विभक्त हैं और 'वाग्भव', 'कामराज' एवं 'शक्तिबीज' तीन बीजों के रूप में स्थित हैं।[२] ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय 'तीन बिन्दु' एवं 'बीज' के विभिन्न रूप हैं। ये तीनों बिन्दु तीनों धामों, तीनों पीठों एवं तीनों शक्तियों के भेद से भी जाने जाते हैं।[३] उनमें ही क्रमानुसार तीन लिङ्ग एवं उसी प्रकार तीन मातृकाएँ स्थित हैं। इस प्रकार जो यह त्रिप्रकारशरीरिणी विद्या देवी हैं वे तुरीयपीठ एवं समस्त भेदों का मूल हैं।[४] शब्द स्पर्श रूप रस गंध—सूक्ष्म भूत हैं। इनमें से प्रत्येक पूर्ववर्ती परवर्ती व्याप्य का व्यापक है और इस प्रकार सभी को क्रमिक रूप में परिगणित किए जाने पर संख्या में पन्द्रह गुण हैं। यह नित्या (त्रिपुरा) मन्त्रावस्थित पन्द्रह अक्षरों के स्वरूप वाली है और उसी रूप में जानी जाती है जिस रूप में कि वह भूतों में स्थित है एवं त्रिपुरा देवी शब्दादिक गुणों के भेद से परस्पर पृथक रूप में स्थित नित्याओं द्वारा आच्छादित है। पञ्चदशनित्यायें तिथियों के आकार में स्थित हैं और तिथियाँ शिवशक्ति का सामरस्य हैं। ये अहर्निश युक्त हैं। श्री विद्या के मन्त्र के वर्ण हैं तथा प्रकाश एवं विमर्श रूप दो प्रकृतियों वाली हैं।[५]

विद्या का तत्त्वात्मक एवं तत्त्वातीत स्वरूप—बिन्दुत्रय, व्यष्टि-समष्टि दोनों रूपों से स्वरों एवं व्यञ्जनों द्वारा निर्मित विद्या ३६ तत्त्वों से युक्त भी है और उनसे अतीत भी है और साथ ही केवल रूप में अद्वितीय स्थिति में स्थित है।[६] पञ्चदशाक्षरात्मक मंत्र रूप पञ्चदशी विद्या भी उसी प्रकार त्रिपुरावत चिदानन्दस्वरूपिणी, विश्वात्मिका एवं विश्वोतीर्ण है।[७] वह परिच्छेद शून्य त्रिपुरा सुन्दरी देवी है। तत्त्वविद्

---

१. कामकलाविलास (११)
२. तत्रैव (१२)
३. तत्रैव (१३)
४. कामकलाविलास (१४)
५. कामकलाविलास (१५, १६, १७)
६. कामकलाविलास (१८)
७. कामकलाविलास (१९)

योगियों ने विद्या (पञ्चदशी विद्या) एवं वेद्य (महात्रिपुरसुन्दरी देवी) दोनों में शाश्वतिक सामरस्य या अभेदात्मकता का प्रतिपादन किया है।[१]

देवी मातृका एवं चक्र भी है—सर्वातिशायी महेशी जिसका स्वरूप वितर्कातीत है और जो 'पश्यन्ती' आदि मातृकाओं के रूप में व्यक्त होने के कारण त्रिरूपात्मिका हैं चक्र के रूप में परिणत हो गई हैं। विद्वज्जन महेशी एवं चक्र में रञ्चमात्र भी भेद स्वीकार नहीं करते—

'चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यतेविबुधैः' स्वयं पराशक्ति इन दोनों—देवता एवं चक्र का सूक्ष्मतर स्वरूप है। स्थूल रूप में भी इन दोनों में कोई भेद नहीं है।[२]

चक्र का मध्यभाग 'परा' से युक्त है। यह 'बिन्दुतत्त्व' है। जब यह विकासोन्मुख होता है तब यह एक त्रिकोण के रूप में रूपान्तरित एवं अभिव्यक्त होता है। **पुण्यानन्द** कहते हैं—

'मध्ये चक्रस्य स्यात् परामयं बिन्दुतत्त्वमेवेदम्।
उच्छूनं तच्च यदा त्रिकोणरूपेण परिणतं स्पष्टम् ॥'[३]

यह **'त्रिकोण'** पश्यन्ती एवं अन्य शक्तियों का उद्गमस्थान एवं त्रिबीजात्मक है। **'वामा'**, **'ज्येष्ठा'**, **'अम्बिका'** एवं **'पराशक्ति'** इस शक्ति-चक्र का एक भाग है। **'इच्छा'**, **'ज्ञान'**, **'क्रिया'** एवं **'शान्ता'** अन्य अर्थात् उत्तरवर्ती भाग हैं। दो अक्षर (अ एवं ह) व्यष्टि-समष्टि रूप में गृहीत किए जाने पर ११ रूपों वाली **'पश्यन्ती'** का निर्माण करते हैं। इस प्रकार संयुक्त काम (परमशिव) एवं 'कला' (विमर्श शक्ति) तीन अक्षर हैं जिनका अपना स्वरूप तीन बिन्दु हैं। वही यह है जो कि गुणत्रय के रूप में अभिव्यक्ति पाती है और जिसने कि त्रिकोण का स्वरूप धारण किया है—

'एवं कामकलात्मा बिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी।
सेयं त्रिकोण रूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता ॥'[४]

'पश्यन्ती' का स्वरूप क्या है?—'मध्यमा' का स्वरूप क्या है? जो 'परावाक्' के अव्यवहित उत्तरवर्ती है, जो सृष्टिरूपात्मिका है और जो 'वामा' से 'शान्ता' पर्यन्त व्यष्टिभूता शक्तियों की जन्मदात्री (वाक् शक्ति का द्वितीय रूप) है उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। इसके कारण वह नवरूपात्मिका बन गई। माता 'मध्यमा' दो प्रकार के नामों से द्विप्रकारात्मिका है।

---

१. कामकलाविलास (१९)
२. कामकलाविलास (२१)
३. कामकलाविलास (२२)
४. कामकलाविलास (२५)

(१) 'स्थूल मध्यमा'—नववर्गात्मा (वर्णों के नौ वर्गों वाली) एवं भूतलिपि है।

(२) 'सूक्ष्म मध्यमा'—सूक्ष्म रूप में वह नवनादात्मा है।

वामा और ज्येष्ठा—

'वामा विश्वस्य वमनात् ज्येष्ठा शिवमयी यतः।
द्रावययित्री रुजं रौद्री दोग्ध्री चाखिलकर्मणाम् ॥'

(१) 'अम्बिका च सा स्फुरत्ता महासत्तेति'।

(२) 'परावाक्' अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता।

(३) इच्छाज्ञानक्रियाशक्तियस्तु पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी रूपाः॥ (इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता।)

(४) 'शान्ता'—शान्ता च निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्यादि श्रुत्या निरङ्कुशा चिन्मयी शक्तिः।

सूक्ष्म मध्यमा कारण है और स्थूल मध्यमा कार्य है। तथापि दोनों अभिन्न हैं यथा कारण एवं कार्य।

'परा', 'पश्यन्ती' एवं स्थूल 'मध्यमा' के द्वारा ५१ अक्षरों वाली 'वैखरीवाक्' उत्पन्न हुई।

(१) 'परयापश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या।
एताभिरेकपञ्चादशाक्षरात्मिका वैखरी जाता ॥'[१]

(२) 'या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत्।
सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादिभूयसा ॥'[२]

(३) 'प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृंगारवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥'

(४) 'वैखरी विश्वविग्रहा वाग्रूपप्रपञ्चमवयवैखरी रूपा जाताः ॥'[३]

अभिनव कहते हैं विवक्षात्मक अनुसन्धान ही 'वैखरी' है।[४]

---

१. कामकलाविलास (३२)
२. तन्त्रालोक
३. अमृतानन्दः 'दीपिका।
४. तन्त्रलोक (३/२४६)

भैरवयामलोक्त 'श्री चक्र' का स्वरूप

(क) * ९ चक्रों का संश्लिष्ट स्वरूप ही 'श्री चक्र' है *

भैरवयामल में कहा गया है कि 'श्रीचक्र'— (१) ५ शक्ति चक्रों एवं, (२) ४ शिव चक्रों से निर्मित हुआ है अतः 'शिवशक्तिमय' है।

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं 'श्रीचक्रं' शिवयोर्वपुः।

'श्रीचक्र' शिव एवं पार्वती का शरीर है।

(ख) * शक्ति चक्र एवं शिव चक्र *

(१) शक्तिचक्र—

'त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च॥'

(२) शिवचक्र—

'बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम्।
चतुरश्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनक्रमात्॥'[1]

(ग) * शक्ति चक्रों एवं शिवचक्रों में ऐक्य है *

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टं अष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोष्षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके।
शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसम्बंधं यो जानाति स चक्रवित्॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोण द्वयं तथा।
मनुकोणं चतुष्कोणं कोण चक्राणि षट्कमात्।
मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्ध्याख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः।
तवाधारस्वरूपाणि कोण चक्राणि पार्वति।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपश्शिवस्स्मृतः।
अविनाभाव सम्बंधः तस्माद्बिन्दु त्रिकोणयोः॥

* बिन्दु एवं त्रिकोण में अविनाभाव सम्बंध है *

(घ) सुधासिन्धु सहस्रार है—'सुधासिन्धु' जिसमें महात्रिपुरसुन्दरी रहती है

---

[1] भैरवयामल

वह बाह्य नहीं प्रत्युत् सहस्रार ('सहस्रदलकमल') में स्थित चन्द्रमण्डल मात्र है और 'त्रिपुरसुन्दरी' बैन्दवस्थान की चान्द्र कला, चिन्मयी और आनन्दरूपा आत्मा है—

(क) अतएव सहस्रकमलान्तर्मतचन्द्रमण्डलमध्यवर्ती सुधासिन्धुरेव भगवत्या विहरणस्थानम् 'सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे।

(ख) 'सहस्रदलकमलान्तस्स्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम्। तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते। सैव 'त्रिपुरसुन्दरी' —लक्ष्मीधरा

* श्री चक्र और सृष्टि की विभिन्न अवस्थायें *

श्रीचक्र सृष्टि (१) **'शुद्ध सृष्टि'** (२) **'शुद्धाशुद्ध सृष्टि'** एवं (३) **'अशुद्ध सृष्टि'** तथा सृष्टि की प्रत्येक अवस्था का मानचित्र है।

तत्त्वातीतावस्था—यह सृष्टिप्राक् वह अनुत्तर अवस्था है जिसमें शिव और शक्ति का सामरस्य रहता है। इस (प्रलयकालिक अवस्था) में विश्व शक्ति-गर्भ में अन्तःसंहृतभाव से अर्थात् शक्ति के साथ अभिन्न रूप से अवस्थित रहता है।

जब 'पराशक्ति' अपनी स्वेच्छा या स्वातंत्र्य शक्ति से स्वस्फुरण का साक्षात्कार करती है तभी विश्व की सृष्टि होती है।

'सृष्टि क्या है? 'सृष्टि' है 'परा शक्ति द्वारा स्वस्फुरण का दर्शन। इस स्वस्फुरण का साक्षात्कार ही विश्व का साक्षात्कार है। विश्व-साक्षात्कार (विश्व-दर्शन) ही विश्व की सृष्टि है। इस अवस्था में—

* दृष्टि ही सृष्टि है *

* **स्वस्फुरण का दर्शन ही 'सृष्टि' है** * जो 'अनुत्तर अवस्था' है उस अवस्था में यह यद्यपि विश्व स्वस्वरूप से अभिन्न रहता है तथापि विश्व को देखा नहीं जा सकता। इसी कारण यह कहा गया है वह अनुत्तरावस्था सृष्टिव्यापार है ही नहीं।

'दृष्टि' या सृजन-व्यापार में शिव उदासीन या तटस्थ ही रहते हैं। यहाँ उनकी स्वरूपभूता 'स्वातंत्र्य शक्ति' ही सब कुछ करती है।

शिव का स्वरूप है—अग्नि या संवर्त्तानल या प्रलयानल। **'शक्ति' का स्वरूप क्या है?**—'शक्ति है सोमस्वरूप' या विवर्तचन्द्ररूपा। दोनों का साम्यभाव 'बिन्दु' नाम से प्रसिद्ध है। यह 'बिन्दु' ही 'रवि' या 'काम' कहा जाता है। इसका क्षोभ (साम्य-भंग) होने पर सृष्टि आरब्ध होती है।

साम्यावस्था में 'अग्नि' एवं 'चन्द्र' रूपी 'रक्त' 'शुक्ल' बिन्दु (अ + ह) 'सूर्य' से अभिन्न रहते हैं। क्षुब्ध होने पर 'चित्कला' का आविर्भाव होता है। अग्नि

के ताप से पिघलने वाले घी की भाँति प्रकाश (अग्नि) के सम्बंध से विमर्श शक्ति का स्राव होने लगता है।

इस प्रकार श्वेत + रक्त बिन्दुओं के मध्य से 'चित्कला' बहने लगती है।

'महाबिन्दु'—रक्तबिन्दु के भीतर स्थित गुप्त श्वेतबिन्दु ही 'महाबिन्दु' है जो कि (रङ्ग की दृष्टि से) श्वेत है। यहाँ शरीरचक्र सहस्रदल कमल है तथा चेतनावस्था 'तुरीयातीत' है। इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी (चक्रेश्वरी) प्रकाश विमर्शरूपिणी पराभट्टारिका है। इस चक्र की मूल शक्ति पराशक्ति है।

जहाँ शुद्ध ब्रह्म में चैतन्य का आदि स्फुरण होता है उसी स्थान में यह श्वेतबिन्दुस्वरूप 'महाबिन्दु' स्थित है। यह स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण तीनों देहों से परे 'महाकारण' देहरूप 'तुरीयावस्था' है। यह साकार-निराकार, सविकार-निर्विकार, सगुण-निर्गुण आदि सभी से परे है।

महाबिन्दु-गर्भित शिवशक्ति की कला की संज्ञा 'शान्त्यतीत कला' है।

पुण्यानन्दनाथ की दृष्टि—तन्त्राचार्य पुण्यानन्दनाथ (अमृतानन्द के पिता) 'महाबिन्दु' को इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

> 'परशिव रविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे।
> प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः ॥'

अर्थात् प्रकाशैकस्वभाव परशिवभट्टारकरूप सूर्य की रश्मियों के समूह का विमर्शस्वरूप स्वच्छ दर्पण में (स्वस्वरूपावलोकन रूप) प्रतिफलन होने से तदुत्पन्न प्रतिप्रकाश, सुरम्य चित्त रूपी दीवार पर, 'महाबिन्दु' रूप में प्रकाशित होता है या प्रविष्ट होता है।

'महाबिन्दु' चित्त की दीवार पर आविर्भूत या प्रकाशित होता है। 'विमर्श' क्या है? अवधिशून्य आकार-विस्फुरण की शक्ति—'विमर्शो नाम अनवधिकाकारविस्फुरण शक्तिः।'[1]

नटनान्द कहते हैं कि उसी 'विमर्श' नामक शक्ति को 'प्रत्यभिज्ञाकारिका' में 'स्फुरत्ता' कहा गया है। 'प्रतिफलन' क्या है? प्रतिफलन है शिव का स्वस्वरूपावलोकन स्वरूप आत्मप्रतिबिम्बन।

'प्रतिफलनं' नाम स्वस्वरूपावलोकनम्।'[2]

इस प्रतिफलन का परिणाम यह होता है कि चित्तरूपी दीवार पर 'महाबिन्दु' आविर्भूत होता है।

यदि हम किसी भी दर्पण को सूर्याभिमुख रक्खें तो सूर्य का प्रतिबिम्ब दर्पण में प्रादुर्भूत होगा और वह अपने सामने स्थित दीवार पर भी अपने प्रतिबिम्ब (प्रतिप्रकाश) का आविर्भाव करेगा।

---

[1] नटानन्दः 'चिद्वल्ली' (४)

[2] चिद्वल्ली (४)

---

* महाबिन्दु का स्वरूप *

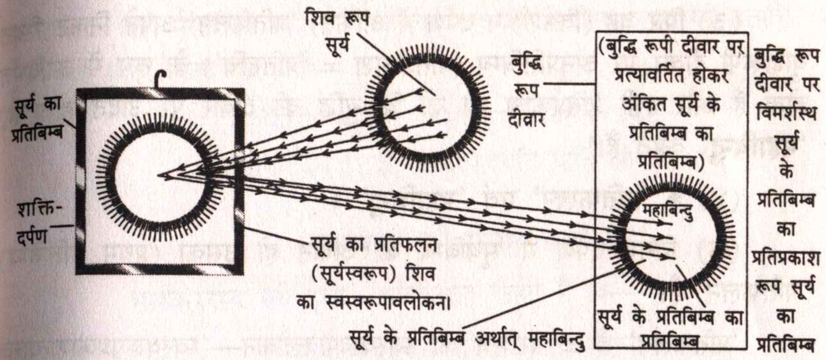
शिव रूप सूर्य
सूर्य का प्रतिबिम्ब
शक्ति-दर्पण
बुद्धि रूप दीवार
(बुद्धि रूपी दीवार पर प्रत्यावर्तित होकर अंकित सूर्य के प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब)
बुद्धि रूप दीवार पर विमर्शस्थ सूर्य के प्रतिबिम्ब का प्रतिप्रकाश रूप सूर्य का प्रतिबिम्ब
महाबिन्दु
सूर्य का प्रतिफलन (सूर्यस्वरूप) शिव का स्वस्वरूपावलोकन।
सूर्य के प्रतिबिम्ब अर्थात् महाबिन्दु
सूर्य के प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब

(१) सिसृक्षु शिव अपने भीतर स्थित एवं दर्पण की भाँति निर्मल दृष्टिगोचर होने वाली 'विमर्शशक्ति' में अपने को देखता है अतः उसमें उसका प्रतिबिम्ब अंकित हो जाता है।

(२) शिव एक सूर्य है और उसकी शक्ति एक दर्पण है। जब शिव अपने शक्तिरूप दर्पण में अपने को देखता है तो उस दर्पण में सूर्य का प्रतिबिम्ब अंकित हो उठता है। इसी को **पुण्यानन्द** ने सूर्य के बिम्ब का 'प्रतिफलन' (अर्थात् प्रतिबिम्ब) कहा है।

(३) यदि हम एक दर्पण सूर्याभिमुख रक्खें तो उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब अंकित हो उठेगा किन्तु यदि दर्पण के सामने कोई दीवार खड़ी हो तो दर्पण में अंकित सूर्य प्रतिबिम्ब प्रत्यावर्तित होकर उस दीवार पर भी अंकित हो उठेगा।[1]

(४) दर्पण में अंकित सूर्य के प्रतिबिम्ब को पुण्यानन्द ने 'प्रतिफलन' कहा तथा प्रतिफलन से निर्मित एवं दीवार पर अंकित सूर्य-प्रतिबिम्ब को 'प्रतिरुचि' (प्रतिप्रकाश) कहा।[2]

नटनानन्द की दृष्टि—नटनानन्द कहते हैं—

(१) 'विमर्शदर्पणे (परशिवस्य) प्रतिफलनम् नाम स्वरूपावलोकनम् ॥'[3]

(२) 'लोकेऽपि सूर्याभिमुखस्थित दर्पणतले सूर्यकिरण-प्रतिफलनानन्तरं निकटगत कुड्ये सूर्यकिरणप्रतिहत तेजोबिन्दुः प्रत्यक्षं प्रतिपद्यते। तद्वत्प्रकाशरूपपरमेश्वरस्य दर्पणवत् स्वस्वरूपविमर्श सम्बन्धे जाते तदानीं तत्र 'महाबिन्दुः' पूर्णोऽहमित्येवंरूपः परमेश्वरोऽवभासत॥'[4]

---

[1] चिद्वल्ली

[2] चिद्वल्ली

[3] चिद्वल्ली

[4] चिद्वल्ली

सारांश यह है कि परमशिव—

(१) प्रथमतः शक्ति में प्रतिबिम्बित होता है।

(२) शिव के इस प्रतिबिम्बन को 'प्रतिफलन' कहा गया है।

(३) फिर वह (विमर्शरूप दर्पण में अंकित) 'प्रतिफलन' अपने निकट स्थित बुद्धिरूपी दीवार पर अनुप्रतिबिम्ब (प्रतिप्रकाश = 'प्रतिरुचि') के रूप में आविर्भूत होता है और इसी प्रतिप्रकाश को जो कि बुद्धि की दीवार पर उदित होता है, **'महाबिन्दु'** कहते हैं।[1]

(४) * 'प्रतिफलन' एवं 'महाबिन्दु' *

(क) विमर्श-दर्पण में सूर्यबिम्ब का अंकन ही उसका (प्रथम प्रतिबिम्ब) 'प्रतिफलन' है।

'प्रतिफलन' है = परशिव का स्वस्वरूपावलोकन—'स्वस्वरूपप्रकाशत्वात्तत्र प्रतिफलनं नाम स्वस्वरूपावलोकनम् ॥'

(ख) **'महाबिन्दु'** क्या है? यह है आत्मप्रत्यभिज्ञा (शिव की अपनी प्रत्यभिज्ञा) : 'पूर्णोऽहं' की पहचान 'महाबिन्दुः पूर्णोऽहमित्येवरूपः परमेश्वरोऽवभासत॥' 'महाबिन्दु' शिव की 'पूर्णोऽहम्' की आत्मानुभूति है।

परब्रह्म का जगत्कारणत्व तभी चरितार्थ होता है जब वह अपनी शक्ति का साक्षात्कार करता है—

'स्वात्मशक्तिनिरीक्षणाभिमुखं परब्रह्मं जगत्कारणरणमित्युच्यते ॥'[2]

* महाबिन्दु उन्मना से भी ऊपर स्थित है *

'महाबिन्दु' तुर्यातीतावस्था के स्तर पर (शक्तिकूट) के शिखर पर उन्मना से भी ऊर्ध्व में स्थित है।

आगमों ने भी इस अवस्था के वर्णन इसी रूप में किया है—

'स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः ॥[3]

प्रत्यभिज्ञा में भी कहा गया है—

'सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालविशेषिणी।
सैषा सारतया चोक्ता हृदये परमेष्ठिनः ॥'[4]

---

[1] चिद्वल्ली (श्लोक ४)

[2] चिद्वल्ली (नटनानन्द)

[3] वरिवस्यारहस्यम् (१/२६)

[4] भास्करराय

परमानन्द योगी ने भी यही बात कही है—

'इदृगियत्तादि वचो दूरतरं स्वानुभूतिसंवेद्यम्।
तत्तादृशस्फुरत्ताशेषं संवित्कथानुसाराख्यम् ॥'

यही नैसर्गिकी स्फुरता है जिसकी सहायता से शिव जगत की उत्पत्ति, पालन एवं संहार किया करता है—

'नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्यवर्तते शक्तिः।
तद्योगागदेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति ॥'

'महाबिन्दु' की स्थिति कहाँ है?

भास्करराय की दृष्टि—भास्करराय कहते हैं कि—

'ऊर्ध्वाधोबिन्दुद्वयसंयुतरेखा कृतिः समना।
सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः ॥'[1]

'महाबिन्दु' उन्मना शक्ति से भी अतीत है।

(क) 'मूलाधार' से ऊपर स्वाधिष्ठान, 'स्वाधिष्ठान' से ऊपर मणिपूरक, मणिपूरक से ऊपर **'अनाहत'**, अनाहत से ऊपर **'विशुद्धाख्य'**, विशुद्धाख्य से ऊपर **'आज्ञा'**, आज्ञा से ऊपर सुषुप्ति रूप 'बिन्दु' स्थित है।

(ख) 'बिन्दु' से ऊपर अर्द्धचन्द्र, अर्धचन्द्र से ऊपर 'रोधिनी' रोधिनी से ऊपर 'नाद', नाद से ऊपर 'नादान्त', नादान्त से ऊपर 'शक्ति', शक्ति से ऊपर 'व्यापिनी', व्यापिनी से ऊपर 'समना', समना से ऊपर 'उन्मना' एवं उन्मना से ऊपर 'महाबिन्दु' अवस्थित है।

'पञ्चदशाक्षरी श्री विद्या' की 'शक्ति कूट' वाली तुर्यातीतावस्था में भी सर्वोच्च शिखर पर 'महाबिन्दु' अवस्थित है।[2]

भास्करराय कहते हैं—

'प्रकृतानुपयुक्तमप्युन्मनो परिस्थानं चक्रराजस्य त्रिविध-भावनान्तर्गतनिष्कल भावनायामुपयुक्तत्वेन प्रसङ्गादाह—तदूर्ध्वं 'महाबिन्दु'रिति।[3]

---

[1] कामकलाविलास

[2] भास्करराय

[3] प्रकाश (१/२६) 'महाबिन्दु' शिव के आत्मसाक्षात्कार की अवस्था है।

स्वच्छन्दसंग्रहकार की दृष्टि—'महाबिन्दु' तत्त्वातीतावस्था है। **'स्वच्छन्दतंत्र'** में कहा गया है—

'तत्त्वातीतं वरारोहे वाङ्मनोऽतीतगोचरम्।
अनिष्कलं चासकलं नीरूपं निर्विकल्पकम्।
निर्द्वन्द्वं परमं तत्त्वं शिवाख्यं परमं पदम्॥'

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद (आचार्य शंकर के परमगुरु) कहते हैं—

(१) 'सहस्रार' (सहस्रदलकमल) से आविर्भूत 'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' के १० दल 'मणिपूर' चक्र के १० दल बन जाते हैं।

(२) हृदय (अनाहतचक्र) तथा 'मूलाधार चक्र' के दल मिलकर १६ दल 'विशुद्ध चक्र' के. १६ दल हो जाते हैं।

(३) वही एक 'सहस्रार' चक्र' वह (एक) बिन्दु बन जाता है जिससे कि जगत की उत्पत्ति आदि व्यापार निष्पन्न किये जाते हैं—

'अधिष्ठानाधार द्वितयमिदमेव दशदलं,
सहस्राराज्जात मणिपुरमतोऽभूद्दशदलम्॥'
हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूतस्वान्तकमलं,
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्॥'

एक ही **सहस्रारस्थ बिन्दु** विभक्त होकर 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' बन जाता है और दशधा विभक्त हो जाता है—

'दशधा। भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः'

इसे ही 'परबिन्दु' कहा जाता है।

* 'सहस्रार' में एक 'बिन्दु' के रूप में भगवती परासंवित् का ध्यान करना चाहिए। *

निःशेष प्रपञ्च-विस्तार उस परासंवित् का ही रूप है, उसी का रूपान्तर है, उसी का आत्मप्रसार है।

'सहस्रार' से भी ऊपर **'परमबिन्दु'** है किन्तु **आचार्य गौड़पाद** कहते हैं कि 'सहस्रार' ही बिन्दु बन जाता है और उसी से 'बैन्दवगृह' का भी आविर्भाव होता है। वही सहस्रार १० भागों में या १० रूपों में विभक्त हो जाता है—

'सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं,
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।

ततो मूलाधाराद्वितयमभवत्तद्दशदलं।
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत्॥'

'महाबिन्दु' में रूप, वर्ण एवं उच्चारणकाल तीनों नहीं हैं—

'महाबिन्दौ......... रूपवर्णोच्चारणकाला न विद्यन्ते।'

—यो०हृ०दीपिका (अमृतानन्द)

यह विश्वोतीर्ण है—'विश्वोत्तीर्णत्वात्॥'

शंका—'सहस्रार' चक्र से ऊपर 'बिन्दु' है और बिन्दु से ऊपर 'अर्द्धचन्द्र' तथा अर्द्धचन्द्र से ऊपर 'रोधिनी', रोधिनी से ऊपर 'नाद', नाद से ऊपर 'नादान्त', नादान्त से ऊपर 'शक्ति', शक्ति से ऊपर 'व्यापिका', व्यापिका से ऊपर 'समना' एवं समना से ऊपर 'उन्मना' स्थित है और उन्मना से ऊपर'महाबिन्दु' है तो क्या गौड़पाद का 'दशधा विभक्त होने वाला परमबिन्दु' महाबिन्दु नहीं प्रत्युत् अर्धचन्द्र के नीचे स्थित 'बिन्दु' मात्र है?

इस प्रश्न का उत्तर यथावसर सविस्तार प्रस्तुत किया जाएगा।

* महाबिन्दु का स्वरूप *

(१) कामकलाविलासकार की दृष्टि—

परशिवरविकर निकरे, प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे।
प्रतिरुचि रुचिरे कुड्ये, चित्तमये निविशते **महाबिन्दुः**॥'

(२) वरिवस्यारहस्यकार की दृष्टि—

सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं **महाबिन्दुः**॥ (१/२६)

(३) गौड़पादाचार्य की दृष्टि—

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवं गृहं।
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्॥

(४) आगम की दृष्टि—

दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः
चतुर्थाधार कमले षोढाऽधिष्ठान पंकजे।
उभयाकाररूपत्वात् इतरेषां तदात्मता॥

(५) शारदातिलककार की दृष्टि—लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं—

'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दु समुद्भवः।

अर्थात् सच्चिदानन्द एवं नाद से 'बिन्दु' का आविर्भाव हुआ।

—'नादाद्बिन्दुसमुद्भवः॥' (१/७)

(६) प्रपञ्चसारतंत्रकार की दृष्टि—आचार्य शंकर कहते हैं—

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्र ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्धनीभूता क्वचिदम्येति बिन्दुताम् ॥ —(प्र० सा० तं०)

(७) पाञ्चरात्रकार की दृष्टि—वैष्णवागम के सर्वोच्च ग्रंथ 'पाञ्चरात्र' में कहा गया है—

'एवमालोक्य सर्गादौ सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
समस्ततत्त्वसंघात्मस्फुर्त्याधिष्ठानरूपिणीम् ।
व्यक्तां करोति नित्यां तां प्रकृतिं परमः पुमान् ।
तस्या एव नादबिन्दू सृष्ट्युपयोगावस्थारूपौ ॥'

(८) प्रयोगसारकार की दृष्टि—

'नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता सैव सर्गक्षमा तेन।'

(९) अन्य दार्शनिकों की दृष्टि—

'अभिव्यक्ता पराशक्तिर विनाभावलक्षणा
अखण्डपरचिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः ।
समस्ततत्त्वभावेन विवर्तेच्छासमन्विता
प्रयाति बिन्दुभावञ्च क्रियाप्राधान्यलक्षणम् ॥'

(१०) आचार्य लक्ष्मणदेशिक की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मणदेशिक कहते हैं कि 'वह परशक्तिमय 'बिन्दु' पुनः तीन भागों में विभक्त हो गया। उसके ये भेद इस प्रकार हैं—

(क) **'बिन्दु'** (ख) **'नाद'** एवं (ग) **'बीज'**।

ये भेदत्रय वाले 'बिन्दु' एवं 'नाद' पूर्वोक्त 'बिन्दु' एवं 'नाद' से पृथक हैं।

सच्चिदानन्द सकल परमेश्वर→'शक्ति'→'नाद'→'बिन्दु'→(१) बिन्दु, (२) नाद, (३) बीज।

शिवात्मक 'बिन्दु' } + शक्त्यात्मक 'बीज' } बिन्दु और बीज या शिव शक्ति में } 'नाद' (नादाविर्भाव)

'परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः ।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ।
बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः ।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः ।'
—शारदातिलकम्।

(१) 'बिन्दु' → रौद्री शक्ति
(२) 'नाद' → ज्येष्ठा शक्ति
(३) 'बीज' → वामा शक्ति का आविर्भाव हुआ।

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र ने 'परमबिन्दु' 'परबिन्दु' या 'महाबिन्दु' शब्दों का उल्लेख नहीं किया।

'योगिनीहृदय' में कहा गया है—

'आज्ञान्तं सकलं प्रोक्तं ततः सकलनिष्कलम् ।
उन्मन्यन्तं परे स्थाने निष्कलञ्च त्रिधा स्थितम् ॥'

यह **'पर स्थान'** ही है—'महाबिन्दु'।

प्र०—यदि यह कहा जाय कि 'बिन्दु' (अर्द्धचन्द्र के नीचे स्थित बिन्दु पिकरा करते करते) 'सहस्रार' बन गया तो तर्कसङ्गत है। 'बिन्दु' कारण है और 'सहस्रार' कार्य है किन्तु 'सहस्रार' ही 'बिन्दु' बन गया और उसी बिन्दु से 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' चक्र उत्पन्न हुए—यह कथन तो कथमपि संभव नहीं है। 'बिन्दु' सहस्रारातीत अवस्था है अतः उसका निम्नतम चक्र बनना कथमपि संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में यह 'बिन्दु' कौन-सा है जो दशधा विभक्त हुआ और सहस्रार से एकीभूत है? —यो०हृ० दीपिका

(निष्कल श्रीचक्र तो 'परस्थान' महाबिन्दु में है।)

(क) अकुल से आज्ञा चक तक के चक्र = **'सकल'**
(ख) आज्ञा चक्र से ऊर्ध्वस्थित बिन्दु से उन्मना तक = **'सकल निष्कल'**
(ग) उन्मना के ऊर्ध्व में अवस्थित 'महाबिन्दु' = **'निष्कल'**

'सकल चक्र' (१)	'सकलनिष्कल चक्र' (२)	'निष्कल चक्र' (३)
अकुल से आज्ञा	बिन्दु से उन्मना तक के चक्र	उन्मना से ऊपर = 'महाबिन्दु'

(१) **'महाबिन्दु'** ही विश्व का हृदय है।

(२) **'महाबिन्दु'** ही विश्वातीत परमेश्वर या शिवशक्ति का आविर्भावस्थान या आसन है।

(३) वस्तुतः **'महाबिन्दु'** ही सदाशिव है। इसके ऊपर चित्कला या चिच्छक्ति स्वातंत्र्यमयी होकर क्रीड़ा करती है। यह क्रीड़ा 'परावाक्' या परामात्रा का विलास है।

(४) **'महाबिन्दु' के स्पन्दन** से तीनों विलीन बिन्दु पृथक्-पृथक् होकर रेखा रूप में परिणत होकर **'महात्रिकोण'** का आकार ग्रहण कर लेते हैं। इसी से शिव से पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्त्वों से निर्मित 'विश्व' का निर्माण होता है।

(५) **'महाबिन्दु' ही सदाशिव** है जिसके ऊपर (चित्कला) या चिच्छक्ति स्वातंत्र्यमयी होकर क्रीड़ा करती है। यह क्रीड़ा क्या है? यह क्रीड़ा 'परावाक्' या परामात्रा का विलास है। शुक्ल तथा रक्तबिन्दुरूप प्रकाश—विमर्शमय कामकलाक्षर के परस्पर संघट्ट से 'चित्कला' का आविर्भाव होता है।

* बिन्दु *

आचार्य शंकर की दृष्टि—आचार्य शंकर कहते हैं कि प्रकृति ज्योति के सम्पर्क में आने पर 'चिन्मात्रा' है। वह चिन्मात्रा प्रकृति, सिसृक्षा होने पर घनीभूत हो जाती है और रूपान्तरित होकर 'बिन्दु' केरूप में प्रकट होती है। यही बिन्दु 'काल' रूप साधन से (Through insturumentality of kala) अपने को तीन भागों में विभाजित कर लेता है। ये तीन भाग निम्नाङ्कित हैं—

(१) **'स्थूल बिन्दु'** (२) **'सूक्ष्म बिन्दु'** (३) **'परबिन्दु'**। इन्हें ही क्रमशः—
(क) **'बीज'** (ख) **'नाद'** एवं (ग) **'बिन्दु'** कहते हैं।

जब **'परमबिन्दु'** आत्मविभाजन करता है तब उस समय एक 'अनाहतनाद' का आविर्भाव होता है। इस अनाहत नाद को ही **'शब्दब्रह्म'** कहते हैं। यह 'अवाच्य' और 'स्वसंवेद्य' है।

आचार्य शंकर अपने शब्दों में इसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'प्रकृतेश्च क्वचित् कालो विकृतिं प्रतिपादयेत् ॥४०॥
सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते ॥
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते।
तद्विस्तारप्रकारोऽयं यथा वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।

—प्रपञ्चसारतन्त्रः प्रथम पटल

इसी अव्यक्त ध्वनि से **'महत्तत्त्व'** का आविर्भाव हुआ। महत्तत्व से त्रिकारात्मक (वैकारिक, तैजसिक एवं सात्विक) अहंकार का प्रादुर्भाव हुआ। 'अहंकार' से ५

तन्मात्राओं का एवं तन्मात्राओं से स्थूल पञ्चमहाभूतों का आविर्भाव हुआ। अहंकार से ही किन्तु गुणदोषमयी शक्ति के माध्यम से 'शब्द' उत्पन्न हुआ। 'शब्द' से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्त्व का आविर्भाव हुआ। अहंकार से ही कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की भी उत्पत्ति हुई। आविर्भूत तत्त्वों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

(१) **'प्रकृति'**—(मूल प्रकृति) = प्रकृति है।

(२) **'प्रकृति-विकृति'**—महत्तत्त्व, अहंकार एवं पञ्चतन्मात्रायें **'प्रकृति-विकृति'** तत्त्व हैं।

(३) **'विकृति'**—१६ पदार्थ (षोडशक) १० इन्द्रियाँ ५ महाभूत एवं मनविकृति पदार्थ हैं। ये ही **१६ विकार** कहे जाते हैं।

आचार्य श्री कहते हैं—

'अव्यक्तादन्तरुदितत्रिभेदगहनात्मकम् ।
महन्नाम भवेत्तत्त्वं महतोऽहङ्कृतिस्तथा।
भूतादिक-वैकारिक-तैजसभेद क्रमादहंकारात्।
कालप्रेरितया गुणघोषयुजा शब्दसृष्टिरथ शक्त्यः।
शब्दाद् व्योम स्पर्शतस्तेन वायु
स्ताभ्यां रूपाद्वह्नि रेतै रसाच्च।
अम्भांस्येतैर्गन्धतो भूर्धराद्या,
भूताः पञ्चस्युर्गुणोनाः क्रमेण ॥'

—आचार्य शंकर (प्रपञ्चसारतन्त्र)

आचार्य भास्कर की दृष्टि—आचार्य भास्करराय ने 'ललितासहस्रनाम' पर प्रणीत अपने भाष्य ('सौभाग्य भास्कर') में आचार्य शंकर के इस दार्शनिक विवेचन की इस प्रकार व्याख्या की—

(१) प्राणियों के पूर्वकृत कर्मों के परिपक्व हो जाने पर तदनुरूप (अर्थात् उसी प्रकार का) कर्माभिन्न एवं मायावच्छिन्न ब्रह्म 'घनीभूत' कहलाता है—
'प्राणिकर्मणामपरिपाकदशायां तादृश कर्माभिन्न मायावच्छिन्नं ब्रह्म घनीभूतमित्युच्यते।।'

(२) यथाकालक्रमानुसार प्राणियों के कर्मों के परिपक्व हो जाने पर परिपाकप्रागभाव **'विचिकीर्षा'** कहलाती है—'परिपाकप्रागभावो विचिकीर्षेत्युच्यते।।'

(३) फिर कर्मों के परिपाक के क्षण में मायावृत्ति का आविर्भाव होता है। उस प्रकार का परिपक्व कर्माकार परिगणित मायाविशिष्ट ब्रह्म **'अव्यक्त'** कहलाता है। इसीलिए उसकी उत्पत्ति भी इस प्रकार स्मरण की जाती है—

'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम् ॥'

(१) यह (यही अव्यक्त) जगदङ्कुरकन्द रूप होने के कारण 'बिन्दु' कहा जाता है—'कारणबिन्दु' पदेन व्यवह्रियते।।'

'प्रपञ्चसारतन्त्र' में **आचार्य शंकर** ने इसी प्रसंग में कहा है कि—

'विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येत्ति बिन्दुता ।।'

(२) इसी **'कारणबिन्दु'** के संपर्क (सामीप्य, उपस्थित, निकटवर्ती पड़ोस) से **'कार्यबिन्दु'** और 'कार्यबिन्दु' से **'नाद'** एवं 'नाद' से **'बीज'** उत्पन्न होते हैं—

(क) कारण बिन्दु → कार्य बिन्दु

(ख) कार्य बिन्दु → नाद

(ग) नाद → बिन्दु

'कारणबिन्दोः सकाशात् क्रमेण कार्यबिन्दुस्ततो नादस्ततो बीजमिति बीजमुत्पन्नम्।'

—सौ० भास्कर

इन्हें ही **'पर' 'सूक्ष्म' 'स्थूल'** कहा जाता है। इनके तीन रूप हैं—(१) चिदंश, (२) चिदंशअचिदंशमिश्रित, (३) अचिदंश।

कालशक्ति से भिद्यमान होने पर एक ही 'बिन्दु' तीन भागों में विभाजि हो जाता है।

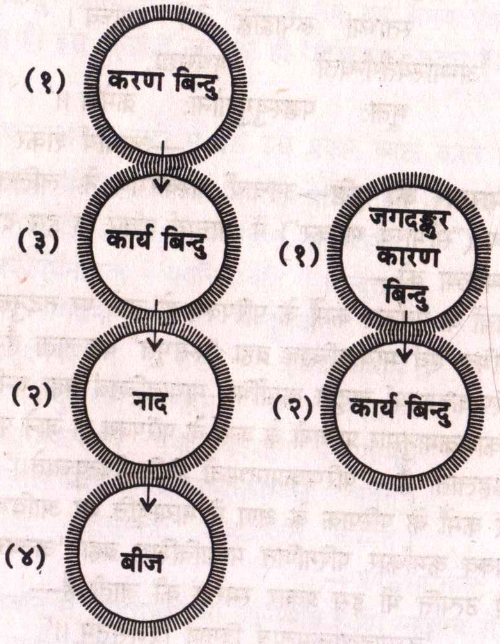

'कारण बिन्दु' आदि चार अधिदैवत—(१) अव्यक्त, (२) ईश्वर, (३) हिरण्यगर्भ एवं (४) विराट।

इन्हें (१) 'शान्ता', (२) 'वामा', (३) 'ज्येष्ठा' और (४) 'रौद्री' या (१) 'अम्बिका', (२) 'इच्छा', (३) 'ज्ञान' और (४) 'क्रिया' कहा जा सकता है।

अधिभूत स्वरूप—(१) **'कामरूपपीठ'**, (२) **'पूर्णगिरिपीठ'**, (३) **'जालन्धर-पीठ'** एवं (४) **'उड्याणपीठ'** कहा जा सकता है। —नित्याहृदय

अध्यात्म स्वरूप—कारणबिन्दु है मूलाधारस्थ विश्वजननी कुण्डलिनी।

अविभागावस्थ कारणबिन्दु क्या ?

'शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां ।
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ।
—अयमेव च अविभागावस्थः 'कारणबिन्दुः' ।

यही कारण बिन्दु 'कार्यबिन्दु' आदि के रूपों में रूपत्रयाकाराकारित होकर आविर्भूत होता है—

'अयमेव च यदा कार्यबिन्द्वाद्वित्रय जननोन्मुखो भिद्यते तद्दशायामव्यक्तः शब्दब्रह्माभिधेये रवस्तत्रोत्पद्यते। 'सोऽयं र वः कारणबिन्दुतादात्म्यापन्नत्वात् सर्वगतोऽपि व्यञ्जक यत्न संस्कृत पवनवशात् प्राणिनां मूलाधारे एवाभिव्यज्यते—

'देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन्समुदेति समीरणः ।
विवक्षोरिच्छयोत्थेन प्रयत्नेन सुसंस्कृतः ।।'

(१) 'कारणबिन्दु' 'शब्दब्रह्म' एवं 'परावाक्'—

(क) 'परावाक्'—आचार्य भास्करराय कहते हैं—

'कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दं तदेव च परावागित्युच्यते।

—सौभाग्य भास्कर

(ख) 'पश्यन्ती वाक्'—यही परावाक् नाभि में व्यक्त होने पर **'पश्यन्ती वाक्'** कहलाता है।

'अथ तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्द प्रकाशरूप कार्यबिन्दुयमं सत्पश्यन्तीवागुच्यते। —सौभाग्य भास्कर

(१) **भास्करराय** कहते हैं—'इत्थ चतुर्विधासु मातृकासु परादित्रयमजानन्तो मनुष्याः स्थूलदृशो वैखरीमेव वाचं मन्वते।' —भास्करराय 'सौभाग्यभास्कर'

(२) **श्रुति कहती है**—'तस्माद्यद्वाचोऽनाप्तं तन्मनुष्या उपजीवन्ति' (अनाप्त = 'अपूर्ण' वाणीत्रय से विरहित।)

(३) वेदों में भी इस विषय में इस प्रकार कहा गया है—

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानिवदुर्ब्राह्मणो मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।'

(४) **स्कान्दयज्ञवैभवखण्ड** में भी कहा गया है—

'अपदं पदमापन्नं पदं चाप्यपदं भवेत् ।
पदापद-विभागं च यः पश्यति सः पश्यति ।।'

('अपदं = गतिरहित। निःस्पन्द शब्दब्रह्म। 'पदमापन्नं' = 'परादिपदचतुष्टयं जातं।' पदचतुष्टय के ज्ञात होने पर साधक सद् पदवाच्य ब्रह्म हो जाता है। पद का चातुर्विध्य है—

'परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता ।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका ।।'

—ललिता सहस्रनाम

(५) **सौभाग्यसुधोदयकार की दृष्टि**—'सौभाग्यसुधोदय' में कहा गया है कि—

'पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहिः ।
स्फुटतर निखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात् ।।'

'वैखरीवाक्'—विशेषेण खरः कठिनस्तस्येयं वैखरी सैव रूपं यस्याः।। 'वै' = निश्चयेन'। 'खं'-कर्णविवरं 'राति'। गच्छंतीति व्युत्पत्ति। —सौभाग्यसुधोदय

'प्राणेन विखराख्येन प्रेरिता वैखरी पुनः।।'

महात्रिकोण—इस 'महात्रिकोण' में पीठत्रय अवस्थित हैं। प्रत्येक पीठ में ही विश्व का रूप भासित होता है। स्वरूप की दृष्टि से तो वह बीजरूप है किन्तु बहिर्देश में सृष्टि रूप से अवस्थित है।

—**'पीठ' क्या है ? 'पीठ'** = प्रकाश एवं विमर्श की मात्राओं का साम्यभाव। यथा—'अम्बिका' एवं 'शान्ता' का सामरस्य = **'कामरूप पीठ'**।

कामरूपपीठ—यह पीतवर्ण एवं चतुष्कोणात्मक है तथा शरीर में मूलाधार चक्र' में अवस्थित है। इसका नामान्तर है—'मन'।। आधारचक्र में **'स्वयंमूलिङ्ग'** स्थित है।

'स्वयंभूलिङ्ग' क्या है ? जब मन (कामरूप पीठ) में बिन्दु-चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब उसे **'स्वयंभूलिङ्ग'** कहते हैं। कामरूपपीठ **'महात्रिकोण'** का अग्रकोण है। महात्रिकोण के अवशिष्ट कोणद्वय (क) **'पूर्णगिरि पीठ'** एवं (ख) **'जालन्धरपीठ'** हैं। इनमें प्रतिफलित चैतन्य **'इतरलिङ्ग'** एवं **'बाणलिङ्ग'** के नाम से प्रख्यात हैं।

'इतरलिङ्ग' एवं **'बाणलिङ्ग'** को 'बुद्धि' एवं 'अहंकार' का आख्यान्तर माना जाता है। **'इतरलिङ्ग'** हृदय में एवं **'बाणलिङ्ग'** भ्रूमध्य में अवस्थित हैं।

'उड्डीयान पीठ' मध्यबिन्दु के रूप में स्थित है। इसका नामान्तर **'चित्त'** है। इसमें जो ज्योति देदीप्यमान है। उसका नाम **'परलिङ्ग'** है। प्रत्येक लिङ्ग सुनिश्चित वर्णों से ही आच्छादित है किन्तु **'परलिङ्ग'** समस्त वर्णों से आच्छादित है।

'परलिङ्ग' का वैशिष्ट्य—'परलिङ्ग' की विशेषता यह है कि परमपद से 'प्रथमस्पन्द' के रूप में यही उदित हुआ करता है।

पीठ और लिङ्ग तथा उनका स्वरूप

(१) **'कामरूप पीठ'** = पीतवर्ण, चतुष्कोण, आधार चक्र, स्वयंभू लिङ्ग, पीठ का स्वरूप 'मन'।

(२) **'पूर्णगिरि पीठ'** = स्थान—हृदय। पीठ का नामान्तर = 'बुद्धि'। लिङ्ग = इतर लिङ्ग। बुद्धि का प्रतीक।

(३) **'जालान्धर पीठ'** = स्थान—भ्रूमध्य। लिङ्ग = बाण लिङ्ग। अहंकार का प्रतीक। पीठ का नामान्तर = 'अहंकार'।

(४) **'उड्डीयान पीठ' या 'श्री पीठ'** = लिङ्ग = 'परलिङ्ग' = समस्त वर्ण-वेष्टित। चित्त का प्रतीक। पीठ का नामान्तर—'चित्त'।

अन्तःकरणचतुष्टय

(१)	(२)	(३)	(४)
'मनस्तत्त्व'	'बुद्धितत्त्व'	'चित्त तत्त्व'	'अहंकारतत्त्व'
(कामरूपपीठ)	(पूर्णगिरिपीठ)	(श्रीपीठ)	(जालान्धरपीठ)
(स्वयंभूलिङ्ग)	(इतरलिङ्ग)	(बाणलिङ्ग)	(परलिङ्ग)

पीठों का स्वरूप क्या है? अमृतानन्द कहते हैं—

'पीठाश्चत्वारः पिण्ड-पद-रूप-रूपातीत-शब्देन तत्तत्स्थानान्याधार—हृदय—भ्रूमध्य—ब्रह्मरन्ध्राणि लक्ष्यन्ते। 'पीठाः कन्दे पदे रूपे रूपातीते क्रमात स्थिताः।

—योगिनीहृदय

* पीठ देवी के ही रूप हैं *

भास्करराय की दृष्टि—

'ब्राह्मसृष्टौ कामरूपं पूर्णगिरिर्जारलन्ध्रमौड्यानमिति पीठा एतद्देवी रूपा ।'

('कन्द' = मूलाधार। 'पद' = हृदय, 'रूप' = भ्रूमध्य। 'रूपातीत' = निष्कल, ब्रह्मरंध्र)।

> 'कन्दः कुण्डलिनीशक्तिः पदं हंसः .प्रकीर्तितः।
> रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु निष्कलम्॥'
> 'पीठाः क्रमेण क्षिति-पवन-जलाग्निमण्डलरूपा॥'

—भास्करराय : सेतुबन्ध

(१) **'कामरूपपीठ'** = चतुरस्र, पीतवर्ण, भूतत्व।

(२) **'पूर्णगिरिपीठ'** = षड्बिन्दु युक्त, वर्तुल, धूम्रवर्णवायु तत्त्व।

(३) **'जालरन्ध्रपीठ'** = अर्धचन्द्राकार, श्वेत जलतत्त्व।

(४) **'उड्याण पीठ'** = त्रिकोण, रक्त अग्नि तत्त्व।

—भास्करराय (सेतुबन्ध ४२-४३)

पीठतत्त्व—अमृतानन्द कहते हैं कि **'पीठ'** सूक्ष्म शक्तियों के रूपान्तर मात्र हैं यथा—

'चतस्रः (अम्बिकाद्याः शान्ताद्यश्चतस्रः) क्रमेणपरस्परं सामरस्यमापन्नाः 'का' 'पू' 'मा' 'ओ' इति आसन्।

(१) 'का' = कामरूपपीठम्, (२) 'पू' = पूर्णगिरिपीठम्

(३) 'जा' = जालन्धरपीठम्, (४) 'ओ' = ओड्याणपीठम्।

'प्रकाशविमर्शात्मतया समरसीभूताः पूर्वोक्ताश्चतस्रः शक्तयः कामरूपपूर्णगिरि–जालन्धरौड्याणपीठरूपेण परिणताः।' —अमृतानन्द हृदयदीपिका (१/४२)

नाथसम्प्रदाय में कहा गया है कि—अद्वैत के भी ऊर्ध्व में विराजमान निराकार-साकार से अतीत, परमशून्य, निरञ्जनस्वरूपनाथ से प्रारम्भ में निराकार ज्योतिनाथ हुए। उनसे साकारनाथ, उनकी इच्छा से सदाशिव भैरव और उनसे शक्ति भैरवी का आविर्भाव हुआ। सदाशिव से ही विष्णु उत्पन्न हुए। उनसे ब्रह्मा एवं उनसे यह समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई।

नाथ से द्विविध सृष्टि

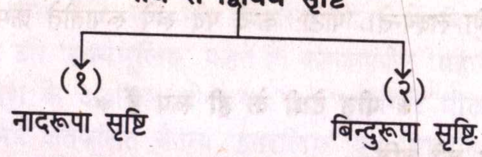

(क) नादरूपा सृष्टि शिष्य-क्रम से होती है।

(ख) बिन्दुरूपा सृष्टि पुत्र-पौत्रादि क्रम से चलती है।

(ग) 'नाद' से नव नाथ उत्पन्न हुए।

(घ) 'बिन्दु' से सदाशिव-भैरव उत्पन्न हुए।

(ङ) शब्द-सृष्टि से पहले सूक्ष्मरूपिणी सृष्टि उत्पन्न हुई फिर स्थूलरूपिणी।

(च) सूक्ष्मरूपिणी सृष्टि ही है—'प्रणव' एवं 'योगशास्त्र'।

(छ) स्थूलरूपिणी सृष्टि है—'ब्रह्मगायत्री' एवं वेदत्रयी।

(ज) योगशास्त्र से तंत्रशास्त्र हुआ एवं वेदों से स्मृत्यादिशास्त्र।

—गोरक्ष सि०

योगियों के मतानुसार योगशास्त्र और तंत्रशास्त्र का प्रत्यक्ष (सीधा) सम्बन्ध है।

शारदातिलककार की दृष्टि—'शारदातिलक' तंत्र शास्त्र का प्रमुख ग्रंथ है। शारदातिलक के अनुसार शिव के दो रूप हैं—(१) निर्गुण, (२) सगुण।

(१) जब निर्गुण शिव का प्रकृति से योग होता है तब सगुण शिव का आविर्भाव होता है।

(२) सगुण शिव से 'शक्ति' का आविर्भाव होता है।

(३) **'शक्ति'** से **'नाद'** (पर) एवं उससे **'बिन्दु'** (पर) का आविर्भाव होता है।

(४) क्रम इस प्रकार है निर्गुण शिव → सगुण शिव → शक्ति → परनाद, → परबिन्दु।

इस स्तर तक 'नाद' एवं 'बिन्दु' अव्यक्त रहते हैं। यहीं से वे व्यक्त होकर प्रकट होते हैं। इस अवस्था में **'परबिन्दु'** से तीन प्रकार की अभिव्यक्ति होती है—

(१) 'अपरबिन्दु' (२) 'बीज' (३) 'अपरनाद'।

इन्हीं तीनों से यथाक्रम 'रुद्र', 'विष्णु' एवं 'ब्रह्मा' का प्रादुर्भाव होता है। यही सृष्टि-चक्र है।

(५) निर्गुण शिव विशुद्ध चैतन्य है और सगुण शिव सोपाधिक (उपाधियुक्त) शिव है।

(६) सोपाधिक चैतन्य से सोपाधिक शक्ति का आविर्भाव होता है।

(७) इन दोनों के संयोग से विश्व में जो एक विक्षोम होता है वही **'नाद'** है। 'नाद' शिव एवं शक्ति के सम्बन्ध का अपर पर्याय है। उस विक्षोभ का क्रियाशील होना ही 'बिन्दु' है।

(८) इस नाद एवं बिन्दु से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त निर्विशेष 'नाद' एवं 'बिन्दु' को ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए **'परनाद'** एवं **'परबिन्दु'** कहा गया है। इसे

‘परमनाद’ एवं **‘बिन्दु’** भी कहा गया है। इन्हीं से अपर (सविशेष) नाद, **‘बीज’** एवं **‘बिन्दु’** का उद्भव होता है। ये ही क्रमशः (१) ‘इच्छा’, (२) ‘ज्ञान’ एवं (३) ‘क्रिया’ के प्रतीक हैं।

(क) अपरनाद **‘इच्छाशक्ति’** है।

(ख) अपरबिन्दु **‘क्रियाशक्ति’** है।

इन्हीं से क्रमशः (१) विष्णु, (२) ब्रह्मा एवं (३) रुद्र की उत्पत्ति होती है।

‘परबिन्दु’ से **‘अपरनाद’** और **‘अपरबिन्दु’** का उद्भव हुआ। यहीं शंका उठी कि—*पहले ‘नाद’ उत्पन्न हुआ कि ‘बिन्दु’?*

(९) तन्त्र का निर्गुण शिव कबीरपन्थ के सत्य पुरुष के बराबर है। सगुण शिव निरञ्जन पुरुष है। शक्ति आद्या शक्ति है। ‘नाद’ ही स्वयंवेद्य यानी कबीरदास की वाणियों के ‘निर्मलवेद’ के सदृश है और ‘बिन्दु’ उसकी क्रिया के सदृश है।

कुण्डलिनी-वेधन की प्रक्रिया के संदर्भ में ‘नाद’ ‘बिन्दु’ पर भी विचार कर लिया जाय।

(क) **नाद**—जब कुण्डलिनी अपनी अनादिकालीन सुप्ति का त्याग करके ऊपर की ओर उत्थित होती है तब उससे एक ‘स्फोट’ होता है। इसे ही ‘नाद’ कहते हैं।

(ख) **महाबिन्दु**—‘नाद’ से प्रकाश का उदय होता है। प्रकाश का ही व्यक्त रूप **‘महाबिन्दु’** है।

(ग) यह ‘बिन्दु’ तीन प्रकार का है—

(१) **‘इच्छा’** (२) **‘ज्ञान’** (३) **‘क्रिया’**।

इन्हें ही योगी (१) सूर्य, (२) चन्द्र एवं (३) अग्नि कहते हैं।

इन्हें ही कभी (१) ब्रह्मा (२) विष्णु एवं (३) शिव कहा जाता है।

नाद और बिन्दु—यह जो ‘नाद’ एवं ‘बिन्दु’ है यह वस्तुतः अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त ‘अनाहतनाद’ (अनहदनाद) का व्यष्टि रूप है।

जो ‘नाद’ अनाहत भाव से निःशेष जगत में व्याप्त है उसी का प्रकाश जब व्यक्ति में होता है तो उसे ‘नाद’ और ‘बिन्दु’ कहते हैं।

शास्त्रों में जिसे प्रणव या ओंकार कहते हैं वही उपाधिरहित ‘शब्दतत्त्व’ है। वैयाकरणों ने इसे **‘स्फोट’** की आख्या दी है। यह **‘स्फोट’** अखण्ड सत्तारूप ब्रह्मतत्त्व का वाचक है। **‘स्फोट’** को ही **‘शब्दब्रह्म’** और सत्ता को **‘ब्रह्म’** कहा गया है।

‘स्फोट’ वाचक शब्द है और सत्ता ‘वाच्य’ है। इस प्रकार ‘वाच्य’ (ब्रह्मसत्य) का

प्रकाशक ‘वाचक’ (स्फोट या नाद) भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रकाशक भी है। यह **‘शब्द’ मूलाधार से उठता है** और **‘सहस्रार’ में जाकर लय हो जाता है।**

(१०) ब्रह्मरंध्र के सहस्रार पद्म के मूल में जो ‘योनि’ नामक त्रिकोणाकार शक्ति का केन्द्र है वही **चन्द्रमा का स्थान** है। इसमें से निरन्तर अमृत झरता रहता है। यही अमृत **‘सोमरस’** है।

(११) ओंकार (नाद) पर भी दृष्टि डाल लें।

ॐ के ५ खण्ड

(क) खण्ड—	तारक	दण्डक	कुण्डली	अर्द्धचन्द्र	बिन्दु
(ख) निवारी—	(ब्रह्मा)	(विष्णु)	(रुद्र)	(ईश्वर)	(सदाशिव)

‘कपिल गीता’ में कहा गया है—

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
तस्मिन्मध्ये स्थितं तत्त्वं प्रदर्शयति सद्गुरुः ॥
तारकं च भवेद् ब्रह्मा दण्डकं विष्णुरुच्यते ।
कुण्डल्यां हि तथा रुद्रोऽर्द्धचन्द्रे स ईश्वरः ॥
निरंजनस्तदा तीत उत्पत्तिस्थितिकारणम् ।
दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ।

—कपिल गीता

कुण्डलिनी का जागरण→स्फोट

(१) ‘एकोऽहं’ = ‘ज्ञान’

(२) ‘बहुस्याम’ = ‘इच्छा’

सृष्टि का त्रिशूल

(१)	(२)	(३)
‘इच्छाशक्ति’	‘ज्ञानशक्ति	‘क्रियाशक्ति’
‘बहुस्याम’	(एकोऽहं)	(बहुत्व रूप सृष्टि)

इच्छाज्ञानक्रियाअभेदवाद—परमात्मा में इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया में भेद नहीं है। इच्छा हुई नहीं कि क्रिया सम्पन्न हो गई।

* पूजा, उपासना एवं उसके आदर्श रूप *

'अधः सहस्रार' के ऊर्ध्वभाग में सृष्टि-स्थिति एवं संहार क्रम से (अधिकार भेद की दृष्टि से) श्रीचक्र का अर्चन तीन प्रकार से निष्पादित किया जाता है—

> 'स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारो वनिनो यतेः।
> ब्रह्मचारिण उत्पत्तिः स्त्रियः शूद्रस्य चेष्टतः॥'

(१) **दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय में मान्य विधान**—'दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय' में बिन्दु से आरंभ करके भूपुर पर्यन्त अर्थात् सृष्टिक्रम से अर्चन करना चाहिए।

'भूपुर' से आरम्भ करके अष्टार पर्यन्त और फिर बिन्दु से आरम्भ करके चतुर्दशार पर्यन्त पूजन 'स्थितिक्रम' में होना चाहिए।

'संहारक्रम' में भूपुर से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त अर्चन करना चाहिए।

(२) **हयग्रीव एवं आनन्द भैरव सम्प्रदाय में मान्य विधि**—'स्थिति क्रम' में पूर्ववत् बिन्दु त्रिकोण कामेश्वरी-नित्या-गुरु पंक्ति का पूजन करते हुए उसके पीछे भूपुर से आरंभ करके यथाक्रम अष्टार-त्रिकोण की पूजा करनी चाहिए। अन्य विधान समान हैं।

(क) बिन्दु से आरम्भ करके अष्टदलपर्यन्त—'सृष्टि चक्र'

(ख) चतुर्दशार से आरंभ करके दशारपर्यन्त—'स्थिति चक्र'

(ग) अष्टार से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त—'संहार चक्र'

यही है चक्रत्रय का त्रिपुरस्वरूपत्व॥

श्रीचक्र की प्रधान नायिका पराम्बा, ललिता त्रिपुरसुन्दरी हैं।

प्रतीकात्मकता—

(१) भूपुर-वृत्त-त्रिकोण : गुणत्रय, कालत्रय, अवस्थात्रय, लोकत्रय के बोधक हैं।

(२) त्रिकोणस्थ बिन्दु—तुरीय या तुरीयातीत अवस्था का बोधक है।

(३) पिण्डब्रह्माडैक्य—चक्र की ब्रह्माण्डत्मकता एवं पिण्डात्मकता का बोधक है।

(४) प्रणव शब्द ब्रह्म श्रीचक्र का ही बोधक है।

षटचक्र एवं श्रीचक्र—पिण्ड के मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत-विशुद्ध-आज्ञा श्री चक्र के ही अवयव है और उसके अन्तर्भूत हैं।

श्रीचक्र के भेद

(१) 'सृष्टिचक्र' भूपुर-त्रिवृत्त-षोडशदल अष्टदल का समुदाय।

(२) चतुर्दशार, बर्हिदशार, अन्तर्दशार का समूह।

(३) अष्टार-त्रिकोण-बिन्दु का समवाय।

उनकी समष्टि में द्वितीय बिन्दु **'अनाख्याचक्र'** है। तृतीय बिन्दु **'भासा चक्र'** है। 'कालीक्रम' में सृष्टिचक्र मूलाधार चक्र में होता है।

'श्रीविद्या' में साधना-विधान—श्री विद्या के प्रधान ग्रंथ—'परशुरामकल्पसूत्र' 'नित्योत्सव' आदि ग्रंथों में साधना की दिशा में प्रथम सोपान 'दीक्षा' स्वीकार किया गया है। अर्थात् अदीक्षित व्यक्ति के लिए इस साधना में कोई स्थान एवं उसमें प्रवेशाधिकार नहीं है। दीक्षा का फल है—पशुवासना का क्षय।[1] गुरु-ज्ञान→'ज्ञानसद्भाव'→पशुवासना का क्षय। (क्षीयन्ते पशुवासना, 'पाशबद्धः पशुः')। **अभिनवगुप्त के अनुसार** परमाद्वैत की भावना से विपरीत भावना ही **'पाश'** है।

श्रीविद्योपासना का चरम लक्ष्य—'श्रीविद्योपासना' ज्ञान, भक्ति, उपासना एवं योग सभी साधना-प्रणालियों का आत्मीकरण करके निष्पादित की जाती है अतः इस साधना के चरम लक्ष्य में भी दृष्टिभेद है।

आचार्य परशुराम की दृष्टि—आचार्य परशुराम भक्ति के अङ्गभूत उपचारों में षोडशोपचारों के प्रतिपादक हैं अतः यह प्रतीत होता है कि वे अद्वैतवादी या ज्ञानमार्गी नहीं हो सकते, किन्तु वे कहते हैं कि साधक को सदैव शिव के साथ समत्व प्राप्त करने की साधना करनी चाहिए—

> 'सततं शिवता समावेशः॥'

यह शिवता समावेश 'शांभवोपाय' है। 'शांभवोपाय' का स्वरूप इस प्रकार है—

> 'अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः।
> उत्पद्यते य आवेशः शाम्भवोऽसावुदाहतः॥'

श्रीविद्यासाधना और मानसी पूजा—यह अद्वैतसाधनामय, शांभवोपायात्मक, शिवतासमावेशात्मक, सायुज्यनिष्ठ, जीवन्मुक्तिनिष्ठ, भावनानिष्ठ, भावभक्ति-प्रेमाभक्तिमय एवं द्वयात्मक अद्वयवादपरक साधना है।

'शाक्त दर्शनम्' (हयग्रीवोक्त) में उपासना के १० अङ्ग कहे गये हैं—

(१) 'कवचहृदयसहस्रनामस्तवराजलहरीवेदपादस्तवावरणस्तवगीतार्थर्वशीर्षासूक्तान्यङ्गानि॥' —शाक्तदर्शनम् (१६।३।२१)

(२) 'जपेन्नित्यं दशाङ्गानि' —(शा० द० हयग्रीवाचार्य)

---

[1] तंत्रालोक (१।१६८)

* आचार्य भास्करराय प्रोक्त साधनाङ्ग *

(१) आन्तरिक अङ्ग—(१) विद्या के वर्णों की संख्या (२) उद्धार, (३) काल (मात्रा) (४) उच्चारण (५) स्थान (६) प्रयत्न (७) रूप (८) विभिन्न स्थितियाँ (९) आकारादि स्थितियाँ आदि।

(२) बाह्य अङ्ग—(१) ऋषि (२) छन्द (३) देवता (४) विनियोग (५) बीज (६) शक्ति (७) कीलक (८) न्यास (९) ध्यान (१०) नियम (११) पूजा।

जप के अङ्ग

५ अवस्थायें ६ शून्य ७ विषुव ९ चक्र १५ मंत्रार्थ वर्णोच्चारण आदि।

जप एवं * षोडशोपचार *—आचार्य परशुराम ने जहाँ १६ उपचारों को काम्य माना हैं वहीं **आचार्य शंकर** एवं **आचार्य लक्ष्मीधर** ने बाह्याचारों को त्याज्य माना है।

पुण्यानन्द ने 'कुण्डलिनी एवं श्रीविद्या' (महात्रिपुरसुन्दरी) को अभिन्न मानते हुए यह कहा है कि साधक को चाहिए कि वह भी इनसे अभिन्नता की अनुभूति करे—

'साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः ॥'

(१) यहाँ **'मन्त्र'** पूर्णहन्तानुसन्धान है। —वरिवस्यारहस्यम्।

'पूर्णाहन्तानुसंध्यात्म स्फूर्जन्मननधर्मतः ।
संसारक्षयकृतत्राण धर्मतो मंत्र उच्यते ॥'

(२) 'जप'—यहाँ **'जप'** बाह्य क्रिया नहीं है। प्रत्युत् आन्तर नाद का उच्चारण है—

'संयमेन्द्रिय संचारं प्रोच्चरेन्नादमान्तरम् ।
एष एवं जपः प्रोक्तो न तु बाह्यजपो जपः ॥'

× × × × × × × ×

'भूयोभूयः परे भावे भावना भाव्यते हि या।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मंत्रात्मा जप्य ईदृशः ॥'

(३) 'धूप'—यहाँ धूप अग्नि में ज्वलित पदार्थ नहीं है प्रत्युत् यह तो परमानन्दानुभूति है—

'धूत शेषमहादोषपूतिगंधप्रभावतः ।
परमानन्दजननाद् धूप इत्यभिधीयते ॥'

(४) 'दीप'—यहाँ **'दीप'** दिया में जलने वाली बत्ती से पूर्ण कोई दीपक नामक पात्र नहीं है प्रत्युत् अज्ञान रूप अन्धकार का नाश एवं परतत्त्व का प्रकाश है—

'दीर्घाज्ञानमहाध्वंन्ताहङ्कार परिवर्जनात् ।
परतत्त्वव प्रकाशाच्च दीप इत्यभिधीयते ॥'

(५) 'ध्यान'—यहाँ **'ध्यान'** किसी के शरीर, मुख हाथ आदि का चिन्तन नहीं है प्रत्युत् यह निराश्रया, निराकारा एवं निश्चल बुद्धि है—

'ध्यानं हि निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया।
न तु ध्यानं शरीराक्षिमुखहस्तादिकल्पना ॥'

(६) 'नैवैद्य'—यहाँ **'नैवेद्य'** षड्रसपूर्णमधुर आहार-समर्पण नहीं है प्रत्युत् तृप्ति है—

'चतुर्विधं कुलेशानि ! द्रव्यञ्च षड्रसान्वितम् ।
निवेदनाद् भवेतृप्तिर्नैवेद्यं समुदाहृतम् ॥'

(७) 'हवन'—यहाँ **'हवन'** द्रव्यों का अग्नि को प्रज्वलन नहीं प्रत्युत्—

'महाशून्यालये वह्नौभूताक्षविषयादिकम् ।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतना स्रुचा ॥'

(८) यहाँ **कोटि पूजा** के समान एक **'स्तोत्रपाठ'**, कोटिस्तोत्र पाठ के समान एक **'जप'**, कोटि जप के समान एक **'ध्यान'** एवं कोटि ध्यान के समान एक **'लय'** है—

'पूजाकोटिसमं स्तोत्रं , स्तोत्रकोटिसमञ्जपः ।
जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमोलयः ॥'

(९) (क) यहाँ सर्वोच्च साधना है—ब्रह्मसद्भाव।
(ख) मध्य साधना है—ध्यान धारणा।
(ग) अधमा साधना है—जपभाव एवं स्तुति।
(घ) अधमाधमा साधना है—बाह्यपूजा

'उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।
स्तुतिर्जपोधमो भावो बाह्यपूजाधमाधमा ॥'

(१०) (क) यहाँ उत्तम साधना है—सहजावस्था
(ख) मध्यमा साधना है—ध्यान-धारणा।
(ग) अधमा साधना है—शास्त्रचिन्तन।
(घ) अधमाधमा साधना है—लोक-चिन्ता।

'उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यान धारणा ।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाधमाधमा ॥'

(११) (क) यहाँ परममंत्र है—नाद

(ख) परम देवता है—आत्मा

(ग) परापूजा है—आत्मानुसन्धान

(घ) परम फल है—तृप्ति

'नहि नादात् परोमंत्रो, न देवः स्वात्मनः परः ।
नानुसन्धेः परापूजा, नहि तृप्तेः परमफलम् ।।'

(१२) 'पूजा' बाह्यवर्ती पुष्पादि द्रव्य नहीं है प्रत्युत अद्वयधाम में परास्थिति ही यहाँ **'पूजा'** है—

'न पूजा बाह्यपुष्पादि द्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम् ।
स्वे महिम्नद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः ।।'

(१३) **'पूजा'** है भावौघसंगति और भैरवीय चिदात्मता—

'पूजा नाम विभिन्नस्य भावौघस्यापि सङ्गतिः ।
स्ततंत्रविमलानन्त भैरवीय चिदात्मना ।।'

(१४) यहाँ **'स्नान'** सरोवर के जल से शरीर भिगोना नहीं है प्रत्युत् स्नान है—आत्मा के साथ आवेशन—आत्मावेश—

'स्वतंत्रानन्द चिन्मात्र सारः स्वात्मा हि सर्वतः ।
आवेशनं तत्स्वरूपे स्वात्मनः स्नानमीरितम् ।।'

क्योंकि—'न देवा विद्यते काष्ठे न पाषाणो च पार्वति ।
भावेषु विद्यते देवि ! भावो मोक्षस्वरूपकम् ।।'

यदि **स्थूलतम विधानानुसार भगवती की उपासना** करनी हो तो—

'प्रातः स्नात्वा विधानेन संध्याकर्म समाप्य च ।
पूजागृहं ततो गत्वा चक्रराजं समर्चयेत् ।।'
'विद्यां जपेत्सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा ।
रहस्यनामसाहस्रमिदं पश्चात्पठेन्नरः ।।

फलाप्ति—

जन्ममध्ये सकृच्चापि य एवं पठते सुधीः ।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्येशृणुत्वं कुंभसंभवः ।।
रहस्यनामसाहस्रे नामैकमपि यः पठेत् ।
तस्य पापानि नश्यन्ति महान्त्यपि न संशयः ।।

—ललितासहस्रनाम

भक्तो यः कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्रकम् ।
तस्मै श्री ललितादेवी प्रीताभीष्टं प्रयच्छति ।।

उपासना की विधि—

नित्यं संकीर्तनाशक्तः कीर्तयेत्पुण्यवासरे ।
संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्मत्रितयेऽयने ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां सितायां शुक्रवासरे ।
कीर्तयेन्नामसाहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः ।
पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्रीलिलिताम्बिकम् ।
पञ्चोपचारैः संपूज्य पठेन्नाम सहस्रकम् ।।
अश्वमेधस्हस्राणि वाजपेयशतानि च ।
ललितापूजनस्यैवे लक्षांशेनापि नो समाः ।
स दाता स मुनिर्यष्टा स तपस्वी स तीर्थगः ।
यः सदा पूजयेद्देवी गन्धपुष्पानुलेपनैः ।।

भगवती की **'बहिर्यागात्मक'** एवं **'अन्तर्यागात्मक'** दोनों प्रकार की उपासना प्रचलित एवं शास्त्रानुमोदित है।

इन सबके बावजूद भी आचार्य लक्ष्मीधर का यह कथन भी शास्त्रानुमोदित ही है कि—

'समयिनां मंत्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम् ।।' —लक्ष्मीधर।

इसीलिए तो आचार्य शंकर ने बाह्य उपासना के स्थान पर अन्तर्यागात्मक मानसी उपासना का प्रतिपादन करते हुए कहा कि—

'जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना,
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा,
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ।।

—शङ्कराचार्य-सौन्दर्यलहरी (२७)

'आत्मा त्वं गिरिजामतिः सहचराः, प्राणाः शरीर गृहं ।
पूजा ते विविधोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः, स्तोत्राणि सर्वागिरो ।
यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं, शंभोः तवाराधनम् ।

—शंकराचार्य

▼

प्रथम खण्ड

श्रीविद्या-सिद्धान्त और साधना

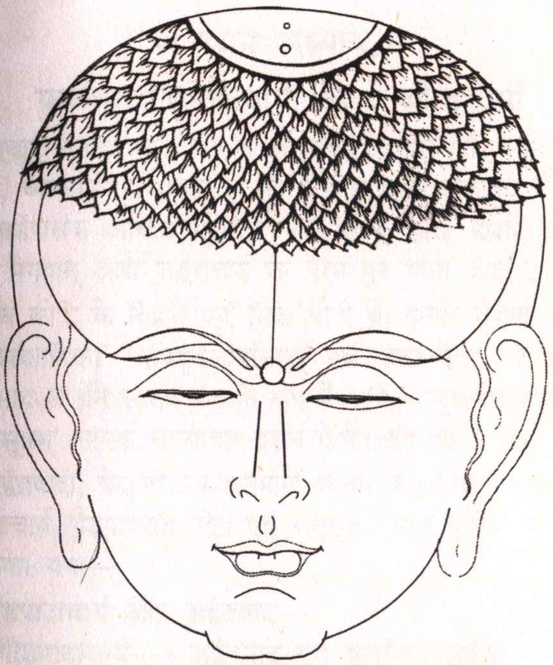

* प्रथम अध्याय *

ग्रन्थकार गौड़पादाचार्य और उनकी कृतियाँ

* द्वितीय अध्याय *

'सुभगोदयस्तुति' और गौड़पादाचार्य के सिद्धान्त

* तृतीय अध्याय *

श्रीविद्या-सिद्धान्त और साधना

।।श्रीः।।

सुभगोदयस्तुति

* प्रथम अध्याय *

ग्रन्थकार गौड़पादाचार्य और उनकी कृतियाँ

'समयाचार' नामक शाक्त मत के अनुवर्ती, अजातिवादी, अद्वैतदर्शनावलम्बी, अस्पर्श योगी, व्याकरणमहाभाष्यप्रणेता महर्षि पतञ्जलि के अन्यतम योग्य शिष्य एवं प्रख्यात श्रीविद्योपासक आचार्य गौड़पाद एक महान् शाक्त दार्शनिक थे। इन्हें ही अद्वैतवेदान्ती भगवान् आद्य शङ्कराचार्य का परम गुरु माना जाता है।

ये उच्च कोटि के विद्वान् एवं सिद्ध योगी थे। इनका वैदुष्य भी अगाध था। उन्होंने **'सांख्यकारिका' 'माण्डूक्योपनिषद्'** एवं **'उत्तरगीता'** पर भाष्य तो लिखा हीं साथ ही साथ उन्होंने स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में—(१) **'सुभगोदयस्तुति'** एवं (२) **'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्'** नामक समयाचार-दर्शन-गर्भित ग्रंथ भी लिखे।

केवलाद्वैतवादी, वेदान्ती एवं ज्ञानमार्गी आचार्य शङ्कर इनसे इतना प्रभावित हुए की इन्होंने आचार्य गौड़पादप्रतिपादित एवं अनुसृत समस्त दृष्टियों का अनुवर्तन एवं प्रतिपादन किया। यथा—

१ गौड़पादाचार्य और अद्वैतवाद—

(१) **गौड़पादाचार्य—* अद्वैतवाद एवं जगन्मिथ्यात्व ***

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च।
(क) अजाचल**मवस्तुत्वं विज्ञानं** शान्त**मद्वयम्** ।[1]
(ख) **'द्वयं तत्र न विद्यते' 'अद्वैतं** परमार्थो हि द्वैतं तद्भेद उच्यते।
(ग) **चित्तस्पन्दितमवेदं** ग्राह्यग्राहक **मद्वयम्** ।।
(घ) विषयः सहि बुद्धानां तत्साम्यमज**मद्वयम्** ।[2]
(ङ) **मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं** परमार्थतः ।।'

शाङ्कराचार्य * अद्वैतवाद एवं जगन्मिथ्यात्व *

(१) 'इदं तु परमार्थतत्त्व**मद्वैतं** वेदान्तेष्वेव विज्ञेयमित्यर्थः ।।[3]
(२) मायामात्रमिदं द्वैत**मद्वैतं** परमार्थतः ।। (वि०चू० ४०६)

---

१. मण्डूक्यकारिका
२. मण्डूक्यकारिका
३. माण्डूक्यकारिका शाङ्करभाष्य (९९)

(३) सदिदं **परमाद्वैतं** स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात्। (२२८)

(४) यदिदं सकलं **विश्वं** नानारूपं प्रतीतमज्ञानात्।
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ता शेषभावनादोषम्॥ (२२९)

(५) अतो मनः कल्पित एवं पुंसः **संसार** एतस्य न वस्तुतोऽस्ति। (१७३)

शैवशाक्त तांत्रिक दर्शनों में जहाँ अद्वैत दृष्टि है वहाँ जगत की परमात्मा का
ही स्वरूप स्वीकार किया गया है। मिथ्या नहीं। आचार्य शङ्कर ने कहा था कि—
'जगन्मिथ्या।
जीवब्रह्मैव नापरः।'' किन्तु यहाँ वे कह रहे हैं कि वेदान्त का सिद्धान्त तो यह
है कि **जीव एवं जगत दोनों ब्रह्म है। अतः दोनों सत्य हैं—**

(१) 'वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा, **ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च।**

(२) स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः।
स्वयं **विश्वमिदं** सर्वं स्वस्मादन्यन्तकिञ्चन (वि०चू० ३८९)

(३) 'यदिदं सकलं **विश्वं** नानारूपं प्रतीतमज्ञानात् **तत्सर्वं ब्रह्मैव।।''**

एक ओर शंकर कहते हैं कि—

(क) अतो मनः कल्पित एव पुंसः
संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्त'

(ख) 'ब्रह्मसत्यं **जगन्मिथ्या'**

वहीं वे उस असत् जगत को सत् एवं ब्रह्मरूप भी कहते हैं—(१) मृतिका का कार्य मृतिका ही तो होगा अतः सत् ब्रह्म का कार्य सत् ही तो होगा—

'मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्नः
कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात्॥' (२३०)

'केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं, घटस्य संदर्दयितुं शक्यते'

'ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी श्रौतीब्रूतेऽर्थनिष्ठावरिष्ठा **तस्माददेतद् ब्रह्ममात्रं** हि **विश्वं'** (२३३ वि०चू०)

'इदं तया ब्रह्मसदैव रूप्यते

'मृत्कार्यं सकलं घटादि सततं **मृन्मात्र**मेवाभितः॥'

दूसरी ओर शङ्कर कहते हैं कि जगत मिथ्या है—

असत्कल्पो विकल्पोऽयं **विश्वमित्येक**वस्तुनि॥
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ?

शैव-शाक्त तांत्रिक जगत को मिथ्या नहीं मानते हैं वे कहते हैं कि—

(१) 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥[1]

(२) 'जगतः **प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम्।'**

(३) 'भगवान विश्वशरीरः'

(४) श्रीपरमशिवः **स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं'**[2]

(५) **विश्वशरीरः** शिवभट्टारक एव''[3]

(६) न सावस्था न यः शिवः (स्पन्दकारिका)

एक ओर शंकराचार्य यह कहते हैं कि जीव एवं ब्रह्म में भेद नहीं है—

"जीव ब्रह्मैव नापरः।''

वहीं वे यह भी कहते हैं कि भेद तो है क्योंकि लहर लहर है समुद्र नहीं—

'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवैवाहं न मामकीनस्त्वं।
सामुद्रो वै तरङ्गः न तु तारङ्गो वै समुद्रः॥'

सारांश यह कि—

(१) जगत् मिथ्या है—जगत मिथ्या नहीं है।

(२) जीव ब्रह्म है—जीव ब्रह्म नहीं है।

(३) ज्ञान से ही मुक्ति संभव है भक्ति से नहीं—भक्ति भी मोक्ष की सामग्री है।

'मोक्षकारण सामग्रयां भक्तिरेव गरीयती' (वि०चू० ३२)

'ज्ञानान्न ऋते मुक्तिः'—मानने वाले शंकर के लिए भक्ति नहीं—'ब्रह्मात्मैकत्व विज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है—'ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम्॥ (वि०चू० २०४)

किन्तु 'भक्ति' तो ब्रह्मात्मैक्यवादको मानकर चलती नहीं। वहाँ तो भगवान एवं भक्त को पृथक्-पृथक् मान कर चलना पड़ता है।

ये सारे विरोधाभास क्यों हैं? कारण यह कि आचार्य शंकर के परमगुरु का ही प्रभाव शंकर पर पड़ा है—

(१) गौड़पाद माण्डूक्यकारिकार के रूप में—'मायावादी' 'जगन्मिथ्यात्ववादी' 'अजातिवादी' एवं अद्वैतवादी हैं। उसी प्रकार—

---

[1] प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

[2] तत्रैव (सूत्र ४)

[3] तत्रैव

(२) वेदान्तसूत्रभाष्यकार के रूप में शंकर भी—मायावादी जगन्मिथ्यात्ववादी एवं अद्वैतवादी हैं।

(३) सुभगोदय स्तुतिकार के रूप में गौड़पादाचार्य शाक्ताद्वैतानुवर्ती होने के कारण जगत को **'शक्ति का परिणाम'** मानने के कारण जगत को सत्य मानते हैं। उसी प्रकार—

(४) प्रपञ्चसारतंत्रकार एवं सौन्दर्यलहरीकार के रूप में शंकर भी जगत् को शक्ति का परिणाम मानने के कारण उसे सत्य मानते हैं।

(१) **सुभगोदयस्तुतिकार** भगवती को ही 'वैन्दवकला' 'परकला' 'कालातीता' भवानी एवं परतत्त्व मानते हैं।

'सुधाधारा सारैः स्नापयसि तनुं **बैन्दवकले** ।।' (४)
'परं तत्त्वातीतं मिलित वपुरिन्दोः **परकला**' (५)

(२) **सौन्दर्यलहरीकार शंकर की दृष्टि में** शक्ति के विना शिव हिल भी नहीं सकते—'न चेदेवं देवो न खलु कुशलस्पन्दितुमपि।।''

आचार्य गौड़पाद के विषय में जो जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं वे अत्यन्त अल्प हैं। बंगला भाषा में प्रणीत पुस्तक **''वेदान्तदर्शनेर इतिहास'** के लेखक श्री प्रज्ञानन्द जी सरस्वती ने आचार्य गौड़पाद को गौडदेशीय (बंगाली) बताया है।

नैष्कर्म्यसिद्धिकार सुरेश्वराचार्य द्वारा आचार्य शंकर-प्रणीत यह प्रमाण प्रस्तुत किया गया है—

''एवं गौडेर्द्राविडैर्नः पूज्यैरर्थः प्रभावितः।
अज्ञानमात्रोपाधिः सन्नहमादि दृगीश्वरः ।।''

यहाँ **'गौडदेशीय'** आचार्य गौड़पादाचार्य को कहा गया है और 'द्रविड़देशीय' शंकराचार्य को माना गया है।

गौड़पादाचार्य सन्यासी थे। उनके शिष्य श्री गोविन्द पादाचार्य एक महान योगी थे।

शाङ्कर सम्प्रदाय में जो आचार्यवन्दनात्मक मङ्गलाचरण है उसमें गौड़पादाचार्य का नामोल्लेख भी किया गया है—

'नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च।
व्यासं शुकं **गौडपदं** महान्तं गोविन्द योगीन्द्र मथास्य शिष्यम्
श्री शङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादञ्च हस्तामलकं च शिष्यम्
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद् गुरुन्सन्तत मानतोऽस्मि।'

निष्कर्ष यह है कि श्री गौड़पादाचार्य भगवान शुकदेव के शिष्य थे।

यह भी ध्यातव्य है कि शांकर सम्प्रदाय में शास्त्रों का अध्ययन करने से पूर्व आचार्य और शिष्यगण इस मङ्गलाचरण को गाते हैं।

स्पष्ट है कि आचार्य गौड़पाद मायावादी सर्वमिथ्यात्ववादी, ब्रह्मवादी, अजातिवादी, आत्मोपासक, अस्पर्शयोगी एवं अद्वैतवादी थे। आचार्य शंकर ने उनको **'पूज्याभिपूज्य परम गुरु'** कह कर नमन किया है। वे कहते हैं—

''प्रज्ञावैशाख वेंधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं,
भूतान्यालोक्य मग्नान्य विरतजनन् ग्राहघोरे समुद्रे।
कारुण्यादुद्धधारामृतमिदममरैर्दुर्लभं भूतहेतो-
र्यस्तं पूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि ।।''

(३) गुरु-परम्परा और गौड़पादाचार्य—

आचार्य शंकर के गुरु का नाम **गोविन्दपाद'** था किन्तु गोविन्द के गुरु का नाम **गौड़पाद** था।

(१) शंकराचार्य के गुरु का नाम—गोविन्दपादाचार्य।

(२) गोविन्दपाद के गुरु का नाम—गौड़पादाचार्य।

(३) गौड़पादाचार्य के गुरु का नाम—शुकदेव। पतञ्जलि

(४) शुकदेव के गुरु का नाम—व्यास।

जिस प्रकार परमर्षि भगवान् कपिल ने 'निर्माणकाय' का अवलम्बन करके अपने शिष्य **आसुरि** को **'षष्टितन्त्र'** का उपदेश दिया था ठीक उसी योगक्रिया द्वारा शुकदेव ने भी गौड़पादाचार्य को उपदेश दिया था।

गोविन्दपाद और गौड़पादाचार्य—आचार्य शंकर के गुरु गोविन्दपाद **महायोगी** थे एवं रस प्रक्रिया सिद्ध थे। उन्होंने रस-प्रक्रिया से अपने शरीर को अजरामर तथा काल प्रभाव से मुक्त बना लिया था। अतः एक हजार वर्षों की अवस्था होने पर भी वे षोडशवर्षीय प्रतीत होते थे। उनका शरीर एक हजार वर्षों से इसी स्थूल जगत में विद्यमान था तथापि वे सदैव १६ वर्ष की आयु के ही प्रतीत होते रहते थे।

राजवाड़े कथा नामक ग्रंथ में तो लिखा है कि जिनसेन, गुणभद्र एवं (शंकराचार्य के गुरु) गोविन्दपाद समकालीन थे। इस ग्रंथ के अनुसार तो जिनसेन के शिष्य गुणभद्र एवं गुणभद्र के शिष्य गोविन्दपाद थे।

स्वामी विद्यारण्य का मत तो यह है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि के रूपान्तर ही **गोविन्दपाद** थे।

(४) आचार्य गौड़पाद का जीवन परिचय—‘पतञ्जलिचरित’ नामक ग्रंथ के प्रणेता रामभद्र दीक्षित का कथन है कि आचार्य गौड़पाद भाष्यकार पतञ्जलि के शिष्य थे। महर्षि पतञ्जलि एक वस्त्रावरण (पर्दा) की आड़ में ही छात्रों को महाभाष्य पढ़ाया करते थे। किसी समय (गुरुदर्शन या गुरुक्रिया या पर्दा करके अध्यापन करने के रहस्य की उत्कण्ठा के कारण) आचार्य के शिष्यों ने पर्दे के छिद्र से देखा कि स्वयं शेषनाग एक हजार मस्तक एवं एक हजार जिह्वायें धारण करके पर्दे के पीछे स्थित होकर ज्ञानोपदेश कर रहे हैं। छात्रों की इस धृष्टता से रुष्ट होकर शेषनाग स्वरूप महर्षि पतञ्जलि का क्रोधानल उद्दीप्त हो उठा और उस क्रोधानल में सारे शिष्य भस्म हो गएं। महर्षि पतञ्जलि के शिष्यों में से एक शिष्य उस समय वहाँ उपस्थित न रहकर कहीं बाहर चला गया था। उसने बादमें आकर गुर्वाज्ञा के विना बाहर जाने की घृष्टता के अपराध के लिए क्षमायाचना की किन्तु महर्षि पतञ्जलि ने उसे ब्रह्मराक्षस होने का शाप दे दिया। यही शिष्य **गौड़पाद** था। आचार्य पतञ्जलि ने यह भी कहा था कि जब तुम्हें कोई सुपात्र शिष्य मिल जाएगा तो तुम शाप से मुक्त हो जाओगे।

गौड़पादाचार्य अपनी ब्रह्मराक्षस योनि में आने पर अपने निवास स्थान के पास से जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति से प्रश्न पूँछते थे कि ‘पच्’ धातु का निष्ठ में क्या रूप होता है? उत्तर देने वाले सभी कहते थे कि इसका रूप **‘पचितम्’** होगा। इस अशुद्ध रूप को सुनकर ब्रह्मराक्षस रूप गौड़ापाद उसे खा डालते थे। दीर्घ कालान्तर के उपरान्त उज्जैन का एक चन्द्र नामक ब्राह्मण भी उसी मार्ग से गया। गौड़पादाचार्य ने उनसे भी वही प्रश्न किया। चन्द्र ने कहा—“पच् धातु का निष्ठा में रूप ‘पक्वम्’ होता है।” इस उत्तर को सुनकर गौड़पाद बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे सच्छिष्य मानकर उसे महाभाष्य की पूर्ण शिक्षा दी। चन्द्र ने सारे महाभाष्य को लिख डाला। चन्द्र पुनः उज्जैन लौट गया।

‘राजतरङ्गिणी’ (१७६) में लिखा है कि चन्द्राचार्य ने काश्मीराधिपति अभिमन्यु के समय काश्मीर जाकर वहाँ महाभाष्य का प्रचार किया था। क्या ये दोनों चन्द्र एक ही व्यक्ति थे?—यह अनुसन्धेय विषय है।

इन्हीं चन्द्राचार्य को **गोविन्दपाद’** कहते हैं। ये गौड़पादाचार्य के शिष्य थे। आचार्य **गौड़पाद** ने गोविन्दपाद को सन्यास की दीक्षा देकर उनका नाम **‘गोविन्द’’** रक्खा। इसी कारण वे **‘गोविन्दपाद’** के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गोविन्दपाद ही भगवान शंकराचार्य के गुरु थे।

(गोविन्दपाद ने गृहस्थाश्रम में **चन्द्राचार्य** के रूप में रहकर चार विवाह किये थे। चन्द्र ने (१) **ब्राह्मण** (२) **क्षत्रिय** (३) **वैश्य** (४) **शूद्र**—चार जाति की कन्याओं से विवाह किया था। इनसे उनके चार पुत्र भी हुए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) **वररूचि** ९२) **विक्रम** (३) **भट्टि** (४) **भर्तृहरि**।। इनमें भर्तृहरि अत्यन्त बुद्धिमान थे। चन्द्राचार्य ने उन्हें महाभाष्य पढ़ाया। **भर्तृहरि महावैयाकरण** हुए किन्तु उनका एक लाख पच्चीस हजार कारिकाओं का ग्रंथ उनके अहंकार के कारण नष्ट हो गया था।)

जब **आचार्य गौड़पाद शाप मुक्त हुए** तब उन्हें व्यास के आत्मज **शुकदेव का साक्षात्कार** हुआ। उन्होंने उनसे प्रार्थना की। **शुकदेव जी ने उन्हें सन्यास की दीक्षा दी।** जीवन की अन्तिम भाग में आचार्य गौड़पाद ने **हिमालय में योगाभ्यास किया।** उन्होंने बौद्ध नृपति अयाचार्य को भी दीक्षा दी।[1]

आचार्य शंकर (गौड़पाद के प्रशिष्य) गौड़देश के विभिन्न स्थानों में धर्म का प्रचार करते हुए जब गंगातट पर रह रहे थे तभी एक दिन सन्ध्या के समय एकान्त में आचार्य शंकर ने एक ज्योतिर्मय योगी को अवतरण करते हुए देखा। उन जटाजूटधारी, अतिदीप्तिमान् योगिराज ने शंकराचार्य से कहा—‘वत्स शंकर ! संसार सिन्धु से उद्धार प्राप्त होने का एक मात्र उपाय जो परमतत्त्व ज्ञान है और जिसकी शिक्षा तुम्हें मेरे शिष्य गोविन्दपाद ने दी है, उसमें तुम सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित हो न? तुम्हारा चित्त सदा सच्चिदानन्द रूप तत्त्व ज्ञान संलीन रहता है।?”

“वत्स ! तुम्हारे असामान्य गुणों की बातें सुनकर तुम्हें देखने के लिए मेरे मन में प्रबल उत्कण्ठा हुई। तुमने ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषदों पर भाष्यों की रचना की है और मेरे द्वारा लिखित माण्डूक्यकारिका पर भी जो भाष्य तुमने लिखा है उसमें कारिकाओं का यथार्थ आशय अतिसुन्दर रूप से परिस्फुट हुआ है। इससे मैं तुम्हें देखने आया हूँ। मेरा आगमन निष्फल नहीं होगा। तुम वर की प्रार्थना करो” शंकराचार्य जी ने कहा ‘मुझे आप यही वर दीजिए कि मेरा चित्त सदैव सच्चिदानन्द में निमग्न रहे।” ‘तथास्तु’ कहकर आचार्य गौड़पाद अन्तर्धान हो गए। आचार्य शंकर भी समाधिस्थ हो गए। समाधि से उठने के बाद उन्होंने आचार्य गौड़पाद के आगमन का समस्त वृत्तान्त अपने शिष्यों को सुनाया।

आचार्य गौड़पादके शिष्य गोविन्द सन्यास ग्रहण करने के उपरान्त नर्मदा के तट पर अपने प्रिय पुत्र भर्तृहरि के साथ रहा करते थे और गोविन्द नाम का जप किया करते थे। आचार्य शंकर सन्यास की दीक्षा लेने हेतु इन्हीं के पास आए थे।

शाक्तागम के प्रख्यात ग्रंथ **‘‘श्रीविद्यार्णव’** के अनुसार—(१) शंकराचार्य गौड़पादके प्रशिष्य नहीं हैं। **गौड़पादाचार्य** से शंकराचार्य तंक की कालावधि में सात पुरुषों के नाम और आते हैं यथा—गौड़पाद—पावक—पराचार्य—सत्यनिधि—

---

[1] आत्मबोध (गौड़पादोल्लास)

रामचन्द्र—गोविन्दाचार्य और फिर अन्त में शंकराचार्य। आचार्य गौड़पाद एवं शुकदेव के समय में भी सुदीर्घ अन्तराल हैं अतः ये दोनों समसामयिक नहीं हो सकते तथापि शुकदेव **निर्माणकाय'** द्वारा प्रकट होकर गौड़पाद को किसी भी समय दीक्षा दे सकते थे और उन्होंने वही किया। यही घटना सांख्यसूत्रकार कपिल एवं **आसुरि** के प्रसंग में भी घटित हुई थी।

५. आचार्यशंकर एवं गौड़पादाचार्य—आचार्य शंकर के विषय में यह कहा जाता है कि शंकराचार्य केवलाद्वैत वेदान्ती थे। निर्विशेष वेदान्त की शाङ्कर दृष्टि में 'त्रिक दर्शन' के **'ईश्वराद्वयवाद'** एवं **परिणामवादी शाक्ताद्वैतवादियों के 'परिणामवाद'** के लिए कोई स्थान नहीं है अतः—

'मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि **परिणतायां** नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं **परिणामयितुं** विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन विभृषे ॥'

—कहकर एक 'विवर्तवादी' (शंकर) का अकस्मात् 'परिणामावादी' हो जाना संभव नहीं प्रतीत होता अतः 'सौन्दर्यलहरी' न तो शंकराचार्य की रचना है और न तो **'परिणामवाद'** एवं **''सर्वशक्तिवाद''** का सिद्धान्त उनका सिद्धान्त है।

(६) शैवाद्वैत, शाक्ताद्वैत एवं शाङ्कर केवलाद्वैतवाद—शैवाद्वैतवाद एवं शाक्ताद्वैतवाद में 'माया' एवं 'जगत' को मिथ्या नहीं कहा गया है तथा परब्रह्म (शिव एवं शक्ति) को निष्क्रिय (अक्रिय) न कहकर उन्हें **'पञ्चकृत्यकारी'** कहा गया है और अद्वैतवाद के पूर्ण स्वरूप में, 'पूर्णाहन्ता' की स्थिति में (१) जीव एवं ब्रह्म की एकता, (२) ब्रह्म एवं जगत की एकता (३) जीव एवं जगत की एकता स्वीकार की गई है किन्तु शाङ्कर अद्वैत में इसका प्रत्याख्यान करते हुए कहा गया है कि—

''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः।''

अतः मिथ्या वस्तुओं के साथ एकता कैसे संभव है? अतः 'त्रिकदर्शन' एवं 'शाक्तदर्शन' का अद्वैत भी उनका अद्वैत नहीं है किन्तु लोग 'सौन्दर्य लहरी' को शाङ्कर रचना मानकर शाक्तों की इस दृष्टि को कि—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलस्स्पन्दितुमपि'

—आचार्य शंकर पर जबर्दस्ती आरोपित करने का प्रयास करते हुए 'सौन्दर्यलहरी' को शाङ्कर रचना सिद्ध करने का दुराग्रह करते हैं।

क्या शाङ्कर वेदान्त का ब्रह्म बिना शक्ति की सहायता के असमर्थ है? क्या शाङ्कर वेदान्त की 'माया' शाक्तों की 'शक्ति' के समान चेतन एवं ब्रह्म की समवायिनी निजाशक्ति है? अतः स्पष्ट है कि शाङ्कर दर्शन के अक्रिय (निष्क्रिय) ब्रह्म को शैवों के पञ्चकृत्यकारी 'परमशिव' एवं शाक्तों की 'पराशक्ति' से अभिन्न नहीं सिद्ध किया जा सकता और न तो सत्-असत् से परे **'अनिर्वचनीया'** (वेदान्ती शंकर की) शाङ्करी माया से (चिन्मयी, चिद्रूपा एवं) परमशिव की अभिन्ना निजाशक्ति के साथ अभिन्नता ही सिद्ध की जा सकती है।

—इन सारे तर्कों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि शंकराचार्य केवल अद्वैत वेदान्ती, केवलाद्वैतवादी, मायावादी एवं 'विवर्तवादी' मात्र है न कि शैव एवं शाक्त।

—यही दृष्टि उन लोगों की है जो कि 'सौन्दर्यलहरी' 'प्रपञ्चसारतंत्र' आदि रचनाओं को शंकर-रचित मानना अस्वीकार करते हैं।

आक्षेपों का उत्तर—(१) यह कहना कि आचार्य शंकर 'विवर्तवादी', वेदान्ती या मायावादी मात्र थे, शैव-शाक्त दर्शन को सिद्धान्तानुयायी नहीं थे भ्रान्तिपूर्ण धारणा है क्योंकि सर्वप्रथम तो यह कि उन्होंने स्वयं दशनामी शैव सम्प्रदाय की स्थापना की थी और आज भी उनके शैव सम्प्रदाय के मठाधीश्वर पीठ चतुष्ट्य के शङ्कराचार्य के रूप में मठ का संचालन कर रहे हैं। अतः साधना के साम्प्रदायिक धरातल पर वे शैव थे।

सैद्धान्तिक दृष्टि से वे **'विवर्तवादी'** एवं केवलाद्वैतवादी थे किन्तु साधना पक्ष की दृष्टि से वे शैव एवं शाक्त दोनों थे। उन्होंने समन्वयवादी होने के कारण (१) ज्ञान एवं भक्ति, (२) ज्ञान, भक्ति एवं योग, (३) वेदान्त एवं शैव-शाक्त मार्ग (४) ज्ञानोपासना एवं तांत्रिकोपासना आदि सभी में समन्वय स्थापित करके समन्वयवादी दृष्टिकोण अंगीकृत करके (एक वाद के पीछे न दौड़कर) समस्त हिन्दू-समाज एवं उसकी दृष्टियों के प्रति आदर भाव प्रदर्शित करके उन्हें संगठित करने का प्रयास किया था।

आचार्य शंकर की यह दृष्टि अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त हुई थी।

(१) **गौड़पादाचार्य** ने 'माण्डूक्यकारिका' लिखकर जगत को मिथ्या सिद्ध किया और कहा कि—

'स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥'[१]

आचार्य शंकर ने भी वही बात कही है—

(१) 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः ॥'
(२) 'तावत् सत्यं जगदभाति शुक्तिकारजतं यथा ॥' आत्मबोध
(३) 'संसारः स्वप्न तुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥ आत्मबोध

---

[१] वैतथ्य प्रकरण—(३१) (२)

(४) असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येक वस्तुनि।। (वि०चू०)

(२) आचार्य गौड़पाद ने वेदान्त के विवर्तवाद का मायावाद को स्वीकार करके भी समयाचारगत शाक्त सम्प्रदाय की उपासना भी की एवं उसके प्रतपादक ग्रन्थ (१) 'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्' एवं (२) 'सुभगोदयस्तुति' भी लिखे। इसी प्रकार आचार्य शंकर ने विवर्तवादी, मायावादी एवं अद्वैतवादी वेदान्ती होकर 'ब्रह्मसूत्र' पर 'शारीरकभाष्य' भी लिखा एवं तंत्र और शाक्त दर्शन पर (१) प्रपञ्चसार तंत्र एवं (२) सौन्दर्यलहरी भी लिखा।

(३) आचार्य गौड़पाद ने 'अजातिवाद' की स्थापना करने के बाद भी ('माण्डूक्यकारिका' में सांख्यदर्शन का खण्डन करके भी) 'सांख्यकारिका पर भाष्य लिखा किन्तु उस भाष्य में सांख्य सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया उनका खण्डन नहीं किया। इसी प्रकार आचार्य शंकर ने निर्गुणवादी होते हुए भी साकारोपासना को, ज्ञानमार्गी होकर भी भक्ति को, शारीरक भाष्य में योग के सिद्धान्तों का खण्डन करके भी 'प्रपञ्चसार तंत्र' 'योगतारावली' आदि ग्रंथों में योगशास्त्र की साधना की महनीयता स्वीकार भी की तथा "सर्वसिद्धान्त संग्रह' आदि अनेक ग्रंथों का प्रणयन भी किया जो कि उनके 'विवर्तवाद' एवं 'केवलाद्वैतवाद' सिद्धान्त के विरुद्ध थे। एक ब्रह्मोपासक दार्शनिक ने सारे सगुण एवं अवतारी देवी देवताओं के विषय में भक्ति के गीत लिखे और 'अहं ब्रह्मास्मि' 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' 'शिवोऽहं शिवोऽहं' कहने वाले ज्ञानमार्गी ने भक्ति का प्रतिपादन करते हुए यह भी लिखा है कि—

"सत्यपि भेदापगमे नाथ !
तवैवाहं न मामकीनस्त्वं।
सामुद्रो वै तरङ्गः,
न तु तारङ्गो वै समुद्रः ।।"

उन्होंने ऐसा क्यों किया? उन्हें ये सारे विरोधाभासी लगने वाले तत्त्व अपने परमगुरु गौड़पाद से उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे।

(४) योग की प्राचीन पद्धति के अनुसार स्थापित 'मूलाधार' 'स्वाधिष्ठान' 'मणिपूर'-'अनाहत'-'विशुद्धि'-'आज्ञा' एवं फिर 'सहस्रार' के क्रम तथा—क्षिति-जल-पावक-वायु-आकाश-मन आदि तत्त्वों के पूर्वा पर क्रम का त्याग करके उन्होंने कहा—

'मही मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे ।।[१]

आचार्य शंकर ने 'मणिपूर' के बाद 'स्वाधिष्ठान' का क्रम निर्धारित किया तथा 'मणिपूर' में (अग्नि तत्त्व के स्थान पर) जल तत्त्व को एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' में (जल

---

१. सौन्दर्यलहरी

तत्त्व केस्थान में) अग्नि तत्त्व को स्थित बताकर जो परम्परागत प्रतिष्ठापित योगसिद्धान्त के विरुद्ध स्थापना दी उसमें भी उनका कोई दोष नहीं है क्योंकि परम गुरु आचार्य गौड़पाद ने भी 'सुभगोदय स्तुति' में यही दृष्टि (सिद्धान्त एवं पौर्वापर्य क्रम) प्रस्तुत किया है।

आचार्य गौड़पाद **लयक्रम** पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—

(१) पृथ्वी तत्त्व का लय अग्नि में होता है—

"क्षितौ वह्निः" पृथ्वी का लय तो जल में होता है फिर उसका लय अग्नि में कैसे कहा गया?

आचार्य शंकर ने भी यही बात कही—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं"

अर्थात् **'मूलाधार'** में **'पृथ्वीतत्त्व' एवं जलतत्त्व** को भी लयीभूत करना चाहिए। **'मणिपूर'** चक्र में **'अग्नितत्त्व'** को लयीभूत करना चाहिए। जिसकी स्थिति **'स्वाधिष्ठान चक्र'** (जलतत्त्वात्मक चक्र) में है—

"महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।।"

गौड़पादाचार्यकहते हैं—[१]

"क्षितौ वह्नि वह्निर्वह्नौ वसुदलजलेदिङ्मरुति दिक्"

यदि 'वह्नि' को मूलाधार का अग्न्यात्मक त्रिकोण मान लिया जाय तो क्या अन्य तत्त्व भी अपने ही चक्र में लयीभूत हो जाते हैं क्या?

परमगुरु गौड़पादाचार्य ने **गीता पर टीका लिखी** तो भगवान शंकराचार्य ने भी गीता पर टीका लिखी। दोनों ने ही गीता के सिद्धान्तों का खण्डन न करके उनका मण्डन किया।

आचार्य गौड़पादाचार्य ने श्री सम्प्रदाय पर दो ग्रंथ—(१) **'सुभगोदयस्तुति'** एवं (२) **'श्रीविद्यारत्नसूत्र'** लिखे तो आचार्य शंकर ने भी समयाचार सम्मत श्री सम्प्रदाय पर **'सौन्दर्यलहरी'** लिखा। आचार्य लक्ष्मीधर ने उनको समयाचारी, तांत्रिक एवं शाक्त दार्शनिक स्वीकार करते हुए कहा है कि—

'इह खलु शंकरभगवत्पूज्यपादाः समयमत तत्त्ववेदिनः समयाख्यां चन्द्रकलां श्लोक शतेन प्रस्तुवन्ति।।"[२]

---

१. सुभगोदयस्तुति (३७)
२. लक्ष्मीधरा

आचार्य गौड़पाद ने 'समयाचार' के पक्ष में कौलमत का बार-बार खण्डन किया और बार-बार अपनी दृष्टि को कौल-दृष्टि के विरुद्ध बताने का प्रयास किया, यथा—

(क) त्रिकोणं ते **कौलाः** कुलगृहमिति प्राहुरपरे।
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ॥[1]

(ख) चतुःषष्टिस्तन्त्राण्यपि **कुलमतं** निन्दितमभूत।

(ग) यदा चामावस्या भवति नहि पूजा समयिनाम॥

(घ) भवत्साम्यं केचित् त्रितयमिति कौल प्रभृतयः ॥[2]

(ङ) तदेतत् **कौलानां** प्रतिदिनमनुष्ठेयमुदितं
भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्यमुभयम् ॥[3]

(च) अमीषां **कौलानां** भगवति भवेत्पूजनविधिः ॥[4]

(छ) नवयूहं **कौल** प्रभृतिक मतं तेन स विभुः ।[5]

आचार्य शंकर ने (यद्यपि गौड़पाद की तुलना में कौलों के प्रति अत्यन्त उदारवादी दृष्टि अपनाकर) भी 'सौन्दर्य लहरी' में समयाचार के प्रति अपनी अधिक सहानुभूति प्रकट की है।

(७) गौड़पादाचार्य की आविर्भावकाल—

'BLUNDERS OF INDIAN HISTORY

के लेखक पुरुषोत्तम नागेश के कथनानुसार—

(१) शंकराचार्य जी का जन्म ५०९ ई० पूर्व है। उनका निर्वाणकाल ४७७ ई० पूर्व है।

(२) बुद्ध का जन्म ई०पू० १८८७ से १८०७ के मध्य हुआ था।

(३) कुमारिल भट्ट का जन्म ५५३ ई० पूर्व का है।

(४) 'वृहत्शंकरविजय' (चित्सुखाचार्य-रचित) के अनुसार आदि शंकराचार्य की जन्मतिथि ५०९ ई०पू० एवं निर्वाण-तिथि ४७७ ई०पू० है।

---

[1] सुभगोदयस्तुति (७)
[2] सुभगोदयस्तुति (३९)
[3] सु०स्तुति (४२)
[4] सु०स्तुति (४३)
[5] सु०स्तुति (४४)

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आचार्य गौड़पाद छठवीं सदी ईसा पूर्व के तो हैं ही क्योंकि शंकराचार्य एवं गोविन्दपाद के पूर्ववर्ती थे।

(८) **आचार्य गौड़पाद**—कृतित्व और दार्शनिक दृष्टि

आचार्य गौड़पाद की प्रख्यात रचनायें—

आचार्य गौड़पाद की प्रख्यात रचनायें निम्नाङ्कित हैं—

(१) **'माण्डूक्यकारिका'** (२) **उत्तर गीता** पर भाष्य (३) **'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्'** (४) **'सुभगोदय स्तुति'** (५) **'सांख्यकारिका'** की टीका।

आचार्य गौड़पाद ने **'सांख्यकारिका' के अपने भाष्य का प्रारम्भ** इस वन्दनात्मक श्लोक के साथ किया है—

'कपिलाय नमस्तुस्मै, येनाऽविद्योदधौ जगति मग्ने
कारुण्यात्सांख्यमयी, नौरिव विहिता प्रतरणाय।
अल्पग्रंथं स्पष्टं प्रमाण-सिद्धान्त-हेतुभिर्युक्तम्।
शास्त्रं शिष्यहिताय समासतोऽहं प्रवक्ष्यामि॥'

इसके उपरान्त उन्होंने सात महर्षियों का नामोल्लेख किया है—

'सनकश्च, सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः
आसुरिः कपिलश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
इत्येते ब्रह्मणःपुत्राः सप्त प्रोक्ता महर्षयः॥'

(१) **माण्डूक्यकारिका**—आचार्य गौड़पाद ने अथर्ववेदीय ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत स्थित 'माण्डूक्योपनिषद् ' पर कारिकायें लिखीं हैं। गौड़पादीय कारिकायें अद्वैतसिद्धान्त का प्रथम निबन्ध कहा जाता है। भगवान् शंकराचार्य ने इसी ग्रंथ के ऊपर अपने अद्वैतवाद एवं वेदान्त-दृष्टि की नींव रखी थी। यह भी सत्य है कि अद्वैत सिद्धान्त अनादि है तथापि दार्शनिक मतवाद की दृष्टि से इसको जो साम्प्रदायिक स्वरूप प्राप्त हुआ वह प्रथम बार हुआ।

आचार्य गौड़पाद ने "माण्डूक्यकारिका" को निम्न भागों में विभाजित किया है—

(१) **'आगम प्रकरण'**, (२) **'वैतथ्य प्रकरण'**, (३) **'अद्वैत प्रकरण'**, (४) **'अलातशान्तिप्रकरण'**।

(१) 'आगम प्रकरण'—आचार्य गौड़पाद ने 'आगम प्रकरण' में आत्मा और ओंकार पर विस्तार सहित प्रकाश डाला है। उनके विचारों को सारांश में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) ॐकार ही सब कुछ है।

(२) आत्मा के चार पाद हैं—वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ एवं तुरीय।

(३) **प्राण** ही **सर्वोत्पादक** है—

'प्रभवः सर्वभावानां सतामिति विनिश्चयः।
सर्वं जनयति प्राणश्चेतोंऽशून्पुरुषः पृथक् ॥६॥'

(४) सृष्टि के विषय में अनेक दृष्टियाँ हैं यथा—इच्छासृष्टिवाद, कालसृष्टिवाद, भोगसृष्टिवाद, क्रीडासृष्टिवाद, भगवत्स्वभावसृष्टिवाद।

(५) और उसके पादों के साथ ओंकार और उसकी मात्राओं का तादात्म्य है।

(६) उक्त तादात्म्यों का स्वरूप इस प्रकार है—

(क) अकार और विश्व का तादात्म्य।
(ख) उकार और तैजस् का तादात्म्य।
(ग) मकार और प्राज्ञ का तादात्म्य।
(घ) मात्राओं की विश्वादिरूपता॥
(ङ) अमात्र और आत्मा का तादात्म्य॥

(७) आत्मा ही अव्यय, प्रभु, सर्वदुःखशामक, देवता एवं समस्त पदार्थों का अद्वैत रूप है—

'निवृत्ते सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः॥'

अद्वैतोपलब्धि अनादिमाया से जागृत होने पर ही हुआ करती है—

'अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा॥'

प्रपञ्च का अत्यन्ताभाव है। सर्वत्र माया का ही प्रसार है—

'प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः।'
'मायामात्रमिदद्वैतं'

समस्त **द्वैत** माया मात्र है परमार्थतः तो **अद्वैत** ही है—

'मायामात्रमिदं **द्वैतमद्वैतं** परमार्थतः॥'

(८) ओंकारोपासना श्रेष्ठक उपासना है चित्त को ओंकार में समाहित करना चाहिए ओंकार निर्भय ब्रह्मपद है। उसमें समाहित रहने से साधक निर्भय हो जाता है—

'युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य नभयं विद्यते क्वचित्॥'

(९) **प्रणव का स्वरूप** इस प्रकार है—

'प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः॥'
'प्रणवं हीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम्।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति॥'

(१०) ओंकार का ज्ञाता ही 'मुनि' है—

'अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः।
ओङ्कारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः॥'

[२] वैतथ्य प्रकरण—

(१) समस्त पदार्थ मिथ्या है—

'वैतथ्यं सर्वभावानां'

(२) स्वप्न के अतिरिक्त जाग्रत अवस्था में भी पदार्थ मिथ्या है। शंकराचार्य ने गौड़पाद की इस दृष्टि को इस प्रकार व्याख्यात किया है—

(१) जाग्रद् दृश्यानां भावानां वैतथ्यमिति प्रतिज्ञा। **'प्रतिज्ञा'**।।

(२) दृश्यत्वादिति **'हेतुः'**।

(३) स्वप्नदृश्यभाव वदिति **'दृष्टान्तः'**॥

(४) यथा तत्र स्वप्ने दृश्यानां भावानां वैतथ्यं तथा जागरितोऽपि दृश्यत्वमविशिष्टमिति **हेतूपनयः**'।

(५) तस्माज्जागरितेऽपि वैतथ्यं स्मृतमिति **निगमनम्**॥

गौड़पाद—'स्वप्नजागरितस्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः।'

(६) **जो आदि और अन्त में नहीं है वह वर्तमान में भी नहीं है—**

'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।'

असत् पदार्थ भ्रम से सत्ताशील दिखाई पड़ रहे हैं—

'वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥'

अद्वैत आत्मा ही द्वैत की कल्पना करती है।

'कल्पयत्यात्मनात्मात्मा देवः स्वभायया।
स एव बुध्यते भेदानिति वेदान्त निश्चयः॥'

(८) **अज्ञाननिवृत्ति ही आत्म ज्ञान है।**

'निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्तते।
रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मुविनिश्चयः॥'

(९) मूल तत्त्व के विषय में विभिन्न दृष्टियाँ—

जगत का कारण 'प्राण' है, चार महाभूत हैं, गुण है, आत्मा के पाद हैं, विषय हैं, सत्य, इन्द्रादि, चारवेद, यज्ञ, काल, या दिशायें हैं।

यह कारण मन है, बुद्धि है, धमाधर्म है, २५ तत्त्व हैं, २६ तत्त्व हैं, ३१ तत्त्व हैं, सृष्टि, स्थिति लय हैं।

'प्राण इति प्राणविदो भूतानीति च तद्विदुः ।
गुण इति गुणविदस्तत्त्वा नीति च तद्विदः ।।' आदि

(१०) जगत् स्वप्न या माया है—

'स्वप्नमाये यथाा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा ।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ।।'

(११) न प्रलय है, न उत्पत्ति, न बद्ध है, न साधक है—यही **परमार्थता** है—

'न निरोधो न चोत्पतिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त यत्येषा परमार्थता ।।'

(१२) अद्वैत ही शिव है अर्थात् मङ्गलमय है—

'तस्मादद्वयता शिवाः ।।'

(१३) * कोई भी वस्तु न तो ब्रह्म से पृथक है और न अपृथक *

' न पृथङ् ना पृथकिंकचिदिति तत्त्वविदो विदुः।।'

(१४) प्रपञ्चोपशम, निर्विकल्प अद्वय तत्त्व का द्रष्टा

'वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।
निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः ।।'

(१५) * अद्वैत में ही मनोनिवेश करके और अद्वैततत्त्व को प्राप्त करके जड़वत व्यवहार करना चाहिए *

'तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम् ।
अद्वैतं समनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् ।।'

[३] अद्वैतप्रकरण—

(१) भेददर्शी कृपण है—'तेनासौ कृपणः स्मृतः ।।'

(२) 'अकार्पण्य' (अजन्मा ब्रह्म का भाव) का प्रतिपादन।

'यथा न जायते किंचिज्जायमानं समन्ततः ।''

(सब ओर उत्पन्न होने पर भी कुछ भी उत्पन्न नहीं होता)

(३) आत्मा आकाशवत है किन्तु घटाकाशों के समान जीव के रूप में उत्पन्न होता है—

'आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः ।'

(४) * जीव आत्मा में उसी प्रकार विलीन होते हैं यथा महाकाश में घटाकाश *

'घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा ।
आकाशे संप्रलीयन्ते तद्वज्जीवा इहात्मनि ।।'

एक घटाकाश के धूल-धूम्र आदि से युक्त होने पर सभी घटाकाश उनसे प्रभावित नहीं होते। इसी प्रकार जीव भी सुखादि धर्मों से लिप्त नहीं होता

'तद्वज्जीवाः सुखादिभिः ।'

(५) भिन्न-भिन्न आकाशों के रूप, कार्य और नामों में तो भेद है किन्तु आकाश में तो कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार जीवों के विषय में भी निश्चय समझना चाहिए—

'आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ।।'

जिस प्रकार घटाकाश आकाश का विकार या अवयव नहीं है उसी प्रकार जीव भी आत्मा का विकार या अवयव कभी नहीं है—

"नैवात्मनः सदा जीवो विकारावयवौ तथा ।"

(६) जीवात्मा और आत्मा अभेद है—

"जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशस्यते ।।"

(७) * अद्वैत ही परमार्थ है, द्वैत उसी का भेद (कार्य) है *

'अद्वैतं परमार्थो हि द्वैतं तद्भेद उच्यते ।
तेषामनुयथा द्वैतं तेनायं न विरुद्ध्यते ।।'

आत्मा में भेद-प्रतीति माया के कारण ही है—

'मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाजं कथञ्चन ।।'

(८) **'अजातिवाद' ही सत्य है—**

जीवोत्पत्ति सर्वथा असंगत है—

'अजातस्यैव भावस्य जातिमिच्छन्ति बादिनः ।
अजातो ह्यमृतो भावो मर्त्यतां कथमेष्यति ।।'

मृत्युहीन वस्तु मरणशील नहीं होती—

'न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा ।।'

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ॥'
'अजायमानो बहुधा विजायते।'

गौड़पादाचार्य कहते हैं—

'अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः।'

(९) * आत्मा कैसे प्रकाशित होती है ? *

अनात्मा का प्रतिषेध करने से ही आत्मा प्रकाशित होती है—

'स एषनेतिनेतीति व्याख्यातं निह्नुते यतः ॥
सर्वमग्राह्यभावेन हेतुनाजं प्रकाशते ॥'

(१०) * सद्वस्तु की उत्पत्ति मायिक होती है *

'सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः।'

असद्वस्तु की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है—

'असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते।
वन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते।'

माया से ही द्वैताभास रूप से सारे द्वैत उत्पन्न होते हैं—

'यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दन्ते मायया मनः।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ॥'

(११) * अद्वय मन ही द्वैतरूप से भासित होता है *

'अद्वयं च द्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः।
अद्वयं च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः ॥'

(१२) * समस्त चराचर द्वैत मन का ही दृश्य है *

'मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किंच सचराचरम्।'

किन्तु **अमनीभाव की स्थिति में द्वैतभाव नहीं रहा करता—**

'मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥'

अमनीभाव कैसे उदित होता है? तत्त्वबोध द्वारा—

'आत्मसत्यानुबोधेन न सङ्कल्पयते यदा।
अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम् ॥'

(१३) * अजन्मा ज्ञान से ही अजन्मा आत्मतत्त्व का उदय होता है *

(१) उस सर्वकल्पनाशून्य अजन्मा ज्ञान की विवेकी ज्ञेय ब्रह्म से अभिन्न है। ब्रह्म जिसका विषय है वह ज्ञान अजन्मा और नित्य है। उस **अजन्मा ज्ञान** से **अजन्मा आत्मतत्त्व** स्वयं ही जाना जाता है।

'अकल्पकमजं **ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं** प्रचक्षते ॥'
ब्रह्मज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते ॥'

(१४) * सुषुप्ति एवं समाधि में क्या भेद है ? *

(सुषुप्ति में मन अविद्या में लीन होता है किन्तु समाधि में नहीं।)

'लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते।
तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ॥'

(१५) * ब्रह्म का स्वरूप क्या है ? *

'अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् ।
सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन ॥
सर्वाभिलापविगतः सर्वचिन्तासमुत्थितः ।
सुप्रशान्तः सकृज्ज्योतिः समाधिरचलोऽभयः ॥

(१६) * 'अस्पर्शयोग' का स्वरूप क्या है ? *

'अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः ।
योगिनो विभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः ॥'

(१७) * मनोविग्रह के साधन एवं प्रक्रिया *

(१) कुशाग्रभाग से एक-एक बूँद द्वारा समुद्र को भी उलीचा जा सकता है उसी प्रकार खिन्नता का त्याग कर देने पर मन का निग्रह हो सकता है—

'मनसो निग्रहस्तद्वत् भवेत् परिरवेदतः।'

(२) काम्य विषय एवं भोगों में विक्षिप्त चित्त का उपायपूर्वक निग्रह करे तथा लयावस्था में अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त चित्त का भी करना चाहिए। उसकी काम एवं लय दोनों से रक्षित करना चाहिए।

(३) 'सम्पूर्ण द्वैत दुःखरूप हैं—ऐसा निरन्तर स्मरण करते हुए चित्त को कामजनित भोगों से हटाना चाहिए।

'दुखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्तयेत् ॥'

(४) यदि मन सुषुप्ति में लयीभूत होने लगे तो उसे आत्मविवेक में नियुक्त करे, यदि विक्षिप्त हो जाय तो उसे शान्त करे। साम्यभावापन्न चित्त को कभी चंचल नहीं करना चाहिए।[१]

(५) उस साम्यभावापन्न सुख का आस्वादन नहीं करना चाहिए, प्रत्युत्

---

[१] माण्डूक्यकारिका

विवेकशील बुद्धि के द्वारा उससे निःसंग रहना चाहिए। यदि चित्त बाहर निकलने लगे तो उसे निश्चल एवं एकाग्र करना चाहिए।

(६) जिस समय चित्त सुषुप्ति में लीन न हो और फिर विक्षिप्त भी न हो तथा निश्चल और विषयाभास से रहित हो जाय उस समय वह ब्रह्म ही हो जाता है।

(७) उस अवस्था में जो आनन्द अनुभव होता है उसे ब्रह्मज्ञ लोग स्वस्थ, शान्त, निर्वाणयुक्त, अकथ्य निरातिशयसुखस्वरूप, अजन्मा एवं ज्ञेय से अभिन्न एवं सर्वज्ञ बतलाते हैं।

(८) परमार्थ का स्वरूप इस प्रकार है कि—

'न कश्चिज्जायते जीवः संभवोऽस्य न विद्यते।
एतदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते॥'[१]

[४] **'अलातशान्ति प्रकरण'**—

(१) * **अद्वैततत्त्व एवं अस्पर्शयोग** *

आचार्य गौड़पाद ने अलातशान्ति प्रकरण के प्रारंभ में **अद्वैत तत्त्व की वन्दना** की है। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—

(१) रागद्वेषादि क्लेशों का आश्रय न होने के कारण **अद्वैतदर्शन ही सम्यक् दर्शन** है।

(२) वेद के तात्पर्यभूत इस **अद्वैतदर्शन** के विरोधी जो द्वैतवादी और वैनाशिक बौद्धादिक हैं उनके दर्शन परस्पर विरोधी होने के कारण रागद्वेषादि क्लेशों के आश्रय हैं। अतः उनका मिथ्यात्वदर्शनत्व सूचित होता है।

(३) आवीतन्याय से **अद्वैतदर्शन की सिद्धि** का उपसंहार करना है—

(क) 'क्लेशानास्पदत्वात्सम्यग्दर्शनमित्यत्य**द्वैतदर्शनं** स्तूयते।'

(ख) '**अद्वैतदर्शन**सिद्धिरूपसंहर्तव्यम्।'

(ग) अधुना **अद्वैतदर्शनयोगस्य** नमस्कारस्तत्स्तुतये

'**अस्पर्शयोगो** वै नाम **सर्वसत्वसुखो हितः।**
अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं **नमाम्यहम्॥**'

गौड़पादीय **'अस्पर्श योग'** की व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर उसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

---

[१] माण्डूक्यकारिका

"जिस योग का किसी से कभी स्पर्श अर्थात् सम्बन्ध नहीं है उसे **'अस्पर्शयोग'** कहते हैं और **वह ब्रह्म स्वभाव ही है**—

"स्पर्शनं स्पर्शः न विद्यते यस्य योगस्य केनचित् कदाचिदपि सोऽस्पर्शयोगो ब्रह्मस्वभाव एव॥"—

"ब्रह्मविदामस्पर्शयोग इत्येवं प्रसिद्ध इत्यर्थः॥'

(४)

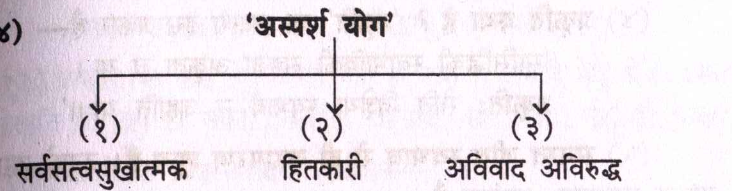

(२) **सांख्य, वैशेषिक एवं न्याय का खण्डन**—

'भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते।
विवदन्तोऽद्वया ह्येव**मजातिख्यापयन्ति ते॥**'

कतिपय दार्शनिक यह कहते हैं कि **'भूत' [विद्यमान वस्तु की जाति (उत्पत्ति)] नहीं होती।** (सांख्यदर्शन की दृष्टि।)

प्राज्ञाभिमानी वैशेषिक एवं न्याय के पक्षधर कहते हैं कि **'अभूत' (अविद्यमान वस्तु)** ही जन्म लेती है'—

'भूतं न जायते किंचिदभूतं नैव जायते।
विवदन्तोऽद्वया ह्येवमजातिं रव्यापयन्ति ते॥'

इन सत्कार्यवादी एवं असत्कार्यवादी दार्शनिकों के मतों से तो उत्कृष्टतर मेरा ही सिद्धान्त सही है कि उत्पत्ति ही नहीं होती।

[५]—

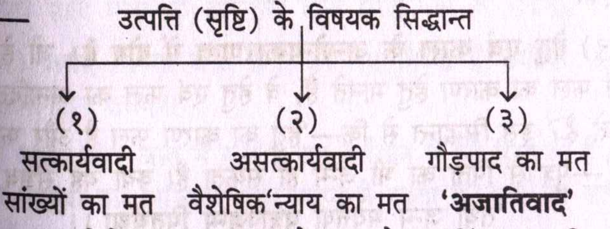

गौड़पादाचार्य के मत—"विवदन्तोऽद्वया ह्येवमजातिं रव्यापयन्ति ते॥[१]

[६] **गौड़पादाचार्य के तर्क**—

(१) कुछवादी लोग अजात वस्तु की ही उत्पत्ति होना स्वीकार करते हैं; किन्तु **अजात तो अमृत** है अतः उत्पन्न होकर वह मरणधर्मा कैसे हो सकता है?

---

[१] अलातशान्ति प्रकरण (४) (२)

(२) **स्वभावविपर्यय असंभव है—**

'न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथंचिद्भविष्यति ॥'

(३) जिसके मत में स्वभावत: **अमर भी मृत हो जाता** है उसके सिद्धान्त के अनुसार अमृततत्त्व चिरस्थायी (निश्चल) कैसे बन पायेगा?

(४) **प्रकृति क्या है ?** 'प्रकृति' का लक्षण इस प्रकार है—

'सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या।
प्रकृतिः सेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या ॥'

(५) **समस्त जीव स्वभाव से ही जरामरण शून्य हैं।** उनको जरामरण युक्त बताना स्वभावत: असंगत है—

'जरामरण निर्मुक्ता: सर्वे धर्म: स्वभावत: ।'

(६) **सांख्यमतावलम्बी** कहते हैं कि—"कारण ही कार्य है अत: कारण ही उत्पन्न होता है।' यह ठीक नहीं है क्योंकि जन्म लेने वाला अजन्मा कैसे हो सकता है?

यदि **'प्रधान'** नित्य है तो वह विदीर्ण होकर महदादि रूपों में परिवर्तित कैसे हो सकता है?

(७) यदि **'कारण'** कार्य से अभिन्न है फिर तो कार्य को भी अजन्मा मानना पड़ेगा। यदि यह सही है तो कार्य से अभिन्न कारण भी निश्चल नहीं रह सकता।

(८) जो किसी **अजन्मा से किसी कार्य की उत्पत्ति** मानते हैं उनके पास कोई दृष्टान्त या **प्रमाण नहीं है।** यदि **जात से कार्योत्पत्ति** मानी जाती है तो **अनवस्थादोष** आ जाएगा।

(९) **हेतु एवं काल के अन्योन्यकारणत्व में दोष है।** जो हेतु का कारण फल एवं फल का कारण हेतु मानते हैं, वे हेतु एवं फल का अनादित्व कैसे सिद्ध कर सकते हैं? इस सिद्धान्त से कि—'हेतु का कारण फल है और फल का कारण हेतु है।"—पुत्र से पिता का भी जन्म हो सकता है। क्या यह संभव है?

'तथा जन्म भवेत्तेषां **पुत्राज्जन्म पितुर्यथा ।।'**

(१०) हेतु से फल एवं फल से हेतु की सिद्धि होती है तो उनमें से प्रथम कौन हुआ? किसकी अपेक्षा से दूसरे का आविर्भाव माना जाय?

—इन्हीं वैचारिक असंगतताओं के कारण गौड़पाद का कथन है कि **'अजातिवाद' का सिद्धान्त** ही सही है—

'एवं हि सर्वथा **बुद्धैरजातिः परिदीपिता ।।'**

(११) बीज और अंकुर, हेतु एवं फल के पौर्वापर्य के अज्ञान के कारण अनुत्पत्ति (अजातिवाद) का सिद्धान्त ही सही है।

(१२) गौड़पाद का मत 'अजातिवाद' है अत: गौड़पाद कहते हैं—

'स्वतो वा परतो वापि न किंद्विस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वापि न किंचिद्वस्तु जायते ॥'

(१३) अनादि का कोई हेतु उत्पन्न नहीं हो सकता। अनादि हेतु से (**स्वभाव से**) फलोत्पत्ति भी नहीं हो सकती। क्योंकि 'अनादि' का 'आदि' नहीं हो सकता।

(१४) **बौद्धों के विज्ञानवादका खण्डन—**

आचार्य गौड़पादाचार्य कहते हैं—

चित्त किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं करता और इसी प्रकार न किसी अर्थाभास का ही ग्रहण करता है क्योंकि पदार्थ है ही नहीं अत: पदार्थाभास भी उस चित्त से पृथक नहीं है।

तीनों अवस्थाओं (भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान) में चित्त कभी किसी विषय का स्पर्श नहीं करता फिर उसे बिना निमित्त के ही विपरीत ज्ञान कैसे हो सकता है?

(१५) चित्त भी उत्पन्न नहीं होता और न तो चित्त का दृश्य ही उत्पन्न होता है—

'तस्मान्न जायते चित्तं चित्तदृश्यं न जायते ॥' (२८)

कारण यह है कि **अजन्मा (चित्त) का ही जन्म होता है अतः अजाति ही उसका स्वभाव है** और स्वभाव के विरुद्ध कुछ होता नहीं। अनादि संसार का अन्तवत्व एवं सादि मोक्ष की अनन्तता दोनों सिद्ध नहीं हो सकतीं।

(१६) **जगत मिथ्या क्यों है ?** इसलिए मिथ्या है क्योंकि 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा॥'

(**जो आदि और अन्त में नहीं है वह वर्तमान में भी वैसा** ही है अर्थात् नहीं है।) **जाग्रत पदार्थों का अस्तित्व क्या स्वप्न में रहता है?**अत: जो सादि-सान्त हैं वे मिथ्या हैं—

'तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृता: ॥'

स्वप्न भी जाग्रतकाल में मिथ्या है क्योंकि—

'गृहीतं चापि यत्किंचित्प्रतिबुद्धो न पश्यति ॥'

स्वप्नगतशरीर भी मिथ्या होता है। उसी प्रकार सम्पूर्ण चित्त दृश्य अवस्तुरूप

है। 'स्वप्न' जाग्रत (कारण) का कार्य है। स्वप्नद्रष्टा के लिए ही जाग्रतावस्था सत्य है औरों के लिए नहीं।

(१७) **सब कुछ अज है और सत् से असत् की उत्पत्ति** असंभव है—

(१) 'अजं सर्वमुदाहृतम् ।'

(२) 'न च भूतादभूतस्य संभवोऽस्ति कथंचन ।।''

(१८) **जगत के मिथ्यात्व** का यह भी कारण है कि—

जीव जाग्रत अवस्था में असत्पदार्थों को देखकर उन्हीं के संस्कारों से उन्हें स्वप्न में देखता है किन्तु स्वप्नदृष्ट पदार्थों को जाग्रत अवस्था में नहीं देखता।

(१९) **कारणकार्यवाद की समीक्षा**—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि न तो—

(क) असत् पदार्थ असत् कारणात्मक है।

(ख) न तो, सत पदार्थ असत् कारणात्मक है।

(ग) न तो, असत् पदार्थ ही सत्कारणात्मक है।

स्वप्न भ्रान्ति मात्र है।

(२०) **जातिवाद किसके लिए है ?** जो अजातिवाद से भयभीत होते हैं उन्हीं के लिए जातिवाद का उपदेश दिया गया है।

(२१) **अद्वय पदार्थ क्या है?** आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

'जात्यभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च ।
अजाचलभवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम् ।।' (४५)

(२२) **विज्ञानवाद का खण्डन**—यथा अलात (उल्का) का घूमना ही सीधे टेढ़े आदि रूपों में भासित होता है। तदवत् विज्ञान का स्फुरण ही ग्रहण एवं ग्राहक आदि रूपों में भासित हो रहा है। जिस प्रकार स्पन्दनशून्य अलात (लुआठी) आभासशून्य एवं अज है उसी प्रकार स्पन्दनशून्य विज्ञान भी आभासशून्य एवं अज है—

'अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा ।
अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा ।।'

अलात के स्पन्दित होने पर भी वे आभास किसी अन्य कारण से नहीं होते तथा उसके स्पन्दरहित होने पर भी कहीं अन्य नहीं चले जाते और न तो अलात में ही प्रविष्ट होते हैं। उनमें द्रव्यत्व के अभाव का योग होने के कारण वे अलात से भी नहीं निकलते। **'विज्ञान'** के स्पन्दित होने पर भी उसके आभास किसी अन्य

कारण से नहीं होते तथा उसके स्पन्दशून्य होने पर कहीं अन्यत्र नहीं चले जाते और न विज्ञान में ही प्रविष्ट होते हैं। वे अचिन्त्य (अनिर्वचनीय) हैं।

(२३) * **आत्मा में कार्यकारणभाव संभव नहीं है।** *

('आत्मा खलु विश्वमूलं' कहकर महेश्वरानन्द ने आत्मा को 'कारण' एवं विश्व को 'कार्य' प्रतिपादित किया है)

गौड़पाद कहते हैं कि—**'आत्माओं'** में द्रव्यत्व एवं अन्यत्व संभव नहीं है। द्रव्य का **कारण** द्रव्य ही हो सकता है। अन्य द्रव्य का अन्य द्रव्य ही कारण होताहै। आत्माओं में द्रव्यत्व अन्यत्व दोनों नहीं है।

(२४) **'कार्य कारणवाद' का खण्डन**—न तो बाह्य पदार्थ ही चित्तोत्पन्न हैं और न तो चित्त ही बाह्यपादार्थोत्पन्न है अतः मनीषी कार्यकारण की अनुत्पत्ति ही स्वीकार करते हैं। जब तक **हेतु एवं फल** का आग्रह है तभी तक **हेतु और फल** की भी उत्पत्ति है किन्तु (फल हेतु-फल का) आवेश समाप्त होते ही हेतुफलरूप उत्पत्ति भी नहीं होती, हेतु-फल का आग्रह रहने तक ही **संसर** है। इस आग्रह के नष्ट होते ही **संसार** का अस्तित्व नहीं रहता—

'यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः ।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ।।'

(२५) * **सर्वाजत्व एवं सर्वअविनाशत्व** *—परमार्थ की दृष्टि से सब कुछ अज है अतः किसी का विनाश भी नहीं है—

'सद्भावेन ह्यजं सर्वमुच्छेदस्तेन नास्ति वै ।।'

समस्त **पदार्थ व्यावहारिक दृष्टि से ही उत्पन्न होते हैं** अतः वे नित्य नहीं है—

'संवृत्या जायते सर्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै ।।'

(२६) * **जीवोत्पत्ति** मायिक दृष्टि है *

'धर्मा य इति जायन्ते, जायन्ते तेन तत्त्वतः ।
जन्ममायोपमं तेषां सा च **माया** न विद्यते ।।५८।।

('संवृत्यैव धर्मा जायन्ते, न ते तत्त्वतः परमार्थतो जायन्ते ।।)[1]

यथा मायामय बीज से मायामय अंकुर उत्पन्न होते हैं और न तो वे नित्य होते हैं और न नश्वर उसी प्रकार धर्मों की भी स्थिति है।[2]

---

[1] शङ्कराचार्य मा०का० भाष्य।

[2] मा०का० ५९।

'यथा मायामयाद् बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः ॥'

(२७) *** चित्तोत्पत्ति का कारण माया है ***

गौड़पादाचार्य कहते हैं—

'यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया ॥' (६१)

(२८) **स्वप्न एवं स्वाप्निक पदार्थों की द्रष्टा से अभिन्नता ***

'स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्।'

इसी प्रकार स्वप्न द्रष्टा का यह चित्त भी उसी का दृश्य है।

जाग्रत चित्त के दृश्य जाग्रत अवस्था के साक्षी से अभिन्न हैं। इसी प्रकार जाग्रच्चित्त भी उसी का दृश्य है।[1]

(२९) **उत्पत्ति और विनाश तथा जन्म एवं मृत्यु की असत्यता**

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) जिस प्रकार स्वप्न का जीव उत्पन्न होता है और मरता भी है उसी प्रकार ये समस्त जीव भी उत्पन्न होते हैं और मरते भी हैं। जिस प्रकार मायामय जीव उत्पन्न होता है और मरता भी है उसी प्रकार ये सभी जीव उत्पन्न होते और मरते भी हैं। जिस प्रकार मंत्रादि-रचित जीव उत्पन्न होता है और मरता भी है उसी प्रकार सारे जीव उत्पन्न होते एवं मरते भी हैं।[2]

(३०) **अजातिवाद और उत्तम सत्य**—गौड़पादाचार्य कहते हैं—

'न कश्चिज्जायते जीवः संभवोऽस्य न विद्यते।
एतदुत्तमं सत्यं यत्र किचिन्न जायते ॥'

सम्पूर्ण द्वैत चित्त का स्फुरण मात्र है—

आचार्य **गौड़पाद** कहते हैं कि 'चित्तं निर्विषयं नियमसङ्गं तेन कीर्तितम्' किन्तु द्वैत क्या है? द्वैत मात्र चित्त-स्पन्दन है—

'चित्तस्पन्दितमवेदं ग्राह्यग्राहकमद्वयम्।'

(३१) *** व्यवहारगत सत्य एवं उसके लिए कल्पित पदार्थ मिथ्या है ***

गौड़पादाचार्य कहते हैं—

(१) 'योऽस्तिकल्पितसंवृत्या परमार्थेन नास्त्यसौ।'

---

[1] मा०का० (अलातशान्ति प्रकरण : ६६)

[2] मा०का० (अ०शा०प्र० : ६८, ६९, ७०)

(२) 'परतन्त्राभिसंवृत्या स्यान्नास्ति परमार्थतः ॥'

(अर्थात् परशास्त्रों के अनुसार हो भी तो वह पारमार्थिक नहीं है)

(३२) **क्या आत्मा 'अज' है?** गौड़पादाचार्य कहते हैं कि कल्पित व्यवहार के कारण ही आत्मा को 'अज' कहते हैं परमार्थतः तो वह अज भी नहीं है। सांवृत्तिक दृष्टि से (भ्रमपूर्ण व्यवहार की दृष्टि से) उसका जन्म (कोई कोई) मानते हैं अतः उसका निषेध करने के लिए उसे 'अज' कहा गया है। परमार्थतः आत्मा 'अज' भी नहीं है।

'अजः कल्पित संवृत्या परमार्थेन नाप्यजः ॥'[1]

(३३) **परमार्थतत्त्व में द्वैत नहीं है :** 'द्वयं तत्र न विद्यते॥'

(३४) *** समस्त प्रतीयमान द्वैतवर्ग चित्त का ही दृश्य है ***

'अजातस्यैव सर्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः ॥'

(३५) **चित्त की अचल स्थिति कैसे प्राप्त की जाय ?**

आचार्य गौड़पाद मनोलय या प्रत्याहार-सिद्धि के साधनों में सर्वोच्च साधन द्वैतापलाप को स्वीकार करते हैं।

(३६) *** परमार्थदर्शी पुरुषों का 'साम्य' 'अज' एवं 'अद्वय' तत्त्व ***

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) द्वैत से निवृत्त और विषयान्तर में अनासक्त चित्त को **निश्चल स्थिति प्राप्त** हो जाती है और यही निश्चल स्थिति बुद्धाँ (परमार्थदर्शियों) का 'विषय' है, परम साम्य है। अज है और अव्यय है—

'निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः।
विषयः स हि बुद्धानां तत्साम्यमजमद्वयम् ॥'[2]

(३७) *** आत्मा का स्वरूप क्या है ? ***

गौड़पादाचार्य कहते हैं कि आत्मा, अज, अनिद्र, अस्वान प्रभात, सकृद्विभात एवं वस्तुस्वभाव है—

'अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातं भवति स्वमय्।
सकृद्विभातो ह्येवैष धर्मो धातुस्वभावतः ॥८१॥'

(३८) **आत्मा का द्वैताच्छादन**—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि भगवान्

---

[1] मा०का० (७४)

[2] मा०कां० (अ०शा०प्र० ८०)

अनायास ही जिस किसी द्वैत से आच्छादित हो जाते हैं और बड़ी कठिनाई से ही प्रकट होते हैं—

'सुखमाव्रियते नित्यं दुःखं विव्रियते सदा।'

आत्मा के अस्तित्व के विषय में दार्शनिक दृष्टियाँ

(कोटि चतुष्टय)

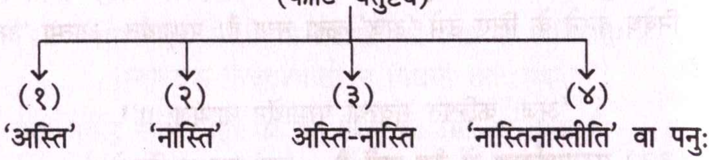

'चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येवं बालिशः।।'

(४०) **द्वैत के दो भेद**

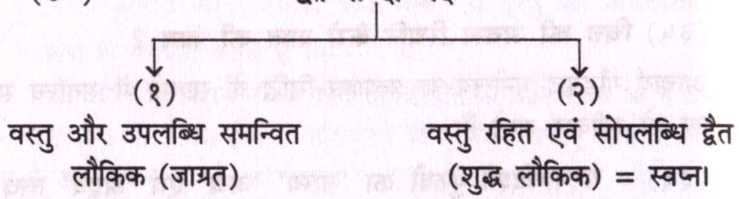

जो वस्तु और उपलब्धि दोनों से रहित है वह अवस्था लोकोत्तर (सुषुप्ति) है।

'ज्ञान' 'ज्ञेय' एवं 'विज्ञेय' जिसके द्वारा अवस्थाओं का बोध हो उसे **'ज्ञान'** कहते हैं।

जिसके द्वारा 'ज्ञेय (अवस्थत्रय) आत्मतत्त्व ही **विज्ञेय** है।

सर्वज्ञाता प्राप्ति के साधन

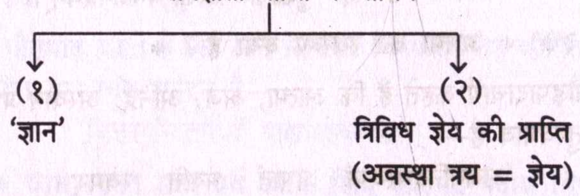

आचार्य शंकर की व्याख्या—(१) जागरित, स्वप्न एवं सुषुप्ति = अवस्थात्रय रज्जु में सर्प के समान आत्मा के असत् होने के कारण **त्याज्य** हैं।

(२) चतुष्कोटि विनिर्मुक्त परमार्थतत्त्व **'ज्ञेय'** है।

(४१) * **जीवों का स्वरूप** *—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—(१) समस्त जीव स्वभाव से ही आकाशवत है। (२) आत्मा अनादि हैं। (३) आत्मा का नानात्व कहीं भी नहीं है—

'विद्यते न हि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन ।।'

(४) आत्मा स्वभावतः नित्यबोधस्वरूप है।

'आदिबुद्धाः प्रकृत्यैव सर्वे धर्माः सुनिश्चितः ।।'
(सर्वेधर्माः सर्व आत्मानः—शंकराचार्य)।

(५) आत्मा का स्वरूप = आदिशान्ताः ह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः सर्वे धर्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम् ।।'

(४२) **शुद्धि का उपाय**—शुद्धि का उपाय द्वैत का त्याग है।

'वैशारद्यं तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा ।।'

भेदासक्त ही **'कृपण'** है (दीनहीन हैं) ।(९४)

आत्मा का स्वरूप—गौड़पादाचार्य कहते हैं—

'अलब्धावरणः सर्वे धर्माः प्रकृति निर्मलः ।।'
'आदौ बुद्धास्तथामुक्ता........... ।।(९८)[1]

(४३) **अद्वैत और वेदान्त**—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि परमार्थ तत्त्व अद्वैत है। शंकराचार्य व्याख्या करते हुए कहते हैं—

'इदं तु परमार्थतत्त्वमद्वैतं वेदान्तेष्वेव विज्ञेयमित्यर्थः।।'[2]

आचार्य शंकर गौड़पादाचार्य को 'पूज्यामिपूज्य परम गुरु' कहते हैं—

'यैस्तं पूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि ।।''

[१०] **'सांख्यकारिका' भाष्य**—सांख्यकारिका पर प्रणीत अपने भाष्य में आचार्य गौड़पाद ने सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का खण्डन न करके अपने अद्वैतवादी दर्शन के विरुद्ध सांख्य सम्मत सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है।

'पुरुषबहुत्वं सिद्धं' वाली कारिका को ही ले लीजिए। उसमें वे कहते हैं कि आत्मा (पुरुष) अनेक हैं अन्यथा एक आत्मा के जन्म लेने पर सभी जन्म ले लेतीं, एक के मरने पर सभी मर जातीं, एक के बधिर या मूक होने पर सभी बधिर या मूक हो जाती अतः स्पष्ट है कि एक आत्मा नहीं अनन्त आत्मायें हैं—

(१) 'यद्येक एव आत्मा स्यात्तत एकस्य जन्मनि सर्व एव जायेरन् एकस्य मरणे

---

[1] माण्डूक्यकारिका (अ०शा०प्र० ९८)

[2] शाङ्करभाष्य (९९)

सर्वेऽपि म्रियेरत, एकस्य कारण वैकल्ये बाधिर्याऽन्धत्वमूकत्व कुणित्वखञ्जत्वलक्षणे सर्वेऽपि बधिरान्धमूक कुणिखञ्जाः स्युः न चैवं भवति तस्मात्—

(२) "जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात् पुरुषबहुत्वं सिद्धम्।"

आचार्य गौड़पाद कपिल को ब्रह्मा का पुत्र घोषित करते हुए कहते हैं कि उन्होंने (कपिल ने) जगत को प्रगाढ़ अन्धकार में निमज्जित देखकर करुणा से भरकर अपने शिष्य आसुरि को २५ तत्त्वों वाले अपने ज्ञान का उपदेश दिया। उसके ज्ञान से दुःखत्रय का क्षय हो जाता है और इसी उद्देश्य से ही 'सांख्यकारिका' की प्रथम कारिका में **'दुःखत्रय** के अभिघात की **जिज्ञासा'** व्यक्त की गई थी और कहा गया था कि—

'दुखत्रयाऽभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ'[१]

गौड़पाद ने अपनी ओर से 'दुख' को तीन भागों में विभाजित करके प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ये दुःखत्रय निम्नाङ्कित हैं—

(१) आध्यात्मिक दुःख, (२) आधिभौतिक दुःख (३) आधिदैविक दुःख।

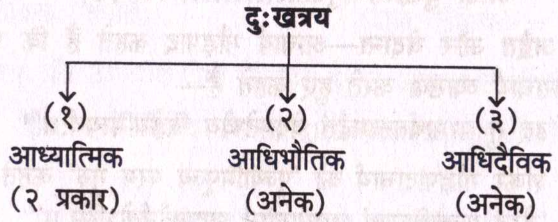
दुःखत्रय
(१)
आध्यात्मिक
(२ प्रकार)
(२)
आधिभौतिक
(अनेक)
(३)
आधिदैविक
(अनेक)

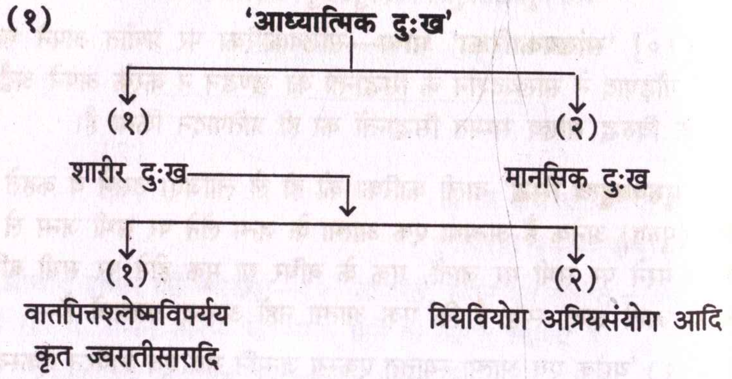
(१)
'आध्यात्मिक दुःख'
(१)
शारीर दुःख
(२)
मानसिक दुःख
(१)
वातपित्तश्लेष्मविपर्यय
कृत ज्वरातीसारादि
(२)
प्रियवियोग अप्रियसंयोग आदि

---

[१] सांख्यकारिका (१)

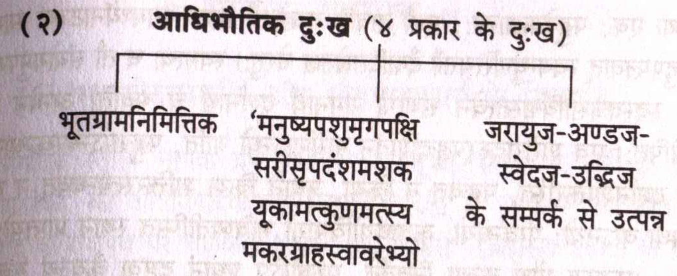
(२)
आधिभौतिक दुःख (४ प्रकार के दुःख)
भूतग्रामनिमित्तिक
'मनुष्यपशुमृगपक्षि
सरीसृपदंशमशक
यूकामत्कुणमत्स्य
मकरग्राहस्वावरेभ्यो
जरायुज-अण्डज-
स्वेदज-उद्भिज
के सम्पर्क से उत्पन्न

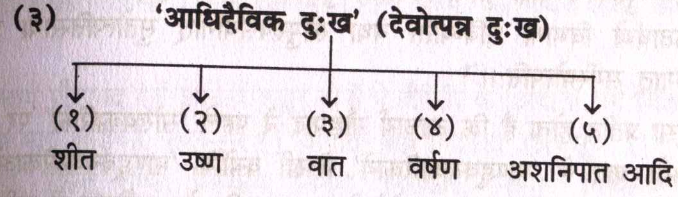
(३)
'आधिदैविक दुःख' (देवोत्पन्न दुःख)
(१)
शीत
(२)
उष्ण
(३)
वात
(४)
वर्षण
(५)
अशनिपात आदि

सांख्यतत्त्ववेत्ता की महिमा—गौड़ापादाचार्य कहते हैं—

"पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसेत्।
जटी, मुण्डी, शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥"

गुणत्रय के विरुद्धधर्मक होने पर भी सहयोग कैसे ?

आचार्य गौड़पाद ने कहा है कि यह सत्य है कि (१) सतोगुण (२) रजोगुण एवं (३) तमोगुण परस्पर विरुद्ध स्वभाव के हैं तथापि वे परस्पर मिलकर मित्रवत् कार्य करते हैं। 'यह कैसे सम्भव हो पाता है ?

—इसके उत्तर में उन्होंने एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है कि जैसे **तेल एवं आग परस्पर विरुद्ध हैं किन्तु वर्तिका के संयोग से दो विरुद्धधर्मी पदार्थ 'प्रकाश' उत्पन्न करते हैं**, उसी प्रकार गुणत्रय भी परस्पर विरुद्ध अर्थों की उत्पत्ति करते हैं।

मोक्ष-प्राप्ति की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि जब पुरुष को २५ तत्त्वों का ज्ञान हो जाता है तब **'सत्वपुरुषान्यथाख्यातिलक्षण वाले** इस ज्ञान से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसके ज्ञान का स्वरूप यह है कि पुरुष यह जान ले कि 'इदं प्रधानम्, इदं बुद्धिःख अयम् अहंकारः' इमानि पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चभूतानि, एभ्योऽन्यः पुरुषः विसदृशः' इत्येवं ज्ञानाल्लिङ्गनिवृत्तिस्ततो **मोक्ष** इति॥

—गौड़पादाचार्य

गौड़पादाचार्य की सृष्टि सम्बन्धि दृष्टि—

सृष्टि सम्बन्धिनी सांख्य दृष्टि को आचार्य गौड़पाद ने एक दृष्टान्त द्वारा बहुत अच्छी तरह से समझाया है। वे कहते हैं—

‘यथा एकः पङ्गुरेकश्चान्धः, एतौ द्वावपि गच्छन्तौ महता सामर्थ्येनाटव्यां सार्थस्य स्तेन कृतादुपप्लवात् स्वबन्धुपरित्यक्तौ दैवादितश्चेतश्च चेरतुः। स्वगत्या च तौ संयोगमुपयातौ। पुनस्तयोः स्वस्वचसोर्विश्वस्तत्वेन संयोगो गमनार्थं दर्शनार्थं च भवति। अन्धेन पङ्गुः स्कन्धमारोपितः। एवं शरीराद्रुरुपङ्गुदर्शितेन मार्गेणाऽन्धो याति, पङ्गुश्चाऽन्धस्कन्धारुढः। एवं पुरुषे दर्शनशक्तिरस्ति, पङ्गुवत् न क्रिया, प्रधाने क्रिया शक्तिरस्त्यन्धवत् न दर्शन शक्तिः। यथा वाऽनयोः पंग्वन्धयोः कृतार्थयोर्विभागो भविष्यतीप्सित स्थान प्राप्तयोः एवं प्रधानमपि—पुरुषस्य मोक्षं कृत्वा निवर्तते, पुरुषोऽपि प्रधानं दृष्ट्वा कैवल्यं गच्छति, तयोः कृतार्थयो विभागो भविष्यति। यथा स्त्रीपुरुषसंयोगात् सुतोत्पत्तिस्तथा प्रधान पुरुषसंयोगात् सर्गस्योत्पत्तिः॥’[१]

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य गौड़पाद ने पहले ‘सांख्यकारिका’ पर भाष्य लिखा और बाद में ‘माण्डूक्यकारिकायें’ लिखीं क्योंकि ‘माण्डूक्यकारिकाओं’ में आचार्य ‘अजातिवाद’ के प्रतिपादक होने के कारण सृष्टि होना स्वीकार ही नहीं करते और प्रश्न करते हैं कि—

‘अज़ातस्यैव धर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः।
अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यतां कथमेष्यति ?’[२]

अतः—

‘न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथंचिद्भविष्यति॥
‘भूतं न जायते किंचिदभूतं नैव जायते।
विवदन्तोऽद्वया ह्येवमजातिंर व्यापयन्ति ते॥[३]
‘न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते॥’[४]

***

---

१. गौड़पादाचार्यः सांख्यकारिका भाष्य
२. अलातशान्ति प्रकरण (माण्डूक्यकारिका)
३. मा०का० (४/४)
४. गौड़पादाकारिका (अ०शा०प्र० ४८)

* द्वितीय अध्याय *

[१] ‘सुभगोदयस्तुति’ और गौड़पादाचार्य के सिद्धान्त

‘सुभगोदय स्तुति’ नामक ग्रंथ ‘श्रीविद्या रत्नसूत्रम्’ (सूत्र-ग्रंथ) की ही भाँति ‘माण्डूक्यकारिका’ की औपनिषदिक ब्रह्माद्वैतवादिनी दृष्टि से पृथक—शक्त्यद्वैतवाद, शक्तिब्रह्मवाद के राजपथ पर चलकर ‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा’ (ब्रह्मसूत्र १।१) के स्थान पर ‘अथातो शक्ति जिज्ञासा’ (शाक्त दर्शनम्) (शक्ति सूत्रम्) का पाथेय लेकर अग्रपद हुआ।

आचार्य गौड़पाद एवं आचार्य शङ्कर दोनों ने जैमिनि के ‘अथातो धर्म जिज्ञासा’ (१।१) का मार्ग छोड़कर पहले—(१) ‘अथातो ब्रह्म जिज्ञासा’ (ब्र०सू० १।१) का मार्ग पकड़ा, किन्तु शुष्क, निष्क्रिय, निर्गुण, निराकार, निस्पृह, निष्करुण एवं अवाङ्मनसगोचर ‘ब्रह्म’ के कण्टकित दारुण अरण्य में रसानुभूति न होने से उन दोनों ने ‘ब्रह्मजिज्ञासा’ के भी पथ को छोड़कर अथातो शक्ति जिज्ञासा’ वाला जगन्माता का चिन्मय, रसमय एवं आनन्दमय मार्ग पकड़ा और उसमें से एक—

‘शिवश्शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलस्स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यं हरिहर विरिञ्चादिभिरपि,
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥’[१]

कहकर शक्ति का स्तवन करते हुए ‘समयाचार’ के मार्ग पर चल पड़ा तो दूसरा—

‘भवानि त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुख वपुः,
पराकारां देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम्।
महाकालातीतां कलितसरणी कल्पिततनुं,
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम्॥’[२]

गाते हुए ‘सहस्रार’ की यात्रा पर चल पड़ा।

[१] * सुभगा और सुभगोदय *

‘सुभगा’ शब्द का अर्थ—‘सुभगा’ का अर्थ है उत्कृष्ट ऐश्वर्यों वाली।

(१) सुभग + अण् = सौभगम् = सौभाग्य, समृद्धि।

---

१. सौन्दर्यलहरी (१)
२. सुभगोदय स्तुति

(२) **'सौभाग्य'** = सुभगा + ष्यञ् = अच्छा भाग्य। शुभत्व।

(३) **'सुभगोदय'** = सुभगा + उदय। सुभगा का उदय।
'सुभगा' = श्री भगवती: (उत्कृष्टतम ऐश्वर्यों वाली देवी)।

(४) **'त्रिपुरमहोपनिषद'** में भगवती त्रिपुरा के लिए भी **'सुभगा'** शब्द का प्रयोग किया गया है—

'मदन्तिका मानिनी मङ्गला च, **सुभगा** च सा सुन्दरी शुद्धमत्ता।
लज्जामतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा, लक्ष्मीसमा ललिता लालपन्ती ।।'
'भगः शक्तिर्भगवान काम ईश,
उभा दाताराविह सौभगानाम्।
समप्रधानौ समसत्वौ समोतयो:,
समशक्तिरजरा विश्वयोनि: ।।'

कहकर 'त्रिपुरामहोपनिषद' में 'भग' शब्द को 'शक्ति एवं शक्तिमान' की शक्ति या सामर्थ्य के रूप में प्रयुक्त किया गया है—

'भगः शक्तिर्भगवान् काम ईश, उमा दाताराविह सौभगानाम्'

भगवान 'भग' (ऐश्वर्य) धर्म, यश, श्री, ज्ञान एवं विज्ञान नामक गुणों से परिपूर्ण हैं।

(५) **'भग' के अर्थ**

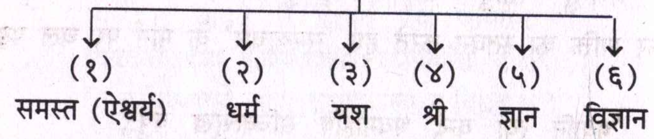

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रिय:।
ज्ञानविज्ञानयोश्चैव वण्णां **'भग'** इतीरणा ।।'

(६) **'पारमात्मिकोपनिषत्'** के सप्तम अनुवाक की चतुर्थ ऋचा में भी **'सुभगा'** शब्द क प्रयोग है—

'राकामहँ सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु न:।
'सुभगा' बोधतुत्मना सीव्यत्वप: सूच्याच्छिद्य।
मानया ददातु वीरँ शतदायभुक्थ्यं स्वाहा ।।'

(७) **टीकाकार के द्वारा की गई व्याख्या**—इसमें कहा गया है कि—

(क) भग: श्रीकाममाहात्म्यं वीर्यं यलार्कं कीर्तिषु।' (अमरको० २३-३६)

(ख) 'सु' = अतिशय या बलवत् या पूजन (अमरको० २४-२, २४-५)

(ग) 'श्रुणोतु निखिलं दोष शृणोतु च गुणैर्जगत्।'

'श्रूयते चाखिलेर्नित्यं च परम पदम्। इति।। सा भक्तस्य आर्तनादं श्रुत्वा तन्निवारणे यत्नं कर्तुं समर्था महानुभावावीर्यवती कीर्तिमती इत्यादि गुणविशिष्टेत्यपि प्रायेण **'सुभगा'** इत्युक्तम् ।।'

बृहस्पति-प्रणीत सरस्वती-स्तोत्र में भी 'कुण्डलिनी' एवं 'सुभगा' का प्रयोग किया गया है—

'शुक्लां मोक्षप्रियां रम्यां **सुभगां** शोभन-प्रियाम्।
पद्मे स्थितां कुण्डलिनीं शुक्लवर्णां मनोरमाम् ।।'

ऋग्वेद के विश्वेदेवा सूक्त (१-१.८९) में 'सुभगा' शब्द का प्रयोग भगवती सरस्वती के लिए किया गया है। भगवती कुण्डलिनी ही 'सरस्वती' है—

'तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भर्गमदितिं दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती न: **सुभगा**मयस्करत् ।।३।।

समस्त ब्रह्माण्ड भगवती से ही आविर्भूत होता है अत: वे **'महायोनि'** या **'सुभगा'** कही गई हैं—

'आकूतिसूक्त' में भी सुभगा शब्द का प्रयोग किया गया है—

'आकूतिं देवीं **सुभगां** पुरोदधे
चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु,
विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ।।'

'सुभगा' का अर्थ है—सौभाग्य विद्यारूप तथा सौभाग्यार्चन से अभिपूजित, समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली।।'

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' (२।४।२) में भी **'सुभगा'** शब्द का प्रयोग किया गया है।

'सुभगा' शब्द वैदिक शब्दकोश का शब्द है और वैदिक काल से निरन्तर साहित्य एवं दर्शन में प्रयुक्त होता रहा है।

शङ्कराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी (५) में—'प्रणतजन सौभाग्य-जननीं' कहकर शब्दान्तर द्वारा 'सुभगा' शब्द की ही व्याख्या की है।

कुण्डलिनी **'सुभगा'** इसलिए है क्योंकि वह साधकों को (जागृत होने पर) अष्टैश्वर्य रूप 'भग' प्रदान करती है।

'ललितासहस्रनाम' में भगवती के नामों के पर्याय में **'सुभगा'** शब्द को गृहीत किया गया है—

'सुभगा' का अर्थ है **'सु'** अर्थात् रमणीय **'भग'** (ऐश्वर्य) से सम्पन्न = अर्थात् उत्कृष्टम ऐश्वर्यों से सम्पन्न भगवती महात्रिपुर सुन्दरी या भगवती कुण्डलिनी।

भास्करराय की व्याख्या—आचार्य भास्कर राय 'ललितासहस्रनाम' में प्रयुक्त **'सुभगा'** शब्द (१४६) **'भगाराध्या'** (१३९) **'भाग्याब्धिचन्द्रिा'** (१४४) की मार्मिक व्याख्या की है वे—"त्रिवर्गदात्री **'सुभगा'** अम्बकात्रिगुणात्मिका" (१९७) की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

'पञ्चवत्सरा कन्या सुभगेत्युच्यते कन्या प्रकरणे "सुभगापञ्चवर्षास्यादिति'—इति धौम्य वचनात् । तदभिन्ना।

"यद्वा श्री काममाहात्म्य वीर्ययत्नकीर्त्यादया **भगपद** वाच्या: शोभना यस्यां सा।।'

'भगमैश्वर्य माहात्म्य ज्ञान वैराग्ययोनिषु। यशोवीर्यं प्रयत्नेच्छा श्रीधर्म रविभुक्तिषु'—इति **विश्वः**। शोभनो भग: सूर्यो यया वा।।'

सौरकार्येषु सर्वेषु तदन्त स्थिताया अस्या: शक्तेरेव निमित्तत्वात् ।।

यद्वा लोकत्रयान्तर्गतं सौभाग्यं चरगतमचर गतं वा अस्या एव रूपमिति **सुभगा**।[1]

'पद्मपुराण' में कहा गया है कि—

'इक्षवस्तरुराजं च निष्पापा जीरधान्यके।
विकाराच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुसुमं तथा।
लवणं चेति सौभाग्याष्टकं स्थावरमुच्यते ।।'[2]

'सुभगा' शब्द से प्रारंभ होने वाले मुख्य ग्रंथ

- (१) 'सुभगोदय' (शिवानन्द मुनि)
- (२) 'सुभगोदय वासना (शिवानन्द मुनि)
- (३) 'सौभाग्य हृदयस्तोत्रम् (शिवानन्द मुनि)
- (४) सौभाग्य सुधोदय' (अमृतानन्द योगी)
- (५) 'सुभगोदय स्तुति' (गौड़पादाचार्य)
  - (६) 'सौभाग्य भास्कर' (भास्करराय)
  - (७) सौभाग्योदय वृत्ति (रामेश्वर)

---

१. सौभाग्य भास्कर (भास्करराय)।

२. सौभाग्य भास्कर ।

'सुभगोदयस्तुति' की दो व्याख्यायें अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण एवं प्रामाणिक हैं—(१) शङ्कराचार्य की व्याख्या (२) आचार्य लक्ष्मीधर की व्याख्या।

दु:ख है कि दोनों टीकायें अभी प्रकाश में नहीं आई हैं।

'सुभगा' महात्रिपुरसुन्दरी का वाचक है।

* **'महात्रिपुर सुन्दरी' 'त्रिपुरसुन्दरी' और षोडशी'**

(१) **'त्रिपुरसुन्दरी' की पूजा प्रतिपदा को** की जाती है।

(२) **'महात्रिपुरसुन्दरी'** (षोडशी) की पूजा प्रत्येक तिथि को की जाती है।

(३) **'षोडशी'** महात्रिपुरसुन्दरी का अपर पर्याय है तथापि यह **सहस्रारस्थचन्द्रमा की षोडशीचन्द्रकला है और इसे भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी-सी कहा जाता है।**[1]

(२) **पद्मपुराण** में कहा गया है—

'त्रिविष्टप **सौभाग्यमयीं** भुक्तिमुक्तिप्रदामुमाम्।
आराध्य **सुभगां** भक्त्या नारीं वा किं न विन्दति।'

'ललितासहस्रनाम' में भगवती का नाम 'सुभगा' कहा गया है—

'क्षराक्षरात्मिाका सर्वलोकेशी विश्वधारिणी।
त्रिवर्गदात्री **सुभगा** त्र्यम्बिकात्रिगुणात्मिका।'

भगवती **'भाग्याब्धिचन्द्रिका'** है—

'भाग्याब्धि चन्द्रिका भक्त चित्त केकिघनाघना ।।'
'भाग्यलक्षणस्याब्धेरुल्लासकत्वाच्चन्द्रिका कौमुदी वा।'

गौड़पाद कहते हैं[2]—

'सहस्रारे पद्मे **सुभग सुभगोदेति** सुभगे परं सौभाग्यं यत्तदिह तव साम्राज्यापदवी।।५१।।'

(२) अतोऽस्या: संसिद्धौ **सुभग सुभगाख्या** गुरुकृपां।

[२] श्रीविद्या का सैद्धान्तिक पक्ष—(षट्त्रिंशत्तत्त्व)

योगी अमृतानन्द ने **'सौभाग्यसुधोदय'** के नाम से जो रचना की है (और जो

---

१. सौभाग्यभास्कर (भास्करराय)

२. 'षोडशी' महात्रिपुर सुन्दरी हैं; किन्तु चन्द्रकला के रूप में हैं। महात्रिपुरसुन्दरी केवल चन्द्रकला मात्र नहीं है के कुण्डलिनी भी है अत: षोडशी महात्रिपुर सुन्दरी का एक रूप है।

आचार्य क्षेमराज द्वारा रचित **'षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह'** के नाम से भी प्रसिद्ध है) उसमें श्रीविद्या के सिद्धान्त पक्ष (षट्त्रिंशत्तत्त्वों) की अच्छी विवेचना की गई है। वे परिवर्णिततत्त्व निम्नाङ्कित हैं।

(१) **'शिवतत्त्व'**—जिस अनुत्तरमूर्ति ने अपनी इच्छा की प्रेरणा से समस्त विश्व की सृष्टि करने के उद्देश्य से सस्पन्द होकर स्पन्दन क्रिया की, उस प्रथम तत्त्व को तत्त्वमनीषियों ने **'शिवतत्त्व'** कहा—

'यदयमुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत् स्रष्टुम्।
पस्पन्दे सस्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः।'

(२) **'इच्छाशक्ति'**—परमेश्वर के स्वस्वरूप से अभिन्न उसकी निर्मलस्वतन्त्र **'इच्छा'** ही (परमेश्वर की सतत स्वसमवेता शक्ति ही) प्रलय-निलीन चराचर जगत की **'बीज'** शक्ति है—

'इच्छा सैव स्वच्छा सन्तत समवायिनी सती शक्तिः।
स चराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निलीनस्य ॥'

'सदाशिवतत्त्व'—अपनी ही 'इच्छा शक्ति' की प्रेरणा से और अपने ही भीतर से बाहर उद्गीर्ण जगत को अपना ही स्वरूप मानकर—'अहमिदम्' के विमर्श से निखिल प्रपञ्च को समाच्छादित करके अवस्थित एवं समस्त जगत के प्रति अनुकम्पा दृष्टि रखने वाले शिव को ही **'सदाशिव'** कहते हैं—

'स्वेच्छाशक्त्युद्गीर्णं जगदात्मतया समाच्छाद्य।
निवसन् स एव निखिलानुग्रह निरतः सदाशिवोऽभिहितः ॥'

ईश्वर तत्त्व—जो समस्त प्रपञ्च को 'इमहम्' के विमर्श के साथ—'इदम्' के रूप में देखता है वही शिव का विकसित स्वरूप 'ईश्वर' कहलाता है—

'विश्वं पश्चात् पश्यन् इदन्तया निखिलमी**श्वरो** जातः ॥'

शुद्धविद्या—उसे ही **'शुद्धविद्या'** कहा जाता है जिसमें 'इदम्' एवं 'अहम्' के विमर्श में अभेदात्मकता अवस्थित रहती है—

'सा भवति शुद्ध विद्या **येदन्ताहन्तयोरभेदप्रतीतिः।'**

मायातत्त्व—'परापर दशा' से नीचे की ओर स्पन्दन करता हुआ परमेश्वर अपने प्रकाश स्वरूप के प्रच्छादन की क्रीड़ा से भेदावस्था के स्तर पर अवतीर्ण होकर सर्वप्रथम **'माया'** का अवभासन करता है। यह 'माया' परमेश्वर की स्वातंत्र्यशक्ति का ही भेदपूर्ण सृष्टि का छठवाँ तत्त्व है। यही स्वरूपगोपनात्मिका इच्छा शक्ति या भेदावभासन करने वाली अघोरभट्टारक की शक्ति है। 'माया स्वरूप गोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छा शक्तिः॥' (तंत्रालोक की टीका : विवेक भाग ३)

अमृतानन्द **'सौभाग्यसुधोदय'** में इसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

'माया विभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु।
नित्यं तस्य निरंकुशविभवं वेलेव वारिधे रुन्धे ॥'

पुरुष तत्त्व—माया से लेकर नियतिपर्यन्त छः कञ्चुकों से स्वरूप-संकोच ग्रहण करने पर चिदात्मा परिमित हो जाता है। इस परिमित आत्मा को ही 'अणु' 'जीव' 'पुमान' 'मितात्मा' 'पुद्गल' एवं पुरुष कहते हैं।

इसी पुरुष तत्त्व को **'सौभाग्य सुधोदय'** में इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

'स तया परिमित मूर्तिः संकुचितसमस्तशक्तिरेष पुमान्।
रविरिव सन्ध्यारक्तः संहतशक्तिः स्वभासनेऽप्यपटुः ॥'

पञ्चकञ्चुक—'माया' तिरोधानकारी पारमेश्वरी शक्ति है। माया के पञ्चावरण हैं जो कि अमित को मित बनाते हैं। वे ही 'पञ्चकञ्चुक' कहलाते हैं।

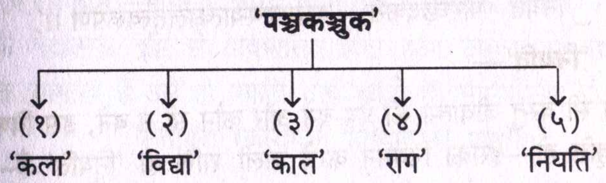

ये माया के ही स्पन्दन हैं। ये वे मायिक एवं आवरण रूप मायिक शक्तियाँ जो कि शिव की—

(१) सर्वकर्तृता शक्ति को अल्पकर्तृता में बदल देती है = 'कला' है।
(२) सर्वज्ञता शक्ति को अल्पज्ञता में बदल देती है = 'विद्या' है।
(३) नित्यता शक्ति को परिच्छिन्नता में बदल देती है = 'काल' है।
(४) पूर्णता शक्ति को अपूर्णता में बदल देती है = 'राग' है।
(५) स्वातंत्र्य (व्यापकता) को परिच्छिन्नता में बदल देती है = 'नियति' है।

इसी बात को **'सौभाग्य सुधोदय'** में इस प्रकार परिभाषित एवं व्याख्यात किया गया है—

'सम्पूर्णकर्तृताद्या बह्वयः सन्त्यस्य शक्तयस्तस्य।
संकोचात् संकुचिताः कलादिरूपेण रूढयन्त्येवम् ॥'

(अ) **'कला'**—

'तत्**सर्वकर्तृता** सा संकुचिता कतिपयार्थमात्र परा।
किञ्चित् कर्तारममुं कलयन्ती कीर्त्यते कलानाम् ॥'

(आ) **'विद्या'**—

'सर्वज्ञतास्य शक्तिः परिमिततनुरल्पवेद्यमात्रपरा।
ज्ञानमुत्पादयन्ती, **विद्येति** निगद्यते बुधैराद्यैः ॥'

(इ) **'राग'**—

'नित्यपरिपूर्णतृप्तिः शक्तिः तस्यैव परिमिता तु सती।
भोगेषु रञ्जयन्ती सततममुं **रागतत्त्वतां** याता ॥'

(ई) **'काल तत्त्व'**—वेद्यरूप वस्तुओं में स्वरूप संकोच आ जाने के कारण पूर्वापर क्रम (पहले और पीछे स्थित होने की संवेदना) का अवभासन ही 'काल' है

(१) 'क्रम एव च कालो।। (ईश्वप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

(२) 'सेयम्' इत्थं भूताभासवैचि प्रथन शक्तिः भगवतः कालशक्तिः इत्युच्यते।। क्रमरूपता का अवभास न करने वाली पारमेश्वरी शक्ति ही **'कालशक्ति** है।

'सा नित्यतास्य शक्तिर्निष्कृत्य निधनोदय-प्रदानेन।
नियत परिच्छेदकरी, क्लृप्ताप्स्यात्कालतत्त्वरूपेण ॥'

(ए) **'नियति'**—

कौन सी वस्तु जीवात्मा की प्रेय बने और कौन सी न बने, इस विषय में जीवों की राग-प्रवृत्ति हो—इसका नियमन करने वाली शक्ति ही 'नियति' है—

(१) 'नियतिर्योजयत्येनं स्के कमणि पुद्गलम् ॥' (मा०वि०तं०)

(२) 'रोगोऽपि रञ्जयत्येनं स्वभोगेष्वशुचिष्वपि ॥ —मालिनी विजयोत्तर तंत्र

(३) **'नियतिः** ममेदं कर्तव्यं नेद कर्तव्यम् इति नियमन हेतुः।—परा प्रावेशिका

(४) 'नियच्छति भोगेषु अणूनिति नियतिः। —तंत्रालोक टीका

'सौभाग्य सुधोदय' में 'नियति' को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि—

'यास्यस्वतन्त्राख्या शक्तिः सकोचशालिनी सैव।
कृत्याकृत्येष्ववशं नियतममुं नियमयन्त्यभून्नियतिः ॥'

* परमेश्वर की शक्ति का स्वरूप *

(१) शान्तावस्थापन्ना शक्ति → असंकुचित अवस्था। अक्षुब्धा। (इच्छादिशक्ति गर्भा)

(२) साम्यावस्थापन्ना शक्ति → परिमितावस्था धारण करने वाली गुणों की अविभागावस्था।

---

(३) गुणत्रयात्मिका शक्ति → गुणों का इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तित्रय से आरम्भ होने के कारण त्रित्व होता है

(१) इच्छादि त्रिसमष्टिः शक्ति : **शान्तास्यसंकुचद्रूपा**।
(२) संकलितेच्छाद्यात्मक सत्वादिक **साम्यरूपिणी** तु सती।
(३) 'बुद्धयादि सामरस्य स्वरूप चित्तात्मिका मता प्रकृतिः।
इच्छास्य रजोरूपा हं कृतिरासीदहं प्रतीतिकरी ॥'

सत्त्वगुण → ज्ञानशक्ति

सत्त्वगुण का परिणाम : = 'ज्ञानशक्ति' बुद्धि।

तमोगुण का परिणाम 'क्रियाशक्ति' : मनस्तत्व।

'ज्ञानापि **सत्वरूपा** निर्णयबोधस्य कारणं **बुद्धिः**।
तस्य क्रिया **तमोमय** मूर्तिर्मन उच्यते विकल्पकारी ॥'

(ऐ) **प्रकृति**—माया के कारण कालादिक तत्त्वपञ्चकों से संकोच प्राप्त जीवरूपी शिव के भेदात्मक दृष्टि से अवभासित होता हुआ उसका जो वेद्यरूप विश्व का अविभक्त सामान्य है उसे ही प्रकृति तत्त्व कहते हैं। साम्यावस्था ही प्रकृति है—

'सतोगुण रजस्तमसां साम्यावस्था **प्रकृतिः**'

गुणत्रय की अक्षुब्ध अर्थात् साम्यावस्था ही प्रकृति है बुद्धि से पृथिवी पर्यन्त २३ तत्त्व हैं। कहते हैं—

वामादि पञ्चभेदः स एव संकुचित विग्रहो देवः।
ज्ञानक्रियोपराग प्राधान्य द्विविध विषयरूपोऽभूत्।
श्रोत्रं चक्षु स्पर्शनं जिह्वा घ्राणानि बोध करणानि।
शब्दस्पर्शौ रूपं रसगन्धौ चेतिभूतसूक्ष्मानि।
अयमेवाति निकृष्टो जातो भूतात्मनापि भूतेशः।
गगनमनिलश्च तेजः सलिलं भूमिश्च पञ्चभूतानि।
श्रोत्रादि करण वेद्याः शब्दाद्यास्तानि वेदकान्येषाम्
वचनकरी वागासीत् पाणिः स्यात कारणभूत आदीन्
गमन विसर्गानन्द त्रितये पादादिकं करणम्।
गन्धवती भूमिः स्यादापः संसिद्धिकद्रवास्तेजः।
ऊष्ण स्पर्शमरूप स्पर्शो वायुरम्बरं च शब्दम्
षट्त्रिंशत्तत्वमयं वन्दे कौलं कुलातिगं शंभुम् ॥

(४) * षट्त्रिंशतत्व और उनका वर्गीकरण

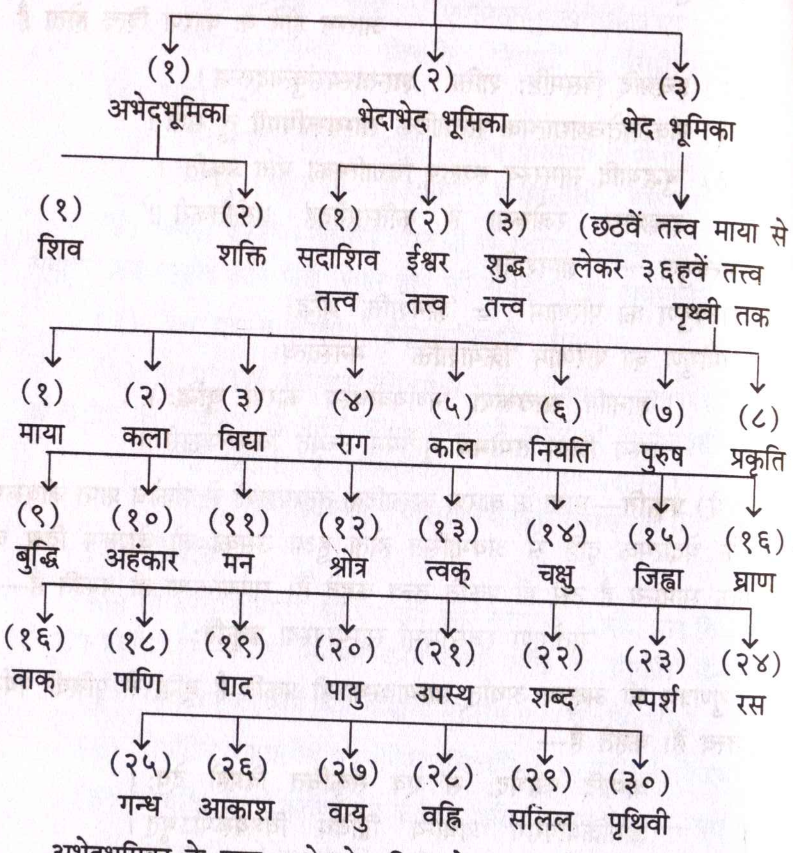
(१) अभेदभूमिका
(२) भेदाभेद भूमिका
(३) भेद भूमिका
(१) शिव
(२) शक्ति
(१) सदाशिव तत्त्व
(२) ईश्वर तत्त्व
(३) शुद्ध तत्त्व
(छठवें तत्त्व माया से लेकर ३६हवें तत्त्व पृथ्वी तक
(१) माया
(२) कला
(३) विद्या
(४) राग
(५) काल
(६) नियति
(७) पुरुष
(८) प्रकृति
(९) बुद्धि
(१०) अहंकार
(११) मन
(१२) श्रोत्र
(१३) त्वक्
(१४) चक्षु
(१५) जिह्वा
(१६) घ्राण
(१६) वाक्
(१८) पाणि
(१९) पाद
(२०) पायु
(२१) उपस्थ
(२२) शब्द
(२३) स्पर्श
(२४) रस
(२५) गन्ध
(२६) आकाश
(२७) वायु
(२८) वह्नि
(२९) सलिल
(३०) पृथिवी

अभेदभूमिका के तत्त्व भेदाभेदभूमिका के तत्त्व भेदभूमिका के तत्त्व
२— ३— ३० तत्त्व

२ + ३ + ३० = ३६ तत्त्व । जगत षट्त्रिंशदात्मक है—३६ तत्त्वों वाला है—

'षट्त्रिंशत्तत्त्वानि विश्वम्'' : 'परशुराम कल्पसूत्रं (१/४)

इन तत्त्वों का स्वरूप क्या है ?

(१) 'परमशिव एव केवल **शिव**पदवाच्यो भवति। ('शिव')

(२) 'सा पूर्वोदिता सिसृक्षा ('बहुस्यां प्रजायेय') द्वितीय तत्त्वं **शक्ति**रिति ('शक्ति)

(३) 'जगतः अहन्तया यद्दर्शनं तदहमिति वृत्तिमान् **सदाशिव पद**वाच्य**स्तृतीयं** तत्त्वंम् । ('सदाशिव')

(४) 'इदं जगदिति केवल भेदविषयिणी सा वृत्तिस्तद्वान् **ईश्वरपद**वाच्य**स्तुरीयं तत्त्वम्** ।' ('ईश्वर')

(५) 'जगदहमेवेत्याकारिका या सदाशिवसम्बंधिनी वृत्तिः सा **विद्यापाद**वाच्या पञ्चमं तत्त्वम् ।' ('विद्या') (शुद्धविद्या)

(६) 'इदं जगदित्याकारिका ईश्वरनिष्ठा भेदविषयिणी वृत्ति**र्मायापद**वाच्या षष्ठं तत्त्वम् ।' ('माया तत्त्व')

(७) पूर्वोक्त विद्यातिरोधान शक्तिमती तद्विरोधिनी **अविद्यापद** वाच्या सप्तमं तत्त्वम् । ('अविद्या)

(८) जीवनिष्ठं सर्वकर्तृत्वं यत्किञ्चित्कर्तृत्वेन संकुचितं तदेव **कलापदवाच्यम्** अष्टमं तत्त्वम् (कला)।

(९) पूर्वोक्तरीत्या जीवनिष्ठा या नित्यतृप्तिः सैव केचिद्विषयेषु अतृप्त्यां संकुचिता **राग पद**वाच्या नवमं तत्त्वम्।

(१०) जीवनिष्ठा या नित्यता तस्या आच्छादने सति सैव नित्यता अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते विनश्यतीति षड्भावयोगात् संकुचिता **काल**पदवाच्या दशमं तत्त्वम् । (काल तत्त्व)

(११) परशिव जीवयोरभेदाद् यथा परशिवं सर्वस्वातंत्र्यं तथा जीवेऽप्यस्ति। तस्य सर्व **स्वातन्त्र्यस्थ पिधानं** पूर्वोक्तविद्यया कृतम् । तदेव कारणान्तरापेक्षं यत्कारण मपेक्षते तन्नियतिपदवाच्यम् एकादशं तत्त्वम् ('नियति तत्त्व') ॥

(११) एतादृश नियति-काल-राग-कला विद्याश्रयो **जीवः**। (जीव)

(१२) सत्वरजस्तमोगुणानां साम्यरूपा प्रकृतिः॥ (प्रकृति) आदि।[१]

(सारे तत्त्वों की व्याख्या करने पर पुस्तक का कलेवर बढ़ जाता अतः उन पर प्रकाश नहीं डाला गया है।)

(१३)'**शिव** तत्त्व': (**शिवानन्द मुनि** कहते हैं)—

विश्वाहन्तात्मक शिव शिव ही उसका पूर्णाहन्तात्मक स्वरूप है—

'तन्महः परमं नौमि कृत्यैः पञ्चभिरङ्कितम् ।
अशेषविश्वाभेदात्म **पूर्णाहन्तात्मकं** शिवम् ॥'

(१४) **'शक्तितत्त्व'—(सौभाग्य हृदय स्तोत्रकार की दृष्टि)**

---

[१] परशुराम कल्पसूत्र की रामेश्वर वृत्ति ।

'स्मरामि तां परां वाचं पश्यन्त्यादिक्रमाश्रयाम् ।'
नानाविधरसाकारां महानुभव रूपिणीम् ॥
देशकाल पदार्थात्म यद्यवस्तु यथा यथा।
तत्तद्रूपेण या भाति तां श्रये सांविदीं कलाम् ॥४॥

(१५) **अध्वषट्क का स्वरूप—**

वर्णाः कला पदं तत्त्वं मन्त्रो भुवनमेव च।
इत्यध्वषट्कं देवेशि भाति त्वयि चिदात्मनि ॥[1]

(१६) **हव्य का स्वरूप एवं अद्वैतवाद—**

'संविदग्नौ महासारे विमर्शैक शरिरिणि।
भेदाभासमिदं हव्यं जुहोम्यपुनरुद्भवम् ॥'

—सुभगोदयवासना (शिवानन्द)

[अ] 'सुभगोदय स्तुति' *

[३] भगवती का स्वरूप—

[क] गौड़पादाचार्य की दृष्टि में—

(१) भगवती 'भवानी' जगत की निर्मात्री देवी) हैं।

(२) वे 'भवमहिषी' (शंकर की पटरानी) हैं।

(३) वे सत्-चित् एवं आनन्द रूप शरीर वाली हैं।

(४) वे 'पराकारा' हैं। जगद्रूपविराट आकार वाली या ३६ तत्त्वों को धारण करने वाली हैं।

(५) वे 'अमृतलहरी' (अमृत का प्रवाह) हैं।

(६) वे **'ऐन्दव कला'** हैं।

(७) वे महाकाल से भी अतीत हैं।

(८) वे किरणों से सज्जित कल्पित शरीर वाली हैं।

(९) वे अमृत के सरोवर में निवास करने वाली हैं।

(१०) वे निरन्तर भीतर निवास करने वाली हैं।

(११) वे दिन से युक्त अर्थात् महान प्रकाश पुञ्ज एवं निरन्तर चिन्मय जागृति वाली हैं—

---

[1] सुभगोदयवासना (६४)

'भवानि त्वां वन्दे, भवमहिषि सच्चित्सुख वपुः।
पराकाशं देवीममृतलहरीमैन्दव कलाम्।
महाकालातीतां कलितसरणी कल्पिततनुं।
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम् ॥'[1]

[ख] भगवती का कुण्डलिनी स्वरूप—

आचार्य गौड़पाद ने **चतुर्थ श्लोक** में मूलाधारस्थ कुण्डलिनी (सूर्य-चन्द्र के अमृत-स्राव एवं उसके अपहरण में अशक्त होने पर) निराहार रहने पर जग कर क्रुद्धावस्था में **'बैन्दव स्थान'** में पहुँचकर चन्द्रमा को उसने और स्रवित अमृत से शरीर को सींचने के कार्य में रत रहने के स्वरूप में (अर्थात् सहस्रार में समागत एवं जाग्रत) कुण्डलिनी का वर्णन किया है।[2]

समयाचारी **'सुषुप्त शक्ति', मूलाधारस्थ** शक्ति (कुण्डलिनी), एवं **मूलाधार** चक्र को उपास्य एवं पूजास्पद नहीं मानते इसीलिए आचार्य गौड़पाद ने 'बैन्दवकलारूपा' 'बैन्दवगत' एवं 'प्रबुद्धा' कुण्डलिनी के स्वरूप का स्मरण किया है—

(१) '**प्रबुद्धां** क्षुत्क्षामां दशति शशिनं **बैन्दवगतं** ।
सुधाधारा सारैः स्नापयसि तनुं **बैन्दवकाले** ।।'

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी एवं कुण्डलिनी स्वरूपतः अभिन्न हैं।

इस श्लोक में आचार्य ने **'भवानी' के कुण्डलिनी स्वरूप** का वर्णन करके उनके सभी रूपों के प्रति अपनी आस्था भी व्यक्त की है और साथ ही भगवती की अनन्त रूपात्मकता, उनके अनेक शक्त्यात्मक स्वरूप होने की ओर संकेत भी किया है।

[ग] भगवती के 'परकलात्मक स्वरूप' की विवेचना—

आचार्य गौड़पाद ने **श्लोक पाँच में** भगवती के उस स्वरूप का वर्णन किया है जो चान्द्रकला—'परकला' या 'षोडशी' है।

यहाँ उन्होंने भगवती के उस **'तत्वातीत'** स्वरूप का वर्णन किया है जो कि पञ्चभूतों, तन्मात्राओं, १० इन्द्रियों, मन, माया, विद्या, महेश एवं शिव इन सबसे अतीत है—

'पृथिव्यापस्तेजः पवनगगने तत्प्रकृतयः।
स्थितास्तन्मात्रास्ता विषयदशकं मानसमिति।

---

[1] सुभगोदयस्तुति (१)
[2] सुभगोदय स्तुति (४)

ततो माया विद्या तदनु च महेशः शिव इतः ।
परं तत्त्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः **परकला** ।। (५)

[घ] **भगवती के कुण्डलिनीगत तीन स्वरूप**—

आचार्य गौड़पाद ने अपने **छठवें श्लोक** में भी भगवती के ही स्वरूप की विवेचना की है। इसमें भगवती के कुण्डलिनी स्वरूप की तीन अवस्थाओं की विवेचना है जो इस प्रकार है—(१) **'कुमारी कुण्डलिनी'** (२) **'योषित-कुण्डलिनी,** एवं (३) **'पतिव्रता कुण्डलिनी'**—

'कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति,च ततो योषिद् परा,
कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकाल भुजगी ।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाश कमले,
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्कार रसिका ।।६।।

[ङ] **भगवती का षट्चक्रात्मक स्वरूप**—

आचार्य गौड़पाद ने अपने **श्लोक क्र. ८** के द्वारा भगवती को अग्नि-सूर्य-चन्द्रात्मक (त्रिखण्डात्मक एवं ३६० किरणों से युक्त) श्रीचक्र' से युक्त एवं षट्चक्रों के सदन में निवास करने वाले स्वरूप में प्रस्तुत किया है और कहा है—

'त्रिखण्डं ते चक्रं शुचि रविशशाङ्कात्मकतया,
मयूखैः षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्डकलितैः ।
पृथिव्यादौ तत्त्वे पृथगुदितपद्मिः परिवृत,
भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्र सदनम् ।।'[1]

[च] भगवती का **महाकालातीता** (कौलों के लिए अज्ञेय) **परमा शिवा स्वरूप**—

आचार्य गौड़पाद ने **श्लोक क्र० ९ में** भगवती के महाकालातीता उस परमा शिवा के स्वरूप का उद्घाटन किया है जो काल की गणना से परे एवं कालातीत है।

भगवती का स्वरूप कालातीत है।

---

[1] 'त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुद्भू,
दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रं समभवत् ।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात त्रिवलय,
चतुर्धा प्राकारत्रितयमिद मेवाम्ब शरणाम् ।
—सुभगोदय स्तुति (१७)

अग्नि की १०८, सूर्य की ११६, एवं चन्द्र की १३६ किरण रूपी कलाओं को अपने चरणरजों में समाहित किए हुए महाशिवा कालकलना से परे या महाकाल की कल्पना से भी बहिर्भूत महाकालातीता, परमा शिवा हैं।

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

'शतं चाष्टौ वह्ने शतमपि कलाः षोडशरवेः ।
शतं षट् च त्रिंशत्सितमयमयूखाश्चरणजाः ।
य एते षष्टिश्च त्रिशतमभवं स्त्वच्चरणजाः ।
महाकौलैस्तस्मान्त हि तव शिव ! कालफलना ।।'(९)

[छ] भगवती का मणिपूरस्थ चतुर्भुजात्मक एवं तडिल्लेखात्मक स्वरूप (श्लो० क्र० १४)

आचार्य गौड़पाद ने भगवती को जिस चतुर्भुजात्मक, तडिल्लेखात्मक स्वरूप में वर्णित किया है उस स्वरूप में देवी के हाथों में निम्न आयुध स्थित हैं—

(१) इक्षु-निर्मित धनुष (२) पुष्पों के पञ्च बाण (३) श्रेष्ठ अङ्कुश (४) पाश

तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती
चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुबहिरूदिता ।
धनुर्बाणानिक्षूद्भव कुसुमजानङ्कुशवरं,
तथा पाशं विभ्रत्युदित रवि बिम्बाकृति रूचिः ।।[1]

[ज]— * भगवती का मणिपूरस्थ इन्द्रधनुषद्युतिभासात्मक स्वरूप *

आचार्य गौड़पाद ने 'मणिपूरक चक्र' में प्रत्यक्षीकृत होने वाले भगवती के स्वरूप को इन्द्रधनुष के रंगों वाला बताया है। वे कहते हैं कि मणिपूर में स्थित एवं षोढैक्य की स्थिति में दृष्टिगोचर भगवती का इन्द्रधनुषीय स्वरूप इस प्रकार है—

'भवेत्यैक्यं षोढा भवति भगवत्याः समयिनां
मरुत्वत्कोदण्डद्युतिनियुतभासा समरूचिः ।
भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे
भवानि प्रत्यक्षं तव वपुरूपास्ते नहि परम् ।।'[2]

[झ] **भगवती का दशभुजात्मक स्वरूप (श्लोक क्र. १६)**

भगवती का दशभुजात्मक स्वरूप भी है जिसमें कि वे अपनी भुजाओं में (१)

---

[1] सुभगोदयस्तुति (१४)
[2] सुभगोदय स्तुति (१५)

नागपाश, (२) अंकुश, (३) पौण्ड्र-धनुष, (४) पुष्पबाण, (५) जपमाला, (६) श्रेष्ठशुक, (७) वरदमुद्रा, (८) अभय मुद्रा, (९+१०) (दोनों हाथों में) वीणा धारण किए हुए हैं—

'भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे'[१]

आचार्य श्री भगवती के दश हाथों में गृहीत अस्त्रादिक का उल्लेख इस प्रकार कर रहे हैं—

भवानि ! श्री हस्तैर्वहसि कणिपाश सृणिमथो,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्रक शुकवरौ
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभय वरदानैकरसिकां,
क्वणद्वीणां द्वाभ्यां त्वमुरसि कराभ्यां च विभृषे ॥१६॥

* भगवती का षट्त्रिंशत्तत्वात्मक शिवशक्ति स्वरूप *

जहाँ शिव हैं वहा शक्ति है और जहाँ भक्ति है वहाँ शिव है अतः भगवती शिवशक्त्यात्मक तो हैं ही किन्तु जो मूल ३६ तत्त्व हैं वे उनका भी स्वरूप हैं और वे अपने त्रिखण्डात्मक अन्तर में **परमपद रूपी पर्यङ्क** पर **सादाख्य तत्त्व** से परे चार ऐक्यों के साथ निवास करती हैं।

परमतत्त्व ही समस्त कारणों का करण है। भगवती वही परमतत्त्व हैं। भगवती का जो मूलस्वरूप है वही 'एक' होकर 'बहु' हो जाता है—'एकोऽहं बहुस्याम्'—इसी तथ्य की अभिव्यक्ति है।

भगवती का यही 'परा संवित् स्वरूप' समस्त तत्त्वों का जनक है। भगवती स्वयमेव ३६ तत्त्वों की समष्टि है।

आचार्य **गौड़पाद** कहते हैं—

'वदन्त्येके सन्तः परशिव पदे तत्त्वमिलिते,
ततस्त्वं षट्त्रिंशी भवसि शिवयोर्मेलनवपुः ॥'[२]
त्रिखण्डेऽस्मिन्स्वान्ते परमपदपर्यङ्क सदने,
परे सादारव्येऽस्मिन्निवसति चतुर्धैक्य कलनात् ॥[३]

* भगवती का, षट्चक्रों में पञ्चसाम्यात्मक षड्साम्यात्मक, संविद्रूपात्मक, विद्युल्लेखात्मक एवं नित्यात्मक स्वरूप *

---

[१] सुभगोदयस्तुति (१५)
[२] सुभगोदयस्तुति (१६)
[३] सुभगोदयस्तुति (३६)

आचार्य गौड़पाद ने भगवती को संविद्रूप, विद्युल्लेखारूप एवं नित्या के स्वरूप में भी प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं—

'षडब्जारण्ये त्वां समयिन इमे पञ्चकसमां,
यदा संविद्रूपा विदधति च षोढैक्यकलिताम् ।
मनो जित्वा चाज्ञा सरसिज इह प्रादुरभव
तडिल्लेखा नित्या भगवति तवाधार सदनात् ॥३०॥'

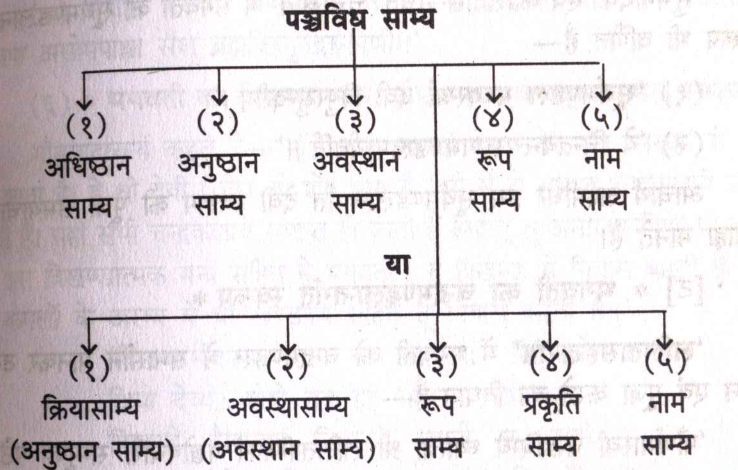

* भगवती का वर्णात्मक या विद्यात्मक स्वरूप *

भगवती का जो सूक्ष्म स्वरूप है वह श्रीविद्यात्मक है। वह वर्णात्मक है। देवी पञ्चाशदक्षरा है—

लक्ष्मीधर की दृष्टि—लक्ष्मीधर कहते हैं—'भगवत्याः स्वरूपं ''तु पञ्चाशद्वर्णात्मिकामातृकैव। सेयं पञ्चाशद्वर्णात्मिका मातृकाष्टवर्गात्मिका भवति। ते चाष्टवर्गा अकचटतपयशादयः। अकारादयः षोडशस्वराः प्रथम वर्गः कादयः पञ्च द्वितीयः चादय पञ्च तृतीयः। टादयः पञ्च चतुर्थः। तादयः पञ्च पञ्चमः। पादयः पञ्च षष्ठः। यादय श्चत्वारः सप्तमः। शादयः पञ्च अष्टमः। एवमष्टवर्गात्मिका भगवती मातृका **त्रिपुरसुन्दरी।।''**[१]

'श्री देव्यथर्वशीर्षम्' (अथर्ववेद) के अनुसार देवी का स्वरूप)

इसमें कहा गया है कि—(१) सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाच यक्षाः सिद्धा। सैषा सत्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। **सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादि कालरूपिणी।**

---

[१] लक्ष्मीधर

(२) वह 'अज्ञेया', 'अनन्ता', 'अलक्ष्या', 'अजा', 'एका', 'एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अतएवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैकानैकेति।।२३।।

(३) 'मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी ।।'[1]

[ञ] भगवती का सूर्यमण्डलान्तर्गत रूप

'सुभगोदय' एवं कालिदास-रचित 'चर्चास्तोत' में भगवती का सूर्यमण्डलान्तर्गत स्वरूप भी वर्णित है—

(१) '**सूर्यमण्डल मध्यस्थां** देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।'

(२) 'ये चिन्तयन्त्य**रूणमण्डल**मध्यवर्ति ।।'

आचार्य लक्ष्मीधर इस सूर्यमण्डलान्तर्गत देवी स्वरूप की पूजा समयाचार में अग्राह्य मानते हैं।

[ट] * भगवती का चन्द्रमण्डलान्तर्गत स्वरूप *

'ललितासहस्रनाम' में भगवती को चन्द्रमण्डल में समासीन मानकर उनका ध्यान एवं पूजा करने का विधान है—

'पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्री ललिताम्बिकां पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पठेन्नाम सहस्रकम् ।।[2]

भगवति राशिरूपिणी हैं—आचार्य **भास्कर** कहते हैं—

'पञ्चभिनगिकूर्माद्यैः प्राणापानादिपञ्चभिः ।
जीवात्मपरमात्मभ्यां चैषा **राशिस्वरूपिणीम्** ।।[3]

श्री देव्यथर्वशीर्ष में प्रतिपादित दृष्टि—देवताओं के पूँछने पर भगवती ने अपना स्वरूप इस प्रकार बताया—

(१) 'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्य चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। अहंविज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्य-पञ्चभूतानि। **अहखिलं जगत्**।[4]

---

[1] श्रीदेव्यर्थवशीर्ष (अथर्ववेद)
[2] ललिता सहस्रनाम (फलश्रुतिः २१)
[3] वरिवस्या रहस्यम् (२।८७)
[4] श्रीदेव्यर्थवशीर्ष (अथर्ववेद)

(२) 'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि, अहमादित्यैरुतविश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणाकुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनाकुभौ।।५।।

(३) अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि।।६।। **देवों ने देवी को इस रूप में पहचाना–**

(४) 'एषात्म शक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशांकुशर्बाणधरा। एषा श्री **महाविद्या।**

(५) सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्चा सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी।।'

(६) * भगवती का त्रिखण्डात्मक, अमात्मक एवं षट्चक्रात्मक स्वरूप *

गौड़पादाचार्य कहते हैं—'माँ ! तीना खण्डों वाला तेरा मंत्र 'सरधा' में लय हो जाता है। हे श्री देवी ! तेरा जो शेष भाग है उसी से ये समस्त चन्द्रकलायें प्रकट होती हैं। यहाँ सभी चन्द्रकलायें समाप्त हो जाती हैं अर्थात् तू अमास्वरूपिणी हो जाती है। इस त्रिखण्डात्मक मन्त्र सहित हे भगवती ! तू त्रिखण्ड में निवास करती है और ६ कमलों के अरग्य में भी खण्डत्रय सहित तू निवास करती है।।'

'त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरधायां निविशते ।
श्रियो देव्याः शेषो यत इह समस्ताः शशिकलाः ।
त्रिखण्डे त्रैखण्ड्यं निवसति समन्त्रे च सुभगे ।
षडब्जाख्यानी त्रितययुत खण्डे निवसति ।।'[1]

*** भगवती का त्रिखण्डात्मक स्वरूप ***

खण्ड	मंत्र का भाग	यंत्र का भाग	षट्चक्र	कुण्डलिनी का भाग
सोमखण्ड	शक्तिकूट	शिव के चार चक्र	आज्ञा चक्र विशुद्धि चक्र	सोम कुण्डलिनी
सूर्य खण्ड	कामकूट	चतुर्दशार बहिर्दशार	अनाहत चक्र मणिपूर चक्र	सूर्यकुण्डलिनी
अग्नि खण्ड	वाग्भवकूट	अन्तर्दशार अष्टार सबन्दिु त्रिकोण	स्वाधिष्ठान मूलाधार चक्र	अग्निकुण्डलिनी

---

[1] सुभगोदयस्तुति (२३)

* भगवती का स्वरूप *

(१) षोडशाक्षर—भगवती का स्वरूप, नित्यकला, सर्वोत्पादक।

(२) वाग्भवकूट (आग्नेय)—भगवती का मुख।

(३) कामकलाकूट (सौर)—भगवती का कण्ठ से कटि तक का भाग।

(४) **शक्तिकूट (चन्द्रखण्ड)**—भगवती का कटि के नीचे का भाग। सर्जक शक्ति॥

(७) * **शिवरूपी पर्यङ्क पर सोई हुई सादाख्य कला के रूप में स्थित भगवती का स्वरूप**—

आचार्य गौड़पाद भगवती के उस **परस्वरूप** का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

(१) हे परमाशक्ति ! हे परे ! सब कुछ जो तीन प्रकार वाला है, वह सब तेरे अपने अन्तर में **परम शिवरूपीपर्यङ्क पर सोई हुई 'सादार व्यकला'** के चार प्रकार के ऐक्य रूप से निवास करता है।

(२) जो स्वर हैं वे षोडशदल पद्म में लीन हो जाते हैं और 'ककार' आदि समस्त व्यञ्जन वृत्तों में तथा 'य' आदि चतुष्कोण में लीन हो जाते हैं—

'त्रयं चैतत्स्वान्ते परमशिव पर्यङ्क निलये
परे सादारव्यऽस्मिन्निवसति चतुर्धैक्यकलनात् ॥'[1]

* 'शांभववपु' 'शिवशक्त्यातीत' एवं 'नित्यारूपा' भगवती का परम स्वरूप *

आचार्य गौड़पादकहते हैं कि—

(१) भगवती शाम्भव चक्रस्वरूपा है।

(२) शिवशक्ति से अतीत है।

(३) १५ प्रकार की रात्रियाँ, दर्शा आदि तिथियाँ एवं नित्यायें भी भगवती का स्वरूप हैं।

'हलो बिन्दुर्वर्गाष्टकाभिदलं **शांभववपु-**
श्चतुश्चक्रं शक्तास्थितमनुभयं शक्तिशिवयोः।'
'भवेयुर्नित्यास्तास्तव जननि **मंत्राक्षरगणाः** ॥'[2]

---

[1] सुभगोदयस्तुति (२४)

[2] सुभगोदय स्तुति (२५)

'शरीरं त्वं शम्भोः' कहकर आचार्य शङ्कर ने भगवती को **'शंभु का शरीर'** कहा है।

(८) * 'भगवती का "**षोडशी**" स्वरूप' *

आचार्य गौड़पाद ने श्लोक २६ में भगवती के 'षोडशी' एवं 'चन्द्रकला' के उस स्वरूप की विवेचना की है जिसमें—

(क) १६ स्वर एवं १६ कलायें लयीभूत हो जाती हैं।

(ख) १५ तिथियाँ १५ नित्यायें एवं १५ अक्षर सभी भगवती की '**षोडशी**' (१६हवीं कला) में लीन हो जाते हैं।

(ग) भगवती का स्वरूप 'षोडशी' ही है।

(घ) भगवती महात्रिपुरसुन्दरी स्वरूपा 'षोडशी' नित्या में मन्त्र के १५ अक्षर भी लीन हो जाते हैं। समस्त नित्यायें षोडशी (१६हवीं नित्या) में लीन हो जाती हैं। समस्त तिथियाँ अमावस्या में लय हो जाती हैं। अमावस्या ही भगवती महात्रिपुर सुन्दरी हैं।

मंत्र का एक-एक अक्षर उसके परवर्ती अक्षर में लय हो जाता है। सभी वर्णों का लय अन्तिम अक्षर में ('सहस्रार') लय हो जाता है। भगवती '**षोडशी**' हैं १६ हवाँ अक्षर हैं और '**श्रीबीज**' हैं सारे अक्षर, सारी तिथियाँ एवं सारी नित्यायें भगवती में लय हो जाती हैं।

सोलहवीं कला ही भगवती का परम स्वरूप है। इसमें सभी का लय हो जाता है। इसी १६हवीं कला से ही सभी का उदय (प्रादुर्भाव) भी होता है अतः योगियों को **भगवती का ध्यान "सहस्रार"** में ही करना चाहिए। **भगवती के इसी परारूप का ध्यान करना चाहिए।**

भगवती मातृका स्वरूपा है। वर्णमाला के समस्त वर्ण ही उसके अङ्ग हैं। वह स्वयं बिन्दुस्वरूपा है।

आचार्य गौड़पादाचार्य कहते हैं कि—

इमास्ताः षोडश्यास्तव च सरधायां शशिकला।
स्वरूपायां लीना निवसति तव श्री शशिकला।
अयं प्रत्याहारः श्रुत इह कला व्यञ्जनगणः।
ककारेणाकारः स्वरगणमशेषं कथयति ॥२६॥

भगवती का 'समयलोक' में 'सादाख्य' को जीतने वाला परास्वरूप

आचार्य गौड़पाद ने इस स्वरूप का उद्घाटन करते हुए कहा है कि—

समयाचार मतावलम्बियों के अनुसार चन्द्रिका से परिपूर्ण 'समयलोक' (सहस्रार) में जाकर वह 'परा' नाम वाली भगवती शिवतत्त्व से मिलकर "**सादाख्य तत्त्व**" को जीतती है—

'ततो गत्वा ज्योत्स्नामयसमयलोकं समयिनां
पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता ॥'[१]

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के अनन्त स्वरूप हैं।

तंत्रराजतंत्रकार की दृष्टि—'तंत्रराजतंत्र' में कहा गया है कि भगवती सारे आकाशीय पिण्ड हैं—

(१) भगवती **गणेश** हैं। (२) वे आकाश के सारे ग्रह हैं। (३) वे आकाश के सारे **नक्षत्र** हैं। (४) वे समस्त **योगिनियाँ** हैं। (५) भगवती मन्त्रमयी हैं और वे (६) मातृकापीठ हैं—

'गणेशग्रहनक्षत्र योगिनी राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम् ॥'

(१) भगवती गणेशी हैं—

भास्करराय कहते हैं कि—

'माता निरूपमतेजो मय्याः स्वस्या मरीचिरूपाणाम्।
आवरणदेवतानामीशत्वादुच्यते **गणेशीति** ॥'[२]

(२) भगवती ग्रह हैं—

भास्करराय कहते हैं—

'इच्छादित्रिमष्टिर्गुण त्रयाढ्यानलेन्दुरविनेत्रा।
एवं नवभिर्योगाद् **ग्रहरूपे**त्युच्यते माता ॥'[३]

(३) भगवती नक्षत्ररूपिणी हैं—

भास्करराय कहते हैं—

'इन्द्रियदशकेनान्तः करणचतुष्केण विषयदशकेन।
प्रकृतिपुरुषगुणतत्त्वैर्जाता **नक्षत्ररूपिणी** मात ॥'[४]

(४) भगवती योगिनी हैं—

---

१. सुभगोदयस्तुति (३५)
२. वरिवस्यारहस्यम् (८३)
३. वरिवस्यारहस्यम्।
४. वरिवस्यारहस्यम्।

भास्करराय कहते हैं—

'उरलकसह वर्णाद्याकिनीभिस्तु षड्भि
र्घटिततनुरितीयं कथ्यते योगिनीति ॥'[१]

* भगवती का श्री बीजात्मक या क्षकारात्मक स्वरूप *

आचार्य गौड़पादाचार्य कहते हैं कि—

'क्षकार' पचासहवीं कला है, इसलिए यह 'हल' रूपी बैन्दवगृह है। हे जननि !'ककार' (अर्थात् समस्त व्यञ्जनों से ऊपर या क्षकार से ऊपर तेरे नाम का अक्षर है श्रीबीज या ककार से ऊप्र यह तेरे नाम का अक्षर अर्थात् **'क्षकार'** तेरा स्वरूप है। पूजा के समय **'मणिपूर कमल' में मणियों से जड़ा हुआ प्रभा से युक्त तेरा स्वरूप** होता है—

क्षकारः पञ्चाशत्काल इति हलो बैन्दवगृहं,
ककारादूर्ध्वं स्याज्जननि तव नामाक्षरमिति।
भवेतपूजाकाले मणिखचितभूषाभिरभितः,
प्रभाभिर्व्यालीदं भवति मणिपूरं सरसिजम् ॥[२]

* भगवती का मणिवत या इन्द्रधनुषीय स्वरूप *

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि "मणिपूर में जल को मणि कहा गया है जिससे कि वह परिपूरित है। दूसरे समयाचार वाले उपासक भगवती के स्वरूप को इन्द्र धनुषीय मानते हैं—

'वदन्त्येके वृद्धा मणिरिति जलं तेन निविड,
परे तु त्वद्रूपं मणि धनुरितीदं समयिनः ॥'[३]

* भगवती का संवित्तत्वात्मक स्वरूप *

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि अनाहत चक्र में भगवती की पूजा **'संवित्'** के रूप में होती है—

'तदेतत्ते संवित्कमलमिति संज्ञान्तरभुमे।
भवेत्संवित्पूजा भवति कमलेऽस्मिन्समयिनाम् ॥'[४]

---

१. वरिवस्यारहस्यम्। (भास्करराय)
२. सुभगोदय स्तुति (२७)
३. सुभगोदय स्तुति (२८)
४. सुभगोदय स्तुति (२९)

* विशुद्धाख्य चक्र में भगवती का चन्द्रकलात्मक स्वरूप *

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि हे देवी ! **तुमसे उदित होने वाली ज्योति के कारण** पञ्चम चक्र को **'विशुद्धचक्र'** कहा जाता है।

समयाचारी इस चक्र में भगवती की पूजा चन्द्रकलाओं के रूप में किया करते हैं। 'सहस्रार चक्र' में जो **चन्द्रमा को १५ कलायें** रहती हैं वे समयमार्ग के अनुयायियों के अनुसार **१५ नित्याओं के स्वरूप** हैं और ये तिथियाँ शुक्ल पक्ष में भ्रमण करती हैं या १५ **नित्यायें शुक्लपक्ष की १५ तिथियाँ हैं।**

> 'त्वदीयैरूद्द्योतैर्भवति च विशुद्ध्याख्यसदनं,
> भवेत्पूजा देव्याहिमकर कलाभिः समयिनाम् ।
> **सहस्रारे चक्रे** निवसति कलापञ्चदशकं,
> तदेतन्नित्याख्यं भ्रमति सितपक्षे समयिनाम् ।।'[1]

* भगवती का षोडशी स्वरूप और उसकी विशिष्टता *

आचार्य **गौड़पादाचार्य** कहते हैं कि—हे भगवती ! तेरी **''षोडशीकला''** ('सहस्रार' के चन्द्रमा में स्थित चन्द्रमा की १६हवीं नित्य कला जो कि भगवती का स्वस्वरूप है) तथा उसके प्रतिफलित बिम्ब (आज्ञाचक्रस्थ) से अमृत का निष्यन्द (निस्राव, निस्यन्द) हुआ करता है और बार-बार पीयूष-निस्यन्द होता ही रहता है जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर उस स्रवित पीयूष से आप्लावित हो उठता है। यह कार्य शुक्ल पक्ष की समस्त तिथियों में होता है एवं कृष्णपक्ष में भी समान रूप से होता है किन्तु अमावस्या को नहीं होता—

> '**कलायाः षोडश्याः** प्रतिफलित बिम्बेन सहितं,
> तदीयैः पीयूषैः पुनरधिकमाप्लावित तनुः ।।
> **सिते पक्षे सर्वस्तिथयः** इह कृष्णेऽपि च समा,
> यदा चामावस्या भवति न हि पूजा समयिनाम् ।।'[2]

(८) **भगवती की पूजा—**

[१] **भगवती महात्रिपुर सुन्दरी की उपासना या पूजा का उपयोगी चक्र**

आचार्य गौड़पाद ने **श्लोक क्र० सात** में (१) **'कौलों'** एवं (२) **'सामयिकों'** की उपासना-पद्धति के दृष्टि-भेद पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

(क) कौल 'त्रिकोण' को कुलगृह मानते हैं।

---

[1] सुभगोदयस्तुति (३०)

[2] सुभगोदय स्तुति (३२)

(ख) 'सामयिक' 'चतुष्कोण' को कुलगृह मानते हैं।

(यह 'चतुष्कोण' बैन्दवस्थान है जो कि अमृतसागर में स्थित है, दिव्यमणियों से निर्मित है, चन्द्र-सूर्य के लिए भी अगम्य है और शिव तथा शक्ति के विहार का स्थान है जबकि 'त्रिकोण मूलाधार से सम्बद्ध है।)

आचार्य श्री कहते हैं—

> 'त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे,
> चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ।
> सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो,
> रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे ।।७।।'[1]

[२] * षोढ़ा ऐक्य ही सामयिकों की ''सपर्या'' है *

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि निम्नाङ्कित षोढैक्य ही सामयिकों की सपर्या है जो इस प्रकार है—

(१) कला का बिन्दु से ऐक्य और इन दोनों का नाद के विभव से ऐक्य।
(२) नाद का कला तथा बिन्दु से ऐक्य।
(३) कला का नाद तथा बिन्दु से ऐक्य।
(४) कला, बिन्दु तथा नाद का परशिव के साथ ऐक्य।
(५) नाद, कला तथा बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य।
(६) कला नाद तथा बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य—

> 'कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नाद विभवे,
> तयोर्नादिनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः ।
> तयोर्बिन्द्वादैक्यं त्रितय विभवैक्यं परशिवे,
> तदेवं षोढैक्यं हि **सपर्या समयिनाम्** ।।'[2]

* ऐक्यानुसन्धानों की दृष्टि से भगवती के स्वरूप भिन्नता *

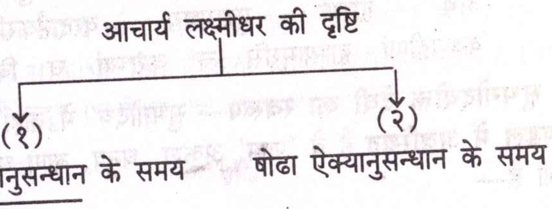
आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि
(१)
(२)
चतुर्विध ऐक्यानुसन्धान के समय
षोढा ऐक्यानुसन्धान के समय

---

[1] सुभगोदयस्तुति (७)

[2] सुभगोदय स्तुति (१२)

* देवी का चतुर्भुज रूप *

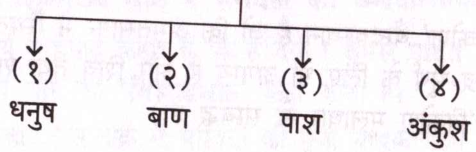
(१) धनुष
(२) बाण
(३) पाश
(४) अंकुश

* देवी का दशभुजात्मक स्वरूप *

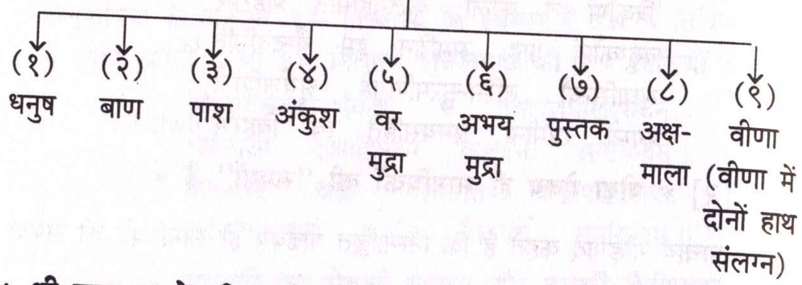
(१) धनुष
(२) बाण
(३) पाश
(४) अंकुश
(५) वर मुद्रा
(६) अभय मुद्रा
(७) पुस्तक
(८) अक्ष-माला
(९) वीणा (वीणा में दोनों हाथ संलग्न)

* श्री सम्प्रदाय के ही एकदेशीय मत के अनुसार भगवती का स्वरूप *

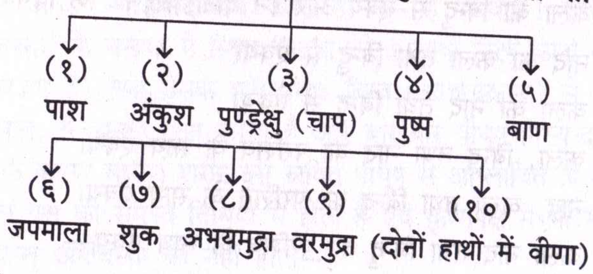
(१) पाश
(२) अंकुश
(३) पुण्ड्रेक्षु (चाप)
(४) पुष्प
(५) बाण
(६) जपमाला
(७) शुक
(८) अभयमुद्रा
(९) वरमुद्रा
(१०) (दोनों हाथों में वीणा)

लक्ष्मीधरः 'उभयमस्माकं सम्मतमेव,

आचार्य लक्ष्मीधर देवी के इन दोनों स्वरूपों को स्वीकार करते हैं। देवी के इस स्वरूप को **लक्ष्मीधराचार्य** ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'भवानि श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमधो,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रक्शुकवरम्।
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभय वरदानैकरसिके,
क्वणद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां च बिभृषे ॥'[१]

सुभगोदयोक्त देवी का स्वरूप—'सुभगोदय' में कहा गया है कि भगवती **सूर्यमण्डल में अवस्थित** हैं वे 'पाश' अंकुश, धनुष, बाण धारण करने के कारण चतुर्भुजा हैं—

---

[१] कर्णावतंस स्तुति।

'**सूर्यमण्डलमध्यस्थां** देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः।
त्रैलोक्यं मोहयेदाशु वरनारी गणैर्युतम् ॥'

कालिदास-प्रोक्त भगवती का स्वरूप—कालिदास ने 'चर्चास्तोत्र' में भगवती का स्वरूप जिस प्रकार प्रस्तुत दिया है उसमें भी उन्हें **'सूर्यमण्डल' में** अवस्थित बताया है—

'ये चिन्तयन्त्य**रुणामण्डलमध्यवर्ति,**
रूपं तवाम्ब नवयावकपङ्करम्यम्।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्न,
वक्षस्स्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ॥'

'सुभगोदय स्तुति' में वर्णित भगवती का स्वरूप—

गौड़पादाचार्य भवानी (महात्रिपुरसुन्दरी) के स्वरूप का निर्वचन इस प्रकार करते हैं—

'भवानि त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपुः,
पराकारां देवी**ममृतलहरी मैन्दवकलाम्** ॥
महाकालातीतां फलितसरणी कल्पिततनुं
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम् ॥'[१]

देवी के विविध स्वरूप

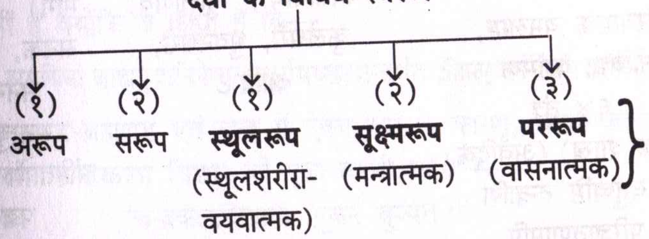
(१) अरूप
(२) सरूप
(१) स्थूलरूप (स्थूलशरीरा-वयवात्मक)
(२) सूक्ष्मरूप (मन्त्रात्मक)
(३) पररूप (वासनात्मक)

'ऐक्य' गौड़पादीय **'श्रीविद्या'** के मेरुदण्ड हैं। भास्करराय भी इसका प्रतिपादन करते हैं और कहते हैं—'अभेद की भावना की दृढ़ता के कारण अपना गुरु उक्त तीनों (देवता-विद्या-चक्र) से अभिन्न होता है अतः यह गणेशादिमय होता है जिसकी दया से स्वयं शिष्य भी तद्रूप (एकीभूत) हो जाता है।[२]

---

[१] सुभगोदयस्तुति (१)
[२] वरिवस्यारहस्यम् (२।१०१)
'एतत् त्रितयाभिन्नः स्वगुरुस्तंदभेदभावनादाढर्यात् ॥'

चतुर्विधैक्य की स्थिति में—इस समय भगवती चतुर्भुजाएँ धारण किए रहती हैं और वे हाथों में (१) धनुष, (२) बाण, (३) पाश एवं (४) अंकुश धारण किए रहती हैं।

*** षड्विध ऐक्य निष्पादित होने पर भगवती का स्वरूप ***

मूलाधार—स्वाधिष्ठान का भेदन करके जब 'मणिपूर चक्र' में आह्लादित स्वरूप में स्थित होती है तब वे १० भुजाएँ धारण किए रहती हैं—

[४] भगवती की उपासना एवं पूजा

भगवती की उपासना एवं पूजा के विविध विधान हैं। त्रिपुरोपासना से सम्बन्धित तीन मत हैं—(१) **'कौलमत''** (२) **'मिश्रमत'**, एवं (३) **'समयमत'**। **नित्याषोडशिकार्णव की दृष्टि** यह है कि कौलों के ६४ आगम हैं। **'मिश्रमत'** के अनुयायियों के ८ आगम हैं और समयाचारियों के ५ आगम हैं।

त्रिपुरोपासकों के आगम

(१)	(२)	(३)
कौलमत के आगम ६४ (महामाया शम्बर, योगिनी जाल शम्बर, तत्वशम्बर, भैरवाष्टक यमलाष्ट, मालिनीविद्या कामिक आदि ६४ तंत्र (वञ्चक शास्त्र) (अवैदिक) ('चतुष्षष्टि तन्त्राणि परिज्ञातॄणामपि वञ्चकानि।।''—लक्ष्मीधरः ३१ 'मिश्रकं कौलमार्गं च परित्यज्यं हि शाङ्करि।।'	**मिश्रमत** के आगम ०८ 'चन्द्रकला', ज्योत्सनावती, 'कलानिधि', कुलार्णव, कुलेश्वरी, भुवनेश्वरी, आदि ८	**समयमत** के आगम ५ (वैदिक मार्ग) वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन, सनत्कुमार, संहितायें। (शुभागम पञ्चक) 'समयाचार'। इन ५ मुनियों की ५ संहितायें ही **'समयाचार'** है। 'अयमेव समयाचारः इति व्यवह्रियते।।'

त्रिपुरोपासना के दो मार्ग

- (१) 'अन्तर्याग'
  - (१) सकल
  - (२) सकल निष्कल
  - (३) निष्कल 'सेतुबंध'
- (२) 'बहिर्याग'

'बहिर्यागः' पात्रासादनादिशान्तिस्तवान्तः।
—कर्मसमूह

'अन्तर्यागो नामाधाराद्राजदन्तान्तं तेजस्ततोर्विभावनम्, मानसी देवपूजा वा, तस्य इति। (सौभाग्यभास्कर)

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—'सुभगोदय' एवं कालिदास-प्रणीत **'चर्चास्तोत्र'** में जो—

(१) **'सूर्यमण्डल मध्यस्थां** देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्'।

(२) 'ये चिन्तयन्त्यरुणा **मण्डलमध्यवर्ति'**।

सूर्यमण्डलस्थ देवी की उपासना की बात की गई है वह आचार्य लक्ष्मीधर को स्वीकार्य नहीं है क्योंकि वे कहते हैं कि—

'अत्र समयिनां बाह्यपूजानिषेधात् **सूर्यमण्डलान्तर्गतत्वेन पूजनं** निषिद्धमित्याहुः।।[1]

पिण्ड-अण्ड-ब्रह्माण्ड एवं चन्द्र में ऐक्य होने के कारण, चन्द्रमण्डलान्तर्गत होने के कारण **'चन्द्रकला विद्या'** की पूजा करनी चाहिए—

'चन्द्रकलाविद्यायाः पूजनं युज्यते ।।'

चन्द्रमण्डल में देवी के **पूजन को निषिद्ध** मानना चाहिए—

(१) 'यत्तु पूर्वोक्तं **चन्द्रबिम्बगतत्वेन देव्या पूजननिषेधवचनं।।'**

(२) ''**आन्तरचन्द्र की पूजा का निषेध नहीं है**—

'आन्तरचन्द्रस्य आज्ञा चक्रोपरिस्थितस्य सहस्त्र कमलान्तर्गतचन्द्रकलामृतनिष्यन्दैः उज्जीवनमिति तत्र तस्याः **पूजानिर्बन्धो नास्ति** अतएव पिण्डाण्डब्रह्माण्डचन्योरैक्यात् ब्रह्माण्ड स्थितचन्द्रमण्डलेऽपि पूजानिर्बन्धो नास्तीत्ये वपरम् ।।'

---

[1] लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१)

* 'हृदय कमल' में भगवती की आराधना *

(१) **'हृदयकमल'** में भगवती की साधना ऐहिक फलों की प्राप्ति।

(२) वशिनी आदि से युक्त देवी का ध्यान सारस्वत की प्राप्ति।

(३) 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' ('कामकला') के साथ ध्यान करने पर तत्समान फल प्राप्त होता है।

(४) हृदयकमल में होमादिक कार्य करने पर ऐहिक फल प्राप्त होते हैं।[1]

भगवत्पाद ने "आधारकमल" आदि चक्रों का त्याग करके 'आज्ञाचक्र' आदि के क्रम से अवरोह क्रमपूजा का विधान किया है—

समयमत में **तदात्म्य-रहित पूजन असंभव है–**[2]

देवी प्रबोधन—

(१) 'मूलाधारस्थितामेव देवीं सुप्तां प्रबोधयेत् ॥'

(२) 'मूलाधारादि क्रमेणैव पूजा समयिनां कौलादीनां च कार्येति परमगुरुमुखादेव अवगतं रहस्यम्'।

वामकेश्वरतंत्रोक्त आत्मपूजा का विधान—

'पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ।
शब्द स्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः।
करणेन्द्रियचक्रस्यां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्।
विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक् ॥'

* 'पूर्णमासी' की तिथि पर चन्द्रमण्डलस्था भगवती — की उपासना का विशेष महत्व *

'ललितासहस्रनाम' में कहा गया है कि वैसे तो भगवती की पूजा की विशिष्ट तिथियाँ अनेक हैं किन्तु उनमें भी **पूर्णिमा** विशिष्टतमा तिथि है और उसमें भी चन्द्रमण्डलगतस्वरूपा भगवती के स्वरूप की उपासना उत्कृष्टतमा पूजा है—

'पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम्
पञ्चोपचारैः संपूज्य पठेन्नामसहस्रकम् ॥'[3]

आचार्य भास्करराय इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—

---

[1] लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१)

[2] लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१)

[3] ललितासहस्रनाम (२५५)

(१) 'पौर्णमासीशब्द शुक्लपक्षस्य चरमरात्रिपरः
'दर्शादृष्टे' त्यनुवाके तादृशरात्रिमानत्वेन परिगणनात्।
तेनास्मिन्प्रयोगे रात्रिव्यापिनी तिथिर्ग्रह्येति सिद्धयति।

(२) 'चन्द्रबिम्बे चन्द्रस्य पूर्णमण्डले।

तत्र हि **सादारव्यैका कला** सदातनी त्रिपुरसुन्दरीरूपा। अन्याः पञ्चदशकला वृद्धिह्रासभागिन्यः। ताश्च कामेश्वर्यादि चित्रान्ततिथिनित्यापञ्चदशकस्वरूपाः। अतस्तासां परिपूर्तौ **षोडशनित्याभि**स्तत्किरण देवताभिरणिमादिभिश्च योगाच्चन्द्रमण्डलं प्रत्यक्ष-श्रीचक्रात्मकं संपद्यते। अनेनैवाशयेन 'चन्द्रमण्डलमध्यगे' त्यादीनि नामानि।

पञ्चसंख्यैरूपचारैः (१) गन्ध, (२) पुष्प (३) धूप, (४) दीप, (५) नैवेद्यैः संपूज्य—

'तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं तत्त्वमेव त्वमेव इत्यादि श्रुत्युक्तरीत्या परस्परप्रतियोगिकत्वसम्यक्त्वेन स्वात्मदेवतयोरैक्यं विभाव्यम्। एतदेव ह्युपचारान्प्रति प्रधानम्—

'अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च,
ललितापूजनस्यैते लक्षांशेनापि नो समाः।
स दाता स मुनिर्यष्टा स तपस्वी स तीर्थगः,
यः सदा पूजयेद्देवीं गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥'[1]

चन्दनागरुकर्पूरैः सूक्ष्मपिष्टैः सकुंकुमैः।
आलिप्य ललितां लोके कल्पकोटीर्वहेन्नरः ॥'
'अन्तर्याग बहिर्यागौ गृहस्थः सर्वदाचारः ॥'

—अन्तर्यागात्मक-बहिर्यागात्मक पूजा-द्वैविध्य का अवगाहन करके ऐक्य भावना का निष्पादन ही तो अन्तर्याग है—'पूजाद्वैविध्यावगमादैक्यभावन**मन्तर्याग** एव॥" **'बाह्यपूजा'** क्या है? **बाह्यपूजा** है गन्धपुष्पादिक उपचारों का निवेदनात्मक मानस संकल्प—

'बाह्यपूजा तु गन्धपुष्पादीनां निवेदनात्मको मानसः संकल्प एवः॥'[2]
इस पूजा में 'श्रीललिताम्बिकायै नमः" कहकर पूजा करनी चाहिए।[3]

(९) पूजा एवं षोढ़ा ऐक्य का प्रभाव—

(१) आचार्य लक्ष्मीधर 'षोढ़ा ऐक्य' के प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—

---

[1] पद्मपुराण

[2] सौभाग्य भास्कर

[3] सौभाग्य भास्कर

(१) 'षड्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना गुरु कटाक्षसंजात महावेध महिम्ना च भगवती झडिति **मूलाधार-स्वाधिष्ठानात्मकचक्रद्वयं भित्वा मणिपूरे प्रत्यक्षं प्रतिभाति।**

(क) षोढ़ा ऐक्य	देवीका (मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र छोड़कर)
(ख) महावेद्यदीक्षा	

(१) 'मणिपूरक चक्र' में प्रवेश

(२) 'मणिपूरक चक्र' में प्रत्यक्ष दर्शन।

(एवं महावेधे जाते भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति।

सा समाराध्या।''—लक्ष्मीधर।।

भगवती की पूजा का विधान—(१) 'मणिपूर' में भगवती के पदार्पणोपरान्त वहाँ भगवती की पूजा करनी चाहिए।

विधि—(२) 'अर्घ्यपाद्यादिभूषणप्रतिपादनपर्यन्तं पूजाकलापं मणिपूरे निर्वर्त्य **अनाहत मन्दिरं** भगवतीं नीत्वा नैवेद्यहस्त प्रक्षालनान्तं कर्मकलापं तत्रैव समाप्य **विशुद्धौ** भगवतीं सिंहासनासीनां सरवीभिः संल्लापान् सम्भाषमाणां शुद्धस्फटिकसदृशैः मणिभिः पूजयेत् । शुद्धस्फटिकसदृशमणयो न भौक्तिकादयः, किन्तु **तदीयषोडशदलगत षोडश** चन्द्रकला रहस्यं। एवं संपूज्य आज्ञाचक्रं नीत्वा देवीं कामेश्वरी नीराजनविधिभिः अनेकैः संप्रीणयेत् ।।'—लक्ष्मीधरा

सारांश-भगवती की पूजा के सोपान

(१) **प्रथम सोपान**—षोढ़ा ऐक्य एवं महावेध के प्रभाव से मूलाधार-स्वाधिष्ठान चक्रों का त्याग करके भगवती को 'मणिपूर' चक्र में ले जाकर उनका दर्शन करना।

(२) **द्वितीय सोपान**—मणिपूरक चक्र में अर्घ्य, पाद्य, भूषण आदि पूजाकलाप से उनकी पूजा करना। (**'मणिपूरक'** में पूजा।)

(३) **तृतीय सोपान**—फिर भगवती को मणिपूरक चक्र से अनाहत चक्र में ले जाना और वहाँ धूप-दीपादिक द्वारा उनकी पूजा करना। (**अनाहत चक्र** में ले जाकर पूजा करना)।

(४) **चतुर्थ सोपान**—फिर देवी को **'अनाहत चक्र'** से 'विशुद्धाख्य चक्र' में ले जाकर शुद्धस्फटिक संकाश **मणियों से** (षोडश चन्द्रकला रूप षोडशदलात्मक विशुद्धाख्य वर्णों से भगवती की पूजा करना) (विशुद्धाख्य चक्र में पूजा)

(५) **पञ्चम सोपान**—फिर देवी को **'आज्ञा चक्र'** में लाकर उन कामेश्वरी देवी की अनेक प्रकार की नीराजना-विधियों से पूजा करना और उन्हें प्रसन्न करना।) (आज्ञा चक्र में लाकर देवी की आज्ञा चक्र में पूजा करना)

(६) **षष्ठसोपान**—इसके उपरान्त भगवती को 'आज्ञा चक्र' से **'सहस्रदल कमल'** में लाना चाहिए। वे यहाँ विद्युल्लता' की भाँति शीघ्र ही प्रविष्ट होकर अमृत समुद्र में पाँचकल्प वृक्षों की छाया में 'मणिद्वीप' में 'सरघा' में सदाशिव के साथ विहार किया करती हैं।

(७) **सप्तम सोपान**—इसके अनन्तर साधक को तिरस्करिणी प्रसारपूर्वक उनके मन्दिर के समीप स्वयमेव निवास करना चाहिए।

वहाँ साधक को तब तक रहना चाहिए जब तक कि भगवती वहाँ से लौटकर **'मूलाधार कुण्ड'** में प्रत्यावर्तित नहीं हो जातीं। यही 'समयम तत्त्व का रहस्य' है।

चतुर्विध ऐक्य के द्वारा भगवती के प्रसन्न होकर 'मणिपूर' में प्रत्यक्ष दर्शन देने के समय उनके स्वरूप का वर्णन आचार्य शंकर ने इस प्रकार किया है—

'क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तननता,
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना ।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः,
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितु राहो पुरुषिका ।।'[1]

समयमत की उपासना में कौलमत का त्याग

समयमतावलम्बी, वामाचारी कौलमार्गियों की उपासना को स्वीकार नहीं करते अतः समयमत की उपासना में कौलमत के (१) सिद्धान्त एवं (२) साधना-पद्धति दोनों का त्याग करना भी अपरिहार्यतः आवश्यक है।

आचार्य गौड़पाद ने इसी दृष्टि को स्थापित करते हुए कहा है कि—

'भवत्साम्यं केचित्त्रित्रयमिति कौल प्रभृतयः,
परं तत्त्वाख्यं चेत् स पर इदमाहुः समयिनः ।
क्रियावस्थारूपं प्रकृतिरभिधा पञ्चक समं,
तदेषां साम्यं त्वमवनिषु च यो वेत्ति स मुनिः ।।'

कतिपय कौल मतावलम्बी केवल साम्यत्रय का ही प्रतिपादन करते हैं किन्तु समयाचारावलम्बी परम तत्त्व नाम के किसी एक अन्य तत्त्व को भी मानते हैं। उसके साथ पञ्चसाम्य-स्थापन करना जानने वाला 'मुनि' कहा जाता है।[2]

---

१. सौन्दर्यलहरी (७)

२. सुभगोदय स्तुति (४०)

* भगवती का (श्रीचक्र सम्बद्ध) मेरु, कैलास एवं भूप्रस्तार वाला प्रस्तारत्रयात्मक स्वरूप *

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—भगवती

(१) नित्या-समुदाय, वर्ण-समुदाय एवं नाद के सम्मिलन से भगवती **'महामेरू'** में स्थित होती है।

(२) मंत्र के साथ मिलकर कैलासविग्रहा हो जाती है।

(३) वशिनी आदि शक्तियाँ भगवती षट्चक्रात्मक शरीर से मिलकर भूप्रस्तार बनाती हैं।

(क) नित्या, वर्णमाला एवं नाद का ऐक्य = 'मेरुप्रस्तार'

(ख) नित्या, वर्णमाला, नाद एवं मंत्र का ऐक्य = 'कैलास प्रस्तार'

(ग) वशिनी आदि वाणी की देवियों एवं षट्चक्रों का ऐक्य = 'भूप्रस्तार'

श्री चक्र के ये तीन प्रकार के प्रस्तार हैं।

'इमा नित्या वर्णास्तव चरण संमेलनवशा-
न्महामेरुस्था: स्युर्मनुमिलन कैलास वपुषः।
वशिन्याद्या एता अपि तव सबिन्द्वात्मकतया,
महीप्रस्तारोऽयं क्रम इति रहस्यम् समयिनाम् ॥'[1]

श्रीविद्या की उपासना (१) **'कौलमत'** (२) **'मिश्रमत'** एवं (३) **'समयमत'** तीनों में मान्य है किन्तु **'समयमत'** के उपासक एवं तदनुसार आचार्य गौड़पाद दोनों ही **'कुलमत'** के वाममार्गी सिद्धान्त एवं साधना दोनों के प्रतिपक्षी हैं।

गौड़पादाचार्य एवं श्रीविद्या का 'कौलमत'

(१) **गौड़पादाचार्य** ने 'सुभगोदय स्तुति' में कौलमत का खण्डन किया है।

(२) **आचार्य शङ्कर** ने 'सौन्दर्यलहरी' (आनन्द लहरी) में **'कौलमत'** एवं **'समयमत'** दोनों का वर्णन किया है तथा समयमत को स्वीकार करते हुए कहीं भी स्पष्टतः **'कौलमत'** की निन्दा नहीं की है।

(३) **आचार्य लक्ष्मीधर** ने 'कौलमत' का खण्डन करते हुए स्पष्टतः **'समयमत'** का प्रतिपादन किया है।

(४) **श्रीविद्या के प्रथमाचार्य परशुराम ने—'परशुरामकल्पसूत्र'** में 'कौलमत' का एवं 'समयमत' दोनों का प्रतिपादन किया है।

---

१. गौड़पादाचार्य

(५) **आचार्य भास्करराय** ने भी **'ललितासहस्रनाम'** की टीका की व्याख्या एवं **सेतुबन्ध** आदि अपने प्रख्यात ग्रन्थों में कहीं भी **कौलमत** का खण्डन नहीं किया है।

(६) **'नित्योत्सव'** के रचनाकार उमानन्दनाथ ने भी 'कौलमत' का खण्डन नहीं किया है।

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

(१) 'चतु:षष्टिस्तन्त्राण्यपि कुलमतं निन्दितमभूत।'

इससे नि:सृत **'मिश्रमार्ग'** भी निन्दनीय है—

'यदेतन्मिश्राख्यं मतमपि भवेन्निन्दित मिह ।।[1]

(२) अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूल सदने ॥[2]
अतो **बाह्यपूजा** भवति भगरूपेण च ततो।
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते ॥[3]
'त्रिकोणं ते **कौलाः** कुलगृहमिति प्राहुरपरे।
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति।
सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्य शशिनो-
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे ॥[4]

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि **'समयमत'** ६४ तन्त्रों के प्रति भी श्रद्धा नहीं रखता वह केवल 'शुभागमपञ्चक' नामक वैदिक मत को ही स्वीकार करता है और पञ्चागम की विद्या ही 'पुरुषार्थ' है—

'शुभाख्याः पञ्चैताः श्रुति सरणिसिद्धाः प्रकृतयो
महाविद्यास्तासां भवति परमार्थो भगवती ॥'[5]

* भगवती की पूजा के लिए उपयोगी पक्ष एवं दिन *

आचार्य गौड़पाद ने कहा है कि हे भगवती ! शुक्लपक्ष में **प्रतिदिन १ रात्रि** के **चरम भाग** में समयाचारी तेरी पूजा किया करते हैं।

---

१. सुभगोदयस्तुति (१८)
२. सुभगोदय स्तुति (४३)
३. सुभगोदय स्तुति (४३)
४. सुभगोदय स्तुति (७)
५. सुभगोदय स्तुति (१८)

शुक्लपक्ष की १५ तिथियाँ नित्या हैं—

'सहस्रारे चक्रे निवसति **कलापञ्चदशकं**
तदेन्नित्याख्यं भ्रमति **सितपक्षे** समयिनाम् ॥' (३०)

इसलिए भगवती का पूजन शुक्ल पक्ष में ही किया जाता है। भगवती कुण्डलिनी का प्रबोधन, जागरण एवं उत्थापन भी शुक्लपक्ष में ही किया जाता है। इसका कारण यह है कि शुक्लपक्ष में ही पीयूष-स्राव विपुल मात्रा में हुआ करता है। शुक्लपक्ष में ही चान्द्र किरणों से पीयूषाप्ति होती है।

चन्द्रमा भास्कर-रश्मियों से ताप का हरण करके शुक्लपक्ष में चन्द्रिका प्रदान करता है।

चन्द्रमा तो रात में प्रकाश फैलाता है अतः रात्रि में ही चन्द्रकलोपासना निष्पादित की जाती है। योगियों को रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही कुण्डलिनी जागृत करने का नियम है; क्योंकि वह समय मधु से युक्त होता है। आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'ताः रात्रयः मधुकुर्वन्तीति मधुकृतः।
रात्रिष्वेव मधुनः संग्रह इति लोक प्रसिद्धिः।'

'रात्रावेव चन्द्रकलारूपायाः श्रीविद्यायाः अनुष्ठानम् न च दिवसे इति उपदेशः॥'

* सामयिकों की उपासना में विशेष त्याज्य चक्र *

गौड़पादाचार्य ने कहा है कि सामयिकों की पूजा में विशेष त्याज्य चक्र (१) **'मूलाधार चक्र'** एवं (२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** है। कौलों की पूजा में इन चक्रों में निष्पादित उपासना ही वरेण्य मानी जाती है तथा वे भगादि की भी पूजा करते हैं जो कि समयमत में पूर्णतः निषिद्ध है। सामयिकों की पूजा में 'बाह्यपूजा' के लिए कोई स्थान नहीं है; किन्तु कौलोपासना में है। अतः सामयिकों के लिए वह त्याज्य है—

अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने।
अतो बाह्यपूजा भवति भगरूपेण च ततो,
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्य चरिते ॥[1]

समयों की दृष्टि से ही यह कहा गया है कि—

---

[1] सुभगोदयस्तुति (४३)

(१) समया चार वालों के लिए यह द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठान अत्यन्त दूर ही रहे।

(२) इन दोनों (मूलाधार चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र) का त्याग करके इनके पीछे मणिपूर नामक सदन में तेरे द्वारा उत्पन्न होने वाली, जल से प्रतिफलित सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणों के द्वारा (दो प्रकार वाला) पूजन—समयमतावलम्बियों के लिए होता है—

'भवेदेतच्चक्रद्वितीयमतिदूरं समयिनां
विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्यसदने।
त्वया सृष्टैर्वारि प्रतिफलित सूर्येन्दुकिरणै-
र्द्विधा **लोके पूजां विदधति भवत्याः समयिनः** ॥[1]

* नवव्यूहात्मक, नवात्मा भैरव का समयमत में त्याग *

समयमत में कौलों के नवव्यूहात्मक या नवात्मा भैरव को सिद्धान्त एवं साधना दोनों की दृष्टि से निषिद्ध माना गया है—

'**नव व्यूहं कौलं** प्रभृतिकमतं तेन स विभु-
र्नवात्मा देवोऽयं जगदुदकृद भैरव वपु,
नवात्मा वामादि प्रभृतिभिरिदं भैरव वपु-
र्महादेवो ताभ्यां जनकजननीमज्जगदिदम् ॥'

कौलों की दृष्टि—

'नवव्यूहात्मको देवः परानन्दः परात्मकः।
नवात्मा भैरवो देवो मुक्तिभुक्ति प्रदायकः।
परानन्दपरा शक्तिश्चिद्रूपानन्द भैरवी।
तयोर्यदा सामरस्यं जगदुत्पद्यते तदा ॥'

उपासना के विभिन्न रूप—यद्यपि शाक्त तांत्रिकों के सम्प्रदायों में दृष्टि-वैभिन्य है तथापि त्रिपुरोपासकों में कौल-मिश्र एवं 'समय'—इन तीनों सम्प्रदायों में देवी एक है और वही उपास्या है।

उपास्या परमेश्वरी के तीन रूप हैं—(१) **'स्थूल'** (२) **'सूक्ष्म'** (३) **'पर'**।

(१) **देवी का स्थूल रूप**—कर, चरण आदि अवयवों से युक्त एवं मांत्रिकों को आँखों से दर्शनीय, श्रवणेन्द्रिय से श्रव्य एवं त्वगेन्द्रिय से स्पृश्य जो स्थूलरूपावस्थित है वही देवी का **'स्थूल रूप'** है यथा—

---

[1] सुभगोदयस्तुति (४५)

'ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारूणाम् ।
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ।।
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसंनिभाम् ।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्य किंकिणीजालमण्डिताम् ।। आदि।।'[1]

(२) **देवी का द्वितीय रूप**—मन्त्रात्मक स्वरूप यथा—

'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं ''

(३) **देवी का वासनात्मक स्वरूप**—यह पुण्यवानों के मनन योग्य स्वरूप होता है।

यद्यपि देवी के तीन रूप हैं तथा भावना की दृष्टि से देवी के दो ही रूप हैं—(१) अरूपात्मक (२) सरूपात्मक ।[2]

प्रथम रूप—पररूपानुसन्धानत्मिका चरमा भावना ।

[५] * भगवती के मन्त्र (पञ्चदशीविद्या) का स्वरूप

श्लोक क्र० २० *

'त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे शशिसवितृवह्न्यात्मकतया,
स्वराश्चन्द्रे लीनाः सवितरि कलाः कादय इह ।
यकाराद्या वन्हावथ कषयुगं बैन्दव गृहे,
निलीनं सादाख्ये शिवयुवति नित्यैन्दवकले ।।'

	खण्ड	श्रीयंत्र	चक्र	मंत्र के कूट	मंत्राक्षर
[१]	'सोम खण्ड'	'चतुर्दशार' 'अष्टदल 'षोडशदलपद्म'	'विशुद्धचक्र' आज्ञा चक्र	'शक्तिकूट'	'स्वरवर्ण'
[२]	'सूर्य खण्ड'	दशारद्वय	मणिपूरक एवं अनाहत	कामराज कूट	क आदि वर्ण

श्लोक क्र० ८ में 'श्रीविद्या' के तीन खण्ड का नामोल्लेख किया गया है जो इस प्रकार हैं—

---

१. नित्याषोडशिकार्णव (१।१३० १३१)
२. द्वितीय रूप—स्थूलरूपानुसन्धानात्मिका भावना।

[श्रीयंत्र की भाँति]—''पञ्चदशी'' के खण्डत्रय[1]

(१) 'सोमखण्ड'
(२) 'सूर्यखण्ड'
(३) 'अनलखण्ड'

'त्रिखण्डं ते चक्रं शुचि रविशशाङ्कात्मकतया,
मयूखैः षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्ड कलितैः।।'

(यहाँ श्री चक्र को त्रिखण्डात्मक बताया गया है किन्तु ये खण्डत्रय 'पञ्चदर्शी महाविद्या' के भी हैं।)

यहाँ आचार्य श्रीविद्या के भी तीन खण्डों का प्रतिपादन कर रहे हैं—

''**त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे** शशि—सवितृ-वह्न्यात्मकतया
स्वराश्चन्द्रे लीनाः सवितरि कलाः कादय इह ।।''

आचार्य श्री कहते हैं कि—

हे माँ ! तेरे **मन्त्र** 'सोम' 'सूर्य' एवं 'अग्नि'—तीन खण्डों वाला है। उसमें प्रयुक्त सारे—

(क) स्वर (अक्षर)—चन्द्रात्मक हैं।
(ख) वर्ण 'क' आदि—सूर्यात्मक हैं।
(ग) वर्ण 'य वर्ग'—अग्न्यात्मक हैं।
(घ) 'क्ष' वर्ण—बैन्दवगृह हैं।[2]

* मंत्र के तीन खण्ड *

समस्त व्यस्त रूपेण **षटत्रिंशत्तत्व विग्रहाः।**

(ये सारे ३६ तत्त्वों के विग्रह हैं।)

* **सारे स्वर १६ शक्तियाँ हैं।** ये सभी नित्याओं के रूप हैं—

(१) '**नित्याषोडशकात्मानः** परस्पर परस्परमयी युताः ।।

(२) 'अकारादिविसर्गान्ताः **स्वराः षोडशशक्तयः** ।।

* **सारे वर्ण शिवशक्त्यात्म हैं**—

''शिवशक्तिमयाः वर्णाः शब्दार्थ-प्रतिपादकाः ।।''

---

१. सुभगोदयस्तुति (८)
२. सुभगोदयस्तुति (२०)

स्वर एवं शिव—

(१) शिवः स्वरपराधीनो न स्वतंत्रः कदाप्यसौ।

(२) '**स्वराः** स्वतंत्रा जायन्ते न **शिवस्तु** कदाचन ॥'

—मातृका हृदय

'**क्षकार**' ही बैन्दवगृह है। "**क्ष**" आकाश का भी द्योतक है। आकाश नाद का बोधक है। मंत्र के तीनों खण्डों का लय जहाँ होता है वह लयस्थान है—"**नाद**"।

(क) व्यञ्जन **स्वराश्रित** हैं।

(ख) स्वर नादाश्रित हैं।

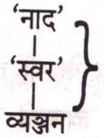

मंत्र के तीन भाग

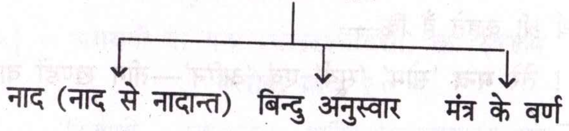

(१) व्यञ्जनाधार '**स्वर**' है।

(२) स्वराधार '**नाद**' है।

(३) नादाधार '**नादान्त**' है।

(४) अनाहतनाद (अव्यक्त नाद) ही शब्दों का मूल कारण है।

कलायें १६ हैं। स्वर भी १६ हैं। 'कला' का अर्थ है—'स्वर'। 'कला'—क से ल पर्यन्त समस्त वर्णमाला।"

५० कलायें

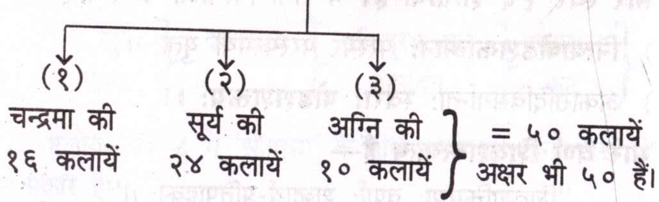

'**वर्ण**' **शरीर है** और '**स्वर**' वर्ण का कला है।

'**वर्ण**' शिव है और '**स्वर**' शक्ति है।

पञ्चदशी मन्त्र का प्रत्येक अक्षर शिवशक्त्यात्मक है।

कला प्रधान होने से सभी वर्ण कलात्मक हैं।

अनुस्वार '**बिन्दु**' है और चन्द्रमा '**नाद**' है।—

* 'नाद' बिन्दु के ऊपर है। इसीलिए इसके पूर्व इस प्रकार लिखा जाता था ँ

नाम खण्ड	**श्रीयंत्र के भाग**	**पिण्डस्थ चक्र**	**मंत्र के कूट**	**मंत्राक्षर**
[३] 'अग्निखण्ड	त्रिकोण तथा अष्टार	मूलाधार चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र	वाग्भव कूट	य वर्ग के वर्ण
[४] 'बैन्दवस्थान'	वृत्तत्रय एवं भूपुर	सहस्त्रार.	अन्तिम कूट तुर्य	नाद

'**क्षकार**' **एवं** '**अकार**'—आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—

आचार्य गौड़पाद 'क्षकार' को अर्थ की दृष्टि से एक नव्य आयाम प्रदान करते हैं। वे कहते हैं—

'क्षकारश्चाकारोऽक्षरतनुतया चाक्षरमिति ॥'

अर्थात् '**क्षकार**' एवं '**अकार**' ही अक्षरों का शरीर है इसलिए यह '**अक्षर**' है।

तीनों खण्डों का प्रत्याहरण 'क्ष' (क + ष) के युग्म में हो जाता है। 'क्ष' युग्म इसलिए है क्योंकि यह '**क**' **एवं** '**ष**' दो वर्णों से निर्मित हुआ है।

'**क**' वर्ण को लीजिए :—

'**ककाराभ्यां** स्वरगणभवष्टभ्य निखिलं।
कलाप्रत्याहाररात सकलमभबद्धञ्जनगणाः ॥'

(१) '**क**' में 'अ' = सारे व्यञ्जनों का प्रतिनिधित्व करता है।

(२) '**क**' = यह व्यञ्जन वर्ण सारे व्यञ्जन वर्णों का प्रतिनिधित्व करता है।

(३) '**क्ष**' = में 'क' सारे व्यञ्जनों का एवं 'ष' सारे श, ष, स आदि वर्णों का प्रतिनिधित्व करता है। अतः 'क्ष' का अर्थ है—'क' से 'ष' पर्यन्त समस्त (वर्णमाला के) वर्ण।

'**ककारादि क्षकारान्ता** वर्णास्ते शिवरूपिणः।

'मन्त्र' एवं 'श्रीचक्र' दोनों अङ्गत्रयात्मक हैं।

* पञ्चदशी मन्त्र एवं 'श्रीचक्र'

- (१) नाद (नाद से नादान्त) }
  - अर्धचन्द्र। रोधनी।
  - नाद। नादान्त। शक्ति।
  - व्यापिका। समनी।
  - उन्मनी
- (२) बिन्दु एवं अनुस्वार }
- (३) कला मंत्र के वर्ण }
- (४) मंत्र का चतुर्थ खण्ड 'सादाख्य' (नाद, बिन्दु) कालातीत

श्री चक्र के तीन भाग

- (१) नाद (आज्ञाचक्र से सहस्रार पर्यन्त)—भूपुर }
- (२) 'बिन्दु' शिवचक्र तीन वृत्त
  - १६ दल वाला पद्म
  - ०८ दल वाला पद्म
- (३) कला-शक्तिचक्र (त्रिकोण, अष्टार, दशारद्वय, चतुर्दशार)

खण्डत्रय (षोडशों के त्रिक)

- (१) स्वर (१६)
- (२) क से त तक के वर्ण (१६ वर्ण)
- (३) थ से स तक के वर्ण (१६ वर्ण)

* 'श्रीचक्र' भगवती का शरीर है। *

* भगवती मंत्रस्वरूपा हैं। *

भगवती का त्रिखण्डात्मक मन्त्र 'सरघा' में लयीभूत हो जाता है।

'त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरघायां निविशते।'

'मन्त्र' अक्षरों की समष्टि नहीं है। यह अनन्त शक्ति एवं असीम सामर्थ्य से

पूर्ण चेतन शक्ति है। यह देवता का ध्वन्यात्मक या वर्णात्मक स्वरूप है और अपने मूल में यह मात्र अनाहत दिव्य नाद या **शक्ति का सूक्ष्म रूप** है।

शक्ति के विभिन्न स्वरूप

- (१) शरीरात्मक स्थूल रूप }
- (२) मन्त्रात्मक सूक्ष्म रूप }
- (३) मननात्मक वासनात्मक } 'पररूप' } **"मंत्र"** देवता या शक्ति की ही अपर आख्या है।

इस प्रकार शक्ति या देवता के सूक्ष्म रूप में उसका जो अस्तित्व रहता है वह मात्र उसका मंत्ररूप है। इस प्रकार **'मंत्र'** स्वयं देवता है। देवता का सूक्ष्म स्वरूप ही मंत्र है।

[१०] द्वादश विद्यायें

- (१) **'आदिविद्या'**
  - (१) 'क ए ई ल ह्रीं'
  - (२) 'ह स क ह ल ह्रीं'
  - (३) 'स क ल ह्रीं'
  - ('शक्तिशिवविद्या')
- (२) **'लोपामुद्राविद्या'**
  - 'ह स क ह ल ह्रीं'
- (३) **'क्रोधमुनिविद्या'**
  - 'ह स क ह ल ह्रीं'
- (४) **'मानवीविद्या'**
  - ह स क ह ल ह्रीं
  - क ए ई ल ह्रीं
  - स क ल ह्रीं
- (५) **'चान्द्रीविद्या'**
  - ह स क ह ल ह्री।
  - क ए ई ल ह्रीं।
  - ह स क ह ल ह्रीं।
  - स क ल ह्रीं।
- (६) **'कौबेरीविद्या'**
  - ह स क ह ल ह्रीं।
  - क ए ई ल ह्रीं।
  - ह स क ह ल ह्रीं।
  - स क ल ह्री
  - ह स क ह ह्रीं।

(७)
'अगस्त्यविद्या'

ह स क ए ल ह्लीं
ह स ह स क ह ल ह्लीं
ह स स क ल ह्लीं

(८)
'नन्दिविद्या'

ह ह स क ह स क ए ल ह्लीं
ह स ह स क ह ल ह्लीं
ह स स क ल ह्लीं

(९)
'प्रभाकरीविद्या'

क ए ई ल ह्लीं
ह स क ए ल ह्लीं
ह स ह स क ह ल ह्लीं
ह स स ल ह्लीं

(१०)
'षण्मुखीविद्या'

ह्लीं क्ली हं सः क्लीं लं ह्लीं
ह स क ह ल ह्लीं
सो हं क्लीं हं सः
हीं हं सः सोहं हंसः।

(११)
'परमशिव विद्या'

ह्लीं क्लीं हं सः क्लीं लं ह्लीं ह स क ह ल ह्लीं सो हं
क्लीं हंसः ह्लीं हंसः सोहं हंसः, ह स क
ए ल ह्लीं ह स ह स क ह ल ह्लीं ह स
स क ल ह्लीं

(१२)
'वैष्णवी विद्या'

ह स क ए ल ह्लीं, ह स ह स क ह ल ह्लीं, ह स स
कल ह्लीं, क ए ई ल ह्लीं, ह स क ह ल ह्लीं
क ए ई ल ह्लीं, ह स क ह ल ह्लीं, स क ल
ह्लीं ह स क ह ल ह्लीं, ह स क ह ल ह्लीं
स क ल ह्लीं

(१) **'लोपामुद्रा'**—एवमाद्यां विद्यामभिधायैत स्याः शक्तिकूटं शक्ति शिवाद्या। लोपामुद्रेय द्वितीय धामनि ॥२७॥

---

(२) **'क्रोधमुनिमुद्रा'**—पूर्वेणैव मनुना बिन्दुहीना शक्तिभूतहल्लेखा क्रोधमुनिनाऽधिष्ठता तृतीये धामनि॥२८॥

(३) **'कौबेरीविद्या'**—पूर्वस्या एव विद्याया यद्वाग्भवकूटं तेनैव **मानवीं चान्द्रीं कौबेरीं** विद्यामाचक्षते॥२९॥

(४) **'मानवीविद्या'**—मदनाधः शिवं वाग्भवम् , तदूर्ध्वं कामकलामयम्, शक्त्यूर्ध्वं शाक्तमिति मानवी विद्या चतुर्थे धामनि॥३०॥

(५) **'चान्द्रीविद्या'**—शिवशक्त्याख्यं वाग्भवं तदेवाधः शिवशक्त्याख्यमन्यतृतीयं चेयं चान्द्री विद्या पञ्चमे धामनि ध्येयेयम् ॥३१॥

(६) **'कौबेरीविद्या'**—चान्द्री कामधः शिवाद्यकामा सैव **कौबेरी** षष्ठे धामनि व्याचक्षत इति एवं वेद॥३२॥

(७) **'अगस्त्यविद्या'**—हित्वेकारं तुरीयस्वरं सर्वादौ सूर्याचन्मस्केन कामेश्वर्यैवा**गस्त्य संज्ञा** संज्ञा सप्तमे धामनि॥३३॥

(८) **'नन्दिविद्या'**—तृतीयमेतस्या एव पूर्वोक्तायाः कामाद्यं द्विधाऽधः कंमदनकलाऽऽद्यं शक्ति बीजं वाग्भवाद्यं तयोरधविशिरस्कं कृत्वा नन्दिविद्येयमष्टमे धामनि॥३४॥

(९) **'प्रभाकरीविद्या'**—वाग्भवभङ्गगस्त्यं वागर्थ कलामयं कामकलाऽभिधं सकलमाया शक्तिः **प्रभाकरी विद्येयं** नवमे धामनि॥३५॥

(१०) **'षण्मुखीयविद्या'**—पुनरागस्त्यं वाग्भवं शक्तिमन्मथ शिवशक्तिमन्मथोर्वीयमाया काम कलालयं चन्सूर्याङ्गधूर्जटिमहिमायं तृतीयं **षण्मुखीयविद्या** दशमे धामनि॥३६॥

(११) **'परमशिवद्या'**—विद्याप्रकाशितया भूय एवागस्त्यविद्यां पठित्वा भूय एवेनामन्त्य मायां **परमशिवविद्येय**मेकादशे धामनि॥३७॥

(१२) **'वैष्णवीविद्या'**—भूय एवागस्त्यं पठित्वा एतस्या एव वाग्भवं यद्धनजं काम कलाऽऽलयं च तत्सहजं कृत्वा लोपामुद्रायाः शक्तिकूटराजं पठित्वा **वैष्णवीविद्या** द्वादशे धामनि व्याचक्षत इति य एवं वेद॥३८॥

'श्रीविद्या'

(१)
आद्यखण्ड
'वाग्भवकूट'

(२)
द्वितीय खण्ड
'कामकूट'

(३)
तृतीय खण्ड
'शक्तिकूट'

श्रीविद्या का स्वरूप

भास्करराय कहते हैं—'अकथादिकषोडशाक्षरात्मकतार्तीयकामवाग्भवैः घटिता च परादिवाग्गणैरिति विद्यापि **गणेशरूपिणी।**

(१) **'विद्या गणेशरूपिणी है**—आचार्य भास्करराय।

(२) **'श्रीविद्या' नक्षत्ररूपिणी है**—आचार्य भास्करराय।

बिन्दुत्रयनादत्रयतदन्यकूटत्रयैर्ग्रहत्वमिह ।
नक्षत्रत्वं च दशाकाराणां व्यञ्जनैरपार्थक्यात् ॥९९॥

(३) **'श्रीविद्या' नक्षत्ररूपिणी है**—

'हल्लेखात्रयसंभूतैस्तिथिसंख्यैस्तक्षरै। अन्यैर्द्वाशर्भिवर्णैरिषा **नक्षत्ररूपिणी।**

भगवती की पूजा

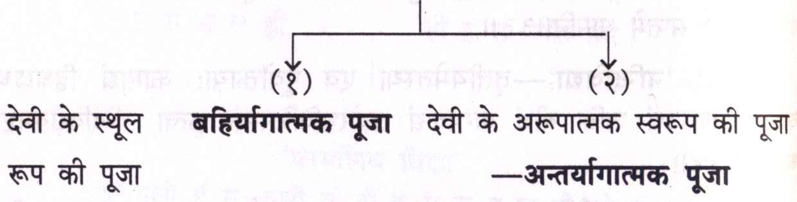
(१)
(२)
देवी के स्थूल रूप की पूजा
बहिर्यागात्मक पूजा
देवी के अरूपात्मक स्वरूप की पूजा
—अन्तर्यागात्मक पूजा

सस्वरूपा भगवती की पूजा

भगवती की पूजा भगवती के स्थूल रूप (शरीर एवं शरीरावयवों से युक्त स्थूल विग्रह) की पूजा **'बहिर्याग'** से की जाती है।

भगवती का जो रूपात्मक स्वरूप है उसकी सपर्या बहिर्यागात्मक है।

भगवती की पूजा का जो द्वितीय प्रकार है वह भगवती के अरूपात्मक स्वरूप का है। **अरूपात्मक देवी की पूजा** उसके **अरूपात्मक स्वरूप** की पूजा है। यह पूजा स्थूलपूजा नहीं **'मानसीपूजा'** है। यह **अन्तर्यागात्मक** पूजा है।

[११] श्रीविद्या-साधना की साधन-सम्पत्ति—

आचार्य गौड़पाद की 'सुभगोदयस्तुति' को ध्यान में रखकर यदि हम **'श्रीविद्यासाधना'** के साधनों या साधना-पद्धतियों पर विचार करें तो हमें इस साधना में निम्न प्रमुख साधनायें या साधन-पद्धतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

श्रीविद्या साधना के साधन या उसकी साधना-पद्धतियाँ

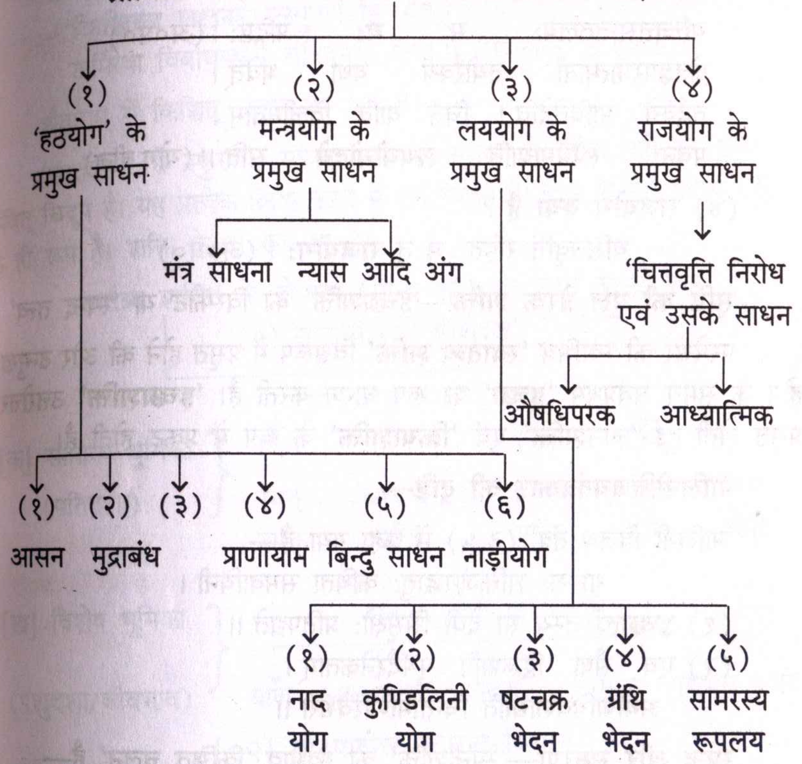
(१)
'हठयोग' के प्रमुख साधन
(२)
मन्त्रयोग के प्रमुख साधन
(३)
लययोग के प्रमुख साधन
(४)
राजयोग के प्रमुख साधन
मंत्र साधना
न्यास आदि अंग
'चित्तवृत्ति निरोध एवं उसके साधन
औषधिपरक
आध्यात्मिक
(१) आसन
(२) मुद्राबंध
(३)
(४) प्राणायाम
(५) बिन्दु साधन
(६) नाड़ीयोग
(१) नाद योग
(२) कुण्डिलिनी योग
(३) षटचक्र भेदन
(४) ग्रंथि भेदन
(५) सामरस्य रूपलय

(१) **'हठयोग' क्या है ?**

'यस्तु प्रभञ्जनविधानरतो **हठस्सः**॥' (अ०प्र०)

हठयोग के भेद (क) प्राणनिरोध (२) बिन्दुनिरोध (अ०प्र०)
'हठोऽपि द्विविधः क्वापि वायुबिन्दु निषेवणात्॥ (अ०प्र०)
'सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगोऽभिधीयते। (योग बीज)[1]

(२) **मन्त्रयोग क्या है ?**

'यो मन्त्रमूर्तिवशगः स तु **मन्त्रयोगः**॥' (अ०प्र०)
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेन्मरुत्।
गुरूवाक्यात्सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जपः।
'सोऽहं' **सोऽहमिति'** प्राप्तो **मन्त्रयोगः** स उच्यते॥ (योग बीज)

---

[1] **हकारेण** तु **सूयो**ऽसो **उकारेणन्दु**रूच्यते। (योग बीज)

(३) **लययोग क्या है ?**

यच्चित्तसन्ततलयः स **यः** प्रदिष्टः । (अ०प्र०)
क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ तयोरैक्यं यथा भवेत् ।
तदैक्ये साधितेदेवि ! चित्तं याति विलीनताम् ।
पवनः स्थैर्यमायाति **लययोगोदये** सति ॥ (योग बीज)

(४) **राजयोग क्या है ?**

यश्चित्तवृत्तिं रहितः स तु **राजयोगः** । (अ०प्र०)

सृष्टि की मूल प्रेरक शक्ति—'इच्छाशक्ति' का विस्फोट या 'स्पन्द तत्त्व'

परमेश्वर की स्वाभिन्न **'स्वांतत्र्य शक्ति'** विश्वरूप में प्रसृत होने की ओर उन्मुख होने के समय सर्वप्रथम **'इच्छा'** का रूप धारण करती है। **'इच्छाशक्ति'** उत्तरोत्तर प्रसृत होती हुई **'ज्ञानशक्ति'** एवं **'क्रियाशक्ति'** के रूप में प्रकट होती है।

मालिनीविजयतंत्रकार की दृष्टि—

'मालिनी विजय तंत्र' (३.५) में कहा गया है—

या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी ।
(१) **इच्छात्वं** तस्य सा देवी सिसृक्षोः प्रतिपद्यते ॥
(२) एवं सैषा द्विरूपापि पुर्भेदैरनेकताम् ।
अर्थोपाधिवशाद्याति चिन्तामणिरिवेश्वरी ॥

स्पन्द और स्फुरण—'स्पन्दशक्ति' का स्वभाव 'किञ्चित् चलन' है—

'किञ्चिच्चलनमेतावदनन्स्फुरणं हि यत् ।
ऊर्मिरेषा विबोधाब्धेर्न संविदनया विना ॥' (तंत्रालोक ४.१८४)

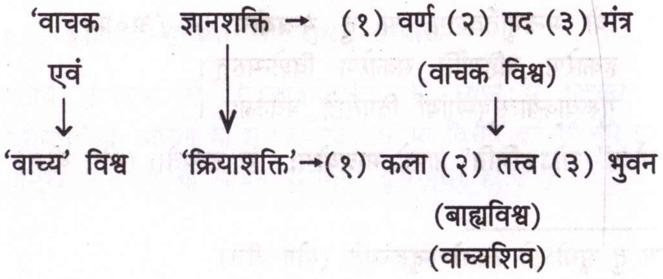
'वाचक
एवं
'वाच्य' विश्व
ज्ञानशक्ति → (१) वर्ण (२) पद (३) मंत्र
(वाचक विश्व)
'क्रियाशक्ति'→(१) कला (२) तत्त्व (३) भुवन
(बाह्यविश्व)
(वाच्यशिव)

'वाच्य और स्फुरण'—'स्पन्दशक्ति' का स्वभाव 'किञ्चित चलन ' है—

'किञ्चिच्च ललनमेतान्स्फुरणं हि यत् ।
ऊर्मिरेषा विबोधाब्धेर्न संविदनया विना ॥ (तंत्रालोक ४.१८७)

शैवागम में किञ्चित् चलन का अर्थ है—

'स्वतंत्ररूप से स्फुरण'। संवित् कभी भी स्फुरण के विना नहीं रह सकती। संवित् चिद्रूप है। यह प्रत्येक क्रिया करने में पूर्ण स्वतंत्र है। विश्व के सारे पदार्थ शक्ति के ही रूप हैं। शक्ति के दो रूप हैं।

'स्वातंत्र्य शक्ति' के दो रूप (स्पन्द शक्ति के प्रसार के दो रूप
(१) सामान्यं (२) विशेषञ्च)

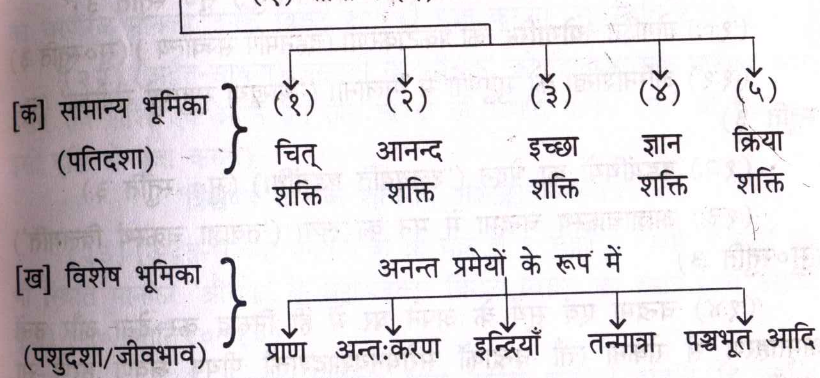
[क] सामान्य भूमिका
(पतिदशा)
(१) चित् शक्ति
(२) आनन्द शक्ति
(३) इच्छा शक्ति
(४) ज्ञान शक्ति
(५) क्रिया शक्ति
[ख] विशेष भूमिका
(पशुदशा/जीवभाव)
अनन्त प्रमेयों के रूप में
प्राण
अन्तःकरण
इन्द्रियाँ
तन्मात्रा
पञ्चभूत आदि

[१२] गौड़पादोक्त साधना-विधान

आचार्य गौड़पाद ने भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की साधना में ('सुभगोदय स्तुति' में) निम्न साधनाओं या साधना की तकनीकों का आत्मीकरण किया है—

(१) भवमहिषी, पराकारा, अमृतलहीर, ऐन्दव कला, सच्चिदानन्द, सुधासिन्धुवासिनी, एवं महाकालातीता भवानी के प्रति निष्ठा एवं उनका अभिवादन॥
(सुभगोदय स्तुति[1] श्लोक क्र० १)

(२) मन पर विजय की साधना = 'मनस्तत्त्वं जित्वा' (सु०स्तुति २) * मनस्तत्त्व पर विजय *।

(३) नासाग्रावलोकिनी दृष्टि या अगोचरी मुद्रा की साधना[2] 'नयनमथ नासाग्र घटितं' (सु० स्तुति २)

---

[1] आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—'इडायां पिङ्गलां चरत इह तौ **सूर्यशशिनौ।**
[2] सुभगोदय स्तुति (३३)

(४) इन्द्रियों पर विजय ('प्रत्याहार') 'पुनर्व्या वृत्ताक्षः (सु० स्तुति २)।

(५) पराभगवती का सतत् मानसिक दर्शन 'स्वयमपि यदा पश्यति पराम् ।" (सु० स्तुति २)

(६) बाहर एवं भीतर सर्वत्र भगवती के स्फुरण का साक्षात्कार। (स्फुरति बहिरन्तर्भगवती'—सु०स्तुति २)

(७) **'मनोमार्ग'** पर विजय—'मनोमार्ग जित्वा' (सु०स्तुति३)

(८) कुभवक द्वारा नाड़ियों को वायु से पूर्ण करना। (मरुत इह नाड़ी गण जुषो) (सु० स्तुति ३)

(९) सूर्य एवं चन्द्र का निरोधा (निरुध्यार्क सिन्दुं') सु० स्तुति ३)

(१०) योगऽित **'योगाग्नि'** का प्रकटीकरण। (दहनमपि संज्वाल्य) (सु०स्तुति ३)

(११) अग्निशिखा को सुषुम्णा से मिलाना। ('शिखया सुषुम्णां संयोज्य' (सु० स्तुति ३)

(१२) षडग्रंथियों का भेदन ('श्लथयति षड्ग्रंथि।) (सु० स्तुति ३)

(१३) आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा में मन का लय। ('तवाज्ञा चक्रस्थं विलयति') (सु०स्तुति ३)

(१४) चन्द्रमा एवं सूर्य के अपने घर में ही निरुद्ध कर देना और उन्हें अमृतहरण से रोकना (तौ चन्द्रार्कों संरोधनवशादशक्तौ पीयूष स्रवण हरणे सा भुजगी।) (सु० स्तुति ४)

(१५) क्षुत्क्रुद्धा एवं कुण्डलिनी का जागरण **'प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा'** (सु० स्तुति ४)।

(१६) 'बैन्दवचन्द्र का दर्शन और अमृत स्राव। (दशति शशिनं बैन्दवगतं। सुधाधाराः।।' (सु० स्तुति. ४)

(१७) सुधा द्वारा शरीर को स्नान कराना। ('सुधा धारा सारैः स्नाप यसि तनुं बैन्दवकले' (सु०स्तुति ४)

(१८) भगवती कुण्डलिनी के 'कुमारी' 'योषित' एवं 'पतिव्रता' रूपों का साक्षात्कार और सामरस्य (सु० स्तुति०[1]) श्लोक० ६

---

[1] कुमारी यन्मन्द्र ध्वनति च ततो योषिद्परा।
कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकाल भुजगी।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाश कमले।
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्कार रसिका ।।

—गौड़पादाचार्य (सु०स्तुति ६)

(१९) भगवती की 'कुलगृह' में पूजा

कौलों द्वारा 'त्रिकोण' में = मूलाधार में (सु०स्तुति ७)	सामयिकों द्वारा 'चतुष्कोण' में बैन्दवस्थान (सहस्रार) में (सु०स्तु०७) सुधा सागर में पूजा[1]

(२०) भगवती को षट्चक्रात्मक घर वाला या शरीर वाला मानकर उनकी पूजा करना—'भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्रसदनम् " (सु०स्तुति ८)

(२१) **'अग्नि' 'चन्द्र'** एवं **'सूर्य'** की सम्मिलित ३६० किरणों को भगवती का चरणरज मानकर उनके विराट रूप की पूजा करना। (सु०स्तुति ८, ९)

(२२) (अद्वैत-साधना) भगवती के 'श्रीचक्र' को त्रिखण्डात्मक मानकर और उसमें रवि-शशि एवं अग्नि इन तीन खण्डों की स्थिति मानना (एवं श्री चक्र की इसी दृष्टि से पूजा करना)

'त्रिखण्डं ते चक्रं शुचिरवि शशाङ्कात्मकतया।'

(२३) (अद्वैत-साधना भगवती के श्री चक्र के ९ चक्रों में पिण्ड के चक्रों की भी स्थिति मानकर 'श्रीचक्र' के ब्रह्माण्डकार विराट स्वरूप का ध्यान (एवं उसकी पूजा) (सु० स्तुति९० १०)

(२४) (अद्वैत-साधना षोढैक्य पूजा 'तदेवं षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम् ।।' (सु०स्तुति १२)

(२५) **अद्वैत साधनाः**

(क) 'षड्विधैक्यरूपा' या

(ख) 'चतुर्विधैक्यरूपा' **सपर्या** का निष्पादन—'तदेवं **षोढैक्यं** भवति खलु येषां समयनिाम् । चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम् ।। (सु०स्तुति १३)

चतुर्धैक्य

(१)	(२)	(३)	(४)
मातृका एवं मंत्र का ऐक्य	मन्त्र एवं चक्र का ऐक्य	चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य	नित्याओं तथा विथियों का ऐक्य

---

[1] त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे।
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति।।

चतुर्थैक्य

(१) षट्चक्रों का श्रीचक्र से ऐक्य
(२) बिन्दुस्थान का बैन्दव स्थान (सहस्रार) से ऐक्य
(३) जीव एवं शिव का ऐक्य
(४) श्रीयन्त्र एवं मन्त्र का ऐक्य

षोढैक्य

(१) मंत्र और मातृकाओं का ऐक्य
(२) मातृका एवं श्रीचक्र का ऐक्य
(३) मंत्र और नित्याओं का ऐक्य
(४) मातृका एवं नित्याओं का ऐक्य
(५) मन्त्र और चक्र का ऐक्य
(६) नित्याओं और चक्र का ऐक्य

(२६) कौलों की नवव्यूहात्मक शिव शिवा की पूजा। (कालः कुल, नामः, ज्ञान, चित्त, नाद, बिन्दु, कला एवं जीव (९ व्यूह)

वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ति, परा (९शक्तियाँ)

नौ व्यूहों वाले शिव, वामादि देवियों के साथ ९ प्रकार के ऐक्य से ९ प्रकार के ऐक्य से भैरव भैरवी रूप में स्थित होकर सृजनादि कार्य करते हैं। उनकी पूजा—

'नव्व्यूहात्मको देवः परानन्द परात्मकः।
नगत्मा भैरवो देवो भुक्ति प्रदायकः।
परानन्दा पराशक्तिश्चिद्रूपा नन्द भैरवी।
तयोर्यदा सामरस्यं जगदुत्पद्यते तदा ॥'

—सुभगोदय स्तुति॥

भवेत्यैक्यं षोढाभवति भगवत्याः समयनिां ॥' (१५)

(२७) भगवती की पूजा शुक्लपक्ष में प्रतिदिन रात्रि के चरम भाग में करनी चाहिए—

'अतः शुक्ले पक्षे प्रतिदिन मिहत्वां भगवतीं।
निशायां सेवन्ते निशि चरमभागे **समयिनः** ।।' (सु०स्तुति ३१)

(२८) भगवती की पूजा शुक्लपक्ष की प्रत्येक तिथि पर की जानी चाहिए; किन्तु **अमावस्या** के दिन पूजा नहीं करनी चाहिए—

'यदा चामावस्या भवति न हि पूजा समयिनाम् ॥' (३२)

(२९) भगवती का उस षोडशी कला के रूप में भी ध्यान करना चाहिए जिससे अमृत स्राव हुआ करता है। षोडशी के बिम्ब (आज्ञा चक्र के चन्द्र) से भी अमृत स्राव होता है। (३३)

(३०) 'श्रीचक्र' को चन्द्रमा का द्वितीय, सरधा या बैन्दवस्थान मानना (एवं यही मानकर उसकी पूजा करना)—

(तदेवं श्री चक्रं सरघमिति तद् बैन्दवमिति।)

—(सुभगोदय स्तुति० ३५)

(३१) कुण्डलिनी की सहायता से समस्त तत्त्वों का लय करके सहस्रार में सदाशिव को तत्त्व को जीतकर शिवतत्त्व में लय होना (३५)

(३२) मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र का पूजा एवं ध्यान की दृष्टि से त्याग।

भवेन्मूलाधार तदुपरितनं चक्र मपि तत्।
द्वयं तामिश्राख्यं... परित्याज्यमुभयम् ॥

—(सु०स्तुति ४२ एवं ४५)

(३३) (कौल-पूजा) स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार में होती है।

(१) अमीषां कौलानां भवेत्पूजन विधिस्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलन सदने॥

(२) अतो बाह्यपूजा भवतिभ्र रूपेण च ततो।
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्य चरिते ॥

—(सु०स्तुति० ४३)

(३४) **कौलों की पूजा** 'त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे'

—(सुभगोदय स्तुति ७)

भवेन्मूलाधार तदुपरितनं चक्रमपि तत्।
द्वयं तामिश्राख्यं शिखिकिरण संमेलनवशात् भवत्या रामाख्यं मतमपि......॥(४२)

—(सुभगोदय स्तुति ७)

(३५) (स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार के त्याग सहित) 'मणिपूर सदन' में भगवती के द्वारा उत्पन्न, जल से प्रतिफलित सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणों द्वारा दो प्रकार से पूजन—

'त्वयासृष्टैर्वारि प्रतिफलित सूर्येन्दुकिरणै र्द्विधा-
लोके पूजाविदधति भवत्याः समयिनः ॥'

—(सुभगोदय स्तुति ४५)

(३६) भगवती का सहस्रार में एक बिन्दु रूप में साक्षात्कार की साधना।

—(सुभगोदय स्तुति ४६)

* 'श्रीचक्र' में ९ चक्र *

(१) बिन्दु →(२) त्रिकोण →(३) अष्टकोण →(४) अन्तर्दशकोण→(५) बहिर्दशकोण→(६) चतुर्दशकोण→(७) अष्टदल→(८) षोडशदल→(९) भूपुर = ये श्रीचक्र में ९ चक्र होते हैं।

बिन्दु

त्रिकोण

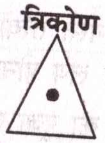

अष्टकोण

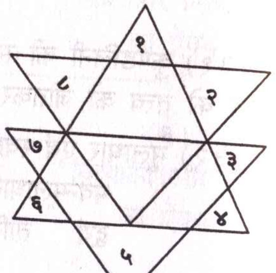

(सर्वरोगहर चक्र)

अन्तर्दशार

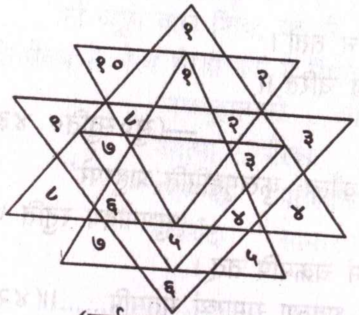

(सर्वरक्षाकर चक्र)

बहिर्दशार चक्र

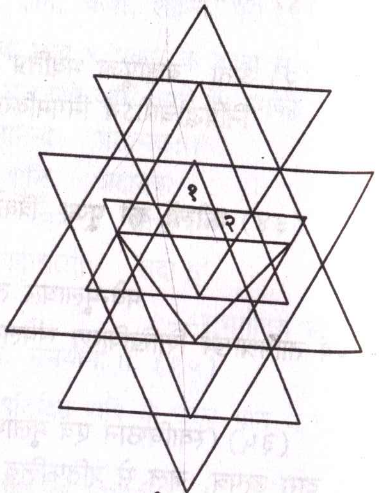

(सर्वसाधक-चक्र)

* [१३] गौड़पादोक्त श्रीविद्या साधना में योग की भूमिका *

[१] * **मन की साधना** * (राजयोग की साधना) यदि हम 'योग' 'अष्टाङ्गयोग' (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान एवं समाधि) के रूप में गृहीत करें तो पातञ्जल योग में प्रतिपादित **''राजयोग''** की सममा डाँककर आचार्य गौड़पाद ने—

(१) हठयोग (२) मंत्रयोग (३) लययोग एवं राजाधिराज योग इन सभी को 'सुभगोदय स्तुति' में प्रतिपादित 'श्रीविद्या साधना' के साधनों केरूप में स्वीकार किया है।

'कठोपनिषद' में 'योग' की इस प्रकार व्याख्या की गई है—

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि **मनसा** सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारण्म्म्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो ही प्रभवाप्ययौ ॥'[१]

अर्थात् जब **मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ** भलीभाँति **स्थिर** हो जाती हैं, **बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्ट नहीं करती** उस स्थिति को योगी **'परमगति'** कहते हैं।

उस इन्द्रियों की स्थिर धारण को ही **'योग'** कहते हैं; क्योंकि उस समय साधक प्रमादरहित हो जाता है। इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही मनस्तत्त्व पर विजय है। आचार्य गौड़पाद इस **मनस्तत्त्व पर विजय** को ही यथार्थ मानते हैं क्योंकि महर्षि पतञ्जलि ने भी ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' कह जिन चित्त की वृत्तियों के निरोध की बात कह रहे हैं वह मन का ही तो निरोध है।

योग की समस्त साधना-पद्धतियों में 'राजयोग' ही सर्वोपरि है और गौड़पादाचार्य में इसी पद्धति को स्वीकार करके साधना करने का निर्देश दे कर मानो यह कहा हो कि—

'राजयोगं बिना पृथ्वी राजयोगं विना निशा।
राजयोगं विना मुद्रा विचित्राऽपि न शोभते ॥'
'केवलं **राजयोगाय** हठविद्योपदिश्यते ॥'[२]

---

[१] कठोपनिषद (२।वल्ली ३।११)

[२] हठयोग प्रदीपिका (१।२)

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—**'मनस्तत्त्वं जित्वा'** अर्थात् 'मन को जीत कर'। प्रश्न उठता है कि मन को जीता कैसे जाय?

योगी कहते हैं कि यदि मन को जीतना है तो—

'निरालम्बमनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।'

(१) स बाह्याभ्यन्तरे व्योम्नि घटवत्तिष्ठति ध्रुवम्॥[१]

(२) 'बाह्यचिन्ता न कर्तव्या तथैवान्तर चिन्तनम्।
सर्वचिन्तापरित्यज्य न किंचिदपि चिन्तयेत्॥[२]

(३) 'कर्पूरमनलेय द्वत् सैन्धवं सलिले यथा।
तथा सन्धीयमानं च मनस्तत्त्वे विलीयते॥[३]

(४) 'मनोदृश्यमिदं सर्वं यत्किंत्सचराचरम्।
मनसो ह्युन्मनीभावाद् द्वैतं नैवोपलभ्यते॥'[४]

(५) 'शक्तिमध्ये मनः कृत्वा शक्तिं मानसमध्यगाम्।
मनसा मन आलोक्य धारयेत्परमं पदम्॥[५]

दूसरी विधि भी है—

'एवमभ्यसमानस्य वायुमार्गे दिवानिशम्।
अभ्यासाजनीर्यते **वायुर्मनस्तत्रैव** लीयते॥' (४।५२)

आचार्य गौड़पाद ने यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि सभी योगाङ्गों का त्याग करके सीधे-सीधे मन की साधना पर ही बल क्यों दिया?

कारण स्पष्ट है—

(१) मन के स्थिर हो जाने पर वायु स्थिर हो जाती है।
(२) वायु के स्थिर हो जाने पर बिन्दु स्थिर हो जाता है।
(३) बिन्दु के स्थिर हो जाने से बल में वृद्धि होती है।
(४) शक्ति-वृद्धि से शरीर स्थिर हो जाता है।

'मनः स्थैर्य स्थिरो वायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवेत्।
बिन्दुस्थैर्यात्सदा सत्वं पिण्डस्थैर्यं प्रजायते॥'

---

१. हठयोग प्रदीपिका (उप० ४।५०)
२. हठयोग प्रदीपिका (४।५७)
३. हठयोग प्रदीपिका (उप० ४।५९)
४. हठयोग प्रदीपिका (४।६१)
५. तत्रैव (५४)

(१) इन्द्रियों का स्वामी मन है।
(२) मन का स्वामी प्राण है।
(३) प्राण का स्वामी लय है।
(४) लय का स्वामी नाद है।

'इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः स लयो नादमाश्रितः॥'

चित्त या मन के दो कारण हैं—(१) 'वासना' (२) 'समीर'।

उनमें से एक के भी नष्ट हो जाने पर दूसरा स्वतः नष्ट हो जाता है—

'हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिस्तौ द्वावपि विनश्यतः॥'[१]
'द्वे बीजेराम चित्तस्य प्राणस्पन्दनवासने।
एकस्मिंश्च तयोर्नष्टे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः॥'[२]

[२] **'अगोचरी मुद्रा'** की साधना—

'नयनमथनासाग्रघटितं' अर्थात् दृष्टि को नासाग्र भाग पर स्थिर करना चाहिए—

'तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगात्मविशुद्धये।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य **नासिकाग्रं** स्वं दिश्चानवलोकयन्।
प्रशान्तात्मा विगभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयमम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥'[३]

[३] 'पुनर्व्यावृत्ताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम्।'

(अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी करके जब तुझ परादेवी को देखता है।)

तभी भगवती बाहर एवं भीतर दोनों दिशाओं में स्फुरित होती हैं।

'तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्तर्भगवती॥'

[४] **'मनोमार्गं जित्वा'** (मन पर विजय करके)

[५] नाड़ी समूहों में वायु का निरोध करके या नाड़ी-समूह को वायु से युक्त करके अर्थात् प्राण साधना करके—**''प्राणायाम-साधना''** करके॥

---

१. हठयोग प्रदीपिका
२. योगवसिष्ठ
३. श्रीमद्भगवद्गीता (६।५-६)

'मरुत् इह नाड़ी-गण जुषो ।'

[६] **'सूर्य-चन्द्र योग'—'निरुध्यार्कं सेन्दुं'**
(चन्द्रमा एवं सूर्य को निरुद्ध करके)

[७] **'अग्नि को प्रज्वलित करके'**—योगाग्नि जलाकर 'दहनमपि संज्वाल्य शिखया''।

[८] 'सुषुम्णां संयोज्य' अर्थात् सुषुम्ना को जोड़कर।

* नाड़ी-योग की साधना *

'सुषुम्ना'—'सुषुम्ना शून्यपदवीब्रह्मरंध्रं महापथः।
श्मशानं शाम्भवीमध्यमार्गश्चेत्येक वाचकाः॥

[९] **ग्रंथि-भेदन**—'श्लथयति च षडग्रंथिं।''

(क) ब्रह्मग्रंथि—**'मूलाधारै**कनिलया **ब्रह्मग्रंथि** विभेदनी।'
(ख) विष्णुग्रंथि—**'मणि**पूरान्तरुदिता **विष्णुग्रंथि** विभेदनी।'
(ग) रुद्र ग्रंथि—**'आज्ञाचक्रान्त**रालस्था **रुद्रग्रंथि** विभेदनी।'

—ललिता सहस्त्रनाम

[१०] **'षडग्रंथि'**—६ ग्रंथियों को।

ग्रंथियाँ तो मात्र तीन हैं। ६ तो चक्र है अतः ६ ग्रंथियों का अर्थ है ६ चक्र = 'षट्चक्र''॥

[११] **'शशिनं तव आज्ञा चक्रस्थं विलयति''**

अर्थात् आज्ञाचक्र में स्थित चन्द्रमा में विलीन कर दें।

* ''लययोग'' की साधना *

[१२] 'यदा तौ चन्द्रार्कौ निज सदन संरोधनवशात्' अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य अपने सदन में अच्छी तरह से निरुद्ध होने पर।

* सूर्यचन्द्र निरोध योग *

[१३] **'अमृत-स्त्राव का अपहरण'** कुण्डलिनी चन्द्रामृत को पी जाती है अतः उसके द्वारा चन्द्रामृत के पान को रोकना साधक का कर्तव्य है।

[१४] **'कुण्डलिनी योग'**—

'प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं।'
'सुधाधारा सारैः स्नापयसि तनुं बैन्दवकले॥'

—(सुभगोदय स्तुति ४)

[१५] **अमृत-साधन**—भुजगी अमृत पान न कर पाने से अशक्त, भूखी एवं प्यासी होकर क्रुद्धावस्था में बैन्दवस्थान में जाकर चन्द्रमा को डसती है जिससे कि अमृतस्त्राव होती है। इस अमृतधारा से सारा शरीर परिप्लावित हो उठता है।

[१६] **कुण्डलिनी** के तीन स्वरूप हैं।

(क) **'कुमारी** यन्मन्द्रं ध्वनति।
(ख) 'च ततो **योषिद्** परा।
(ग) ततः **पातिव्रत्यं** भजति दहराकाश कमले॥'[1]

[१७] **षट्चक्र-वेधन**—

'भवेन्मूला धारात् प्रभृतितव षट्चक्र सदनम्।' (८)

(१) 'त्रिकोण'—मूलाधार है।
(२) 'अष्टार'—स्वाधिष्ठान है।
(३) 'अन्तर्दशार'—मणिपूरक है।
(४) 'बाह्यदशार'—अनाहत चक्र है।
(५) 'चतुर्दशार'—विशुद्ध चक्र है।
(६) 'शिवचक्र' 'बैन्दव स्थान'—आज्ञा चक्र है।

'त्रिकोणं चाधार त्रिपुरतने तेऽष्टारमनधे।
भवेत्स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम्।
दशारं ते संवित्कमलमथ मन्वश्रकमुमे।
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दव गृहम्।'

(१) 'त्रिकोण'—तीन वृत्त हैं।
(२) 'अष्टार' (इमकोण)—अष्टदलपद्म है।
(३) 'षोडशदलपद्म'—दशार युग्म है।
(४) भूपुर—चतुर्दशार है।
(५) ४ शिव चक्र—५ शक्ति योनियाँ स्थित हैं।

त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयमिमकोणे वसुदलं,
कलाश्रमिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम्।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्ति कमुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः॥[2]

---

१. सुभगोदयस्तुति (६)
२. सुभगोदयस्तुति (११)

[१८] 'बिन्दु' (षटचक्र)—

(१) 'बिन्दु' के साथ कला का ऐक्य।

(२) 'बिन्दु' के साथ नाद का ऐक्य।

(३) 'बिन्दु' के साथ कला एवं नाद का ऐक्य।

(४) 'बिन्दु' के साथ परशिव का ऐक्य।

(५) 'बिन्दु' के साथ कला, नाद एवं परशिव का ऐक्य।[1]

[१९] **'त्रिकोण'** त्रिकोणों से निर्मित **'अष्टार'** त्रिकोणो से ही **'दशार'** फिर **'बहिर्दशार'** फिर **'चतुर्दशार'** फिर **अष्टदलपद्म' 'षोडशदलपद्म' 'तीनवलय'** फिर चतुर्द्वारात्मक त्रिरेखांकित प्राकार है।

> 'त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुद्भू-
> द्दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्र समभवत्।
> ततोऽभून्नागारं नृपतिदलभस्मातत्रिवलय,
> चतुर्धाः प्राकारत्रितयमिदमेवाम्ब शरणाम्॥[2]

[२०] * यंत्र और मन्त्र में ऐकात्म्य *

यहाँ गौड़पादाचार्य ने **मंत्र विद्या को भी साधना** में अत्यधिक महत्व दिया है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी श्रीविद्या की साधना में श्रीविद्या (मन्त्र) ही प्रधान साधना है। 'मंत्र' और 'यन्त्र' में भी तादात्म्य है।

[२१] * मंत्र साधना एवं 'मंत्र' का स्वरूप *

(१)	(२)	(३)	(४)
'बैन्दवगृह'	'सूर्यखण्ड'	'चन्द्रखण्ड'	'अग्निखण्ड'
(क्ष)	(क आदिवर्ण)	स्वर	(आदि वर्ण)

चन्द्रमा की नित्य कला **'पञ्चदशाक्षरी विद्या'** (मंत्र) का १६हवाँ अक्षर है। ('षोडशी' = महात्रिपुर सुन्दरी। पंचदशी का १६हवाँ वर्ण महात्रिपुरसुन्दरी (षोडशी) ही हैं अतः मंत्र के वर्ण एवं महात्रिपुरसुन्दरी दोनों अभिन्न हैं।

* भगवती का तीन खण्डों वाला मंत्र **'सरघा'** में लयीभूत होता है और जो शेष भाग है उसी से समस्त चन्द्रकलायें प्रकट होती हैं।

---

[1] सुभगोदयस्तुति (१२)

[2] सुभगोदयस्तुति (१७)

> 'त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरघायां निविशते।
> श्रियो देव्याः शेषो यत इह समस्ताः शशिकलाः॥'[1]

[१४] **'नाड़ीयोग' और अमृत-प्रवाह**—

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों में **सूर्य एवं चन्द्रमा** घूमते रहते हैं और जब इस प्रकार घूमते हुए ये मूलाधार चक्र (तमोगुणात्मक चक्र) में आकर मिल जाते हैं तब वह **'अमावस्या तिथि'** बन जाती है।

आज्ञा चक्र स्थित चन्द्र द्वारा प्रतिबिम्बित सूर्य की ज्योति की सुशीतल स्निग्ध किरणें वहाँ **अमृत का निस्राव** करती हैं—

> 'इडायां पिङ्गल्यां चरत इह तौ सूर्य शशिनौ,
> तमस्याधारे तौ यदि तु मिलितौसा तिथिरमा।
> तदाज्ञाचक्रस्थं शिशिरकर बिम्बेरविनिभं,
> दृढव्यालीढं सद्विगलित सुधासार विसरम्॥'[2]

'षोडशी'से भी अमृत-निस्राव होता है—

> 'कलायाः षोडश्याः प्रतिफलितबिम्बेन सहितं
> तदीयैः **पीयूषैः** पुनरधिकमाप्लावित तनुः॥'[3]

'षोडशी कला' स्वंय भगवती महात्रिपुरसुन्दरी है और वे षोडशीस्वरूपा होने के कारण अमृतविग्रहा है। मंत्र का १६हवाँ अक्षर **'षोडशी'** ही है। इसका स्थान सहस्रार के चन्द्रमण्डल में है। इसके प्रकाश से ही **समस्त कलायें, समस्त नित्यायें** एवं **समस्त तिथियाँ** प्रकाशित रहती हैं।

'षोडशीविद्या' १६ अक्षरों से युक्त है। इसके १६ अक्षरों में १६ नित्यायें निवास करती हैं। इसका अन्तिम एकाक्षरी बीज **(श्रीं) ही नित्या** है 'श्रीं' या १६हवीं कला **'पराकला'** कही ज़ाती है। इसी **'श्रीं बीज'** (श्रीविद्या का अन्तिम अक्षर, कलाओं में अन्तिम १६हवीं कला, १६हवीं नित्या भगवती महात्रिपुर सुन्दरी) के कारण ही इस विद्या का नाम **'श्रीविद्या'** है। यह 'श्रीं' (लक्ष्मीबीज = षोडशी) शुद्ध चैतन्य शक्ति तो है ही किन्तु इसके साथ ही साथ यह सहस्रार में समासीन नित्यचन्द्र की १६हवीं कला भी है जो कि कण्ठ में विद्यमान 'विशुद्धचक्र' के १६ दलों पर लगातार प्रतिबिम्बित हुआ करती है।

[१५] **चन्द्रमा से अमृत-स्राव**—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि महाव्योम में

---

[1] सुभगोदयस्तुति (२३)

[2] सुभगोदयस्तुति (३३)

[3] सुभगोदयस्तुति (३२)

विद्यमान सोम अपनी पीयूष-वर्षा के माध्यम से समस्त शरीर को अमृतायित करता रहता है। यह अमृत नाड़ी-समूह के द्वारा शुष्क भी होता रहता है। यदि योगी आज्ञाचक्रस्थ विद्युदामा को स्थिर करके उसे अक्षर-संयुक्त कर लेता है (क्षर नहीं होने देता) तो वह भगवती विद्युल्लेखारूपिणी हो जाती है। और इस स्थिति में **'ब्रह्मग्रंथि'** का वेध हो जाता है—

> 'महाव्योमस्थेन्दोर**मृतलहरी** प्लावितततनुः
> प्रशुष्य द्वै **नाड़ीं प्रकरमनिशं** प्लावयति तत्।
> यदाज्ञायां विद्युन्नियुतामाक्षरमयी,
> स्थिता विद्युल्लेखा भगवति विधिग्रंथिमभिनत्॥'[1]

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

[१६] **'सूर्यचन्द्र योग'** एवं **'कुण्डलिनी योग'**—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि जब **चन्द्रमा एवं सूर्य** अपने सदन में अच्छी तरह से निरुद्ध होने के वशीभूत अमृत-स्राव का अपहरण करने में अशक्त हो जाते हैं तब वह भुजगी जागकर एवं भूख से क्रुद्ध होकर बैन्दवस्थान में पहुँचकर चन्द्रमा को डसती है और यह बैन्दवकलास्वरूपा भगवती अमृत प्रवाहों से समस्त शरीर को स्नान करा देती है।

> 'यदा तौ चन्द्रार्कौ निजसदन संरोधनवशा,
> दशक्तौ पीयूषस्त्रवण हरणे सा च भुजगी।
> प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं,
> सुधाधारा सारैः स्नापयसि तनुं बैन्दवकले॥'[2]

[१८] **यंत्र और वर्ण माला**—'यन्त्र' के साथ स्वर समवेत हैं। षोडशदलपद्म (यंत्र) में समस्त 'स्वर' निहित हैं। **'ककार'** आदि व्यञ्जन वृत्तों में एवं 'य' आदि **'चतुष्कोण'** में लीन हो जाते हैं—

> 'स्वरास्ते लीनास्ते भगवति कलाश्रे च सकलाः।
> ककाराद्या वृत्ते तदनु चतुरश्रे च यमुखाः॥'[3]

(१) 'षोडशदलपद्म' में १६ स्वर आ जाते हैं।

(२) वृत्तों में समस्त व्यञ्जन स्थित हैं।

(३) चतुष्कोण में य वर्ग के सारे अक्षर स्थित हैं।

---

१. सुभगोदयस्तुति (३४)

२. सुभगोदयस्तुति (४)

३. सुभगोदयस्तुति (२४)

शिवचक्र	**मातृकायें**
(१) भूपुर	= य = य र ल व
(२) वृत्तत्रय	= क आदि सारे व्यञ्जन
(३) षोडशदलपद्म	= १६ स्वर
(४) अष्टदल पद्म	= अष्टवर्ग
(५) 'ल'	= पृथ्वी का द्योतक—भूपुर का वाचक है।
(६) 'ह'	= आकाश का द्योतक—वृत्त (शून्य) का वाचक है।

सारे 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' के सारे वर्ण—

(१) सारी चन्द्रकलायें (२) सारी तिथियाँ (३) सारी नित्यायें (४) सारा मंत्र (५) भगवती 'महात्रिपुरसुन्दरी' के श्रीबीज (श्रीं) या १६हवें हअक्षर या **'षोडशी'** के प्रतिबिम्ब हैं। अन्त में सभी का लय 'सहस्रार' में एवं अन्त में 'श्रीबीज' में हो जाता है।

'क्षकार' भगवती का स्वरूप है।

[१८] **षट्चक्र और उनका विवरण**—आचार्य गौड़पाद ने—

(१) **श्लोक क्र० २८ में**—'मणिपूर' तथा 'अनाहत चक्र' का वर्णन किया है।

(२) **श्लोक क्र० २९ में**—'संवित्कमल' एवं 'विशुद्धाख्य चक्र' में का वर्णन किया गया है।

(३) **श्लोक क्र० ३० में**—'विशुद्धाख्य चक्र' एवं 'सहस्रचक्र' का वर्ण किया गया है।

(४) **श्लोक क्र० ३१ में**—'संवित् सरजिस' वर्णित हैं। 'स्वाधिष्ठा' 'आज्ञाचक्र' 'ग्रंथित्रय' वर्णित है।

(५) **श्लोक क्र० ३५ में**—'समयलोक' एवं 'सहस्रार' वर्णित है।

(६) **श्लोक क्र० ४२ में**—'मूलाधार चक्र' वर्णित है।

(७) **श्लोक क्र० ४३ में**—'स्वाधिष्ठान चक्र' वर्णित है।

(८) **श्लोक क्र० ४५ में**—'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' 'मणिपूर चक्र' वर्णित हैं।

---

१. सुभगोदयस्तुति

२. सुभगोदयस्तुति (२०)

(९) **श्लोक क्र० ४६ में**—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, सहस्रार अनाहत, विशुद्ध चक्र आदि का वर्णन हैं।

आचार्य गौड़पाद ने **'षडब्जारण्ये त्वासमयिन इमे पञ्चकसमा'** कहकर भगवती को षट्‌चक्रशरीरिणी के रूप में स्वीकार किया है—

'तडिल्लेखा नित्याभगवति **तवाधार सदनात्** ।'

आचार्य **'आज्ञाचक्र'** में मन को जीतने का भी निर्देश देते हैं और कहते हैं—

'मनोजित्वा चाज्ञा सरसिज इह प्रादुरभवत् ॥'(श्लोक क्र० ३८)

'पञ्चदशी' के वर्णों के अतिरिक्त अन्य वर्णों में भी वशिनी आदि ब्रह्माण्डीय चित शक्तियों, नित्याओं, चन्द्रकलाओं, तिथियों, षोडशी की किरणों एवं भगवती महात्रिपुर सुन्दरी एवं वर्ण विग्रहा कुण्डलिनी की समवेतता को आचार्य गौड़पाद ने भी स्वीकार किया है—

'वशिन्याद्या अष्टावकचटतपाद्याः प्रकृतयः ।
स्ववर्गस्थाः स्वस्वायुध फलित हस्ताः स्वविषयाः ॥'

(१) 'वशिनी' = अ वर्ग की अधिष्ठात्री भी देवी हैं।

(२) 'कामेश्वरी' = क वर्ग की अधिष्ठात्री देवी हैं।

(३) 'मेदिनी' च वर्ग की **'विमला'** ट वर्ग की, **'अरुणा'** त वर्ग की, **'जयिनी'** प वर्गकी, **'सर्वेशी'** 'य' वर्ग की एवं **'कौलनी'** श वर्ग की अधिष्ठात्री देवी हैं।

'भारतीय योगशास्त्र' (१) 'परा' (२) 'पश्यन्ती' (३) 'मध्यमा' एवं (४) 'वैखरी' को भगवती कुण्डलिनी शक्ति (महात्रिपुरसुन्दरी) की ही अभिव्यक्ति मानता है।

इसीलिए गौड़पाद कहते हैं कि हे भगवती ! ये नित्यायें, ये सारे वर्ण एवं उनके कारणभूत ये सारे नाद (चरण) के साथ 'महामेरु' में स्थित हैं।

(१) नित्याओं का, वर्ण माला एवं नाद का ऐक्य।

(२) नित्याओं का, वर्णमाला का, नाद एवं मंत्र का ऐक्य।

(३) वशिनी आदि वाणी की देवियों और षट्‌चक्रों का ऐक्य यथा क्रम—

'श्री यंत्र' का 'मेरु प्रस्तार' 'कैलास प्रस्तार' एवं 'भू प्रस्तार' है।

आचार्य गौड़पाद ने भगवती का अमृत से बार-बार सम्बन्ध बताया है कारण यह है कि वह चन्द्र कला है—'षोडशी' है और चन्द्रमा अमृतात्मक है—'अमृतभागश्चन्द्रमा।। (शाण्डिल्योपनिषद)

वह सुषुप्तावस्था में तो **'मूलाधार'** में किन्तु जागृतावस्था में चन्द्रमा को डस कर **'बैन्दवस्थान'** में अमृतधाराओं से शरीर को स्नान कराती है—

'सुधाधारासारैः स्नापयसि तनुं बैन्दवं कले ॥'

[१८] भगवती की ध्यान-साधना

भगवती के विविध स्वरूपों का ध्यान—

(१) भवानी के रूप में (श्लोक १)

(२) बहिरन्तरव्याप्त परानन्दाकारा, पर, शिवपरा, अपरा भगवती का ध्या (श्लोक २)

(३) सहस्रार में चन्द्रमा को डसने वाली कुण्डलिनी के रूप में भगवती का ध्यान। (श्लोक ४)

(४) शरीर को अमृत से स्नान कराने वाली भगवती कुण्डलिनी का ध्यान। (श्लोक ४)

(५) बैन्दवकला के रूप में भगवती का ध्यान। (श्लोक ४)

(६) ५ तत्त्वों, तन्मात्राओं, १० इन्द्रियों मन, माया, विद्या महेश एवं शिव सभी से अतीत निष्फल एवं तत्त्वातीत रूप में तथा चन्द्रमा की परकला के रूप में भगवती का ध्यान।

'ततो माया विद्या तदनु च महेशः शिवरतः।
परं तत्त्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः पर कला ॥'

—सुभगोदय स्तुति (श्लोक ५)

(७) कुमारी, योषिद्, पतिव्रता के रूप में भगवती का ध्यान। उसके शिवसामरस्य का ध्यान। (सुभगोदय स्तुति श्लोक ६)

(८) चतुष्कोण, बैन्दवस्थान, सुधासिन्धु एवं मणिगृह में रहने वाली देवी के रूप में भगवती का ध्यान। (सुभगोदयस्तुति श्लोक ७)

सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो।
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे ॥ (सु० स्तुति ७)
बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पंचयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीप श्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे ॥

सुधासिन्धु मध्ये मणिद्वीपे रम्ये
सुकल्पद्रुमाकल्पकादम्ब सन्त्रे।
स्फुरत्स्वर्ण सिंहासने रत्न पीठे
भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्त्रपूर्णाम्।

—वामकेश्वर तंत्र

(९) मणिपूर चक्र में विद्युन्निमा, **चतुर्भुजी** (इक्षुधनुः। पुष्पबाण। अंकुश। पाश को धारण करने वाली) एवं रविबिम्ब की आकृति एवं प्रकाश से युक्त भगवती का ध्यान 'तडिल्लेखा .... रुचि।।' (सुभगोदयस्तुति १४)

(१०) षोढ़ारूप वाली, मणिपूर में इन्द्रधनुष की द्युतिवाली, एवं **१० प्रकार के हाथों** वाली भगवती के प्रत्यक्ष शरीर की उपासना 'भवानि प्रत्यक्षं तववपु रूपास्ते नहि परम् ।।' (सुभगोदय स्तुति १५)

(११) हाथों में नागपाश, अंकुश, पौण्ड्रधनुष, पुष्पबाण, जपमाला, श्रेष्ठशुक, अभय मुद्रा धारण किए हुए वीणा-वादन करती हुई भगवती का ध्यान (सुभगोदयस्तुति १६)

(१२) नवचक्रों से बने घर में रहने वाली देवी के रूप में भगवती का ध्यान। (सुभगोदयस्तुति १७)

(१३) सादारण्य तत्त्व में लयीभूत एवं चन्द्रमा की नित्यकला के रूप में स्थित भगवती का ध्यान। (सुभगोदयस्तुति २०)

(१४) षड्पद्मवासिनी, त्रिखण्डवासिनी, चन्द्रकलाओं की उद्भाविका, अमास्वरूपा श्रीदेवी के रूप में भगवती का ध्यान। (सुभगोदयस्तुति २३)

(१५) शिव रूप पर्यङ्क पर सोई हुई सादारण्य कला के रूप में चार प्रकार के ऐक्य वाली देवी के रूप में भगवती का ध्यान। (सुभगोदयस्तुति २४)

(१६) चार चक्र रूपी शांभव शरीर धारण करने वाली, शिव के शरीर के रूप में स्थित ('शरीरं त्वं शंभोः—शंकराचार्य) 'शांभववपु' (सुभगोदयस्तुति २५)

(१७) अक्षर, तिथि, नित्या एवं कलाओं के लयस्थज्ञन, अमावस्यास्वरूपा, श्रीबीजस्वरूपा, (षोडशाषररूपिणी) षोडशीकलारूपा शक्ति के स्वरूप में स्थित भगवती का सरघा (सहस्त्रार) में ध्यान। (सुभगोदयस्तुति २६)

(१८) 'हल' के स्वरूप में स्थित बैन्दवगृह वाली क्षकारस्वरूप वाली श्रीबीजस्वरूपिणी, मणिपूर में मणिजटित प्रभा से युक्त स्वरूप में स्थितदेवी का ध्यान ('प्रभाभिर्व्यालीढं) भवति मणिपूरं सरसिजम् ।' (सुभगोदयस्तुति २७)

'भवेतपूजाकाले मणिरवचितभूषामिरभितः ।
प्रभाभिर्व्यालीढं भवति मणिपूरं सरसिजम् ।।'

(१९) मणिपूर में मणिधनु के स्वरूप में स्थिता देवी का ध्यान "पे तुत्वद्रूपं मणिधनुरितीदं समयिनः।। (सुभगोदयस्तुति २८)

(२०) 'संवित्कमल' में ध्यान एवं पूजा—भवेत्संवितपूजा भवति कमलेऽस्मिन्**समयिनाम्** ।। (सुभगोदयस्तुति २९)

(२१) विशुद्ध चक्र में भगवती का चन्द्र कलाओं के रूप में ध्यान एवं पूजा। (सुभगोदयस्तुति ३०)

[१९] * भगवती की पूजा के चक्र-स्थान *

(१) मणिपूर चक्र—

भवेत पूजा काले मणिरवचित भूषाभिरभितः ।
प्रभाभिर्व्या लीढं भवति **मणिपूरं** सरसिजम् ।।

—सुभगोदयस्तुति २७

(२) अनाहत चक्र—

(१) भवेत् **संवित् पूजा**भवतिकमलेऽस्मिन्समयिनाम् ।

—सुभगोदयस्तुति

(३) विशुद्धाख्य चक्र

(१) विशुद्धाख्ये चक्रे वियदुदितनाहुः **समयिनः** । (३०)

(४) चतुष्कोण सुधासिन्धु—

चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ।
सुधासिन्धौ तस्मिनसुरमणिगृहे सूर्य शशिनो ।
रगग्ने रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे ।। (७)

(२२) ज्योत्स्नामय समयलोक में जाकर एवं शिव तत्त्व वसे मिलकर सादाख्यतत्त्व को जीतने वाली 'परा' नाम वाली देवी के रूप में भगवती का ध्यान ('पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता'। (सुभगोदयस्तुति ३५)

(२३) परमशिवपद तत्त्व में मिलकर ३६ प्रकार वाली शिवशक्ति शरीर रूपा देवी के रूप में भगवती का ध्यान।

'वदन्त्येकेसन्तः परशिव पदे तत्त्वामिलिते ।
ततस्त्वं षट्त्रिंशी भवसि शिवयो र्मेलनवनुः ।।' (३६)

—सुभगोदयस्तुति

(२४) आज्ञा चक्र में मन को जीतकर, षट्चक्रारण्य में ६ प्रकार के ऐक्य सहित चितिशक्ति के रूप में स्थित एवं तडिल्लेखा नित्या के रूप में भगवती का ध्यान। (३८)

(२५) कुण्डलिनी के जागृत होने पर प्रत्येक चक्र में शिव एवं शिवा में ५ प्रकार के साम्य (अधिष्ठान, अनुष्ठान, अवस्थान, रूप एवं नामसाम्य) का ध्यान या साक्षात्कार करना। (सुभगोदयस्तुति ३८)

(२६) सुरमणिगृह में, सूर्य चन्द्र से अगम्य स्थान में विहार करने वाली देवी के रूप में भगवती का ध्यान।। (सुभगोदय स्तुति)

(२७) कुण्डलिनी रूप का ध्यान—

(१) गौड़पादाचार्य कहते हैं—

'कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिद् परा।
कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकाल भुजगी।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाश कमले।
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्कार रसिका।।'

(२) **शङ्कराचार्य कहते हैं—**

(क) मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।९।।
(ख) अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्ट वलयं।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।

—सौन्दर्यलहरी (१०)

[२०] * श्रीविद्या-साधना में ऐक्य-विधान *

(श्रीविद्या-साधना में अद्वैतवाद)

[१]— 'श्रीचक्र' और 'षट्चक्र' में ऐक्य

आचार्य गौड़पाद ने शाक्ताद्वैतवाद की दृष्टि के अनुसार ही 'श्रीचक्र' एवं षट्चक्रों में ऐक्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

(१) 'श्रीचक्र' के मध्य का **'त्रिकोण'—'मूलाधार चक्र' है।**
(२) 'श्रीचक्र' का **'अष्टार'—'स्वाधिष्ठान चक्र'** है।
(३) 'श्रीचक्र का **'अन्तर्दशार'—'मणिपूरक चक्र'** है।
(४) श्रीचक्र का **'बाह्यदशार'—'अनाहत चक्र'** है।
(५) श्रीचक्र का **'चतुर्दशार'—'विशुद्ध चक्र'** है।

(६) श्री चक्र का **'शिवचक्र'**(बैन्दवस्थान) **'आज्ञाचक्र'** है।

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

'त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने तेष्टारमनघे।
भवेत्स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम्।
दशारं ते संवित्कमलमथ मन्वश्रकमुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिवइति ततो बैन्दव गृहम्।।'[1]

श्रीचक्र **'त्रिकोण'** त्रिकोणों से निर्मित **'अष्टार'** त्रिकोणों से ही निर्मित 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' 'चतुर्दशार' और फिर 'अष्टदलपद्म' **'षोडशदलपद्म'**, **'वलयत्रय'** एवं चतुर्द्वारात्मक त्रिरेखाङ्कित प्राकार वाली पिण्डब्रह्मण्डात्मक, शिव-शक्त्यात्मक, सर्वमन्त्रात्मक, सर्वदेवात्मक, सर्वकलात्मक, सर्वनित्यात्मक, सर्वतिथ्यात्मक एवं सर्ववर्णात्मक एक अद्भुत रचना है तो कि (विश्व की दृष्टि से) विश्व का एक रेखात्मक चित्र या न्यादर्श है।

आचार्य गौड़पाद इसकी रचना को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

'त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुद्भू-
द्दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्र समभवत्।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात् त्रिवलय
चतुर्धा प्राकार त्रितयमिदमेवाम्ब शरणम्।।'[2]

(२) * शक्ति चक्रों एवं शिव चक्रों में ऐक्य *

(१) जो **'त्रिकोण'** है वह **तीनवृत्त** है।
(२) इमकोण (अष्टार) ही **'अष्टदलपद्म'** है।
(३) **'षोडशदलपद्म'** दशारयुग्म है।
(४) चार **'शिवचक्रों'** में ५ शक्तियाँ योनियाँ स्थित हैं।

(५) शक्ति एवं शिव के प्रधान-प्रधान ऐक्य से यह ऐक्य ६ प्रकार का हो जाता है।

'त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयमिभकोणे वसुदलं,
कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम्।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्तिकमुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्ति शिवयोः।।'[3]

---

[1] सुभगोदयस्तुति (१०)
[2] सुभगोदयस्तुति (१७)
[3] सुभगोदयस्तुति (११)

(३) ऐक्य के अन्य रूप

आचार्य गौड़पाद ने (११रहवें श्लोक में) ६ प्रकार के ऐक्यों की विवेचना की है।

*** षोढा ऐक्य (श्लोक क्र० १२) ***

(१) कला का बिन्दु के साथ ऐक्य
इन दोनों का नाद के विभव से ऐक्य

(२) नाद का कला एवं बिन्दु से ऐक्य
(३) कला का नाद तथा बिन्दु से ऐक्य

(४) कला, बिन्दु तथा नाद का परशिव से ऐक्य
(५) नाद, कला एवं बिन्दु का परशिव से ऐक्य

कला, नाद तथा बिन्दुका परशिव से ऐक्य।

> 'कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे,
> तयोर्नादेनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः।
> तयो बिन्द्वार्दक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे,
> तदेवं **षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम्** ॥'[1]

(४) * शक्ति चक्र एवं शिवचक्रों का ऐक्य *

(१) **'त्रिकोण'** = 'तीन वृत्तों का प्रतीक त्रिकोण है।
(२) **'अष्टार'** = 'अष्टदलपद्म' का प्रतीक है 'अष्टार'।
(३) अन्तर्दशार-बहिर्दशार = षोडशदल पद्म
(४) चतुर्दशार = भूपुर

(५) * चतुर्धा ऐक्य * (श्लोक क्र० १३)

'कला' 'नाद' एवं 'बिन्दु' क्रमशः—'वर्ण' 'चरण' एवं छः कमल (षट्चक्र) हैं और इनका सम्मिलन या ऐक्य ही समयाचार वालों का छः प्रकार का (षोढ) है और वही व समयाचार के मतावलम्बियों की सपर्या (पूजा, पूजा-पद्धति) है।

इसी दृष्टि की पुष्टि करते हुए आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

---

१. सुभगोदयस्तुति (१२)

> 'कलानादोबिनदुः क्रमशः इह वर्णश्च चरणं,
> षडब्जं चाधार प्रभृति कममीषां च मिलनम्।
> तदेवं षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनां,
> चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम्॥'

(**'वर्ण'** = (१) 'पञ्चदशीविद्या' के घटक अक्षर यथा—क, ए, ई, ल, ह, र, स, नाद, बिन्दु।। या (२) वर्णमाला के अक्षर।

'चरण' = वाक्तत्त्व = परा। पश्यन्ती। मध्यमा। वैखरी।

'वाक्' नाद है। **'चरण'** = पाद। (श्रीविद्या या गायत्री के चार चरण। श्रीविद्या के चार 'चरण' = वाग्भव कूट 'कामराजकूट' 'शक्तिकूट' 'तुर्यकूट'।

'श्रीविद्या' का तुर्यकूट एकाक्षरी बीज है। इसकी अन्तिम अवस्था वह तुर्यातीतावस्था है जहाँ वर्णोच्चारण संभाव्य ही नहीं है। वहाँ मन्त्र 'महानाद' में लयीभूत हो जाता है।

'बिन्दु' = षट्चक्र। इन सभी का ऐक्य दो प्रकार है—(१) 'चतुर्धाऐक्य' (२) 'षोढाऐक्य'।

(क) * चतुर्धा ऐक्य *

(१) आधार आदि ६ चक्रों का श्रीचक्र के साथ ऐक्य
(२) **'बिन्दुस्थान' का 'बैन्दवस्थान'** (सहस्रार) **से ऐक्य *** (शिव-शक्ति का ऐक्य) 'श्रीचक्र' में बिन्दुस्थान भगवती का स्थान है।)

(३) मलत्रय एवं आवरणों से रहित अमल जीव का शिव के साथ ऐक्य (साधक का शिव या शक्ति से ऐक्य)
(४) श्रीयंत्र एवं मन्त्र का ऐक्य

[ख] चतुर्धा ऐक्य का द्वितीय स्वरूप

(१) मातृका एवं मन्त्र का ऐक्य
(२) मन्त्र एवं मातृका का ऐक्य
(३) चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य
(४) नित्याओं का तिथियों से ऐक्य

चतुर्धा ऐक्य = मन्त्र = देवता। यन्त्र = देवता।

षट्चक्र = देवता। कुण्डलिनी शक्ति = देवता

समस्त वर्णमाला का 'अकार' के साथ ऐक्य (श्लोक २१)

(१) 'अ'	(२) 'क्ष'
'अ' के साथ समस्त स्वरों का ऐक्य	१. 'कला' के प्रत्याहार से समस्त व्यञ्जन गणों का ऐक्य २. तीनों खण्डों के प्रत्याहार से 'क' से 'ष' तक के समस्त वर्णों का ऐक्य 'क्ष' में हो जाता है।

(६) षोढ़ा ऐक्य की एक विवेचना

* (क) षोढ़ा ऐक्य का प्रथम स्वरूप *

(१) 'शिव' एवं 'शक्ति' का 'मूलाधार', 'स्वाधिष्ठान', 'मणिपूर', 'अनाहत', 'विशुद्धि' एवं 'आज्ञाचक्र' से ऐक्य है।

(२) चूँकि छ चक्रों के साथ शिव-शक्ति का ऐक्य है अत: पृथक-पृथक (शिव एवं शक्ति का ऐक्य लेने पर तो १२ प्रकार के ऐक्य हो जाएँगे किन्तु शास्त्रकारों ने द्वादशैक्य न मानकर षोढ़ा ऐक्य ही स्वीकार किया है; क्योंकि 'शिव' एवं 'शक्ति' पृथक-पृथक तो हैं नहीं)। इस प्रकार शिव-शक्ति का सम्मिलित रूप से ६ चक्रों से ऐक्य 'षोढ़ा ऐक्य' हो गया।।

(ख) * षोढ़ा ऐक्य का द्वितीय स्वरूप * (११हवाँ श्लोक)

(१) 'कला' का 'बिन्दु' से ऐक्य और इन दोनों का 'नाद' के विभव के साथ ऐक्य।

(२) 'नाद' का 'कला' एवं 'बिन्दु' के साथ 'ऐक्य'।

(३) 'कला' का 'नाद' एवं 'बिन्दु' के साथ 'ऐक्य'।

(४) 'कला' 'बिन्दु' तथा 'नाद' का परमशिव के साथ ऐक्य।

(५) 'नाद' 'कला' एवं 'बिन्दु' का परमशिव के साथ ऐक्य।

(६) 'कला' 'नाद' एवं 'बिन्दु' का परमशिव के साथ ऐक्य।

(ग) * षोढ़ा ऐक्य का तृतीय स्वरूप *

इस ऐक्य का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) मन्त्र का परमशिव के साथ ऐक्य।

(२) यन्त्र का परमशिव के साथ ऐक्य।

(३) देवता का परमशिव के साथ ऐक्य।

(४) साधक का परमशिव के साथ ऐक्य।

(५) गुरु का परमशिव के साथ ऐक्य।

(६) शक्ति का परमशिव के साथ ऐक्य।

(घ) * षोढ़ा ऐक्य का चतुर्थ स्वरूप *

इस ऐक्य का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) श्रीविद्या का षट्चक्रों के साथ ऐक्य।

(२) षट्चक्रों का शक्ति के साथ ऐक्य।

(३) षट्चक्रों का श्रीयंत्र के साथ ऐक्य।

(४) श्रीविद्या एवं श्रीचक्र का शक्ति के साथ ऐक्य।

(५) श्रीविद्या एवं श्रीचक्र का ६ चक्रों के साथ ऐक्य।

(६) शक्ति का परमशिव के साथ ऐक्य।

(७) मंत्र एवं मातृकाओं का ऐक्य।

(८) मातृका तथा श्रीचक्र का ऐक्य।

(९) मन्त्र एवं नित्याओं का पारस्परिक ऐक्य।

(१०) मंत्र एवं चक्रों का ऐक्य।

(११) नित्याओं का चक्रों के साथ ऐक्य।

> 'ककाराभ्यां स्वरगणमवष्टभ्य निखिलं,
> कलाप्रत्याहारात् सकलमभवद्व्यञ्जन गणः।
> त्रिखण्डे स्यात् प्रत्याहरणमिदमन्वक् कषयुगं,
> क्षकारश्चाकारोऽक्षर तनुतया चाक्षरमिति ॥' (२१)

'क्षकार' अक्षरों का शरीर है। अव्यक्तनाद 'अक्षर' (अ + क्षर) है अत: सभी अक्षरों के कारणभूत तत्त्व 'नाद' के कारण सभी वर्णों को 'अक्षर' कहते हैं। 'क्ष' = क + ष ।। क से ष = 'क्ष'।)

[२१] 'पञ्चदशीविद्या' के वर्णों का 'श्रीचक्र' एवं पिण्डस्थ[१] षट्चक्रों के साथ ऐक्य *

(१) **'क'** वर्ण॥ 'क' वर्ण कामदेव एवं शिव दोनों का बोधक है। भगवान शिव **अष्टमूर्ति** हैं। अतः उनका अष्टमूर्तित्व चक्र **'अष्टार'** का द्योतक है। शरीरान्तर्गत **'स्वाधिष्ठान चक्र'** कामदेव का स्थान है अतः 'स्वाधिष्ठान चक्र' ('क' से व्यञ्जित) कामदेव को भी संकेतित करता है।

(२) **'ए'** ए = विष्णु योनि है। 'ए' विष्णुस्वरूप है। 'ए' विष्णु के १० अवतारों का भी द्योतक है। 'ए' (१० का बोधक होने के कारण) श्री चक्र के **'बहिर्दशार'** का लक्षक है तथा शरीर में विष्णु के निवास स्थान हृदय ''अनाहतचक्र' को भी संकेतित करता है।

(३) **'ई'** माया। ई 'ई' वर्ण माया का वाचक है। माया तत्त्व १४ भुवनों की स्वामिनी है अतः यह वर्ण 'ई' **'श्रीचक्र'** के **'चतुर्दशार'** एवं पिण्डस्थ 'विशुद्ध चक्र' का सूचक है।

(४) **'ल'** = ल = शिव। भूमि॥ 'ल' वर्ण शिव एवं भूमि दोनों को संकेतित करता है। चूँकि 'ल' भँमि का अर्थ संकेतित करता है यह 'श्रीचक्र' में स्थित **'भूपुर'** का वाचक है। चूँकि **'ल'** वर्ण शिव का भी बोधक है अतः यह शिव-सदन **'सहस्रार चक्र'** का भी द्योतक है।

(५) **'ह'** आकाश एवं शिव। 'हकार' **आकाश एवं शिव दोनों का बोधक है।** श्रुतियों में **'परमेव्योमन्'** आदि शब्दों के अनुसार परमव्योम (महाकाश) ब्रह्म है या ब्रह्म का स्थान है। अतः **'ह' (व्योम)** शिव का वाचक है।

'ब्रह्म' (परमशिव) रुद्र के रूप में अष्टमूर्त्यात्मक हैं। 'ह' वर्ण (क) 'श्रीयंत्र' में तो **'अष्टदलपद्म'** का सूचक है किन्तु पिण्डस्थ चक्र आज्ञाचक्र का इसलिए बोधक है क्योंकि **'आज्ञाचक्र'** आकाशस्थानीय है। (जब स्वयं विशुद्ध चक्र ही आकाशतत्त्व का स्थान है तो उससे ऊर्ध्ववर्ती होने के कारण 'आज्ञाचक्र' आकाश स्थित क्यों नहीं माना जाएगा।

---

[१] शङ्करानन्दः 'अक्षरों का चक्रों से सम्बंध।''

'र' 'र' = अग्नि। 'र' वर्ण अग्नि बीज है अतः 'अग्नि' का बोधक है। अग्नि के दशकोण हैं। 'श्रीचक्र' में जो 'अन्तर्दशार' है वह इस दशकोणात्मक अग्नि का द्योतक है अतः 'र' = (अग्नि) 'अन्तर्दशार' एवं पिण्डस्थ **'मणिपूर चक्र'** का द्योतक है।

'बिन्दु' 'ह्रीं' में जो बिन्दु है यह चन्द्रमा, शिव, पूर्णत्व, शून्य, आकाश, चतन्य, अमृताकर्षिणी शक्ति, आदि अर्थों का वाचक है।

'बिन्दु' श्री चक्र में बैन्दवस्थान (त्रिवृत्त) को तथा पिण्डस्थ षट्चक्रों में **'सहस्त्रज्ञर'** को द्योतित करता है।

अर्धमात्रा

'अनुस्वार' 'अर्धमात्रा' त्रिकोण या योनि को संकेतित करता है। यह वर्ण 'श्रीचक्र' के **त्रिकोण** एवं शरीर में मूलाधार चक्र को द्योतित करता है। 'मूलाधार चक्र' नाद-स्थान है और अर्धमात्रा भी नादरूप है अतः 'अर्धमात्रा' नादस्थान मूलाधार के त्रिकोण की द्योतिका है।

'स' 'सकल ह्रीं' (शक्तिकूट) के 'सकार' वर्ण का द्योतक **'शक्ति'** या **'चन्द्रमा'** 'षोडश॰दलपद्म' को इङ्गित करता है और शक्ति वाचक होने के कारण पिण्डस्थ 'आज्ञाचक्र' को संकेतित करता है क्योंकि 'आज्ञा चक्र' 'सदाख्य तत्त्व' या **'अर्धनारीश्वर'** का स्थान होने के कारण शिवशक्त्यात्मक है।

[२२] * 'ज्ञानार्णव तन्त्र' के आधार 'पञ्चदशीविद्या' के वर्णों का 'श्रीचक्र' के त्रिकोणादिक उपचक्रों के साथ ऐकात्म्य *

''**ज्ञानार्णवतन्त्र**'' में 'पञ्चदशाक्षरी' विद्या में प्रयुक्त वर्णों का 'श्रीचक्र' के साथ ऐकात्म्य प्रतिपादित करते हुए प्रत्येक वर्ण का अर्थ इस प्रकार बताया गया है—

'क' वर्ण का अर्थ—

(१) **'क'** = 'ककारान्मदनो देविशिवं चाष्टस्वरूपकं।
योनिवश्यं तदा चक्रं वसुयोन्यङ्कितं भवेत्॥'

'ए' वर्ण का अर्थ—

(२) **'ए'** = 'शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूते
जगत् त्रयम् विष्णोर्योनिरिति ख्याता।
सा विष्णोर्दशरूपकम् **'एकारात्'**
परमेशानी चक्र व्याप्य व्यवस्थिता ॥'

'ई' वर्ण का अर्थ—

(३) **'ई'** = 'इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश।
पालयन्ती परात्साच्छक्रकोणं भवेत् प्रिये ॥'

'ल' वर्ण का अर्थ—

(४) **'ल'** = 'लकारः पृथिवी बीजं तेजोभू बिम्बमुच्यते।'

'ह' वर्ण का अर्थ—

(५) **'ह'** = 'हकारः शिव उच्यते अष्टमूर्तिः
सदाभद्रे तस्माद्वसुदलं भवेत् ॥'

'र' वर्ण का अर्थ—

(६) **'र'** = 'दशकोणकरं तस्मात् प्रकारो ज्योतिराख्यः।
कला दशान्वितो वह्निर्दशकोण प्रवर्तकः ॥'

'स' वर्ण का अर्थ—

(७) **'स'** = 'सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशात्मकः।
तस्मात् षोडशपत्रं च ॥'

'अर्धमात्रा' का अर्थ—

(८) **'अर्धमात्रा'** = 'अर्धमात्रा गुणान् सूते नादरूपा यतः स्मृतः।
त्रिकोणरूपा योनिस्तु ॥'

'बिन्दु' वर्ण का अर्थ—

(९) **'बिन्दु'** = 'बिन्दुना बैन्दवं भवेत्।
कामेश्वर स्वरूप तद्विश्वाधार स्वरूपकम्।
श्री चक्रन्तुर्वियत् संभवम् ॥'

निष्कर्ष—यदि निष्कर्ष के रूप में इस विवरण को प्रस्तुत किया जाय तो संक्षेप में इसे इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है—

* **'कला'** (वर्णों की समष्टि) का **'बिन्दु'** (चक्रों की समष्टि) से ऐक्य है। * (कलाबिन्द्वैक्य॥

(१) **'क'** = 'क' जल तत्त्व का बोधक है अतः 'क' शब्द जलतत्त्व एवं तत्सम्बद्ध चक्र 'स्वाधिष्ठान चंक्र' का बोधक है।

(२) **'ए'** 'ए' वाक् तत्त्व का बोधक है। 'ऐं' वावणी का बीज है। यह सरस्वती का वाचक है अतः 'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' के रूप में स्थित वाक्चतुष्ट का बोधक है।

यह 'विशद्ध चक्र को भी द्योतित करता है। यहा ;ह 'वैखरीवाक्' को संकेतित करता है।

(३) **'ई'** यह वर्णमाला में **चतुर्थ स्वर है।** (श्रीविद्या में तृतीय वर्ण है।) चूँकि **चतुर्थ चक्र 'अनाहत चक्र'** है अतः 'ई' अनाहत चक्र का वाचक है।

(४) **'ल'** 'ल' वर्ण पृथ्वी तत्त्व का वर्ण है। अतएव यह पृथ्वी तत्त्वात्मक 'मूलाधारचक्र' एवं 'पृथ्वीतत्त्व' दोनों को द्योतित करता है।

(५) **'ह'** = हकार आकाशका द्योतक है। हकार शिव का भी द्योतक है। अतः 'हकार' 'सहस्रार' एवं शिवस्थान दोनों का द्योतक है।

(६) **'स'** (१) 'स' अमृत का वाचक है। चूँकि 'सहस्रार' अमृतस्थान है अतः 'स' 'सहस्रार' का भी द्योतक है।

(२) 'स' शक्ति एवं सोम का भी द्योतक है। चूँकि सहस्रार शक्ति एवं सोम का अधिष्ठान है अतः यह अमृत के स्थान एवं चन्द्रमा के स्थान का भी द्योतक है।

(१) **'क'** = यह वर्ण माला का प्रथमाक्षर है। यह श्रीविद्या का भी प्रथमाक्षर है। यह त्रिकोणों का प्रथम स्वरूप **'अष्टार'** है। और 'स्वाधिष्ठान' भी सूचक है क्योंकि **'स्वाधिष्ठान'** जल तत्त्व का स्थान है।

(२) **'ए'** = यह विश्वयोनि है—भुवनों का जन्मस्थान है। भुवन १४ हैं

अतः यह चतुर्दशार का प्रतीक या वाचक है। यह **'विशुद्धाख्यचक्र'** का भी वाचक है। 'विशुद्ध' शब्द विशुद्धवाणी के अधिष्ठान 'विशुद्धचक्र' को भी संकेतित करता है।

(३) **'ई'** 'इ' विष्णु की माया का बोधक है। विष्णु के १० प्रमुख अवतारों के कारण 'ई' १० के वाचक 'बहिर्दशार' का भी सूचक है। यह **'अनाहत चक्र'** का सूचक इसलिए है क्योंकि विष्णु हृदय (अनाहत चक्र) में रहते हैं अतः यह अनाहत चक्र का भी सूचक है।

(४) **'ल'** 'ल' पृथ्वी का वाचक है। पृथ्वी एवं ल जगत को जन्म देने के कारण विश्वयोनि हैं अतः 'त्रिकोण' एवं 'मूलाधारचक्र' दोनों 'ल' वर्ण से इङ्गित होते हैं।

(५) **'ह'** 'ह' आकाश का बोधक है। यह 'शिव' का भी सूचक है अतः 'ह' शिवस्थान, सहस्रज्ञर, एवं भूपुर तीनों का बोधक है।

(६) **'र'** 'र' अग्नि का सूचक है। कहीं-कहीं अग्नि की १० जिह्वायें स्वीकार की गई हैं अतः 'र' **'अन्तर्दशार'** एवं दसदल पद्म **'मणिपूर'** का बोधक है।

(७) **'ई'** 'ई' विष्णु की माया का द्योतक है, विष्णु के १० अवतार हैं अतः 'ई' 'बहिर्दशार' एवं 'मणिपूरकचक्र' (१० दल) का सूचक है।

(८) **'बिन्दु'** बिन्दु बैन्दवस्थान एवं वृत्त (त्रिवृत्त) सहस्रार के चन्द्रमण्डल।

(९) **'अर्धमात्रा'** —यह अष्टदल पद्म का बोधक है। यह 'आज्ञाचक्र' का भी बोधक है।

(१०) **'स'** 'स' सोम, चन्द्रमण्डल एवं षोडश दलपद्म का बोधक है।

[२३] * 'कला' (वर्ण) एवं 'चरण' (नाद) का ऐक्य *

'नाद' की उत्पत्ति कैसे होती है?

'शिव' एवं 'शक्ति' के मिलन से ही 'नाद' की उत्पत्ति होती है अतः शिव-शक्ति का सम्बंध ही **'नाद'** है।

(१) **'बिन्दु' क्या है?** 'बिन्दु नाद की प्रथमावस्था है।

'आसीच्छक्तिस्ततो **नादः** ।
नादाद् बिन्दु समुद्भवः ॥' (शारदातिलक)

'अर्धचन्द्र' क्या है? अर्धचन्द्र बिन्दु का प्रथम प्रसार है अर्थात् **'कामकला'** है। यह **नादोन्मुखावस्था** है।

'ह' = शिव। **'स'** = शक्ति।। ह + स = नाद।

'लकार'—'लकार' पृथ्वी तत्त्व का सूचक है। पृथ्वी जगत की उत्पत्ति। तत्त्वों की स्थूलतम अर्थात् अन्तिम अवस्था है। यह कारणवस्था है अतः य ह नाद की भी अन्तिम अवस्था **'परावाक्'** की सूचना देता है।

'ल' = 'परावाक्'।

'क' = क वर्क का आद्यक्षर 'क' है। यह प्रथम स्फोट का वाचक है। **'र'**—अग्नि का द्योतक है। 'अग्नि' शक्ति का कारण है। यह प्रथम स्फोट की शक्ति है अतएव क + र = **'पश्यन्ती'** वाक् के द्योतक है। 'क + र' = **पश्यन्तीवाक् रूप नाद।** 'ई' = इच्छा का द्योतक।

'ई' (इच्छा) का वाक् से संयोग—**'मध्यमावाक् रूप नाद** का आविर्भाव होता है।

'ऐ'—यह वाणी का सूचक है।

[२४] * 'बिन्दु'(चक्रों) का 'नाद' से ऐक्य *

बिन्दु (चक्र)	नाद	'श्रीचक्र' के अङ्ग
(१) 'मूलाधारचक्र'	'परावाक् (नाद)'	'त्रिकोण'
(२) 'स्वाधिष्ठानचक्र'	'पश्यन्तीवाक् (नाद)'	'अष्टार'
(३) 'मणिपूरकचक्र'	'मध्यमावाक् (नाद)'	'दशारद्वय'
(४) 'विशुद्धचक्र'	'वैखरीवाक् (नाद)'	'चतुर्दशार'
(५) 'आज्ञाचक्र'	'नाद एवं नादान्त'	'शिवचतुष्कोण'
(६) 'सहस्रार'	'नादबिन्दुकलातीत'	भगवती महात्रिपुर सुन्दरी 'परा सवित्'

'ह' एवं 'ल' बिन्दुस्थान (त्रिवृत्त) है और वर्गाष्टक **'अष्टदलपद्म'** है।

'हलो बिन्दुर्वर्गाष्टकामिदलं शांभववपु ॥'[1]

---

[1] सुभगोदयस्तुति (२२)

(२५) पिण्डस्थ षट्चक्रों एवं श्री चक्र में ऐक्य

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) पृथ्वी तत्त्व (मूलाधार चक्र) अग्नि (त्रिकोण) में।

(२) वह्नि (स्वाधिष्ठान चक्र में। यद्यपि वह्नि का स्थान 'मणिपूरक' में माना जाता है किन्तु आचार्य शङ्कर ने अग्नि का स्थान 'स्वाधिष्ठानचक्र' में ही स्वीकार किया है।)—'वसुदल' में।

(१) **'वह्नि'** (स्वाधिष्ठानचक्र)।।

(२) **'वसुदल'** (श्रीचक्र का अष्टार)।।

(२) **अग्नि (स्वाधिष्ठान चक्र) में वसुदल (अष्टार)**

(३) 'दिङ्मरुति' (दिशायें वायु में) =

(क) 'वायु' = अनाहतचक्र = (वायु अनाहत चक्र में है।)

(ख) 'दिङ्' = १० = (दिशाओं की संख्या १० है।)

*** 'हृदयचक्र ही 'बहिदर्शार' है। ***

(४) **'कलाश्रे मन्वश्रं'**

(क) 'कला' = १६ का वाचक । **'कलाश्र'** = षोडशदलपद्म (विशुद्ध चक्र)

(ख) 'मन्वश्र' = चतुर्दशार

(मनु १४ हैं अतः १४ की संख्या वाला चक्र अर्थात् 'चतुर्दशार'।)

*** विशुद्ध चक्र ही चतुर्दशार है ***

'दृशिवसुरथो राजकमले'—दृशि = नेत्र २ की संख्या। **'आज्ञाचक्र'** **'वसुरथो'** = वसु ८ हैं। **'अष्टदलपद्म'** **'राजकमले'** = राजा = १६ का प्रतीक है। = 'षोडशदलपद्म'।

*** 'आज्ञा चक्र' ही 'अष्टदल' एवं 'षोडशदलपद्म' हैं। ***

'प्रतिद्वैत ग्रन्थिस्तदुपरि चतुर्द्वार सहितं महिचक्रं चैकं भवति भगकोणैक्य कलनात्।।'

प्रतिद्वैत ग्रंथि = **'चतुर्दशार चक्र'** = अद्वैतस्था सहस्रार

'महिचक्र' = भूपुर।

चतुर्द्वार सहित महिचक्र (भूपुर)

'भगकोण' = षट्चक्र। **सहस्रार** ही **भूपुर** है।

'चतुर्द्वार सहित महिचक्र में' ऐक्य है।

'क्षितौ वह्निर्वह्नौ वसुदलजलेदिङ्मरुति दिक्
कलाश्रे मन्वश्रं दृशिं वसुरथो राजकमले।
प्रतिद्वैतग्रन्थिस्तदुपरि चतुर्द्वारसहितं,
महिचक्रं चैकं भवति भगकोणेक्य कलनात्।।'[1]

श्रीचक्रस्थ ९ चक्रों में भी ऐकात्म्य है—

'त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुद्भू।'

(१) द्दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रसमभवत्।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात्तिवलय,
चतुर्द्वाः प्राकारत्रितयमिदमेवाम्ब शरणाम्।।
—सुभगोदयस्तुति (१७)

(२) सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं,
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।
ततो मूलाधारा द्वितीयमभवत्तद्दशदलं,
सहस्राराज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत्।।
—सुभगोदयस्तुति (४७)

(३) अधिष्ठानाधार द्वितीयमिदमेव दशदलं,
सहस्राराज्जात मणिपुरमतोऽभूद्दशदलम्।
हृदम्भोजान्मूलानृपदलमभूत्स्वान्तकमलं,
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्ति कृदयम्।।[2]

(२६) **'कला'**—१. कलाः पञ्चाशत् षष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्य का वा। एवं नादबिन्दुकलातीता भगवतीति।

२. 'सहस्रकमलं बिन्द्वातीतं बैन्दवस्थानात्मकं सुधासिन्ध्वपरपर्यायं सरघाशब्दवाच्यम्।

३. नादातीतंतत्त्वं तु त्रिपुरसुन्दर्यादिशब्दाभिधेय 'दर्शा दृष्टा दर्शता'—इत्याद्यपर्याद्य —'क ए ई ल ह्रीम्'—इत्यादि मन्त्रवर्णनामक—पञ्चाशद्वर्णात्मक—षष्ठयुत्तरत्रिशत संख्यापरिगणितमहाकालात्मक—पञ्चदशकलातीता सादाख्या श्रीविद्याऽपरपर्याया चित्कलाशब्दवाच्या ब्रह्मविद्यापरपर्याया भगवतीति नादबिन्दुकलातीतं भागवतं तत्त्वमिति तत्त्वविद्रहस्यम्।

---

[1] सुभगोदयस्तुति (३७)

[2] सुभगोदयस्तुति

'अत्र **नादबिन्दुकलानां** परस्परैक्यानुसन्धानं **षोढा भवतीति षोढा ऐक्यमाहुः।**

'एवं भगवतीं षड्विधैक्येन सम्भाव्य पूजयित्वा सादाख्यायां विलीनो भवति। तदनन्तरं षड्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना गुरुकटाक्षसंजातमहावेधमहिम्ना च भवगती झडिति मूलाधार स्वाधिष्ठानात्मक चक्र द्वयं भित्वा **मणिपूरे** प्रत्यक्षं प्रतिभाति।

महावेधे जाते (दीक्षोपरान्त) **भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति। सा समाराध्या।**

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि भगवती समयमतावलम्बियों को प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं—

'समयिनां प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना आस्ते भगवती ।।'[१]

आचार्य लक्ष्मीधर यह भी कहते हैं कि समयमतावलम्बियों को चाहिए कि वे भगवती की पूजा **'आन्तरपूजा'** की पद्धति से निष्पादित करें और **'सहस्रकमल'** में तिरस्करिणी प्रसारण पर्यन्त दर्शन करते हुए भगवती की समाराधना करते रहें—

(१) 'समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं आन्तर पूजा कर्तव्या।

(२) 'सहस्रकमले तु तिरस्करिणी प्रसारणपर्यन्तं दर्शनमेव समराधनम्।[२]

(२७) * आचार्य लक्ष्मीधर द्वारा प्रस्तुत 'ऐक्यानुसन्धान' का ऐक्य *

आचार्य लक्ष्मीधर ने श्रीविद्या के क्षेत्र में अद्वैतपरक इन ऐक्यों का विश्लेषण इस प्रकार किया है। वे कहते हैं—

(१) समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः समाराधनमित्येतत् सर्व सम्मतम्।

अर्थात् श्रीविद्योपासना के सारे सम्प्रदाय, सारे उपासक एवं सारी उपासना-पद्धतियाँ इस विषय में एक मत हैं कि **भगवती की समाराधना का स्वरूप चतुर्विध ऐक्य है।**

कुछ लोग 'षोढ़ाऐक्य' का भी प्रतिपादन करते हैं।

(२८) * श्रीविद्या में ऐक्यानुसन्धान के दो रूप *

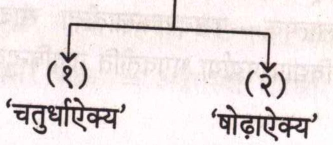

---

[१] लक्ष्मीधरा

[२] लक्ष्मीधरा

लक्ष्मीधर की दृष्टि—

(क) 'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः समाराधनमित्येतत् **सर्वसम्मतम्।**'

(ख) 'केचित्तु **षोढा ऐक्यमाहुः।**' —(लक्ष्मीधरा)

(१) **'नादः'**—'परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपेण चतुर्विधः इति।।'

(क) **'परा'**—'त्रिकोणात्मिका।'

(ख) **'पश्यन्ती'**—'अष्टकोणचक्ररूपिणी।'

(ग) **'मध्यमा'**—'द्विदशारूपिणी।'

(घ) **'वैखरी'**—'चतुर्दशाररूपिणी।'

—लक्ष्मीधरा (४१)

(२) **'शिवचक्राणां'** अत्रैव अन्तर्भावः प्रतिपादित इति **चतुश्चक्रात्मकं 'श्रीचक्रं नाद शब्दवाच्यम्।**

(३) **'बिन्दु'—'षट्चक्राणि** मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरानाहत-विशुद्ध्याज्ञात्मकानि बिन्दुशब्दवाच्यानि पूर्वमेव उक्तानि।।'

(आ) * श्रीविद्यारत्नसूत्रम् *

'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्' एवं गौड़पादाचार्य के सिद्धान्त—आचार्य गौड़पादन के इस ग्रंथ के द्वारा 'श्रीविद्या' की सूत्रात्मक व्याख्या की है। इस ग्रंथ का **प्रथम सूत्र है**—* **''अथ शाक्तमन्त्रागमजिज्ञासा।।''१।।**[१]

अर्थात् अब शाक्त मंत्रों की उत्कण्ठा है—उसे जानने की इच्छा है। यहाँ मंत्रागम जिज्ञास्य है। भाष्यकार विद्यारण्य कहते हैं कि आचार्य गौड़पाद का कथन यह है कि वेदादिक कर्मों एवं धर्मों को निष्पादित करके अर्थात् 'अथाऽतो धर्मजिज्ञासा'' जै०सू० (१।११) के द्वारा धर्मजिज्ञासा को पूरी करने के बाद साधक को या तो—

(क) 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (ब्र०सू०) के मार्ग पर

या (ख) 'अथ शाक्तमन्त्रागमजिज्ञासा' (वि०र०सूत्र)

या (ग) 'अथातो शक्ति जिज्ञासा' (शक्तिसूत्र)

या (घ) 'अथातो शक्ति जिज्ञासा' (शाक्तदर्शनम्) के मार्ग की ओर बढ़ना चाहिए।

'सर्व शक्तिमयं जगत्' के अनुसार सर्वत्र केवल शक्ति की ही व्याप्ति, उसी

---

[१] विद्यारत्नसूत्र

का संचालन, उसी का शासन एवं उसी की सर्वव्यापक अनुस्यूतता देखकर तो शाक्त मन्त्रों एवं शाक्त आगमों की ही जिज्ञासा औचित्यपूर्ण हैं।

दूसरे सूत्र द्वारा सूत्रकार ने **आत्मा के स्वरूप** पर प्रकाश डाला है। **शिवसूत्रकार** ने तो 'शिवसूत्रम्' के प्रथम सूत्र में ही आत्मा के स्वरूप का परिचय कराते हुए उसके स्वरूप को **'चैतन्य'** की संज्ञा दी थी और कहा था—**'चैतन्यमात्मा।।''** (शिवसूत्र १।१)

किन्तु गौड़पादाचार्य ने उसके स्वरूप को **सम्पूर्णता (अखण्डता) की दृष्टि से** देखकर कहा कि * आत्मैवाऽखण्डकार:।। (२)[1]

महेश्वरानन्द ने उसे (आत्मा को) **विश्वमूल के रूप में देखकर** कहा था कि—

'आत्मा खलु विश्वमूलं ।'[2]

औषनिषदिक ऋषियों ने उसी आत्मा को इस दृष्टि से देखकर उसके स्वरूप की इस प्रकार विवेचना की—

(क) 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ।। (माण्डूक्योपनिषद २)

(ख) 'नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञाघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टामव्यवहार्य मग्राहयमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मक प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं स **'आत्मा'** स विज्ञेयः।[3]

भाष्यकार विद्यारण्य कहते हैं कि जहाँ भी अकार है वहाँ परिच्छिन्नत्व है (सीमा रेखा) है अतः अनित्यत्व भी है किन्तु आत्मा अखण्डाकार है। आत्मा खण्ड-हीन नहीं है प्रत्युत् अखण्डता ही उसका स्वरूप है—'अखण्डत्वमेवाकारः अखण्डाकारः। 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' के अनुसार स्रष्टा एवं संसृष्ट **दोनों एक ही हैं—अखण्ड हैं**—एकाकार हैं।

गौड़पादाचार्य **तृतीय सूत्र** में **चित् शक्ति के स्वरूप** पर प्रकाश डालते हैं और कहते हैं कि—'चिच्छक्ति चैतन्यस्वरूप है।'

'चैतन्यस्वरूपा चिच्छक्ति ।।'[4]

भाष्यकार विद्यारण्य इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—चैतन्य अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप चित् है और वही उसकी शक्ति है—

---

१. श्रीविद्यारत्नसूत्र

२. महार्थमञ्जरी (३)

३. माण्डूक्योपनिषद् (७)

४. श्रीविद्यारत्नसूत्रम् (३)

* 'चैतन्यस्य ब्रह्मणः स्वरूपा चित् शक्तिः सामर्थ्यम् ।।'[1]

'शक्ति' या सामर्थ्य है क्या? विद्यारण्य कहते हैं—'शक्तितत्त्वं नाम सर्वज्ञत्वम् सर्वकारणकर्तृत्वम्' **'शक्ति'** का अर्थ है सर्वज्ञत्व एवं निरपेक्ष सर्वकृर्तृत्व। पुराणों में कहा गया है—''चिदेव शक्तिः।।'

सूत्रकार (गौड़पादाचार्य) ने अपने चतुर्थ सूत्र द्वारा **'श्रीविद्या'** के स्वरूप का निर्वचन किया है और कहा है कि—

* 'सैवेयमनाख्या श्रीविद्या ।।४।।' *

व्यांख्याकार ने इसे इस प्रकार व्याख्यात किया है—

* 'सा तेजः पुञ्जाकृतिः शक्तिरेवाऽनामाख्या श्रीविद्या ।।''[2] *

अर्थात् 'इयमेव सा या प्रथमं व्यौच्छदन्तरस्यां चरति प्रविष्टा।।'' अर्थात् जो यह चित् है वह अनामा (अनामा नामक नाम वाली) है। प्रथमा विद्या'व्यौच्छत' (स्वच्छ या निर्मल) है।

यह विद्या अनाम है—अपरिच्छिन्न है और सबका मूल कारण है—

* 'अनामारव्यविद्यायाः अपरिच्छिन्नत्वं सर्वकारणत्वमुक्तम् ।।'[3] *

सूत्रकार ने पाँचवें सूत्र में **विद्या के भेदों** पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि तत्त्वत्रय रूपी शस्त्र से छेदित होने पर यही अखण्डाकार विद्या अनेकरूपाकाराकारित हो जाती है—

* 'तत्त्वत्रयेण सा विविधा ।।'[4] *

श्रुतियों में भी कहा गया है कि—

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।।'
'न तस्य कार्यकरणं च विद्यते,
न तत्समश्चाऽभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रयूते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।।'

आचार्य गौड़पाद ने **छठवें सूत्र** द्वारा **'श्रीचक्र'** को परिभाषित करते हुए कहा है कि—

---

१. श्रीविद्यारत्नसूत्रम् भाष्य (विद्यारण्य

२. विद्यारण्य

३. विद्यारण्य (सूत्र ४)

४. श्रीविद्यारण्यसूत्र

'कोणपत्रसमुच्चयं चक्रम् ।'[१]

उनका आशय यह है कि केवल दल-समुच्चय ही नहीं प्रत्युत् कोण समुच्चय **'चक्र'** है—

'केलवकोणसमुदायस्य वा न तु केवलपत्रसमुच्चयस्य वा चक्रत्वम्, पत्रसमूहस्य कमलमित्युक्तत्वात् ।

यहाँ शिवमन्त्र एवं शिव यन्त्र में भी अभेद स्थापित किया गया है।

सातवें सूत्र द्वारा सूत्रकार ने मंत्र के भेदों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

* 'सा शाम्भवी विद्या श्यामा तत्त्वत्रयाकृति स्त्रिविधा जात ।।'[२] *

(१) **'शाम्भवी'** = 'शभुसम्बन्धेन तेजसा सहिता सती तत्रैका **'शाम्भवी'**।।

(२) **'श्यामा'** = विष्णुसम्बन्धेन तेजसा सहिता सती तत्रैका **'श्यामा'**।

(३) **'विद्या'**= 'ब्रह्मसम्बन्धेन तेजसा युक्ता तत्रैका विद्या।

'शाम्भवी शुक्लरूप च श्रीविद्या रक्तरूपगा।
श्यामलाश्यामरूपाख्या एताश्च गुणशक्तयः ।।'

(१) परमशिवपत्नी 'परविद्या'
(२) सदाशिवपत्नी 'श्यामला'
(३) रुद्रपत्नी 'शाम्भवी'

इसके द्वारा त्रिपुरसुन्दरी का सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

परमशिव **'कामेश्वर'** हैं और उनकी विद्या **'कामेश्वरी'** है। वे ही राजराजेश्वरी एवं 'षोडशी' भी कहलाती हैं।

'त्रिविधा जाता'—सिद्धौघ, मानवौघ, दिव्यौघ, पीठत्रय, पीठाधिष्ठान रूप गुरुत्रय, बटुकत्रय, मण्डलत्रय आदि सभी त्रिविध हैं।

आगे के सूत्र (क्र० ८ एवं क्र० ९) द्वारा सूत्रकार ने विद्या के अनेकत्व एवं परिवार पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

* (१) 'विद्यायाः पूर्वोत्तराभ्यामनेक विद्याः जाताः ।।८।।'
(२) 'ता विद्याः परिवारा इति ।।९।।'[३] *

शाम्भवी, श्यामला के अनेक देवता हैं। ये ही सभी महाविद्या के परिवार हैं। 'ता विद्याः परिवारा इति।'[४]

---

१. श्री०वि०र०सू० (६)
२. श्री०वि०र०सू० (७)
३. श्री०वि०र०सूत्र (८, ९)
४. श्री०वि०र०सूत्र (९)

विद्याओं के अनेक प्रकार हैं—

* 'विद्यायाः पूर्वोत्तराभ्यामनेक विद्या जाताः ।।८।।' *

उनके अनेक परिवार हैं—'ता विद्याः परिवाराः इति ।।८।।'

पूर्वद्वारा (पूर्वाम्नाय) अन्य की तुलना में श्रेष्ठतर स्वीकार किया गया है। प्रधान विद्यायें कौंन हैं?

'शुद्धविद्येति बालेति द्वादशार्द्धा मतङ्गिनी।
प्रधानशक्तयस्त्वेता एतासां परिवारकाः।
चतुर्विंशत्सहस्राख्य देवताः परिवारकाः ।।'

'शुद्धविद्या' है क्या? 'शुद्धानन्द उपास्यत्वाच्छुद्धविद्येति कथ्यते।

(१) अशुद्धस्य निवृत्या अज्ञानस्य निवृत्या **'शुद्धविद्या'** ''शुद्धत्वाच्दुद्धविद्येति कथ्यते ।।'

(२) 'यद्वा शुद्धानन्देनोपास्यत्वेन **शुद्धविद्या** ।।'

बाला, एवं श्यामला किसे कहते हैं?

(१) **'बाला'** = बाला लीलया सर्वत्र प्रवर्तत इति 'बाला'।

(२) **'श्यामला'** = द्वादशार्द्धा आनन्दनाथेन पूज्यतया तस्याः द्वादशार्द्धा **'श्यामला'**।

(३) **'मतङ्गिनी'** = मतङ्गेनोपास्यत्वेन मतङ्गिनी एतासामनुपरिवारा अनामारख्याः ।। एता पूर्वद्वारे...।'

(४) **'सौभाग्यविद्या'** = सतुभगानन्दविद्यानन्दयोः पूज्यतया **'सौभाग्यविद्या'**।

(५) **'बगला'**= बन्धि नीलाकिनी सहितस्य गगनानन्दस्य पूज्यतया **'बगला'** बवयोरभेदत्वात् **'बयला'** इति।

(६) **'वाराही'**—वराहानन्दोपास्यत्वेन तस्याः **'वारराही'** इति।

(७) **'बटुक'**—अनुद्धाहत्वेन **बटुक** इत्युच्यते।

यद्वाऽत्र बटुकस्योपास्यत्वेन **बटुकः**।

(८) **'तिरस्करिणी'**—तिरोधाने स्वसामर्थ्यतया तस्यास्ति**रस्करिणी** इति ।।[१]

दक्षिण द्वार में यजुर्वेदमय सौभाग्यादि उत्पन्न विद्यायें होती हैं—

* 'याम्यदिशि स्थिताः सौभाग्यादयः **स्वस्या उद्भवा** ।।११।।

'सौभाग्य विद्या बगला वाराही बटुकप्रिया।
या तिरस्करिणीत्येतास्तस्या देव्याश्च सेवकाः।

---

१. विद्यारण्य (श्रीवि०र०सूत्र १०)

एतासां देवतानां च परिवारास्त्वनेकशः ।
त्रिंशत्सहस्त्रं संख्याका अनामाख्याप्रसेवकाः ॥'

तथाऽधः स्थिताः पश्चिमदिशि ॥१२॥

सूत्र द्वारा 'कामराजविद्या' ('कामराजविद्या पारम्पर्यगुरुभिः प्रतिष्ठिताः सर्वाः पूर्वद्वारे दक्षिण द्वारे स्थिताः।[1]

'चिन्तामणि गृहस्यैव पूर्वद्वारे तु काः स्थिताः ।
तन्मन्दिरस्य याम्यां च द्वारेकाः शक्तयस्तथा ।
बोधकैः कामराजाख्यैः एतास्ताः स्युः प्रतिष्ठिताः ।'

—(त्रिपुरासिद्धान्त)

'पश्चिमे चोत्तरे द्वारे शक्तयः काः स्थिताः सदा ।
लोपामुद्राख्यगुरुभिस्त्वेतास्ताः स्युः प्रतिष्ठिताः ।
प्रासादस्थाः शक्तयः का वेदिकायां च काः स्थिताः ।
परादिगुरुभिस्तासां नियतत्वं समुच्यते ।'

—(त्रिपुरासिद्धान्त)

'लोपामुद्रा महेशनि ततश्च भुवनेश्वरी ।
अन्नपूर्णेति विख्याताः ततः कामकलेति च ।
एतास्ताः शक्तयस्तत्र सेवका गणनायकाः ।
सहस्त्रत्रथ संख्याकाऽनामाख्या परिसेवकाः ।'

अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा के नाम पर ही **'लोपामुद्रा विद्या'** का प्रवर्तन हुआ।

शाम्भव्याः परिवारा उत्तरस्मिन् ॥१३॥

शाम्भव्य देवता जो उत्तर द्वार से सम्बद्ध हैं।

(१) **'तुरीया'**—तुरीयानन्दनाथस्योपास्यत्वेन **'तुरीया'** ।

(२) **'अश्वारूढा'**—नित्यंतुरङ्गपर्यवस्थितत्वेनाश्**वरूढा** ।

(३) **'मिश्रविद्या'**—मिश्रेशानन्दनाथस्योपास्यत्वेन **'मिश्रविद्या'**। यद्वा सर्वासु मिश्रत्वेना**मिश्रविद्या।**

(४) **'वाग्वादिनी'**—स्वभक्तानां वाचिवादरूपेण प्रसङ्गरूपेण स्थितत्वात् **वाग्वादिनी।**[2]

---

१. विद्यारण्य

२. विद्यारण्य (सूत्र १३)

'तुरीयाम्बा महार्द्धेति चाऽश्वारूढ़ा महेश्वरि ।
मिश्राम्बाच महाविद्या पश्चाद्वाग्वादिनी प्रिये ।
एता जातश्च शाम्भव्या उत्तरस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।
द्विसहस्त्रैरनामाख्यैर्युक्ता एताश्च शक्तयः ॥'

शाम्भवी अपनी सामर्थ्य के कारण ही ऊर्ध्वरूप में स्थित है—

* 'स्वयमूर्ध्वाऽऽकारेण ॥१४॥ *

'पराविद्या महेशानि ! परा प्रासाद इत्यपि ।
तथैव शाम्भवी प्रोक्ता एतास्तस्याश्च सेवकाः ।
परिवाराः सहस्त्रार व्यास्तासां ताः परिसेविकाः ।'

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी **'चिन्तामणिगृह'** में समासीन रहती हैं और अनुत्तरा महाविद्या हैं—

* 'अथ चिन्तामणिगृहस्थिता त्रिपुरसुन्दरी महाविद्याऽनुत्तरा ॥१५॥[1] *

भण्डासुर के वध के उद्देश्य से एक विद्या ही विविधाकाराकारित बन गई—

* 'भण्डासुरहननार्थमेकैवाऽनेका ॥१६॥' *

इसी के कारण मंत्र, यंत्र एवं तंत्र में भी भेद हैं—

* 'तया मन्त्रा अनेकाश्च तथा यन्त्र तन्त्राणि ॥१७॥' *

भगवती की उपासना में **'भक्ति' का भी मुख्य स्थान है**—

* 'विविधभक्तिर्विविधोपासनम् ॥१८॥' *

इस उपासना से साधकों को उनके इष्ट फल भी प्राप्त होते हैं—

* 'तस्मात् फलान्यनेकानि ॥१९॥' *

'श्रीसदन' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए गौड़पादाचार्य कहते हैं—

* 'क ग ज दशारद्वय मन्वस्राष्टदल स्वरपत्रत्रिवृत्त भूबिम्ब संज्ञा कथितं श्रीसदनम्॥२०॥'*

पञ्चाम्नाय देवता एवं उनके परिवार—

लोपामुद्रा तु सौभाग्य महाविद्या तु **षोडशी ।**
दाराः परशिवस्येति ता एतास्तु वरानने ।
श्यामला शुद्धविद्या च **अश्वाराढा** वरप्रिये ।
दाराः सदाशिवस्येति ज्ञातव्याः परमेश्वरि,
महार्धाद्वादशार्द्धाऽपि **वाराही बगला** प्रिये ।

---

१. श्रीविद्यारत्नाकर सूत्रम् (१५)

तुरीया **भुवनेशीति** श्रीपरा **शाम्भवी** प्रिये।
दारा रुद्रस्य ताश्चैव शृणुसत्यं न संशयः।
सा **तिरस्करिणी** लक्ष्मी मिश्रा **कामकला** प्रिये।
विष्णोर्दारा इति ख्याता **अन्नपूर्णा** शिवस्य च।
वाग्वादिनी च बाला च पल्यौ ते ब्रह्मणः शिवे
वाराही च सुतस्तस्या **बटुकाख्य** इतीर्यते।
नवदूती हसन्ती च नव सिद्धाश्च देवताः।
अनामाख्या अनेकाश्च सर्वेषां भोगदेवता ॥'

गुरु के सदन पर प्रकाश डालते हुए आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

* 'अकथादि त्रिरेखाद्वितत्रिकोणमेव वा श्रीगुरोः सदनम्।' *

'**शुकविद्या**' एवं '**शारिकाविद्या**' के निम्न लक्षण हैं—

* (क) 'द्विचत्वारिंशद्वर्णविशिष्टा '**शुकविद्या**'।

* (ख) 'अष्टाविंशदक्षर विशिष्टा '**शारिकाविद्या**'।

* '**पञ्चदशीविद्या**' का लक्षण क्या है?

* 'ककारादि पञ्चदशाक्षरसमुचिता कादिपञ्चदशी।

* **कामकला** * खण्डद्वययुता चतुर्थस्वरविशिष्टा कामकला ॥९०॥

* **तुर्या** * त्रयोदशविशिष्टा '**तुर्या**'॥९२॥

* **अश्वारूढ़ा** * 'द्वादशाक्षर विशिष्टाऽश्वारूढा ॥९४॥[1]

* **मिश्रविद्या** * एकाक्षरविशिष्टा मिश्रविद्या ॥९५॥ *

* **शुद्धविद्या** * अक्षरत्रयविशिष्टा **शुद्धविद्या** *[2]

* **वाग्वादिनी** * त्रयोदशवर्णविशिष्टा वाग्वादिनी ॥९६॥ *[3]

* **परा** * एकवर्ण विशिष्टा परा ॥९७॥ *

* **भुवनेशी** * एकवर्णविशिष्टा भुवनेशी ॥८७॥ *

—०—

---

[1] श्रीविद्यारत्नसूत्रम्

[2] श्रीविद्यारत्नसूत्रम्

[3] श्रीविद्यारत्नसूत्रम्

* तृतीय अध्याय *

* श्रीविद्या-सिद्धान्त और साधना *

'त्रिपुराशक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्।'

(क) श्रीचक्र और उसका स्वरूप—

विन्दु त्रिकोणवसुकोण दशारयुग्म मन्वश्रनागदलसंयुत षोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणी सदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

(ख) श्रीविद्या-सिद्धान्त और साधना (परशुराम की दृष्टि)।

श्री यन्त्र

समयाचार मतानुयायियों द्वारा पूजित सृष्टिक्रम
(५ शक्ति-त्रिकोण उर्ध्वमुखी। ४ शिवत्रिकोण अधोमुखी)

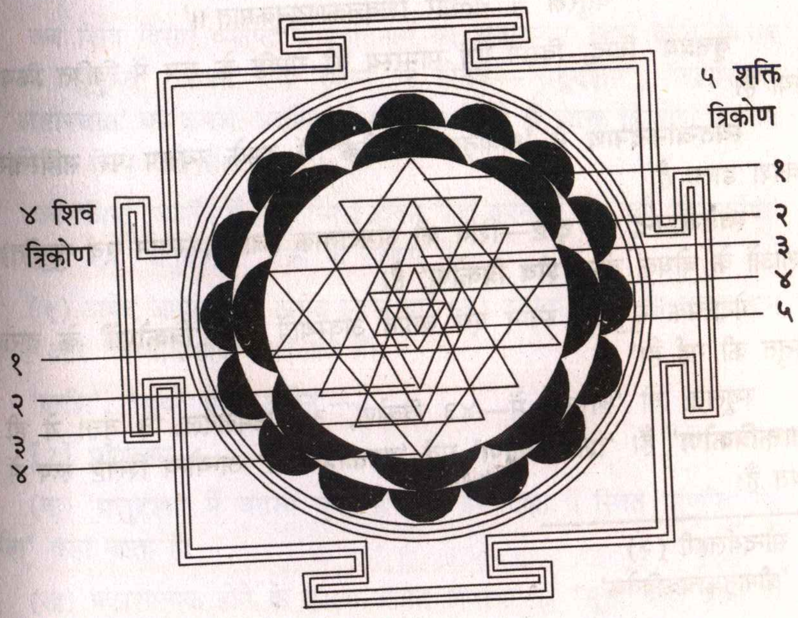

[१] * श्रीचक्र और उसका स्वरूप *

'श्रीचक्र' शिवशक्ति का सम्मिलित स्वरूप है। यह दोनों शरीर है—'शिवशक्तिमयं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।'

इसके निर्माण में **'श्रीकण्ठ चक्र'** एवं **'शिवयुवतिचक्र'** सम्मिलित हैं—

'चतुर्भिः श्रीकण्ठैःशिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि ॥'[१]

'यामल तन्त्र' में इसे बिन्दु, त्रिकोण, वसुकोण, दशारयुग्म, मन्वश्र, नागदल, षोडशार, वृत्तत्रय एवं सदनत्रय आदिकी समष्टि के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

'बिन्दु त्रिकोण वसुकोण दशारयुग्म।
मन्वश्र नागदल संयुत षोडशारम् ॥
वृत्तत्रयं च धरणी सदनत्रयं च।
श्रीचक्र राजमुदितं परदेवतायाः ॥'

*** 'शक्तिचक्र' किसे कहते हैं?**

'शक्तित्रिकोणमष्टकोण च दशकोण द्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि **शक्तिचक्राणि** पञ्च च ॥'

*** 'शिवचक्र' किसे कहते हैं?**

'बिन्दुश्चाष्टदलं पद्म पद्मं षोडश पत्रकम्।
चतुरस्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ॥'

'वृत्तत्रय' बिन्दु, विसर्ग एवं सामरस्य की समष्टि के रूप में चित्रित किया गया है।

स्वतन्त्रानन्दनाथ ने 'श्रीमातृकाचक्रविवेक' में इसके स्वरूप पर सविस्तार प्रकाश डाला है।

स्वतन्त्रानन्द की दृष्टि—शिव की अभेदात्मक (जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति) दशाओं के बोधक तीन **'शैव त्रिकोण'** हैं।

भेदात्मक सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत अवस्थायें तीन **'त्रिकोणों'** के द्वारा प्रस्तुत की गई हैं।[२]

स्थूलतः तो 'श्रीचक्र' में—४३ त्रिकोण, ३४ कमलदल, ३ वृत्त। ये ही **'शाक्तत्रिकोण'** हैं। **'शिवत्रिकोण'** एवं **'शाक्तत्रिकोण'** अन्योन्य श्लिष्ट रूप में स्थित हैं।

---

१. सौन्दर्यलहरी (२)
२. 'श्रीमातृकाचक्रविवेक'

जब **'विसर्ग'** उन्मेष होता है तब कारण रूप चित् तत्त्व कार्यरूप चैत्य से आच्छादित हो उठता है अतः चित्तत्व की प्रच्छन्नता के प्रदर्शनार्थ 'शिवत्रिकोणों' को अधोमुखी के स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा क्रियात्मक विसर्ग शक्ति के भेदरूप बहिरूल्लास को ऊर्ध्वमुखी शाक्त त्रिकोणों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

जब 'श्रीचक्र' को **'सृष्टिक्रम'** के अनुसार चित्रित किया जाता है तब ज्ञानात्मक बिन्दु आच्छादित हो ज़ाता है अतः **शिवचक्रों को 'अधोमुख' चित्रित किया जाता** है।

जब 'श्रीचक्र' को **'संहारचक्र'** की दृष्टि से चित्रित किया जाता है तब बिन्दु के उन्मेष के कारण क्रियाशक्ति का संहार हो जाता है अर्थात् बिन्दु के अन्तः में लय हो जाता है। अतः शक्ति की लयावस्था रूप अपकर्ष को द्योतित करने के उद्देश्य से **'शक्तिचक्रों' को अधोमुख चित्रित किया जाता है।** इसके साथ ही उत्कर्ष का भाव व्यक्त करने के उद्देश्य से 'शिव त्रिकोणों' को **'ऊर्ध्वमुखी' चित्रित किया जाता है।**

श्रीचक्रान्तर्गत अन्य चक्रावयवों की सृष्टि

'श्रीचक्र' के अन्तर्गत **'शाक्तत्रिकोणों'** एवं **'शिवत्रिकोणों'** के संश्लेष द्वारा—(१) **'अष्टकोण'**, **'दशारकोण'**, एवं **'चतुर्दशार'** का आविर्भाव हुआ करता है।

जब शिव विसर्ग व्याप्ति में प्रवृत्तिमार्ग का अवलम्बन ग्रहण करते हैं तब भेदात्मक **'सुषुप्ति'** **'जाग्रत'** एवं **'स्वप्न'** के द्योतक—**'चतुर्दशार'**, **'दशारद्वय'** एवं **'अष्टारचक्र'** को क्रमशः प्रदर्शित किया जाता है। ये ही **शाक्त त्रिकोण** के नाम से अभिहित किये जाते हैं।

जब **'बिन्दु'** व्याप्ति में निवृत्तोन्मुख होकर यात्रा करता है तब वही **'अष्टकोण'** **'दशारद्वय'** एवं **'चतुर्दशार'** चक्रों के स्वरूप में—

(१) अभेद जाग्रत (२) अभेद स्वप्न एवं (३) अभेद सुषुप्ति के ज्ञापक बन जाते हैं और **'शिवत्रिकोण'** कहलाते हैं।

'शशि', 'सूर्य' एवं 'अग्नि'—

[१] पशुदशा—

(क) **'पशुदशा'** में जड़त्व रहता है अतः इस दशा में स्थित 'सुषुप्ति' को **'शशि'** कहा जाता है।

(ख) प्रकाशात्मक होने के कारण जाग्रत अवस्था को **'सूर्य'** कहा जाता है।

(ग) चैत्य के संहारक होने के कारण—'स्वप्न' को **'अग्नि'** कहा जाता है।

[सुषुप्ति = **'शशि'**। जाग्रत अवस्था = सूर्य।। 'स्वप्नावस्था = **'अग्नि'**]

[२] **'शिवदशा'**—

(१) 'शिवदशा' में अभेदात्मक (एक रसात्मक) **'जाग्रत', 'स्वप्न'** एवं **'सुषुप्ति'**—विश्व की संहारकत्मक दशा द्योतित करने के कारण—**'अग्नि'** कहे गए हैं।

(२) **'पशुदशा'** में—शशि **'प्रमाता'** है, वह्नि **'प्रमेय'** है और क्रियात्मक सूर्य **'प्रमाण'** है।

(३) इसके विलोम क्रम के फलस्वरूप **'शिवदशा'** में अग्नि **'प्रमाता'**, शशि **'प्रमेय'** एवं ज्ञानात्मक तुर्यावस्था **'प्रमाण'** है।

सारांश—उपर्युक्त दृष्टि के अनुसार निरूपित किए जाने पर—

'पशुपद' में सुषुप्ति अवस्था के द्योतक **'चतुर्दशार'** को **'प्रमातृपुर'**, **'सुषुप्तिपद'** एवं **'सौम्यखण्ड'** कहा जाता है।

इसी प्रकार 'दशारद्वय' को **'जाग्रतखण्ड' 'प्रमाणपद'** एवं **'सौरखण्ड'** कहा जाता है। एवं 'अष्टारचक्र' को **'प्रमेयपद' 'अग्नि'** एवं **'प्रमेयपुर'** कहा जाता है।

(१) **जड़ात्मक संसरण की अन्तिम सीमा**—यहाँ जीव प्रतिष्ठित है और यह है **'जाग्रतावस्था'**।

(२) **जड़हीन (चेतन संसरण की अन्तिम सीमा**—यहाँ शिवपद प्रतिष्ठित है और यह है **'सुषुप्त्यवस्था'**।

(३) **तुर्यात्मक परशम्भुपद या 'समपद'**—जहाँ शिव प्रतिष्ठित हैं उस जड़ता-शून्य पद को ही **'तुर्यात्मकपरशम्भुपद'** या 'समपद' कहते हैं।

अतः इसे जाग्रत एवं सुषुप्ति दोनों के मध्य स्थित अवस्था कहा गया है।

यह 'मध्यपद' सन्धिरूपात्मक है तथा विकल्प-निर्विकल्प अवस्था के मध्य स्थित है।

अभेदात्मक विकल्पपद **'जाग्रत'** है और निर्विकल्प अवस्था **'सुषुप्ति'** है। इसी दृष्टि से यह कहा जाता है कि 'विकल्प' एवं निर्विकल्प के मध्य समान रूप से व्यापक होने के कारण परशम्भुस्वरूप **'तुर्यावस्था'** की अनुभूति जाग्रतावस्था एवं सुषुप्त्यवस्था के मध्य अवस्थित है।

यह **'मध्यपद'** क्या है? यह प्राणापन की सन्धि-अवस्था है।

'योगवसिष्ठ' में कहा गया है कि—

'प्राणक्षय पदान्तस्थमपानक्षयकोटिगम्।
अपानप्राणयोर्मध्यं चितादात्मानमुपास्महे ॥'

यही 'रहस्यमार्ग', 'समयाचार' एवं 'सिद्धान्त' तथा 'हठयोग' का भी लक्ष्य है।

विकल्पाविकल्प उभयात्मक **'मध्यमपद'** से ही (१) विकल्प एवं (२) निर्विकल्प दोनों का आविर्भाव हुआ करता है।

सुषुप्ति खण्ड के पञ्चम एवं षष्ठम सूत्र में 'मध्यपद' को **'समपद'** तथा द्विविध विषम पदों के रूप में निरूपित किया गया है।

तृतीय खण्ड के चतुर्थ एवं पञ्चसूत्रों में **'परावागात्मक विमर्श'** को 'अहंता' एवं 'इन्दता' का समत्व कहा गया है।

श्रीचक्रान्तर्गत यह 'समपद' बिन्दु त्रिकोण चक्र के द्वारा लक्षित है। यह उभयात्मक चक्र 'बिन्दु' एवं 'विसर्ग' (शिव शक्ति का सामरस्यात्मक स्वरूप) का द्योतक है।

शिव का लक्षक वर्ण है 'क्ष'। शक्ति का द्योतक शब्द (शक्ति का जीव रूप में बोधक) 'म' है। अतः 'मध्यपद' को पञ्चम खण्ड में **'त्रिपुरेश्वरी'** कहा गया है औश्र **मकारात्मक जीव** तथा **क्षकारात्मक** शिव का सामरस्य होने के कारण त्रिपुरश्वरी को **'क्ष्मात्माङ्गिनी'** कहा गया है।

रहस्य सिद्धान्तानुसार तीनों दशाओं (जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति) में एकरस चित्-अचित् तत्त्वों का जडात्मक एवं अजडात्मक **द्विविध स्पन्द होते हैं**। यही द्विविध स्पन्द युगपद् प्रवर्वितत होने के कारण **'यामल'** कहे जाते हैं।

जड़ाजड़ स्पन्द एकरस होते हैं। (अन्योन्यव्यापी होते हैं।) इसे **'सामरस्य'** कहते हैं।

सारांश यह है कि—प्रत्येक अवस्था में **स्पन्दयुग्म, यामलत्व** एवं **सामरस्य** आविर्भूत हुआ करते हैं। इसी दृष्टि को 'श्रीचक्र' के सन्दर्भ में सुषुप्ति आदि दशाओं के व्यञ्जक **'चतुर्दशार'** आदि चक्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सम्पूर्ण 'श्रीचक्र' की रचना इस प्रकार है—

(१) प्रथमतः लाल **'बिन्दु'** है। फिर उसके ऊपर,

(२) **एक** अधोमुखी **'त्रिकोण'** है। उसे ऊपर,

(३) **आठ त्रिकोण** बने हुए हैं—'अष्टार'।

(४) ('अष्टार' के ऊपर) **१० त्रिकोण** हैं—(बहिर्दशार हैं)

(६) ('बहिर्दशार' के ऊपर) **१४ त्रिकोण हैं**—(चतुर्दशार हैं)
अर्थात् **१४ त्रिकोणोंका एक चक्र है।**

(७) 'चतुर्दशार' के ऊपर आठ पद्मदलों का एक चक्र है ('अष्टदलपद्म')—इसी का नाम है।

(८) (अष्टदलपद्म के ऊपर) **१६ दलों का कमल है।** इसे ही **'षोडशदलपद्म'** कहते हैं।

(९) (षोडशदलपद्म के ऊपर) **वृत्तत्रय** एवं उसके ऊपर 'चतुरस्र' है।

१. * चतुर्दशार चक्र *

स्वातन्त्रानन्दनाथ की दृष्टि—'चतुर्दशार' शब्द दो अक्षरों से व्युत्पन्न हुआ है। (१) चतुर्दश (२) अर।

'चतुर्दश' = १४।। **'अर'** = अक्षर या वर्ण

'चतुर्दशार' = सुषुप्ति अवस्था। सुषुप्ति के द्योतक वर्ण **'स्वर'** हैं। अतएव **'चतुर्दशार चक्र'** हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ—वर्णों की समष्टि।

'चतुर्दशार' के भेद

(१)	(२)
'अजड़'	'जड़'
(प्रथम भाग)	(द्वितीय भाग)
ए, ओ (ह्रस्ववर्ण) (बिन्दु की कलायें) = ७ वर्ण।	जडात्मक विसर्ग की कलाओं के रूप में ७ दीर्घस्वर—आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ऐ, औ = ७ वर्ण

अजड़ एवं जड़ दों के प्रमाताद्वय—बिन्दु-विसर्ग को कलाओं के सहित 'अष्टदलपद्म' एवं 'षोडशदलपद्म' कहा गया है।

'विसर्ग'' की प्रधानता की स्थिति में **'विसर्ग'** का बाह्योन्मुखी प्रसरण होता है तथा **'बिन्दु'** उसके अन्तर में व्याप्त होकर स्थित रहता है।

बिन्दून्मेष होने पर बिन्दु-प्राधान्य होने की स्थिति में **'विसर्ग'** बिन्दु के अन्तर में समाविष्ट होता है एवं इस स्थिति में बिन्दु का बाह्योन्मुख अवस्थान रहता है। इस प्रकार **'बिन्दु' एवं 'विसर्ग'** की बाह्य एवं आभ्यन्तर स्थिति को प्रवृत्ति एवं निवृत्ति

रूप में प्रदर्शित करने के उद्देश्य से व्याप्ति-क्रम में 'बिन्दु' तथा 'विसर्ग' के स्वरूप-निर्वचनार्थ इन्हें (१) मातृका चक्र विवेक **'अष्टदल' एवं 'षोडशदल'** चक्र के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

'सुषुप्ति' क्या है? सुषुप्ति एक विश्रान्ति की अवस्था है जिसमें समस्त विश्व वासना के रूप में अवस्थित रहता है।

'विश्व' का स्वरूप क्या है? विश्व इच्छा-ज्ञान एवं क्रिया की त्रिपुटी की समष्टि है।

(१) 'विसर्ग' की इच्छा का प्रतीक 'इकार' है।

(२) 'बिन्दु' की इच्छा का प्रतीक 'इकार' है।

(३) 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' का प्रतीक = 'ऋ' एवं 'ऌ' है।

'बिन्दु' 'विसर्ग' एवं अकार का सम्बन्ध—

संकोच एवं संकोच-त्याग के कारण 'अकार' ही **'बिन्दु' एवं 'विसर्ग'** के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। (अ→बिन्दु एवं विसर्ग)।।

संकोच = भेद, द्वैत। **संकोच-त्याग** = अभेदस्वरूपता

निष्कर्ष—(१) **'अकार'** ही भेदस्वरूप **'विसर्ग'** है।

(२) **'अकार'** ही अभेदस्वरूप **'बिन्दु'** है।

(३) 'बिन्दु' एवं 'विसर्ग' का सामरस्यपद = **'अकार'** है।

(४) अकार की सहायता के बिना बिन्दु (अं) एवं विसर्ग (अः) का उच्चारण नहीं है।

निष्पन्द सामरस्यपद 'अकार'

'इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' के द्योतक	'इकार', 'उकार', 'ऋकार', 'ऌकार' (का स्पन्द हुआ करता है।)

(१) जब यह **'स्पन्द'** विसर्ग रूप में हुआ करता है तब प्रमातृभूत (प्रमाता) विसर्ग रूप में 'अकार' के साथ ही—इकार, ऋकार का विसर्ग प्रमाता की 'इच्छा', 'ज्ञान', एवं 'क्रिया' के द्योतक के रूप में बहिर्मुख रूप में स्पन्दायमान होता है।

(२) जब **बिन्दु रूप अकार** का स्पन्द होता है तब निवृत्ति रूप वर्ण चतुष्टय (अ, इ, ऋ, ऌ) का अकार के गर्भ से आविर्भाव हुआ करता है।

(३) उपनिषदों में कहा गया है कि 'अकार' से ही बिन्दु-विसर्ग का अन्त-बाह्य स्पन्द हुआ करता है।

(४) निःशेष विश्व की पञ्चभूतात्मक सृष्टि भी **'अकार'** से होती है तथा मातृका वर्णों का उद्भव भी अकार से ही होता है। उनकी **विश्रान्तिभूमि** भी **'अकार'** ही है।

'मातृकाचक्रविवेक' के द्वितीय खण्ड के तृतीय सूत्र में **प्राणवायु की अल्पवृत्ति एवं महावृत्ति** के सादृश्य के आधार पर **वर्णों एवं पञ्चमहाभूतों** में भी सादृश्य **स्थापित** किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार—

(क) कण्ठ से उत्पन्न होने वाले वर्ण 'अकार' में प्राण की महावृत्ति है।

(ख) **'अकार'** प्रथमोच्चरित तथा महावृत्तिस्वरूप होने के कारण **'शिवस्वरूप'** है।

'अकारः सर्व वर्णाग्रयः प्रकाशः परमः शिवः॥—कहा ही गया है।

'अकारः वै सर्वावाक्' भी (श्रुति में) कहा गया है।

तांत्रिकों ने **अकार को देवी का अक्षय स्वरूप** भी स्वीकृत किया है—

'वन्देतामहमक्षय्यामकाक्षरूपिणी ॥'

भृर्तहरि की दृष्टि—(शब्द के विषय में)

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥'[१]

२. 'श्रीचक्र' का क्या महत्व है?

(१) **''चक्रराज'' ग्रहस्वरूप है—**

आचार्य भास्करराय कहते हैं—

''रैवादलकोणगर्णर्घटनाच्चक्रे **गणेशत्वम्**।
त्रैलोक्यमोहनाद्यैर्नवभिश्चक्रैर्**ग्रहत्वं** च ॥''

(२) **'चक्रराज' नक्षत्रस्वरूप है—**

आचार्य भास्करराय कहते हैं—

'वृत्तत्रयधरणीत्रयमन्वश्राणां विभज्य गणनेन।
सप्तभिरितरैश्चक्रैश्चक्रे **नक्षत्ररूपत्वम्**।'

(३) **'चक्रराज' योगिनीस्वरूप है—**

आचार्य भास्करराय कहते हैं—

स्थितिसंसृतिचक्रे द्वे पद्मे द्वे वृत्तभूगृहे च द्वे।
एवं षड्भिर्योगाच्छ्रीचक्रं **योगिनीरूपम्** ॥९४॥

---

१. वाक्यपदीय
२. वरिवस्यारहस्यम्

३. * दशार द्वय *

श्रीचक्र के अन्तर्गत **'अन्तर्दशार'** एवं **'बहिदर्शार'** नाम के दो दशार (दशार युग्म) अवस्थित है। ये १०-१० वर्णों के हैं। ये जाग्रत अवस्था के प्रतीक हैं।

'दशारद्वय' विसर्गात्मक संसरण की अन्तिम सीमा है। इस अवस्था में **'शिव'** पूर्ण संकोच ग्रहण करके **जीव भाव में अवतरित होते हैं।**

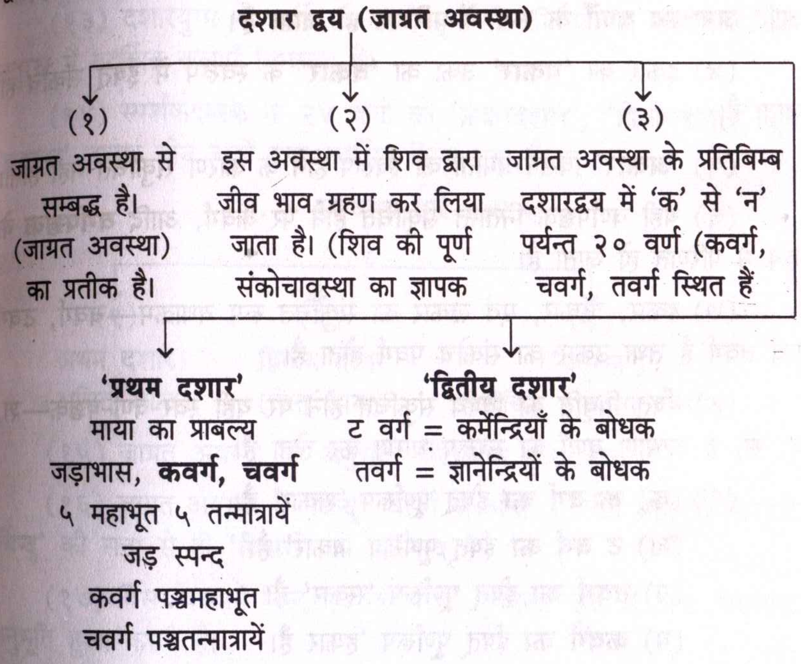

दशार द्वय (जाग्रत अवस्था)

(१) जाग्रत अवस्था से सम्बद्ध है। (जाग्रत अवस्था) का प्रतीक है।

(२) इस अवस्था में शिव द्वारा जीव भाव ग्रहण कर लिया जाता है। (शिव की पूर्ण संकोचावस्था का ज्ञापक

(३) जाग्रत अवस्था के प्रतिबिम्ब दशारद्वय में 'क' से 'न' पर्यन्त २० वर्ण (कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग स्थित हैं

'प्रथम दशार'
माया का प्राबल्य
जड़ाभास, **कवर्ग, चवर्ग**
५ महाभूत ५ तन्मात्रायें
जड़ स्पन्द
कवर्ग पञ्चमहाभूत
चवर्ग पञ्चतन्मात्रायें

'द्वितीय दशार'
ट वर्ग = कर्मेन्द्रियाँ के बोधक
तवर्ग = ज्ञानेन्द्रियों के बोधक

(१) 'स्वप्न' एवं 'सुषुप्ति' दशाओं को पूर्ण संकोच की अवस्था नहीं कह सकते अतः इन अवस्थाओं में स्थूल रूप में पञ्चभूतों का उन्मेष नहीं होता। जाग्रत अवस्था पूर्ण संकोच की अवस्था है। अतः इसी अवस्था में ५ भूतों का उन्मेष हो पाता है।

'विश्रान्तिस्वरूपा' सुषुप्ति की दशा से (१) जाग्रत एवं (२) स्वप्नात्मक द्विविधसंसरण हुआ करते हैं।

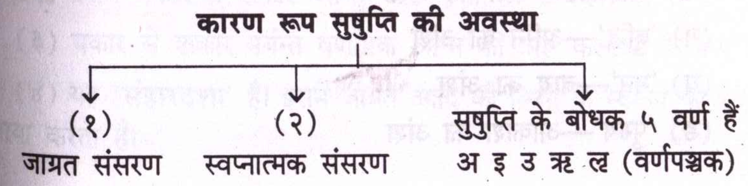

कारण रूप सुषुप्ति की अवस्था

(१) जाग्रत संसरण

(२) स्वप्नात्मक संसरण

सुषुप्ति के बोधक ५ वर्ण हैं
अ इ उ ऋ ऌ (वर्णपञ्चक)

(जाग्रत एवं पद के बोधक)—स्पर्श अन्तस्थ वर्णों की उत्पत्ति।

(१) **कारण रूप सुषुप्ति के बोधक वर्ण** = अ, इ, उ, ऋ, ऌ।

(२) अ, इ, ऊ, ऋ, ऌ (जाग्रत एवं स्वप्न दशा के बोधक) 'स्पर्श' एवं 'अन्तस्थ' वर्णों की उत्पत्ति होती है।

(३) **अकार आदि वर्णपञ्चक** ईषत् स्पृष्टता (ईषत् संकोच) के कारणयकार आदि **अन्तःस्थ वर्णों के रूप में परिणत हो जाता है।**

(४) इकार का **'यकार'** उका का **'वकार'** के स्वरूप में ईषत् संकोच हो जाता है।

(५) **'अकार'** विसर्ग-प्रमाता का स्वरूप होने के कारण संकुचित नहीं होता।

(६) यही वर्णपञ्चक नितान्त संकुचित होने पर कवर्ग, आदि **वर्गपञ्चक** के रूप में परिणत हो जाता है।

(७) इकार, ऋकार, एवं ऌकार का संकुचित रूप यथाक्रम—चवर्ग, टवर्ग एवं तवर्ग है तथा उकार का संकोच पवर्ग होता है।

(८) ईषत् विवृति का विषय संकुचित होने पर यही स्वर-वर्ण-पञ्चक—श, ष, स, ह ऊष्माण वर्णों का स्वरूप धारण कर लेता है।

(९) (क) **क वर्ग का** ईषत् पूर्णरूप 'शकार' है।

(ख) **ट वर्ग का** ईषत् पूर्णरूप 'षकार' है।

(ग) **तवर्ग का** ईषत् पूर्णरूप 'सकार' है।

(घ) **कवर्ग का** ईषत् पूर्णरूप 'हकार है।

(५) **कारण** रूप आदि वर्णपञ्चक की दशा विशेष कार्यरूप समस्त वर्ण है।

(क) अवरोह में **मकार से पकार** पर्यन्त वर्ण (म। भ। ब। फ। प) क्रमशः (१) आत्मा, (२) मन, (३) बुद्धि, (४) अहङ्कार एवं (५) प्रकृति के बोधक हैं।

(१०) **पवर्ग**—पृथ्वी आदि पञ्चतत्त्वों का बोधक भी है अतः

(क) 'प्रकृति'—पृथ्वी का अंश

(ख) 'अहंकार'—जल का अंश

(ग) 'बुद्धि'—अग्नि का अंश

(घ) 'मन'—वायु का अंश

(ङ) 'पुरुष'—आकाश का अंश

(११) इसी प्रकार कवर्ग आदि **वर्गचतुष्ट** में भी प्रथम वर्ण से अन्तिम वर्ण तक पृथ्वी आदि तत्त्वों का रूप प्रतिपादित किया गया है।

(१२) प, फ, ब, भ वर्ण चतुष्टय—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग द्वारा बोध्य पृथ्वी आदि तत्त्वों के बीज हैं। अतः 'श्रीचक्र' के अन्तर्गत **पवर्ग** के चार वर्णों को **'रवि'** के बिम्बस्वरूप होने के कारण **'चतुरस्र चक्र'** द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

(१३) दशारयुग्म में प्रदर्शित कलाएँ सूर्य की रश्मियों का स्वरूप है तथा चतुरस्र में प्रदर्शित कलाएँ बिम्बरूप हैं।

(१४) स्पर्शकदम्बक के २४ वर्णों को **'प्रथमदशार'**, **'द्वितीयदशार'** एवं **'चतुरस्र'** नामक तीन चक्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

४. * स्पन्दत्रय एवं चक्र *

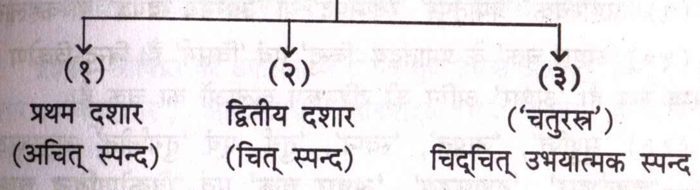

(१५) जाग्रत अवस्था की **अनुभूति भेदात्मक** हुआ करती है।

(१६) जाग्रत अवस्था में **'बिन्दु'** विसर्ग के अन्तः में लीन रहता है फिर भी **'बिन्दु'** की सत्ता से ही **'विसर्ग'** का अस्तित्व है।

(१७) विसर्गावस्थाने बिन्दु एवं विसर्ग की पृथकता रहती है अतः भेदात्मक अनुभूति हुआ करती है।

चतुर्दशार की भाँति जाग्रदात्मक सौरखण्ड में भी बिन्दु एवं विसर्गात्मक प्रमाताद्वय के चतुरस्र चक्र द्वारा चित्रित किया गया है।

५. * अष्टार चक्र *

अष्टार चक्र का स्वरूप—

(१) **'स्वप्नावस्था'** का प्रतिबिम्ब 'अष्टारचक्र है।

(२) इसमें यकार से शकार पर्यन्त आठ वर्णों का सन्निवेश है।

(३) यकार से शकार पर्यन्त वर्णाष्टक अग्नि की अष्ट कलाओं के रूप हैं।

(४) यह **'संहारदशा'** है। इसमें जाग्रत आदि की क्रिया के स्वरूप का संहार हो जाया करता है।

(५)

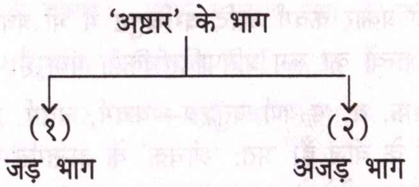

(६) इन भागों के द्वारा चित् एवं चैत्यात्मक स्पन्द युग्म का अवबोध होता है।

(७) य, र, ल एवं व वर्ण—वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी के **बीज** हैं। ये ईषत् सृष्टि के कारण जडात्मक हैं अतः भेदात्मक हैं।

(८)श, ष, स, ह—शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव एवं शक्तितत्वों के ज्ञापक हैं। ये ईषत् विवृत्ति के कारण चिद्रूप हैं।

(९) 'अष्टारचक्र' 'प्रमातृपुर' 'स्वप्नपद' या **'आग्नेय खण्ड'** भी कहलाता है।

(१०) 'अष्टार चक्र' के प्रमातद्वय 'बिन्दु' एवं 'विसर्ग' हैं। बिन्दु-त्रिकोण अग्नि का बिम्ब रूप है। 'अष्टार' अग्नि की रश्मिरूप कलाओं का चक्र है।

(११) 'सुषुप्ति', 'जाग्रत', 'स्वप्न', 'तुर्य, एवं 'तुर्यातीत' अवस्थाओं के द्योतक—**'चतुर्दशार', 'दशारद्वय', 'अष्टार चक्र'** एवं **'त्रिकोणबिन्दु चक्र'** हैं।

(१२) जो दार्शनिक चार दशायें ही स्वीकार करते हैं उनकी दृष्टि से 'बिन्दु-त्रिकोण' एक चक्र है। **पञ्चम अवस्था** भी स्वीकार करने वाले कहते हैं तथा तुर्य को विकल्पात्मक मानने के कारण निर्विकल्प नहीं मानते वे **'तुर्यातीतावस्था'** (पञ्चमावस्था) को ही सर्वथा निर्विकल्पात्मक स्वीकार करते हैं।

इस स्थिति में 'त्रिकोण' एवं 'बिन्दु' पृथक-पृथक चक्र माने जाते हैं। इस प्रकार

(क) 'त्रिकोण' तुर्य का द्योतक है।

(ख) 'बिन्दु' तुर्यातीत अवस्था का द्योतक है।

आचार्य पुण्यानन्द की दृष्टि—आचार्य पुण्यानन्द कहते हैं कि अष्टकोणों वाला चक्र जो कि **'श' 'ष' 'स'** एवं पवर्ग से मिलकर निर्मित होता है—

"अम्बिकारूपमेवेद**मष्टारस्थं** स्वरावृतम् ।। (यो०हृ०)

'अष्टकोणचक्र' ही **'सर्वरोगहरचक्र'** है। यह वसुकोण है। यह मध्यत्रिकोण का विकास मात्र है।

'अष्टकोणों वाला चक्र मध्यकोण का विस्तार है—'श ष स पवर्गमयं तद्वसुकोण मध्यकोण विस्तारः' में ९ कोण बिन्दु के साथ मिलकर **'दशक'** का निर्माण करते हैं जो कि चित् के प्रकाश से प्रकाशित है।

शरीर स्थान	चक्र का नाम	श्रीचक्र के अंग का नाम	दल संख्या	श्रीचक्र के अंगो का अन्य नाम
(१) भ्रूमध्य	'आज्ञाचक्र'	'सर्वानन्दमय'	'द्विदल'	'बिन्दु'
(२) लम्बिका	'इन्द्रयोनी'	'सर्वसिद्धिप्रद'	'अष्टदल'	'त्रिकोण'
(३) कण्ठस्थल	'विशुद्धिचक्र'	'सर्वरोगहर'	'षोडशदल'	'अष्टकोण'
(४) हृदयप्रदेश	'अनाहत चक्र'	'सर्वरक्षाकर'	'द्वादशदल'	'अन्तर्दशार'
(५) नाभिप्रदेश	'मणिपूर'	'सर्वार्थसाधक'	'दशदल'	'बहिर्दशार'
(६) बस्ति	'स्वाधिष्ठान'	'सर्वसौभाग्यदायक'	'षडदल'	'चतुर्दशार'
(७) मूलाधार चक्र	'मूलाधार'	'सर्वसंभोषण'	'चर्तुदल'	'अष्टदल'
(८) तदधोदेश	'कुल'	'सर्वाशापरिपूरक'	'षड्दल'	'षोडशदल'
(९) तदधोदेश	'अकुल'	'त्रैलोक्यमोहा'	'सहस्रदल'	'भूपुर'[1]

[२] * श्रीविद्या की उपासना में 'श्रीयंत्र' एवं उसके चक्रों की उपादेयता *

प्रश्न—श्रीविद्या की उपासना में श्रीयंत्र एवं उसके अङ्गभूत 'बिन्दू', 'त्रिकोण', 'दशार', 'चतुर्दशार', 'अष्टदलपद्म', 'षोडशदल' एवं 'वृत्तत्रय' के ज्ञान की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—(१) 'श्रीयंत्र' की पूजा (२) **सहस्रनाम** का पाठ एवं (३) 'श्रीविद्या' का **जप** ही तो "श्रीविद्या" की प्रधान पूजा है अतः "श्रीयंत्र" एवं तन्निहित चक्रों की उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

(१) **योगिनीहृदयकार की दृष्टि**—'यागिनीहृदय' में 'चक्रेश्वरीसमायुक्त' नवचक्रों का श्रीविद्या की पूजा में परिचिन्तन आवश्यक है—

'अकुलादिषु पूर्वोक्त स्थानेषु परिचिन्तयेत् ।
चक्रेश्वरी समायुक्तं नव चक्रं पुरोदितम् ।।'[2]

अकुलादि स्थान (९ चक्रों के स्थान)

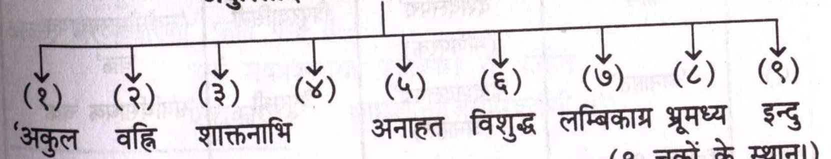

—(९ चक्रों के स्थान।)

---

१. नवत्रिकोण स्फुरित प्रभारूप दशारकम् ।
शक्त्यादिनवपर्यन्तदशार्णस्फूर्ति काकम् ।।

२. योगिनीहृदयदीपिंका (मंत्रसंकेत)।

योगी अमृतानन्द कहते हैं—

(१) 'आदि शब्देनाष्टौ 'वह्नि'-'शाक्त'-'नाभि'-'अनाहत'-'विशुद्ध'-'लम्बिकाग्र'-'भ्रुवोरन्तर'-'इन्दवो' गृह्यन्ते।

(२) 'पुरोदितं चक्रसङ्केतोदितं नवचक्रं चक्रेश्वरी समायुक्तं नवचक्रेश्वर्याधिष्ठितं परिचिन्तयेत।[1]

भास्करराय मखिन कहते हैं—

(१) 'अकुलं विषुराधार स्वाधिष्ठानंथ मणिपूरमनाहतं विशुद्धिरिन्द्रियोनिराज्ञा चेति नवस्थानेष्वपि क्रमेण तत्तद्विद्यान्ते तत्तच्चक्रेश्वरी तत्तच्चक्रनामनी उल्लिख्य न्यसेत। 'अं आं सौः त्रिपुरासहिताय त्रैलोक्य मोहनचक्राय नमः''—इत्यादयो मन्त्रा ऊह्याः।। **बाह्याङ्गेषु**तत्तन्मन्त्रान्तेऽनामिकाङ्गुष्ठायाँ स्पर्शरूपो न्यासः। आन्तराङ्गेषु तु स्पर्शासंभवाच्चिन्तनरूप एवेत्याशयने परिचिन्त ये दित्युक्तम् ।।'

(२) उक्तं च **'दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्'**

'पुष्पैर्वाऽनामया वाऽपि मनसा वा न्यसेदणाम् ।।'

(३) 'अत्र च देवता शरीरे न्यासदशायां **पुष्पैः** स्वस्य बहिः शरीरे न्यासदशाया**मनामया**, स्वस्यैवान्तः शरीरे न्यासदशायां **मनसेति** व्यवस्थितविकल्पार्थो वा शब्द इति सम्प्रदायः।।'[2]

संख्या	चक्र-स्थान (१)	पद्मदल (२)	अधिष्ठात्री (३)	चक्र का नाम (४)
(१)	'अकुल' सुषुम्ना के मूल में स्थित	सहस्रदल (अरुण वर्ण का सहस्रदल कमल)	त्रिपुरा	'त्रैलोक्यमोहन' चक्र
(२)	'वह्नि' का आधार	चतुर्दलपद्म	त्रिपुरेशी	'सर्वाशापरिपूरकचक्र'
(३)	'शाक्त'	षड्दलपद्म	त्रिपुरसुन्दरी	'सर्वसंक्षोभणचक्र'
(४)	'नाभि'	'दशदलपद्म' (मणिपूरक)	त्रिपुरवासिनी	'सर्वसौभाग्यदायक चक्र'
(५)	'अनाहत'	'द्वादशदलपद्म' (अनाहत)	त्रिपुराश्री	'सर्वार्थसाधक चक्र'
(६)	विशुद्धि/विशुद्ध	षोडशदलपद्म (विशुद्धाख्यचक्र)	त्रिपुरमालिनी	'सर्वरक्षाकरचक्र'
(७)	तालुमूल/ लम्बिकाग्र	'अष्टदलकमल'	त्रिपुरासिद्धि	'सर्वरोगहरचक्र'[1]
(८)	भ्रूद्वय का मध्य स्थान	द्विदलपद्म	त्रिपुराम्बिका	'सर्वसिद्धिप्रदचक्र'
(९)	ललाट या इन्दु स्थान	(बिन्दु में) बिन्दु चक्र	महात्रिपुर सुन्दरी	'सर्वानन्दमयचक्र' 'इन्दौ ललाटे बिन्दौ महात्रिपुर सुन्दर्यधिष्ठितं सर्वानन्दमयं चक्रं भावयेत् ।'[2]

---

१. योगिनीहृदयदीपिका

२. सेतुबन्ध (मन्त्रसंकेत ८)

'योगिनीहृदय' में इन चक्रों/पद्मों की अधिष्ठात्री शक्तियों के नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं—

'तासां नामानि वक्ष्यामि यथानुक्रमयोगतः ।
तत्राद्या त्रिपुरादेवी द्वितीया त्रिपुरेश्वरी ।
तृतीया च तथा प्रोक्ता देवी त्रिपुरसुन्दरी ।
चतुर्थी च महादेवी देवी त्रिपुरवासिनी ।
पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात् षष्ठी त्रिपुरमालिनी ।
सप्तमी त्रिपुरासिद्धिरष्टमी त्रिपुराम्बिका ।
नवमी तु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी ।
पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते ।।'[3]

योगीअमृतानन्द कहते हैं कि पूजन-क्रम यह है कि त्रैलोक्यमोहन चक्र से आरम्भ करके प्रत्येक चक्र की यथाक्रम पूजा करनी चाहिए—

'त्रैलोक्यमोहनं चक्रमारभ्य प्रतिचक्रमेकैकं क्रमेण पूजयेत् ।।'[4]

यद्यपि इस शक्ति को ९ आकारों में (९ अधिष्ठात्रि शक्तियों के रूप में) पूजा जाता है किन्तु तत्त्वतः मूल शक्ति तो एक ही है जो कि—'एकाकारा', 'आदिशक्ति', 'अजरा मरणकारिणी' कहा गया है—

'एवं नवप्रकाराद्या पूजाकाले तु पार्वति ।
एकाकारा ह्याद्यशक्तिरजरामरकाणि ।।'[5]

---

१. सेतुबन्ध

२. योगिनहृदयदीपिका (८)

३. योगिनीहृदय (मंत्रसंकेत)

४. योगिनीहृदयदीपिका (मंत्रसंकेत)

५. योगिनीहृदय (मन्त्रसंकेत)

सकलवर्णादिभूत प्रकाशात्मा परशिव की पराशक्ति विमर्शरूपा है, एकाकारा है और **'परापूजा'** के समय वह उसी एकाकारा रूप में ही भावित है—

'सकलवर्णादिभूतस्य प्रकाशात्मनः परशिवस्य शक्तिर्विमर्शरूपिणी **एकाकारा** परापूजा काले।'[1]

इसी बात को और सुस्पष्ट करते हुए **भास्करराय** कहते हैं—

'आद्यस्य शिवस्य शक्तिरप्याद्या पूजाकाले नवप्रकाराऽपि वस्तुत एकाकारैव।'[2]

पुण्यानन्द कहते हैं—दशक के दो प्रकाश १०-१० कोणों वाले दो चक्रों के रूप में फैले हुए हैं। जिनके आन्तर १० कोणों के समूह तवर्ग एवं टवर्ग तथा बाह्य १० कोणों के समूह चवर्ग एवं कवर्ग को प्रदर्शित करते हैं।

इन प्राथमिक चार चक्रों के प्रकाश **'बहिर्दशार'** चक्र संयुक्त हैं। फिर १४ कोणों वाला यह चक्र प्रकट होता है जिसमें 'अ' से लेकर अन्य १४ स्वर स्थितहैं।[3]

कवर्ग से आरंभ होने वाले अक्षरों के अष्टवर्ग जो कि वैखरी शक्तिरूपात्मक हैं, **'अष्टदलकमल'** ('सर्वसंक्षोभणचक्र) के दलों पर स्थित हैं और **'षोडशदलपद्म'** के दलों पर स्वरगण स्थित हैं।

अष्टदल एवं **'षोडशदलपद्म'** के दलों पर स्वरगण स्थित हैं। अष्टदल एवं षोडशदल के ऊपर तीनवृत्त बिन्दुत्रय से उद्भूत तेजस्त्रय के विकार हैं अर्थात् सूर्य-सूर्य-अग्न्यात्मक हैं। ये तीनो वृत्त **भूपुर** में अब स्थित हैं जहाँ कि पश्यन्ती प्रभृति तीन माताएँ विश्राम ग्रहण करती हैं।[4]

'पदक्रम' पदविक्षेप' एवं 'क्रमोदय' के रूप में स्थित है। यह **आवरणशक्ति** एवं **'गुरुमण्डल'** के रूप में द्विप्रकारक है। ये दोनों माता त्रिपुरा के चरण पद्मों के प्रसरण (गति) हैं।

आवरणदेवता क्या हैं? वही परामहेशी **जब चक्र के रूप** में परिणत हो जाती है तब उसके शरीरावयव आवरण देवता के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। वे त्रिपुरसुन्दरी देवी बिन्दुत्रय चक्र (सर्वानन्दचक्र) में आसीन हैं और कामेश्वर के क्रोड में अवस्थित हैं।

---

१. योगिनहृदयदीपिका (८)
२. सेतुबन्ध (मं०सं० १३)
३. कामकलाविलास
४. कामकलाविलास
५. कामकलाविलास

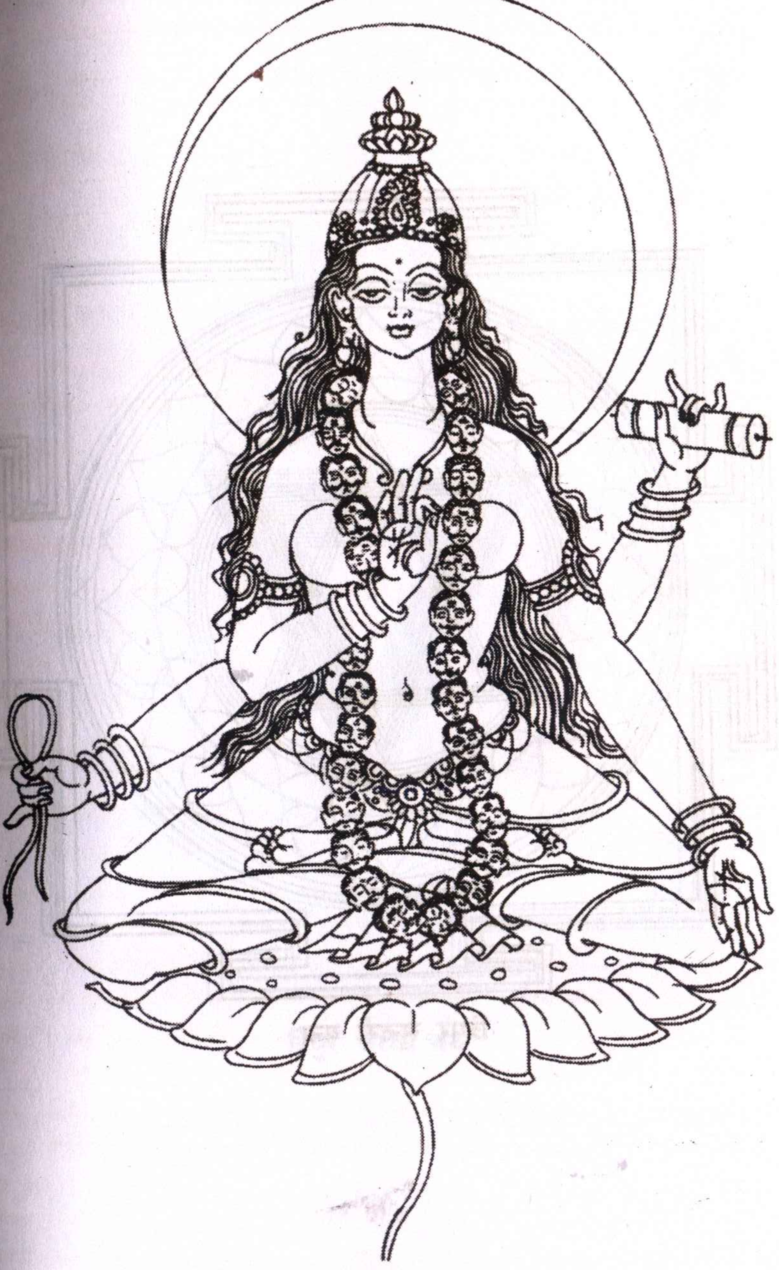

त्रिपुर भैरवी

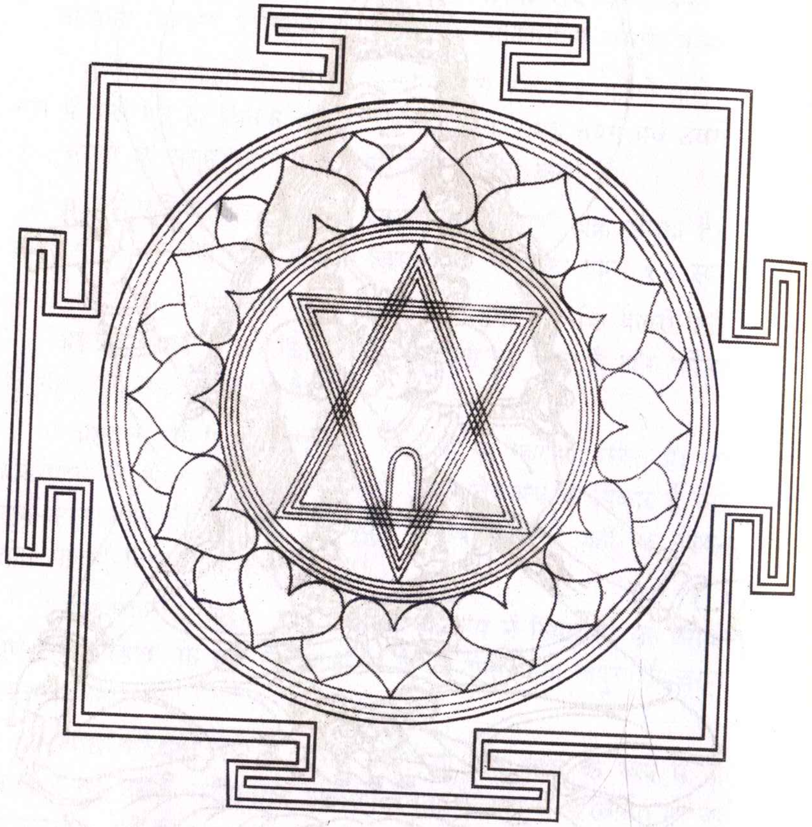

त्रिपुर सुन्दरी यन्त्र

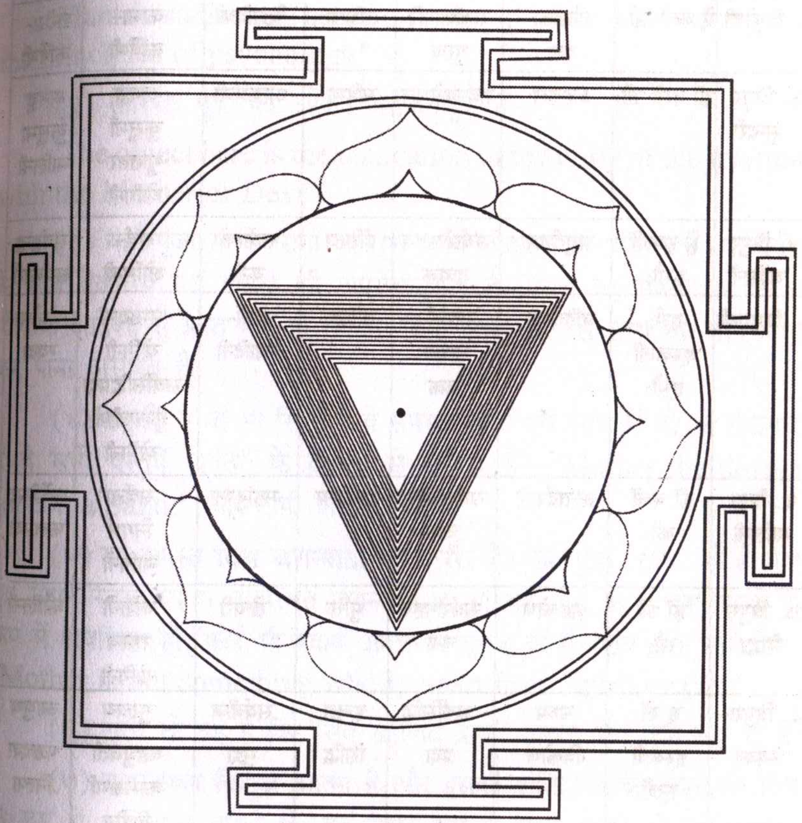

त्रिपुर भैरवी यन्त्र

* श्रीचक्र-विवरण *

आवरण क्रम/ एवं	बीज मंत्र	श्रीचक्र के अंगभूत चक्र	अङ्गभूतचक्र का नाम	सिद्धि का नाम	मुद्रा का नाम	योगिनी	अन्त पर्यन्त
१. त्रिपुरा	अं आं सौः	चतुरस्र	त्रैलोक्य मोहन	अणिमा	संक्षोभिणी	अणिमादि प्रकट योगिनी	त्रिखण्डा पर्यन्त
२. त्रिपुरेशी	ऐं क्लीं सौः	षोडश दल	सर्वाशापरि पूरक	लघिमा	विद्राविणी	कामा-कर्षिणी	शरीरा-कर्षिणी
३. त्रिपुर सुन्दरी	ह्रीं क्लीं सौः	अष्टदल	सर्वसंक्षोभण	महिमा	आकर्षणी	अनङ्ग कुसुमां गुप्ततर योगिनी	अनङ्ग कुसुमा मालिनी
४. त्रिपुर वासिनी	हैं ह्क्लीं ह्सौः	चतुर्दशार	सर्वसौभाग्य दायक	ईशित्व	सर्ववशं करी	सर्व-क्षोभिणी	सर्वद्वन्द्व क्षयंकारी
५. त्रिपुराश्री	ह्सैः ह्स्कलीं ह्सौः	बहिर्दशार	सर्वार्थ-साधक चक्र	वशित्व	सर्वो-न्मादिनी	सम्प्रदाय योगिनी सर्वसिद्धिप्रदा कुलात्तीर्ण योगिनी	सर्वसौभा-ग्यदा
६. त्रिपुर मालिनी	ह्रीं क्लीं ब्लें	अन्तर्दशारं	सर्वरक्षाकर चक्र	प्राकाम्य	महांकुशा	सर्वज्ञा निगर्भ योगिनी	सर्वेप्सित फलप्रदा
७. त्रिपुरा सिद्धा	ह्रीं श्रीं सौः	अष्टकोण	सर्वरोगहर चक्र	भुक्ति	खेचरी	वशिनी रहस्य योगिनी	कौलिनी
८. त्रिपुरा-म्बिका	ह् स्त्रैं ह्स्क्लीं ह्स्त्रौं	मध्य त्रिकोण	सर्वसिद्धि प्रदा	इच्छा सिद्धि	सर्वबीज मुद्रा	गुरुत्रय षड्युवती कामेश्वर्या द्वितीय अतिरहस्य योगिनी	आयुध पञ्चदश नित्या
९. महा त्रिपुर सुन्दरी समस्त चक्रेश्वरी	तुरीया विद्या	बिन्दु	सर्वानन्द मय चक्र	प्राप्ति सर्व काम सिद्धि	योनि त्रिखण्डा	महोद्याण पीठ, परापर रहस्य योगिनी[1]	पञ्च पञ्च देवता। षड् दर्शन समय देवता

---

[1] उमानन्दनाथ-नित्योत्सव

[३] तान्त्रिक पूजा में निहित सिद्धान्त—

(१) **तान्त्रिक साधना** मनोविज्ञान के गंभीर सिद्धान्तों पर स्थित है। समस्त तांत्रिक पूजा का मूलाधार **मनोविज्ञान** है।

सरजानवुडरफ ने ठीक कहा है कि—

"Tantric sadhana is based on a very profound knowledge of the principles of psychology."

(२) तान्त्रिक पूजा का उद्देश्य अद्वैतानुभूति है—

'The object here is the realization of the unity of the jivatma with the Mother or Devi"

(३) यहाँ पूजा या उपासना का मूल लक्ष्य जीवात्मा का जगन्माता (या देवी) के साथ ऐकात्म्य एवं एकता की अपरोक्षानुभूति है—सत्य का साक्षात्कार, केवल मौखिक आदेशों से प्राप्त नहीं हो सकता। **बिना स्वानुभूति के सत्य का** ज्ञान प्राप्त कर पाना असंभव है।

(४) **प्रकृति** में जो भी स्थित हैं वे समस्त पदार्थ एवं शरीर में जो भी विद्यमान हैं वे सभी वस्तुएँ 'शक्ति' के देवपक्ष से सम्बद्ध हैं—"Mother the devata aspect, a Sakti." और सभी शक्तिरूप हैं।

(५) यह समस्त **विश्व जगन्माता का शरीर है।** सब कुछ 'शक्ति' ही है चाहे वह अपने स्वस्वरूप में अवस्थित जगन्माता हो या वह विश्व के प्रत्येक पदार्थ के रूप में अवस्थित हो। कोई भी पदार्थ आत्मा से पृथक कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है—"Mother is not something wholly apart from Spirit or God"

(६) सत्य तो यह है कि "सर्व खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है।

(७) ब्रह्मस्वरूप विशुद्ध आत्मा है और इसकी शक्ति जो कि अपने को विश्व के रूप में अभिव्यक्त करती है, वह स्थूल रूप में व्यक्त होकर भी 'Material form" में परिणत होकर भी—वही आत्मा है।

'आद्याशक्ति' ही संसार के चाराचर, जड़-चेतन, पदार्थ एवं आत्मा आदि सभभ रूपों में प्रसृत है।

'सोऽहम्' की (She I am) की अनुभूति ही पूजा की सफलता है। साधक निम्न एवं उच्चतर शक्तियों की उपासना करते हुए अन्त में सर्वोच्च शक्ति (जगन्माता) की उपासना करता है।

जगन्माता को छोड़कर संसार में अन्य कोई पदार्थ नहीं है। पिता अपनी पत्नी के माध्यम से पुत्र के रूप में जन्म लेता है अतः माता भी पुत्र के रूप में प्रविष्ट हो जाती है अतः सर्वत्र शक्ति ही शक्ति है।

कामेश्वर 'कामेश्वरी' से अपृथक या एकीकृत है। साधक अपने को देवी के साथ एकीकृत या अभिन्न मानता है।

मानव स्वयं एक 'श्रीयन्त्र' है। और साधक अपने को ऐसा अनुभव भी करता है। अनुभूति की यह दृढ़ता निरन्तराभ्यास से ही प्राप्त हो पाती है।

तांत्रिक देवता के मण्डल का ध्यान करता है।

सरजान वुडरक ने ठीक ही कहा है कि श्रीचक्र की साधना का उद्देश्य ज्ञाता (होता) (ज्ञान (अर्घ्य) एवं ज्ञेय (हविष) में अभिन्नता के (अद्वैतात्मक) बोध की अपर संज्ञा है—

"The object of worship of the indian Srichakra is the realization of hte inreparatenen of Jnata who is Hota, of Jnana and which is Arghya and Jneya which is Havih.[1]

विश्व में अभिव्यक्त समस्त रूपों में स्थित पदार्थ भी 'शक्ति' का ही एक रूप है। शक्ति के अतिरिक्त कोई भी वस्तु है ही नहीं अतः पदार्थ भी 'शक्ति' का ही अपनाएक रूप है। मस्तिष्क, मन, इन्द्रियाँ आदि सभी **आत्मा के ही रूप हैं**। समस्त विश्व आत्मा की ही अपनी अभिव्यक्ति है। विश्वात्मा ब्रह्म यका शिव शक्ति है।

यह शक्ति 'मूलाधार' में अवस्थित होने पर अपनी स्थिर स्थिति में 'कुण्डलिनी शक्ति' कहलाती है।

यही विश्वशक्ति **'प्राणशक्ति'** के रूप में भी अवस्थित है। साधक को शक्ति के इन विविध स्वरूपों में का साक्षात्कार करना चाहिए जिससे कि वह 'शक्ति' को उसके समस्त स्वरूपों में प्रत्यक्षीकृत कर सके—शक्ति को उसकी समग्रता में जान सके। एक सच्चा साधक अपने शरीर का एवं उसकी प्रत्येक क्रिया कार्य को 'शक्ति' या 'देवता' के रूप में देखता है। सामान्यतया शरीर को पृथक मानकर यह समझा जाता है कि शरीर का जो नियंत्रक है (स्वामी है) वही आत्मा और देवता है शरीर या पदार्थ नहीं किन्तु यह सत्य नहीं है।

'मन' स्वयं 'शक्ति' है। अतः 'मन' शक्ति की अभिव्यक्ति है।

---

[1] सर जॉन वुडरफ : तन्त्रराजतन्त्र (भूमिका)

शक्ति की सर्वानुस्यूतता का अनवरत ध्यान एवं अभ्यास करते हुए साधक को समस्त चक्रों में पूजा करनी चाहिए जिससे कि वे दैवीय बन जाते हैं।

जड़, चेतनाशून्य, स्थिर, एवं निष्क्रिय पदार्थ भी उक्ताभ्यास की अनवरतता के कारण चेतन, गतिशील एवं सक्रिय तथा 'शक्ति' का रूप दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मन दिव्य शक्ति एवं विश्व के ऐकात्म्य के सम्पर्क में निरन्तर रहकर स्वयं दिव्य होकर सर्वत्र 'सर्वचिन्मयवाद' का दृश्य देखने लगता है प्रत्येक वस्तु शक्ति का रूप है।

'तंत्रराजतंत्र' में **पूजा का स्वरूप** इस प्रकार है—

(१) साधक को चाहिए की भगवती की पूजा में (पूजा के बाद) वह यह अनुभव करे कि—

(क) मैं भगवती के समान हूँ।

(ख) मैं भगवती के साथ अभिन्न हूँ।

(ग) ये सिद्धियाँ प्रथमतः साधना में आत्मरक्षा के उद्देश्य से निष्पादित की जाती हैं।

(घ) मातृकाओं की पूजा का उद्देश्य अशुभ प्रवृत्तियों का शमन एवं सद्गुणों का आयत्तीकरण है।

मुद्रा शक्तियाँ, दिक्पाल, मातृकायें एवं सिद्धियाँ नवम् चक्र, 'त्रैलोक्यमोहन' का निर्माण करती हैं। भूपुर की आन्तरिक रेखा पर १०दिक्पालों की पूजा की जाती है।

(ङ) भूपुर के सर्वाधिक बाह्यवर्ती रेखा पर (On the outermost line of the BHUPUR) १० सिद्धियों की पूजा की जाती है। ये सिद्धियाँ अणिमादिक सिद्धियाँ हैं। **'मनोरमा'** के अनुसार ये**'नियति'** एवं ९ रसों से अभिन्न हैं। इनमें से ४ तो द्वारों पर हैं, ४ कोणों में हैं, **एक** ऊपर एवं **एक** नीचे है। मध्यवर्ती रेखा पर अष्टमातृकाओं की पूजा की जाती है। यह पूजा ४ द्वारों पर एवं चार कोणों पर सम्पन्न की जाती है। ये कौन हैं? ये ८ शक्तियाँ हैं—

(१) ब्राह्मी (२) माहेश्वरी (३) कौमारी (४) वैष्णवी (५) वाराही (६) इन्द्राणी (७) चामुण्डा (८) महालक्ष्मी। ये (१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह (५) मद (६) मात्सर्य (७) पाप एवं (८) पुण्य से निर्मित हैं।

(१) 'ब्राह्मी'—यह शक्ति **काम से** सम्बद्ध है क्योंकि वह सृजन करती है।

(२) 'माहेश्वरी' शक्ति **क्रोध से** से सम्बद्ध है क्योंकि यह ध्वंस एवं संहार करती है।

(३) **'कौमारी'** का **लोभ से** सम्बन्ध है क्योंकि वह नवयुवती है—यौवनसम्पन्ना है। अतः इच्छाओं एवं आकांक्षाओं से पूर्ण है।

(४) **'वैष्णवी'—'मोह से'** सम्बन्ध है क्योंकि वे अपने मोह के द्वारा सारे संसार को मोहित कर देती हैं।

(५) **'वाराही'—'मद' से** सम्बन्ध है क्योंकि सुअर जड़ एवं अत्यन्त अभिमानी प्राणी होता है।

(६) **'इन्द्राणी'—'मत्सर्य'** से सम्बन्ध है क्योंकि उसका पति इन्द्र अत्यन्त ईर्ष्यालु है।

(७) **'चामुण्डा'—'पाप'** से सम्बद्ध है क्योंकि उसके द्वारा या उसकी मध्यस्थता से आघात निष्पादित किया जाता है।

(८) **'महालक्ष्मी'—'पुण्य'** से सम्बद्ध है क्योंकि यह देवी अत्यन्त शीलवान है और साधकों को गुणों को प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त करती है।

* अ-क-थ चक्र *

गुरु का निवास
* अ-क-थ त्रिकोण *
'अकथादि चक्र' है।

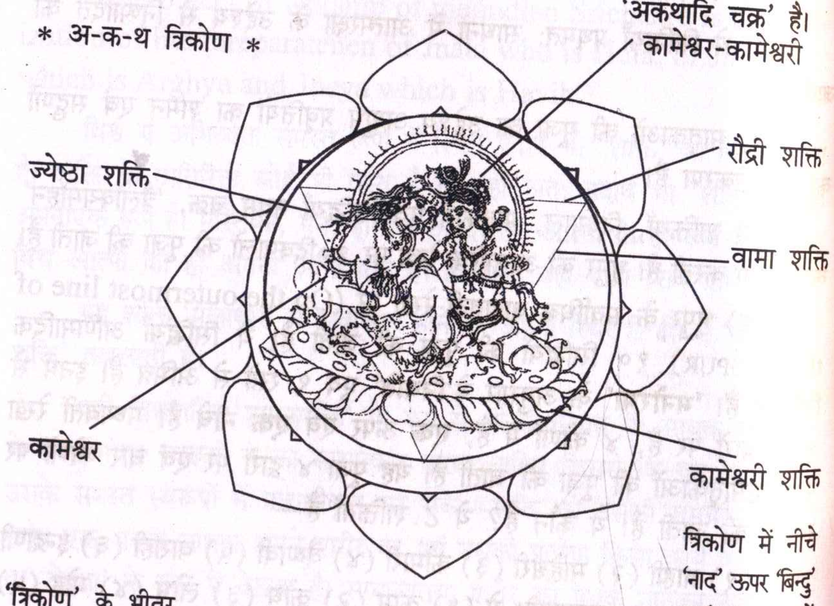

त्रिकोण में नीचे 'नाद' ऊपर 'बिन्दु' एवं मध्य में मणिपीठ है।

'त्रिकोण' के भीतर गुरु का ध्यान किया जाता है। 'त्रिकोण में 'मणिपीठ' के ऊपर श्रीगुरु है। मणिपीठ मण्डल चैतन्य है।

'मणिपीठ' के ऊपर तीन अग्नि शिखायें हैं। इनसे मणिपीठ आलोकित है।

'अकथादित्रिरेखाद्वित**त्रिकोणमेव** वा श्री गुरोः सदनम्।।' (श्रीविद्यारत्नसूत्रम् : गौड़पादाचार्य)

---

[४] * भगवती ललिता की पूजा : 'तन्त्रराजतन्त्र' की दृष्टि *

(भगवती ललिता की दैनिक पूजा)

'तन्त्रराजतन्त्र' के पञ्चम अध्याय में भगवती ललिता के दैनन्दिनी की पूजा पर प्रकाश डाला गया है।

एक आदर्श एक निष्ठदेवी-साधक देवी को अपने से भिन्न मानकर उनकी पूजा नहीं करता। प्रत्युत् देवी को अपने से अपृथक्, अभिन्न एवं एकीभूत रूप में अनुभव करता हुआ भगवती की पूजा करता है क्योंकि **'तंत्रराजतंत्र'** में कहा गया है—

'स्वात्मानम् तत्समम् स्मरेत् ।।'

साधक को 'देव्यात्मा' होना चाहिए।

[५] देवी (उपास्य) के साथ तादात्म्य की भावना—

शाक्त साधना का सर्वोच्च आदर्श यही है कि साधक यह अनुभव करने लगे कि—**'अहं देवी न चान्योऽस्मि'**।

उपनिषदों में जिस **ज्ञान-साधना का प्रतिपादन** किया गया है वहाँ भी इसी **अद्वैतानुभूति** को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि—'सर्वखल्विदं ब्रह्म''।

'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' 'शिवोऽहं' 'एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति' इन वाक्यों में जीवात्मा एवं ब्रह्म तथा **जगत का ब्रह्म** तथा **जीवात्मा एवं शिव** में ऐकात्म्य (तादात्म्य भाव) की घोषणा की गई है और उसे ही **ज्ञानमार्गी साधक का आदर्श** घोषित किया गया है।

इसी **अद्वैतानुभूति** को आचार्य शंकर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया था—

'श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः ।'

'काश्मीरी त्रिक दर्शन' के आचार्य जगत को मिथ्या नही मानते अतः उनकी दृष्टि में **अद्वैत का स्वरूप** शाङ्कर अद्वैत से थोड़ा भिन्न है क्योंकि वहाँ अद्वैत का स्वरूप 'स्व' में सभी को समाहित करने का है।

[६] शाक्ताद्वैत और काशमीरीय अद्वैत का स्वरूप

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
जीवात्मा और परमात्मा में एकता (अद्वैत)	परमात्मा और विश्व में एकता (अद्वैत)	परमात्मा और शक्ति (माया शक्ति में एकता	जीवात्मा और विश्व में एकता	जीवात्मा और शक्ति में एकता

शाक्तों की साधना का लक्ष्य—''सोऽहं'' की अपरोक्षानुभूति प्राप्त करना है। साधक को चाहिए कि वह अपने को **'देवी'** माने। वह **अपने को देवी में, देवी को अपने में** एवं दोनों को एक में अनुभूत करें।

'भगवती **ललिता साधक की स्वात्मा हैं**—

'स्वात्मेव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा ।।'[१]

साधक जैसे ही प्रातःकाल निद्रा से उठता है उसे सर्वप्रथम यह ध्यान करना चाहिए कि **'मैं त्रिपुरा हूँ'** ('त्रिपुरात्मानम्')। उसे यह भी चाहिए कि वह अपने **मस्तक में** भगवती के **'ज्योतिरूप'** (Sustrous Light form) **का ध्यान** करे। **'तन्त्रराजतन्त्र'** नामक ग्रन्थ में (श्लोक क्र० १९-२१ में) कहा गया है कि साधक को साधना के समय देवी के **रक्ताभ परिधान** के सदृश ही **आरक्तवस्त्र पहनना चाहिए**। इतना ही नहीं उसे **लालचन्दन, लालपुष्पमाला** एवं **लाल आभूषण** भी धारण करना चाहिए।

साधक को चाहिए कि वह पूजा के समय **आनन्दचित्त** (In a pleasant frame of mind) रहे और साथ ही कपूर के सुगन्ध से सुगन्धित रहे।

आसन—साधक को साधना के समय **पूर्वाभिमुख** होकर, **प्राणवायु को नियन्त्रित** करके **'पद्मासन'** में बैठना चाहिए।

कल्पवृक्षादि की पूजा—साधक को चाहिए कि वह पूजा के समय (१) ९ रत्न (२) कल्पवृक्ष (३) षड्ऋतु एवं (४) इन्द्रिय-समूह की पूजा करे। ये सभी अश्वों के समान एवं इन्द्रियों के पदार्थ **हाथी** के समान है।[२]

'तन्त्रराजतन्त्र' ९ रत्नों के विषय में भी प्रकाश डालता है। पहले 'भावनोपनिषद' की दृष्टि जान ली जाय।

---

१. महार्थमञ्जरी ('परिमल') आर्या क्र० ४६;

२. तन्त्रराजतंत्र (अ० ५/२३-२५)

भावनोपनिषद्कार की दृष्टि—

[६] 'श्रीयंत्र' और भगवती ललिता की दैनन्दिन (नित्य) पूजा

[१] आचार्य भास्कर की दृष्टि—आचार्य भास्कर कहते हैं कि भगवती ललिता की पूजा में **'श्रीयन्त्र' की पूजा** अत्यावश्यक है। 'श्रीयन्त्र' ९ चक्रों से मिलकर निर्मित हुआ है।

श्रीयन्त्र के नौ चक्र

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)
सृष्टि-सृष्टि-चक्र	सृष्टि-स्थिति चक्र	सृष्टि-संहार चक्र	स्थिति सृष्टि चक्र	स्थिति-स्थिति चक्र	स्थिति संहार चक्र	संहार सृष्टि चक्र	संहार स्थिति चक्र	संहार संहार चक्र

[२] आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि—आचार्य महश्वेरानन्द भी 'परिमल' (आर्या क्र० ४१ में कहते हैं—

'सृष्ट्यिादिषु चतुर्षु, कृत्येषु सृष्टिसृष्टिः, सृष्टिस्थिततिरित्यादिक्रमेण प्रत्येकं चातुर्विध्यम्।''

आचार्य महेश्वरानन्द यह भी कहते हैं कि—

'**सृष्टौ** दश कलाः **स्थितौ** द्वाविंशतिर्भवन्ति शक्तयः ।
एकादश **संहारे** त्रयोदश तास्तुरीयपर्वणि ।।'

वे **'परिमल'** (आर्या ३९) में सृष्टि-स्थिति-संहार का सविस्तार वर्णन करते हैं।

[३] क्रमकेलिकार की दृष्टि—'क्रमकेलि' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि—

'इहैकैकत्र सृष्टयादौ चक्ररूपता विद्यते ।।'

इस दृष्टि को विस्तार देते हुए आचार्य महेश्वरानन्द (परिमल/आर्या ३९ में) कहते हैं—

चक्रों के भेद

(१)	(२)	(३)	(४)
'सृष्टि-सृष्टिः'	'सृष्टिस्थितिः'	सृष्टि संहारः	सृष्टि तुरीयम्

चक्रों के भेद

(१) स्थिति सृष्टिः
(२) स्थिति स्थितिः
(३) स्थितिसंहारः
(४) स्थिति तुरीयम्

(१) संहारसृष्टिः
(२) संहार स्थितिः
(३) संहार संहारः
(४) संहारतुरीयम्

—इति द्वादशानामाभिन्द्रिय स्फुरत्तानाम् ॥ (परि

(४) तन्त्रराज तंत्रकार की दृष्टि—'तन्त्रराजतन्त्र' में कहा गया है कि— चक्रों के समूहत्रय का नाम इस प्रकार है—

(१) **'चन्द्र'** (सोम या सृष्टि)
(२) **'सूर्य'** (भास्कर या स्थिति)
(३) **'अग्नि'** (अनल या संहार)

चक्र नवक एवं उसके भेद

(१) 'त्रैलोक्यमोहनचक्र' (सृष्टि-सृष्टि)
(२) 'सर्वाशापरिपूरकचक्र' (सृष्टि-स्थिति)
(३) 'सर्वसंक्षोभणचक्र' (सृष्टि-संहार)
(४) 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र' (स्थिति-सृष्टि)
(५) 'सर्वार्थसाधकचक्र' (स्थिति-स्थिति)
(६) 'सर्वरक्षाकरचक्र' (स्थिति-संहार)
(७) 'सर्वरोगहरचक्र' (संहार-सृष्टि)
(८) 'सर्वसिद्धिप्रदचक्र' (संहार-स्थिति)
(९) 'सर्वानन्दमयचक्र' (संहार-संहार)

चक्रनवक में अवस्थित योगिनियाँ

(१) 'प्रकटा'
(२) 'गुप्ता'
(३) 'गुप्ततरा'
(४) 'संप्रदाया'
(५) 'कुलकौला'
(६) 'निगर्भा'
(७) 'रहस्या'
(८) 'परापरहस्या'
(९) 'अतिरहस्या'

ये सभी योगिनियाँ चक्रों के मध्य में निवास करती हैं। ये स्थूल विग्रहा हैं और सूक्ष्म (या मंत्ररूप) के **आवरण** हैं।

भगवती ललिता **'परा'** स्वरूप देशकालातीत (Unconditioned by time and space) है।—

देवी के नामनवक

(१) 'त्रिपुरा'
(२) 'त्रिपुरेशी'
(३) 'त्रिपुरसुन्दरी'
(४) 'त्रिपुरवासिनी'
(५) 'त्रिपुरश्री'
(६) 'त्रिपुरमालिनी'
(७) 'त्रिपुरसिद्धा'
(८) 'त्रिपुराम्बा'
(९) 'महात्रिपुरसुन्दरी'[1]

इन नवों रूपों में भगवती ललिता की ९ चक्रों में, उससे सम्बद्ध मंत्रों के साथ, पूजा हुआ करती है।[2]

'भावनोपनिषद्' में कहा गया है कि—

(१) शरीर ९ रत्नों का द्वीप है : 'देहो नवरत्नद्वीपः' (६)

रत्ननवक

(१) पुष्पराग Topaz
(२) नील Sapphine
(३) वैदूर्य Catscye
(४) विद्रुम Coral
(५) मौक्तिक Pearl
(६) मरकत Emenald
(७) वज्र Diamond
(८) गोमेद
(९) पद्मराग Ruby

---

[1] तन्त्रराजतन्त्र
[2] तन्त्रराजतन्त्र

'भावनोपनिषद्' (७) में कहा गया है कि—ये **'रत्न'** शरीर में त्वगेन्द्रिय एवं धातुएँ हैं—

'त्वगादिसप्तधातुरोम संयुक्तः ॥' (७)

भास्करराय इसके सम्प्रदार्य को इस प्रकार व्याख्यात करते हैं—

'अत्रायं सम्प्रदायलभ्योर्थ—रस मांसरोमत्वग्रुधिरशुक्रमज्जास्थिमेदांसि पुष्परागनील वैदूर्य विद्रुममौक्तिकमरकतवज्रगोमेदपद्मरागात्मक नवरत्नमयखण्डरूपाणि प्रतीत्यादिनिर्ऋत्यन्त दिक्षु मध्येऽवस्थितानीति विभावयेदिति।'[1]

ये सारे रत्न हमारे शरीर में त्वगेन्द्रिय एवं सप्त धातुओं के प्रतीक या प्रतिनिधि हैं।

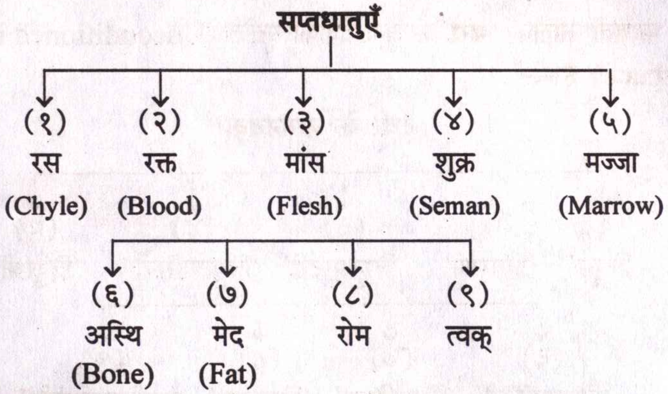

मुख्य मुद्रायें भी ९ हैं। मातृकाओं का विभाजन भी ९ समूहों में है। गुरू भी ९ हैं।

[८] **कौलमत और समयिमत**—(तुलनात्मक विवेचना)

आचार्य लक्ष्मीधर कौलों से विपरीत सामयिकों की सपर्या का विधान इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

''समयिनां मन्त्रस्य **पुरश्चरणं नास्ति, जपो** नास्ति।। **बाह्यहोमोऽपि** नास्ति। **बाह्यपूजाविधयो** न सन्त्येव। **हृत्कमल एव** सर्व यावत् **अनुष्ठानम्** । एतच्च 'जपो जल्पश्शिल्पम्'' —(लक्ष्मीधर श्लोक : ३४)

मिश्रमत, कौलमत और **समयमत** अर्थात् तीनों मतों में जो वरिवस्या (सपर्या

---

[1] भास्करराय : भावनोपनिषद् भाष्य (सूत्र ७)

का विधान है उसमें **उपास्या** भगवती त्रिपुरसुन्दरी एवं 'विद्या' (मन्त्र) पञ्चदशाक्षरी ही है।[1]

(१) 'श्रीविद्या' **गणेशरूपिणी** है।[1]
(२) 'श्रीविद्या' **ग्रहरूपिणी** है।[2]
(३) 'श्रीविद्या' **नक्षत्ररूपिणी** है।[3]
  (क) ''बिन्दुत्रयनादत्रयतदन्यकूटत्रयै**र्ग्रहत्व**मिह ।''
  (ख) **नक्षत्रत्वं** च दशाकाराणां व्यजनैरपार्थक्यात् ॥८९॥
(४) 'श्रीविद्या' **योगिनीरूपा** है।
(५) 'श्रीविद्या' **राशिरूपा** है।

'हृल्लेखाभिस्तिसृभिस्तदन्यकूटैश्च **योगिनी**योगात् ।[4]
राशीभृताप्येषा तिसृणां पूर्वाक्षरैरैक्यात् ॥९०॥

अन्यत्र भी कहा गया है—

'विद्यान्तर्भूतशक्त्याद्यैः शाक्तैः षड्भिरथाक्षरैः ।
योगिनीत्वं च विद्याया **राशित्वं** चान्त्यवर्जितैः ॥'

'श्रीविद्या' ग्रहरूपा है—

भास्करराय कहते हैं—

'रेखादलकोणगणैर्घटनाच्चक्रे **गणेशत्वम्** ।'
'त्रैलोक्यमोहनाद्यैर्नवभिश्चक्रै**र्ग्रहत्वं** **च** ।'
'गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि-पीठता ॥' (२/९१)

*** 'श्रीविद्या' एवं देवी में अभेद है ***

भास्करराय कहते हैं—

'देव्या रूपान्तरत्वेन विद्यायास्तदभेदतः ॥' (२।९१)

कौलमत और त्रिकोण—

(१) 'आधार चक्रं **'त्रिकोणम्'**। आधारे बिन्दुः तिष्ठतीति च तावत् प्रसिद्धम्। अत्र कौलमते **त्रिकोणमेव बिन्दु स्थानम्।** स एव **बिन्दुः** तत्र आराध्यः। अतएव

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (२।८८)
२. तत्रैव (२।८९)
३. तत्रैव (२।८९)
४. तत्रैव (वरि०र०) ९०

कौलाः त्रिकोणे बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति। तत् **त्रिकोणं** द्विविधं, श्रीचक्रान्तर्गतनवयोनिमध्यवर्तिनी योनिः, सुन्दर्याः तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिश्च।

(२) 'श्रीचक्रस्थितनवयोनिमध्यगतयोनिं भूर्जहेमपट्टवस्त्रपीठादौ लिखितां **'पूर्वकौलाः'** पूजयन्ति। तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिं **उत्तरकौलाः** पूजयन्ति' **उभयं** योनिद्वयं बाह्यमेव, न आन्तरम् । अतः तेषां आधार चक्रमेव पूज्यम् । तत्र स्थिता कुण्डलिनी शक्तिः कौलिनी इत्युच्यते। सैव उपास्या त्रिकोणपूजकानां इति रहस्यम् ।

(३) 'एषा कुण्डलिनीशक्तिः **बिन्दुरूपिणी** निद्राणैव संपूज्या, तस्याः सदा निद्राणस्वाभाव्यात् सा पूजा तामिस्रा। कुण्डलिनीप्रबोधो यदा स्यात् तत्क्षणमेव भुक्तिः कौलानाम् । अतएव क्षणभुक्ताः कौला इति व्यवहारः।

(४) 'तत्र **सुरामांसमधुमत्स्यादिद्रव्यैः समाराधनं वामाचारप्रवृत्या प्रत्यक्षत्रिकोणो बिन्दुस्थानं** मन्मथच्छत्रं कृत्वा संपूजयन्ति। अधोमुखं त्रिकोणं अधोमुखेन छत्रं पूजयन्ति।

(५) **'दिगम्बरक्षपणकादयस्तु स्त्रियं उत्तानां कृत्वा ऊर्ध्वं त्रिकोणं पूजयन्तीति** रहस्यम। अत्र बहु वक्तव्यमस्ति, तत्तु अवैदिकमार्गत्वात् **स्मरणार्हमपि न भवति।'**[१]

समयिमत—(१) 'त्रिकोणादिषट्चक्रं आधारादिषट्चक्रात्मना परिणतमिति।

(२) 'तत्र श्रीचक्रे त्रिकोणं बैन्दवस्थानमिति तावत् सुप्रसिद्धम् ।'

(३) 'तत्र **त्रिकोणत्रयेण** अष्टकोणनिर्माणे **त्रिकोण देव** बिन्दुस्थानं भवति। तच्च **चतुष्कोणमेव।** तत्तु सहस्रकमलान्तर्गत चन्द्रमण्डलमिति।'

(४) 'एतत् **चतुष्कोणमध्यं बैन्दवस्थानं 'सुधासिन्धुः' 'सरघा'** इति।'

(५) 'एतत् चतुष्कोणमध्यं बिन्दुस्थानमिति बाह्य पूजा **तरूणीत्रिकोणपूजा** च दूरत एव निरस्तेति ध्येयम् ।'

(५) 'अतएव **समयिनां सहस्रकमले** समयायाः समयस्य च शम्भोः पूजा।'

(६) समयानाम—शम्भुनाम साम्यं पञ्चविधं यातीति **'समया'।**

(७) 'समयत्वं शम्भोरपि पञ्चविधं साम्यं देव्या सह यातीति। अतः उभयोः समप्राधान्येनैव साम्यं विज्ञेयम् ।'

(८) **पञ्चविधसाम्यं तु** (१) 'अधिष्ठानसाम्यं' (२) 'अवस्थानसाम्यं' (३) अनुष्ठान साम्यं' (४) 'रूपसाम्यं' (५) 'नामसाम्यं'—चेति पञ्चविधं समप्रधानयोरेव शिवयोः।

(९) 'मुक्तिप्रदत्वमनुष्ठानसाम्यमिति **साम्यपञ्चकं** विज्ञेयम् । एतत् अतिरहस्यं शिष्यानुजिघृक्षया प्रकाशितम् ।'

(१०) 'अतः **समयपूजकाः समयिनः।'**

(११) 'तेषां **षट्चक्रपूजा न नियता,** अपितु **सहस्रकमल एव पूजा।'**[१]

(१२) **'सहस्रकमल'** नाम सहस्रकमलस्य बैन्दव स्थानत्वेन तन्मध्यगतचन्द्रमण्डलस्य चतुरश्रात्मना, तन्मध्यबिन्दोः पञ्चविंशति तत्त्वातीतं षड्विंशात्मक शिवशक्तिमेलनरूप सादाख्यात्मना अनुसन्धानम् ॥

अतएव **समयिमते बाह्याराधनं** दूरत एव निरस्तम् ।

(१३) * **षोडशोपचाररूप पूजाङ्गकलापश्च** ततोऽपि दूरत एव ।

(१४) * **तादात्म्यत्रय * एवं चतुर्धाऐक्य** *

(क) आधारादिषट्चक्राणां त्रिकोणादि **षट्चक्रत्वेन तादात्म्यम् ।**

(ख) बिन्दुस्थानस्य चतुरश्रस्य **सहस्रकमलत्वेन तादात्म्यम् ।**

(ग) बिन्दुशिवयोस्तादात्म्यम् ।

—एवं हि देहशिवयोस्तादात्म्यमिति तादात्म्यत्रयम् ।

(घ) चक्रमन्त्रयोः **ऐक्यं।** तेन सह **चतुर्धाऐक्यं समयिनां समाराधनमिति** महत् रहस्यम् ॥

(१५) समयनिां **चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव** भगवत्याः समाराधनमित्येतत् सर्व सम्मतम् ।

(१६) केचित्तु **षोढा ऐक्यमाहुः।** यथा—नादबिन्दु कलातीतं भागवतं तत्त्वमिति **सर्वागमरहस्यम् ।।**

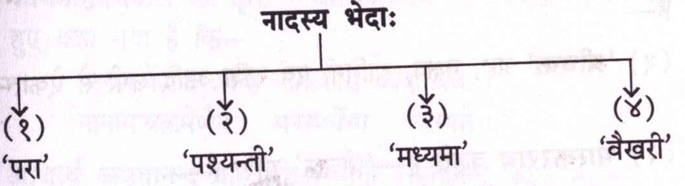

(१७) **'नादः** परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपेण चतुर्विधः ॥'

---

[१] लक्ष्मीधरा (श्लोक क्र० ४१)

[१] लक्ष्मीधरा (श्लोक क्र० ४१)

'नाद' (या वाक्चतुष्टय) तथा चक्र

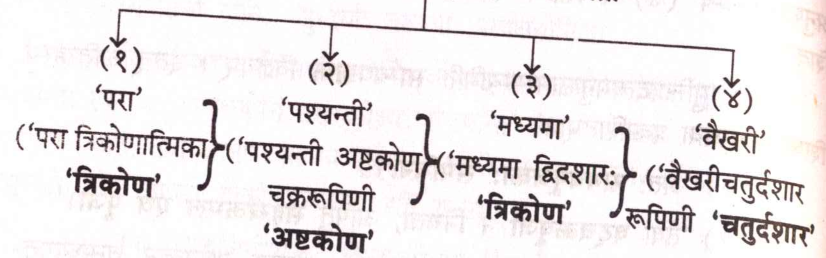
(१)
'परा'
('परा त्रिकोणात्मिका
'त्रिकोण'
(२)
'पश्यन्ती'
('पश्यन्ती अष्टकोण
चक्ररूपिणी
'अष्टकोण'
(३)
'मध्यमा'
('मध्यमा द्विदशारः
'त्रिकोण'
(४)
'वैखरी'
('वैखरीचतुर्दशार
रूपिणी 'चतुर्दशार'

'बिन्दु' और उसके भेद

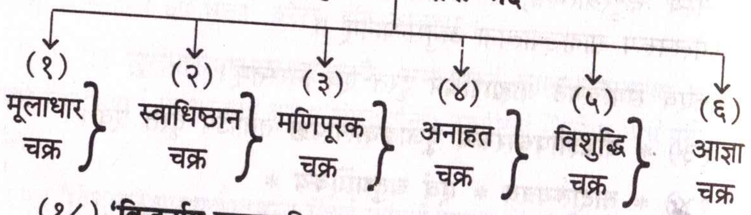
(१)
मूलाधार चक्र
(२)
स्वाधिष्ठान चक्र
(३)
मणिपूरक चक्र
(४)
अनाहत चक्र
(५)
विशुद्धि चक्र
(६)
आज्ञा चक्र

(१८) **'बिन्दुर्नाम** षट्चक्राणि मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्ध्याज्ञात्मकानि बिन्दुशब्द वाच्यानि।।'

'कला' = (५० या ३६० कलायें)

(१९) **कलाः** पञ्चाशत् षष्टयुत्तरत्रिंशतससंख्याका वा।।

(२०) नाद बिन्दुकलातीता भगवती।।

(२१) सहस्रकमलं बिन्द्वतीतं बैन्दवस्थानात्मकं सुधासिन्ध्वपरपर्यायं **'सरघा'** शब्द वाच्यम् ।

* सर्वैक्यवाद *

श्रीविद्योपासना के क्षेत्र में सर्वत्र एकत्ववाद का प्राधान्य है। 'श्रीचक्र' 'श्रीविद्या' मातृका समूह, देवी, आत्मा आदि सभी एक ही तत्त्व के विभिन्न पक्ष हैं। **भास्करराय** कहते हैं—

(१) **'श्रीचक्र'** ग्रह, नक्षत्र, योगिनी एवं राशि आदि सभी से ऐकात्म्य रखता है।

(२) **भास्करराय** कहते हैं—'श्रीचक्र' राशि है—

'पञ्चचतु:शक्त्यनला बिन्दुर्वृत्तं च भूबिम्बम् ।
एवं द्वादशसंख्यैर्घटनाच्चक्रस्य **राशित्वम्** ॥९५॥

(३) **'श्रीचक्र'** श्रीविद्या से अभिन्न है।

आचार्य भास्करराय कहते हैं—

'चक्रं विद्याक्षरैरेव जननात् तदभेदवत् ।
देव्यारूपान्तरत्वाच्च तेन युक्तोक्तरूपता ॥९६॥

अतः स्पष्ट है कि—

'एवं विश्वप्रथाकारा चक्ररूपा महेश्वरी ॥'

'श्रीविद्या' के अक्षरों द्वारा निर्मित होने के कारण 'चक्र' **'श्रीचक्र'** से अभिन्न है।

[९] मातृका और पीठ में ऐक्य—

भास्करराय कहते हैं—(१) मातृका के वर्णों की संख्या के बराबर ५१ पीठ हैं।

चक्रोत्पत्ति

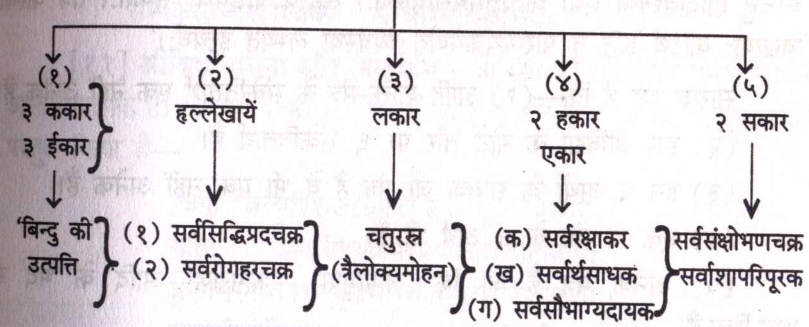
(१)
३ ककार
३ ईकार
'बिन्दु की उत्पत्ति
(२)
हृल्लेखायें
(१) सर्वसिद्धिप्रदचक्र
(२) सर्वरोगहरचक्र
(३)
लकार
चतुरस्र
(त्रैलोक्यमोहन)
(४)
२ हकार
एकार
(क) सर्वरक्षाकर
(ख) सर्वार्थसाधक
(ग) सर्वसौभाग्यदायक
(५)
२ सकार
सर्वसंक्षोभणचक्र
सर्वाशापरिपूरक

श्रीविद्योपासना की पात्रता एवं अधिकार—(दीक्षा प्रधान्य)

श्रीविद्या वेदविद्या है। इसकी साधना के लिए गुरुपरम्परागत दीक्षा एवं गुरुपरम्परागत ज्ञान आवश्यक है।

(१) **योगिनीहृदयकार की दृष्टि—'योगिनीहृदय'** में उपर्युक्त विधान को ही संपुष्ट करते हुए कहा गया है कि—

'मन्त्रसंकेतकस्तस्या नानाकारो व्यवस्थितः ।
नानामन्त्रक्रमेणैन **परम्पर्येण** लभ्यते ॥'

(२) **आचार्य अमृतानन्द की दृष्टि**—योगी अमृतानन्द कहते हैं—

(१) 'तस्या **परमशिवसामरस्यरूपायाः पराया** यो मन्त्र संकेतको **मन्त्रः सौभाग्यविद्यारूपः.....।**

पूर्वोक्तकरशुद्ध्यादिनानाप्रपञ्चपरिपाटयैव **पारम्पर्येण लभ्यते। ... पारम्पर्य-**

विहीनानामसंप्रदायवतां चुम्बकवृत्या चौयविगताक्षरपाठमात्रपर्यवस्थितानामननर्थायैव केलमित्यर्थः। अत्रैव वक्ष्यति—

'पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विताः ।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचयः ।।'[1]

(३) **सेतुबन्धकार की दृष्टि**—आचार्य भास्करराय कहते हैं कि परम्परा प्राप्त साम्प्रदायिक क्रम से प्राप्त विद्या की ही प्रधानता का कारण यह है कि—

(१) आदि शक्ति के मंत्र के मन्त्र-संकेतक (गूढार्थ प्रदर्शन) अनेक प्रकार के हैं। इस विद्या के सांकेतिक अर्थ ६ प्रकार के हैं—

'तस्या आदि शक्तेर्मन्त्रसंकेतको नानाकारः। तदीय विद्याया सांकेतिकार्थः षट् प्रकारः। परन्तु तस्या मन्त्रोऽपि नैकः, ये नैकस्यैव मन्त्रस्य षडर्थाः स्युः। किन्तु नानाविधो मन्त्रो लोपामुद्राकामराजादिभेदात् । ततश्च केचिदर्थाः कादिविद्याया एव। केचित्तु हादिविद्याया एव। केचित्तूमयसाधारणः। संहृत्य षड्विधः संकेतः। तत्र कस्या विद्यायाः कोऽर्थ इति तु पारम्पर्यक्रमेणैव व्यवस्था लभ्यत इत्यर्थः।'

सारांश यह है कि—(१) आदि शक्ति-मंत्र के संकेतितार्थ एक नहीं अनेक हैं।

(२) इस श्रीविद्या के मोटे तौर पर ६ संकेतितार्थ हैं।

(३) इन ६ अर्थों के द्योतक जो मंत्र हैं वे भी एक नहीं अनेक हैं।

(४) एक ही मंत्र के ६ अर्थ भी हैं।

(५) अनेक मंत्र हैं जो कि 'लोपामुद्रा', 'कामराज' आदि के भेद से भिन्न भिन्न हैं।

(६) उनमें से कतिपय अर्थ केवल 'कादिविद्या' से कतिपय 'हादिविद्या' से एवं कतिपय उभयविद्याओं से सम्बद्ध हैं। संकेत षड्विध है।

(७) किस विद्या का क्या अर्थ है—यह तो मात्र परम्परा से ज्ञात हो सकता है। अतः श्रीविद्या का ज्ञान एवं इसकी उपासना केवल परम्परा प्राप्त विधान के अनुसार ही ज्ञेय एवं निष्पाद्य है।[2]

[१०] * श्रीविद्या के षड्विध संकेतितार्थ *

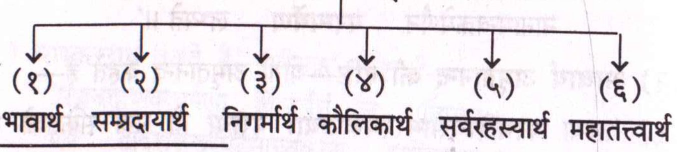

---

[1] अमृतानन्द : योगिनीहृदयदीपिका (१/१४)

[2] सेतुबन्ध (अमृतानन्द)

'षड्विधस्तं तु देवेशि ! कथयामि तवानघे ।
भावार्थः सम्प्रदायार्थो निगमार्थश्च कौलिकः ।
तथा सर्वरहस्यार्थो महातत्वर्थ एव च ।
'अथरार्थो भावार्थः केवलः परमेश्वरि ।
योगिनीभिस्तथा वीरैर्वीरेन्द्रैः सर्वदा प्रिये ।।
शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः ।।१७।।'[1]

'मंत्रराज' (श्रीविद्यारूप 'पञ्चदशीविद्या' का महत्व—'दीपिका' एवं **योगिनीहृदय** में कहा गया है कि यह विद्या (पञ्चदशी) **'शिवशक्ति समायोग'** से उत्पन्न **'सौभाग्य विद्या'** है और मंत्र नहीं **'मन्त्रराज'** है—

(१) **शिवशक्तिसमा**योगाज्जनितो **मन्त्रराजकः** ।। (यो०हृ०)

(२) शिवशक्ति समायोगाच्छिवशक्तयोः समायोगः ।
सम्पर्कस्तन्**मन्त्रराजकः सौभाग्यविद्यारूपः** ।।'[2]

[११] **श्रीविद्योपासना और अन्तर्याग**—श्रीविद्या की समयाचार प्रमुख साधना अन्तर्यागात्मक है। आचार्य शंकर ने 'सौन्दर्यलहरी' में इस पूजा का विधान इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'जपो जल्पशिल्पंसकलमपि मुद्रा-विरचना ।
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामस्संवेशस्सुखमरिवलमात्मार्पणादृशा ।
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ।।'[3]

लक्ष्मीधर की दृष्टि—लक्ष्मीधर कहते हैं कि—

(१) 'समयिनां मते समयस्य सादारव्यतत्त्वस्यसपर्यासहस्रदल कमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।।'[4]

(२) 'श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते—"बाह्यपूजा न कर्तव्याबाह्यजातिभः।' (सनत्कुमारसंहिता)

श्रीविद्योपासना मुख्यतः अन्तर्यागात्मिका है।

---

[1] योगिनीहृदय (मन्त्रसंकेत)

[2] अमृतानन्द (१/१७)

[3] सौन्दर्यलहरी (२७)

[4] लक्ष्मीधरा (श्लोक २७)

[१२] * श्रीचक्र *

श्रीचक्र का स्वरूप—श्री चक्र और श्रीविद्या का अपृथक सम्बन्ध है—

'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धिं **श्रीचक्रं** शिवयोर्वपुः ॥' (भैरवयामल)

(१) **'श्रीचक्र' शिव और शक्ति का सम्मिलित शरीर है—**

श्रीचक्र ४ शिव चक्रों एवं ५ शक्ति चक्रों की समष्टि है।

(२) **भावनोपनिषदोक्त परिभाषा**—'नवचक्ररूपं श्रीचक्रम् ।'

(३) **श्रीचक्र के पूजन का यथार्थ स्वरूप क्या है ?**

ज्ञानमर्ध्यं ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञान ज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम् ॥
(भावनोपनिषद् १०)

(५) **पराशक्ति की कलाविद्या ही 'श्रीचक्र' है—**

'कलविद्या पराशक्तेः **श्रीचक्राकाररूपिणी** ।
तन्मध्ये बैन्दवस्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी ॥'

(६) **'श्रीचक्र' ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप है—**

सदाशिवेन सम्प्रक्ता सर्वतत्त्वातिगा सती ।
चक्रं त्रिपुरसुन्दर्याः **ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि** ॥
—(भैरवयामल)

(७) **कौलमतानुसार श्रीचक्र का स्वरूप**—इसका स्वरूप इस प्रकार है—

'**कौलमतानुसारेण** अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि ऊर्ध्वमुखानि पञ्च त्रिकोणानि शक्त्यात्मकानि॥ कौलमते **संहारक्रमेण** लेखने नवत्रिकोणात्मक **श्रीचक्रम्।'**
—लक्ष्मीधरा (१०)

जगत और जगत दोनों अग्नीषोमात्मक हैं—

'अग्नीषोमात्मक चक्रमग्नीषोममयं जगत् ॥' —(रुद्रायामल)

* श्रीचक्र *

[१] **'श्रीचक्र' शिव एवं शक्ति का शरीर है—**

'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥'

कामेश्वर (शिव) एवं कामेशी (शक्ति) या देवी ललिता के 'बिन्दु' रूप उपादान से ही **'श्रीचक्र'** का आविर्भाव हुआ है इसलिए इसे **'शिवशक्त्यात्मक'** कहा जाता है।

[२] अहन्ता एवं इदन्ता के अविभागात्मक, रसात्मक, विश्वाकार एवं शिवशक्तिमय एवं रेखाचित्रात्मक विश्व-न्याददर्श (मौडेल) को 'श्रीचक्र' कहते हैं।

'सुभगोदयवासना' में कहा गया है—

'अहन्तेदन्तयोर्बीजमविभाग रसात्मकाम् ।
शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम् ॥'

इसे 'शिवशक्तिमय' इस लिए कहा जाता है क्योंकि इसका निर्माण—(१) 'शिवचक्र' (२) 'शक्तिचक्र' द्वारा होता है—

'चतुर्भि शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धं **श्रीचक्रं** शिवयोर्वपुः ॥'

'बिन्दु' एवं **त्रिकोण** ही इसके मूल घटक या इकाइयाँ हैं। किन्तु 'बिन्दु' एवं 'त्रिकोण' हैं क्या? इनका स्वरूप इस प्रकार है—

'त्रिकोणरूपिणी **शक्तिः, बिन्दुरूपः** परशिवः ।'
अविनाभावसम्बन्धस्तस्माद् बिन्दुत्रिकोणयोः ॥'

'श्रीचक्र' महात्रिपुरसुन्दरी (षोडशी) का यन्त्र है। इसमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी की समस्त शक्ति यन्त्रित या नियन्त्रित है। इसे 'यन्त्रराज' भी कहते हैं।

नौ त्रिकोणों की समष्टि के कारण इसे **'नवयोनियन्त्र'** भी कहा जाता है। इन ९ योनियों को—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आत्मा (४) अन्तरात्मा (५) परमात्मा (६) ज्ञानात्मा (७) जीव (८) ग्राह्य (९) प्रमा कहते हैं।

श्रीचक्र के ९ आवरण हैं।

श्री चक्र के नवावरण

(१) **प्रथमावरण** ('त्रैलोक्यमोहनचक्र')—प्रथम भूपुर के १० स्थानों में १० सिद्ध देवियाँ द्वितीय भूपुर में आठ मातृका देवियाँ। तृतीय भूपुर में १० प्रकट योगिनियाँ।

(२) **द्वितीयावरण** ('सर्वाशापरिपूरकचक्र')—षोडशदलपद्म में १६ गुप्त योगिनियाँ।

(३) **तृतीयावरण** ('सर्वसंक्षोभणचक्र')—अष्टदलपद्म में आठ गुप्तचर योगिनियाँ।

(४) **चतुर्थावरण** ('सर्वसौभाग्यदायकचक्र')—चतुर्दश त्रिकोण में सर्वद्वन्द्वशाक्षरी १४ सम्प्रदाय।

(५) **पञ्चमावरण** ('सर्वार्थसाधकचक्र')—१० बहिः त्रिकोण में सर्वसौभाग्यदायिनी १० योगिनियाँ।

(६) **षष्ठावरण** ('सर्वरक्षाकरचक्र')—१० अन्तः त्रिकोण में सर्वेप्सित १० निगर्भ योगिनियाँ।

(७) **सप्तमावरण** ('सर्वरोगहरचक्र')—अष्टत्रिकोण में ८ रहस्य योगिनियाँ।

(८) **अष्टमावरण** ('सर्वसिद्धिप्रदचक्र')—त्रिकोण के चारों ओर ४ आयुध एवं ३ कोणों में तीन अत्यन्त रहस्य योगिनियाँ।

(९) **नवमाकरण** ('सर्वानन्दमयचक्र')—'बिन्दु' में परापर रहस्य योगिनियाँ।

'श्रीचक्र' का परम स्वरूप

श्रीचक्र के यथार्थ (पारमार्थिक या तात्त्विक) स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आचार्य गौड़पाद ने उसे—

(क) (१) सहस्रार पद्म में चन्द्रमा का द्वितीय बिम्ब

(२) 'सरघा' (अमृतमय सहस्रार)

(३) 'बैन्दव स्थान'—कहा है—

'सहस्रारे पद्मे शिशिरमहसां बिम्बपरं
तदेव **श्रीचक्रं** सरघमिति तद्बैन्दवमिति ॥'[1]

(ख) भगवती का आत्मदर्शन—अपनी स्फुरत्ता का साक्षात्कार ही 'श्रीचक्र' है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छा विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥'[2]

(ग) नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत् ।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम् ॥ (योगिनीहृदय)

'श्रीचक्र' (यन्त्र) की महिमा—'श्रीचक्र' को भगवती का स्वस्वरूप कहा गया है। यह शिवशक्त्यात्मक है।

'कामकलाविलास' में श्रीचक्र को "**कामकला**" एवं महात्रिपुरसुन्दरी देवी से अभिन्न कहा गया है—

'इति कामकला विद्यादेवी चक्रक्रमात्मिका सेयम् ।
विदिता येन से मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः ॥'

---

[1] सुभगोदयस्तुति (३५)
[2] योगिनीहृदय (चक्र संकेत)

'श्रीचक्र' के दर्शन मात्र की ही इतनी महिमा है कि उसके समतुल्य किसी की महिमा ही नहीं है। कहा गया है कि—

'सम्यक् शत क्रतमून कृत्वा, यत् फलं समवाप्नुयात् ।
तत् फलं लभते भक्त्या, कृत्वा श्री चक्रदर्शनम् ॥
महाषौडशदानानि कृत्वा यल्लभते फलम् ।
तत् फलं समवाप्नोति कृत्वा श्री चक्र-दर्शनम् ॥
सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत् फलमश्नुते ।
तत् फलं लभते भक्त्या, कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ॥'

शास्त्रों में कहा गया है कि—सौ यज्ञों को करने से, महाषोडश दान करने से एवं साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है। वह फल भक्तिपूर्वक 'श्रीचक्र' का दर्शन करने मात्र से प्राप्त हो जाता है।

'श्रीचक्र' नवयोन्यात्मक एवं चिदानन्दघन है। **'योगिनीहृदय'** में कहा गया है—

'नवयोन्यात्मकं 'चक्रं' चिदानन्दघनं महत् ।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम् ॥'[1]

'श्रीचक्र' सदाशिव का आसन है—

'सदाशिवासनं देवि। महाबिन्दुमयं परम् ॥'

अर्थरत्नावलीकार की दृष्टि—

'अर्थरत्नावली' में कहा गया है कि 'श्रीचक्र' ९ नित्याओं से युक्त है। वह षोडशनित्यामय, समष्टिसृष्टि, सृष्टि-सृष्टि, स्थिति सृष्टि, संहार सृष्टि, अनाख्य रूप सृष्टिपञ्चक आदि सभी का मूल केन्द्र है।

'योगिनीहृदय' में (१) **'सकल'** (२) **'सकलनिष्कल'** (३) एवं **'निष्फल'** के भेद से श्री चक्र के तीन भेद बताए गये हैं।

[१३] श्रीविद्या—सिद्धान्त और साधना **आचार्य परशुराम की दृष्टि—**

आचार्य परशुराम ने भी इस दृष्टि का स्वागत किया है।

यथार्थ यज्ञ का स्वरूप क्या है—परशुराम कहते हैं—

'सर्वं वेद्यम् हव्यम्, इन्द्रियाणि स्रुचः, शक्तयोः ज्वालाः, स्वात्मा शिवः, पावकः स्वयमेव होता।'

---

[1] योगिनीहृदय (चक्र संकेत १३)

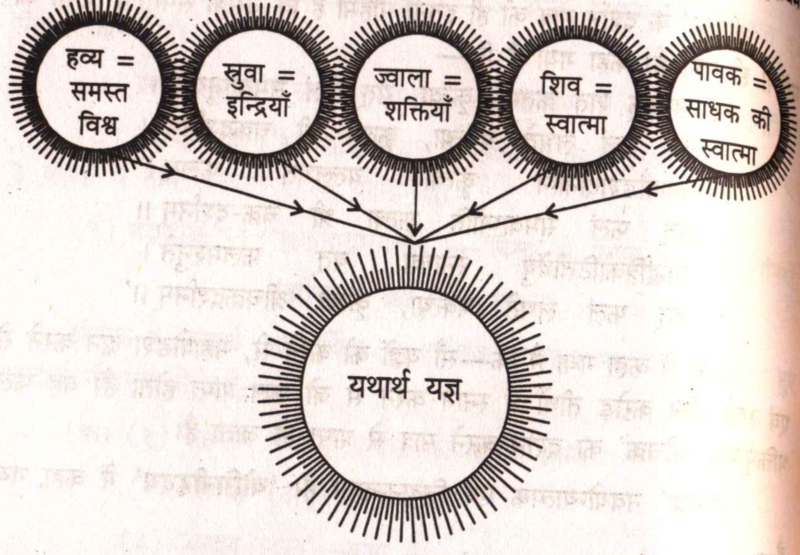

(१) विज्ञानभैरवकार की दृष्टि—

'महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम्।
हूयते मनसा सार्धं स **होमश्चे**तना स्रुचा॥'

(२) स्वच्छन्दतंत्रकार की दृष्टि—

एवं हृदयम्बुजावस्थो, यष्टव्यो भैरवो विभुः।
स बाह्याभ्यन्तरं कृत्वा, पश्चाद्यजनमाचरेत्॥

(३) योगिनीहृदयदीपिकाकार की दृष्टि—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्,
नैदानैस्तर्पणैः सम्यग् विशुद्धैरमृतात्मभिः।
मदहन्तां करोमीदं विश्वं हव्यपुरस्सरम्॥

(४) भगवद्गीताकार की दृष्टि—

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥

(५) विज्ञानभैरवकार की दृष्टि—

यागोऽत्र परमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा।
क्षपणात् सर्वपापानां त्राणात् सर्वस्य पार्वति॥

(६) शिवसूत्रकार की दृष्टि—'शरीरं हविः॥' (२।८)

(७) आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—'महायोगिनः परस्मिन् चिदग्नौ हूयमानं हविः, शरीरप्रमातृताप्रशमनेन सदैव चिन्मातृताभिनिविष्टत्वात्॥' (शिवसूत्र विमर्शिनी)

(८) भावनोपनिषदोक्त दृष्टि—

(१) 'ज्ञानमर्ध्यं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञान ज्ञेयम् भेदं भज्ञवनं श्रीचक्रपूजनम्॥१०॥ (भावनोपनिषद्)

(२) **'श्रीचक्र'** क्या है? 'नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्'॥३॥

(३) **'पुरुषार्थ'** क्या है? 'पुरुषार्थास्सागराः'॥५॥

(४) **'देह'** क्या है? 'देहो नवरत्नद्वीपः'॥६॥[1]

(५) **'इक्षु-धनुष'** क्या है? 'मन इक्षधनुः॥' (२२)

(६) **'पाश'** क्या है? 'रागः पाशः'॥(२३)

(७) **'अंकुश'** क्या है? 'द्वेषोङ्कुशः'' (२४)

(८) 'ललिता देवी कौन हैं? 'सदानन्दपूर्ण' स्वात्मैव परदेवता **ललिता**॥(२७)[2]

(९) **कामेश्वर** कौन हैं? 'निरूपाधिकसंविदेव कामेश्वरः॥ (२६)

(१०) **तन्त्रराज'** में कहा गया है—

'स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना॥'

(११) **विमर्शानुसन्धान** क्या है? 'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः॥[3]

(१२) **'होम'** क्या है? 'अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः॥३१॥

(१३) **'तर्पण'** क्या है। 'भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणाम्'॥३२॥[4]

(१४) **'होम' सुभगोदयवासनाकार** शिवानन्द कहते हैं—संविदग्नि में भेदाभास का हवन करना ही यथार्थ हवन है—

'संविदग्नौ महासारे विमर्शैकशरीरिणी।
भेदाभासमिदं हव्यं जुहोम्यपुनरुद्भवम्॥'[5]

---

१. भावनोपनिषद्
२. भावनोपनिषद्
३. भावनोपनिषद्
४. भावनोपनिषद्
५. सुभगोदयवासना (६४)

(१५) आत्मपरामर्श ही परापूजा है—

'परामर्शः परापूजा पवित्रं हि विधीयते ।'[१]

(१६) इदन्ता ही श्रेष्ठतम हव्य पदार्थ है—

'इदन्तोल्लासितं हव्यं संविच्चक्रस्य मध्यगम् ।
महाहन्तीकरोम्येवं तदिदं च विमृश्यते ॥'
—सुभगोदयवासना (६३)

'श्रीविद्या'—**'परशुरामकल्पसूत्र'** में ऋषि परशुराम जी ने सर्वप्रथम यह कहा है कि 'श्री' परदेवता भगवती ललिता हैं। यह 'श्री' हैं। इसीलिए श्रीललिताधिकार की उपासना को **'श्रीविद्या की उपासना'** कहते हैं। यह पराम्बा ही श्रीशक्तिचक्रनायिका हैं। इसके **'शक्तिचक्र'** श्रीयन्त्र के नवचक्रों में से त्रिकोण आदि पाँच चक्रों की आख्या है। ४ शिवचक्रों एवं ५ शक्तिचक्रों से पूर्ण **'श्रीचक्र'** ही **'श्रीयन्त्र'** है। **'श्रीचक्र'** शिव-शिवा का साक्षात् शरीर कहा गया है।

'त्रिकोण', **'अष्टकोण'**, **'दशकोणाद्वय'** एवं **'चतुर्दशार'**—ये ही पाँच **'शक्तिचक्र'** कहलाते हैं जो कि 'श्री' के चक्र हैं।

श्रीबीजात्मिकाविद्या ही श्रीविद्या है।

लक्ष्मीधर की परिभाषा—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि—

(१) **'षोडशीकला'** नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्दन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम **'श्रीविद्येति'** श्रीबीजात्मिका विद्या **'श्रीविद्येति** रहस्यम् ॥'[२]

परशक्ति की कलाविद्या ही 'श्रीचक्र' है और उसमें सर्वत्रस्यूत 'षोडशी' और 'पञ्चदशाक्षरीविद्या' ही 'श्रीविद्या' है।

'श्रीविद्या' त्रिपकारशरीरिणी, तुरीयपीठस्वरूपिणी एवं सारे भेदों का मूल है—
'इत्थं त्रितयपुरी या तुरीयपीठादि भेदिनी विद्या ।'[३]

'पञ्चदशी विद्या' एवं देवी में ऐक्य—

(१) आग्नेय वाग्भवकूट = भगवती का मुख।
(२) सौ कामकला कूट = भगवती का कण्ठ से पर्यन्त भाग।
(३) चान्द्रशक्तिकूट = भगवती का कटि से नीचे का भाग।

---

१. सुभगोदयवासना (६५)
२. लक्ष्मीधरा (३२)
३. कामकलाविलास (१४)

(२) भगवती त्रिपुरा (नित्या) मंत्रस्थित **१५ वर्णों के स्वरूप** वाली (अर्थात् श्रीविद्या स्वरूप वाली) हैं—

'पञ्चदशाक्षररूपानित्या ।'' (का०क०वि० १६)

'श्रीविद्या' त्रिखण्डात्मिका है। इसके तीन खण्ड इस प्रकार हैं—

(१) मन्त्र का सोमखण्ड
(२) मन्त्र का सूर्यखण्ड =
(३) मन्त्र का अग्निखण्ड =
} (४) मन्त्र का बैन्दवखण्ड

[१४] * श्रीविद्योपासना में निर्धारित क्रम-विधान *

* आचार्य परशुराम की दृष्टि *

[श्रीविद्योपासना के मुख्य आकर ग्रथों में **'परशुरामकल्पसूत्र'** सर्वोपरि है। यह श्रीविद्या का आद्य ग्रंथ है। श्रीविद्योपासना की दो धाराओं (१) वशिष्ठ-प्रवर्तित धारा एवं (२) दुर्वासा-प्रवर्तित धाराओं—को सम्मिलित करके आचार्य परशुराम समग्र विद्योपासना के प्रवर्तक बन गए। परशुराम जी का ग्रंथ **'परशुरामकल्पसूत्र'** कहलाता है। इसका सिद्धान्त **'त्रैपुरसिद्धान्त'** कहलाता है]—

* 'परशुरामकल्पसूत्र' में प्रतिपादित क्रम-विधान *

आचार्य परशुराम ने 'श्रीविद्या' की आद्यन्त उपासना करने हेतु उसे क्रमों में विभाजित किया है।

[क] परशुरामकल्पसूत्र प्रतिपादित क्रम-विधान

(१) **प्रथमखण्ड** दीक्षा-विधि
(२) **द्वितीयखण्ड** महागणपतिक्रम
(३) **तृतीयखण्ड** श्रीक्रमः श्रीललिताधिकार
(४) **चतुर्थखण्ड** ललिताक्रम
(५) **पञ्चमखण्ड** ललितानवावरण पूजाक्रम
(६) **षष्ठखण्ड** श्यामा क्रम
(७) **सप्तमखण्ड** वाराही
(८) **अष्टमखण्ड** पराक्रम
(९) **नवमखण्ड** होमविधि
(१०) **दशमखण्ड** सर्वसाधारण क्रम

= १० खण्ड ।

[ख] * उमानन्दनाथ-प्रतिपादित क्रम-विधान *

उमानन्दनाथ के **'नित्योत्सव'** को **'परशुरामकल्पसूत्र'** का अनुवर्ती एवं पूरक माना जाता है किन्तु यह दृष्टि असङ्गत है। **उमानन्दनाथ** (भासुरानन्द नाथ के शिष्य) ने क्रम-विधान में अपनी स्वतंत्र दृष्टि स्थापित की है। इन्हें परशुराम जी का पूर्णानुवर्ती कहना बहुत सार्थक एवं संगत नहीं है।

उमानन्दनाथ द्वारा प्रतिपादित क्रम-विधान

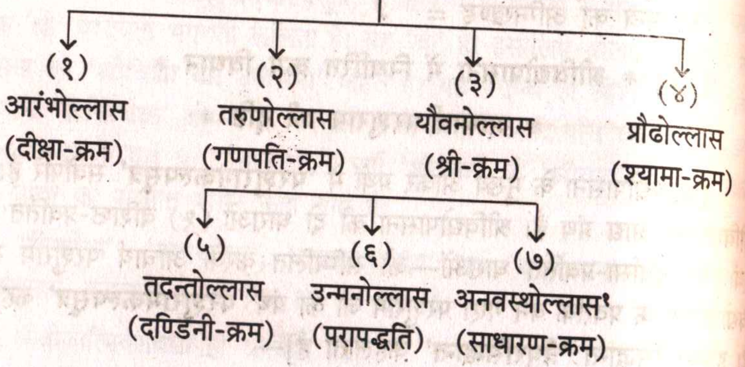
(१) आरंभोल्लास (दीक्षा-क्रम)
(२) तरुणोल्लास (गणपति-क्रम)
(३) यौवनोल्लास (श्री-क्रम)
(४) प्रौढोल्लास (श्यामा-क्रम)
(५) तदन्तोल्लास (दण्डिनी-क्रम)
(६) उन्मनोल्लास (परापद्धति)
(७) अनवस्थोल्लास[1] (साधारण-क्रम)

'परशुराम कल्पसूत्र' का प्रथम सूत्र है—

'अथातो दीक्षां व्याख्यास्यामः ।।' (प्रथमखण्ड १/१)

उमानन्दनाथ ने क्रम-विभाजन **'कुलार्णवतंत्र'** में प्रतिपादित उल्लासों के आधार पर किया है। उमानन्द का उल्लासाधृत विभाजन और उसमें प्रदर्शित उनकी मौलिक स्थापना बहुत सार्थक एवं औचित्यपूर्ण नहीं दिखाई पड़ती तथापि विद्वन्मण्डली में प्रशंसनीय अवश्य है।

[१५]— * 'परशुरामकल्पसूत्र' और श्रीविद्योपासना *

श्रीविद्या का प्रथमखण्ड **'दीक्षाविधि'** है।

(१) **'दीक्षाविधि'**—आचार्य परशुराम 'श्रीविद्योपासना' में प्रवेश करने के लिए पात्रता की प्रथम शर्त दीक्षा-प्राप्ति मानते हैं। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रन्थ का आरम्भ—**'अथातो दीक्षां व्याख्यास्यामः'** सूत्र से किया है।

रामेश्वर 'सौभाग्योदयवृत्ति' में कहते हैं कि—

(१) **भगवान परमशिव भट्टारक** ने श्रुति आदि अष्टादश विद्याओं एवं विविध दर्शनों की **'तत्तदावस्थापन्न'** होकर अपनी **लीलामात्र से उनकी रचना** करके

---

१. नित्योत्सव (उमानन्दनाथ)

और स्वाभिन्ना भैरवी के द्वारा पूँछे जाने पर अपने पाँचों मुखों द्वारा, परमार्थसारभूत **पाँच आम्नायों का निर्माण किया** और भगवान परशुराम ने उन पञ्चाम्नायों के आधार पर अपने कल्पसूत्र का प्रणयन किया[1] और इस आधार पर प्रथम सिद्धान्त यह स्थापित किया कि—'षट्त्रिंशत्तत्त्वानि विश्वम्'। (१/४)

अर्थात् जगत् छत्तीस तत्त्वों की समष्टि मात्र है या कि ३६ तत्त्व ही समस्त विश्व है। (**विश्व** की परिभाषा)।

आचार्य ने दीक्षा की बात तो की किन्तु दीक्षा विषय पर प्रकाश न डालते हुए 'विश्व' को परिभाषित किया। इसी क्रम में उन्होंने अनेक तत्त्वों को परिभाषित किया। यथा—

(१) **'विश्व'** क्या है? : 'षट्त्रिंशतत्त्वानि **विश्वम्।'**
(२) **'जीव'** कौन है? : 'शरीरकञ्चुकितः शिवो **'जीवः'**।
(३) **'परमशिव'** कौन है? : 'निष्कञ्चुक **परमशिवः**।।'
(४) **'परमार्थ'** क्या है? : 'स्वविमर्शः **पुरुषार्थः**।'
(५) **'शब्दों की प्रकृति** क्या है? 'वर्णात्मका नित्या**शब्दाः**।।'
(६) समस्त **सिद्धियों के प्राप्ति का अन्यतम उपाय** क्या है?
'सम्प्रदायविश्वासाभ्यां सर्वसिद्धिः।।'

'विश्वासभूयिष्ठं प्रामाण्यम् ।'[2]

(७) प्रत्यगात्मा का ज्ञान कैसे हो?

'गुरुमन्त्रदेवताऽऽत्मनः पवनानाम् ऐक्यनिष्कालनादन्तरात्मवित्तिः ।।'

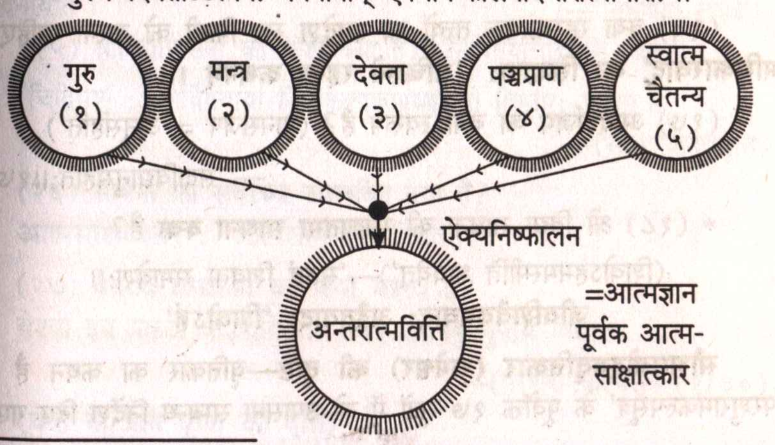
गुरु (१)
मन्त्र (२)
देवता (३)
पञ्चप्राण (४)
स्वात्म चैतन्य (५)
ऐक्यनिष्फालन
अन्तरात्मवित्ति
=आत्मज्ञान पूर्वक आत्म-साक्षात्कार

---

१. परशुरामकल्पसूत्र (२) (सूत्रों की व्याख्या जानबूझ कर छोड़ी जा रही है अन्यथा पुस्तक का कलेवर बहुत अधिक बढ़ जाता।)

२. परशुरामकल्पसूत्र

(८) **मंत्रों की कितनी शक्ति** है? 'मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता।'

(९) **'ब्रह्म' का स्वरूप** क्या है? 'आनन्दं ब्रह्मणो रूपम् ।'

(१०) उसका **शरीर से क्या सम्बन्ध** है? 'तच्च देहे व्यवस्थितम्।'

(११) उस **आनन्दरूपब्रह्म** की आनन्दात्मकता के अभिव्यञ्जक कौन हैं?

'तस्याभिव्यञ्जकाः **पञ्चमकाराः ।।**'[1]

(१२) क्या **आनन्दाभिव्यञ्जक तत्त्वों का प्रकाशन उचित है या नहीं?**

'तैरर्चनं गुप्त्या प्राकट्यान्निरयः ॥'

('गोपनीयतावाद।)' 'पञ्चमकार सेवन ।'

'पञ्चमकार' = आनन्दरूप ब्रह्म के अभिव्यञ्जक हैं।

(१३) **निग्रहानुग्रहस्वरूप 'आज्ञा'** की सिद्धि का उपाय क्या है?

'भावनादाठर्यादाज्ञासिद्धिः ॥'

(१४) क्या अपने सिद्धान्त ग्रंथों से पृथक् अन्य **दर्शनों की निन्दा करनी चाहिए?**

(नहीं, नहीं करनी चाहिए। 'सर्वदर्शनानिन्दा' 'सर्वसामञ्जस्यवाद' ; सभी के प्रति आदर की दृष्टि

(१५) **क्या स्वशाक्तविरुद्ध किसी भी बात को स्वीकार करना चाहिए?**

—'अगणनं कस्यापि।'

(१६) क्या रहस्यात्मक तत्त्वों का **उपदेश** सब किसी को करना चाहिए?
अधिकारवाद' का सिद्धान्तः 'सच्छिष्ये रहस्य कथनम् ।'

(१७) **आदर्शजप** का क्या स्वरूप है? (मानसजप = अनुसंहति')

—"सदाविद्यानुसंहतिः॥१७॥[2]

* (१८) श्री विद्या साधना की **मुख्यतमा साधना क्या** है?

(शिवोऽहममस्मीति भावयेत्')—'सततं शिवता समावेशः॥

जीवशिवैक्यवादः अद्वैतवादः 'शिवोऽहं'

सौभाग्योदयवृत्तिकार (रामेश्वर) की दृष्टि—वृत्तिकार का कथन है कि 'परशुरामकल्पसूत्र' के पूर्वोक्त १७ सूत्रों में जो उपासना सम्बन्ध निर्देश दिए गए हैं

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र

[2] परशुरामकल्पसूत्र

वे केवल उनके लिए जो **मन्दाधिकारी** हैं। **'शिवतासमावेश'** की साधना मुख्य अधिकारियों के लिए हैं—

'पूर्वधर्मो मन्दाधिकारिणः। अयं मुख्याधिकारिणः ॥'

(१९) क्या साधना में **असद्वृत्तियाँ त्याज्य** हैं?

'काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्याविहित हिंसा-स्तेय-लोकविद्विष्टवर्जनम् ॥'

(२०) क्या अनेक गुरुओं से दीक्षा ली जा सकती है?

'एकगुरुवादः 'एगुरुपरस्तिरसंशयः ।'

(२१) **निष्परिग्रहता** की आवश्यकता एवं उसका स्वरूप क्या है?

('सर्वत्र वस्तुमात्रे निष्परिग्रहतां)—'सर्वत्रिनिष्परिग्रहता'

(२२) साधना में **निष्कमता की क्या भूमिका** है?

'निष्काम कर्म योग' : 'फलं त्यक्त्वा कर्मकरणम् ।।'

(२३) क्या **नित्यकर्म आवश्यक है?** ("अनित्यकर्मलोपः॥')

('नित्यकर्म अवश्यं कर्तव्यमित्यर्थः ।')

(२४) क्या **पञ्चमकारों के बिना पूजा** नहीं की जा सकती?

(की जानी चाहिए)—'मपञ्चकालाभेऽपि नित्यक्रमप्रत्यवमृष्टिः' साधना में **निर्भयता** का क्या साधन है?

(अहं तु न रागी किन्तु शास्त्रेण प्रवर्तितेन न मे भीतिरिति निर्धारणेन निर्भयता सम्पादनीयेति')
—'निर्भयता सर्वत्र'।

(२५) श्रीविद्योपासना का **फल** क्या है? 'निर्विषयचिद्विमृष्टिः फलम् ।

(चिद्विमर्श : 'निर्विषयाया निर्विकल्परूपायाश्चितो विमृष्टिः फलम् ॥'

—(सौभाग्योदयवृत्ति)

(२६) साधना की **सर्वोच्च उपलब्धि** क्या है?

आत्मसाक्षात्कार : 'आत्मलाभान्नपरं विद्यते ॥'

(२७) **वेदादि विद्याओं का क्या महत्व है?**

वेश्या इव प्रकटा वेदादिविद्याः। सर्वेषु दर्शनेषु गुप्तेयं विद्या ॥

—(परशुरामकल्पसूत्र (१/३०)

(वेदों के प्रति घृणा की दृष्टि)

(२८) अधिकारवादः 'तत्र सर्वथा मतिमान दीक्षेत् ।[1]

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र

(२९) **दीक्षाओं के कितने प्रकार हैं?**

'दीक्षास्तिस्रः शाक्ती, शाम्भवी मान्त्रीचेति। तत्र शाक्तीशक्ति प्रवेशनात् , शाम्भवी चरणविन्यासात्, मान्त्री मन्त्रोपदिष्टया सर्वाश्च कुर्यात् ।[1]

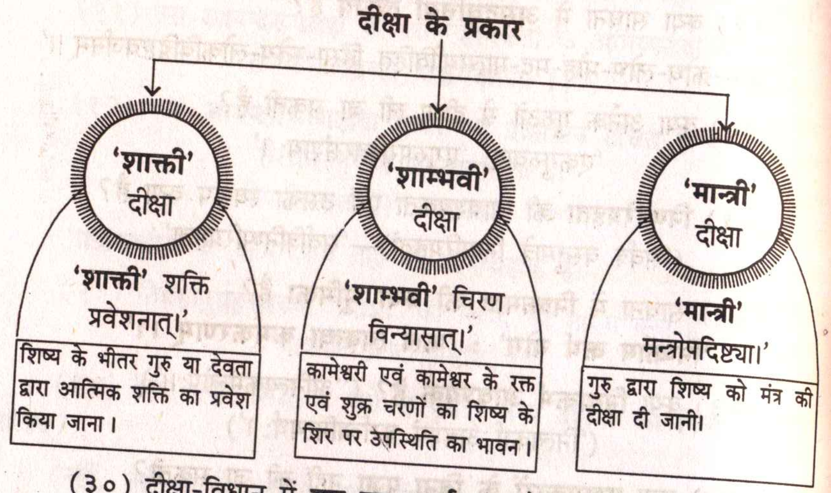
दीक्षा के प्रकार
'शाक्ती' दीक्षा
'शाम्भवी' दीक्षा
'मान्त्री' दीक्षा
'शाक्ती' शक्ति प्रवेशनात्।'
'शाम्भवी' चिरण विन्यासात्।'
'मान्त्री' मन्त्रोपदिष्टया।'

शिष्य के भीतर गुरु या देवता द्वारा आत्मिक शक्ति का प्रवेश किया जाना।

कामेश्वरी एवं कामेश्वर के रक्त एवं शुक्र चरणों का शिष्य के शिर पर उपस्थिति का भावन।

गुरु द्वारा शिष्य को मंत्र की दीक्षा दी जानी।

(३०) दीक्षा-विधान में **गुरु का कार्य** क्या है?

"सद्गुरुः क्रमं प्रवर्त्य साङ्गं हुत्वा तरुणोल्लासवान् शिष्यमाहूय वाससा मुखं बद्ध्वा **गणपति-ललिता**-श्यामा-वार्तालो-परा-पात्र बिन्दुभिस्तमवोक्ष्य सिद्धान्तं श्रावयित्वा। तच्छिरसि रक्तशुक्लचरणं भावयित्वा तदमृतक्षालितं सर्वशरीरमलङ्कुर्यात् ।'

(३१) **शाक्ती दीक्षा** का क्या स्वरूप है?

"तस्यामूलब्रह्मविलं प्रज्वलन्तीं प्रकाशलहरीं ज्वलदनलनिभां ध्यात्वा तद्रश्मिभिस्तस्य पापपाशान् दग्ध्वा।"

(३२) **'मान्त्रीदीक्षा' का क्या स्वरूप है?**

'त्रिकुट-त्रिकला-चतुर्जात-तक्कोल-मदयन्ती-सहदेवी-दूर्वा-भस्म-मृत्तिका-चन्दन-कुङ्कुम-रोचना-कर्पूरवासितजलपूर्णं वस्त्रयुग वेष्टितं नूतनकलशं बालाषडङ्गेनाभ्यर्च्यं श्री श्यामा-वार्त्तालीचक्राणि निःक्षिप्य तिसृणामावरणमन्त्रैरभ्यर्च्य संरक्ष्या स्त्रेण प्रदर्श्य धेनुयोनी।।" (परशुरामकल्पसूत्र)। इसके अनन्तर **'मृतकायन्त्र' 'मांत्रीदीक्षा का उपसंहार' 'गुरुकर्तृक शेषकर्म' 'गुरुपादुकामन्त्रदान' 'आचारानुशासन' एवं शिष्य कर्तृकक्रिया'** पर ('परशुरामकल्पसूत्र में) प्रकाश डाला गया है।

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र

ये समस्त विषय उन्होंने प्रथम खण्ड अर्थात् "दीक्षाविधि" के अन्तर्गत विवेचित किये हैं।

महागणपति क्रम : द्वितीय खण्ड (संक्षिप्त रूपरेखा)—

(१) भगवती ललिता की उपास्ति की दिक्षा में दीक्षोपरान्त उपासनारंभ में सर्वप्रथम महागणपति की उपासना करना परमावश्यक है।[1]

(२) ब्राह्ममुहुर्त में उठकर **द्वादशान्त** में, सहस्त्रदलपद्म की कर्णिका की मध्यरेखा के ऊपर **गुरुदेव के चरणों की भावना** करनी चाहिए एवं उनके चरणों से स्त्रवित सुधाधारा से स्वात्म के सर्वाङ्ग को सुखस्नात अनुभव करना चाहिए।

(३) तदुपरान्त **हृत्पद्म** में उदीयमान अनन्त आदित्यों की रक्ताभा को भी मलिन करने वाली आभा वाले एवं रक्ताभ महागणपति की भावना करनी चाहिए। इसके बाद मूलतर्पण २२८ बार, वर्ण तर्पण ११२ बार एवं मिथुन तर्पण १०४ बार करना चाहिए।[2]

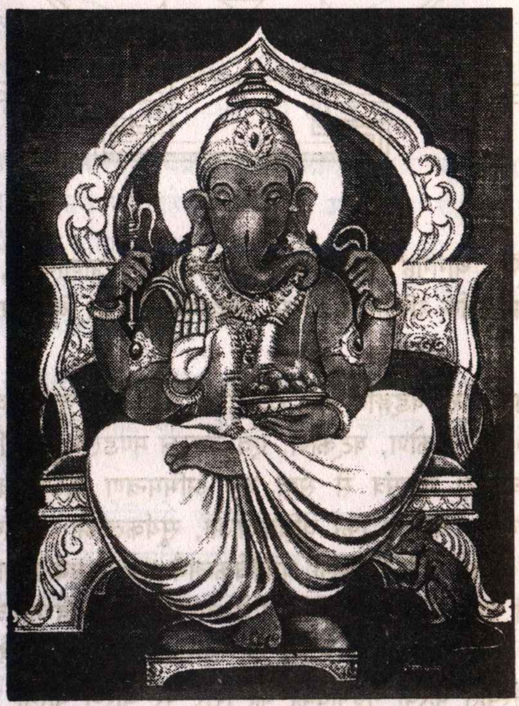

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र (२/१)
[2] परशुरामकल्पसूत्र (२/३)

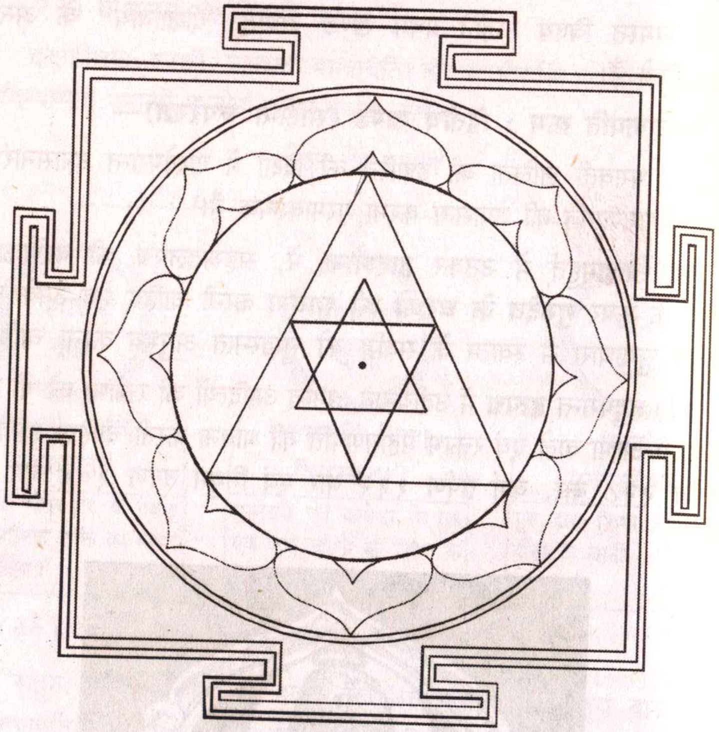

गणेश यन्त्र

(४) फिर यागगृह में जाकर 'आसनशुद्धि', 'प्राणायाम', निर्विघ्नता हेतु गणपति के ध्यानपूर्वक संकल्प,एवं फिर **'षडङ्गन्यास'** फिर विघ्नेश्वर का ध्यान करना चाहिए।

(५) तदुपरान्त षड्ङ्गविन्यास (त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त एवं चतुष्कोणों का निर्माण करके) फिर त्रिकोण, षट्कोण, एवं चतुरस्त्र मण्डलों में ३ दिव्य मण्डलों की पूजा करनी चाहिए। मूलमंत्र से सात बार अभिमन्त्रण करना चाहिए। द्रव्यों का सम्प्रोक्षण भी करना चाहिए। फिर वह्निकलाओं, सूर्यकलाओं, चन्द्रकलाओं की पूजा करनी चाहिए यथा—'श्रीं ह्रीं क्लीं धूमार्चिकलायै नमः'' पूर्व दिशा में धूमार्चिकला की पूजा करनी चाहिए। कलाओं की पूजा के अनन्तर वक्रतुण्ड गायत्री मंत्र एवं गणेश मंत्र—'गणानां त्वा' से आचार द्रव्यों का अभिमंत्रण करना चाहिए। अर्घ्यजल से स्वात्मा को संस्कृत करके गुरुपादुका को शिर पर धारण करना चाहिए। तदनन्तर चन्दन-पीठ पर समासीन महा गणपति की प्रतिमा में देवियों, धर्माद्यष्टक एवं पीठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए। यथा—

'चतुरस्त्राष्टदलषट्कोणत्रिकोणमये चक्रे वा तीव्रायै, ज्वालिन्यै, नन्दायै, भोगदायै, कामरूपिण्यै,उग्रायै, तेजोवत्यै, सत्यायै, विघ्ननाशिन्यै, ॠंधर्माय, ॠं ज्ञानाय, ऌं वैराग्याय, ॡं ऐश्वर्याय, ॠं अधर्माय, ॠं अज्ञानाय, ऌं अवैराग्याय, ॡं अनैश्वर्याय नमः'' आदि कहकर पीठ शक्ति स्वरूपा देवियों की पूजा करनी चाहिए।।[1]

(६) इसके अनन्तर पञ्चोपचार **पूजन सन्तर्पण** आदि करना चाहिए। **पञ्चावरण देवताओं की पूजा** की जानी चाहिए। **गणनाथ का अर्च-तर्पण भी** करना चाहिए। **षोडशोपचार पूजन** भी करना चाहिए। इसके बाद तीन बार मंत्रपाठ भी करना चाहिए। फिर **बलि** भी दी जानी चाहिए। इसके बाद बटुक एवं शक्ति (गणपति की भावना से भावित बटुक एवं सिद्धिलक्ष्मी की भावना से भावित शक्तिरूपिणी कुमारी) को बैठाकर उनकी गन्ध, अक्षत, पुष्पादि से पूजा करनी चाहिए। फिर गणपति उद्वासन (स्वात्मसात्) करना चाहिए। बहिर्यागोपासना के समाप्त होने पर **'उद्वासन'** रूप अन्तर्याग **करना चाहिए।।**[2]

श्रीचक्र का सूर्यमण्डल के मध्य ध्यान करना चाहिए—

'तन्मण्डल मध्ये नवयोनिचक्रमनुचिन्त्य'' (प०क०सू०) फिर **त्रिपुरसुन्दरी गायत्री मन्त्र**—(त्रिपुरा गायत्री का जप) 'त्रिपुरसुन्दरि विद्महे' 'पीठकामिनि धीमहि' और फिर 'तन्नःक्लिन्ना प्रचोदयात्'—का जप करना चाहिए।

श्रीचक्र को ही **'नवयोनिचक्र' 'कामिकागम'** एवं **'सुन्दरीहृदय'** भी कहते हैं। श्रीचक्रस्थ राजराजेश्वरी महामाहेश्वरी को **तीन अर्घ्य** देना चाहिए। फिर यागमन्दिर में जाकर आसनोपविष्ट होना चाहिए। फिर त्रितारी का उच्चारण करे 'दीपनाथाय नमः' करके भूमि पर पुष्पाञ्जलि समर्पित करना चाहिए। श्रीविद्या की उपासना में **त्रितारी बीजमंत्रों का योग** अत्यावश्यक है।

'श्रीचक्र' में शक्तिचक्रैकनायिका श्रीललिताम्बा की उपासना की जाती है। इसके बाद भगवती के मन्दिर आदि की पूजा की जानी चाहिए। उसमें पूजा-विधान का स्वरूप इस प्रकार है—

'तत्र महाचक्रे अमृताम्भोनिधये, रत्नद्वीपाय, नानावृक्षमहोद्यानाय, कल्पवृक्षवाटिकायै, सन्तानवाटिकायै, हरिचन्दनवाटिकायै, मन्दारनवाटिकायै, पारिजातवाटिकायै, कदम्बवाटिकायै, पुष्परागप्रकाराय, पद्मरागरत्नप्रकाराय, गोमेधरत्नप्रकाराय, वज्ररत्नप्राकाराय, वैदूर्यरत्नप्राकाराय, इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय, मुक्तारत्नप्राकाराय, मरकतरत्नप्राकाराय, विद्रुमरत्नप्राकाराय, माणिक्यमण्डपाय, सहस्त्रस्तंभमण्डपाय, अमृतवापिकायै,

---

१. परशुरामकल्पसूत्र
२. परशुरामकल्पसूत्र

आनन्दवापिकायै, विमर्शवापिकायै, बालातपोद्गाराय, चन्द्रिकोद्गाराय, महाशृङ्गारपरिघायै, महापद्माटव्यै, चिन्तामणिगृहराजाय, पूर्वाम्नायमयपूर्वद्वाराय, दक्षिणाम्नायमयदक्षिणद्वाराय, पश्चिमाम्नायमय पश्चिमद्वारायोत्तराम्नायमयोत्तरद्वाराय, रत्नप्रदीपवलाय, मणिमयमहासिंहासनाय, रुद्रमयैकमञ्चपादाय, ईश्वरमयैकमञ्चपादाय, सदाशिवमयैक मञ्चफलकाय हंसतूलतल्पाय, ब्रह्ममयैकमञ्चपादाय, विष्णुमयैकमञ्चपादाय, हंसतूलमहोपधानाय, कौस्तुभास्तरणाय, महावितानकाय, महाजवनिकायै नम इति चतुश्चत्वारिंशन्मन्त्रैस्तत्तदखिलं भावयित्वा अर्चयित्वा॥१०॥[१]

श्रीक्रम (तृतीय खण्ड) : 'श्रीललिताधिकारः''

ललिताक्रमारंभ—भगवान गणपति की पूजा (उपासना) करने के उपरान्त शक्तिचक्र की अधिष्ठात्री भगवती ललिता का क्रम आरंभ होता है।[२]

(१) **परमशिव रूप गुरु का ध्यान**—ब्राह्ममूहुर्त्त में उठे। (अष्टाविंशतितमो यश्च मुहूर्त्तो ब्रह्मनामकः। तस्मिन्तुत्थाय मतिमांश्चिन्तयेदात्मनो हितम्।)

ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर परमशिव रूप परमगुरु का ध्यान करे।

मूलाधार चक्र से ब्रह्मरंध्र पर्यन्त संविदतत्त्वरूपा निर्विकल्पिका चितिशक्ति शरीर में व्याप्त है जोकि करोड़ों की संख्या में एक साथ कौंधने वाली बिजलियों की कपिशवर्णी शोभा से सुशोभित है। ज्येष्ठ के तपते आदित्य की ज्योति के समान पिङ्गरवर्णी संवित्ति देवी का भी साधक ब्राह्ममुहूर्त्त में ध्यान करें। इससे साधक के कश्मलजाल जल जाते हैं। इसके बाद साधक **'कादिविद्या'** या **'हादिविद्या'** के मंत्र का जप करे। (यहाँ सूत्रकार ने पादुका-पूजन, श्लोकपाठ गण्डूष मंत्र आदि को त्याज्य मानकर उनका-उल्लेख नहीं किया है।)

* परमशिव, मूलसंविद का ध्यान एवं कादि या हादि मंत्र का जप *

(२) **स्नान**—स्नानोपरान्त श्रीविद्या मंत्र से ३ बार प्रत्यञ्जलि मंत्र पढ़कर शिर पर **जल डालना,** मूलाभिमंत्रित **जल का पान** करना, देवी का तीन बार 'शक्तिचक्रैकनायिकां श्रीललितां तर्पयामि' मंत्र से तीन बार, **तर्पण** करना, मूल मंत्र पढ़कर तीन बार **स्वात्म-प्रोक्षण—वस्त्र पहनना,** सूर्य को **तीन बार अर्घ्य** देना—ये सारी क्रियायें करणीय हैं।

(३) **प्राणायाम** करते समय वायु बीज से प्राण का नियन्त्रण अग्निबीज से दोषराशि का भस्मीकरण एवं आप्लावन से उसे प्रक्षालित करके बाहर प्रक्षिप्त करना चाहिए। **(आप्लावन)** तीन प्राणायाम करना चाहिए। ('त्रिः प्राणनायम्य' १३)

---

१. परशुरामकल्पसूत्र (श्रीक्रमः १०)

२. परशुरामकल्पसूत्र (श्रीक्रम ३/१)

(४) इसके नाद **न्यास** करना चाहिए। फिर **आसन** पर बैठना चाहिए। फिर **वशिन्यादियोगिनीन्यास** करना चाहिए।

(५) वर्ग	निर्धारित बीज	विशेष नाम	विशेषण नमः स्थान
(१) अवर्ग (स बिन्दु)	ब्लूं	वशिनी	वाग्देवतायै नमः शिरसि
(२) सबिन्दु कवर्ग	क्ल्हीं	कामेश्वरी	वाग्देवतायै नमः ललाटे
(३) सबिन्दु चवर्ग	व्लीं	मोदिनी	वाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये
(४) टुं टवर्ग	टलूं	विमला	वाग्देवतायै नमः कण्ठे
(५) तुं तवर्ग	ज्म्रीं	अरुणा	वाग्देवतायै नमः हृदि
(६) पुं पवर्ग	हस्ल्वयूं	जयिनी	वाग्देवतायै नमः नाभौ
(७) यादि चतुष्क (यं रं लं वं)	झ् म् र् यूं	सर्वेश्वरी	वाग्देवतायै नमः लिङ्गे
(८) शादिषट्क	क्ष्म्रीं	कौलिनी	वाग्देवतायै नमः मूलाधारे

इस प्रकार ये आठ मन्त्र बनते हैं। इन मन्त्रों से योगिनी वाग्देवताओं का शरीर के आठ मुख्यांगों पर न्यास करना चाहिए। वाग्देवता ही विश्व-सृष्टि भी मूलाधार है।

फिर मूलमंत्र (कादिविद्या) का न्यास करना चाहिए।

अकुल की कुल प्रथनशालिनी शक्ति को ही **'कौलिकी शक्ति'** एवं अकुल की कुलप्रथनशालिनी शक्ति ही **'कुलनायिका'** है।

> 'अकुलस्यास्य देवस्य कुलप्रथनशालिनी।
> कौलिकी सा पराशक्तिरवियुक्तो यया प्रभुः ॥'
> 'हे अमृते ! अस्मिन् द्रव्ये अमृतं स्त्रावय ॥

'अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्त्रावय स्त्रावय इति।'' इसका उच्चारण करना चाहिए। इसके बाद पञ्चमी विद्या या पञ्चममन्त्र का उच्चारण करना चाहिए—

'ऐं वदवद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु हसौं स्हौः॥'

कुण्डलिनी शक्ति की चिदग्नि में हवन करें।

अहंता में इदन्ता का अवसान आवश्यक है। कुण्डलिनी की चिदग्नि से चिदाकाश प्रकाशित हो जाता है। साधक ब्रह्ममयी मधुमती भूमिका में प्रविष्ट हो जाता है।

ललिता क्रम : (चतुर्थ खण्ड)—

(१) हृदय में स्थित (हृदय में शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित परादेवता) देवता का श्री चक्र में आवाहन करना चाहिए और तदुपरान्त उसकी पूजा करनी चाहिए।

मेरुदण्ड में अवस्थित **सुषुम्ना के आन्तर पद्म का पथ** साधना से ही प्रकाशित होता है। साधनाभाव के कारण वह दुर्गम **अटवी** (जङ्गल) कहा गया है। इस अटवी का भेदन मातृकृपा से ही संभव है। हृदयकेन्द्र से सहस्रार तक की यात्रा का मार्गदर्शन माता ही करा सकती है।

साधक उस आद्या शक्ति को **'प्राणापानवाह'** के द्वारा वहन करता है। प्राण **अपानचन्द्र** पर चढकर **प्राणसूर्य** बाहर आ जाता है और मध्य द्वादशान्त में स्थित हो जाता है। सूर्य-चन्द्र के अस्तमान को ज्योतिष में 'अमावस्या' कहते हैं। योग में तो जब **प्राणपान रूप** रवि-सोम अस्त होकर **मध्यद्वादशान्त में समा** जाते हैं तो उसे **अमावस्या** कहते हैं। अमा का उत्स ही जीवन का केन्द्र है।

"ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं सौः शक्ति चक्रैकनायिकाया ललिताया अमृतचैतन्यमूर्तिं कल्पयामि नमः"—

इस ३३ वर्णों के मंत्र से मूर्ति की कल्पना करके कल्पित मूर्ति को नासापुट से बाहर निकालता है और उसे पुष्पाञ्जलियुक्त हाथों से समानयन करता है।

(२) भगवती की **६४ उपचारों से पूजा** करनी चाहिए। ६४ उपचारों में 'कल्पयामि' (यथा 'पाद्यं कल्पयामि') जोड़ लेना चाहिए। हर बार 'ललिताम्बायै नमः' कहना आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार—'आभरणं कल्पयामि' आदि का प्रयोग करना चाहिए।

(३) नव **मुद्रायें** भी प्रदर्शित करनी चाहिए। तीन प्रकार **सन्तर्पण** भी करणीय है। **षडङ्ग पूजन** भी निष्पाद्य है।

(४) फिर **नित्याओं की भी पूजा** करनी चाहिए यथा—'मायाक्लिन्ने वाक् क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं इति महावज्रेश्वरी॥' 'अं च्क्नौं इति चित्रा' आदि॥

(५) नित्यायें निम्नाङ्कित हैं—(१) कामेश्वरी। (२) भगमालिनी (३) नित्यक्लिन्ना (४) भेरुण्डा (५) वह्निवासिनी (६) वज्रेश्वरी (७) शिवदूती (८) त्वरिता (९) कुलसुन्दरी (१०) नित्या (११) नीलपताका (१२) विजया (१३) सर्वमङ्गला (१४) ज्वालामालिनी (१५) चित्रा॥

इसके अनन्तर (१) दिव्यौघ (२) सिद्धौघ (३) मानवौघ की पूजा करनी चाहिए।

'यथा सम्प्रदायं पादुकान् दिव्य-सिद्ध-मानवौघ सिद्धाभिष्ट्वा पश्चात् स्वशिरसि नाथं यजेत्।'[1]

* ललिता नवावरण पूजा क्रम (पञ्चमखण्ड) *

प्रथमावरण की पूजा (व्यष्टि पूजा)—

(१) **अणिमा का मंत्र**—'ऐं ह्रीं श्रीं अं अणिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥'

(२) **लघिमा का मंत्र**—'ऐं ह्रीं श्रीं लं लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥'

इसी प्रकार अन्य सिद्धियों की पूजा करनी चाहिए। **मध्यचतुर्भुज** में ८ मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए। (मातृकायें—ब्राह्मी। माहेश्वरी। कौमारी। वैष्णवी। वाराही। इन्द्राणी।

मध्यचतुरस्र में —(१) ब्राह्मी पश्चिमद्वार में (२) माहेश्वरी उत्तरद्वार में (३) कौमारी पूर्वद्वार में (४) वैष्णवी दक्षिणद्वार में (५) वायव्य में वैष्णवी (६) ईशान में इन्द्राणी (७) अग्नि में चामुण्डा (८) नैऋत्य में महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए।

तृतीय चतुरस्र में—(१) सर्वसंक्षोभिणी (२) सर्वविद्राविणी (३) सर्वाकर्षिणी (४) सर्ववशङ्करी (५) सर्वोन्मादिनी (६) सर्वमहाङ्कुशा (७) सर्वखेचरी (८) सर्वबीजा (९) सर्वयोनि मुद्रा (१०) सर्वत्रिखण्डा।

प्रथमावरण की समष्टि पूजा—

अणिमा से त्रिखण्डा पर्यन्त ये १० योगिनियाँ **'प्रकट योगिनियाँ'** कही जाती हैं। **'त्रैलोक्यमोहनचक्र'** तीन चतुरस्रों का सबसे बाहर वाला चक्र है। इसी क्रम में इन समस्त प्रकट योगिनियों की पूजा की जाती है। यह **'समष्टिपूजा'** कही जाती है। **'त्रैलोक्यमोहनचक्र'** की नायिका त्रिपुरा है।

द्वितीयावरण पूजा—श्री चक्र के १६ पत्रों में १६ गुप्त योगिनियों की पूजा की जानी चाहिए।

---

[1] १. ललिता क्रम (१०)

योगिनियों के नाम

- (१) कामाकर्षिणी
- (२) बुद्ध्याकर्षिणी
- (३) अहङ्काराकर्षिणी
- (४) शब्दाकर्षिणी
- (५) स्पर्शाकर्षिणी
- (६) रूपाकर्षिणी
- (७) रसाकर्षिणी
- (८) गन्धाकर्षिणी
- (९) चित्ताकर्षिणी
- (१०) धैर्याकर्षिणी
- (११) स्मृत्याकर्षिणी
- (१२) नामाकर्षिणी
- (१३) बीजाकर्षिणी
- (१४) आत्माकर्षिणी
- (१५) अमृताकर्षिणी
- (१६) शरीराकर्षिणी

पूजा मन्त्र इस प्रकार बनेंगे—

'ऐं ह्रीं श्रीं अं कामाकर्षिणी नित्याकला श्री पादुकां पूजयामि नमः।।'

तदनन्तर—'एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिता सन्तुष्टाः सन्तु नमः—कहकर पुष्प अर्पित करना चाहिए। फिर **आत्मरक्षा का मन्त्र** पढ़ना चाहिए। फिर त्रिपुरेश्वरी की पूजा करके 'द्रीं' बीजमंत्र कहकर सर्वविद्राविणी मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए।

तृतीयावरण पूजा—**'सर्वसंक्षोभण चक्र'** में ८ गुप्ततर योगिनियों की पूजा की जाती है।

गुप्ततर योगिनियाँ

- (१) अनङ्गकुसुमा
- (२) अनङ्गमेखला
- (३) अनङ्गमदना
- (४) अनङ्गमदनातुरा
- (५) अनङ्गरेखा
- (६) अनङ्गवेगिनी
- (७) अनङ्गांकुशा
- (८) अनङ्गमालिनी

चतुर्थावरण की पूजा—इनकी योगिनियों को 'सम्प्रदाय योगिनी' कहते हैं। ये संख्या में १४ हैं। इनकी पूजा एक-एक दल रूप अरों में देवी के अग्रकोण से आरंभ करके होती है। **मंत्र का स्वरूप** इस प्रकार होता है—

'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिणी श्री पादुका पूजयामि नमः।।'

इसी प्रकार अन्य मंत्र भी बनाने चाहिए।

अन्त में 'एताः सम्प्रदाययोगिन्यः **सर्वसौभाग्य चक्रे** समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः।।'—यह मंत्र कहकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए। 'ब्लूं' बीजमंत्र बोलकर सर्ववशङ्करी मुद्रा दिखलानी चाहिए।

पञ्चमावरण पूजा—'बहिर्दशार' **'सर्वार्थसाधकचक्र'** कहलाता है। इसमें १० कुलोत्तीर्ण योगिनियों की पूजा की जाती है। इन योगिनियों का नाम इस प्रकार है—

कुलोत्तीर्ण योगिनियाँ

- (१) सिद्धिप्रदा
- (२) सम्पत्प्रदा
- (३) प्रियङ्करी
- (४) मङ्गलकारिणी
- (५) कामप्रदा
- (६) दुःखविमोचिनी
- (७) मृत्युप्रशमनी
- (८) विघ्ननिवारिणी
- (९) सर्वाङ्गसुन्दरी
- (१०) सर्वसौभाग्यदायिनी

षष्ठावरण पूजा—यह पूजा **'अन्तर्दशार' (सर्वरक्षाकरचक्र)** में होती है। इसमें **'निगर्भ योगिनियों'** की पूजा की जाती है।

निगर्भ योगिनियाँ

- सर्वज्ञा
- सर्वशक्तिदेवी
- सर्वैश्वर्यप्रदा
- सर्वज्ञानमयी
- सर्वव्याधिविनाशिनी
- सर्वाधारस्वरूपा
- सर्वपापहरा
- सर्वानन्दमयी
- सर्वरक्षास्वरूपिणी

सर्वेप्सितफलप्रदा आदि १२ निगर्भ योगिनियाँ हैं। 'एता निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकर-चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधा सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिता सन्तर्पिताः सन्तुष्टा सन्तु नमः।।'—कहकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

सप्तमावरण—'अष्टारचक्र' को **'सर्वरोगहर'** कहते हैं।

'एता रहस्य योगिन्यः सर्वरोगहरचक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिता सन्तुष्टाः सन्तु नमः'—कहकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

मूर्तिविद्या 'ह्रीं श्रीं सौः' बीजमंत्र को कहते हैं। इस मन्त्र को बोलकर "त्रिपुरासिद्धचक्रेश्वरी श्रीपादुकां नमः' मंत्र कहकर सप्तम आवरण पूजा का अर्पण किया जाता है। खेचरी मुद्रा का प्रदर्शन भी करना चाहिए। इसके साथ ही आयुध-पूजा भी निष्पाद्य है।[1]

अष्टमावरण पूजा—इस पूजा में भी 'एता अति रहस्य योगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदचक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः" कहकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

"त्रिकोणे वाक्कामशक्तिसमस्तपूर्वाः कामेश्वरीवज्रेश्वरी-भगमालिनी महादेव्यः बिन्दौ चतुर्थी।।'

समस्त आवरणान्तर्गत पूजनीया नित्यायें भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अतिरिक्त नहीं है इसीलिए कहा जाता है कि—"अभेदाय मूलदेव्याः पूजा।।'

कल्पसूत्र में कहा गया है—

"तिसृणा मासामनन्तर**मभेदाय** मूलदेव्याः पूजा। कामेश्वर्यादि चतुर्थी नित्यानां षोडशी चक्रदेवीनां नवमी बिन्दुचक्रस्था चेत्येकैव। न तत्र मन्त्रदेवता भेदः कार्यः। तन्महादेव्या एवा चतुर्षुस्थलेषु विशेषार्चनमावर्तते।।१२।।"

'एता अतिरहस्य योगिन्यः **सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे ।'**

नवमावरण पूजा—नवम आवरण में तो मात्र ललिताम्बा की ही पूजा की जाती है। यह पूजा **'बिन्दुचक्र'** में की जाती है।

'बिन्दुचक्र' को 'सर्वानन्दमय चक्र' कहते हैं।

बिन्दु में **'सर्वानन्दचक्राय नमः'** कहकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

'बिन्दुचक्रे मूलेन देवीमिष्ट्वा एषा परापररहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे समुद्रा ससिद्धिः सायुधाः सशक्तिः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताऽस्तित्वति पुनर्मूलमुच्चार्य महाचक्रेश्वरीमिष्ट्वा वाग्भवेन योनिं प्रदर्श्य।।' 'एवं नवावरणपूजां विधाय धूपादिदानं पूर्ववद्धूपदीपमुद्रातर्पणनैवेद्यादि दत्वा।।' (१४-१५)

---

[1] पुस्तक की पृथुलता की शंका से संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है अतः मंत्रस्वरूप आदि विधान छोड़ दिए जा रहे हैं।)

पञ्चदशी का उच्चारण करके—'महाचक्रेश्वरी'[1] श्रीपादुकां पूजयामि नमः' कहकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

पूजान्त में यह मन्त्र कहना चाहिए—

'अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागत वत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं मयैव वरणार्चनम् ।।'

यही है पूजा-समर्पण।

प्रथमः **धूप** फिर **दीपार्पण** और फिर **मुद्रा-प्रदर्शन** का क्रम है। मुद्रायें सर्वसंक्षोभिणी आदि हैं। इसके बाद **तर्पण** का क्रम है। पाँचवें स्थान में **नैवेद्यार्पण** है। यह नैवेद्य **'महानैवेद्य'** है। सर्वस्वार्पण ही महानैवेद्य है। भोज्य, भक्ष्य, चोष्य लेह्य समस्त सामग्रियों के साथ पेय तथा दधि, दुग्ध मधुपूर्ण नैवेद्य होना चाहिए। साधक धेनुमुद्रा दिखाकर उसे अमृतमय करे। प्राणापन, व्यान, उदान एवं समान मुद्राओं का समन्त्रक प्रयोग किया जाय। भावना की जाय कि पराम्बा इस नैवेद्य एवं शिवतत्त्वमयी ललिताम्बा को मूल मंत्र के त्रिकुटों से तृप्त करें। तदूपरान्त माँ को ताम्बूलार्पण करना चाहए।

'कामकला' का ध्यान—

(१) **बिन्दु में मुख का** (मातृशरीर का दर्शन तो अपने आप बिन्दु में होना चाहिए) **ध्यान** करना चाहिए।

(२) **विश्ववत्स के आप्यायक स्तनद्वय** को **दो बिन्दुओं** के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

(३) पुत्र के लिए योनि-प्रकल्पन निषिद्ध है तथापि सूत्रकार ने उसे सपरार्ध (ई) बीज से निर्दिष्ट किया है। सौभाग्यहृदयमामृश्य।।१७।।

पुरुषार्थ चतुष्टय का उपादान कारण **'सौभाग्यहृदय'** है। इसका **बीजमंत्र पराबीज 'सौः'** है। इसका भी ध्यान करना चाहिए। इसके बाद **बलि** का विधान है। बलि पदार्थ मण्डल में रखना चाहिए। बलि के विषय में यह सोचना चाहिए कि **विघ्नकारी भूत इसे खा रहे हैं। जलार्पण फिर** 'बाणमुद्रा'-**पदर्शन एवं** पणाम **करने के बाद** जपस्तोत-पाठ, शकि-पूजन, मपञ्चक से देव तुष्टिकरण **फिर** चिदग्नि मे हविशेष का हवन, **फिर** खेचरी-मुद्रा प्रदर्शन, **क्षमाप्रार्थना पूर्वक** विसर्जन कृत्य समाप्त करना चाहिए। खेचरी मुद्राबन्ध की सामरस्यावस्था मे अवस्थित होकर पराम्बा का विसर्जन करना चाहिए।

---

१. परशुरामकल्पसूत्र (ललितानवावरण पूजाक्रम)
२. परशुरामकल्पसूत्र (ललितानवावरण पूजाक्रम १६)

श्यामा कम (षष्ठ खण्ड)

'इयमेव महती विद्या सिंहासनेश्वरी साम्राज्ञी तस्याः प्रधान सचिवपदं श्यामा तत्क्रमविमृष्टिः सदा कार्या॥'[1]

प्रश्न—जगदीश्वरी को छोड़कर ललिता की प्रधान सचिव श्यामा की उपासना क्यों की जाय?

उत्तर—ऋषि परशुराम जी कहते हैं—'प्रधान द्वारा राजप्रसादनं हि न्याय्यम्॥२॥ अतः प्रथमतः (श्री ललिता जी की प्रधान सचिव) **'श्यामा की उपासना** करने के बाद ही भगवती ललिता की उपासना करनी चाहिए।'

वृत्तिकार का कथन है कि—(१) प्रथमतः दीक्षा लीजिए। (२) फिर गणपति की उपासना कीजिए। (३) (फिर) श्यामा की उपासना कीजिए (४) (फिर) वाराही की उपासना कीजिए (५) (फिर) परोपासना कीजिए एवं (६) (फिर) भगवती ललिता की उपासना कीजिए। किन्तु जो समर्थ लोग हैं वे दीक्षा लेने के बाद गणपति की उपासना के बाद सीधे ललिता क्रम आरम्भ कर सकते हैं।

भगवती ललिता की उपासना क्रमद्वय (रामेश्वर)

(१)	(२)
(उपासना-सोपान)	(उपासना-सोपान) (द्वितीय पद्धति)
दीक्षा, गणपति की उपासना, श्यामा की उपासना, वाराही की उपासना परोपासना और **अन्त में ललितोपासना।**	यदि साधक समर्थ है तो प्रथमतः (१) दीक्षा (२) (फिर) गणपति उपासना एवं (३) फिर **ललितोपासना।**[2]

श्यामोपासना के नियम—(१) **ब्रह्ममुहूर्त्त** में उठकर (२) (फिर) गुरु **श्रीपादुका का अभिवादन** करके (३) (फिर) **प्राणायाम** करके (४) (फिर) मूलाधार से द्वादशान्त पर्यन्त प्रकाशमान **परासंवित् का ध्यान** करके (५) (फिर) मूल मंत्रका मन ही मन **जप** करके शय्या-त्याग करके **मलोत्सर्ग, मूत्रोत्सर्ग कफ विमोचन नासाशोधन** आदि करना चाहिए और **बीस बार कुल्ला** करना चाहिए।[3] (६) (फिर) **मन्त्र स्नान-भस्मस्नान-जलस्नान**, में से कोई स्नान करना चाहिए। (७) (फिर) नित्यकर्मात्मक **सन्ध्योपासना** और अन्त में **सूर्यमण्डलका ध्यान** और उसमें **सापरण भगवती ललिता का ध्यान** करना चाहिए (८) (फिर)मूल मंत्र से ३ बार **अर्घ्य** देकर (९) (फिर) **तर्पण** करना चाहिए।

---

१. परशुरामकल्पसूत्र (श्यामा क्रम)

२. सौभाग्योदयवृत्ति

३. परशुरामकल्पसूत्र (श्यामाक्रम ३)

'य' 'र' 'ल' 'व' (अन्तस्थवर्ण) पर अनुस्वार लगाने से इनमें आन्तरिक ऊर्जा का आन्दोलन एवं उच्छलन होने लगता है।

'यकार' = वायु बीज। **'रकार'** = अग्निबीज। **'वकार'** = अमृत वरुण, विष्णु बीज)। **'लकार'** = पृथ्वी बीज। बीजों से स्वसम्बद्ध तत्त्वों का समुच्छलन। वर्ण-बीजों से ऊर्जा का उद्रेक।

(१) 'यं' इति वायु पिङ्गलयाऽऽकृष्य देहमुपविशोध्य।

(२) 'रं' इति वायुमाकृष्य देहं दग्ध्वा।

(३) 'वं' इति वायुमाकृष्यामृतेन दग्ध देहभस्म सिक्त्वा।

(४) 'लं' इति वायुमाकृष्य शिवचैतन्यमुत्पाद्य।

(क) 'यं'—शरीर को शुष्क बनाना। (जलांश नष्ट)

(ख) 'रं' (अग्निबीज)—देह-दाह की क्रिया।

(ग) 'वं' (वरुणबीज)—देह में अमृत सिञ्चन।

(घ) 'लं' (पृथ्वी बीज)—सिक्त भस्म में काठिन्योत्पादन।

(ङ) 'हंस मंत्र'—(उपर्युक्त भूत शुद्धि निष्पादित करने के बाद) हंस मंत्र से चैतन्योन्मेष करणीय है।

(५) इसके बाद **प्राणप्रतिष्ठा** करनी चाहिए।

(क) मूल मंत्र को एक बार कहकर—वायु का पूरक

(ख) ३ बार मंत्रोच्चारण करने तक—वायु का कुंभक

(ग) २ बार मंत्रोच्चारण करने तक—वायु का रेचन

किन्तु इस प्राणायाम को अधिक संख्या में भी किया जा सकता है।[1] **षडङ्गन्यास** (हृदय। शिर। शिखा। कवच। नेत्रत्रय। अस्त्र। अङ्गों पर न्यास) भी निष्पाद्य है।

सर्वप्रथम—**बाला मंत्र** सहित **'मातृकान्यास'** करना चाहिए।

(**बालामंत्र** =ऐं क्लीं सौः)। इसके बाद—

---

१. प्राणायाम—तेजोमयतनुत्व की प्राप्ति। (परशुरामकल्पसूत्र)

(१) ऐं क्लीं सौः रत्यै नमः मूलाधारे।

(२) ऐं क्लीं सौः प्रीत्यै नमः हृदये।

(३) ऐं क्लीं सौः मनोभवाय नमः मुखे'—इस प्रकार न्यास करना चाहिए।

न्यास ६ ब्रह्मरंध्र में, ३ ललाट में, ४ भ्रूमध्य में, ६ दक्षिण चक्षु में, ८ वाम चक्षु में, ७ मुख एवं इसी प्रकार कान, कण्ठ, मूलाधार आदि में न्यास निष्पाद्य है।

अनुलोम एवं विलोम दोनों क्रमों से न्यास करना चाहिए। श्यामा विद्या के आधार पर ही—

(१) धूम्रा (२) अर्चिः (३) ऊष्मा (४) ज्वलिनी (५) ज्वालिनी (६) विस्फुलिङ्गिनी (७) सुश्रीः (८) सुरुपा (९) कपिला (१०) द्रव्यवाहा एवं (११) कव्यवाहा—इन अग्नि कलाओं की पूजा करनी चाहिए और पात्र को प्रतिष्ठित करने के बाद उसमें सूर्य की कलाओं की पूजा करनी चाहिए। वे निम्नाङ्कित हैं—(१) तपिनी (२) तापिनी (३) धूम्रा (४) मरीचि (५) ज्वालिनी (६) रुचि (७) सुषुम्ना (८) भोगदा (९) विश्वा (१०) बोधिनी (११) धारिणी (१२) क्षमा।

इसके बाद पात्र में शुद्ध जल भरकर शिवरूप सोमतत्त्व की बाला के साथ पूजा की जाती है। सोम की—(१) अमृता (२) मानदा (३) पूषा (४) तुष्टि (५) पुष्टि (६) रति (७) धृति (८) शशिनी (९) चन्द्रिका (१०) कान्ति (११) ज्योत्स्ना आदि १६ कलाओं की पूजा की जाती है।

आवरण पूजा—उक्त पूजोपरान्त प्रथमावरण से अन्तिम आवरण तक समस्त पूजायें निष्पादित करनी चाहिए। फिर आवरण-बहिर्भूत देवताओं का यजन करना चाहिए। **आवरणपूजा** और **गुरुपादुका पूजा** के बाद ही श्यामा की **षोडशोपचारों** से पूजा करनी चाहिए। फिर देवी को **बलि समर्पित** करना चाहिए। बलि देने के बाद **'श्यामला शक्ति'** का आवाहन करके **'बालामंत्र'** से उनकी भी पूजा करनी चाहिए। फिर जप, तद्दशांस क्रम से होम-तर्पण-ब्राह्मणभोजन आदि कराना चाहिए।

साधक को 'काली' शब्द का उच्चारण, गन्ना चूसना, दिन में वाराही का स्मरण, बकवास, स्त्रियों के प्रति निष्ठुरता आदि का त्याग कर देना चाहिए।

* वाराही क्रम (सप्तम खण्ड) *

(छठवें खण्ड में संगीत मातृका मातङ्गी की पूजा करने के बाद ही वाराही (दण्डनायिका) की पूजा की जाती है।) अनाहत नाद का श्रवण—'महारात्रि' के समय 'स्वहृदयपरमाकाशे ध्वनन्तमनाहत ध्वनिमूर्जितानन्द' का श्रवण करना चाहिए।[1] फिर

---

[1] वाराही क्रम (२)

'शिवादिगुरुभ्यो नमः' कहकर अञ्जलि जोड़ना चाहिए। वाराही-उपासना में 'ऐं' के साथ 'ग्लौं' बीज सभी मंत्रों के आदि में जोड़ना चाहिए। **सूक्ष्मदेह का शोधन** करना चाहिए : लिङ्गदेहं शोधयेत्।' फिर मूलाधार चक्र से **सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से जीवशिव को परशिव में संयोजित** करना चाहिए। (मंत्र—'जीवशिवं परशिवे योजयामि स्वाहा।') या अपने शरीर को जलाकर शांभव शरीर उत्पन्न करने हेतु—

(१) शोषण—'यं सङ्कोचशरीरं शोषयशोषय स्वाहा।'

(२) दाहन—'रं सङ्कोचशरीरं दह दह पच पच स्वाहा।'

(३) आप्लावन—'वं परमशिवामृतं वर्षय वर्षय स्वाहा।'

(४) शाम्भवशरीरोत्पत्ति—'लं शाम्भवशरीरमुत्पादयोत्पादय स्वाहा।

(५) जीवस्वस्थानानयन—'हंसः सोऽहमवतरावतर शिवपदाज्जीव सुषुम्णापथेन प्रविश मूल शृंगाटकमुल्लसोल्लस ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हंसः सोऽहं स्वाहा'—द्वारा अपने को दिव्य बनाना चाहिए।

(६) इसके बाद 'न्यास' फिर आत्मालङ्करण, फिर अर्घ्यशोधन, फिर पुनः न्यास, फिर तत्त्व न्यास, फिर देवी का ध्यान, फिर चक्रनिर्माण, फिर चक्र पूजा, फिर मूर्तिकरण, फिर आवाहन, फिर षडङ्गन्यास, फिर षोडशोपचार पूजन, फिर देवी का ध्यान, फिर देवी का तर्पण और फिर आवरण पूजा करनी चाहिए। आवरण पूजोपरान्त बलि दी जानी चाहिए। फिर गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिए। फिर पूर्णयौवना नारियों की पूजा करके उनसे आशीर्वाद लेना चाहिए की 'हमारी वार्त्ताली पूजा सिद्ध हो।' फिर पुरश्चरण करना चाहिए।

यही है वार्त्ताली-पूजा का संक्षिप्त सार।

* पराक्रम (अष्टम खण्ड) *

'वार्त्ताली विद्या' की सम्पन्नता के अनन्तर ही 'सिंहासन विद्या हृदयरूप अनुत्तर **'पराबीज'** रूप को उपासना का विषय बनाना चाहिए। ('सिंहासन' = सिंहासनेश्वरी ललिता))।

'सिंहासन विद्या हृदयमनुत्तरं पराबीजरूपं धाम।'[1]

'ब्रह्मकोटर' (ब्रह्मबिल) में सहस्त्रार चक्र है। उसमें सुवर्णवर्णा परा देवता सदा रहती हैं। उनके चरणयुगल से अमृत की वर्षा होती रहती है। प्रातः उठते समय अपने को **अमृतस्नात अनुभव करना साधक का प्रथम कर्तव्य है—**

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र (पराक्रम)

'कल्ये समुत्थाय ब्रह्मकोटरवर्तिनि सहस्त्रदल कमलें सन्निविष्टायाः सौवर्णरूपायाः परायाश्चरण युगल विगलदमृतरसविसरपरिप्लुतं वपुः ध्यात्वाः।।'[1]

(१) शरीर को अमृत-स्नान कराना चाहिए।

(२) स्नानोपरान्त पवित्र वस्त्र धारण करके, पराबीज 'सौः' से ३ बार आचमन करके, इसी वर्ण से परिमार्जन करके, इसी बीज से उपस्पर्शन करके, आँखों, कानों, नाभि-स्कंध, हृदय, स्कंध एवं शिर का भी इसी वर्ण सेस्पर्श करके आचमन करे। इसी बीज से अभिमंत्रित जल से आसन को प्रोक्षित करके आसन पर बैठना चाहिए। अपने को पूर्णतया सज्जित करके उत्तराभिमुख बैठकर **दैशिक की पूजा** करनी चाहिए।

गुरुदेव का स्मरण करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—'सौः ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऐं ग्लौं हस्क्रे हसक्षमल वर यूं स ह क्ष मल वरयीं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथ श्री गुरुपादकां पूजयामि।''

फिर **भूमि** पर तीन बार एँड़ी द्वारा **आघात** करना और **अङ्गन्यास, फिर चिदग्नि से सर्वतत्त्व विलापन** (चिदग्निसात्करण) (३४ वेद्यों का विलापन **'शिवशक्ति'** का नहीं) फिर **अर्घ्यसादन,** फिर न्यस्त षडङ्गदेवियों का भावन, फिर **सुधादेवी की पूजा।'**

'मूलमुच्चार्य तां चिन्मयीमानन्दलक्षणाममृत कलश पिशितहस्तद्वयां प्रसन्नां देवीं पूजयामि नमः स्वाहा इति सुधादेवीमभ्यर्च्य तया सम्प्रोक्ष्य वरिवस्याः।[2]

इसके बाद तत्वकदम्ब का हृत्पद्म में आनयन, फिर पराचक्र का निर्माण करके फिर कुसुमक्षेप यथा—

(१) 'सौः पृथिवीयोगपीठाय नमः' कहकर कुसुमक्षेप
(२) 'सौः आप्योगपीठाय नमः' कहकर कुसुमक्षेप
(३) 'सौः तेजोयोगपीठाय नमः' कहकर कुसुमक्षेप करना चाहिए। फिर कल्पित चक्र में देवी का आवाहन (पराचक्र का निर्माण हो जाने पर ३६ तत्त्वों के ऐक्य-विमर्श करने वाली १६ कलापूर्ण परादेवी का आवाहन) स्वात्म के हृदय केन्द्र में होना चाहिए।[3]

ध्यान स्वरूप—'अकलङ्कशशाङ्काभात्र्यक्षा चन्द्रकलावती। मुद्रापुस्तकसद्बाहुः पातु मां परमा कला।'

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र (पराक्रम ४)
[2] परशुरामकल्पसूत्र (पराक्रम १६) ४
[3] प० क० सू० (पराक्रमः)

इस प्रकार ध्यान करना चाहिए। फिर—"सौः सं प्रकाशरूपिणी पराभट्टारिका श्रीपादुकां पूजयामि नमः"—यह मंत्र कहना चाहिए। 'सौः अः प्रकाश विमर्शरूपिणी पराभट्टारिका श्रीपादुकां पूजयामि नमः' मंत्र से और अन्य मंत्रों से मूलाधार, हृदय एवं का मुख का पूजन करना चाहिए। फिर समस्त मंत्र का उच्चारण करके—

'महाप्रकाशविमर्शरूपिणी पराभट्टारिका श्रीपादुकां पूजयामि नमः' मंत्र से देवी के हृदय एवं मुख में १० बार पूजन करना चाहिए। इसके बाद **समस्त वेद्यों का हवन करना चाहिए—'वेद्यमखिलं हुत्वा'** (२२)।

कालाग्नि कोटिदीप्तिरूप चिदग्नि में क्रियासममि व्याहार क्रम से **प्रत्येक वेद्य का हवन** करना चाहिए। फिर मूल मंत्रोच्चारण पूर्वक (पराबीजोच्चारणपूर्वक) **अर्घ्य** देकर **चिदग्नि के उद्दीप्त होने का विभावन** करना चाहिए। फिर **ओघत्रय का पूजन** करना चाहिए। यथा—

(अ) सौः पराभट्टारिका श्री पादुकांपूजयामि नमः।
(आ) अघोरानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
(इ) श्रीकण्ठानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

परादेव्यम्बा के अर्चनोपरान्त बलिकर्म करना चाहिए।

हविः शेः स्वीकार करने के पूर्व 'सौः' मन्त्र से (१) आत्मतत्त्व (२) विद्यातत्त्व एवं (३) शिवतत्त्व का शोधन करना चाहिए।[1]

* होमविधिः (नवम खण्ड) *

स्वेष्टमन्त्रोपासना के प्रयोग में होम का विधान सभी सम्प्रदायों में है। निम्न ६ मन्त्रों से 'षडङ्गन्यास' करना चाहिए—(१) सहस्त्रार्चिषे हृदयाय नमः (२) स्वस्ति पूर्णाय शिर से स्वाहा। (३) उसिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्। (४) धूम व्यापिने कवाचाय हुम्। (५) सप्तजिह्वाय नेत्र त्रयाय वौषट् (६) धनुर्धराय अस्त्राय फट् इति षडङ्ग विधाय तेन षडङ्गेन कुण्डमभ्यर्च्य।।[2]

इसके बाद अग्निचक्र का निर्माण कराना चाहिए। त्रिकोण के मध्य अग्निदेवता की ९ पीठ शक्तियों की स्थापना और पूजा करनी चाहिए। इनके नाम इस प्रकार हैं—पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा एवं ज्वालिनी, उसी त्रिकोण में गुणत्रय, आत्मा, परमात्मा, अन्तरात्मा एवं ज्ञानात्मा की इनके आदि अक्षरों का बिन्दु युक्त बीज बनाकर पूजा करनी चाहिए यथा—'तं तमसे नमः अभ्यर्चयामि तर्पयामि नमः।'' 'रं जसे नमः।।' 'सं सत्वाय नमः' 'आम् आत्मने नमः' 'अं अन्तरात्मने नमः' 'पं परमात्मने नमः' 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।'

---

[1] प० क० सू० (पराक्रमः)
[2] प० क० सू० (होमविधि) (६)

इसी त्रिकोणात्मक पीठ में जिसमें पहले अग्नि शक्तियों और शक्तिमन्त्रों की पूजा की जा चुकी है। उसी में अग्नि की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। इसके बाद **संविदग्निपातन** का क्रम आता है।

'अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णमनिलं समिद्धं विश्वतोमुखम्।।'

यह **अग्नि उत्थापन का मंत्र है।** कुण्ड में प्रज्वलित **अग्नि-संस्कार** भी आवश्यक है और उसका ध्यान भी।

अग्नि की ७ जिह्वायें हैं। इनमें आहुतियाँ डालनी चाहिए। हवन योग्य समिधा, आदि का पूर्ण विवरण इस प्रकार है यथा—विलाज्यैः शान्त्या अन्नेनान्नायामृताय। दूर्वाभिरादुषे पद्मै, साम्रा ज्याय आदि।। फिर बलि देनी चाहिए। इसके बाद **ब्रह्मार्पण आहुति** का क्रम है। फिर **चिदग्नि और आवाहित देवता का अद्वासन करना चाहिए।**[1]

[२०] सर्वसाधारण क्रम (दशम खण्ड)

यह अध्याय त्रिपुरसुन्दरी की उपासना का सर्व पश्चाद्वर्ती क्रम है। इसमें सामान्य कर्माधिकार का वर्णन है।

उमानन्दनाथप्रणीत 'नित्योसव' में कहा गया है कि **'आवरणार्चन'** में (१) **त्रिकोण** में देवता के अग्रकोण से आरंभ करके दक्षक्रम से इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तियों की पूजा करणीय है।

(२) **चक्र के अष्टदलों में**—प्रत्येक दल पर (१) ब्राह्मी (२) माहेश्वरी (३) कौमारी (४) वैष्णवी (५) वाराही (६) माहेन्द्री (७) चामुण्डा एवं (८) श्रीमहालक्ष्मी देवताओं की पूजा करनी चाहिए। मंत्रों की जाति है।

मन्त्रों की जाति (सौतामणि तंत्र)

(१)	(२)	(३)	(४)
'ह्रीं' = मायाबीज (ब्रा० जाति)	**'श्रीं'** = श्रीबीज (क्ष० जाति)	**'क्लीं'** = कामबीज (वैश्य जाति)	**'ऐं'** = वाग्भव बीज (शूद्र जाति)

इन चार बीजों पर ब्राह्मणों का अधिकार है।

तीन बीजों में से दो पर वैश्यों एक बीज पर शूद्रों का अधिकार है।

---

[1] परशुरामकल्पसूत्र (होमविधि)

कुलाचार धर्मों का पालन आवश्यक है।

* परशुराम कल्पसूत्र त्रैपुरसिद्धान्त का ग्रंथ है *

इस अन्तिम क्रम में निम्न विशिष्ट तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है और उन्हें सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया है—

(१) प०क०सू० 'दशखण्डी महोपनिषद है और **महात्रैपुर सिद्धान्त का सर्वस्वभूत'** ग्रंथ है।[1] इसे त्रैपुर क्यों कहा गया है? इसलिए कि—''त्रिभ्यः पुरा त्रिपुरा त्रिपुरासम्बन्धी त्रैपुरः। स चासौ सिद्धान्तश्च तस्मिन् ।।'

(२) **कुल मार्ग श्रेष्ठ है :** कुलमार्गी कृतकृत्य जीवन्मुक्त एवं श्वपचगृह एवं काशी दोनों में समदृष्टि रखने वाला होने के कारण जीवित अवस्था में ही मुक्त है।[2]

(३) **शास्त्रान्तर** एवं तंत्रान्तर भी **ग्राह्य** है।[3]

(४) श्रीविद्योपासना द्वारा **'पूर्णख्यातिसमावेशनेच्छा'** का लक्ष्य रखना चाहिए।[4]

(५) **स्वस्तुति, परनिन्दा, मर्मविरुद्धवचन, परिहास, धिक्कार, आक्रोश** एवं **त्रास** का **परिवर्जन** आवश्यक है।[5]

(६) **परदारा एवं परधन** में **अनासक्ति** होना चाहिए।[6]

(७) **सदैव सर्वथा सत्य** बोलना चाहिए—'सर्वथा सत्य वचनम्।' (७७)

(८) गुरु में बिना परीक्षा के ही विश्वास कर लेना चाहिए।

* (२४) भगवती ललिता का जपारंभ करने के पूर्व विघ्न शान्त्यर्थ निम्न मंत्रों का जप करणीय है—

(१) इरि मिलिकिरिकिलि परिमिरोम्।
(२) ॐ ह्रीं नमो भगवति महात्रिपुरभैरवि मम त्रैपुररक्षां कुरु कुरु।
(३) संहर संहर विघ्नरक्षोविभीषकान् कालय हुं फट् स्वाहा।
(४) ब्लूं रक्ताभ्यो योगिनीभ्यो नमः।
(५) सां सारसाय बह्वाशनाय नमः।
(६) दुमुलुपुमुलुपु ह्रीं चामुण्डायै नमः ।।' (१०/५१)

---

[1] प०क०सू० (८३)
[2] तत्रैव (८२)
[3] तत्रैव (८१)
[4] तत्रैव (८०)
[5] तत्रैव (७९)
[6] तत्रैव (७८)

(२५) **‘महापादुका’ सर्वमन्त्रसमष्टिरूपिणी, स्वैक्यविमर्शिनी महासिद्धिप्रदायिनी** एवं द्वादशान्त में यष्टव्य है।

(२६) ब्रह्मरंध्र में **‘श्रीपूर्तिविद्या’** का यजन निष्पाद्य है।

(२७) वाराही देवी का (अङ्गादि विद्याओं के सहित) **आज्ञा चक्र में ध्यान** करें तो **वाराही बहुत** प्रसन्न होती हैं।

(२८) **वार्तालि की उपाङ्गविद्या का स्वरूप** इस प्रकार है—

*** ‘ॐ ह्रीं नमो वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहाः’ ***

यह विद्या स्वप्न में शुभाशुभ फलों को बताती है।

(२९) **लघुवाराही विद्या** का स्वरूप इस प्रकार है—

‘ल्रं वाराहि लॄं उन्मत्तभैरवि पादुकाभ्यां नमः ॥’

(३०) श्यामा विद्या का जप **‘अनाहत चक्र’** में करना चाहिए।

(३१) **‘बालामंत्र’** का स्वरूप इस प्रकार है—

‘ऐं क्लीं सौः वद वद वाग वादिनि ॥’[1]

(३२) **मूलविद्या** साम्राज्ञी मूलाधार चक्र में विलोचनीय है।

(३३) **अश्वारूढा प्रत्यङ्ग विद्या** का स्वरूप इस प्रकार है—

‘ओं आं ह्रीं क्रों एहि परमेश्वरि स्वाहा ॥’

(३४) **‘पराविद्या’** (सौः—बीजमंत्र) की भावना **‘द्वादशान्त’ में करना चाहिए।** ‘भृगु **(सः)** त्रिशूल **(औ)** विसृष्टयः : (विसर्ग) **पराविद्या’** (प० क० सू० १०/२७)

(३५) **‘मातृका’ एवं सर्वज्ञताकरी विद्या’**—अ से क्ष पर्यन्त के समस्त ५० वर्णों की समष्टि की आख्या है।

* (३६) **‘महागणपति विद्या’** (सिद्धविद्या) : सर्वविघ्नविनाशिनी विद्या—‘ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरद वरद सर्वजनं में वशमानय स्वाहा।’[2]

(३७) १६ मंत्रों की समष्टि वाली **‘चाक्षुष्मती विद्या’** है।

(३८) **त्रितारी का स्वरूप** इस प्रकार है—**‘ऐं क्लीं सौः’।**

(४०) मूलाधार, अनाहत, आज्ञा, ब्रह्मरंध्र तथा द्वादशान्त में मंत्रों का ध्यान करना चाहिए।

—‘अपरीक्षणं तद्वचने व्यवस्था’ (७६) ‘आज्ञा गुरुणाम मविचारणीया’।

(८) साधना की **कृतार्थता प्रकाश विभावना** (परशिव की विभावना) है। ‘मुख्यतया प्रकाश विभावना’ (१०/७३)

---

१. परशुरामकल्पसूत्र (दशम खण्ड)

२. परशुरामकल्पसूत्र (दशम खण्ड)

(९) **अष्टपाशों** (घृणा-शङ्का-भय-लज्जा-जुगुप्सा-कुल-जाति-शील-आदि का अवसादन (त्याग) कर देना चाहिए।[1]

‘घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं च जातिश्चेयष्टौ **पाशाः** प्रकीर्तिताः ॥’

(१०) **प्रलोभन का त्याग** करना चाहिए किन्तु स्वासक्ता नारी का त्याग संगत नहीं है, विरक्ता को पाने का प्रयास संगत नहीं है अतः सारे प्रलोभन भी वर्जित हैं।[2]

(११) साधक की साधना के विकास के सोपान हैं। ये निम्नाङ्कित हैं—(१) आरम्भ (२) तरुण (३) यौवन (४) प्रौढ़ (५) तदन्त (६) उन्मन (७) अनवस्थ॥[3] ये **‘समयाचार’** हैं।

(१२) **वीर वर्ग की अवमानना अनुचित है। स्वैरव्यवहार** अनुचित नहीं है।

(१३) **पाँच पर्वों पर विशेष पूजा** करनी चाहिए।

‘पञ्चपर्वसु विशेषार्चा’ (१०/६७)

(१४) नारी-वृन्द, कुमारी-समूह, मदिराकलश, आम, अशोक, आरक्त वसना नारी का **वन्दन** किया जाना चाहिए।

(१५) दशकुलवृक्षों को काटना नहीं चाहिए।

(१६) **मद्य-सेवन** किया जा सकता है। (१०/६२)

(१७) **गुरु, गुरुपुत्र एवं गुरु-पत्नी** तीनों के प्रति शिष्य श्रद्धा रक्खे।

(१८) प्रत्येक **आश्रित व्यक्ति पर अनुग्रह** रखना चाहिए।

(१९) **समस्त प्राणियों के प्रति अविरोध** होनां चाहिए।

(२०) **मपञ्चक के प्रतिनिधि द्रव्यों से पूजन** किया जा सकता है।

(२१) जप का विधान इस प्रकार है—

(क) **‘ललिता** प्राह्णे’ (ख) ‘अपराह्णे **श्यामा’** (ग) **‘वार्त्तालीरात्रौ**। (घ) ‘ब्राह्मेमुहूर्ते **परा’** (१०/५५)

(२२) **श्यामा मंत्र के जप को निर्विघ्न बनाने के लिए ‘हसन्ती विद्या’** का जप करें जो कि इस प्रकार है—

‘हसन्ति हसितालापे मातङ्गिपरिचारिके... ।’

(२३) **वारहीमंत्रविघ्नहर मंत्र है**—‘स्तं स्तम्भियै नमः ॥’

—०—

---

१. परशुरामकल्पसूत्र (१०/७०)

२. परशुरामकल्पसूत्र (१०/६९)

३. तत्रैव (१०/६८)

द्वितीय खण्ड

'सुभगोदयस्तुति'

[मूल श्लोक एवं उनकी व्याख्या]

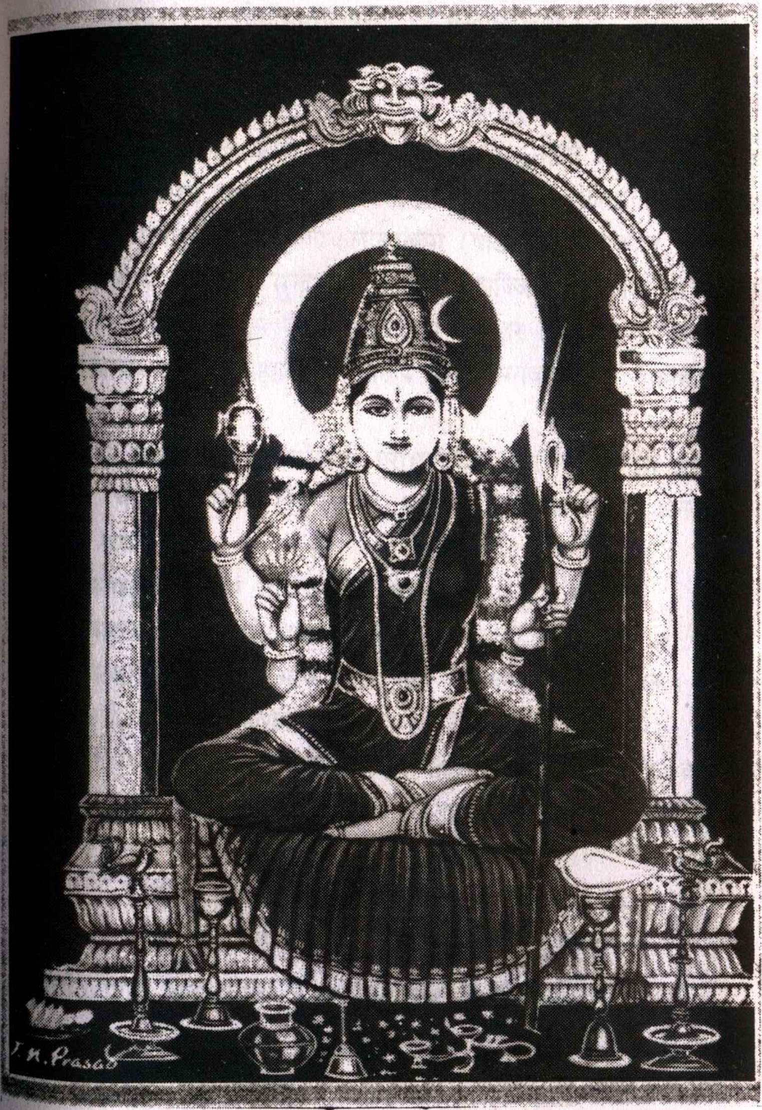

'सुभगोदयस्तुति'

[मूल श्लोक एवं उनकी व्याख्या]

श्लोक क्र० १ = भगवती की मङ्गलाचरणात्मक वन्दना *

'भवानित्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुख वपुः,
पराकारं देवीममृतलहरी मैन्दवकलाम्।
महाकालातीतां कलितसरणी कल्पित तनुं,
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम् ॥१॥

[हे संसार को उत्पन्न करने वाली राजमहिषी, सत्-चित् आनन्द की साक्षात् विग्रह वाली, (विश्वमय एवं विश्वातीता होने के कारण) विराट आकार वाली पराशक्ति, पीयूष प्रवाहरूपिणी, चन्द्रकलास्वरूपा (षोडशी), महाकाल से अतीत, रमणीय श्रीविद्यामार्ग वाली या सुन्दर रश्मियों से सुसज्जित, कल्पित शरीर वाली, अमृत-सरोवर के भीतर निवास करने वाली एवं निरन्तर (दिन के समान) प्रकाश वाली या अखण्ड रूप से महाजाग्रत स्वरूप वाली भगवती ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ॥१॥]

सरोजिनी व्याख्या—राजराजेश्वरी, पराभट्टारिका महात्रिपुर सुन्दरी का ही एक नाम **'भवानी'** भी है। आचार्य गौड़पाद ने 'भवानी' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है, यथा—

(१) **'भवानि'** प्रत्यक्षं तव वपुरूपास्ते नहि परम्।' (१५)
(२) **'भवानि'** श्री हस्तैर्वहसि फणिपाश सृणिमथो।' (१६)
(३) **'भवानि'** त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरूणां' (२२सौ.ल.)

कुण्डलिनी शक्ति ही भवानी है।[1]

'भवानी' शब्द भगवती कुण्डलिनी एवं महात्रिपुर सुन्दरी दोनों का वाचक है। 'भव' + अन्। भव = शिव। 'अन्' = स्पन्दित करना, **'भवानि'** = वह शक्ति जो भव (शिव) को स्पन्दित करती है वही **'भवानी'** है—

'शिवः शक्त्या युक्तो भवति शक्तः प्रभवितुं।
न च देवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दित मपि।'

(अर्थात् शिव बिना शक्ति के स्पन्दित होने में भी अशक्त हैं।)

'भवानी' विश्व को प्राण प्रदान करती है।

---

[1] ललिता सहस्रनाम (११)

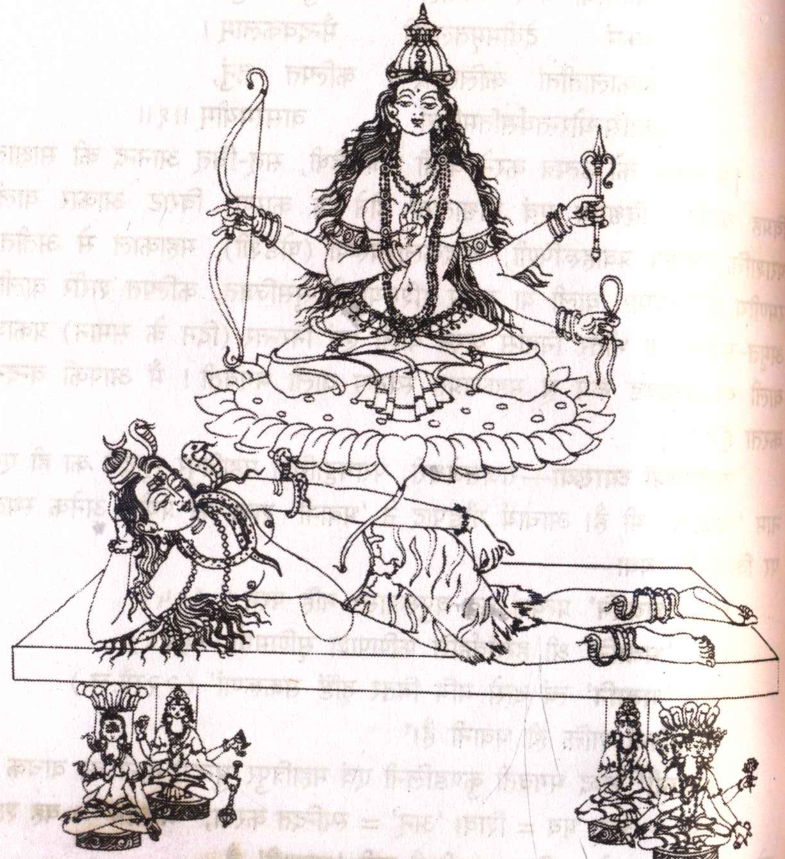

त्रिपुर सुन्दरी
(षोडशी)

श्री यन्त्र

कौलाचार मतानुयायियों द्वारापूजि संहार क्रम
(५ शक्ति-त्रिकोण अधोमुखी। ४ शिव-त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी)

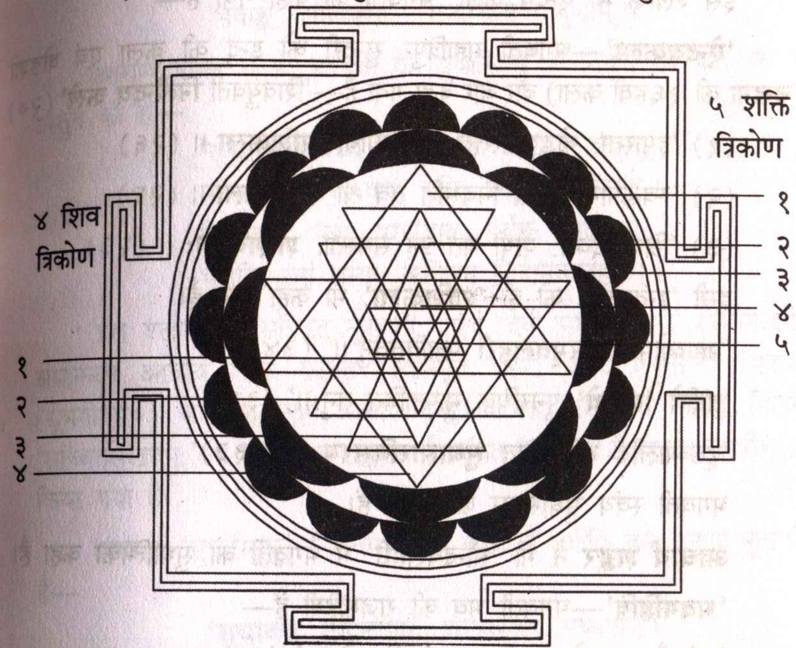

भव या 'विश्व' क्या है? स्पन्दनहीन परमशिव की जो स्फुरत्ता है वही भवानी है। वह ('भवानी'० विश्वचक्र केउद्भव का मूल कारण परमाशक्ति (भवानी) की स्फुरत्ता है। शक्ति द्वारा अपनी स्फुरत्ता को देखने मात्र से ही परमशिवतत्त्वात्मक चक्र का आविर्भाव भी हो जाता है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः ॥'[१]

शिव (भव) तो उदासीन हैं, तटस्थ हैं। सृष्टि तो मात्र शक्ति करती है—'विश्व सिसृक्षया सैव परा शक्ति र्विमर्शरूपिणी स्वेच्छया विश्वरूपिणी विश्वं सृजति, शिव तटस्थ उदासीन इत्यर्थः॥[२]

भगवती को अनेक स्थलों पर **'ऐन्दवकला' 'बैन्दवकला'** आदि कहा गया है—

---

[१] योगिनीहृदय (१/९)
[२] योगिनी दीपिका (अमृतानन्द)

(१) 'निलीनं सादाख्ये सादाख्ये शिवयुवति **नित्यैन्दव फले ।'** (२०)

(२) यकाराद्या वन्हावथ कषयुगं **बैन्दवगृहे ।।** (२०)

इस श्लोक में 'ऐन्दव कला' भगवती को कहा गया है—

'ऐन्दवकला'—भगवती महात्रिपुर सुन्दरी को इन्दु की कला एवं षोडशी (चन्द्रमा की १६हवीं कला) बार बार कहा गया है—'शिवयुवती **नित्यैन्दव कले**' (२०)

(१) 'इमास्ता: षोडश्यास्तव च सरघायां **शशिकला** ॥ (२६)

(२) 'स्वरूपायां लीना निवसति तव श्री **शशिकला** ॥ (२६)

(३) 'श्रियो देव्या: शेषो यत इह समस्ता: **शशिकला:** ॥ (२३)

इसी 'इन्दुकला' को ही **'शशिकला'** भी कहा गया है।

'महाव्योमस्थेन्दोर**मृतलहरी** प्लावित‌तनु ॥' (३४)

'तदीये **'पीयूषे'** पुनरधिक माप्लावित तनु:॥' (३२)

'दृढव्यालीढं सद्विगलित **सुधासारविसरम् ।।'** (३३)

भगवती स्वंय सुधासागर के समान हैं।

आचार्य शङ्कर ने भी 'सौन्दर्यलहरी' में भगवती को सुधात्मिका कहा है।

'भवमहिषि'—भगवती भव की राजमहिषी हैं—

'त्रयं चैतत्स्वान्ते परमशिव **पर्यङ्कुनिलये ।।'** (२४)

'सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे' (सौ०ल०९)

भगवती परमशिव की पटरानी हैं और विश्व की साम्राज्ञी हैं अत: उन्हें भवमहिषी कहना सङ्गत ही है।

'सुधासिन्धोरन्तरवसित'—भगवती सुधा सिन्धु के मध्य रहती हैं।

'वामकेश्वर तंत्र' में कहा गया है कि भगवती बिन्दु हैं और 'बिन्दुस्थानं' सुधासिन्धु है—

'बिन्दुस्थानं **सुधासिन्धु** पञ्चयोन्य: सुरद्रुमा: ।
तत्रैव नीप-श्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम् ।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या: मन्दिरमुत्तमम् ।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपव्वर्हणो ॥'

—वामकेश्वर तंत्र

'सुधा सिन्धु मध्ये मणिद्वीपे रम्ये,
सुकल्पुमाकल्पकादम्बसन्त्रे ।
स्फुरत्स्वर्ण सिंहासने रत्नपीठे
भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्त्र पूर्णाम् ॥'

आचार्य शंकर ने भी भगवती के 'सुधासिन्धु' मे निवस की बात इस प्रकार प्रस्तुत की है—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपि वाटी परिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवन वति चिन्ता मणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिव पर्यङ्क निलयाम्,
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।'

इस श्लोक में 'सच्चित सुखवपु:' एवं 'देवी ममृत लहरी' (सुभगोदय) के समानन्तर आचार्य शङ्कर कथित 'देवीममृत लहरी' शब्द प्रयुक्त है 'भवमहिषि' (सुभगोदय०) के समानान्तर आचार्य शङ्कर-कथित 'परमशिव' पर्यङ्क निलयाम्'। 'सच्चितसुखवपु:' के स्थान पर शङ्कराचार्य कथित 'कतिचन चिदानन्द लहरीम्' प्रयुक्त किया गया है।

भगवती 'सुधासिन्धु' में निवास किया करती हैं क्योंकि वहीं उनका मूल निवास है—

'सुधाव्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डप मध्यगाम् ।
वालार्क मण्डलभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनम् ।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थ: परमेश्वरीम् ॥'

चक्र के मध्य जो बिन्दु है वह त्रिकोणस्थ बिन्दु ही 'सुधासिन्धु' है। यहीं भगवती रहती हैं।

भगवती मन्त्र का १६हवाँ अक्षर है। इसीलिए 'षोडशी' कहलाती हैं। **षोडशी** अमृतधर (चन्द्रमा) की १६हवीं अमृतमयी कला है।

'वासरमयीम्'—दिन से युक्त अर्थात् दिन के प्रकाश के समान प्रकाश से युक्ता भगवती का स्वरूप करोड़ों बिजलियों केसमान देदीप्यमान है—

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत कोटि समप्रभाम् ।
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये ।
विसन्तुस्वरूपां तां बिन्दु त्रिवलमाम् प्रिये ।'[१]

---

[१] ज्ञानार्णवतन्त्र

'त्रिपुरासार समुच्चय' में भी भगवती को 'सततोद्यता प्रविलसत सौदामिनी सन्निभा' कहा गया है—'शक्तिः कुण्डलिनीतियानि गदिता आईम् संज्ञा जगन्निर्माणो।

'सततोद्यता प्रविलसत् सौदामिनी सन्निभां।'
'तडिल्लेखा तन्वीं तपन शशिवैश्वानरमयीं॥'

शिव को 'प्रकाश' कहा गया है अतः शिव की 'शक्ति' प्रकाश रूपा क्यों नहीं होगी?

'वासर' और **'रात्रि'** ये दोनों शब्द क्रमशः **जागृति एवं सुषुप्ति के वाचक हैं। 'शक्ति तो जागृति की भी जागृति है** क्योंकि जागृति का अर्थ है **अहं का बोध** और शिव को अपने अहं का बोध बिना शक्ति की सहायता के होता ही नहीं अतः महाजागृति स्वरूप शिव को जागृत रखने वाली परा शक्ति जागृति की भी जागृति है।

शक्ति की दृष्टि से देखा जाय तो जागृति है—**'सर्वकर्तृत्व की निरपेक्ष स्वतंत्र शक्ति।'** 'भवानी' (शिवा) वही शक्ति है। यह तो इनती महान सामर्थ्य या शक्ति है कि इसके बिना तो परशिव (परमशिव) सृष्टि-स्थिति-संहार आदि पञ्चकृत्यो में से कोई भी कृत्य निष्पादित नहीं कर सकते—

'परोऽपि शक्ति-रहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टि स्थितिलयान् कर्तुमशक्तश्शक्त एव हि॥'[१]

जागृति का अर्थ है 'ज्ञान'। भगवती (शक्ति) के ५ रूप हैं। उनमें एक ज्ञान भी है। ५ शक्तियाँ इस प्रकार है—**'चित् शक्तिं, 'आनन्द शक्ति', 'इच्छाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति'** एवं **'क्रियाशक्ति'**।[२]

श्लोक क्र० २ = भगवती का स्वरूप और उसके साक्षात्कार के साधन *

मनस्त्वं जित्वा नयनमथ नासाग्रघटितं,
पुनर्व्यावृत्ताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम्।
तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्त र्भगवती,
परानन्दाकारा परिशिवपरा काचिदपरा॥२॥

[जब योगी मनस्तत्त्व पर विजय करके (अपनी) दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करके, फिर दृष्टि को अन्तर्मुखी करके (वृत्ति को अन्तरोन्मुखी करके) स्वयं

भी पराभगवती को देखता है तभी उस व्यक्ति के बाहर एवं भीतर (दोनों तरफ) भगवती स्फुरित होती हैं। (वे भगवती) परानन्दस्वरूपा, परशिवातीता (या परशिवपरायणा) एवं किंचिद रूप में अपरा (ऐहिक स्थूल) भी हैं॥२॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद ने 'सुभगोदय स्तुति' के प्रारंभिक श्लोकों में भगवती कुण्डलिनी के जागरण, उत्थापन एवं ऊर्ध्वारोहण पर प्रकाश डाला है। श्लोक क्र० २ से ६ तक इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

सारांश—आचार्य गौड़पाद ने इस श्लोक को दो भागों में विभाजित किया है—

(१) **एक भाग** में भगवती के रूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि भगवती का स्वरूप क्या है? इस विषय में वे कहते हैं—

'परानन्दाकारा परशिवंपरा काचिदपरा॥'

(२) दूसरे भाग में लेखक ने भगवती के साक्षात्कार (दर्शन) की पद्धति एवं उसके साधनों पर प्रकाश डाला है। गौड़पाद कहते हैं—

(क) 'मनस्तत्त्वं जित्वा' : **मन पर विजय**

(ख) नासाग्रावलोकिनी दृष्टिः योग की 'अगोचरी मुद्रा'	दृष्टि को **नासा के अग्र** **भाग पर केन्द्रित करना।**

'नयनमथ नासाग्रघटितं''

(ग) नेत्रो एवं **वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना**

"पुनर्व्यावृत्ताक्षः" (भगवती का **ध्यान**)

(घ) **भगवती का दर्शन**—'स्वयमपि यदा पश्यति पराम्' (साक्षात्कार)

भगवान श्रीकृष्ण ने भी मन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए जिस ध्यान पद्धति का विधान किया है उसके प्रमुख साधनों में दो निम्नाङ्कित हैं—

(१) नासाग्र पर दृष्टि का केन्द्रीयकरण।
(२) नेत्रद्वय (भ्रूद्वय) के मध्य दृष्टि केन्द्रित करना।

'समकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वदिशश्चानवलोकयन॥'

साधना-पक्ष—(आचार्य गौड़पाद-प्रतिपादित साधना पक्ष)

[क] **साधक का लक्ष्य**—'स्वयमपि यदा **पश्यति** पराम्।'

'बहिरन्तर्भगवती' का साक्षात्कार लक्ष्य है। भगवान श्री कृष्ण ने इस अवस्था का वर्णन किया है

---

[१] वामकेश्वरतंत्र (चतुश्शती)

[२] तन्त्रालोक (अभिनवगुप्तपादाचार्य)

(क) यो मां **पश्यति** सर्वत्र। } श्रीमद्भगवद्गीता
(ख) सर्वं च मयि **पश्यति**। }

तुलसीदास भी इस अवस्था का साक्षात्कार कर चुके थे। वे कहते हैं—

‘सियाराममय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।’

[ख] भगवती के साक्षात्कार के साधन

(१) मन पर विजय : ‘चित्तवृत्तिनिरोध’
(२) नासाग्र दृष्टि (ध्यान)।
(३) अन्तरावलोकन (ध्यान)।

(४) बाहर एवं भीतर सर्वत्र भगवती का दर्शनाभ्यास। **‘समयाचार’** भावना-प्रधान साधन-मार्ग है। इसमें प्रमुख साधन **‘ध्यान’** है। **‘ध्यान’** के द्वारा ही भगवती कुण्डलिनी (शक्ति) के जागरण का विधान सर्वत्र है।

‘मनस्तत्त्वं जित्वा’—मन ही बंधन-मोक्ष का साधन है—

‘**मन** एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।।’

योगसाधना एवं श्रीसाधना का प्रथम चरण—प्रथम साधना-सोपान है—मन पर नियंत्रण इसके लिए **‘प्रत्याहार’** (इन्द्रियों का उनके भागों या विषयों से प्रत्याहरण)।

श्री कृष्ण कहते हैं—

‘**असंयतात्मना** योगो दुष्प्राय इति मे मतिः ।।’
‘एकाकी **यतचित्तात्मा**निराशीरपरिग्रहः ।।’
‘तत्रैकाग्रं **मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः** ।।’

‘त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्’ के अनुसार भी नासाग्र में दृष्टि-स्थिरीकरण आवश्यक है—

‘नासाग्रन्यस्तनयनो जिह्वां कृत्वा च तालुनि
दन्तैर्दन्तान संस्पृश्य ऊर्ध्वकायः समाहितः।
संयमेच्चेन्द्रियग्राममात्म बुद्ध्या निशुद्धया।
चिन्तनं वासुदेवस्य परस्य परमात्मनः ।।
स्वरूव व्याप्तरूपस्य **ध्यानं** कैवल्यसिद्धिदम्।
याममात्रं वासुदेवं चिन्तयेत्कुम्भकेन यः ।।
‘नाभिकन्दात्समारभ्य यावद् हृदयगोचरम् ।।’

‘बहिरन्तर्भगवती’—आन्तर एवं बाह्य दोनों ध्यानों में भगवती का दर्शन होना चाहिए।

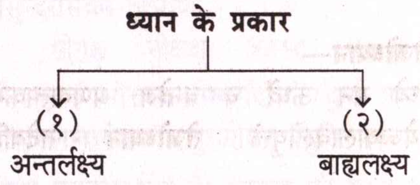

‘अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिः ।।’

अद्वयतारकोपनिषद् प्रतिपादित दृष्टि—इस उपनिषद् में कहा गया है कि—

“नासिकाग्रे चतुर्भिः षड्भिरष्टभिर्दशभिर्द्वादशभिः क्रमादङ्गुलान्ते नीलद्युति शमत्व सदृगुक्त भङ्गीफुरत पीतशुक्ल वर्णद्वयोपेत व्योम यदि पश्यति स तु योगी भवति।”

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद्-प्रतिपादित दृष्टि—इस उपनिषद् में बहिर्लक्ष्य के विषय में कहा गया है कि—

“**बहिर्लक्ष्यं**” तु नासाग्रे चतुः षडष्टदशद्वादशांगुलीभिः क्रमान्नील द्युति श्यामत्व सदृग्रक्त भङ्गीस्फुरत्पीत वर्णद्वयोपेतं व्योमत्वं पश्यति स तु योगी चलन दृष्ट्या व्योमभाग वीक्षितुः पुरुषस्य दृष्ट्यग्रे ज्योतिर्मयूखा वर्तन्ते।।”

कुण्डलिनी का ध्यान—कुण्डलिनीकीमुख्य साधना ध्यानगम्य है। यद्यपि इस साधना में **विशिष्ट आसन, विशिष्ट प्राणायाम** एवं **विशष्टि ध्यान** अपेक्षित है किन्तु यह साधना मुख्यतः **ध्यानयोग प्रधान साधना है। मुख्यतः ‘ध्या’ के तीन प्रकार हैं–**

(१) **‘स्थूल ध्यान’**—मूर्तिमय ध्यान
(२) **‘ज्योति ध्यान’**—तेजोमय ध्यान
(३) **‘सूक्ष्म ध्यान’** बिन्दुमयं ब्रह्मध्यान (कुलशक्ति का ध्यान)

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधिं विदुः।
(१) ‘स्थूलं मूर्तिमयं प्राक्तं’
(२) ‘ज्योतिस्तेजोमयं तथा’
(३) ‘सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म, कुण्डलिनी परदेवता ।।

तेजोध्यान का स्वरूप—

मूलाधारे कुण्डलिनी भुजगाकाररूपिणी।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिकाकृतिः।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजो ध्यानं परा परम्।

नाभिमूले स्थितं सूर्यमण्डलं वह्निसंयुतम्।
ध्यायेत्तेजो महद् व्याप्तं **तेजो ध्यानं** तदेवहि॥

—घेरण्ड संहिता

प्रकारान्तर तेजोध्यान—

भ्रूमध्ये मन ऊर्ध्वें च यन्तेजः प्रणवात्मकम्।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं **तेजोध्यानं** तदेवहि॥

—घेरण्ड संहिता

'स्फुरति बहिरन्तर्भगवती' (सुभगोदयस्तुति)

भगवती के दो प्रकार

(१)	(२)
बहिर्वर्ती स्फुरण	अन्तर्वती स्फुरण
(बाह्य स्फुरण)	(आन्तर स्फुरण)

(१) मन पर नियंत्रण

(२) नासाग्र पर नेत्रों का स्थिरीकरण।

(३) नासाग्र पर दृष्टि के केन्द्रित हो जाने (अगोचरी मुद्रा सिद्ध हो जाने) के बाद

(४) दृष्टि को अन्तर्मुखी करके (शांभवी मुद्रा लगाकर) पराशक्ति का आन्तर ध्यान करना चाहिए।

इस ध्यान से ही शक्ति का जागरण होता है। '**श्वेताश्वतरोपनिषद्** ' में इसी ध्यान-साधना के द्वारा देवात्मशक्ति के दर्शन की बात कही गई है—

'ये ध्यानयोगानुगता अपश्यन्,
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यःकारणानि निखिलानि तानि,
कालात्मयुक्त्या न्याधितिष्ठत्येक॥'

'बाहर और भीतर दोनों स्थानों में भगवती का स्फुरण होता है—

'स्फुरति बहिरन्तर्भगवती'

भगवती का बाह्य और आन्तर दोनों स्फुरण कहीं शाक्तों की इस विशेषता को भी तो संकेतित नहीं कर रहे हैं कि 'भगवती के दर्शन से साधक को बाह्य एवं आन्तर दोनों प्रदेश आनन्दपरिप्लावित हो उठते हैं और इसे ही तंत्र ने 'योग' एवं 'भाग' का मणिकाञ्चनयोग स्वीकार करते हुए कहा था कि—

'यत्रास्तिभोगो न च तत्र मोक्षो,
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवन-तत्पराणां,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥'

'आराधिता सैव नृणां **भोगस्वर्गापवर्गदा**॥' (दुर्गा सप्त १३/५)

'**परानन्दाकारा**' (सुभगोदय स्तुति २)

शक्ति का स्वरूप परानन्दात्मक है। आनन्द की मुख्यतः दो श्रेणियाँ हैं—

(१)	(२)
पर आनन्द	अपरआनन्द
(ब्रह्मानन्द)	(सांसारिक, वैषयिक आनन्द)
	(विषयानन्द, क्षणिक)

'**आनन्दं** ब्रह्म' 'रसो वै सः'

'**आनन्दं** ब्रह्मेति' व्यजानात्॥'

'**आनन्दाध्योवा** खल्विमानि भूतानि जायन्ते।'

'**परशिवपरा**' का अर्थ—(क) परशिव से परे।

(ख) परशिव परायण है (जागकर परशिव में लीन हो जाती है।)

'**काचिदपरा**'—(१) कुण्डलिनी अपने परास्वरूप की दृष्टि से तो 'परब्रह्म' है।

(२) अपरा स्वरूप की दृष्टि से कुण्डलिनी अनन्त ब्रह्माण्डों की अनन्त अभिव्यक्ति है—सारे प्रकृत्यण्ड ब्रह्माण्ड आदि सभी उसके व्यक्त रूप हैं। निःशेष ब्रह्माण्ड उसी का तो बाह्य रूप है।

वेद के 'पुरुषसूत्र' में भी परासत्ता को 'विश्वमय' मानकर कहा गया है—

पुरुष एवेदँ **सर्वं** यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्ने नातिरोहति।
एतावानस्य महिमा तो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
त्रिपाददूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्य हा भवत्पुनः।[१]
ततो...
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत॥'[२]

---

[१] पुरुष सूत्र

[२] ईशावास्योपनिषद

[१] **योगासन की विधि**—'पूरकैर्वायुमाकृष्य **नासाग्रमवलोकयेत्** ।।

(१) 'नयनमथ नासाग्र घटितं' (सुभगोदय स्तुति)

(२) पुनर्व्यावृत्ताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम् ।। (सु०स्तुति)

गोरक्षनाथ ने आंकार-साधन की प्रक्रिया में

[२] **'नासावलोकिनी मुद्रा'** का विधान प्रस्तुत किया है जो कि इस प्रकार है—

'पद्मासन समारुह्य समकाय शिरोधरः ।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम् ।
भूर्भुवः स्वरिमे लोकाः सोमसूर्याग्निदेवताः ।
यस्तुमात्रासु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योति रोमिति ।।'[१]

[३] नाथ योग के **'लक्ष्य त्रय'** पर प्रकाश डालते हुए गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

'बहिर्लक्ष्यं कथ्यते **नासाग्राद बहिरङ्गुलद्वयमारक्तं** तेज स्तत्त्वं लक्षयेदथवा दशाङ्गुले कल्लोलवदप्तत्वं क्षयेदथवा नासाग्राद् वा दशाङ्गुले पीतवर्णं पार्थिव तत्त्वं लक्षयेदथवाकाशमुखं दृष्ट्वाऽवलोकयेत् किरणा नाकुलितं पश्यति सर्वं निर्मलीकरणमथवोर्ध्व दृष्ट्यन्तरालं लक्षये ज्ज्योतिर्मुखानि पश्यत्यथवा तदभ्यन्तरं तत्राकाशं लक्षयेत् आकाशसदृशचित्तं मुक्तिप्रदंभवति।।'[२]

'शांभवी मुद्रा' में (१) बाह्य विषयों को मन से निकालकर। (२) नेत्रों को भ्रूमध्य में स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिए—

'स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्या **नासाभ्यन्तरचारिणौ** ।। (५।५७)

(३) नासिका के भीतर चलने वाले प्राण एवं अपान की गति को योगी को समान कर देना चाहिए। —(श्रीमद्भगद्गीता)

श्लोक क्रम ३ * षड्ग्रंथि-भेदन एवं मन का चन्द्रमा में लय *

'मनोमार्गं जित्वा मरुत इह नाड़ी गणजुषो,
निरुध्यार्कं सेन्दुं दहनमपि संज्वाल्य शिख्या ।
सुषुम्णां संयोज्यश्लथयति च षडग्रंथि शशिनं ।
तवाज्ञा चक्रस्थं विलयति महायोगि समयी ।।३।।

---

[१] गोरक्षशतक/विवेक मार्तण्ड

[२] सिद्धसिद्धान्त पद्धति

[मनोगार्ग पर विजय स्थापित करके (चित्तनिरोध करके) (कुम्भक प्राणायाम के द्वारा) नाड़ी-समूह को वायु से युक्त करके, चन्द्रमा के साथ ही सूर्य को निरुद्ध करके, अग्नि को भी जलाकर और उसकी शिखा के द्वारा सुषुम्णा नाड़ी को युक्त करके (जो साधक) छः ग्रंथियों वाले चन्द्रमा को (उसकी षड्ग्रन्थियों को) शिथिल करता है वह समयाचारी योगी तुम्हारे आज्ञा चक्र में स्थित चन्द्रमा में (मन सहित) विलीन हो जाता है।।३।।]

सरोजनी व्याख्या—आचार्य गौड़पाद ने इस श्लोक में मुख्यतः

(१) षड्ग्रंथि-भेदन (षट्चक्रभेदन) एवं

(२) आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा में मनोलय की साधना-विधि पर प्रकाश डाला।।

* षट्चक्रभेदन एवं मन का चन्द्रमा में लय *

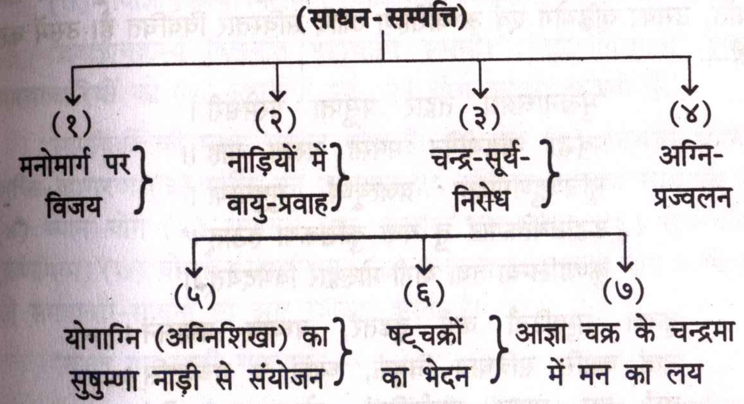
(साधन-सम्पत्ति)
(१) मनोमार्ग पर विजय
(२) नाड़ियों में वायु-प्रवाह
(३) चन्द्र-सूर्य-निरोध
(४) अग्नि-प्रज्वलन
(५) योगाग्नि (अग्निशिखा) का सुषुम्णा नाड़ी से संयोजन
(६) षट्चक्रों का भेदन
(७) आज्ञा चक्र के चन्द्रमा में मन का लय

'वामकेश्वर तन्त्र' में प्रतिपादित कुण्डलिनी जागरण एवं षट्चक्र-भेदन की प्रक्रिया।

वामकेश्वरोक्त कुण्डलिनी का परिचय—'वामकेश्वरतंत्र' में कहा गया है कि—

भुजङ्गाकारकारेण मूलाधारे समाश्रित ।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा ।।'
मूलकन्दं कणाग्रेण कमलकन्दवत ।
मुखेन पुच्छं संग्रह्य ब्रह्मरन्ध्र-समन्विता ।।

साधना-पद्धति—

पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः ।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्ट मानसः ।।

वायव्याघातवशदग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघात पवना घातैरुन्निद्रितोऽहिराट्।

ग्रंथ-भेदन-क्रम—

रुद्रग्रंथि ततो भित्वा **विष्णुग्रंथिं** भिनत्यथ।
ब्रह्मग्रंथि च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चवस्था परा ज्ञेया **सैव** निवृत्ति कारणाम्॥

—वामकेश्वर तंत्र

योग चूड़ामणि उपनिषद में प्रतिपादित दृष्टि—

'योग चूड़ामणि उपनिषद' में परमेश्वरी भगवती कुण्डलिनी की 'मूलाधार चक्र' में स्थिति, उसका वह्नियोग एवं ऊर्ध्वारोहण आदि सविस्तार विवेचित है। उसमें कहा गया है—

'मुखेनाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता माह॥
सूचिवद्गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।
उद्धाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्॥'

कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं, बध्वाथ पद्मासनं।
गाढं वक्षसि सन्निधाय चिबुकं, ध्यानं च तच्चेतसि।
वारं वार मपात मूर्ध्वमनिलं, प्रोच्चारयन् पूरितं।
मुञ्चन्प्राणमुपैति बोधमतुत्वं, शक्तिप्रभावान्नारः॥[1]

आचार्य गौड़पाद साधना-विधान में प्रथम स्थान **मन की विजय** को देत हैं—

- * द्वितीय श्लोक में—**'मनस्तत्त्वंजित्वा'** (प्रारंभ में)।
- * तृतीय श्लोक में—**'मनोमार्गं जित्वा'** (प्रारंभ में)

[क] द्वितीय श्लोकोक्त साधन-विधान—

(१) मनस्तत्वं जित्वा।
(२) नासाग्रघटितं (अगोचरी मुद्रा)।
(३) पुनर्व्यावृत्ताक्षः।
(४) स्वयमपि च पश्यति पराम्।

---

१. ध्यान बिन्दु उपनिषद (६६-६९)
२. योगचूड़ामणि (३८-४०)

परिणाम—(१) तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्तर्भगवती।
(२) परानन्दाकारा **परशिवपरा** काचिदपरा। (सामरस्य)॥

(क) शक्ति का अन्तर्बाह्य सर्वत्र स्फुरण।
(ख) शक्ति का परशिव में लय (सामरस्य)

[ख] तृतीय श्लोकोक्त साधन-विधान—

(१) मनोमार्गं जित्वा
(२) मरुत इहनाड़ीगणजुषो।
(३) निरुध्यार्कं सेन्दुं
(४) दहनमपि संज्वाल्य।
(५) शिख्या (योगाग्नि शिखया) सुषुम्णां संयोज्य
(६) श्लथयति च षडग्रंथिं (षट् चक्रभेदन)
(७) तवाज्ञाचक्रस्थं विलयति (आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा में मन का लय।)

'तवाज्ञाचक्रस्थं विलयति **महायोगि समयी।'** 'महायोगिसमयी' शब्दावली **समयाचारियों** को (१) महायोगी एवं (२) **योग-साधक** बताती है।

सामयिकों की मुख्य साधना **योग** है। यह योग (१) **षट्चक्र-भेदन** (२) **शक्ति-जागरण** (३) **शक्ति का उत्थापन** एवं परिशिव के साथ **सामरस्य साधन** (४) ध्यान योग (५) अगोचरी मुद्रा, शांभवी मुद्रा-साधन, (६) सूर्य-चन्द्र-योग (प्राणायाम) (७) योगाग्नि-प्रकटीकरण (८) मनोलय (९) ध्यान योग आदि साधनों को समयाचार-साधना का अङ्ग स्वीकार करती है।

'मरुत इह नाड़ी गणजुषो'—

प्राण साधना और उसका महत्त्व—'मनोमार्ग जित्वा मरुत इह नाड़ीगणजुषो' वाक्य में आचार्य गौड़पाद ने दो प्रकार की साधनाओं को सङ्केतित किया है—

(१) मनोमारण (२) प्राणायाम एवं सुषुम्णा में प्राण संचार।

'प्राणसाधना' का इतना महत्व क्यों?

भारतीय योगियों ने यह अनुभव किया कि जब तक प्राण वशीकृत नहीं किया जाता तब तक मन भी वशीभूत नहीं होता क्योंकि मन एवं प्राण का आधाराधेय सम्बन्ध या वाहन एवं यात्री का सम्बन्ध है।

'मरुत इह नाड़ी गणजुषो'—अर्थात् नाड़ी-समूह को वायु से युक्त करके।

प्राणायाम के सिद्धान्त—(१) **चित्त आदि का विलय** हो जाने पर **वायु का भी लय** हो जाता है। **मन एवं पवन दोनों का लय** हो जाने पर इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियार्थों का त्याग हो जाता है—

'चित्तादि विलये जाते पवनस्य लयो भवेत्।
मनःपवनयोर्नाशादिन्द्रियार्थं विमुञ्चति ।।'[1]

(२) जब साधक के इन्द्रियार्थों को इन्द्रियों से ग्रहण करने बन्द कर देता है तब वह **जागतिक बाह्य ज्ञान से मुक्त** हो जाता है—

'इन्द्रियार्थैर्यदा मुक्तो बाह्यज्ञानं न जायते।'

सर्वसमत्व बुद्धि तभी संभव है जब बाह्यज्ञान नष्ट हो जाय—

'बाह्यज्ञाने विनष्टे च ततः सर्वसमो भवेत् ।।' (३२)

(३) सर्वसमत्व-प्राप्ति से ब्रह्म-लय की सिद्धि प्राप्त होती है—

'यदा सर्वसमे जाते भवेद् व्यापार वर्जितः।
परब्रह्मणि सम्पन्नो योगी प्राप्तलयस्तदा ।।'

(४) मन एवं वायु दूध तथा जल की भाँति परस्पर मिले हुए हैं। उन दोनों की क्रिया भी एक ही समान है। उन दोनों में जब तक **'मन'** रहेगा तब तक **'वायु'** की प्रवृत्ति रहेगी और जब तक वायु रहेगा तब तक मन की प्रवृत्ति रहेगी—

'दुग्धाम्बुवत संमिलितौ तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ च।
यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिर्यावन्मरुच्चापि मनः प्रवृत्तिः ।।'

—(हठयोग प्रदीपिंका)

(५) उन दोनों में से एक का नाश हो जाने पर दूसरे का स्वयमेव नाश हो जाता है—

'तत्रेकनाशाद्परस्य नाशः एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ।।'

दोनों के नाश से ही मोक्ष प्राप्त हो पाता है—

'विध्वस्तयोर्मोक्षपदस्य सिद्धिः ।।' (अमनस्यक योग २९)

'शांभवी मुद्रा' प्राण-मन दोनों को निरुद्ध करने में सहायक है। **'शांभवी मुद्रा'** भगवती 'उमा' के समान है—आदि शक्ति है—

'आदिशक्तिरुमाचैषा' (अमनस्क योग : ११)

शांभवी मुद्रा का स्वरूप—

'अन्तर्लक्ष्य बहिर्दृष्टिनिमेषोन्मेषवर्जिता।
एषा हि **शाम्भवीमुद्रा** सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।। (१०)[2]
वेदशास्त्र पुराणानि सामान्य गणिका इव।
एकैव **शाम्भवी** मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ।। (९)

---

[1] अमनस्क योग (गोरक्षनाथ)
[2] अमनस्क योग (१०)

'मनोमार्गं जित्वा'—मन के मार्ग को जीतकर। (मन का विरोध करके)।

'मन का मार्ग' क्या है? मार्ग वह है जिस पर प्राणी चलता है। 'मन' किस मार्ग पर चलता है? 'मन' वायु के मार्ग पर चलता है—"वायु" मन का मार्ग है—

'एवमभ्यसमानस्य **वायुमार्गे** दिवानिशम्।
अभ्यासा**जीर्यते वायुर्मनस्तत्रैव लीयते** ।।'

वायु के नाश से मन का भी नाश हो जाता है। **'मन'** को प्राण या वायु से ही चलने की गति प्राप्त होती है। **प्राण या वायु** के मार्ग को नष्ट कर दीजिए तो **'मन'** चल ही नहीं पायेगा।

मन एवं प्राण की परस्पराश्रितता—

मन या चित्त के कारण—चित्त के बीज

(१) 'वासना'
(२) 'प्राण

'हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणाः ।।'

(१) यदि **'वासना'** या **'प्राण'** दोनों में से एक भी नष्ट हो जाय तो दोनों नष्ट हो जाते हैं।

योगवासिष्ठकार का मत—योगवासष्ठिकार ने भी इसी दृष्टि या सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—"हे राम! **चित्त के दो बीज** हैं।

चित्त के बीज

(१) 'प्राणस्पन्दन'
(२) 'वासना'

'द्वेबीजे राम चित्तस्य प्रागस्पन्दनवासने।'

इन दोनों में से एक के भी नष्ट हो जाने पर दूसरा स्वयमेव नष्ट हो जाता है—

'द्वे बीजे राम! चित्तस्य प्राणस्पन्दनवासने।
एकस्मिंश्च तयोर्नष्टे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ।।'

(२) जब तक **मन** नहीं मरता तब तक **वासना** का नाश नहीं हुआ करता।

(३) जब तक वासना क्षीण नहीं होती तब तक चित्त कभी शमित नहीं हो पाता।

(४) जब तक **'विज्ञान'** का आविर्भाव नहीं हो पाता तब तक **चित्त का संक्षय** नहीं हो पाता।

(५) जब तक **चित्तोपशम** नहीं हो पाता तब मक **तत्त्ववेदन** नहीं हो पाता।

(६) जब तक **वासना का नाश** नहीं हो पाता तब तक **तत्त्व का ज्ञान** कैसे संभव हो सकेगा?

(७) जब तक **तत्त्वज्ञा की प्राप्ति** नहीं हो पाती तब तक **वासना का क्षय** नहीं हो पाता।

(८) **'मनोनाश'** क्या है?

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

(क) 'मनस्तत्त्वं जित्वा' (सु०स्तुति : २)

(ख) मनोमार्गं जित्वा (सु०स्तुतिः ३)

'मनस्तत्व पर विजय', 'मनोमार्ग पर जीत' एवं 'मनोनाश(एक ही परमोपलब्धि के पर्याय हैं।

'योगवासिष्ठकार' ने इस स्थिति को **'मनोनाश'** कहा है। वे कहते हैं कि— 'तत्वज्ञान' 'वासनाक्षय' (चित्तवृत्तियों का ध्वंस) एवं 'मनोनाश' एक ही तत्त्व के तीन नाम हैं। ये तीनों बातें (तीनों उपलब्धियाँ, सिद्धियाँ) एक ही हैं—

'तत्त्वज्ञानं **मनोनाशो** वासनाक्षय एव च।
मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितान्यतः ।।'

(१) चित्त के दो कारण : (हठयोग प्रदीपिका।
(क) वासना, (ख) समीर।
(२) चित्त के दो बीज : (योगवासिष्ठ)
(क) प्राणस्पन्दन, (ख) वासना

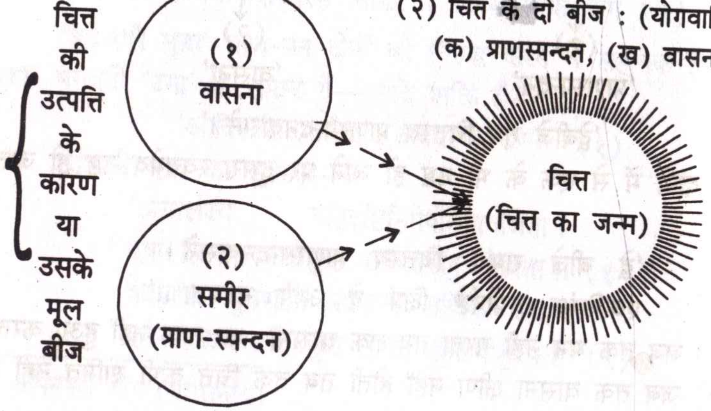

(९) जहाँ मन का लय होता है वहीं पवन का भी लय हो जाता है तथा जहाँ पवन का लय होता है वहीं **मन का भी लय** हो जाता है—

'मनोयत्र विलीयेत पवनस्तत्र लीयते।
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ।।'

(१०) मन एवं पवन (प्राण) जल में मिले हुए दूध की भाँति परस्पर मिले हुए हैं।[1]

(११) जिन नाड़ियों के चक्र में वायु प्रवृत्त होता है उसी चक्र में मन की प्रवृत्ति होती है तथा जिस चक्र में मन प्रवृत्त होता है उसी चक्र में वायु की प्रवृत्ति हुआ करती है।

अतः **योगवासिष्ठकार** कहते हैं कि प्राणियों के **प्राण एवं चित्त** दोनों अविनाभावी हैं। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता यथा—पुष्प एवं सुगन्ध या तिल एवं तैल—

'अविनाभाविनी नित्यं जन्तूनां प्राणचेतसी।
कुसुमामोदवन्मिश्रे तिलतैले इवास्थिते।'

इनके विनाश से ही मोक्षाप्ति होती है—

(क) 'कुरुतश्च विनाशेन कार्यं मोक्षाख्यमुत्तमम् ।।[2]

(ख) 'अध्वस्तयोश्चेन्द्रियवर्गवृत्तिः
प्रध्वस्तयोर्मोक्षपदस्य सिद्धिः।।'[3]

*** 'मन' 'प्राण' (वायु) 'बिन्दु' स्थैर्य एवं 'पिण्डस्थैर्य' का अन्तर्संबंध**

(१) 'मन' का 'प्राण' के साथ ही नहीं प्रत्युत् 'बिन्दु-स्थैर्य' एवं 'पिण्डस्थैर्य' से भी संबंध है—

'मनस्त्र स्थैर्यें स्थिरो वायुस्ततोबिन्दुः स्थिरो भवेत्।
बिन्दुस्थैर्यात्सदा सत्वं पिण्डस्थैर्यें प्रजायते ।।[4]

---

[1] हठयोगप्रदीपिका
[2] योगवासिष्ठ
[3] हठयोगप्रदीपिका
[4] हठयोगप्रदीपिका (४।२८)

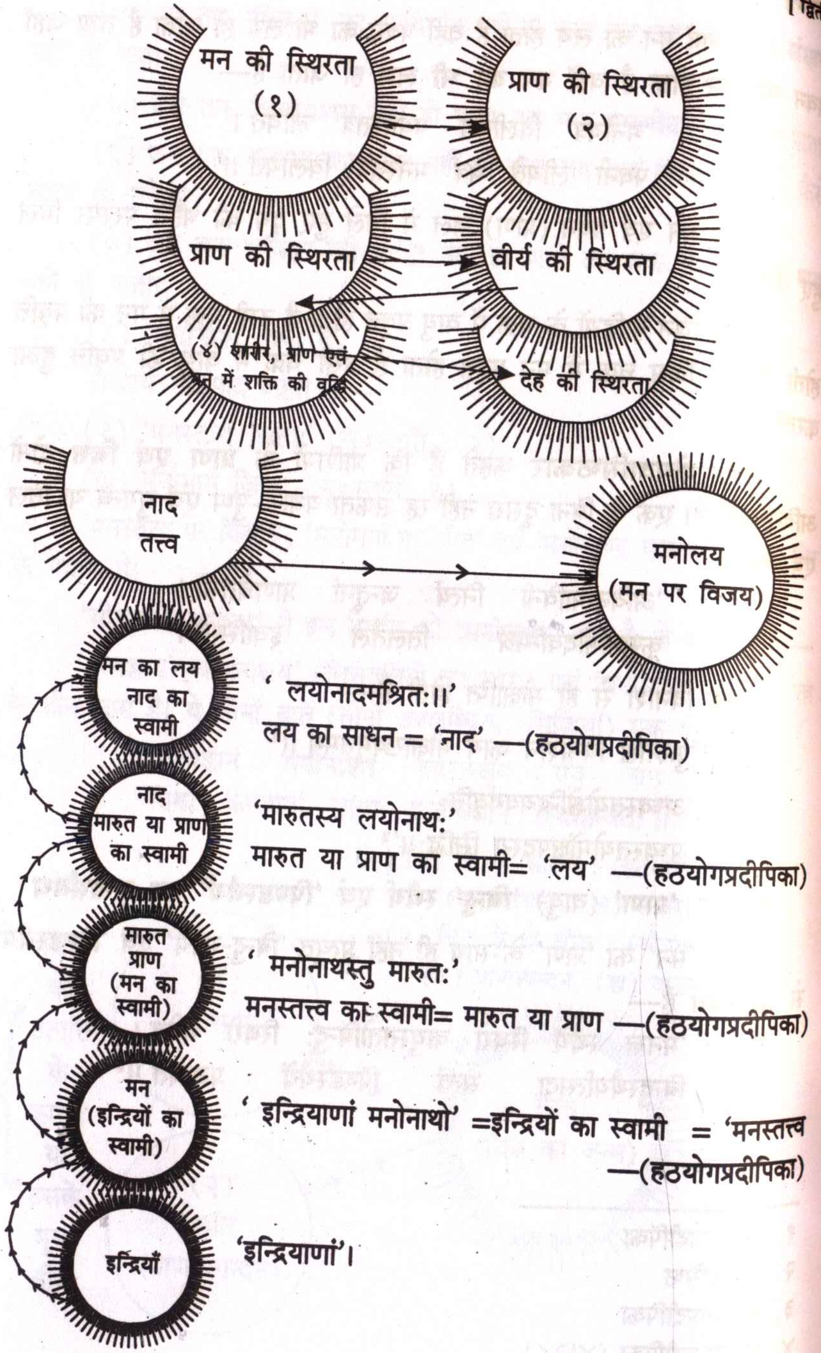
मन की स्थिरता (१)
प्राण की स्थिरता (२)
प्राण की स्थिरता
वीर्य की स्थिरता
(४) शरीर, प्राण एवं मन में शक्ति की वृद्धि
देह की स्थिरता
नाद तत्त्व
मनोलय (मन पर विजय)
मन का लय नाद का स्वामी
'लयोनादमश्रित:॥'
लय का साधन = 'नाद' —(हठयोगप्रदीपिका)
नाद मारुत या प्राण का स्वामी
'मारुतस्य लयोनाथ:'
मारुत या प्राण का स्वामी= 'लय' —(हठयोगप्रदीपिका)
मारुत प्राण (मन का स्वामी)
'मनोनाथस्तु मारुत:'
मनस्तत्त्व का स्वामी= मारुत या प्राण —(हठयोगप्रदीपिका)
मन (इन्द्रियों का स्वामी)
'इन्द्रियाणां मनोनाथो' =इन्द्रियों का स्वामी = 'मनस्तत्त्व —(हठयोगप्रदीपिका)
इन्द्रियाँ
'इन्द्रियाणां'।

औषनिषदिक दृष्टि—

'इन्द्रियेभ्य: **पराह्यर्था** अर्थेभ्यश्च **परं** मनः।
मनस्तु परा **बुद्धि बुद्धेरात्मा** महान पर:॥'

*** मनः संयम पर इतना बल क्यों?**

आचार्य गौड़पाद ने साधना-विधान में सर्वप्रथम—

(१) 'मनस्तत्वं जित्वा' (२) (सुभगोदय स्तुति)

(२) 'मनोमार्गं जित्वा' (३) (सुभगोदय स्तुति)

—ही क्यों कहा है? उन्होंने मन पर विजय को सर्वाधिक महत्व इसलिए दिया क्योंकि—

[१]—प्रथमत: लोग यह जान लें कि **'समयाचार'** कोई 'हठयोग' या 'मन्त्रयोग' का मार्ग नहीं है प्रत्युत् यह 'राजयोग' का मार्ग है जिसमें मन का विनाश **प्रधान-साधना** है और यह साधना **'राजयोग'** ज्ञान, ध्यान, जीवन्मुक्ति, अद्वैत, अमनस्क की साधना है—'अमनस्कं तथाद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम् । जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या''

मुख्यत: **ध्यान की साधना** है या **मन की साधना** है।

(२) यदि यह कहा जाय कि फिर इस साधना में 'हठयोग' के अङ्ग 'प्राणायाम' एवं 'लययोग' के अङ्ग 'षटचक्रभेदन' 'कुण्डलिनी योग' 'ग्रन्थि-भेदन' 'सूर्यचन्द्रयोग' आदि तत्त्वों का सन्निवेश क्यों किया गया?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—

(क) 'समयाचार' वेदान्तमार्ग नहीं है। यह वाग्विलास मात्र नहीं है।

(ख) यहाँ योग-साधना का प्राधान्य है।

(ग) **'राजयोग'** में भी 'मनोमारण' चित्तवृत्तिनिरोध, धारणा, ध्यान, 'समाधि' आदि योगाङ्ग स्वीकृत हैं।

राजयोग की 'धारणा' 'ध्यान' एवं समाधि—

'राजयोग' अमनस्क, अद्वैत, जीवन्मुक्ति एवं तुर्या है। इसके अतिरिक्त यह 'राजयोग: समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी' आदि भी है।

[३]— * हठयोग का लक्ष्य क्या है?

'हठयोग' का लक्ष्य **राजयोग** है—

'केवलं **राजयोगाय** हठविद्योपदिश्यते ॥'[1]

हठयोग तो केवल उन लोगों के लिए है जो **'राजयोग'** जानते ही नहीं—

'भ्रान्त्या बहुमतध्वान्ते **राजयोगमजानताम्** ।
हठप्रदीपिकां धत्ते स्वात्मारामः कृपाकरः ॥'

प्रधान योग तो 'राजयोग' है—क्योंकि—

(१) 'राजयोगमजानन्तः केवलं हठकर्मिणाः ।
एतानभ्यासिनो मन्ये प्रयासफलवर्जितान् ।'

(२) **'उन्मन्यवाप्तये शीघ्रं भ्रूध्यानं** मम सम्मतम् ।
राजयोगपदं प्राप्तुं सुखोपायोऽल्पचेतसाम् ॥'[2] (४।८०)

(३) सर्वेहठलयोपाया **राजयोगस्यसिद्धये** ।
राजयोगसमारूढः पुरुषः कालवञ्चकः ॥[3] (४।१०३)

योग की ज्ञानभूमिकायें

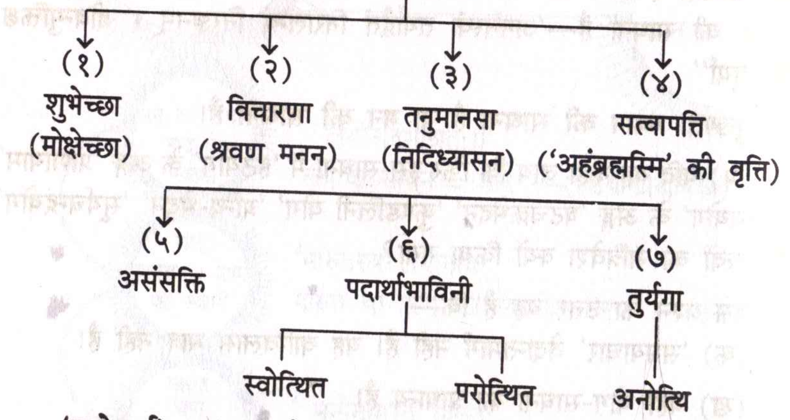
(१) शुभेच्छा (मोक्षेच्छा)
(२) विचारणा (श्रवण मनन)
(३) तनुमानसा (निदिध्यासन)
(४) सत्वापत्ति ('अहंब्रह्मस्मि' की वृत्ति)
(५) असंसक्ति
(६) पदार्थाभाविनी
(७) तुर्यगा
स्वोत्थित
परोत्थित
अनोत्थि

'मनोमार्ग' = वह मार्ग जिस मार्ग पर मन चलता है। मनोमार्ग

मन का मार्ग

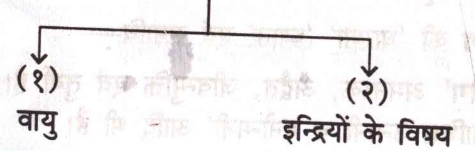
(१) वायु
(२) इन्द्रियों के विषय

---

१. हठयोगप्रदीपिका (१।२)
२. हठयोगप्रदीपिका
३. हठयोगप्रदीपिका

---

[२]—आचार्य गौड़पाद ने मनःसंयम पर सर्वाधिक बल इसलिए दिया क्योंकि वे यह बताना चाहते थे किसी भी साधना की जड़ में यदि **मनः संयम या मन के लय का सिञ्चन** नहीं किया गया है तो वह साधना- वाटिका सूख जाएगी अतः साधना में बाह्याचार के लिए कोई भी स्थान नहीं है—जो भी स्थान है वह मात्र मन की साधना के लिए ही है—ऋषि **सनत्कुमार** कहते हैं—

'**बाह्यपूजा** न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः ।
साक्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात् ॥
बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः ।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः ।
आन्तराराधनपरा वैदिकां ब्रह्मवादिनः ।
जीवन्मुक्तिश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा ॥'

—सनत्कुमार संहिता

समयाचारी तो सारे बाह्याचारों से अपने को मुक्त किये हुए हैं—

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर तो कहते हैं कि समयमत इतना बाह्याचार विरोधी है कि उसकी साधना-पद्धति में—

(१) पुरश्चरण (२) जप (३) बाह्यहोम (४) बाह्यपूजा विधि (५) आदि कुछ भी ग्राह्य नहीं है—

'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव हत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम् ।'[1]

'समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं **आन्तरपूजा** कर्तव्या ॥'[2]

* मन की अवस्थायें एवं उनकी साधना *

योगिराज गोरक्षनाथ ने मन की चार अवस्थायें माना हैं—

मनोवस्था

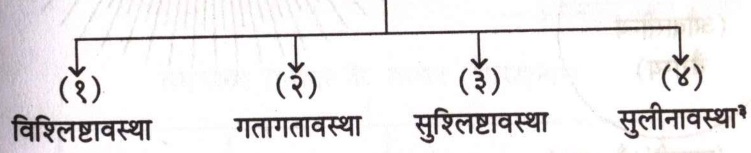
(१) विश्लिष्टावस्था
(२) गतागतावस्था
(३) सुश्लिष्टावस्था
(४) सुलीनावस्था[3]

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक ३३)
२. तत्रैव (४१)
३. अमनस्क योग (गोरक्षनाथ)

मन को 'सुलीनावस्था' में पहुँचाना ही मन की साधना का परम लक्ष्य है।

उन्मनी अवस्था—सारे भारतीय योगियों का प्रधान लक्ष्य 'उन्मनी अवस्था' या 'अमनस्क योग' की अवस्था प्राप्त करना है।

स्वात्माराम मुनीन्द्र की दृष्टि—स्वात्माराम कहते हैं कि—

(१) तत्त्व ही बीज है।
(२) हठ ही क्षेत्र है।
(३) औदासीन्य ही जल है।

इन्हीं ३ की सहायता से **'उन्मनीकल्पलतिका'** का विकास होता है। यह **उन्मनयोग** ही योग की परमसिद्धि है।

'उन्मनी' = मन की मृत्यु

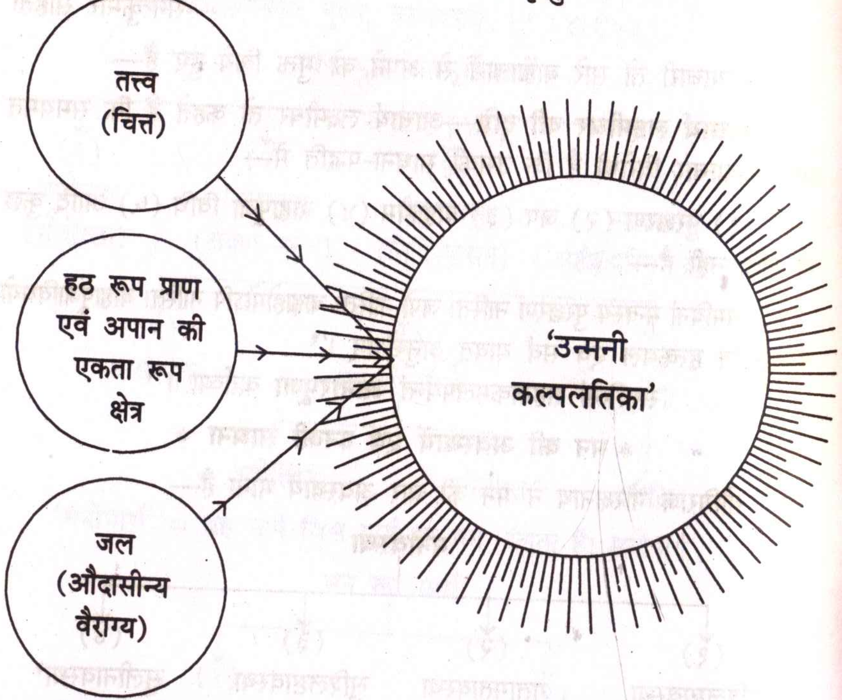
तत्त्व (चित्त)
हठ रूप प्राण एवं अपान की एकता रूप क्षेत्र
जल (औदासीन्य वैराग्य)
'उन्मनी कल्पलतिका'

'उन्मनी' है क्या?

यह 'समाधि' 'राजयोग' 'अमनस्कयोग' 'अद्वैत' 'मनोन्मनी' 'अमरत्व' 'लय' 'तत्त्व' 'शून्याशून्यपरंपद'—'निरालम्ब'—'निरञ्जन'—'सहजावस्था' एवं 'तुया' का पर्याय है—

'राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्या शून्यं परं पदम्।
अमनस्कं तथाऽद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम्।
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः ॥'

हठयोगप्रदीपिका—(४/३-४)

आचार्य गौड़पाद भी कहते हैं—

'मनोमार्गं जित्वा' 'मनस्त्त्वं जित्वा' ॥ —(सुभगोदय स्तुति)

अमनस्क योग ही 'राजयोग' है।

योगिराज गोरक्षनाथ की दृष्टि—योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं कि समस्त योगों में परमोत्तम योग **'तारकयोग'** है।

तारक योग

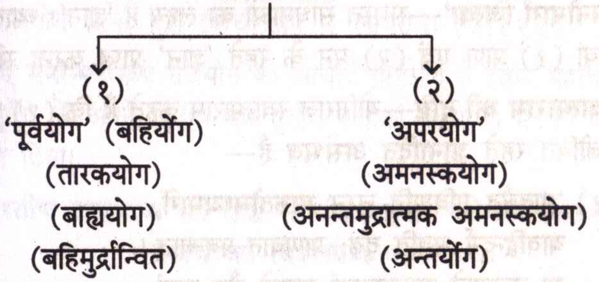
(१)
'पूर्वयोग' (बहिर्योग)
(तारकयोग)
(बाह्ययोग)
(बहिमुर्द्रान्वित)
(२)
'अपरयोग'
(अमनस्कयोग)
(अनन्तमुद्रात्मक अमनस्कयोग)
(अन्तर्योग)

यह 'अमनस्क योग' ही 'राजयोग' है—

'राजयोगः स कथितः स एव मुनिपुंगव।
राजत्वात् सर्वयोगानां **राजयोगं** इति स्मृतः ॥
राजानं दीप्यमानं तं परं ब्रह्माणमव्ययम्।
देहिनः प्रापयेद् यस्तु **राजयोगः** स उच्यते ॥'

—अमनस्क योग (उत्तरार्ध)

अमनस्क साधना के साधन (गोरक्षनाथ

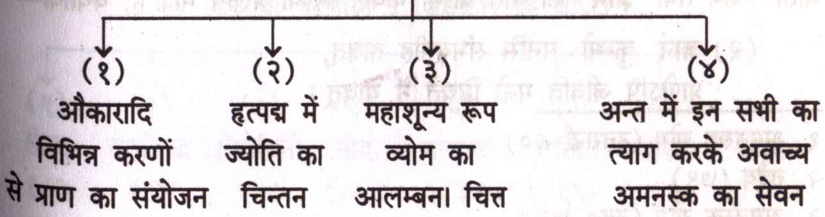
(१)
औकारादि विभिन्न करणों से प्राण का संयोजन
(२)
हत्पद्म में ज्योति का चिन्तन
(३)
महाशून्य रूप व्योम का आलम्बन। चित्त
(४)
अन्त में इन सभी का त्याग करके अवाच्य अमनस्क का सेवन

जो कुछ भी चराचर जगत है वह सब मन के कारण ही दृश्य रूप से दृष्टिगत होता है। मन का उन्मनीभाव (विलय) होने पर मात्र अद्वैतभाव ही शेष रह जाता है—

(१) मनोदृश्यमिदं सर्वं यत् किंचित्सचराचरम् ।
मनसोऽप्युन्मनीभावेऽद्वैतभावः प्रकल्पते ॥[1]

(२) मन ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासंगि **मुक्तये** निर्विषयं मनः ॥'[2]

गोरक्षोक्त मनोमार्गं जित्वा' की साधना—

गोरक्षनाथ कहते हैं कि मनोजय के लिए आवश्यक यह है कि—जब जहाँ जिस प्रकार मन स्थिर हो वहाँ, उसी प्रकार स्थिर करना चाहिए तथा जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ से निवृत्त नहीं करना चाहिए।

'मनोमार्गं जित्वा'—समस्त साधनाओं का लक्ष्य है 'ज्ञान'। ध्यातव्य बिन्दु यह है कि क्या (१) प्राण एवं (२) मन के रहते 'ज्ञान' प्राप्त करना संभव होगा?

स्वात्माराम की दृष्टि—योगिराज स्वात्माराम कहते हैं कि (१) प्राण एवं (२) मन के जीवित रहते **ज्ञानादित असंभव** है—

(१) 'यावन्नैव प्रविशति चरन् **मारुतोमध्यमार्गे,**
यावद्बिन्दुर्न भवति दृढः प्राणवात-प्रबन्धात् ।
या वद्धयाने सहजसदृशं जायते नैव तत्त्वं,
तावज्ज्ञानं वदति तदिदं दम्भमिथ्याप्रलापः ॥ (४।११)

सारांश यह है जब तक कि—

(१) सुषुम्णामार्ग में प्रवाहित **प्राणवायु** ब्रह्मरंध्र में प्रविष्ट होकर स्थिर नहीं हो जाता।

(२) जब तक कुंभ के द्वारा **बिन्दु** स्थिर नहीं हो जाता ।

(३) जब तक **चित्त** (मन) रूप **'तत्त्व'** ध्यान में सहज रूप से स्थिर नहीं हो जाता—जब तक **'ज्ञान'** की बात करना केवल मिथ्या प्रलाप मात्र है; क्योंकि—

(२) **ज्ञानं** कुम्भो मनसि संभवतीह तावत्,
प्राणेऽपि जीवति मनो म्रियते न यावत् ।
प्राणो मनो द्वयमिदं विलयं नयोद्यो
मोक्षं स गच्छति नरो न कथं चिदन्यः ॥ (४।१५)

---

१. अमनस्क योग (उत्तरार्द्ध ८०)
२. तत्रैव (७९)
३. अमनस्क योग (उत्त० ७२)

'ज्ञान' क्या है? स्वात्माराम मुनीन्द्र कहते हैं—

"ज्ञानं भुक्तिः स्थितिः सिद्धिः ।"

ज्योत्स्नाकार कहते हैं—"ज्ञानं स्वस्वरूपपरारोक्षानुभवः॥' **'मुक्तिर्विदेहमुक्तिः'** 'स्थिति निर्विकार स्वरूपावस्थितिरूपा **जीवन्मुक्तिः,** 'सिद्धिरणिमादिः'।

—ब्रह्मानन्दगिरि—ज्योत्स्ना

राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः ।
ज्ञानं, भुक्तिः स्थितसिद्धिर्गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ (४।८)

इसीलिए 'राजयोग' का इतना महत्त्व है और कहा गया है कि—

राजयोगं विना पृथ्वी राजयोगं विनानिशा ।
राजयोगं विना मुद्रा विचित्राऽपि न शोभते ॥ (३।१२६)

इसीलिए **मनोन्मनीरूप** राजयोग को आचार्य गौड़पाद ने इतना महत्व देते हुए **'सुभगोदयस्तुति'** के अपने द्वितीय एवं तृतीय श्लोकों के प्रारंभ में मन की विजय पर इतना बल दिया।

* भारतीय तन्त्रशास्त्र की दृष्टि से गौड़पादोक्त मनोमार्गं जित्वा' वाक्य का विश्लेषण *

आचार्य गौड़पाद ने साधना के क्षेत्र में मन की साधना को सर्वोपरि महत्व क्यों दिया?—इसकी पृष्ठभूमि में गुह्यतांत्रिक दृष्टि भी अनुस्यूत है।

मन की एक मात्रा में स्थिति होने पर **एकाग्रभूमि** की प्रतिष्ठा होती है। इस दशा में द्रष्टा के समक्ष **विश्वविलुप्त हो जाता है।** इस समय **एक मात्र चिदाकाश** ही **प्रकाशमान** रहता है। एकाग्रभूमि में प्रतिष्ठित मन को तोड़कर उसके दो टुकड़े करने होंगे। इसी का नाम है—**'अर्धमात्रा'**। मन की मात्रा जितनी ही क्षीण से क्षीणतर हो उतनी ही चैतन्य और उससे सम्बद्ध आनन्द की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट होती है।

मन के भागांश : (ॐकार के अंश)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
बिन्दु	अर्धचन्द्र	निरोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिनी	समना
१/२ मात्रा	१/४ मात्रा	१/८ मात्रा	१/१६ मात्रा	१/३२ मात्रा	१/६४ मात्रा	१/१२८ मात्रा	१/१२८ मात्रा

अकार	उकार	मकार	सब मिलाकर	मायातीत पद में
मात्रा-१	मात्रा-२	मात्रा-३	६ मात्रायें हैं।	= १ मात्रा है।

एक ही मात्रा सूक्ष्मतर होते-होते सर्वत्र व्याप्त है। * अन्तिम अवस्था में मन इतना सूक्ष्म हो जाता है कि तब मन के रहने पर भी न के समतुल्य ही रहता है।

गीताकार की दृष्टि—श्री कृष्ण भी 'मन' एवं 'प्राण' को साधना में सर्वप्रथम स्थान देते हैं और वे गीता में कहते हैं—

'समस्त द्वारों को संयत करके, **मन को हृदय में निरुद्ध करके,** योगधारणा के द्वारा **प्राणों** को मूर्धादेश में स्थापित करके एकाक्षर शब्द ब्रह्म ॐ का उच्चारण करते हुए एवं भगवान का स्मरण करते-करते जो देह त्याग करता है वह परमगति पाता है।'

सर्वद्वाराणि संयम्य **मनो** हृदि निरूध्य च।
मध्न्यीधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणम् ॥

उपनिषद-काल के ऋषियों की दृष्टि—ऋक्षियों की दृष्टि में **'मन'** कोई वैचारिक वृत्ति, जड़ चित्त या भौतिक मनोवृत्ति नहीं है प्रत्युत् यह एक अनन्त शक्तिसम्पन्न चेतन सत्ता है जो कि **'समना'** तक स्थित है।

'शुक्लयजुर्वेद' (अध्याय ३४ मंत्र १-६) के ६ मंत्रों द्वारा मन से प्रार्थना की गई है कि वह शुभसंकल्पों वाला बने। उसमें कहा गया है कि—

'यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिष्चक्र तन्मे **शिवसङ्कल्पमस्तु** ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां **तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**।
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते **तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु**।
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीत ममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता **तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**
यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठता रथनामाविचाराः।
यस्मिश्चित्त सर्वमोत प्रजानां **तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु** ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मुष्यान्नेनीयतेऽभीशुविर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं **जाविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु** ॥'

—शिवसङ्कल्पोपनिषद

मन की साधना—"विज्ञान भैरव" में मन को वशीभूत करने के लिए मन की साधना की पद्धति इस प्रकार प्रस्तुत की गई है—

(१) सर्वतः स्वशरीरस्य द्वादशान्ते **मनो** लयात्।
दृढबुद्धेर्दृढीभूतं तत्त्वलक्ष्यं प्रवर्तते।
(२) यथा तथा यत्र तत्र द्वादशान्ते **मनः** क्षिपेत्।
प्रतिक्षणं क्षीणवृत्तेर्वैलक्षण्यं दिनैर्भवेत् ॥
(३) भुवनाध्वादि रूपेण चिन्तयेत् क्रमशोऽखिलम्।
स्थूलसूक्ष्मपरस्थित्या यावदन्ते **मनोलयः**।
(४) विश्वमेतन्महादेवि ! शून्यभूतं विचिन्तयेत्।
तत्रैव च **मनोलीनं** ततस्तल्ल्यभाजनम् ॥
(५) सर्वं देहं चिन्मयं हि जगद वा परिभावयेत्।
युगपन्निर्विकल्पेन **मनसा** परमोदयः ॥

—विज्ञानभैरव

श्रीविद्या उपासना में 'प्राणायाम' एवं प्राणसंयम का स्थान

यद्यपि यह सत्य है कि श्रीविद्या की साधना **हठयोगप्रधान नहीं है**। किन्तु यह साधना भी **योगाश्रित** है इसीलिए आचार्य गौड़पाद ने **समयी को महायोगी** कहा है—

'तवाज्ञाचक्रस्थं विलयति (विलसति) **महोयोगि** समयी।'

इसी कारण **'श्रीविद्यासाधना'** में **'राजयोग'** का आश्रय लिया गया है अतः **'प्राणायाम'** एवं **'प्राणसाधना'** को अंगीकृत करके तथा अन्य अंगों को स्वीकार करके भी (१) प्राणायाम के प्रकारों (२) नाड़ी-शुद्धियों (३) आसनों (४) प्रत्याहार-पद्धतियों (५) बंधों (६) मुद्राओं आदि (हठयोग के प्रतिपाद्य विषयों) की विवेचना नहीं की गई है। तथापि **राजयोग-गृहीत प्राणायाम, धारण ध्यान समाधि आदि योग की साधना-पद्धतियों को अङ्गीकार अवश्य किया जाता है।**

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

(क) 'मरुत इह नाड़ीगण जुषो
(ख) 'निरुध्यार्कं सेन्दुं'
(ग) 'दहनमपि संज्वाल्य'
(घ) 'शिखया सुषुम्णां संयोज्य'
(ङ) 'श्लथयति षडग्रंथि'
(च) 'शशिनं तवाज्ञा चक्रस्थं विलयति'

इन सभी क्रियाओं में प्राण-साधना अन्तर्निहित है।

[क] **'मरुत इन नाड़ीगण जुषां'**—अर्थात् कुम्भक प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों को वायु से युक्त करके।।

सिद्धान्त और साधना—शरीर में ७२००० या साढ़े तीन कोटि नाड़ियाँ हैं। उनमें वायु प्रवाहिका या वायु-धारिका नाड़ियों में कुछ ही नाड़ियाँ हैं। जो वायु प्रवाहिका नाड़िया. हैं। यद्यपि वे स्वयमेव वायु को ग्रहण करती हैं और उनका—(१) पूरक (२) कुम्भक (३) रेचक स्वतः अहोरात्र चलता रहता है। अतः उन नाड़ियों को वायु से युक्त करने का निर्देश अनावश्यक सा प्रतीत होता हुआ भी आवश्यक एवं व्यावहारिक है क्योंकि **समस्त नाड़ियाँ मल से भरी हैं**। अतः यथेच्छ प्राण-संचार नहीं हो पाता।

आचार्य स्वात्माराम मुनीन्द्र की दृष्टि—आचार्य स्वात्माराम कहते हैं कि मलाकुल नाड़ियों में मारुत-प्रवेश नहीं हो पाता अर्थात् यह प्राण सुषुम्णा नाड़ी में प्रवेश नहीं कर पाता—

'मलाकुलासु नाड़ीषु मारुतो नैव मध्यगः ।[1]
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत् ॥' (२।४)

(१) **नाड़ियाँ मल से भरी हुई हैं** अतः प्राण का उनमें यथेच्छ प्रवेश नहीं हो पाता।

(२) नाड़ियों के मलाकुल होने के कारण **'प्राण'** मध्यवर्ती (सुषुम्णा नाड़ीगत) नहीं हो पाता।

"नाड़ीषु मलैराकुलासु व्याप्तासु सतीषु मारुतः ।
प्राणो मध्यगः सुषुम्नामार्गवाही नैव स्यात् ॥"
अपितु शुद्धमलास्वेव मध्यगो भवति ॥[2]

(३) मलों से **नाड़ियों की मूल से मुक्ति की प्रकिया**—नाड़ियाँ मात्र प्राणायाम से ही मल रहित होकर शुद्ध हो सकती हैं। क्योंकि—

'प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति ॥' (२।३७)

(४) **नाड़ी चक्र यथावश्यक प्राण संग्रहण कब कर पाती है?**

स्वात्माराम कहते हैं कि यह तभी संभव हो पाता है जब वे शुद्ध हो जायँ—

'शुद्धिमेति यदा सर्वं नाड़ीचक्रं मलाकुलम् ।
तदैव जायते योगी प्राण-संग्रहणो क्षमः ॥' (२।५)

---

[1] हठयोगप्रदीपिका (२।४)

[2] ज्योत्स्ना (२।४)

इसके लिए **'प्राणायाम'** आवश्यक है—

'प्राणायामं ततः कुर्यान्नित्यं सात्विकया धिया ।
यथा सुषुम्नानाडीस्था मलाः शुद्धिं प्रयन्ति च ॥'[1]

(५) प्राण के चंचल या अस्थिर रहने पर चित्त भी चंचल एवं अस्थिर हो जाता है तथा प्राण के निश्चल होने पर चित्त भी निश्चल हो जाता है इसलिए **वायु का निरोध** किया जाना चाहिए। (कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए।)

देह में जब तक प्राण स्थित हैतब तक ही प्राणी का जीवन रहता है। प्राण का निष्क्रमण ही प्राणी की मृत्यु है अतः प्राण का निरोध अवश्य करणी है।[2]

(६) जब तक शरीर में वायु (प्राण) **'बद्ध'** (श्वासोच्छ्वास क्रिया शून्य) है और जब तक चित्त **'निराकुल'** (समाहित अविक्षिप्त) है तब भला मृत्यु से क्या भय?[3]

'सुषुम्णा संयोज्य'

(७) **प्राण का सुषुम्णा में प्रवेश**—योगोक्त विधियों से प्राणसंयाम द्वारा नाड़ी चक्र का विशोधन करने प्राण वायु सुषुम्णा नाड़ी के बन्द मुख को खोल कर अन्दर प्रविष्ट होने लगता है।[4]

(८) प्राण के सुषुम्णा नाड़ी के प्रविष्ट होने पर **मन भी स्थिर हो जाता है।** मन का यही सुस्थिरीभाव या स्थैर्यवाली अवस्था **'मनोन्मनी'** कहलाती है।[5]

(९) प्राणायामों के मुख्य भेद ८ हैं जो निम्नाङ्कित हैं—

(१) सूर्य भेदन (२) उज्जायी (३) सीत्कारी (४) शीतली (५) भस्त्रिका (६) भ्रामरी (७) मूर्च्छा (८) प्लाविनी।

---

[1] हठयोगप्रदीपिका (२।६)

[2] चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ।
यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते ।
भरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥ (२।२-३)

[3] ह०यो०प्र० (२।४०)

[4] हठयोगप्रदीपिका—
विधिवत्प्राणसंयामैर्नाडीचक्रे विशोधिते ।
सुषुम्नावदनं भित्वा सुखाद्विशति मारुतः॥ (२।४१)

[5] मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते ।
योमनः सुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी ॥
—हठयोगप्रदीपिका

(९) **व्यावहारिक पद्धति—'जालन्धरबंध'** लगाकर (कण्ठ संकोचन करके) 'उड्डीयान बन्ध' करने से (पृष्ठ से नाभिप्रदेश में प्राणाकर्षण रूप उड्डीयान बंध लगाने से) प्राण 'ब्रह्मनाड़ी' में चला जाता है—

'प्राणे ब्रह्मनाडिगः ।।' (२।४६)

(१०) **अपान वायु** को ऊपर उठाकर आधाराकुञ्चन द्वारा प्राणवायु को **कण्ठ के अधोभाग में स्थापित** करना चाहिए।

(११) प्राणायाम के तीन अंग हैं।(१) पूरक (२) कुंभक (३)रेचक तथापि यथार्थतः तो **'कुम्भक'** ही यथार्थ प्राणायाम है—

'प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै **केवलकुंभकः ।।'** (२।७३)

प्राणायाम (कुंभक) का फल—इसके अनन्त फल हैं।[1]

इससे तीनों लोकों में दुर्लभ से भी दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त हैं तथा इससे कुण्डली का जागरण भी होता है और राजयोग पद की प्रप्ति भी होती है।[2]

प्राणायाम से ही 'सुषुम्ना' अनर्गला (मल से शुद्ध) होती है।[3] कुम्भकाभ्यास से **'राजयोग'** की भी प्राप्ति होती है।[4]

***शक्ति के जाग्रत होने पर 'प्राण' शून्य में विलीन हो जाता है ***

प्रबुद्धायां महाशक्तौ **प्राणः शून्ये प्रलीयते** ।। (४।१०)

शक्तिबोध से 'सहजावस्था' का उदय—

'उत्पन्न **शक्तिबोधस्य** त्यक्तनिःशेषकर्मणाः ।
योगिनः **सहजावस्था** स्वयमेव प्रजायते ।।' (४।११)

मध्यमार्ग में प्राण संचार होने पर अमरोली आदि उत्पन्न हो जाती हैं—

चित्ते समत्वमापन्ने वायौ व्रजति **मध्यमे** ।
तदाऽमरोली वज्रोली सहजोली प्रजायते ।।(४।१४)

---

१. नतस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकषु विद्यते ।
शक्त केवल कुंभकेन यथेष्टं वायुधारणात् ।। (२।७४)
२. राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः ।
कुम्भकात्कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ।। (२।७५)
३. अनर्गला सुषुम्ना च हठसिद्धिश्च जायते ।। (२।७६)
४. कुम्भक प्रणरोधान्ते कुर्याच्चित्तं निराश्रयम् ।
एवमभ्यासंयोगेन **राजयोगपदं** वज्रेत् ।। (२।७७)

सुषुम्ना नाड़ी (सुषम्णा) की शुद्धता की पद्धति—

इयं तु **मध्यमा नाड़ी** दृढ़ाभ्यासेन योगिनाम् ।
आसन प्राणसंयामभुद्राभिः सरला भवेत् ।।[1]
सुषुम्नावाहिनि प्राणे शून्ये विशति मानसे ।
तदा सर्वाणि कर्माणि निर्मूलयति योगवित् ।।[2]

प्रश्न—आचार्य गौड़पाद को स्थूल से सूक्ष्म साधना की ओर अग्रपद होने का निर्देश देना था किन्तु उन्होंने सूक्ष्म से स्थूल की ओर इंगित क्यों किया?

उन्हें प्रथमतः 'प्राणसाधना' (प्राणायाम) नाड़ी शोधन सूर्यचन्द्रयोग आदि की साधना करने का निर्देश देना था फिर सूक्ष्मतर तत्त्व 'मनस्तत्व' की साधना करने का निर्देश देना था। उन्होंने उल्टी गंगा बहाने का प्रयास क्यों किया?

उत्तर—(१) शिवसूत्रकार को प्रथमतः **'आणवोपाय'** फिर **'शाक्तोपाय'** फिर **'शांभवोपाय'** पर प्रकाश डालना चाहिए था और उसी क्रम में साधना करने का निर्देश देना था फिर उन्होंने सूक्ष्म से स्थूल साधनाओं की ओर निर्देश दिया और 'शिवसूत्र' के अध्यायों का क्रम—(१) **'शांभवोपाय'** फिर (२) **'शाक्तोपाय'** एवं फिर (३) **'आणवोपाय'** का क्रम क्यों रखा।

(२) योगसूत्रकार को अध्यायों का नाम प्रथमतः **'साधनपाद'** फिर **'विभूतिपाद'** पिर **'समाधिपाद'** एवं फिर **'कैवल्यपाद'** रखना था फिर उन्होंने—

(१) समाधिपाद (३) साधनपाद (३) विभूतिवाद (४) कैवल्यपाद का क्रम क्यों रक्खा?

—बात सुस्पष्ट है। किसी भी शास्त्र का जो मुख्य प्रतिपाद्य तत्त्व है उसकी ओर इंगित करने के लिए सर्वप्रथम तत्सम्बद्ध पुस्तक में उसी का प्रतिपादन किया जाता है भले ही साधना के सोपानों में क्रमभंग क्यों न हो जाय। इसी कारण 'शिवसूत्र' एवं 'योगशास्त्र' की विवेचना सूक्ष्मता से स्थूलता की दिशा में की गई है। **आचार्य गौड़पाद** बाह्याचार एवं स्थूलोपासना के विरोधी हैं।

अतः उन्होंने प्रथमतः सूक्ष्म साधना—मनोमारण (मन पर विजय की साधना) की साधना को महत्त्व दिया। इसके द्वारा उन्होंने बाह्याचारी कौलों से अपनी पृथकता भी प्रतिपादित एवं इङ्गित कर दिया।

'निरुध्यार्कसेन्दुं'—अर्क (सूर्य) एवं इन्दु (चन्द्रमा) को निरुद्ध करके। अर्थात्

---

१. हठयोगप्रदीपिका (३।१२४)
२. हठयोगप्रदीपिका (४।१२)

'इड़ानाड़ी' (चन्द्रनाड़ी) एवं पिङ्गला 'पिङ्गलानाड़ी' (सूर्यनाड़ी) में प्राण के चलते प्रवाह को रोककर।

जब तक 'इड़ा' एवं 'पिङ्गला' प्राण का प्रवाह गतिशील है तब तक यह सुषम्णा में प्रवेश कर ही नहीं सकता। प्राणायाम सिद्धि से ही इड़ा-पिङ्गला में प्राण-प्रवाह को रोका जा सकता है। उस प्राण को **'सुषुम्णामार्ग'** प्रवाहित किया जा सकता है।

जब कुण्डलिनी शक्ति 'वह्निवायु' योग से प्रतप्त होकर खड़ी हो जाती है—ऋतु हो जाती है तब 'द्विपुटा' (इड़ज्ञ-पिङ्गला—इन्द्र-सूर्यनाड़ी) की मरणावस्था आ जाती है—'तदासामरणावस्था जायते द्विपुटाश्रया।' अर्थात् महामुद्रा, भस्त्रा प्राणायाम, शक्ति चालनी मुद्रा आदि के द्वारा शक्ति के जागने पर 'अर्क' एवं 'इन्दु' (सूर्य चन्द्र नाड़ी) में प्राण प्रवाह बन्द हो जाता है।

जब वायु पूर्ण रूप से सभी नाड़ियों में भर जाता है। तब कुण्डलिनी का मुख **'ब्रह्मरंध्र'** से बाहर निकलता है। वायु के पूर्णरूप नाड़ियों में भर जाने पर प्राणवायु निरन्तर सुषुम्ना में ही प्रवाहित होने लगता है।[१]

'यदा पूर्णासु सर्वासु संनिरुद्धोऽनिलस्तदा।
बन्धत्यागे कुण्डलिन्या मुखं रन्ध्राद्बहिर्भवेत्।
सुषुम्नायां सदैवायं बहेत् प्राणसमीरणः ॥'[२]

नाड़ियों के शुद्ध हो जाने पर **कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मरंध्र** (चित्रा नाड़ी) **का त्याग कर देती है—**

'इयं कुण्डलिनी शक्ती रन्ध्री त्यजति नान्यथा।'[३]

अन्यथा यह **ब्रह्मरंध्र में ही रहती है—**

ततस्तदन्ध्रे तच्छक्ति सुषुम्ना कुण्डली सदा।
सुषुम्नायां सदा शक्ति श्चित्रास्यान्मम वल्लभे ॥[४]

आधार पद्म में जो सुषुम्णा का छिद्र है वही 'ब्रह्मरन्ध्र' है—

'ब्रह्मरन्ध्रं तु तत्रैव सुषुम्ना धारमण्डले ॥'[५] (५।१३०)

---

१. शिवसंहिता (५।२८)
२. शिवसंहिता
३. शिवसंहिता
४. शिवसंहिता
५. शिवसंहिता

'चन्द्रनाड़ी' एवं 'सूर्यनाड़ी' (वामनासा-दक्षिणनासा) में प्राण संचरण रोकना ही अर्केन्दु-निरोध है—

भस्त्रा कुंभक का फल—

कुण्डलीबोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम्।
ब्रह्मनाडीमुखे संस्थकफाद्यर्गलनाशनम् ॥ (३।६६)

केवल कुंभक का फल—

राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः।
कुंभकात्कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥ (२।७५)
सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ॥ (३।२)

महामुद्रा का फल—(कुण्डली ऋज्वीभूतता। इड़ापिङ्गला की मृत्यु)

'तदा सा **मरणावस्था** जायते द्विपुटाश्रया। (३।१२)

कुण्डली का जागरण—सुषुम्णा में प्राण-प्रवेश इड़ा-पिङ्गला दोनों की मृत्यु।

महावेध से भी वायु सुषुम्णा में प्रविष्ट हो जाती है।

(वायुः स्फुरति मध्यगः॥ (ह०यो०प्र० ३।२७)

मूलबन्ध से भी **प्राणापानैक्य** सिद्ध होता है।

'प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम् ॥' (३।६४)

'अपानप्राणयोरैक्यं—'युवाभवति वृद्धोऽपि सतत मूल बन्धनात्।' (३।६५)

'मूलबन्ध' लगोन अधोगामी **'अपान'** जब ऊर्ध्वगामी होकर अग्निमण्डल में पहुँचता है (नाभि के अधोभाग में स्थित त्रिकोण जठराग्नि के मण्डल में प्रवेश कर जाता है) तब अपानवायु से ताडित **जठराग्नि की शिखा दीर्घ हो जाती है। फिर अग्नि एवं अपान दोनों अग्नि की दीर्घ शिखा के द्वारा** ऊष्ण बने हुए ऊर्ध्वगति प्राण में पहुँच जाते हैं। इसके कारण अपान की ऊर्ध्वगति से दीप्त अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। उसका प्रभाव कुण्डलिनी पर इस प्रकार पड़ता है—

'तेन कुण्डलिनी सुप्ता सन्तप्ता सम्प्रबुध्यते।
दण्डाहता भुजङ्गीव निश्वस्य ऋजुतां व्रजेत् ॥'[१]

फिर कुण्डलिनी ब्रह्मनाड़ी में पहुँच जाती है अतः मूलबन्धाभ्यास आवश्यक है—

'बिलं प्रविष्टेन ततो ब्रह्मनाड्यान्तरं व्रजेत् ॥' (३।६९)

---

१. हठयोगप्रदीपिका (३।६८)

(कुण्डलिनी और उसका जागरण)

जब तक समस्त नाड़ियों में प्रवाहित प्राण को अवरुद्ध करके एक मात्र सुषुम्णा में ही उसे प्रवाहित नहीं किया जाएगा तब तक साधक को ब्रह्मप्राप्ति संभव नहीं है।[1]

प्राणायाम सम्बन्धी क्रियायें—(गौड़पादी की दृष्टि)—

(१) नाड़ियों में **प्राण सञ्चार** करना 'मरुतइहनाड़ीगण जुषो'

(२) अर्क एवं इन्दु (सूर्य चन्द्र नाड़ी) में प्रवाहित प्राणप्रवाह का **निरोध करना**—'निरुध्यार्कं सेन्दुं'

(३) **योगाग्नि प्रकट** करना—**'दहनमपि संज्वाल्य।''**

(४) अग्निशिखा को सुषुम्ना नाड़ी में मिलाना : 'सुषुम्णां संयोज्य।

(५) षट्चक्रों को भेदन करना—'षड्ग्रंथि श्लथयति'

(६) आज्ञाचक्रावस्थित चन्द्रमा में **मन का लय** कर देता है; क्योंकि आज्ञाचक्र का **चन्द्रमा ही मन का स्थान है।**

'श्लथयति षड्ग्रंथि'—मुख्यतः ग्रंथियाँ तो तीन ही मानी गई हैं और उनकी भेदन-प्रक्रिया इस प्रकार हैं—

'रुद्रग्रंथिं ततो भित्वा **विष्णुग्रंथि** भित्यथ।
ब्रह्मग्रन्थि च भित्वैव कमलानिभिनत्ति षट् ।।'[2]

'कुण्डलिनी शक्ति' की स्थिति

वामकेश्वरतंत्रोक्त कुण्डलिनी की स्थिति इस प्रकार है—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽऽशुभा ।।
मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरंध्रं समाश्रिता ।।
पद्मासनगतस्स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुंभकाविष्टमानसः ।।

[पद्मासन। अश्वीमुद्रा। वायु का ऊर्ध्वोत्थापन। कुंभक प्राणायाम की साधना]

वाटवाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो **ज्वलन्।**
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रतो **हिराट्।**
रुद्रग्रंथि ततोभित्वा विष्णुग्रंथिं भिनत्यतः।।

---

[1] क्षुरिकोपनिषद्
[2] वामकेश्वरतन्त्र

(कुंभक प्राणायाम। वायु का आघात। अग्नि-ज्वलन। ज्वलनाघात। पवनाघात से कुण्डलिनी का सुप्ति-भंग) (**'रुद्रग्रंथि'** एवं **'विष्णुग्रंथि'** का भेदन)

'ब्रह्मग्रंथिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट् ।।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था पराज्ञेयो सैव निवृत्तिकारणम्।'

—वामकेश्वर महातन्त्र

'योग चूड़ामणि उपनिषद' के अनुसार शक्ति प्रबोधन—'योग चूड़ामणि उपनिषद् प्रसुप्त शक्ति को जगाने की प्रक्रिया इस प्रकार प्रस्तुत करती है—

'मुखेनाच्छाद्यतद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।
प्रबुद्धा **वह्नियोगेन मनसा मरुता** सह ।।'

[जागरण के साधन— (१) वह्नियोग (२) मन (३) वायु (प्राणायाम)]—

सूचिवदगुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।
उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात् ।।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ।।

हठयोगप्रदीपिकाकार का मत—

(१) **कुण्डलिनी के नाम—**

कुटिलाङ्गी कुण्डलिनी भुजङ्गी शक्तीरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः ।।(३।१०४)
उद्घाटेत्कपाटं यथा कुंचिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ।।१०५।।

(२) **कुण्डलिनी की स्थिति—**

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निराभयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ।।

(३) **कुण्डलिनी की दृष्टि—बन्धन एवं मोक्ष—**

कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्ति सुप्ता **मोक्षाय** योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित् ।। (३।१०७)

(४) **कुण्डलिनी से मुक्ति कब ?**

कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत्परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः ।।

(५) **कुण्डलिनी-जागरण की पद्धति—**

गंगायमुनयोर्मध्ये बालरण्डां तपस्पिनीम् ।
बलात्कारेण गृह्णीयात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

(६) **नाड़ियों के मध्य कुण्डलिनी का अवस्थान—**

इडा भगवती गंगा पिङ्गला यमुना नदी ।
इडापिंगलयोर्मध्ये बालरण्डा च कुण्डली ।

(७) **कुण्डली-जागरण की पद्धति—**

पुच्छे प्रगृह्य भुजङ्गी सुप्तामुद्बोधयेच्च ताम् ।
निद्रां विहाय सा शक्तिरुर्ध्वभुत्तिष्ठते हठात् ॥
अवस्थिता चैव कणावतीसा
प्रपूवर्य सूर्यात्परिधानयुत्त्या ।
प्रगृह्य नित्यं परिचालनीया ॥

(८) **शक्तिजागरण में उपयोगी 'आसन' एवं कन्द-प्रपीड़न—**

सति **वज्रासने** पादौ कराभ्यां धारयेद् दृढ़म् ।
गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् ।
वज्रासने स्थितो योगी **चालयत्वा च कुण्डलीम् ।**
कुर्यादनन्तरं **भस्त्रां** कुण्डलीमाशु बोधयेत् ॥

(वज्रासन। **प्राणायाम**—भस्त्राप्राणायाम)

सूर्याकुंचन द्वारा शक्ति-प्रबोधन—

भानोराकुंचनं कुर्यात्कुण्डली चालये तत्तः ।
मृत्युवक्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः ?

(नाभि में स्थित सूर्य का आकुंचन। नाभि के आकुंचन द्वारा सूर्याङ्कुचन। आकुंचन द्वारा शक्ति का चालन करें।)

(९) **सुषुम्ना में कुण्डलिनी का प्रवेश**—(साधना का समय)

मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयं चालनादसौ ।
ऊर्ध्वमाकृष्यते किंचित्सुषुम्नायां समुद्गता ॥
तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्नायां मुखं ध्रुवम् ।
जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः ॥
तस्मात्संचालनयेन्नित्यं सुखसुप्तामरुन्धतीम् ।
तस्याः संचालनेनैव योगी रोगैः प्रमुच्यते ॥ (३।११९)

(१०) **शक्ति प्रबोधन एवं कालविजय—**

येन संचालिता शक्तिः सयोगी सिद्धिभाजनम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन कालं जयति लीलया ॥

(११) **साधना में आहार-विहार एवं संयम—**

ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशिनः ।
मण्डलादृश्यते सिद्धिः कुण्डल्याभ्ज्ञायोगिनः ॥

(१२) **कुण्डलिनी-जागरण से मृत्युञ्जयत्व प्राप्ति—**

कुण्डलीं **चालयित्वा** तु **भस्त्रां** कुर्याद्विशेषतः ।
एवमभ्यसतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ?

(१३) **मलशुद्धि और कुण्डलिनी-अभ्यास—**

द्वासप्ततिसहस्राणां नाडीनां मलशोधने ।
कुतः प्रक्षालनोपायः कुण्डल्यभ्यसनाहते ॥[१]

'षडग्रंथिं श्लथयति'—यदि 'षड्ग्रंथि' का अर्थ षट्चक्र लिया जाय तो षट्चक्र इस प्रकार है—

(१) मूलाधार चक्र (२) स्वाधिष्ठान चक्र (३) मणिपूरक चक्र (४) अनाहत चक्र (५) विशुद्धाख्य चक्र (६) आज्ञा चक्र ।

चक्र और तत्त्व—

(१) **मूलाधार चक्र**—पृथ्वी तत्त्व (२) **स्वाधिष्ठान चक्र**—जल तत्त्व (३) **मणिपूर चक्र**—अग्नि तत्त्व (४) **अनाहत चक्र**—वायु तत्त्व (५) **विशुद्धाख्य चक्र**—आकाश तत्त्व (६) **आज्ञा चक्र**—मनस्तत्त्व ।

जब कुण्डलिनी जग जाती है तब वह प्रत्येक चक्र का वेधन करती हुई समस्त ६ चक्रों का वेधन करके सहस्रार (सहस्रदलपद्म) में पहुँचकर अपने पति 'परमशिव' के साथ सामरस्य प्राप्त करती है।

'तवाज्ञा चक्रस्थं विलयति महायोगि समयी।'

(१) **शिवसंहिताकार की दृष्टि**—आज्ञाचक्र का स्वरूप निम्नानुसार है—

'आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम् ।
शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देवत्र हाकिनी ॥'

---

[१] हठयोगप्रदीपिका

शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षर बीजं विजृम्भितम् ।
पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वां नावसीदति ॥
तत्र देव:परं तेज: सर्वतंत्रेषु मन्त्रिण: ।
चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशय: ॥
तुतीयं त्रितयं लिङ्गं तदाहं मुक्तिदायक: ।
ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम् ॥
इडा हि पिङ्गला ख्याता वरणासीति होच्यते ।
'वाराणसी' तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्र भाषित: ॥
सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरंध्रं यतोऽस्ति वै ।
ततश्चैषा परावृत्य तदाज्ञापद्मदक्षिणां ।
वामनासापुटं याति गंगेति परिगीयते ॥

—शिवसंहिता

श्रीपूर्णानन्दयति की दृष्टि—आचार्य पूर्णानन्द ने आज्ञाचक्र का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

आज्ञानामाऽम्बुजं तद्धिमकर सदृशं ध्यानधामप्रकाशं ।
हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम् ॥
तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवला वक्त्रषट्ंक दधाना ।
विद्यामुद्रां कपालं डमरू जपवटीं बिभ्रमी शुद्ध चित्ता ।
एतत् पद्मान्तराले निवसति च मन: सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धं ।
योनौ तत्कर्णिकायामितरशिवपदं लिङ्गचिह्नप्रकाशम् ।
विद्युन्मालाविलासं परमकुलपदं ब्रह्मसूत्र प्रबोधं ।
वेदानामादिबीजं स्थिरतर हृदयश्चिन्तयेत् तत् क्रमेण ॥
तदन्तश्चक्रेऽस्मिन् निवसति सततं शुद्धबुद्धयन्तरात्मा ।
प्रदीपाभज्योति: प्रणवविरचना रूप वर्ण प्रकाश: ।
तदूर्ध्वे चन्द्रार्द्ध स्तदुपरि विलसद् बिन्दुरूपी मकार ।
स्तदूर्ध्वे नादोऽसौ जलधवल सुधाधार सन्तान हासी ॥
ज्वलद दीपाकारं तदनु च नवीना र्कबहुल
प्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्यमिलितम् ।
इहस्थाने साक्षाद् भवति भगवान् पूर्णविभवो ।
ऽव्यय: साक्षी वह्ने: शशि**मिहिरयोर्मण्डल** इव॥

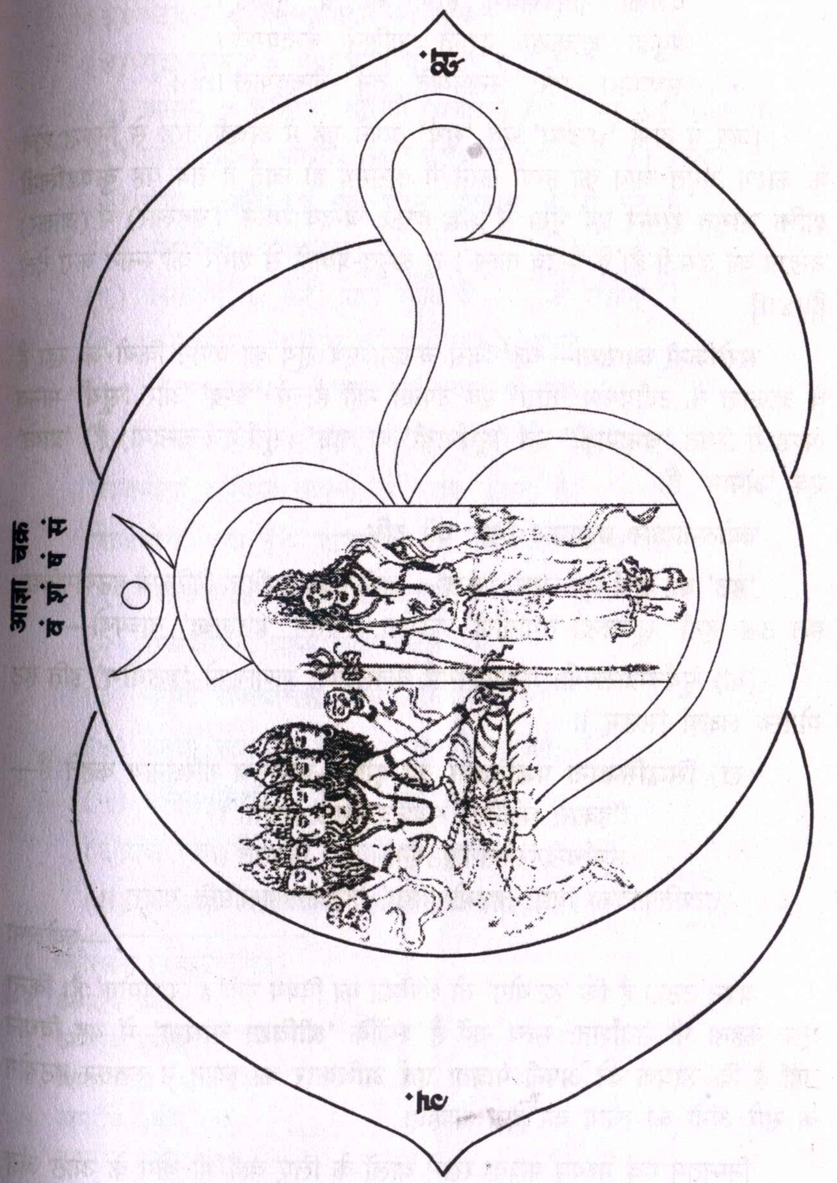

श्लोक क्रम ४ * क्षुधार्त कुण्डलिनी का चन्द्रमा को डसना *

यदा तौ चन्द्राऽर्कौ निजसदनसंरोधनवशा-
दशक्तौ पीयूषस्रवण हरणे सा च भुजगी।
प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं।
सुधाधारा सारैः स्नापयति तनुं बैन्दवफले ।।४।।

[जब वे दोनों **'चन्द्रमा'** एवं **'सूर्य'** अपने गृह में अच्छी तरह से निरुद्ध होने के कारण अमृत-स्राव का हरण करने में असमर्थ हो जाते हैं तब वह **कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर** एवं भूख से क्रुद्ध होकर 'बैन्दव स्थान' (सहस्रार) में (जाकर) चन्द्रमा को डसती है। हे बैन्दव कला ! तू अमृत-प्रवाहों से शरीर को स्नान करा देती है।।४।।]

सरोजिनी व्याख्या—यहाँ जिस चन्द्रमा एवं सूर्य का वर्णन किया जा रहा है वे आकाश के उदीयमान 'तारा' एवं उपग्रह नहीं है। ये **'चन्द्र'** और **'सूर्य'** मानव पिण्ड में स्थित **'चन्द्रनाड़ी'** एवं **'सूर्यनाड़ी'** या **'हठ'** (सूर्य एवं चन्द्रमा) हैं, **'प्राण'** एवं **'अपान'** हैं।

ज्योत्स्नाकार ब्रह्मानन्द गिरि की दृष्टि—

'हठ' का अर्थ एवं 'सूर्य' 'चन्द्र'—आदिनाथेन उपदिष्टा गिरिजायै हठयोगविद्या, हश्च ठश्च 'हठौ' सूर्यचन्द्रौ तयोर्योगो 'हठयोगः'। एतेन **'हठशब्द'** वाच्ययो—

(क) सूर्यचन्द्राख्ययोः प्राणापानयोरै क्यलक्षणः प्राणायामो **'हठयोग'** इति हठ योगस्य लक्षणं सिद्धम् ।।

(ख) **सिद्धसिद्धान्त पद्धतिकार की दृष्टि**—योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं—

"हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते ।।"

तत्प्रतिपादिका विद्या 'हठयोगविद्या' 'हठयोगशास्त्रमिति यावत् ।।

—ज्योत्स्ना

प्रश्न उठता है कि 'हठयोग' तो श्रीविद्या का विषय नहीं है 'राजयोग' है। किन्तु ऐसा कहना भी सर्वांशतः सत्य नहीं है क्योंकि **'श्रीविद्या साधना'** में यह विधान नहीं है कि साधक को अपनी **पात्रता एवं अधिकार** का ध्यान न रखकर हठयोग के सारे अंगों का त्याग कर देना चाहिए।

निम्नतम एवं मध्यम पात्रता रखने वालों के लिए वहाँ भी योग के आठ अङ्ग स्वीकृत हैं और जहाँ तक **'हठयोग'** की बात है इस साधना में—

(१) 'ह' एवं 'ठ' = 'सूर्य' एवं 'चन्द्र' एवं उसकी साधना।
(२) नाड़ी-मण्डल = नाड़ी योग
(३) षट्चक्र = षट्चक्रभेदन की साधना
(४) मुद्रा-बन्धन = मुद्रा बन्ध की साधना
(५) आसन = कतिपय आसनों (वज्रासन आदि) का आत्मीयकरण।
(६) प्राणायाम = मस्त्रिका आदि कतिपाय प्राणायामों की साधना।
(७) ग्रंथि = ग्रंथि एवं ग्रंथि-भेदन 'हठयोग' के ही अंग हैं।
(८) 'मंत्रयोग' = मंत्रसाधन
(९) 'लययोग' = मन, प्राण आदि के लय की साधना
(१०) 'राजयोग' = चित्त वृत्ति निरोध की साधना।
(११) ' ध्यानयोग' = ध्यान एवं ध्यान की साधना।
(१२) 'ज्ञान योग' = ज्ञान और ज्ञानाप्ति की साधना।

'राजयोग' श्रीविद्या साधना की मुख्य साधना है।

'राजयोग' क्या है? **'राजयोग'** = **'चित्तवृत्तिनिरोध'**।।

(१) **'राजयोगश्च** सर्ववृत्तिनिरोधलक्षणोऽसंप्रज्ञात योगः ।।[1]
(२) **राजयोगपदं** प्राप्य सर्वतत्त्ववशङ्करम् ।[2]
(३) चतुर्थो **राजयोगश्च** द्विधाभावविवर्जितः ।।[3]
(४) चतुर्थो **राजयोग** स्यात् स द्विधाभाववर्जितः ।[4]
(५) यश्चित्तवृत्तिरहितः स तु **राजयोगः** ।।[5]
(६)एक एवामरौधे हि **राजयोगाभिधानकः** ।।[6]
(७) सर्वाण्यपि तहाभ्यासे **राजयोगकलावधिः** ।।[7]

---

१. ज्योत्सना (ब्रह्मानन्दगिरि)
२. अमरौघ प्रबोध
३. अमरौघ प्रबोध
४. शिवसंहिता (५।१४)
५. अमरौघ प्रबोध (४)
६. अमरौघ प्रबोध (१७)
७. हठयोग प्रदीपिका (१।६७)
८. हठयोग प्रदीपिका (२।७६)

(८) हठं विना **राजयोगं** राजयोगं विना हठः ।
न सिध्यति ततो **युग्यमानिष्पत्ते समभ्यसेत्** ।।

(इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों में वायु-प्रवाह अवरुद्ध करके चन्द्र एवं सूर्य स्वरों को रोक कर के।)

'इडायां चन्द्रश्चरति। पिंगलायां रविः। तमो रुपश्चन्द्रः। रजो रूपो रविः। विषभागो रविः। अमृतभागश्चन्द्रमाः।।
—शाण्डिल्योपनिषद्

गोरक्षनाथ की दृष्टि—योगिराज गोरक्षनाथ ने **'योगबीज'** में 'सूर्यचन्द्रयोग' को इतना महत्व दिया है कि उसे 'योग' का ही पर्याय घोषित कर दिया है। वे कहते हैं कि **'योग'**— (क) प्राणापान के योग का योग है।

(ख) रज-रेतस के योग का योग है।

(ग) जीवात्मा और परमात्मा का योग है।

(घ) **चन्द्रमा एवं सूर्य के योग का अंग है**

योऽपानाप्राणयोर्योगः स्वरजोरेतसो स्तथा ।
सूर्यचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ।। —(योगबीज ८९९०)

(क) प्राण एवं अपान का ऐक्य ही योग है।

(ख) रज एवं रेतस का ऐक्य ही योग है।

(ग) सूर्य एवं चन्द्र का ऐक्य ही योग है।

(घ) जीवात्मा एवं परमात्मा का ऐक्य ही योग है।

(ङ) द्वन्द्वों के समूह का संयोग ही योग है।

'प्राणापानसमायोगाच्चन्द्रसूर्यैकता भवेत् ।'

सूर्य एवं चन्द्र का ऐक्य

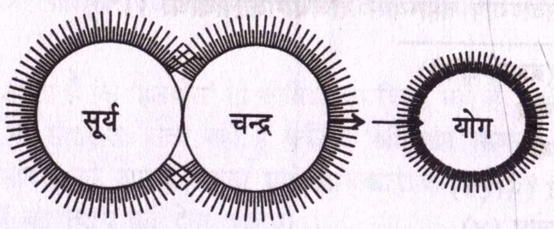

'सोम' 'सूर्य' एवं 'अग्नि' इड़ा, पिङ्गला एवं सुषुम्ना नाड़ियों के अधिष्ठाता हैं। जब तीनों नाड़ियों की वायु एक हो जाती है तब मोक्ष की प्राप्ति एवं 'सूर्य'-'चन्द्र' की मृत्यु होती है—

'सोमसूर्याग्निसम्बन्धो जायते **चामृताय** वै ।
मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेच्येत् ।।'

शास्त्रों में कहा गया है कि **'चन्द्रमा'** अमृत-स्राव करता है; किन्तु नीचे **'सूर्य'** पी जाता है—

'यत्किञ्चित् स्रवते चन्द्रादमृतं दिव्यरूपिणः ।
तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः ।।'
—हठयोग प्रदीपिका

'महावेध' के परिणामस्वरूप सुषुम्ना नाड़ी में वायु का संचार होने लगता है और फिर चन्द्रमा-सूर्य एवं अग्नि ये तीनों नाड़ियों की वायु एक हो जाती है अर्थात् इड़ा-पिङ्गला में वायु-संचार बन्द हो जाता है। अतः उनकी मृतावस्था उत्पन्न हो जाती है।[१] सोम-सूर्य-अग्नि तीनों का संयोग अमृतत्व प्रदान करता है—

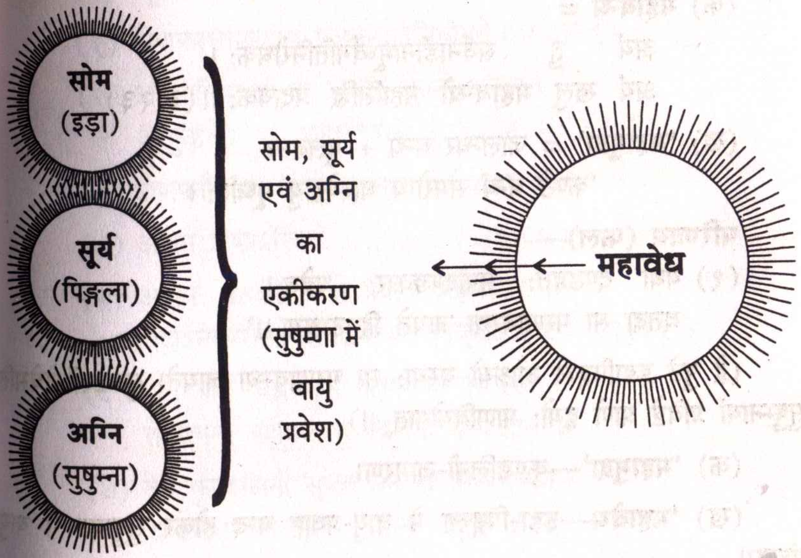

'सोमश्चसूर्यश्चाग्निश्च सोमसूर्याग्नयः सोमसूर्याग्नि शब्दैस्तदधिष्ठिता नाडय **इडापिङ्गलासुषुम्ना** ग्राह्या ------------ **तेषां** सम्बन्धः अमृताय मोक्षाय जायते।।'
—ज्योत्स्ना (३।२८)

---

[१] सोमसूर्याग्नि संबन्धो जायते चामृताय वै ।
मृतावस्था समुत्पन्न ततो वायुं विरेचयेत् ।। (३।३८)

महावेध—'अयं तु सर्वनाडीनामूर्ध्वंगतिनिरोधकः ।
अयं खलुमहाबन्धो महासिद्धि प्रदायकः ॥' (२।२३)

कुंभक करके (पूरक द्वारा अन्दर वायु भरकर) कण्ठ मुद्रा (जालन्धर बन्ध) लगाकर वायु ऊर्ध्वाकर्षण आदि क्रियाओं वाले इस **'महावेध'** से वायु सुषुम्णा में पहुँच जाती है—

'**पुटद्वय**मतिक्रम्यवायुः स्फुरति मध्यगः' (३।२७)

(पुटद्वय का त्याग करके = इड़ापिङ्गला में वायु-प्रवाह बन्द करके)

'पुटयोर्द्वयमिडापिङ्गलयोर्युग्ममतिक्रम्योल्लंघ्य मध्ये सुषुम्नामध्ये गच्छतीति मध्यगो वायुः स्फुरति —('ज्योत्स्ना')

'पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरतिमध्यगः ॥' (३।२७)

'महामुद्रा'—कुण्डलिनी का जागरण—

(क) **महाबन्ध =**

अयं तु सर्वनाडीनामूर्ध्वगतिनिरोधकः ।
अयं खलु **महाबन्धो** महासिद्धि प्रदायकः ॥ (३।२३)

(ख) **'महामुद्रा'** = जालन्धर बन्ध + मूलबन्ध

'कण्ठे बन्धं समरोप्य धारयेद्वायु मूर्ध्वतः ।

परिणाम (फल)—

(१) यथा दण्डहतः सर्पोदण्डकारः भवेत् ।
वतदा सा मरणावस्था जायते द्विपुटाश्रया ॥[1]

(द्वे पुटे इडापिङ्गले आश्रयो यस्याः सा भरणावस्था जायते। कुण्डलीबोधेसति सुषुम्नायां प्रविष्टे प्राणे द्वयोः प्राणवियोगात् ॥)

(क) **'महामुद्रा'**—कुण्डलिनी-जागरण।

(ख) **'महावेध**—इड़ा-पिङ्गला में वायु-प्रवाह बन्द होकर सुषुम्णा में वायु संचार॥

सोमसूर्याग्नि सम्बंधो जायते चामृताय च ।
मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेचयेत् ॥ (३।२८)

(ग) **'उड्डीयान बन्ध'**—(हठ० ३।५५)

'बद्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः ॥'

---

[1] हठयोग प्रदीपिका (३।१२)

'ब्रह्मद्वार' (सुषुम्णा के मुख) को अपने मुख से बन्द करके सोती हुई) कुण्डलिनी को जगाने के लिए मुद्राभ्यास आवश्यक है—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम् ।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत् ॥
—(हठयोग० ३।५)

(मुख्यतः १० मुद्रायें हैं—महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबन्ध, जालन्धर, विपरीतकरणी, वज्रोली एवं शक्तिचालन।)

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली ।
तदा **सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ॥** —(हठयोग ३।२)
प्राणस्य शून्यपदवी (सुषुम्ना) तथा राजपथायते ।
तदा **चित्तं निरालम्ब** तदा **कालस्य वञ्चनम् ॥**—(३।३)

(घ) **'मूलबन्ध'**—

(१) अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते ॥ (३।६१)

(२) अधोगति**मपानं** वा ऊर्ध्वगं कुरुते बलात् ।
आकुञ्चनेन तं प्राहुर्भूतबन्धं हि योगिनः ॥ (३।६२)

(३) प्राणपनौ नाद बिन्दू मूलबन्धेन चैकताम् । (३।६४)

(४) अपान प्राणायोरैक्यं..................)३।६५)

(५) अपान ऊर्ध्वगे जाते प्रयाते वह्निमण्डलम् ।
तदाऽनलशिखा दीर्घा जायते वायुनाऽऽहता ॥ (३।६६))

(६) ततो यातो वह्नयपानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम् ।
तेनात्यन्त प्रदीपप्तस्तु ज्वलनो देहजस्तथा ॥

(७) तेन कुण्डलिनी सुप्ता सन्तप्ता सम्प्रबुध्यते ।
दण्डाहता भुजङ्गीव निश्वस्य ऋतुतां व्रजेत् ॥

(८) बिलं प्रविष्टेव ततो ब्रह्मनाडयन्तरं व्रजेत् ।
तस्मान्नित्यः मूलबन्धः कर्तव्यो योगिभिः सदा ॥ (३।६९)

(९) **'जालन्धर बन्ध'**—

यत्किञ्चित् स्रवते चन्द्रादमृतं दिव्यरूपिणाः ।
तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः ॥ (३।७७)

(१०) 'विपरीतकरणी—

'ऊर्ध्वनाभेरधस्तालोरूर्ध्वं भानुरधः शशी'। (३।६९)

आसन—

वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम्।
कुर्यादिनन्तरं भ्रस्त्रां कुण्डली माशु बोधयेत् ॥
भानोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः।
मृत्युवक्त्रगतस्यापि तस्यमृत्युभयं कुतः ॥ (३।११६)
मुहूर्तद्वय पर्यन्त निर्भयं चालनादसौ।
ऊर्ध्वद्वयपर्यन्त किंचित्सुषुम्नायां समुद्गता ॥
तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्नायांमुखं ध्रुवम्।
जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः ॥
कुण्डलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ॥ (३।१२२)
कुम्भाकात् कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥ (२।७५)

श्लोक क्रमांक ५– * भगवती का चन्द्रकलात्मक 'परकला' का स्वरूप' *

"पृथिव्यापस्तेजः पवनगगने तत्प्रकृतयः।
स्थितास्तन्मात्रास्ता विषयदशकं मानसमिति।
ततो मया विद्या तदनु च महेशः शिव इति।
परं तत्त्वातीतं मिलित वपुरिन्दोः पर कला ॥५॥"

[(हे भगवती) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तथा उनकी प्रकृति रूप तन्मात्राओं (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध), दस इन्द्रियाँ, मनस्तत्त्व, माया तत्त्व, विद्या तत्त्व, महेश, एवं शिव—इन सभी से परे स्थित तत्त्वातीत सत्ता में विलीन होकर तू चन्द्रमा की परकला के रूप में शेष रह जाती है।॥५॥]

सरोजनि व्याख्या—मूलाधार चक्र में अनादिकाल से सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति जब जागृत होती है तब मूलाधार में न रहकर सभी चक्रों का वेधन करती हुई अपने परस्वरूप में लयीभूत हो जाती है।

उसकी यह यात्रा मूलाधारचक्र से प्रारम्भ होकर 'सहस्रार' तक चलती है। शक्ति की सुषुप्ति तो **'मूलाधार चक्र'** में है; किन्तु उसकी महाजागृति **'सहस्रार'** में है।

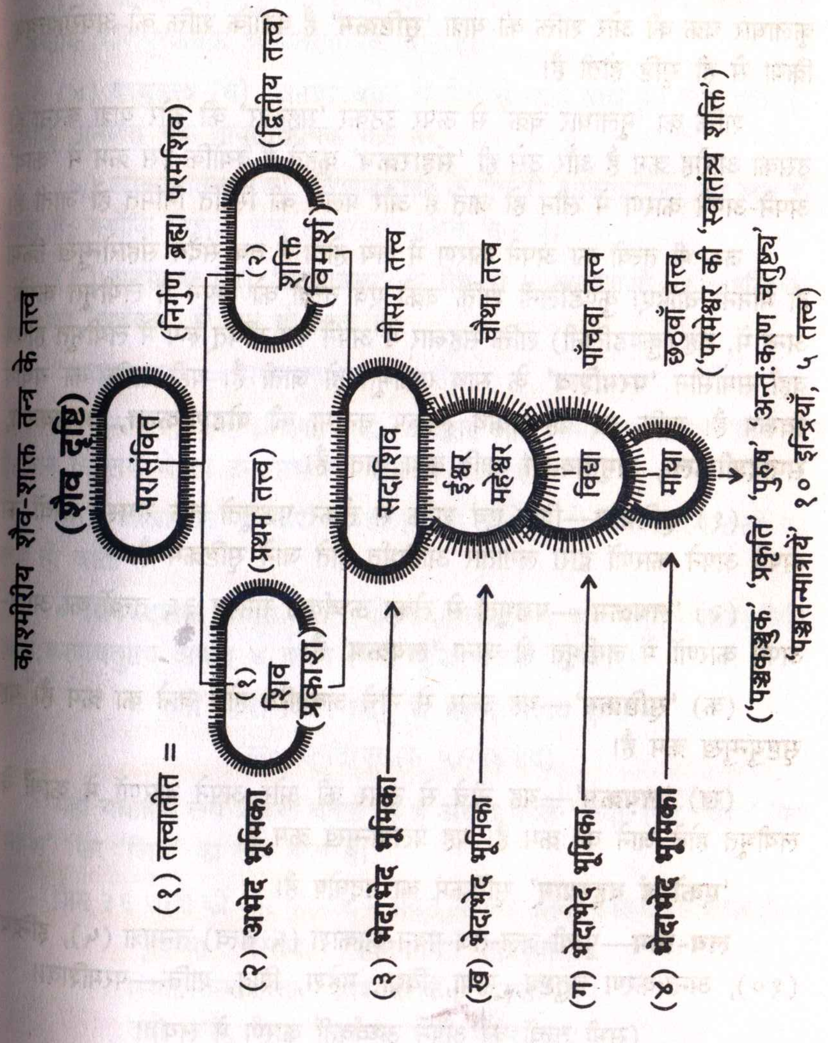
काश्मीरीय शैव-शाक्त तन्त्र के तत्त्व
(शैव दृष्टि)
(१) तत्त्वातीत =
परासंवित
(निर्गुण ब्रह्म। परमशिव)
(२) अभेद भूमिका
(१) शिव (प्रकाश)
(प्रथम तत्त्व)
(२) शक्ति (विमर्श)
(द्वितीय तत्त्व)
(३) भेदाभेद भूमिका
सदाशिव
तीसरा तत्त्व
(ख) भेदाभेद भूमिका
ईश्वर महेश्वर
चौथा तत्त्व
(ग) भेदाभेद भूमिका
विद्या
पाँचवा तत्त्व
(४) भेदाभेद भूमिका
माया
छठवाँ तत्त्व
('परमेश्वर की 'स्वातंत्र्य शक्ति')
('पञ्चकञ्चुक' 'प्रकृति' 'पुरुष' 'अन्तःकरण चतुष्टय'
'पञ्चतन्मात्रायें' १० इन्द्रियाँ, ५ तत्त्व)

‘शक्ति’ के तीन प्रधान कार्य हैं—

(१) **‘सृष्टि’**—इसका सम्बंध ‘सृष्टिक्रम’ से है। अवरोहक्रम।

(२) ‘पालन’ —

(३) **‘संहार’**—इसका सम्बन्ध ‘लयक्रम’ से है। आरोह क्रम। ‘सहस्रार’ से कूलाधार चक्र की ओर शक्ति की यात्रा **‘सृष्टिक्रम’** है क्योंकि शक्ति की अवरोहात्मक क्रिया से ही सृष्टि होती है।

शक्ति का ‘मूलाधार चक्र’ से ऊपर उठकर ‘सहस्रार’ की ओर यात्रा करना ही उसका आरोह क्रम है और उसे ही **‘संहारक्रम’** कहते हैं क्योंकि इस क्रम में ‘कार्य’ अपने-अपने कारण में लीन हो जाते हैं और प्रलय की स्थिति निर्मित हो जाती है।

जब भी तत्त्वों का अपने कारण में लय होता है तब सदैव संहारोन्मुख क्रिया ही माननी चाहिए। कुण्डलिनी शक्ति चक्रों एवं तत्त्वों को अपने में लयीभूत करके, अन्त में, वह (कुण्डलिनी) शक्ति सहस्रार में अपने परा संवित् रूप में लयीभूत होकर वहाँ समासीन **‘परमशिव’** के साथ एकीभूत हो जाती है। यही शक्ति का यथार्थ स्वरूप है। शक्ति का यह यथार्थ स्वरूप चन्द्रमा की **षोडशीकला**, **अमाकला**, **सप्तदशीकला**, **अमृताकला** आदि कहा जाता है।

(१) **सृष्टिक्रम**—शिव एवं शक्ति से लेकर पञ्चभूतों तक समस्त तत्त्वों का अपने अपने कारणों द्वारा लगातार आविर्भूत होते जाने सृष्टिक्रम है।

(२) **‘लयक्रम’**—पञ्चभूतों से लेकर ऊर्ध्ववर्ती समस्त ३६ तत्त्वों का अपने-अपने कारणों में लयीभूत हो जाना **‘लयक्रम’** है।

(क) **‘सृष्टिक्रम’**—यह ऊपर से नीचे अवतरित होते जाने का क्रम है। यह सृष्टयुन्मुख क्रम है।

(ख) **‘लयक्रम’**—यह नीचे से ऊपर की ओर अपने कारणों में कार्यों के लयीभूत होते जाने का क्रम है। यह प्रलयोन्मुख क्रम है।

‘एकोऽहं बहुस्याम्’ सृष्टिक्रम का उद्घोष है।

लय-क्रम—पृथ्वी-जल-तेज-पवन-आकाश (५ तत्त्व) तन्मात्रा (५), इन्द्रियाँ (१०), अन्तःकरण चतुष्ट्य, माया, विद्या, महेश, शिव, शक्ति—परमशिव॥

(सभी तत्त्वों का अपने ऊर्ध्ववर्ती कारण में लय)॥

तत्त्वों के लय का कारण—जब कुण्डलिनी शक्ति चक्रों का वेध करती है तब तत्त्वों का लय होता है।

(१) **पृथ्वीतत्त्व** [क] **‘मूलाधार चक्र’** तत्त्वों का लय के वेध से पृथ्वी तत्त्व का लय होता है क्योंकि मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्त्वात्मक है।

(२) **जलतत्त्व** [ख] **‘स्वाधिष्ठानचक्र’** के वेध से **जल तत्त्व का लय** होता है क्योंकि स्वाधिष्ठान चक्र जलतत्त्वात्मक है।

(३) **अग्नितत्त्व** [ग] **‘मणिपूरक चक्र’** के वेध से **अग्नितत्त्व का लय** होता है क्योंकि मणिपूरकचक्र अग्नितत्त्वात्मक चक्र है।

(४) **वायुतत्त्व** [घ] **‘अनाहतचक्र’** के वेध से **वायु तत्त्व का लय** होता है; क्योंकि अनाहत चक्र वायुतत्त्वात्मक चक्र है।

(५) **आकाशतत्त्व** [ङ] **‘विशुद्धचक्र’** के वेध से **आकाशतत्त्व का लय** हो जाता है; क्योंकि विशुद्ध चक्र आकाशतत्त्वात्मक चक्र है।

(६) **मनस्तत्व** [च] **‘आज्ञाचक्र’** के वेध से ५ तन्मात्राओं, १० इन्द्रियों, बुद्धि का ‘अहंकार’ में लय हो जाता है।

‘आज्ञाचक्र’ = मनस्तत्त्व का चक्र है।

५ तन्मात्राएँ, १० इन्द्रियाँ, बुद्ध, अहङ्कार आदि सभी का सम्बंध ‘मन’ से है। मन के लय से तो उन सभी का लय हो जाता है।

(७) **‘आज्ञाचक्र’** के ऊपर कुण्डलिनी के आहोरण से शेष समस्त तत्त्वों का लय हो जाता है।

* **विषयदशकं मानसमिति’** (गौड़पाद/श्लोक/ ५ सु० स्तुति) **मानसमिति** अन्तःकरणचतुष्ट्य अर्थात् ४ करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)

*** ततो माया विद्या तदनु च महेशः शिव इतः ***

(सु० स्तुति/श्लोक ५/गौड़पाद)

यहाँ यथाक्रम लय प्रक्रिया बताई गई है अर्थात् पहले ‘माया’ फिर ‘विद्या’ फिर ‘महेश’ फिर ‘शिव’ का लय होता है।

जिन ३६ तत्त्वों की ओर गौड़पाद ने संकेत किया है उनका स्वरूप इस प्रकार है—

‘पृथिव्या पस्तेजः पवनगगने तत्प्रकृतयः ।
स्थितास्तन्मात्रास्ता विषयदशकं मानसमिति ।
ततो माया, विद्या तदनु च महेशः शिवः इतः ।
परं तत्त्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः परकला ॥’ (५)

—सुभगोदय स्तुति

समस्त जगत प्रमाता-प्रमेय रूप है।

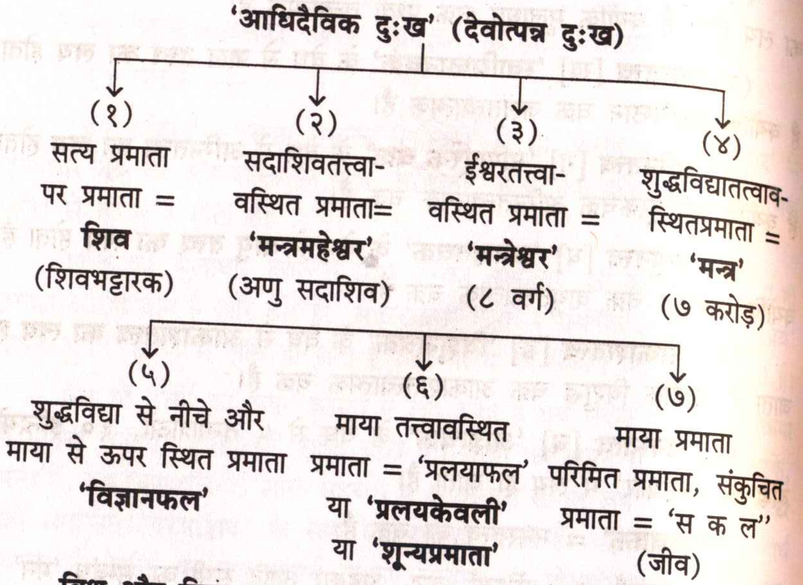
'आधिदैविक दुःख' (देवोत्पन्न दुःख)
(१) सत्य प्रमाता पर प्रमाता = शिव (शिवभट्टारक)
(२) सदाशिवतत्त्वावस्थित प्रमाता= 'मन्त्रमहेश्वर' (अणु सदाशिव)
(३) ईश्वरतत्त्वावस्थित प्रमाता = 'मन्त्रेश्वर' (८ वर्ग)
(४) शुद्धविद्यातत्वावस्थितप्रमाता = 'मन्त्र' (७ करोड़)
(५) शुद्धविद्या से नीचे और माया से ऊपर स्थित प्रमाता 'विज्ञानफल'
(६) माया तत्त्वावस्थित प्रमाता = 'प्रलयाफल' या 'प्रलयकेवली' या 'शून्यप्रमाता'
(७) माया प्रमाता परिमित प्रमाता, संकुचित प्रमाता = 'स क ल'' (जीव)

विश्व और शिव—

(१) श्री परमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं **'विश्वं'** (श्री परमशिव अपने स्वरूप से अभिन्न रूप में विश्व को धारण किए हुए हैं।) * शिव और विश्व अभिन्न हैं। *

(२) 'एवं भगवान विश्वशरीरः' (भगवान विश्व रूप शरीर वाले हैं।) 'विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव' (प्रत्यभिज्ञा हृदयम् : आचार्य क्षेमराज)॥

(३) 'न सावस्था न यः शिवः' (स्पन्दकारिका)

(४) 'षट्त्रिंशदात्मकं विश्वं''

३६ तत्त्वों की समष्टि की आख्या ही विश्व है।

(१) 'परमशिव' = शुद्ध अद्वैत की तत्वातीतावस्था ही परम शिव है। यह न तो **'शिव'** ही कहा जा सकता है और न तो **'शक्ति'** ही। न इसे **'विश्वोतीर्ण'** ही कह सकते हैं और न तो **'विश्वमय'** ही।

विज्ञानभैरव में प्रतिपादित दृष्टि—विज्ञान भैरव में ऐसे परतम तत्त्व के विषय में कहा गया है कि—

'तत्त्वतो न नवात्मासौ शब्दराशिर्न भैरवः।
न चासौ त्रिशिरा देवो न च शक्तित्रयात्मकः।

दिक्कालफलनोन्मुक्ता देशोद्देशा विशेषिणी।
व्यपदेष्टुमशक्यासावकथ्या परमार्थतः।
अन्तःस्वानुभवानन्दा विकल्पोन्मुक्तं गोचरा।
यावस्था मरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः॥'

—विज्ञान भैरव (का० ११-१२)

यह सामरस्य की एक ऐसी परमस्थिति है जिसमें 'शक्ति' एवं 'शक्तिमान' शब्दों की कल्पना नहीं की जा सकती। यह अकथ्य है। यह 'अन्तःस्वानन्दगोचर' मात्र है।

जिस प्रकार अनन्त पत्रों, पुष्पों, शाखाओं वाला वटवृक्ष अपनी बीजावस्था में स्थित रहने पर अपने बीज में पूर्णासामरस्य भाव से सम्पूर्ण वृक्ष को अवस्थित रखता है उसी प्रकार छत्तीस तत्त्व भी समरसता के साथ 'परमशिव' में अन्तर्निहित रहते हैं।

(१) **शिवतत्त्व—**

'यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाऽखिलमिदं जगत् स्रष्टुं।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः॥'[१]

(२) **सदाशिवतत्त्व—**

स्वेच्छाशक्त्युद्रीर्ण जगदात्माहन्तया समाच्छाद्य।
निवसन् स एव निखिलानुग्रहनिरतः **सदाशिवो**ऽभिहितः॥

(३) **ईश्वर तत्त्व—**

'विश्वंपश्चात्पश्चन्निदन्तया निखिल**भीश्वरो** जातः॥'

(४) **शुद्धविद्या तत्त्व—**

'सा भवति शुद्धविद्या येदन्ताहन्तयोरभेदमतिः॥'

(५) **माया तत्त्व—**

'माया विभेदबुद्धिर्निजांशजातेषुनिखिलजीवेषु।
नित्यं तस्य निरङ्कुशविभवं वेलैव वारिधिं रुन्धे॥'

(६) **कला तत्त्व—**

'तत्सर्वकर्तृता सा सङ्कुचिता कतिपयार्थमात्रपरा।
किञ्चित् कर्तारममुं फलयन्ती कीर्त्यते **कला** नाम॥'

(७) **विद्या तत्त्व—**

'सर्वज्ञताऽस्य शक्तिः परिमिततनुरल्पवेद्यमात्रपरा।
ज्ञानमुत्पादयन्ती **विद्येति** निगद्यते बुधैराद्यैः॥'

---

[१] षट्त्रिंशतत्वसन्दोह

(८) **राग तत्त्व**—

'नित्यपरिपूर्णतृप्तिः शक्तिस्तस्यैव परिमिता तु सती।
भोगेषु रञ्जयन्ती सततममुं **रागतत्त्वतां** याता॥'

(९) **काल तत्त्व**—

'सा नित्यताऽस्य शक्तिर्निकृष्य निधनोदयप्रदानेन।
नियति परिच्छेदकरी क्लृप्तास्यात् **कालतत्त्वरूपेण**॥'

(१०) **नियति तत्त्व**—

'याऽस्य स्वतंत्रताख्या शक्तिः संकोचशालिनी सैव।
कृत्याकृत्येष्ववशं नियतममुं नियमयन्त्यभून्नियतिः॥'

(११) **प्रकृति तत्त्व**—

'इच्छादित्रिसमष्टिः शक्तिः शान्ताऽस्य सङ्कुचद्रूपा।
सङ्कलितेच्छाद्यात्मक सत्वादिक साम्यरूपिणी तु सती।
बुद्ध्यादि सामरस्य स्वरूपचित्तात्मिका मता **प्रकृतिः**।'

इसी प्रकार अन्य तत्त्वों का भी अपना स्वतंत्र स्वरूप है किन्तु ये सभी मायापरवर्ती तत्त्व मायान्तर्गत ही हैं।[१]

आचार्य गौड़पाद ने जो लयक्रम पर प्रकाश डाला है तदनुसार—

(१) **'मायातत्त्व'** शुद्ध विद्या में लयीभूत हो जाता है।

(२) **'शुद्धविद्यातत्त्व'** ईश्वरतत्त्व में लय हो जाता है।

(३) **'ईश्वरतत्त्व'** सदाशिव तत्त्व में लय हो जाता है।

(४) **'सदाशिवतत्त्व'** शिवतत्त्व में लय हो जाता है।

आचार्य गौड़पाद का 'महेश' शब्द—[२]

(क) शिव एवं (ख) शक्ति दोनों का बोधक है। इन समस्त तत्त्वों का अतिक्रमण करके वह परा शक्ति अपने **'परासंवित्'** रूप में मिलकर चन्द्रमा की **'परकला' (सप्तदशी अमृता कला) के रूप** में स्थित रहती है।

'सहस्रार' (सहस्रदलपद्म = वियच्चक्र) ही परमशिव का स्थान है—

'मूलाधारादि षट् चक्रं **शक्तिस्थानमुदीरितम्**।
कण्ठादुपरि मूर्धान्तं **शाम्भवंस्थान** मुच्यते॥'

—वराहोपनिषद्

---

१. षट्त्रिंशतत्त्व सन्दोह

२. सुभगोदय स्तुति

वराहोपनिषद् में यह भी कहा गया है कि—

(१) ॐकार से श्रीबीज तक श्रीविद्या के १७ अक्षर हैं अर्थात् सप्तदशीकला **'परकला'** है।[१]

आचार्य गौड़पाद ने **'चन्द्रमा की परकला'** ('मिलितवपुरिन्दोः परकला'') वाक्यांश प्रयुक्त करके **'सप्तदशीकला'** की ओर संकेत किया है।

श्लोक क्र० ६ * श्री भगवती कुण्डलिनी की विविध अवस्थायें *

कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिद परा,
कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकाल भुजगी।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाश कमले
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्कार रसिका॥६॥

[जो **'कुमारी'** (कुमारी कुण्डलिनी) के रूप में मन्द-मन्द स्वर में ध्वनि करती है और (जो) बाद में अनुपमेया **'युवती'** की भाँति कुल (पितृगृह) का त्याग करके (प्रियजन के वियोग में) रोती है (वही) महाकालस्वरूपा, महासर्पिणी महाकुण्डलिनी शक्ति स्फुटित हो उठती है (जागृत हो उठती है)। उसके बाद वह दहराकाश पद्म में पातिव्रत धर्म का निष्पादन (निर्वहन) करती है। (उसी दहराकाश में) सुखपूर्वक समीसीन एक नवयुवती के रूप में तुम (भगवती) भगवान शिव के सीत्कार का आनन्द लेती हो॥६॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—यहाँ आचार्य गौड़पाद ने भगवती कुण्डलिनी की तीन अवस्थाओं पर प्रकाश डाला है—

(१) भगवती कुण्डलिनी की **कौमार्यावस्था**।

(२) भगवती कुण्डलिनी की **युवावस्था** एवं

(३) उनकी **पतिव्रतावस्था**।

(क) **'कुमारी** यन्मन्द्रं' = कुमारी-अवस्था।

(ख) 'ततो **योषिद्** परा' = युवती-अवस्था।

(ग) ततः **पातिव्रत्यं** भजति = पतिव्रता-अवस्था।

* तैत्तिरीय आरण्यक में प्रतिपादित समतुल्य दृष्टि *

तैत्तिरीय आरण्यक के प्रथम प्रपाठक के सत्ताईसवें अनुवाक् में एक ऋचा आई है—

---

१. प्रणावेन समुत्थाय श्रीबीजेन निवर्तयेत्।
स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेत् अमृतप्लावनं ततः॥ —वराहोपनिषद्

'यत्कुमारी मन्द्रयते **यद्योषित्पतिव्रता।**
अरिष्ट यत्किंच क्रियते, अग्निस्तदुनवेधति ॥'

कुण्डलिनी की विभिन्न अवस्थायें

↓ (१)
(मूलाधार चक्र में)
* कुमारी अवस्था *

↓ (२)
(अनाहत चक्र में)
जाग्रत कुण्डलिनी का
मूलाधार से उठकर अनाहत तक जाने } 'युवती अवस्था'

(१)
मूलाधार में सुषुप्त
कुण्डलिनी सुप्तोत्थित
कुमारी अवस्था

(२)
एवं अनाहत चक्र में
स्थित होने की अवस्था
= युवती की अवस्था

(३)
सहस्रदल में स्थिति
की अवस्था =
पतिव्रता पत्नी की अवस्था
(शिव से सहस्रार में
मिलने पर कुण्डलिनी
की अवस्था)

कुण्डलिनी की यात्रा में उसकी बदलती तीन अवस्थायें—

प्रथमावस्था (१) **सुषुप्ति अवस्था** = } 'कुमारी' कुण्डलिनी की अवस्था
आधार कमल में स्थित कुण्डलिनी
की कुमारी अवस्था।

द्वितीयावस्था (२) **जागृति** (कुण्डल्योत्थापन
या शक्ति जागरण की अवस्था } अनाहत चक्र में
'युवती की अवस्था'

तृतीयावस्था (३) कुण्डलिनी के जागृत होकर
ऊर्ध्वारोहरण करने एवं सहस्रार में जाने तथा
शिव से सामरस्य प्राप्त करने की अवस्था } **'पतिव्रता'** की
अवस्था।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—

आचार्य लक्ष्मीधर—'यत्कुमारी-----------------अनुवेधति' (तै० आ०) नामक ऋचा की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

(१) "कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते।"

(२) 'यद्यस्मिन् चक्रे कुमारी कुमारावस्थामापन्ना प्रथमं
प्रथमं **सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति ।।'**

भगवती कुण्डलिनी अक्षरात्मिकाद्ध शब्दात्मिका, नादात्मा, वर्णमालास्वरूपा एवं शब्दब्राह्म है। वही 'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं वैखरी भी है। समस्त ध्वनियाँ, समस्त वर्ण, समस्त अक्षर भगवती के ही अपने रूप हैं।

'वर्णकुण्डलिनी' वर्णात्मिका, नादात्मा, शब्दब्रह्मस्वरूपा एवं वर्णशरीरी कुण्डलिनी

* वर्णस्वरूप भगवती कुण्डलिनी *

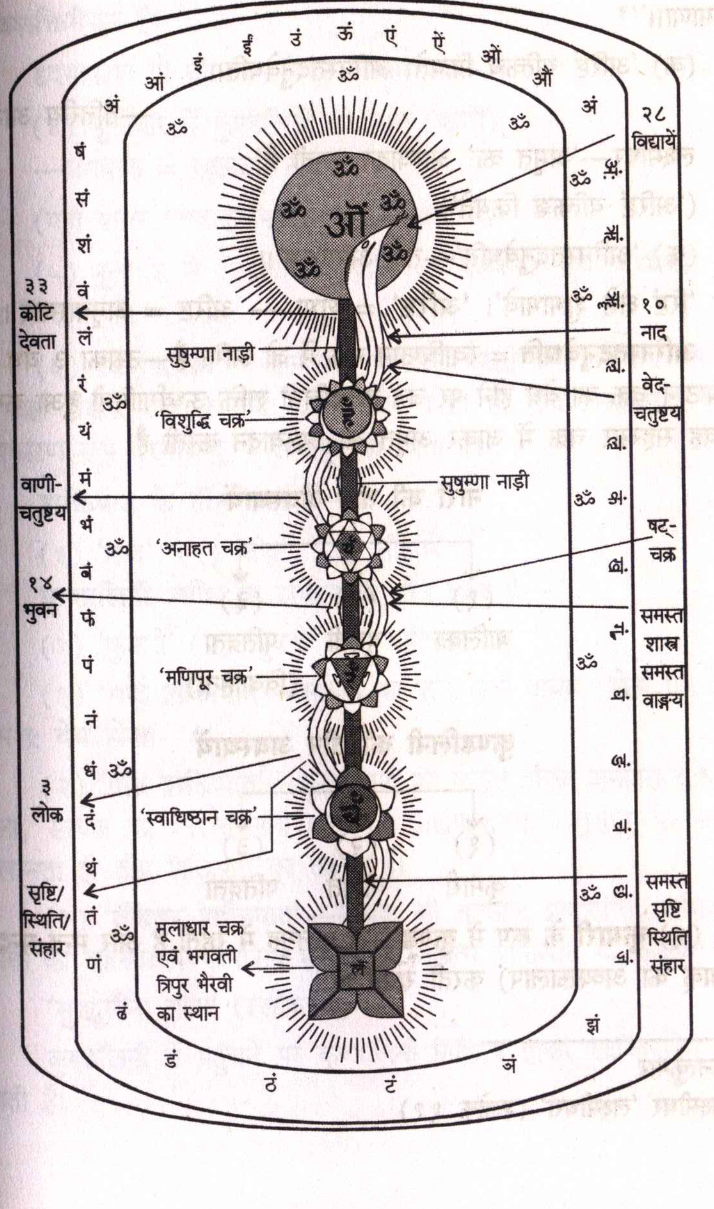
अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं
ॐ
ओं
२८ विद्यायें
३३ कोटि देवता
१० नाद
सुषुम्णा नाड़ी
वेद-चतुष्टय
'विशुद्धि चक्र'
सुषुम्णा नाड़ी
वाणी-चतुष्टय
'अनाहत चक्र'
षट्-चक्र
१४ भुवन
समस्त शास्त्र समस्त वाङ्मय
'मणिपूर चक्र'
३ लोक
'स्वाधिष्ठान चक्र'
सृष्टि/स्थिति/संहार
समस्त सृष्टि स्थिति संहार
मूलाधार चक्र एवं भगवती त्रिपुर भैरवी का स्थान
षं सं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं
डं ठं टं ञं झं

(३) "सर्वो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वर करोति, तद्वदित्यर्थः।।'

(४) "**यद्योषित्** यस्मिन् चक्रे कुलयोषित् विष्णुग्रंथि पयन्त गत्वा रातीति शेषः।'

'कुलयोषित् कुलंत्यक्त्वा रातिविष्णोः प्रभेदने ।।'[१]

(५) "यत् यस्मिन् चक्र **पतिव्रता** पत्या सदाशिवेन सार्धं **सहस्रदलकमले** विहरमाणा।।"[२]

(क) 'अरिष्टं यत्किच क्रियते। अग्निस्तदनुवेधति।।'

—तैत्तिरीय आरण्यक

लक्ष्मीधर—'अमृत का' आस्वादन करती है'

('अरिष्टं यत्किश्च क्रियते')

(क) 'अग्निस्तदनुवेधति'—तै० आरण्यक ।।

'रिष्टं क्षेमे शुभाभावे'। **'अरिष्ट'** = शुभा — अरिष्ट = अमृतास्वाद ।

अग्निस्तदनुवेधति = स्वाधिष्ठान चक्र में जो अग्नि है—उसका ३ वेध होना। स्वाधिष्ठान् चक्र का वेध होने पर जब कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामिनी हुआ करती है तब वह सहस्रार चक्र में जाकर अमृत का आस्वादन करती है।

नारी की तीन अवस्थायें

(१) बालिका
(२) युवती
(३) पतिव्रता (विवाहिता)

कुण्डलिनी की तीन अवस्थायें

(१) कुमारी
(२) योषित
(३) पतिव्रता

(१) **कुमारी** के रूप में **कुण्डलिनी** कुलगृह में रहती है और मन्द-मन्द स्वर (परावाक् का अव्यक्तालाप) करती रहती है।

---

१. सनत्कुमार

२. लक्ष्मीधर 'लक्ष्मीधरा' (श्लोक ११)

(२) **युवती** के रूप में **कुण्डलिनी** मूलाधार का त्याग करके सहस्रारोन्मुख यात्रा करती है। मातृगृह का त्याग करके रोती है। **हृत्कमल** में आकर पतिपरायणा हो जाती है और शिव-सम्मिलन के आनन्द में निमग्न हो जाती है।

(३) **'सहस्रार'** में पहुँचकर कुण्डलिनी पतिगृह में पहुँचकर पूर्णतः पतिव्रता (परमशिव में लीन) हो जाती है। शक्ति की परमशिव में यह संलीनता ही **शिवशक्तिमैथुन** है।

हृदयाकाश तो उसके मार्ग का विश्राम स्थान भाग है।

(४) मूलाधार में कुण्डलिनी की भाषा (वाणी)

—परावाक् = सूक्ष्मतम नाद।।

(यहाँ शक्ति परावाक्रूपा के रूप में रहती है।)

(५) मूलाधार से अनाहत तक शक्ति = **'पश्यन्ती'** एवं **'मध्यमा'** वाक् के रूप में रहती है।

(६) **'विशुद्धचक्र'** में आने पर कुण्डलिनी वैखरी वाणी का रूप धारण करती है। यहाँ वैखरी रूप में नाद का विस्फोट होता है। नाद **'सहस्रार'** में जाकर महाकारण रूप **परमबिन्दु** में लयीभूत हो जाता है।

शक्तिपात के तीन स्वर हैं—

(१) 'मन्द', (२) 'तीव्र', (३) 'तीव्रतर'।

कुण्डलिनी शक्ति के उत्थान के तीन स्वर हैं—

(१) 'कुमारी' (२) 'युवती' (३) 'पतिव्रता'

(१) **'मन्द शक्तिपात'**—साधक का शनैः शनै अग्रसर होना एवं चक्रों का क्रमशः वेध होना।

(२) **'तीव्र शक्तिपात'**—कुण्डलिनी का जागृत होकर अनाहत चक्र का वेध होना, साधक का निरस्तसंशय होना एवं ब्रह्मप्राप्तयर्थ आतुरतापूर्वक साधक की संलग्नता ही तीव्र शक्तिपात का लक्षण है।

(३) **'तीव्रतर शक्तिपात'**—साधक की तत्काल ज्ञानप्राप्ति, शांभवी दीक्षा, शक्ति का सहस्रारस्य परमशिव में लय ही तीव्रतर शक्तिपांत का लक्षण है।

'सुखासीना योषा' (श्लोक ६)—

कुण्डलिनी में पहुँचने पर कुण्डलिनी निष्क्रिय होकर शान्तिपूर्वक स्थित हो जाती है।

अर्थ—(१) पत्नी पतिगृह में जाने पर सुखपूर्वक वहीं स्थिर हो जाती है। उसके सारे मनोद्वेग, द्वन्द्व, समीहा, कल्पनायें शान्त हो जाती हैं।

(२) कुण्डलिनी के 'सहस्रार' में पहुँचने पर उसकी दिदृक्षा, मिलन औत्सुक्य, विरहताप एवं उद्विग्नता सभी मिट जाती हैं।

(३) यहाँ की स्थिति में साधक का मन निर्विकल्प समाधि में लीन हो जाता है। और समुद्रतुल्य स्थैर्य एवं शान्ति आ जाती है।

'अग्निस्तदनुवेधति' (तैत्तिरीय आ०)

स्वाधिष्ठान चक्र का वेध होने पर जब कुण्डलिनी ऊर्ध्वपथ में आगे बढ़ती है तब 'सहस्रार' में अमृत का आस्वादन करती है—

'अनुवेधति' = सहायता करती है। लक्ष्मीधर कहते हैं—'वायुना अग्निं प्रज्वाल्य अग्निशिखानुविद्ध विलीन चन्द्रमण्डलगलत्पीयूषधारानुभवे पञ्चविंश तितत्त्वातीता परमेश्वरी इति ज्ञातुं सुशुकम् इति उपदेशः।।[1]

आचार्य शंकर की दृष्टि—आचार्य शंकर ने 'प्रपञ्चसार तन्त्र' एवं 'सौन्दर्य लहरी' में अपने परम गुरु गौड़पादाचार्य की दृष्टि को ही स्वीकार किया है।

आचार्य शंकर कहते हैं—

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः।
पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियङ्मध्यमाख्यः।
वक्त्रे वैखर्यथ **रुरुदिषोरस्य** जन्तोः सुषुम्नाः।
बद्धस्तस्माद् भवति पवन प्रेरितो वर्णसंघः ।।'[2]

तुलना कीजिए—

(१) **गौड़पादाचार्य** कहते हैं—

कुल त्यक्त्वा **रौति**
स्फुटति च महाकाल भजगी।।६।।

(२) **शङ्कराचार्य** कहते हैं—

'वक्त्रे वैखर्यथ **रुरुदिषोरस्य** जन्तोः सुषुम्ना।'

(३) **आचार्य पद्मपादः** ('प्रपञ्चसार विवरण' में) कहते हैं—

'जातेन शिशुना रोदन व्याजेन एवं किमप्युच्यते चेत् कथं वर्णानभिव्यक्तिरिति।।'[3]

---

[1] लक्ष्मीधरा (श्लोक ११)

[2] प्रपञ्चसारतन्त्र (२।४३)

[3] प्रपञ्चसार विवरण (द्वि० पटल, श्लोक २।४४)

---

(४) प्रयोगक्रमदीपिका

'रोदन व्याजेनेति। स्वावस्थाकं द्योतकं शब्दरूपमेतदिति स्थितौ रोदनध्वनितदुपाधि मात्रमेव स्यादिति भावः।।

*** श्लोक क्रमांक ७ ***

(वर्ण्य विषय—) * **कुलगृह** [भगवती का राजसौघ] *

'त्रिकोणा' ते **कौलाः** कुलगृहमिति प्राहुपरे।
'चतुष्कोणा' प्राहुः **समयिन** इमे **बैन्दवमिति** ।।
सुधासिन्ध्यौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो।
रगम्ये रश्मीनां समयरहिते त्वं विहरसे ।।७।।[1]

[**अर्थ**—हे भगवती ! दूसरे (अर्थात् कौलाचार सम्प्रदाय वाले) **'त्रिकोण'** को ही तेरा **'कुलगृह'** कहते हैं और ये हम लोग (अर्थात् **'समयाचार'** सम्प्रदाय वाले) **'चतुष्कोण'** को—जो कि **'बैन्दवस्थान'** है, तेरा कुलगृह कहते हैं (अर्थात् हम चतुष्कोण को ही तेरा कुलगृह मानते हैं। उस 'सुधासिन्धु' (अर्थात् तेरे कुलगृह) में, जो कि देवमणियों से निर्मित है और जिसमें सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणें प्रवेश नहीं कर सकतीं, तू 'समय' (परमशिव) के साथ विहार किया करती है।।७।।]

सरोजिनी व्याख्या—'समय' = शिव।

भगवती के 'कुलगृह' के विषय में विभिन्न साम्प्रदायिक दृष्टियाँ

(१) कौलसम्प्रदाय
* **'त्रिकोण'** *
(कौलमत)
(कुलगृह)

(२) समयाचारसम्प्रदाय
* **'चतुष्कोण'** * (बैन्दवगृह)
(समयमत)
'बैन्दवगृह' = 'सुधासिन्धु'
(कुलागृह)

आचार्य शंकर भी परमगुरु 'सुधासिन्धु', 'मणिगृह' का वर्णन करते हुए कहते हैं—

'**सुधासिन्ध्योर्मध्ये** सुरविटपिवाटी परिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।

---

[1] **पाठान्तर** 'सुधासिन्धोस्तस्मिन्। विहरसि।।

'अगम्ये रश्मीनां' क्यों कहा? उपनिषदों में कहा गया है—न तत्र सूर्योमति।

शिवाकारे मञ्चे परमशिव पर्यङ्क निलयां,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥'[१]

कौलमतानुसार 'श्रीचक्र' में ९ त्रिकोण होते हैं जो योनियाँ कहलाती हैं। इन ९ त्रिकोणों में से ५ शक्ति त्रिकोण नीचे की ओर मुख वाले होते हैं तथा ४ ऊर्ध्वमुख त्रिकोण शिव त्रिकोण कहलाते हैं। यह वर्णन सृष्टि क्रम के अनुसार है।

संहार क्रम में शक्ति-त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं और **'शिवत्रिकोण'** अधोमुख होते हैं।

समयमतानुसार श्री चक्र की ९ योनियाँ

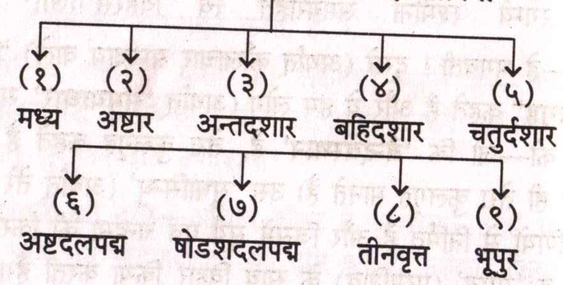

इनमें से प्रथम ५ **'शक्ति चक्र'** तथा अग्रिम चार **'शवि चक्र'** कहलाते हैं। इस मत के अनुसार—

भूपुर (चतुष्कोण) के अन्दर जो वृत्त है (अर्थात् ३ 'वृत्त' 'षोडशदलपद्म' तथा 'अष्टदल पद्म') वही **'बिन्दुस्थान'** है और उसके मध्य में शक्ति का स्थान है अर्थात् **'शक्तिचक्र'** स्थित है।

* 'षोडशदलपद्म' चन्द्रमा का प्रतिनिधि है। चन्द्रमा का स्थान **'सहस्रार'** है (चतुष्कोण सहस्रार है।) और उसके मध्य षोडशदलपद्म **'चन्द्रमण्डल'** है जो कि सुधा का समुद्र है। इसी सुधा-समुद्र के मध्य **''महामाया''** परमाशक्ति कुण्डलिनी का निवास है।

''कौल'' मूलाधार चक्र में जो योनि स्थान अर्थात् **'त्रिकोण'** है। वहीं भगवती कुण्डलिनी (परमाशक्ति) का स्थान है। यही कारण है कि समयमतावलम्बी **'मूलाधार चक्र'** में शक्ति का पूजन किया करते हैं।

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद ने यहाँ **'कौलमत'** का खण्डन कि है और समयमार्ग का प्रतिपादन किया है।

---

[१] सौन्दर्य लहरी (८)

(१) कौल-परम्परा में जो ''मूलाधार चक्र'' में भगवती का पूजन, ध्यान आदि किया जाता है समयमार्गी (गौड़पादाचार्य आदि) से त्याज्य मानते हैं।

(२) गौड़पादाचार्य एवं अन्य समयमार्गी (शुभागम पञ्चम के अनुवर्ती शाक्त) 'सहस्रार' में शक्ति का स्थान मानकर वहीं उनकी पूजा किया करते हैं।

वे (समयमार्गी) 'सहस्रार' (चतुष्कोण) के मध्य में जो **चन्द्रमण्डलस्थित 'सुधासागर'** है और जो कि मणि-निर्मित है वहाँ भवगती महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करते हैं।

आचार्य शंकर की दृष्टि—आचार्य श्री कहते हैं कि—

'कल्लोलोल्लसितामृताब्धिलहरी
मध्ये विराजन्मणिद्विपे।
कल्पवाटिकापरिवृते,
कादम्बवाट् युज्ज्वले
रत्नस्तंभ सहस्रनिर्मितसभा,
मध्ये विमानोत्तमे।
चिन्तारत्न विनिर्मितं जननि ते,
सिंहासनं भावये ॥'[१]

वामकेश्वर तन्त्र की दृष्टि—वामकेश्वर महातंत्र में **सुधा-सिन्धु** का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

(१) बिन्दुस्थानं---महेशन्तिपबर्हणे।

(२) सुधासिन्धुमध्ये--------------मजाम्यन्नपूर्णाम्।'

यह स्थान (१) सूर्य-चन्द्र की रश्मियों के लिए भी अमग्य है। यह स्थान 'सुधासिन्धु' या 'सहस्रार', अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र खण्डों के भी ऊपर है।

भवगती का स्थान **'अग्निखण्ड'**, **'सूर्यखण्ड'** एवं **'चन्द्रखण्ड'** से परे ऊपर स्थित है और वह खण्डों की दृष्टि से **'चतुर्थखण्ड'** में है। इस चतुर्थ खण्ड को ही 'बैन्दवस्थान' (बिन्दु का स्थान) का मध्यभाग या **'महाबिन्दु'** है।

''कौल'' त्रिकोण में स्थित बिन्दु एवं समयमार्ग चतुष्कोण के मध्य स्थित बिन्दु को भगवती का स्थान मानते हैं।

'त्रिकोणं ते कौलाः' कहकर गौड़पादाचार्य ने कौलोपासना एवं सामयिकोपासना (कौलाचार एवं समयाचार) में निहित विभेदक सिद्धान्तों की ओर इङ्गित किया है।

---

[१] मंत्रमातृका पुष्पमाला

(क) कौल त्रिकोण (मूलाधार स्थित) में भगवती की पूजा करते हैं।

(ख) चतुष्कोण (बैन्दवस्थान/सुधासिन्धु/सहस्रदलकमल) में **समयाचारी** भगवती की पूजा करते हैं—

(क) **'त्रिकोणं** ते **कौला'**

(ख) **'चतुष्कोण'** प्राहुः **समयिन** इमे वैन्दवमिति।'

भगवती का स्थान और उन स्थानों में भगवती-पूजन

(१) **'मूलाधार'**	(२) **'सहस्रार'**
कौलमतः 'त्रिकोण'	**'समयमतः'** **'चतुष्कोण'**
(मूलाधार चक्र में स्थित त्रिकोण)	(चतुष्कोण के मध्य स्थित बिन्दु)
यहीं कौल **भगवती का पूजन** करते हैं	यहीं सामयिक **भगवती का पूजन** किया करते हैं

'कौलमत' एवं 'समयमत'

(१) **'कौलमत'—'सृष्टिक्रम'**	(२) **'संहारक्रम'—'समयमत'**
(१) **'श्रीचक्र** में ९ त्रिकोण होते हैं। ये त्रिकोण ही **'योनियाँ'** कहलाती हैं।	(१) संहारक्रम में **शक्तित्रिकोण** ऊर्ध्वोन्मुखी होते हैं। यहाँ शिव त्रिकोण अधोमुख माने गए हैं।
(२) इनमें ५ **'शक्तित्रिकोण'** हैं जो कि निम्नाभिमुखी हैं और ४ त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी हैं तथा **'शिवत्रिकोण'** कहलाते हैं।	(क) **'शक्तित्रिकोण'** = ऊर्ध्वाभिमुखी (ख) **'शिवत्रिकोण'** = निम्नाभिमुखी
(क) **'शक्तित्रिकोण'** = निम्नाभिमुखी (ख) **'शिवत्रिकोण'** = ऊर्ध्वमुख	

समयामतानुसार ९ योनियाँ—(१) मध्यत्रिकोण, (२) अष्टार, (३) अन्तर्दशार, (४) बहिर्दशार, (५) चतुर्दशार, (६) अष्टदलपद्म, (७) षोडशदलपद्म, (८) तीनवृत्त, (९) भूपुर।

इनमें से प्रथम ५ **'शक्तिचक्र'** हैं तथा अन्तिम चार **'शिवचक्र'** हैं। इस मत के अनुसार भूपुर (चतुष्कोण) के अन्दर **जो वृत्त है** (अर्थात् ३ वृत्त, षोडशदलपद्म एवं अष्टदलपद्म) वही **बिन्दुस्थान** है ओर उसके मध्य में शक्ति का स्थान है अर्थात् **'शक्तिचक्र'** स्थित है।

'षोडशदलपद्म' सोम का प्रतिनिधि है।

सोम का स्थान 'सहस्रदलकमल' है। इसे ही **'चतुष्कोण'** या 'सहस्रार' भी कहते हैं। उसके मध्य में षोडशदलपद्म रूप चन्द्रमण्डल है जो कि **'सुधासिन्धु'** कहलाता है। इस 'सुधासिन्धु' के मध्य महामाया स्वरूपा, परमाशक्ति भगवती कुण्डलिनी का निवास स्थान है।

'कौलमत' के अनुसार मूलाधारचक्र में स्थित योनिस्थान (त्रिकोण) ही भगवती कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। इसी कारण कौल 'मूलाधारचक्र' में शक्ति की पूजा किया करते हैं।

समयमार्गी मूलाधार चक्र में **शक्ति के पूजन** को निषिद्ध मानते हैं। **उनके** मतानुसार शक्ति का पूजन या उनका ध्यान **'सहस्रदलकमल'** में करना चाहिए। 'सहस्रार' के मध्य में जो चन्द्रमण्डल है उसमें स्थित 'सुधासिन्धु' है।

'सुधासिन्धु-विषयक वमकेश्वरमहातंत्रकार की दृष्टि—

'वामकेश्वरतंत्र' में कहा गया है—

'बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पंचयोन्यः सुरद्रुमाः ।
तत्रैव नीप-श्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम् ॥
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्यां मन्दिरमुत्तमम् ।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे ॥'
''सुधासिन्धु मध्ये मणिद्वीपे रम्ये,
सुकल्पद्रुमाकल्पकादम्ब मन्त्रे ।
स्फुरत्स्वर्ण सिंहासने रत्नपीठे,
भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्नपूर्णाम् ॥'

यह स्थान सूर्य एवं चन्द्रमा के लिए अगम्य है। **'सूर्यखण्ड'** एवं **'चन्द्रखण्ड'** के ऊपर ही **'सहस्रार'** है।

'सुधासिन्धु' श्रीचक्र में कहाँ है?

९ योनियों में नीचे स्थित शिवात्मकयोनि चतुष्क के ऊपर ऊर्ध्व स्थित शक्त्यात्मक योनि पञ्चक के नीचे वर्तमान प्रदेश, जिसे कि बैन्दव स्थान भी कहते हैं उसी का नाम सुधासिन्धु है।

'नवयोनिष्धः स्थितश्चिात्मकयोनिचतुष्कस्ये परि ऊर्ध्वस्थितशक्त्यात्मकयोनिपञ्चकाधः प्रदेशस्य बैन्दवस्थानस्य नाम सुधासिन्धुरिति।।'
—लक्ष्मीधरा

देवी का जो मन्दिर है वह कौन है? वह क्या है?

'देवमन्दिर'= त्रयश्चत्वारिंशत्त्रिकोणात्मक 'श्रीचक्र' है। **'देवीमन्दिर** त्रयश्चत्वारिंशत् त्रिकोणात्मकं श्रीचक्रमुच्यते।।'

'बैन्दवस्थान' श्री चक्र का एक अङ्ग मात्र है। 'कौल' 'कुल' 'कुण्डलिनी' परस्पर सम्बद्ध हैं।

कुण्डलिनी और सुधासिन्धु

आचार्य शंकर कहते हैं—

'सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।' (९)

बैन्दवस्थान 'श्रीचक्र' के मध्य स्थित है।

'बैन्दवस्थान श्री चक्रस्य मध्य स्थितं।।'

(१) **'शिवचक्र'** (४) के ऊपर ५ **'शक्तिचक्र'** हैं।

'सहस्रारपद्म' शिर में स्थित है।

कुण्डलिनी और श्रीविद्या (षोडशी) का विभाजन

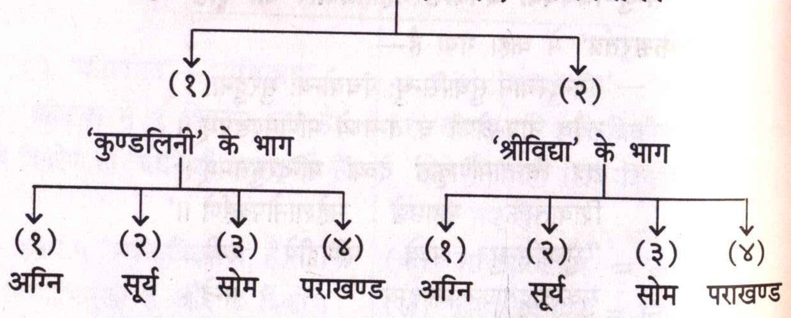
(१)
(२)
'कुण्डलिनी' के भाग
'श्रीविद्या' के भाग
(१) अग्नि
(२) सूर्य
(३) सोम
(४) पराखण्ड
(१) अग्नि
(२) सूर्य
(३) सोम
(४) पराखण्ड

* षोडशी विद्या का प्रमुख केन्द्र (भगवती का निवास स्थान) उसका अन्तिम 'कूट' है।

(१) अधःकुण्डलिनी	अग्निखण्ड	वाग्भवकूट
(२) मध्यकुण्डलिनी	सूर्यखण्ड	कामराजकूट
(३) ऊर्ध्वकुण्डलिनी	सोमखण्ड	शक्तिकूट
(४) पराकुण्डलिनी	पराखण्ड	तुर्यकूट *

* (भगवती का निवासस्थान यही पराखण्ड या तुर्यखण्ड है।)

इसी अन्तिम खण्ड में पहुँचकर 'शक्ति' शिव में लीन हो जाती है तथा शिव

के साथ विहार करने लगती है। इड़ा-पिङ्गला (चन्द्र-सूर्य) के लिए यह स्थान अगम्य है किन्तु सहस्रारगम्य है।

'सुधासिन्धु'—तंत्र-ग्रंन्थों में 'सुधासिन्धु' का सविस्तार वर्णन किया गया है—

'सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डपमध्यगाम्।
बालार्कमण्डलभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम्।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् जपमाचरेत्।।'

'सुधासिन्धु' में स्थित मणिमण्डप के भीतर जो चिन्तामणिगृह है उसी में भगवती त्रिपुरसुन्दरी रहा करती हैं।

शाक्तसम्प्रदाय एवं महात्रिपुर सुन्दरी—शाक्त सम्प्रदाय में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का अन्यतम स्थान है। इस सम्प्रदाय में देवी के 'आनन्दभैरवी' 'त्रिपुरसुन्दरी' एवं 'ललिता अदि अनेक नाम प्रचलित हैं। उनके निवास स्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

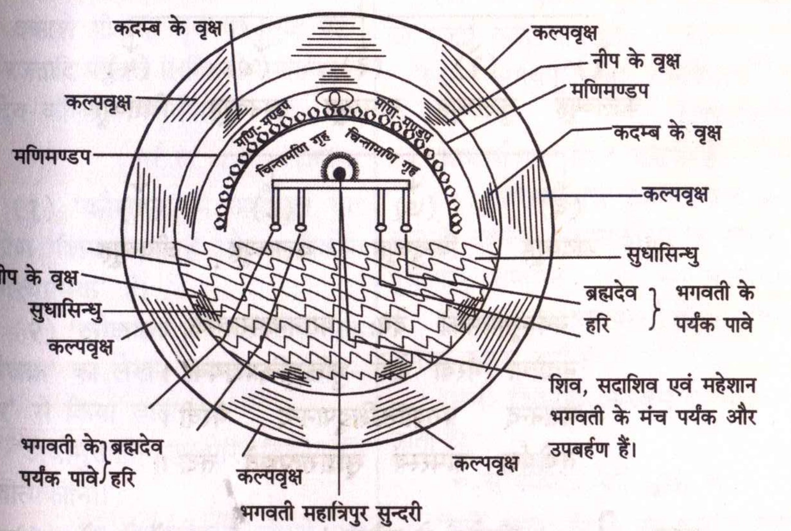
कदम्ब के वृक्ष
कल्पवृक्ष
नीप के वृक्ष
मणिमण्डप
कल्पवृक्ष
मणिमण्डप
कदम्ब के वृक्ष
मणि-मण्डप
मणि-मण्डप
चिन्तामणि गृह
चिन्तामणि गृह
कल्पवृक्ष
सुधासिन्धु
नीप के वृक्ष
सुधासिन्धु
कल्पवृक्ष
ब्रह्मदेव
हरि
भगवती के पर्यंक पावे
शिव, सदाशिव एवं महेशान भगवती के मंच पर्यंक और उपबर्हण हैं।
भगवती के पर्यंक पावे
ब्रह्मदेव
हरि
कल्पवृक्ष
कल्पवृक्ष
भगवती महात्रिपुर सुन्दरी

(१) एक **'सुधासिन्धु'** (अमृत का समुद्र) है। सुधासिन्धु **कल्पवृक्षों** से

आच्छादित है। सुधासिन्धु में **नीप** या **कदम्ब** के वृक्षों से आच्छादित एक '**मणिमण्डप**' है।

(२) उस 'मणिमण्डप' में '**चिन्तामणिगृह**' है।

(३) इसी '**चिन्तामणिगृह**' में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी अपने पर्यांक पर निवास करती हैं।

(४) **शिव, सदाशिव एवं महेशान** भगवती के मञ्च, पर्यंक एवं उपबर्हण हैं।

(५) इस पर्यंक के जो पाये हैं वे निम्नाङ्कित हैं।

—वे 'ब्रह्मा' 'हरि' 'रुद्र' एवं 'इश्वर' हैं।

महाभैरव ही देवी की आत्मा हैं। देवी ९ **व्यूहो की आत्मा** हैं।

आनन्दभैरव (महाभैरव) ९ व्यूहों की आत्मा हैं। या ९ व्यूहों से निर्मित हैं।

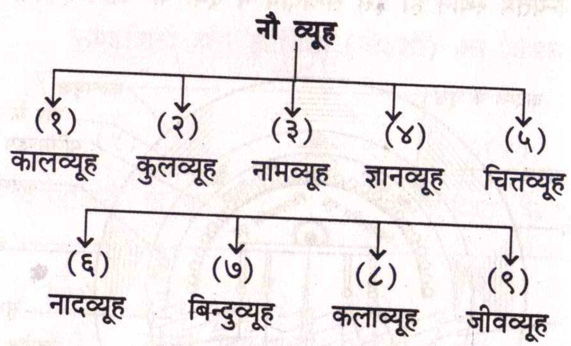

'नवव्यूहात्मको देवः परानन्दपरात्मकः।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
परानन्द पराशक्तिश्चिद्रूपानन्द भैरवी।
तयोर्यदा सामरस्यं **सृष्टिरुत्पद्यते** तदा ॥'

कौल } (१) 'त्रिकोणं ते **कौलाः**'
सामयिक } (२) 'चतुष्कोणं प्राहुः **समयिन**'। } शाक्तों के दो सम्प्रदायों के परस्पर भिन्न-भिन्न मत

'कुलाचार' एवं 'समयाचार'

* 'कुलाचार' *

(१) '**कुलाचार**' बाह्यपूजात्म्क है। '**कुलाचारो** नाम बाह्यपूजारति रिति रहस्यम् ॥' (लक्ष्मीधर)

(२) 'श्रीचक्र' का नामान्तर है—'**वियच्चक्र**'। 'वियच्चक्र' तो वियत्पूज्यत्व है। वियत्पूज्य हव दो प्रकार का है—

(क) दहराकाशजवियत्पूजात्व।

(ख) बाह्याकाशज वियत्पूज्यत्व

कुलाचार के वियत्पूज्यत्व का प्रकार है—'**बाह्याकाशज पूजा**'

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'**बाह्याकाशजं नाम** बाह्याकाश।*
वकाशे पीठादौ भूर्ज-पत्र-शुद्ध पट-हेम-रजतादि पट्टतले लिखित्वा समाराधनम्। एतदेव कौलपूजत्याहुर्वृद्धाः॥'

(सौ.ल. ८)—लक्ष्मीधर

(१) '**कौलमत**' में अधोमुख चार त्रिकोण '**शिवात्मक**' हैं और ५ त्रिकोण '**शक्त्यात्मक**' हैं।

(२) '**कौलमत**' में नवत्रिकोणात्मक '**श्रीचक्र**' का लेखन (निर्माण) '**संहार-क्रम**' से किया जाता है।

'अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि॥'

(३) 'कुः पृथिवीतत्त्वं लीयते यत्र तत्कुलं **आधारचक्रम्।'**

लक्षणया सुषुम्नार्गः कुलमि त्युच्यते। अतएव '**कौलाः**' कुलपूजकाः आधार-सेवकाः इति कौलत्वं तेषामिति रहस्यम्।

* 'समयाचार' *

(१) '**समयाचार**' आन्तरपूजात्मक है—'समयाचारो नाम आन्तर पूजारति।'

(लक्ष्मीधर)

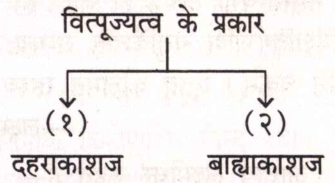

दहराकाशज वियत्पूज्यत्व ही सामयिकों को स्वीकार्य है जबकि कौलों को बाह्याकाशज पूजन।

*** सामयिकों की पूजा ***

इसे ही '**समय पूजा**' (सामयिकों की पूजा(कहा जाता है।

'इदमेव समयपूजेत्याहुः समयिनः॥'

(लक्ष्मीधर)

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) **दहराकाशजं नाम** हृदयाकाशावकाशे चक्रस्य पूजनम्। इदमेव समयपूजेत्याहुः समयिनः। — लक्ष्मीधर

(२) सृष्टिक्रम समयमार्ग है—'सृष्टिक्रमस्तु समय मार्गः।'

इसमें त्रिकोण ऊर्ध्वमुख बनाया जाता है।

*** सामयिकों की पूजा ***

'जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनां। गतिः प्रादक्षिण्यक्रमण मशनाद्याहुतिविधिः। प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा। सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥' —सौन्दर्य ल० (२७)

'कुलाचार'

(४) कौल चक्रे त्रिकोणमध्य गतो बिन्दुः।

(५) कौलचक्रे कोणसंख्या नास्ति, नवत्रिकोणात्मकत्वात् ९वों त्रिकोणों के मेलन से मर्मसन्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। 'एवं चविंशतिर्मर्माणि चतुर्विंशति सन्धयः नव योनि चक्रम्। एतत् कौलमत रहस्यम्।

—लक्ष्मीधर

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'चतुष्षष्टितन्त्राणि कुलमार्ग एव—'मिश्रकं कौलमार्गं च परित्यज्यं हि शाङ्करि।।'

(२) 'कौलैः मृग्यते अवलम्ब्यत इति कौलमार्गः कौलमतम्।'

(३) 'आधारचक्रं त्रिकोणम्, आधारे बिन्दुः तिष्ठतीति।

(४) 'अत्र कौलमते त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम्।'

स एव तत्र आराध्यः।

अतएव **कौलाः त्रिकोणो** बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति तत् त्रिकोणं द्विविधं श्रीचक्रान्तर्गतनवयोनि मध्यवर्तिनी योनिः सुन्दर्याः तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिश्च।

(५) 'श्रीचक्रस्थितनवयोनिमध्यगतयोनिं भूर्ज-हेमपट्ट-वस्त्रपीठादौ लिखितां पूर्वकौला पूजयन्ति।।

(६) 'तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिं उत्तरकौलाः पूजयन्ति। उभयं योनिद्वयं बाह्यमेव न आन्तरम्। अतः तेषां आधारचक्रमेव पूज्यम्।

(७) 'तत्र स्थिता कुण्डलिनी शक्तिः **'कौलिनी'** इत्युच्यते। सैव उपास्या

'समयाचार'

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'समयचक्रे चतुष्कोण मध्यगतो बिन्दुः।'

(१) 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।'

(२) 'ये ये समयिनो योगीश्वरा जीवन्मुक्ताः संसारयात्रामनुवर्तमानाः सादाख्यतत्त्वमनुचिन्तयन्तः आत्मैकप्रवणाः वर्तन्ते तेषां 'जपो जल्परिशल्पम्' इत्यादिना सपर्या प्रकारो निरूपितः।।'

सामयिकों की सपर्या का स्वरूप

ये तु समयिनो योगीश्वराः विजने गुहान्तरे वा बद्धपआसनाः निगृहीतेन्द्रियाः सादार व्यतत्त्व ध्यानैकनिष्ठाः वर्तन्ते तेषां वक्ष्यमाणचतुर्विधषड्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः सपर्येति अर्थादुक्तं भवति।।

दोनों स्थितियों में समय मत में बाह्य पूजा किसी भी तरह ग्राह्य नहीं है—

'बाह्यपूजायां तत्क्रियाकलापे च तत्सम्पादनायां च क्लेशो नास्ति समयनिाम् इति।

यदि यह कहा जाय कि बाह्यावरणात्मक देवी की पूजा में क्या बाह्य पूजा समयमत में स्वीकार्य नहीं है?

'सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुश धनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्

क्यो कहा गया?

यहाँ वाह्यपूजा प्रकार का कथन समयैकदेशिमत है।

'कुलाचार'

त्रिकोणपूजकानां इति रहस्यम्। एषा कुण्डलिनीशक्तिः बिन्दुरूपिणी निद्राणैव संपूज्या तस्याः सदा निद्राणस्वाभाव्यात्।'

सा पूजा तामिश्रा

(३) 'कुण्डलिनीप्रबोधो यदा स्यात् तत्क्षणमेव भुक्तिः कौलानाम्। अतएव **क्षण मुक्ताः कौला** इति व्यवहारः।

(४) 'तत्र सुरा-मांस-मधु-मत्स्यादिद्रव्यैः समाराधनं वामाचार प्रवृत्या।'

(५) 'प्रत्यक्षत्रिकोणे बिन्दुस्थानं मन्मथच्छत्रं कृत्वा संपूजयन्ति अधोमुखं त्रिकोणं अधोमुखमेव छत्रं पूजयन्ति।'

(६) 'दिगम्बरक्षपरण्कादयस्तु स्त्रियं उत्तानां कृत्वा ऊर्ध्वं त्रिकोणं पूजयन्तीति रहस्यम् तत्तु अवैदिकमार्गत्वात् स्मरणार्हमपि न भवति।'

(७) 'लास्यनाट्यसंविधानप्रतिपादनात् प्रकृतिपुरुषयोः दर्शने जगदुत्पत्तिः लास्यनृत्ताव सानभवे जगत्संहृतिरिति **कौलसिद्धान्तः।'**

(८) 'आधारस्वाधिष्ठानयोः तामिश्रलोकत्वात् तत्र **कौलानां** अधिकारात् समयिनां आराधनाभावेऽपि स्वमतानुसारेण सहस्रकमले निषेव्यैव भगवती आधारस्वाधिष्ठानयोः सेव्येति महाभैरवी समयापदेन उच्यत्।।'

यद्यपि यह सत्य है कि कौल द्विकानुसन्धान (मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र नामक दो चक्रों की उपसना) द्वारा ६हों कमलों के अनुसन्धान का फल प्राप्त कर लेते हैं किन्तु वे षड्विध ऐक्यानुसन्धान के अभाव के कारण—'षड्विधै-

'समयाचार'

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'उपासकाः परमहंसमिथुनं संवित्कमले उपासते इति **समयैकदेशिमतम्।**

(२) 'त्रिकोणादिषट्चक्रं आधारदिषट्चक्रात्मना परिणतमिति। तत्र 'श्रीचक्रं' त्रिकोणं बैन्दव स्थानमिति तावत् सुप्रसिद्धम्।'

(३) 'तत्र त्रिकोणत्रयेसा अष्टकोण निर्माणे त्रिकोणादेव बिन्दु स्थानं भवति। तच्च चतुष्कोणमेव। तत्तु सहस्रकमलान्तर्गतं चन्द्रमण्डलमिति।'

(४) 'एतत् चतुष्कोणमध्यं बैन्दव स्थानं 'सुधासिन्धुः' 'सरघा' इति।'

(५) 'एतत् चतुष्कोणमध्यं बिन्दुस्थानमिति **बाह्यपूजा** तरुणीत्रिकोण च दूरत एवं निरस्तेति ध्येयम्।'

(६) 'अतएव समयिनां सहस्रकमले समयायाः समयस्य च शंभोः पूजा।'

(७) 'समयानाम—शम्भुना साम्यं पञ्चविधं यातीति **समया।** समयत्वं शम्भोरपि—पञ्चविधं साम्यं देव्या सह यातीति।

अतः उभयोः समप्राधान्ये नैवसाम्यं विज्ञेयम्।

(८) **साम्य के प्रकार**—

पञ्चविधसाम्यं तु—(१) अधिष्ठानसाम्यं (२) अवस्थानसाम्यं (३) अनुष्ठानसाम्यं (४) रूपसाम्यं (५) नामसाम्यं—इति पञ्चविधं समप्रधानयोरेव व शिवयोः।

(९) 'अतःसमयपूजकाः समयिनः।।'

(१०) 'तेषां षट्चक्रपूजा न नियता, अपितु सहस्रकमल एव पूजा।'

'कुलाचार'

क्यानुसन्धानाभावात् कौलमार्ग एवेति **न देव्या मणिपूरे सन्निध्यं** पञ्चविधमुक्ति-युक्त्यमावश्च, नादबिन्दुकलातीतत्वमप्य संभाव्यमेव **कौलमते इति।'**

(किन्तु जहाँ तक **सामयिकों** का प्रश्न है उनकी स्थिति भिन्न है; क्योंकि— समयी साधक तो कार्यभूत चतुष्कानुन्धान मात्र सेकारणभूतकमलद्वय के अनुसन्धान का फल प्राप्त कर लेते हैं।

अत:पञ्चविधसाम्य के सिद्ध हो जाने पर समयसमयिभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगता है।[१]

कौलाचार के दो रूप हैं—

(१) 'आर्द्र कौलाचार'

(२) 'शुष्क कौलाचार'

आर्द्रशुष्कविभागेन द्विधाचारं पुन: श्रुणु:।।

कौल चतुष्पात्रात्मक मूलाधार चक्र की उपासना करते हैं जो कि स्वाधिष्ठान में अन्तर्भूत रहता है—

'अत्र चतुष्पत्रं मूलाधारं स्वाधिष्ठाने अन्तर्भूतं कौला: उपासत।।' (लक्ष्मीधर:)

जहाँ तक सामयिकों या समयमत है वे स्वाधिष्ठान का भेदन करके और मणिपूर चक्र में प्रविष्ट भगवती की उपासना करते हैं—

'समयिनस्तु स्वाधिष्ठानं भित्वा मणिपूरं प्रविष्ठाया: देव्या: उपासनं कुर्वन्तीति समय-मततत्त्वं च प्रतिपादितम्।'

—लक्ष्मीधरा (९९)

'समयाचार'

(११) 'सहस्रकमलपूजानाम सहस्र-कमलस्य बैन्दवस्थानत्वेन तन्मध्यगतचन्द्र-मण्डलस्य चतुरश्रात्मना, तन्मध्यबिन्दो: पञ्चविंशति तत्वातीत षड्विंशात्मक शिवशक्तिमेलनरूपसादाख्यात्मना च अनु-सन्धानम्।'

(१२) 'अतएव समयिमते बाह्याराधनं दूरत एवं निरस्तम्।'

(१३) 'षोडशोपचाररूपपूजाङ्गकला-पश्च ततोऽपि दूरत एव।'

(१४) आधारादि ६ चक्रों का त्रिकोणादि षट्चक्र के साथ **तादात्म्य** है। बिन्दुस्थान का चतुरश्रसहस्रकमल के साथ इसलिए **तादात्म्य** है क्योंकि **बिन्दु एवं शिव** में **तादात्म्य** है। इसी प्रकार देवी और शिव में तादात्म्यत्रय विद्यमान है।

(१५) इसी प्रकार **चक्र एवं मन्त्र** में भी ऐक्य एवं **तादात्म्य है** समयी इन चार प्रकार के तादात्म्यों को केन्द्र में रखकर समाराधन किया करते है।

(१६) *** षोढा ऐक्य ***

(१७) **चतुर्विध साम्यपूर्वक** ही समय-समया का समाराधन करते हैं किन्तु उसमें से कतिपय समयी **षोढ़ाऐक्य** को स्वीकार करते हैं।

'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्या: समाराधनमित्येत् **सर्वसमतम्।** केचित्तु षोढ़ा ऐक्यमाहु:।

---

[१] लक्ष्मीधरा (९९)

'कुलाचार'

समयाचारी **'पिण्डब्रह्माण्डैक्य'** के सिद्धान्त में भी विश्वास रखते हैं। आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—'पिण्डब्रह्माण्डयो-रैक्यानुसन्धानमहिम्ना षट्कमलानुसन्धान महिम्ना पञ्चविधसाम्यानुसन्धानमहिम्ना षड्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना पिण्डाण्डं ब्रह्माण्डवदवभासत' —आचार्य लक्ष्मीधर

'पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्ग सूत्रा-त्मनोरपि।'

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं ज्ञातव्यम्।

(लक्ष्मीधरा ९९)

'स्वापाव्याकृतयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरत्नो:।' अर्थात् क्षेत्रज्ञ एवं परमात्मा इन दोनों में भी वही ऐक्य है। (लक्ष्मीधर)

कौलों का संहार क्रम एवं सामयिकों का सृष्टि क्रम—

(१) **संहारक्रम** (लक्ष्मीधर की दृष्टि) आचार्य लक्ष्मीधर इसे अपने शब्दों में इस प्रकार निरूपित करते हैं—

'संहारक्रमेण तावत् पुरतो वृत्तमालिख्य वृत्तमध्ये नव रेखा: लिखित्वा, पश्चिमरेखा प्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य, स्वापेक्षया षष्ठ्या रेखया योजयेत्। एवं प्राग्रेखा प्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया सप्तम्यारेखया योजयेत्। पश्चिमद्वितीय रेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोण मुत्पाद्य स्वापेक्षया अष्टम्या योजयेत्। पश्चिमद्वितीय रेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोण मुत्पाद्य स्वापेक्षया अष्टम्या योजयेत्। प्राग्द्वितीय-रेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया अष्टम्या योजयेत्।

'समयाचार'

नाद बिन्दुकलातीत भागवत तत्त्व तो सर्वविश्रुत है।

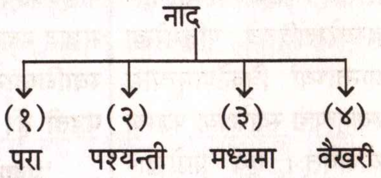

'नाद: परापश्यन्ती मध्यमा वैखरी-रूपेण चतुर्विध:।।'

(१) **'परा'** = त्रिकोणात्मिका है।

(२) **'पश्यन्ती'** = अष्टकोणचक्र रूपिणी है।

(३) **'मध्यमा'** = द्विदशाररूपिणी है।

(४) **'वैखरी'** = यह तो चतुर्दशार-रूपिणी हैं।

यहीं शिवचक्रों का अन्तर्भाव है। चतुष्चक्रात्मक 'श्रीचक्र' नाद शब्द से भी वाच्य है। **'बिन्दु'** किसे कहा जाय?

'षट्चक्र' (मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणि-पूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा आदि) **बिन्दु** शब्द वाच्य हैं।

'बिन्दुर्नाम षट्चक्राणि।'

कलायें ५० या ३६० हैं।

(५) * भगवती नाद बिन्दुकलातीता हैं। 'एवं नाद बिन्दुकलातीता भगवतीति।।'

—लक्ष्मीधर

*** भगवती कामेश्वरी का दर्शन ***

(६) नाद, बिन्दु एवं कलाओं के परस्पर ऐक्यानुसन्धान से **'षोढा ऐक्य'** होता है। इस प्रकार यहाँ नादबिन्दु कला

'कुलाचार'

ततः प्राक्पश्चिमतृतीयरेखा प्रान्ताभ्यां षट्कोणमालिखेत्। षट्कोणमध्यस्थितह्रस्वरेखात्रितये पश्चिमरेखा प्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वामुत्पाद्य स्वापेक्षया पञ्चम्या योजयेत्। एवं प्राग्रेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया पञ्चम्या योजयेत्। मध्य-स्थितातित ह्रस्वरेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोण मुत्पाद्य स्वापेक्षया तृतीयरेखया योजयेत्। एवं चतुर्विंशतिमर्माणि चतुर्विंशति सन्धयः नवयोनि चक्रम्। एतत् **कौलमत** रहस्यम्।'

सृष्टिक्रम सामयिकों के **'सृष्टिक्रम'** पर प्रकाश डालते हुए आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'आदौ त्रिकोण मालिख्य, मध्ये बिन्दुंनिक्षिप्य, बिन्दोरुपरि त्रिकोणं भित्वा त्रिकोणान्तरं प्रागग्रं विलिख्य, प्रथम त्रिकोणाग्रात् त्रिकोणान्तरं पश्चिमाभिमुखं विलिखेत् एवं अष्टकोण चक्रमुत्पन्नम्। एतस्मादवे **दशार**मुत्पादयेत्। तद्यथा—अष्टकोण प्राक्पश्चिमरेखाप्रान्ताभ्यां षट्कोणमुत्पाद्य विदिग्गतमर्मस्थानेभ्यः

'समयाचार'

आदि के ऐक्य के कारण षड्विधऐक्य द्वारा भगवती की पूजा करके सादाख्या में विलीनता प्राप्त होती है। फिर षड्विधऐक्य के अनुसन्धान की महिमा द्वारा गुरुकटाक्षसञ्ज्ञात महावेध की महिमा से **भगवती शीघ्र ही मूलाधार-स्वाधिष्ठान** चक्रद्वय का भेदन करके **मणिपूर में दिखाई पड़ती हैं।**

'महावेध' है क्या? प्रथमतः अभ्यास दशा में गुरुनिष्ठ होकर महाविद्या को गुरुमुख से ही स्वीकार करके ऋषि-छन्द-देवतापूर्वक मूलमन्त्र गुरुपदेश विधि से शुष्क जप करते हुए **आश्वयुज के शुक्लपक्ष** में **महानवमी की** कही जाने वाली अष्टमी को रात्रि के समय गुरु का पादोपसंग्रह करना चाहिए। उस समय गुरु का कर्त्तव्य यह है कि वह अपने हाथ को शिष्य के मस्तक पर रक्खे और फिर मंत्रोपदेश एवं षट्चक्रों की शिक्षा प्रदान करके षड्विध ऐक्य के अनुसन्धान के उपदेश द्वारा सादाख्या के प्रकाश रूप में स्थित शैव महावेध का उदय होता है। इस महावेश के उदय से भगवती का **'मणिपूर चक्र'** में प्रत्यक्षीकरण हुआ करता है।

(८) महावेध और भगवती का साक्षात्कार

* विभिन्न चक्रों में देवी-पूजा *

[१] **भगवती की मणिपूर में पूजा : 'महावेध'** के उदित होने ही भगवती का मणिपूर में साक्षात्कार होता है; **'एवं महावेधे जाते भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति। सा समाराध्या।'**

[२] **भगवती की अनाहत चक्र में पूजा :** अर्घ्य, पाद्य, भूषण आदि समर्पण रूप पूजाकलाप को **'मणिपूर'** में निष्पादित करके भगवती को **अनाहतमन्दिर** में ले जाकर, धूपादिनैवेद्य आदि से लेकर हस्तपक्षालन पर्यन्त पूजा करें।

'कुलाचार'

चतुर्भ्यः चतुरस्त्रिकोणानुत्पाद्य अष्टकोण गतयोनेरुपरि दक्षिणोतरायतरेखा ईशानाग्नि कोणत्रिकोणेषु योजयेत्। एवं पश्चिमतो योजयेत्। **दशारं** भवति। एतस्मादेव दशारात् पुनः **दशान्तरं** उक्तरीत्या उत्पादयेत्। तद्यथा—प्रथमदशारपूर्वपश्चिम रेखाप्रान्ताभ्यां षट्कोणमुत्पादयेत्।

षट्कोणगतमर्मस्थानेभ्यः चतुर्भ्यः **त्रिकोणचतुष्कमुत्पादयेत्** ततः उपरि स्थितमर्मचतुष्टयात् दशारन्यायेन त्रिकोण चतुष्कमुत्पाद्य प्राक्पश्चिमरेखा मेलयेत्। एवं त्रयश्चत्वारिंशत् कोणाः चतुर्विंशति सन्धयः, चतुर्विंशति मर्माणि। एतत् **सयममत** रहस्यम्।

अस्मिन् चक्रे त्रिकोणमूर्ध्व मुखं लेखनीयम्।

कौल चक्रे

* कौलचक्रे **त्रिकोणमध्यगता** बिन्दुः। समयचक्रे **चतुष्कोण मध्यगतो बिन्दुः।**

* कौलचक्रे कोणसंख्या नास्ति, नवत्रिकोणात्मकत्वात्। नवानां त्रिकोणानां मेलने मर्म सन्धय एवोत्पद्यन्त इति महद्रहस्यम्।

'समयाचार'

[३] **भगवती की विशुद्ध चक्र में पूजा :** फिर भगवती को **'विशुद्ध चक्र'** में ले जाकर और वहाँ सिंहासनासीना भगवती की, जो कि अपनी प्रिय सखियों के साथ संभाषण एवं संलाप में लीन हैं—**मणियों द्वारा पूजा करनी चाहिए।**

ध्यातव्य बिन्दु यह है कि—शुद्धस्फटिक सदृश जो मणियाँ हैं वे मौक्तिक आदि मणियाँ नहीं हैं प्रत्युत् वे षोडशदलगत **षोडशचन्द्र कलायें** हैं—यही रहस्य है।

[४] **भगवती की आज्ञा चक्र में पूजा :** इसके अनन्तर भगवती को **'आज्ञाचक्र'** में ले जाकर उन भगवती कामेश्वरी की नीराजन की अनेक विधियों द्वारा पूजित करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए।

'कर्णावतंसस्तुतिकार' की दृष्टि—आज्ञात्मकद्विदलपद्मगते तदानीं, विद्युन्निभेरविशशिप्रयतोत्कटामे। गण्डस्थलप्रतिफलत्करदीपजाल, कर्णावतंसकलिके कमलायताक्षि।

(९) **भगवती की 'सहस्रदलकमल' में पूजा :** भगवती को **'आज्ञाचक्र'** में लाकर एवं वहाँ उनकी पूजा निष्पन्न करके फिर अगले सोपान की ओर अग्रसर होना चाहिए।

आज्ञा चक्रोंपरान्त **भगवती कामेश्वरी** विद्युल्लता की भाँति 'सहस्रदल कमल' में अनुप्रविष्ट होकर **'अमृतसमुद्र'** में पाँचप्रकार के कल्पवृक्षों की छाया में **'मणिद्वीप'** में (सरघा के मध्य) भगवान सदाशिव के साथ विहार करती हुई स्थित हो जाती हैं।

फिर साधक को तिरस्करिणी फैलाकर मन्दिर केसमीप स्वयं भी रहना चाहिए। साधको को वहाँ तब तक रहना चाहिए जब तक की भगवती पुनः प्रत्यावर्तित

'कुलाचार'

उभयचक्र साधारणमत ऊर्ध्वमअष्टदलपद्मं, ततः षोडशदलपद्मं, ततः मेखलात्रितयम्। ततश्चतुर्द्वार युक्तं भूपुर त्रितयम्। इति श्रीचक्रोद्धारो विज्ञातव्यः।

श्रीचक्र के प्रस्तार-भेद

श्रीचक्र 'कौल' एवं 'समय' दोनों मतो की दृष्टि-भेद प्रथा के कारण प्रस्तार की दृष्टि से भी भिन्न-भिन्न है।

प्रस्तार त्रय

(१) 'मेरु-प्रस्तार'
(२) 'कैलास-प्रस्तार'
(३) 'भू-प्रस्तार'

(१) **मेरुप्रस्तार**—मेरुप्रस्तारो नाम नित्याषोडशतादात्म्यम्।

(२) **कैलासप्रस्तार**—कैलासप्रस्तारो नाम मातृकातादात्म्यम्।

(३) **भूप्रस्तार**—भूप्रस्तारो नाम वशिन्यादि तादात्म्यम् पृश्ननामक जो मुनि थे वे सभी मुनि चक्रोपासक थे—'पृश्नयोनाम मुनयः सर्वेचक्रसमाश्रयाः।।' —रुद्रयामल

वे निरन्तर श्रीचक्र की सेवा में निरत रहा करते थे—'सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्वपूजिताम्।।'

—रुद्रयामल

'समयाचार'

होकर **'मूलाधार कुण्ड'** में नहीं आ जातीं। **यही समयमततत्त्व का रहस्य है—**

'यावत् भगवती विनिर्गता पुनः मूलाधार कुण्डं प्रविशाति तावत्पर्यन्तं स्थातव्यमिति समयमततत्त्वरहस्यम्।'—लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१)

(१०) आचार्य लक्ष्मीधर का कथन है कि 'क्वणात्काञ्चीदामा' (सौ०ल०) वाले श्लोक के माध्यम से आचार्य शंकर ने ध्यान-प्रतिपादित, चतुर्भुजात्मक एवं धनुर्बाणपाशाङ्कुशयुक्त भगवती के साकार विग्रह की ओर संकेत किया है। उस मत के अनुसार पूजा करने वाले देवी के उपासकों को भगवती को भगवती कामेश्वरी का उसी प्रकार साक्षात्कार हुआ करता है।

मेरे मत में तो षड्विध ऐक्य के अनुसन्धान के अनन्तर मूलाधार द्विक का भेदन करके 'मणिपूर चक्र' में (प्रसन्न होने के कारण) साक्षात्कृत भगवती कामेश्वरी दशभुजात्मक रूप में इस प्रकार दिखाई पड़ती है।

(क) उनके १० भुजाएँ हैं।

(ख) वे अपने हाँथों में **धनुष, बाण, पाश, अंकुश, वर-अभयमुद्रा, पुस्तक, अक्षमाला** एवं **वीणा** धारण किए हुए हैं।

मेरे समयमत के एकदेशीय मत के अनुसार (१) पाश (२) अंकुश (३) **पुण्ड्र** (४) **इक्षु** (५) पुष्प (६) बाण (७) जपमालिका (८) अभय (९) वरमुद्रा (१०) करद्वय द्वारा वक्षस्थल पर स्थापित वीणा—ये १० वस्तुएँ भगवती के हाँथों में स्थित हैं।

हमें ये दोनों मत स्वीकार्य है—

'उभयमस्माकं सम्मतमेव।'

लक्ष्मीधर कहते हैं कि मैंने अपने 'कर्णसंस्तुति' में लिखा भी है—

'भवानि श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमधोधनुः पौण्ड्रं

'कुलाचार'

*** 'श्रीचक्र' और आचार्य शंकर ***

आचार्य शंकर स्वतः 'श्रीचक्र' के उपासक थे। उन्होंने 'श्रीचक्र' के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है—

'चार श्री कण्ठों और **पाँच शिव युवतियों**—इन ९ मूल प्रकृतियों से तेरे रहने के ४३ त्रिकोण बनते हैं जो शम्भु के बिन्दु स्थान से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों और तीन रेखाओं सहित ८ और १६ दलों से युक्त हैं।

चतुर्भि श्रीकण्ठैः,
शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि।।
प्रभिन्नाभिः शम्भो,
र्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।।
त्रयश्चत्वारिंशद्
वसुदलकलाश्रत्रिवलय
त्रिरेखाभिः सार्धं,
तव शरण कोणाः परिणताः।।'

—सौन्दर्यलहरी (११)

'श्रीचक्र' ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड दोनों का प्रतीक एवं प्रतिनिधि है।

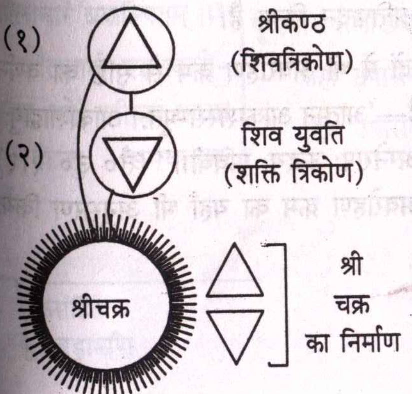

'समयाचार'

पौष्पंशरमथ जपस्त्रक्शुकवरम् अथ द्वाभ्यां मुद्रामभय-वरदानैकरसिके क्वद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां च बिभृशे।।'

इस स्वरूप में भी **सामयिकों को भगवती** का साक्षात्कार हुआ करता है।

'समयिनां प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना आस्ते भगवती।।'

*** सामयिकों की विशिष्ट पूजा ***

सामयिकों की विशिष्ट पूजा 'सहस्त्रदल कमल' में अनुष्ठित पूजा है—

'समयिनां सहस्त्रकमलपर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या।।''

'सहस्त्रकमल' में तिरस्करिणीप्रसारणपर्यन्त दर्शन करते रहना ही **'समाराधन'** है।

सुभगोदयकार की दृष्टि—'सुभगोदय' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि—

'सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः। त्रैलोक्यं मोहयेदाशु वरनारीगणैर्युतम्। यही नहीं स्वयं कालिदास ने भी कहा है—

कविकालिदास की दृष्टि—कवि कालिदास 'चर्चास्तोत्र' में कहते हैं—

'ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति, रूपं तवाम्ब नवयावकपङ्करम्यम्। तेषां सदैव कुसुमायुधबाधभिन्न वक्ष-स्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति।'

* यहाँ पर सामयिकों के लिए बाह्यपूजा निषेध के विधान के कारण क्या यहाँ सूर्यमण्डलान्तर्गत निष्पाद्य पूजा का निषेध किया जाना समीचीन था ? नहीं।

'कुलाचार'

(क) **कौलाचार का आर्द्र प्रकार**—

आर्द्राचारस्तु विज्ञेयो,
मकारैः पञ्चभिर्यतः।।

(ख) **कौलाचार का शुष्क प्रकार**—

मकारपञ्चरहिता,
शुष्काचारः प्रकीर्तितः।।

(ग) **कलियुगोपयोगी कौलाचार**—

'कलौविशेषतो देवि!
आर्द्राचारः फलप्रदः[1]

'कुल चूड़ामणि' नामक ग्रंथ के अनुसार कौल दर्शन एवं कौल-साधना का स्वरूप इस प्रकार है—

'कुलाचार विधिं वक्ष्ये,
सावधानावधारय ।
यस्य विज्ञानमात्रेण,
कर्ता हर्ता सदाशिवः।।'

सिद्धान्त और साधना—

(१) दिक्-काल नियमो नास्ति।

(२) तिथ्यादि नियमो न च।

'समयाचार'

इसी प्रकार भगवती की **'हृदयकमल'** में पूजा किए जाने पर भी भगवती सारे ऐहिक फल प्रदान करती हैं।

* भगवती की समाराधना के विभिन्न फल *

(१)	(२)	(३)
यावकरस से आप्लुत होने पर→'वशीकरण-सिद्धि'	'मुखबिन्दु कृत्वा' इत्यादि के रूप ध्यान करने पर→ तादृश फल-प्राप्ति	हृदयकमल में होमादिक, तर्पण आदि करने पर →ऐहिक फलों की प्राप्ति

अतः सामयिकों को 'समयपूजा' से (क) ऐहिक एवं (ख) आमुष्मिक दोनों प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है। आन्तर पूजा दोनों फल प्रदान करती है किन्तु फिर भी यह पूजा आन्तर पूजा ही होनी चाहिए—

'अतःसमयिनां ऐहिकामुष्मिक फल साधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम् ।।' (लक्ष्मीधरा : ४१)

आचार्य शंकर ने 'सौन्दर्यलहरी' में 'आधारकमल' आदि के क्रम से यथाक्रम पूजन विधान का त्याग करके आज्ञादिक्रमानुसार **अवरोहण क्रम** से पूजा करने के विधान का प्रतिपादन किया है।

उपनिषदों में भी अवरोहण क्रम से सृष्टि का वर्णन किया गया है—'आत्मन आकाशस्सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायेरग्निः। अग्नेरापः उद्भयः पृथिवी।।'' (तै० उ० २।१) इसी श्रौत अवरोहण क्रम का यहाँ भी अनुसरण किया गया है।[2]

---

[1] कूलचूड़ामणि
[2] लक्ष्मीधर (श्लोक ४१)

'कुलाचार'

(३) नियमो नास्ति देवेशि!
महामंत्रस्य साधने।।

(४) कर्दमेचन्दनेऽभिन्नः,
पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि,
तथैव काञ्चने तृणे।।

'कौल' कौन हैं ?

क्वचित् शिष्टः क्वचिद् भ्रष्टः
क्वचित् भूतपिशाचवत्।
नाना वेषधराः कौलाः,
विचरन्ति महीतले।।
कर्दमे.................तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि!
स **कौलः** परिकीर्तितः।।

'कौलाचार' का स्वरूप क्या है ?

मथित्वा ज्ञानदण्डेन,
वेदागम-महोदधिम् ।
सारमेतन्महादेवि!
कौलाचारं प्रकल्पितम् ।।[2]

कौलमार्ग पञ्चमकारोपासना को स्वीकार करता है; किन्तु 'समयाचार' नहीं।

'समयाचार'

यद्यपि समस्त योग के ग्रन्थों में **'आधार'** एवं **'स्वाधिष्ठान'** के अनन्तर **'मणिपूरक चक्र'** की स्थिति स्वीकार की गई है तथापि 'संवर्ताग्नि' से परिदग्ध जगत् के उज्जीवन के अनन्तर उत्पत्ति की बात भी कही गई है।[1]

'तादात्म्य ध्यान व्यतिरेकेण पूजायाः असंभवात्'—

तादात्म्य ध्यान सहित ही पूजा करनी चाहिए।

'मूलाधारस्थितामेव देवीं सुप्तां प्रबोधयेत्'—का निर्देश है। इस प्रबोध-नियम के विषय में ('मूलाधार चक्र' आदि के क्रम से शक्ति जागरण के विषय में) जो कि कौलों एवं सामयिकों दोनों के लिए है—गुरु मुख से ही निर्देश लेना चाहिए—

'मूलाधारादि क्रमेणैव पजा समयिनां कौलादीनां च कार्येति परमगुरुमुखादेव अवगतं रहस्यम् ।'

* वामकेश्वर तंत्र की आत्मपूजा विषयक दृष्टि *

(प्रतीकोपासना)

पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ। शब्दस्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः' करणेन्द्रिय चक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्। विश्वाहंकार पुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक् ।।'

यही उपासना विधि है।

'इयं उपासना विधिः क्रियात्मको नादरणीयः।।'

—(लक्ष्मीधर)

---

[1] शुकसंहिता
[2] कूलचूड़ामणि

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—

(१) आचार्य शंकर समयाचारी तांत्रिक थे।

(२) आचार्य श्री ने अपनी 'सौन्दर्यलहरी' नामक कृति में—'चरणानिर्णेजनजलम्' वाक्य कहकर **समय-मत** का ही प्रतिपादन किया है न कि कौलमत का क्योंकि **कौलमत** में देवी भुजगाकारा महाकुण्डलिनी (सर्पिणी) हैं।

अतः उनके चरणों के जल की बात तो संभव ही नहीं है। **'सहस्त्रकमल'** ही चरण निर्णेजनजल है। इसे ही इस प्रकार कहा गया है—

'सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्च सिञ्जन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः॥'

—सौन्दर्यलहरी (१०)

किन्तु आचार्य शंकर में **'कौलमत'** के प्रतिपादन की दिशा में यह भी उसी श्लोक में कहा है—

'अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि॥'

—(सौन्दर्यलहरी १०)

आचार्यश्री ने **'चरणनिर्णेजनजलम्'** शब्दावली का प्रयोग श्लोक क्रमांक १०० में किया है—

'पिबेय **विद्यार्थी** तव चरणनिर्णेजनजलम्'

शक्तिवाद और कुलाचार—

शक्तिवाद की दृष्टि से (शक्ति-प्राधान्य) कौलाचारी एवं वामाचारी दोनों मं मत-साम्य है। कौलों का कथन है—

'शक्तिमूल जगत सर्वं, शक्तिमूलं परन्तपः।
शक्तिमाश्रित्य निवसेद्, यत्र कुत्राश्रमे वसन्॥'

—कुलचूड़ामणि

कौलों की दृष्टि यह है कि—(१) वेदाचार (२) वैष्णवचार (३) शैवचार (४) सिद्धान्ताचार (५) दक्षिणाचार (६) वामाचार आदि सभी आचारों से श्रेष्ठता है—'**कौलाचार**'।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि **'भजन'** के दो प्रकार हैं—

(१) 'षट्चक्रसेवात्मक'।

(२) 'ध्यानात्मक'।

'द्विविधं भजनं—षट्चक्रसेवात्मकं धारणात्मकं च॥' आचार्य शंकर कहते हैं—

'परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्**भजन**वान' (सौ०ल० ९९)

यहाँ **'भजन'** का क्या अर्थ है।

[१] **'आधारचक्र'** एवं **'स्वाधिष्ठानचक्र'** तो उपास्य हैं नहीं क्योंकि ये **'तामिश्रलोक'** हैं।

[२] 'मणिपूर' से 'सहस्त्रकमल' पर्यन्त समस्त **पाँच चक्र पूज्य हैं। ('पञ्चचक्राणि पूज्यानि।')**

कौलों और सामायिकों की मुक्ति भेद

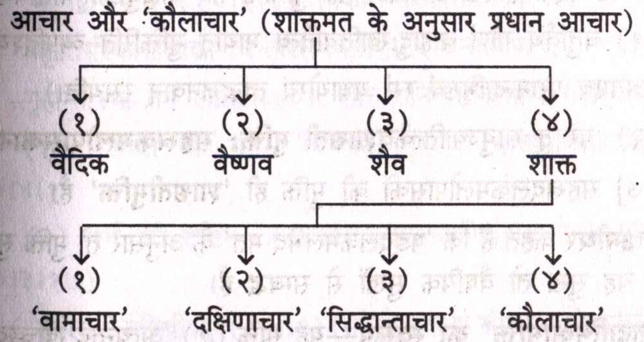

'सिद्धान्ताचार' अन्तिम आचार कौलाचार ही है।

[३] **मणिपूरक के उपासकों** को **'सार्ष्टिमुक्ति'** प्राप्त होती है। सार्ष्टिनाम्नी देवता के पुर के समीप पुरान्तर निर्मित करके सेवा करने वालों का अपस्थान यहीं हुआ करता है।

[४] **संवतिकमल के उपासकों** को **'सालोक्यमुक्ति'** प्राप्त होती है। 'सालोक्य' है—देवी के पट्टण में निवास।

[५] **विशुद्धिचक्र के उपासकों** को **'सामीप्यमुक्ति'** प्राप्त होती है। **'सामीप्य'** क्या है? 'सामीप्यं नाम अङ्गसेवकत्वम्।'

[६] **आज्ञाचक्र के उपासकों** को **'सारुप्यमुक्ति'** प्राप्त होती है। **'सारुप्य** नाम समान रुपत्वात्।'

'सारुप्य' एवं **'सायुज्य'** में भेद यह है कि **'सारुप्य'** में साधक की देह देवी से पृथक रहती है—

'पृथग्देहधारिंत्वेनेति सायुज्याद्भेदः ॥'

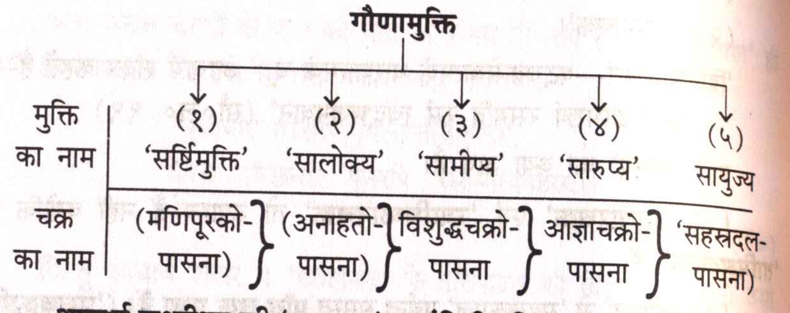

मुक्ति का नाम	(१) 'सर्ष्टिमुक्ति'	(२) 'सालोक्य'	(३) 'सामीप्य'	(४) 'सारुप्य'	(५) सायुज्य
चक्र का नाम	(मणिपूरकोपासना)	(अनाहतोपासना)	विशुद्धचक्रोपासना	आज्ञाचक्रोपासना	'सहस्रदलपासना)

आचार्य लक्ष्मीधर की 'समयमत' सम्बंधिनी दृष्टि—सहस्रदलकमलोपासना—सामयिक सहस्रार (चतुष्कोण) के उपासक हैं न कि त्रिकोण या अन्य चक्रों के। लक्ष्मीधर कहते हैं कि ४ प्रकार की भुक्तियाँ तो 'बाह्यदुखातिवर्तित्वमात्र' हैं—

(१) चतुर्विधं गौणं बाह्यदुःखातिवर्तित्व मायात् मुक्तिरिति व्यपदिश्यते॥'

(अतएव परानन्दाभिख्यं रसं यथायोग्यं त्वद्भजनवान् रसयति।)

(२) 'परं तु सायुज्यातित्कैव**शाश्वती मुक्तिः सहस्रकमलोपासकानामेवेति**।'

[७] सहस्रदलकमलोपासकों की मुक्ति ही **'शाश्वतीमुक्ति'** है।

लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'षड्दलकमलभेद मत' के अनुसार तो मुक्ति सुखस्वरूपा है। और यह सुख तो वैषयिक सुखों से सम्बद्ध है।

'तदात्मिकामुक्ति' का स्वरूप—यह मुक्ति (१) 'अत्यन्तदुःखोच्छेदात्मक है। (२) सायुज्यसिद्धि होने पर यह शिवभक्ति सम्पुटान्तर्भूत होने के कारण **'तदात्मिका मुक्ति'** है।

'कौलज्ञाननिर्णय' के अनुसार कौलों के भेद—

(१) 'रोमकूपादिकौल' (२) 'वृषणोत्थकौल' (३) 'वह्निकौल' (४) 'कौलसद्भाव' (५) 'पदोत्तिष्ठ कौल।'

(क) आदि युग में—'कौलज्ञान'

(ख) त्रेतायुग में—'महत्कौल' या सिद्धकौल

(ग) द्वापर युग में—'सिद्धामृतकौल'

(घ) कलियुग में—'मत्स्योदरकौल'[१]

योगिनीकौल मत्स्येन्द्रनाथ सिद्ध या सिद्धामृतमार्ग के अनुवर्ती थे, उन्होंने **'योगिनीकौलमार्ग'** का प्रवर्तन किया।

आचार्य गौड़पाद और 'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्'—आचार्य गौड़पाद ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ''श्रीविद्यारत्नसूत्र' में भी **'चिन्तामणिगृह'** और वहाँ विराजमान अनुत्तरा महाविद्या त्रिपुरसुन्दरी का वर्णन किया है। वे इसी सन्दर्भ में निम्न सूत्र की अवतारणा करते हुए कहते हैं—'अथ चिन्तामणिगृहस्थितः त्रिपुरसुन्दरी महाविद्याऽनुत्तरा॥ (१५)

शाक्त दार्शनिक आचार्य हयग्रीव की दृष्टि—

'हयग्रीवविद्याशाक्तसिद्धान्तदर्शनमिति' (१५।३।२६)

आचार्य हयग्रीव ने **'मणिद्वीप'** में निवास को ही **'मुक्ति'** माना है—

'मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति – हयग्रीवः ॥[२]
'सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः ॥[३]

'चिन्तामणि गेहः शक्तेः॥ (१०।३।१)

'मणिद्वीपमिति' (१०।२।६) 'विकार संस्कारात्मिका रत्नमयी ॥८॥

प्रकृतिसंस्कारात्मिका चिन्तारलमयी॥९॥ (चिन्तामणि।)

गृहान्तःस्था तेन शक्तिः॥१०॥ शाक्तज्ञानिनश्चिन्तामणि गेहम् ॥११॥

(१) **गाणपों का मत**—'चिन्तामणिगृहएव चिन्तामणिद्वीपमिति गाणपाः।' (१०।४।१)

(२) **गर्ग की दृष्टि**—'प्रपञ्चत्रयवासनायुक्तमणिद्वीपवासो न मुक्तिरिति **गर्गः**॥ (१०।३।१७)

'सर्वलोको मणिद्वीपम्' (८।४।१) (सर्वेलोकायस्यां संस्कार रूपेणप्रकृत्यात्मकास्तन्मयः सर्वलोकः ८।४।२ तत्रेश्वरी परशक्तिः॥ (८।४।३) (सर्वलोकः। ८।४।२) तत्रेश्वरी पराशक्तिः॥ (८।४।३) (सर्वलोक = ब्रह्मलोक। मणिद्विप।)

(३) **प्रजापति की दृष्टि**—न शक्तिलोकवासो मुक्तिः। ९।२।२
ब्रह्मलोकवासैव मुक्तिरिति प्रजापतिः॥ (९।२।२)

---

[१] कौलज्ञाननिर्णय

[२] शाक्तदर्शनम् (९अ०।२पा०।सूत्र १९)

[३] शा० द० (९।४।१४)

'मणिद्विपवासो मुक्तिरेवेति प्रजापतिः ॥ (९।२।१९)

(४) **बादरि का मत**—'न मुक्तिर्मणिद्वीपवासः॥९।३।१॥

न तेन मुक्तिः इति **बादरिः** ॥ (९।३।११)

सवलोकमणिद्वीपवासोमुक्तिरेवेति **हयग्रीवः** ॥ (९।४।१४)

कुण्डलिनी और 'श्रीविद्या' (षोडशी) के भाग

(१) **कुण्डलिनी के भाग**

(१) अग्नि (२) सूर्य (३) सोम
(४) परा कुण्डलिनी

(२) **श्रीविद्या (षोडशी) के भाग**

(१) अग्नि (२) सूर्य (३) सोम
(४) पराखण्ड

भगवती का निवासस्थान अग्नि, सूर्य एवं सोम तीनों खण्डों से अतीत (ऊर्ध्ववर्ती) **चतुर्थखण्ड** है। यह चतुर्थखण्ड **बैन्दवस्थान का मध्यभाग** है। इसे ही **'महाबिन्दु'** कहते हैं।

षोडशी विद्या का मुख्य भाग (भगवती का निवास स्थान) उसका **अन्तिम कूट** है।

(१) कुण्डलिनी	(२) खण्ड	(३) कूट
(१) अधःकुण्डलिनी	अग्निखण्ड	वाग्भवकूट
(२) मध्यकुण्डलिनी	सूर्यखण्ड	कामराजकूट
(३) ऊर्ध्वकुण्डलिनी	सोमखण्ड	शक्तिकूट
(४) पराकुण्डलिनी	पराखण्ड	तुर्यकूट

तुर्यकूट—भगवती का निवास स्थान है। यहाँ 'शक्ति' एवं 'शिव' में **'सामरस्य'** होता है। 'सुषुम्णा नाड़ी' 'सहस्रार चक्र' तक जाती है। **इड़ा-पिङ्गला (चन्द्र-सूर्य) वहाँ तक नहीं पहुँच पातीं।**

'सुधासिन्धु' एवं **'बिन्दुस्थान'**—**'सुधासिन्धु'** = अमृत समुद्र। **'सुरविटपिवाटीपरिवृते'** = सुरविटपों अर्थात् कल्पवृक्षों की वाटियों झम्पाओं से परिवृत। **'मणिद्वीप'** = मणिमयद्वीप। **'नीप'** = कदम्ब। **'चिन्तामणिगृह'** = चिन्तामणिविरचित मन्दिर॥ **'चिदानन्दलहरी'** = चित् = ज्ञान, (तदाकारः आनन्दः निरतिशयसुखं, तस्य **लहरीं**—उत्सेकरूपाम्॥

*** 'भैरव यामल' में भी 'सुधासिन्धु' का वर्णन है ***

'बिन्दुस्थानं-----------------------उपबर्हणे ॥'
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः ।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः ।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ।
शिवार्कमण्डलंभित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम् ।
तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा ॥

—(भैरव यामल)

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—[हे भगवती! अन्य मत वाले **(कौलाचारी)**—'त्रिकोण ही तेरा कुलगृह है''—इस प्रकार कहा करते हैं। ये **समयाचारी लोग**—'यह चतुष्कोण रूप बैन्दव स्थान ही (तेरा) कुलगृह है—इस प्रकार कहा करते हैं। (हे भगवती! तुम) उसी अमृत के सागर में जो कि मणियों से निर्मित है एवं सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणों के लिए भी अगम्य है, भगवान शिव (समय) के साथ विहार करती हो॥७]

सरोजिनी व्याख्या—'कौलमार्गी' एवं 'समयमार्गी' दोनों शाक्त सम्प्रदाय हैं और दोनों 'श्रीविद्या' के उपासक हैं किन्तु फिर भी दोनों में सैद्धान्तिक एवं साधनात्मक दोनों दृष्टियों में पर्याप्त मतभेद है।

कौलमार्ग के उपासक 'मूलाधारचक्र' में स्थित **'त्रिकोण'** के भीतर स्थित 'बिन्दु' को भगवती का स्थान मानते हैं किन्तु समय मार्ग के उपासक **'चतुष्कोण'** के मध्य स्थित **'बिन्दु'** को भगवती का स्थान मानते हैं।

भगवती का स्थान

(१) 'बिन्दु'
(**मूलाधारस्थ त्रिकोण** में स्थित
बिन्दु = **कौलमार्गी।**

(२) 'बिन्दु'
(**चतुष्कोण में स्थित त्रिकोण**
के मध्य वर्तमान बिन्दु **(समयमार्गी)**

(क) 'कौलाः आधारचक्रपूजारताः॥'

भगवती का निवास स्थान—'अगम्ये रश्मीनां अर्थात् यहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणें प्रवेश नहीं कर सकतीं। यह अत्यन्त अगम्य, गुप्त एवं दुष्प्राप्य है।

भगवती कुण्डलिनी का निवास इसी पीयूषसमुद्रात्मक ''सहस्रार'' में ही है—

'महीं मूलाधारे कमपि, मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने, हृदिमरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ॥[१]

(ख) **कौलमतानुसार**—इस मत के अनुसार **'श्रीचक्र'** में ९ त्रिकोण होते हैं। ये ही **९ 'त्रिकोण' ८ योनियाँ** के नाम से प्रख्यात हैं। इन ९ त्रिकोणों में से ५ शक्ति त्रिकोण नीचे की ओर मुख वाले होते हैं तथा ४ ऊर्ध्वमुख त्रिकोण 'शिवत्रिकोण' कहलाते हैं।

श्री चक्र में उपचक्रों का विधान या 'श्रीचक्र' का क्रम दो प्रकार का है—

[१] 'सृष्टि-क्रम' [२] 'संहार-क्रम'

(क) यदि ५ त्रिकोण (शक्तित्रिकोण) निम्नाभिमुखी होते हैं एवं ४ त्रिकोण (ऊर्ध्वमुखी शिवत्रिकोण) ऊर्ध्वमुखी होते हैं तो यह 'श्रीचक्र' का **'सृष्टिक्रम'** है।

(ख) यदि **'शक्तित्रिकोण'** ऊर्ध्वमुख होते हैं और **'शिवत्रिकोण'** अधोमुख होते हैं तो इस **'संहारक्रम'** कहते हैं।

कौलों की दृष्टि के अनुसार **'मूलाधारचक्र'** में जो योनिस्थान (त्रिकोण) है वही भगवती कुण्डलिनी का निवास स्थान है। इसी कारण कौलशक्ति (कुण्डलिनी) की उपासना मूलाधार चक्र में और तत्रस्थ त्रिकोण में करते हैं।

(क) **समयमार्गी** कहते हैं कि **कौल लोग** जो 'मूलाधार चक्र' में **शक्ति का पूजन** करते हैं वह त्याज्य है।

(ख) **समयमार्गी** कहते हैं कि शक्ति का पूजन **'मूलाधारचक्र'** में नहीं प्रत्युत् **'सहस्रार'** में करना चाहिए।

कौलों और समयमार्गियों का दृष्टिभेद एवं 'सुधासिन्धु'

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

(१) **त्रिकोण** ते **कौलाः** कुलगृहमिति प्राहुपरे ॥
(२) **चतुष्कोणं** प्राहुः **समयिन** इमे बैन्दवमिति ॥
(३) 'सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो ।
रगम्ये रश्मीनां समय सहिते त्वं विहरेस ॥' —सुभगोदय स्तुति (७)

---

[१] सौन्दर्य लहरी (शङ्कराचार्य) श्लोक क्र० ९

'वामकेश्वर तंत्र' में प्रतिपादित दृष्टि—

'बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः ।
तत्रैव नीप-श्रेणीच तन्मध्ये मणिमण्डपम् ।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम् ।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणो ।
सुधासिन्धुमध्येमणिद्वीपेरम्ये,
सुकल्पुमाकल्पकादम्बसन्त्रे ।
स्फुरत्स्वर्ण सिंहासने रत्नपीठे,
भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्नपूर्णाम् ॥'

* श्लोक क्र० ८ * भगवती का षट्चक्रात्मक राजसदन *

वर्ण्यविषय * भगवती का सदन *

'**त्रिखण्डं** ते चक्रं शुचि-रवि-शशाङ्कात्मकतया
मयूरवैः षट्त्रिंशदृशयुततया खण्डफलितैः ।
पृथिव्यादौ तत्त्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृत,
भवेन्मूलाधारात्प्रभृतितव षट्चक्रसदनम् ॥८॥'[१]

[**अर्थ**—(हे भगवती!) तेरा चक्र ('श्रीचक्र'/श्रीपुर) अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा से युक्त होने के कारण तीन सौ साठ रश्मियों से युक्त एवं (तीन) खण्डों से निर्मित है। ये तीन सौ रश्मियाँ पृथक-पृथक पृथिव्यादि तत्त्वों में उदित होती हुई विभक्त होती हैं और तू उनके द्वारा आवृत है। इस प्रकार मूलाधार आदि छः चक्रों वाला यह तेरा घर है।॥८॥]—

सरोजिनी व्याख्या—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि पिण्ड में महाभूतात्मक एवं मनसात्मक जो छः चक्र ('षट्चक्र') हैं वे ही तेरे घर हैं। **षटचक्र भगवती का सदन है—कुलगृह है।**

ये सारे पिण्डस्थ चक्र एवं 'श्रीचक्र' दोनों ही त्रिखण्डात्मक हैं।

'त्रिखण्ड ते चक्रं'—'श्रीचक्र' के खण्डत्रय

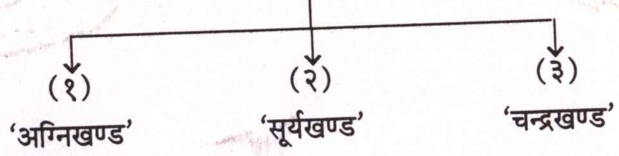

---

[१] पाठान्तर—'मयूखैः षट्त्रिंशतयुतमाखण्डै फलितैः।' 'मयूखैः षट्त्रिंशचछतयुततया खण्ड फलितैः।' 'भवेन्मूलाधारप्रभृति।'

* 'श्रीचक्र' एवं पिण्डस्थ चक्रों की त्रिखण्डात्मकता एवं पारस्परिक अन्तर्संबन्ध *

श्रीचक्र (चतुर्भिशिशवचक्रैश्च **शक्ति** चक्रैश्च पञ्चभिः ।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं **श्रीचक्रं** शिवयोर्वपुः ॥

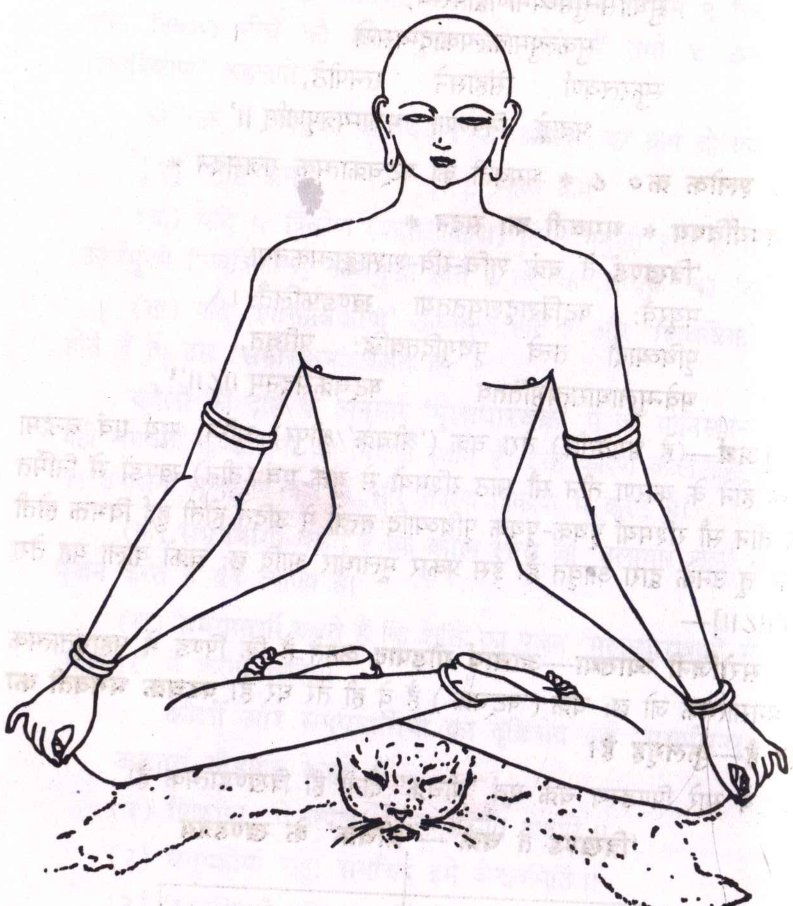

मूलाधार चक्र

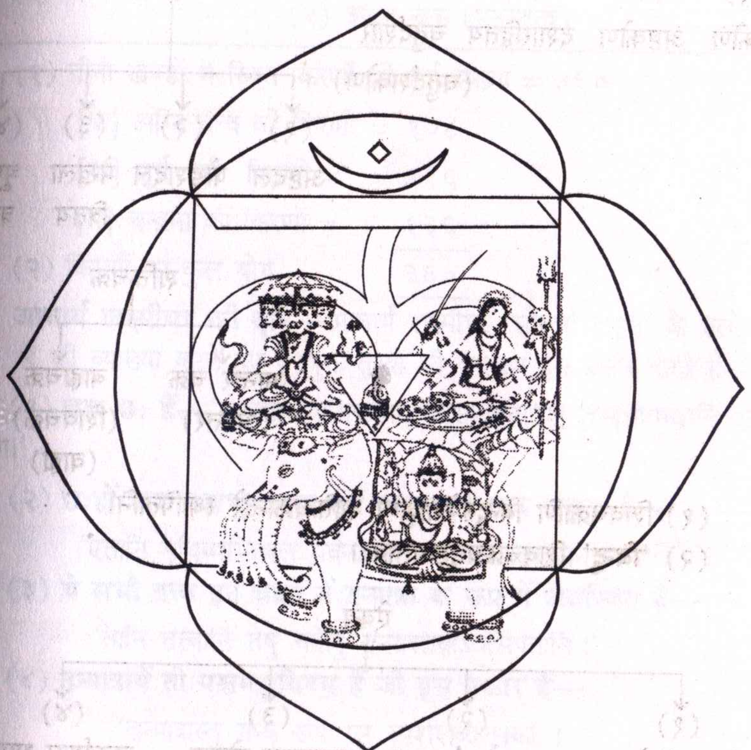

"श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।"

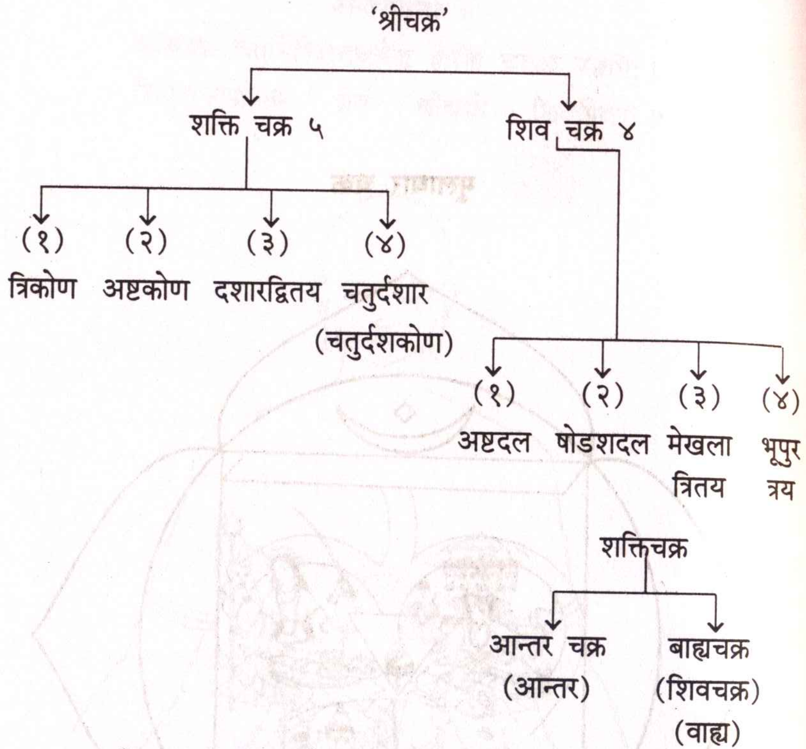
'श्रीचक्र'
शक्ति चक्र ५
शिव चक्र ४
(१) त्रिकोण
(२) अष्टकोण
(३) दशारद्वितय
(४) चतुर्दशार (चतुर्दशकोण)
(१) अष्टदल
(२) षोडशदल
(३) मेखला त्रितय
(४) भूपुर त्रय
शक्तिचक्र
आन्तर चक्र (आन्तर)
बाह्यचक्र (शिवचक्र) (वाह्य)

(१) शिवचक्राणि बिन्दुरुपेणाकृष्य शक्तिचक्रान्तरे स्थापितानि।

(२) **'बिन्दु'** शिवचक्रचतुष्ट्यात्मकः।

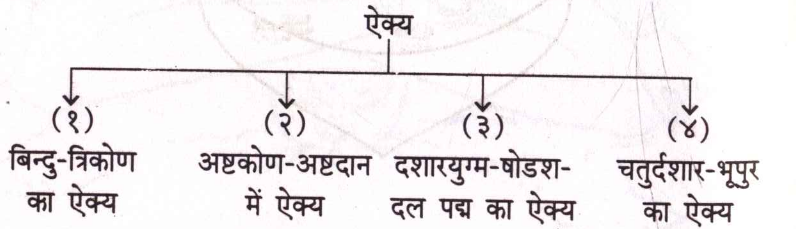
ऐक्य
(१) बिन्दु-त्रिकोण का ऐक्य
(२) अष्टकोण-अष्टदान में ऐक्य
(३) दशारयुग्म-षोडश-दल पद्म का ऐक्य
(४) चतुर्दशार-भूपुर का ऐक्य

—लक्ष्मीधराचार्य

'श्रीचक्र' के खण्ड	पिण्डस्थ षट्चक्रों के खण्ड
(क) **अग्नि खण्ड**	(१) मूलाधार चक्र (पृथ्वीतत्त्व) (२) स्वाधिष्ठान चक्र (जलतत्त्व)[1]
(ख) **सूर्यखण्ड**	(१) मणिपूर चक्र (अग्नितत्त्व) (२) अनाहत चक्र (वायु तत्त्व)
(ग) **सोम खण्ड**	(१) विशुद्ध चक्र (आकाशतत्त्व) (२) आज्ञा चक्र (मनस्तत्त्व)

(१) तीनों खण्डों में स्थित किरणों की पूर्ण संख्या = ३६०

[क] अग्नि तत्त्व की किरणों = १०८

[ख] सूर्य की किरणों = ११६

[ग] चन्द्रमा की किरणों = १३६

(२) किरणों का कुल योग ३६०

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर 'सौन्दर्य लहरी' के श्लोक क्र. सं. ९ की व्याख्या करते हुए उपर्युक्त तथ्यों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

(१) **चक्र छः हैं**—'मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशु द्धयाज्ञात्मकानि षट् चक्राणि।'

(२) **छःहों चक्र पञ्चभूतात्मक एवं आज्ञा मन तत्त्व संयुक्त है—**

'एतानि पृथिव्यग्निजल पवनाकाश मनस्तत्वात्मकानि।'

(३) **ये सभी तत्त्व इन चक्रों में तन्मात्रा के रूप में अवस्थित हैं—**

'तानि तत्त्वानि तेषु चक्रेषु तन्मात्रतयाऽवसिपतानि।'

(४) **तन्मात्रायें तो पञ्चमहाविषय हैं जो इस प्रकार हैं—**

'तन्मात्रास्तु गन्ध रूप रस स्पर्शशब्दात्मकाः।'

(५) **आज्ञाचक्रस्थ मनस्तत्व** ग्यारहवीं इन्द्रिय है अतः इन्द्रियाँ ११ हैं।

'आज्ञाचक्रस्थितेन मनस्तत्त्वेन एकादशेन्द्रियगरसः संगृहीतः।'

(६) इस प्रकार २१ तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया।

---

(१) **आचार्य शङ्कर के मतानुसार 'स्वाधिष्ठान चक्र' अग्नि** का एवं 'मणिपूरचक्र' **जलतत्त्व** का स्थान है। आचार्य **गौड़पाद की भी यही दृष्टि है** जो कि आचार्य शङ्कर के परमगुरु हैं। आचार्य शङ्कर ने 'सौन्दर्य लहरी' में अपने परम गरु की ही दृष्टि स्वीकार की है।

(७) कौल चक्रे **त्रिकोणामध्यगतो** बिन्दुः ।
समयचक्रे चतुष्कोणमध्यगतो बिन्दुः । (लक्ष्मीधर)

(८) इस प्रकार सोम-सूर्य-अनल पिण्ड-ब्रह्माण्ड में आवृत रहकर रहा करते हैं। पिण्डाण्ड ब्रह्माण्ड में ऐक्य होने के कारण पिण्डाण्डा वृत्ति ही ब्रह्माण्डा वृत्ति भी है।

(९) इस प्रकार 'पिण्ड' एवं 'ब्रह्माण्ड' दोनों का अतिक्रमण करके उनसे अत्युच्च धाम में **'सहस्त्र कमल'** स्थित है। **'सहस्त्र कमल'** ज्योत्स्नामय लोक है। वहाँ का चन्द्रमा **नित्यकल** है। उसकी कलायें उसमें नित्य रहती हैं उनका क्षय कभी नहीं हुआ करता।

शंका—'आज्ञा चक्रोपरि स्थितश्चन्द्रः'

'तवाज्ञाचक्रस्म्'—वाक्यों में जिस चन्द्रमा की बात की गई है वह **'चन्द्रकलाव स्थान** मात्र है न कि **चन्द्रमा का मूल स्थान।**

रुद्रयामलकार की दृष्टि—(श्री चक्र, खण्डत्रय एवं पिण्ड) 'रुद्रयामल तंत्र में कहा गय है कि **'चक्र'** और **'जगत'** ये दोनों ही **'अग्निषोमात्मक'** हैं। 'श्रीचक्र' सोम-सूर्य-अनल नामक खण्डत्रय में विभक्त है—

'अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत् ।
अग्नावर्त्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम् ।
'त्रिखण्ड मातृका चक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् ।'

खण्ड	**षट्चक्र**	**चक्रों के नाम**
(१) अग्नि खण्ड	पिण्ड के	(१) मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र
(२) सूर्य खण्ड	चक्रों के	(२) मणिपूर चक्र एवं अनाहते चक्र
(३) सोम खण्ड	साथ तादात्म्य	(३) विशुद्ध और आज्ञा चक्र।'

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर ने 'सौन्दर्य लहरी' के श्लाक क्रम संख्या १४ में लिखा है कि—

(१) आधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा चक्र नामक जो **'षट्चक्र'** हैं वे **श्री चक्र'** में अवस्थित हैं—

'आधारस्वाधिष्ठान मणिपूरानाहतविशुद्ध्यानाचक्रात्मकं **श्री चक्रं'**

(२) 'श्री चक्र' त्रिखण्डात्मक है—

'श्री चक्रं त्रिखण्ड सोमसूर्यानलात्मकम् ।'

(३) खण्डत्रय का विवरण इस प्रकार है—

(क) मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्रों का एक खण्ड है।

(ख) मणिपूर एवं अनाहत चक्रों का एक खण्ड है।

(ग) विशुद्धि एवं आज्ञा चक्रों का एक खण्ड है।

(४) (क) **प्रथम खण्ड** के ऊपर **'अग्निस्थान'** है। इसे ही **रुद्रग्रंथि'** कहते है।

(ख) **द्वितीय खण्ड** के ऊपर **'सूर्य स्थान'** है और उसे ही **'विष्णु ग्रंथि'** कहते हैं।

(ग) **तृतीय खण्ड** के ऊपर **'चन्द्र स्थान'** है और इसे ही **'ब्रह्मग्रंथि'** कहते हैं। 'सोमसूर्यानलात्मकं' कथन अवरोहणक्रमानुगत है।

(५) (क) **प्रथम खण्ड** के ऊपर सिथत जो **'वह्नितत्त्व'** है वह अपनी ज्वालाओं से समस्त प्रथम खण्ड को आवृत किए रहा करता है।

(ख) **द्वितीय खण्ड** के ऊपर सिति जो **'सूर्य'** है वह अपनी किरणों द्वारा द्वितीय खण्ड को आवृत करके रहा करता है।

(ग) **तृतीय खण्ड के ऊपर स्थित** जो **'चद्रमा'** वह अपनी कलाओं से तृतीय खण्ड को आवृत्त करके स्थित है।

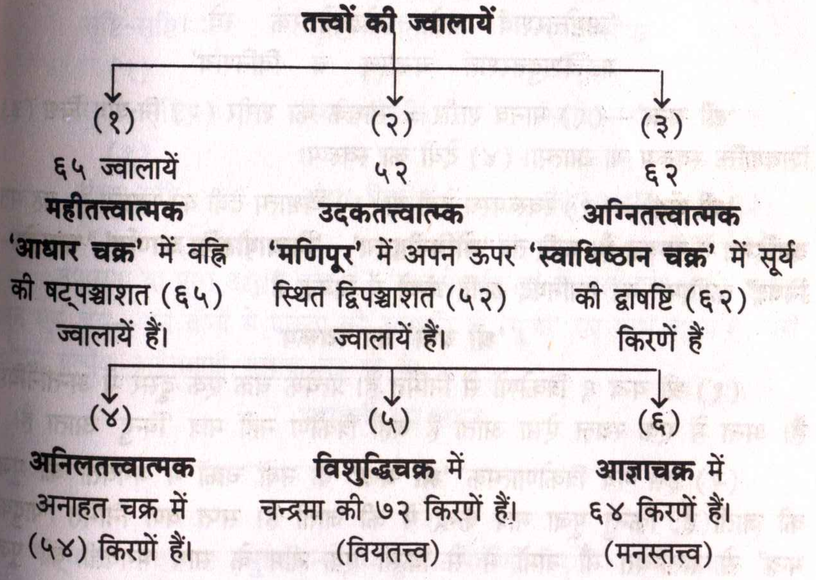

(१) ६५ ज्वालायें **महीतत्त्वात्मक** **'आधार चक्र'** में वह्नि की षट्पञ्चाशत (६५) ज्वालायें हैं।

(२) ५२ **उदकतत्त्वात्मक** **'मणिपूर'** में अपन ऊपर स्थित द्विपञ्चाशत (५२) ज्वालायें हैं।

(३) ६२ **अग्नितत्त्वात्मक** **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में सूर्य की द्वाषष्टि (६२) किरणें हैं

(४) **अनिलतत्त्वात्मक** अनाहत चक्र में (५४) किरणें हैं।

(५) **विशुद्धिचक्र** में चन्द्रमा की ७२ किरणें हैं। (वियतत्त्व)

(६) **आज्ञाचक्र** में ६४ किरणें हैं। (मनस्तत्त्व)

(१) अग्नितत्त्वात्म **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में सूर्य भी ६२ किरणें।

(२) अनिल तत्त्वात्मक अनाहत चक्र में ५४ किरणें

(३) सूर्य किरणों का **'मणिपूर चक्र'** को छोड़कर 'स्वाधिष्ठान चक्र' में

इसलिए प्रवेश होता है क्योंकि सूर्य एवं अग्नि दोनों एक ही हैं और इसलिए भी कि—अग्नि का सूर्य के भीतर ही अन्तर्भाव है।

(४) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** एवं **'मणिपूरक चक्र'** जो कि सूर्य एवं अग्नि के स्थान हैं—उन दोनों के स्थान के मध्य **'अग्निस्थान'** में **सूर्य का प्रवेश** एवं सूर्य के स्थान में **अग्नि का प्रवेश** है और यह जगत को मस्मीभूत करने वाले अग्नि का शामक संवर्त मेघात्मक सूर्य किरण जनित वर्षा की उत्पत्ति के अच्छे उद्देश्य से है।

(५) इस प्रकार सूर्य की ११६ (षोडशोत्तर शत) किरणें हैं।

(६) वियत्तत्त्वात्मक **'विशुद्धि चक्र'** में चन्द्रमा की ७२ (द्विसप्तति) हैं।

(७) मनस्तत्त्वात्मक **'आज्ञा चक्र'** में ६४ (चतुष्षष्टि) किरणें हैं।

(८) चन्द्रमा-की षट्त्रिंशदुत्तर शत (३६०) कलायें हैं।[1]

भैरवयामलकार की दृष्टि—'भैरव यामल के **'भैरवाष्टक प्रस्ताव'** में कहा गया है कि—

'अष्टोत्तरशवं वह्नेः षोडशोत्तरकं रवेः ।
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य च विनिर्णय'

'श्री यन्त्र'—(१) मानव शरीर = साधक का शरीर (२) निःशेष विश्व (३) शिवशक्ति स्वरूप या आत्मा। (४) देवी का स्वरूप।

'श्री यंत्र' = (१) स्वरूपस्थ देवी या (२) विश्वात्म देवी का स्वरूप है। यह मत **कादिमत** से सम्बद्ध है। कादि तंत्र **'योगिनीहृदय'** **'नित्याषोडशि कार्णव'** **'भावनोपनिषद'** कादिमत का उपनिषद आदि ग्रंन्थों में निबद्ध है ।

'श्री यन्त्र' का स्वरूप

(१) श्री यन्त्र ९ त्रिकोणों से निर्मित है। प्रत्येक चक्र एक दूसरे में अन्तर्निविष्ट है। अन्त में एक स्थल ऐसा आता है जहाँ त्रिकोण नहीं मात्र 'बिन्दु' आता है।

(२) इस नव त्रिकोणात्मक **'श्री यन्त्र'** के नवों चक्रों में भगवती की पूजा की जाती है; किन्तु पूजा मात्र केन्द्र में की जाती है। सप्त वर्ण निर्मित 'पादुका मन्त्र' से समन्वित नौ नामों में से किसी एक नाम के साथ भगवती की पूजा की जाती है।

---

[1] 'आधार चक्र' में वह्नि की ६५ ज्वालायें हैं। उदक तत्त्व वाले मणिपूरचक्र के ऊपर ५२ ज्वालायें हैं। वह्नि की १०८ ज्वालायें हैं। (लक्ष्मीधरा सौ०ल० १४)

'श्री चक्र'

(१) **'शिवचक्र'** (९ में से ४ त्रिकोण : ऊर्ध्वमुखी, 'श्रीकण्ठ' 'शिवतत्त्व' चक्र = **'शक्तिचक्र'**

(२) 'शक्तिचक्र' ५ चक्र 'शक्तिचक्र शिवयुवित' निम्नाभिमुखी

सभी चक्र शिव बिन्दु की **'मूल प्रकृति'** से निर्मित हैं। नवीं रचना **'मूल प्रकृति'** है तथा शेष आठ रचनायें (श्री चक्र के आठ चक्र) प्रकृति की विकृतियाँ है।

(क) नौ चक्र 'सृष्टि' (Creation) 'स्थिति' (Maintenance) एव संहार (Destruction) तीनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सृष्टि-स्थित-संहार के भेद

(१)	(२)	(३)	३
सृष्टि-सृष्टि	सृष्टि-स्थिति	सृष्टि-संहार	३
(१)	(२)	(३)	
स्थिति-सृष्टि	स्थिति-स्थिति	स्थिति-संहार	३
(१)	(२)	(३)	
संहार-सृष्टि	संहार-स्थिति	संहार-संहार	३
		—योग	[९]

उपासना या पूजा उद्देश्य क्या है? **'भावनोपनिषद'** में कहा गया है कि ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय—इन तीनों में एकता की अनुभूति ही **'पूजा'** का परम लक्ष्य है। यही उद्देश्य प्रत्येक अद्वैतवादी साधक का भी है।

भगवती का सदन

(१) **षट्चक्र**

(२) (सुधासिन्धोर्मध्येसुरविटपिवाणीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे
—सौन्दर्य लहरी

(३) **नवचक्र**

(१) मूलाधार चक्र	(१) सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र—बिन्दु (रक्त) सहस्रार
(२) स्वाधिष्ठान चक्र	(२) सर्वसिद्धिप्रद—त्रिकोण
(३) मणिपूरक चक्र	(३) सर्वरोगहर चक्र—अष्टार (अष्टकोण)

(४) अनाहत चक्र
(५) विशुद्धाख्य चक्र
(६) आज्ञा चक्र
(७) सहस्त्रदलपद्म/शून्य
चक्र (सहस्त्रार शिवपुर)

(४) सर्वरक्षाकर चक्र—अन्तर्दशार
(५) सर्वार्थसाधक चक्र—बहिर्दशार
(६) सर्वसौभाग्यदायक—चतुर्दशार
(७) सर्वसंक्षोभण—अष्टदल चक्र

(८) सर्वाशापरिपूरक-षोडशार चक्र
त्रिवलय, त्रिरेखांकित प्राकार
५ शक्तिकोण + ४ शिवकोण→ (९) त्रैलोक्य मोहन-भूपुर

'श्रीचक्र'

('१) बिन्दु—त्रिकोण चक्र
(२) त्रिकोण चक्र —अष्टकोण } (श्रीचक्र' श्री विद्या का स्थूल शरीर है। वही महात्रिपुर सुन्दरी का निवास-सदन है।

'त्रिकोणौरष्टारं त्रिमिरपि **दशारं** समुद्भू
दृशारं भूगेहादपि च भुवनाश्र समभवत्।
ततोऽभून्नागारं **नृपतिदलमस्मात्त्रिवलय,**
चतुर्द्वाः प्रकार त्रितय मिदमेवाम्ब शरणम् ॥[1]

—गौड़पादाचार्य

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपिभ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्त्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥[2]

—शंकराचार्य

* श्लोक क्रमांक-९ *

(वर्ण्य विषय) *** भगवती के चरण रज और काल तत्त्व ***

शतं चाष्टौ वह्ने शतमपि कलाः षोडश रवेः।
शतं षट च त्रिंशत्सितमय मूयरवाश्चरणजाः।
य एते षष्टिश्च त्रिशतमभयं स्त्वच्चरणजाः।
महाकौलैस्तस्मान्नहि तव शिवेकालकलनाः[3] ॥९॥

[**अर्थ**—हे शिवे! अग्नि की १०८ (किरणों) सूर्य की ११६ (किरणें) एवं चन्द्रमा की १३६ (किरणें) जो कि **'कलायें'** है वे किरणें तुम्हारे श्री चरणों की महारज हैं (चरणों से उत्पन्न हुई हैं)।

तुम्हारे चरणों से उत्पन्न ये जो तीन सौ साठ, अभवात्मक किरणें हैं (उनके चरण रज बनकर रहने के कारण) महाकाल द्वारा भी आपके काल कल कलना सम्भव नहीं हैं (अर्थात् आप महाकाल से भी अतीत हैं।)॥९॥]

---

[1] सुभगोदयस्तुति (१७)
[2] सौन्दर्यलहरी (९)
[3] **पाठान्तर**—षट्त्रिंशद्वै (अथवा 'द्वे') सितमयि। चरणगा। महाकालस्तमात्।

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) ६ चक्रों से ग्रथित सुषुम्णामार्ग ही भगवती का अपना सदन है।

(२) समयाचारी, **ब्राह्मपूजा** की निषिद्ध मानने के कारण, सुषुम्णाःपथ को ही 'श्री चक्र' मानते हैं।

(३) इस श्री चक्र के विषय में आचार्य शङ्कर ने तो यह कहा था कि—'शरीर ही श्री चक्र' है और यह भी कहा कि 'शक्ति शिव का शरीर है'—

'शरीरं त्वं शंभो, शशि मिहिरवक्षोरुहयुगं।' (सौ. ल. ३४)
[हे भगवति! शम्भोस्त्वं शशि मिहिर वक्षोरुहयुगं शरीरं भवसि।)]

'श्री चक्र' और उसका स्वरूप—आचार्य गौड़पाद **'श्री चक्र'** को त्रिखण्डात्मक मानते हैं। वे कहते हैं—'त्रिखण्डं ते चक्र'

ये खण्ड किस स्वरूप के हैं? आचार्य भी कहते है—

'(त्रिखण्डते चक्रं) शुचि-रवि-शशाङ्कात्मकतया।'

श्री चक्र के खण्डमय

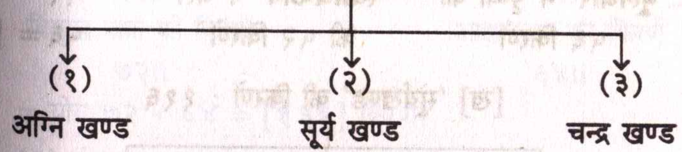

'रुद्रयामल तन्त्र' में प्रतिपादित दृष्टि—उसमें कहा गया है—

'अग्नीषोमात्मकं चक्र मग्नीषोममयं जगत्।
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम्
त्रिखण्डं मातृका चक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्' ॥

इन तीनों खण्डों में स्थित जो किरणे हैं उन सब की सम्मिलित संख्या ३६० है। इन्हीं ३६० किरणें से यह चक्र (श्री चक्र) आवृत है।

(क) **'अग्निखण्ड'** की किरणें = १०८ किरणें॥

(मूलाधार चक्र में पृथ्वी तत्त्व की किरणें)

(१) ५ महाभूत ५ तन्मात्रायें ५ कर्मेन्द्रियाँ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ ४ अन्तःकरण चतुष्टय

१ कला १ प्रकृति १ महत १ पुरुष = २८

(क) शैव किरणें = २८

(ख) शक्ति सम्बन्धी = २८ [५६] किरणें

(२) स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित जल की ५२ किरणें

५ महाभूत ५ कर्मेन्द्रियाँ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ १० इन्द्रियों के कार्य १ मन = २६

(क) शिव सम्बन्धी किरणें—२६

(ख) शक्ति सम्बन्धी किरणें—२६ [५२] किरणें

'अग्निखण्ड' १०८ किरणें

(क) **'मूलधार'** में पृथ्वी की ५६ किरणें

'स्वाधिष्ठान' में जल की ५२ किरणें

योग ५२
५६ = [१०८]

[ख] 'सूर्यखण्ड' की किरणें : ११६

(१) **मणिपूर चक्र** में अग्नि की ६२ किरणें

(२) अनाहत चक्र (हृदय में स्थित वायु की ५४ किरणें।

अर्थात्—

(१) अग्नि की किरणें = ६२

(२) वायु की किरणें = ५४ [११६]

(१) 'मणिपूरक चक्र' में अग्नि की ६२ किरणें

(१) (२) (३) (४) (५) (६)

५ महाभूत ५ तन्मात्रायें ५ कर्मेन्द्रियाँ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ १० इन्द्रियों के कार्य १ मन = ३१

(१) शिव सम्बन्धी किरणें = ३१

(२) शक्ति सम्बन्धी किरणें = ३१ [६२] किरणें।

(२) 'अनाहत चक्र' में वायु की ५४ किरणें

(१) ५ महाभूत (२) ५ तन्मात्रायें (३) ५ कर्मेन्द्रियाँ (४) ५ ज्ञानेन्द्रियाँ

(५) ४ अन्तःकरण (६) १ कला (७) १ प्रकृति (८) १ पुरुष =२७

(१) शिव सम्बन्धी किरणें = २७

(२) शक्ति सम्बन्धी किरणे = २७ [५४] किरणें।

[ग] 'चन्द्रखण्ड' की किरणें = १३६

(१) विशुद्ध चक्र की किरणें ७२॥

(२) आज्ञा चक्र की किरणें ६४॥

= योग ७२ + ६४ = [१३६] किरणें।

(१) 'विशुद्ध चक्र' में आकाश तत्त्व की किरणें = ७२

सारांश—(१) शिव की किरणें =३६
(२) शक्ति की किरणें =३६ [७२] किरणें।

(२) **'आज्ञा चक्र'** में ६४ किरणें—शिव, शक्ति, सदारव्य एवं महेश्वर इन ४ तत्त्वों को छोड़कर शेष ३२ तत्त्वों के (१) शिव, (२) शक्ति के द्विधा भेद के कारण निर्मित।

(क) ३२ शिव-सम्बद्ध किरणें

(ख) ३२ शक्ति-सम्बद्ध किरणें [६४] किरणें।

७२ = किरणें 'विशुद्ध चक्र' में आकाश तत्त्व भी हैं।

६४ = किरणें 'आज्ञा चक्र' में स्थित हैं।

महायोग ७२ + ६४ = [५४] किरणें। ये समस्त किरणें—३६० किरणें।

(क) **'अग्नि खण्ड'** की किरणें = १०८
(ख) **'सूर्य खण्ड'** की किरणें = ११६
(ग) **'चन्द्र खण्ड'** की किरणें = १३६
[३६०] किरणें।

भगवती के चरणों के रज से उत्पन्न हुई हैं। भगवती महात्रिपुर सुन्दरी इन सभी से अतीत एवं अत्यन्त ऊपर **बैन्दव स्थान ('सहस्रार')** में निवास किया करती हैं। निष्कर्ष यह कि समस्त स्थान **भगवती के चरणरेणु** से ही निर्मित हैं।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर भी अपने परम गुरु आचार्य गौड़पाद के सिद्धान्तों का अनुवर्तन करते हुए **तत्त्वों एवं किरणें** में **अन्तर्सम्बन्ध** बताते हुए कहते हैं—

> 'क्षितौ षट्पञ्चाशद्विसमधिकपञ्चाशदुदके ।
> हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले ।।
> दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरितिये ।
> मयूषास्तेषामप्युपरि तव पदाम्बुजयुगम् ।।'[१]

अर्थात् पृथ्वी तत्त्व में ५६; जल तत्त्व में ५२, अग्नि तत्त्व में ६२, वायु तत्त्व में ५४, आकाश तत्त्व में ७२ एवं मनस्तत्त्व में ६४ मयूषें (रश्मियाँ) भगवती के दोनों श्री चरणों में स्थित हैं।

ध्यातव्य बिन्दु—

(१) एक संवत्सर (वर्ष) में ३६० दिन रूपी किरणें होती हैं। ३६० किरणें छः ऋतुओं विभाजित हैं।

(२) छः चक्र वर्ष की छः ऋतुओं से समीकृत भी है।

(क) **बसन्त की समानता व 'मूलाधार'** से है—क्योंकि वसन्त में **पृथ्वी का वेध** होकर **पुष्प खिलते हैं** और **सुगन्ध का विकास** होता है।

(ख) **ग्रीष्म ऋतु की समानता स्वाधिष्ठान'** से है क्योंकि—ग्रीष्म ऋतु में **जल का वेध** होकर **जल सूखने** लगता है।

(ग) **वर्षा ऋतु की समानता 'मणिपूर' से है क्योंकि**—पावस ऋतु में **अग्नि का वेध** होकर **विद्युत एवं मेघ का विकास** होता है।

---

[१] सौन्दर्य लहरी (१४)

(घ) **शरदर्तु की समानता 'अनाहत चक्र'** से है क्योंकि—शरद ऋतु में **वायु का वेध** होकर वातावरण शान्त निर्मल हो जाता है।

(ङ) **हेमन्त ऋतु की समानता 'विशुद्ध चक्र'** से है क्योंकि—हेमन्त ऋतु में **आकाश का वेध होकर शीत का प्राधान्य** हो जाता है।

(च) **शिशिर ऋतु में समानता 'आज्ञाचक्र'** से है क्योंकि—इसमें चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है।

सारांश यह कि—

(१) ३६० किरणों वर्ष की ३६० तिथियों से साम्य रती हैं। पिण्ड के संवत्सर का पुरुष ही आधार है।

(२) कृष्णापक्ष एवं शुक्ल पक्ष भी शक्ति-शिव से समीकृत किये जा सकती हैं।

(३) कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की अन्वय एवं शुक्ल पक्ष में तन्नेय भूमिका माननी चाहिए।

(४) उत्तरायण एवं दक्षिणायान को सूर्य (प्राण) की उन्नेय एवं अन्वयात्मक भूमिकाओं से समीकृत किया जा सकता है।

कौलमार्गियों की पूजा—कौलमत के अनुयायी भगवती का पूजन मूलाधार चक्र में ही किया करते हैं। इसी कारण वे भगवती के काल (संवत्सर रूपी चक्र) से अनभिज्ञ हैं और वे भगवती के संवत्सरात्मक (कालात्मक) स्वरूप को नही जानते—'महाकौलेस्तस्मात्र **हि तव शिवे! काल-कलना'** संवत्सर भी त्रिखण्डात्मक हैं।

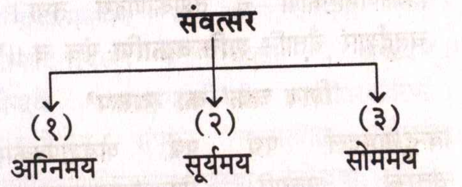

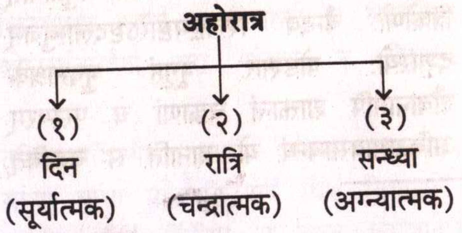

(क) ब्रह्माण्ड ही **श्री चक्र** है या

(ख) **'श्री चक्र'** ब्रह्माण्ड एवं शरीर का प्रतीक है।

(ग) **'श्री चक्र'** भगवती का शरीर एवं आसन भी है।

'भैरवयामल' में प्रतिपादित दृष्टि—'भैरवयामल' की 'चन्द्रज्ञानविद्या' में कहा गया है कि 'कलाविद्या' पराशक्ति श्रीचक्राकाररूपिणी है। उसके मध्य में जो **'बैन्दवस्थान'** है उसमें परमेश्वरी का निवास है—

'कालाविद्या पराशक्तिः श्रीचक्राकाररूपिणी।
तन्मध्ये बैन्दव स्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी॥'

'श्री चक्र' ब्रह्माण्डकाराकारित भगवती त्रिपुर सुन्दरी का ही एक रेखात्मक प्रकाशन है।[1]

रुद्रयामलकार की दृष्टि—पृश्नयोनाम मुनयः सर्वे चक्रमुपाश्रिताः।
सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्व पूजिताम्॥
अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्।
अग्नाबन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम्॥
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यनलात्मकम्।
महालक्ष्म्याः परं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः॥

भैरवयामलकार की दृष्टि— रुद्र यामल श्री चक्र शिवशक्ति का शरीर है—

'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं **शिवयोर्वपुः**॥'

* 'शक्ति चक्र' का स्वरूप' *

त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि **शक्तिचक्राणि** पंच च॥[2]

'शिव चक्र' का स्वरूप[3]

बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम्
चतुरस्त्रं चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्॥
त्रिकोणो बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके।
शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित्॥

---

[1] भैरवयामल
[2] भैरवयामल (चन्द्रज्ञान विद्या)
[3] भैरवयामल

त्रिकोणामष्टकोणं च दशकोण द्वयं तथा।
मनुकोणं च चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट् क्रमात्॥
मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः॥
नवाधार स्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति।
त्रिकोणरूपिणि शक्तिर्बिन्दुरूपः शिवः स्वयम्॥
अविनाभावसम्बन्धस्तस्माद् बिन्दु त्रिकोणाोः॥

—भैरव यामल

* रश्मि-विज्ञान और उसका महत्व *

भैरवयामलकार की दृष्टि—

माहात्म्यमत्र रश्मीनां यामले भैरवाभिधे।
रहस्यमनुपृच्छन्त्यै पार्वत्यै शम्भुनोदतिम्॥
साधु-साधु महाभागे पृष्टं त्रैलोक्य सुन्दरि।
गुह्याद गुह्यतमं ज्ञानं न कुत्रापि प्रकाशितम्॥
कलाविद्या पराशक्तिः श्रीचक्राकाररुपिणी।
तन्मध्ये **बैन्दवं स्थानं** तत्रास्ते **परमेश्वरी**।
सदाशिवेन संयुक्ता सर्वतत्वातिगामिनी॥
चक्र त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरी।
पञ्चभूतात्मकं चैव तन्मात्रात्मकमेव च॥
इन्द्रियात्मकमेंव च मनस्तत्वात्मकं तथा।
मायादितत्त्वरूपं च तत्वातीतं च **बैन्दवम्**॥
बैन्दवे जगदुत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी।
सदाशिवेन संपृक्ता तत्त्वातीता महेश्वरी॥
ज्योतिरूपानिराकारा यस्या देहोद्भवाः शिवे।
किरणाश्च सहस्त्रं च द्विसहस्त्रं च लक्षकम्।
कोटिरर्बुदमेवैषां परा संख्या न विद्यते॥

—भैरव यामल

तमिवानुप्रविश्यैव भाति विश्वं चराचरं।
यस्या भासा महेशानि सर्वं विश्वं विभासते॥
तद्भसा रहितं किंचिन्न च यच्च प्रकाशते।
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिदरूपायाश्चितं विना।

—भैरव यामल

भैरव यामलकार की दृष्टि—

आन्ध्यमापद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम् ।
तेषामनन्त कोटीनां मयूरखानां महेश्वरी ॥
मध्ये षष्ट्युत्तरं देवि! त्रिशनं किरणाः शिवे ।
ब्रह्माण्ड व्यश्नुवानास्ते सोमसूर्यानलात्मना ॥

—भैरव यामल

अग्नेरष्टोत्तरशतं षोडशोत्तरकं रेवः ।
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य किरणाः शिवे ।
ब्रह्माण्डं भासयन्तस्ते पिण्डाण्डमपि शांकरी ।
दिवा सूर्यस्तथा रात्रौ सोमो वह्निश्च संध्ययोः ॥

—भैरव यामल

प्रकाशयन्तः कालीस्ते तस्मात्कालात्मास्त्रयः ।
षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं दिन्यान्येव तु हायने ॥

—भैरव यामल

(क) **'श्री चक्र'** (१) **सूर्यात्मक,** (२) **सोमात्मक** एवं (३) **अनात्मक** है।

(ख) **'श्री चक्र' में ४३ त्रिकोण हैं।**

सूर्य की २२ कलायें हैं। २२ नित्यायें हैं। २२ राशियाँ हैं। ३ वेद है। चार स्वर हैं। सभी का योग ४३ होने से यह **सूर्यात्मक** है।

(ग) सेम की १६ कलाओं तथा २७ नक्षत्रों का योग ४३ होने से यह **सोमात्मक** होता है।

(घ) **'त्रिकोण'** तो स्वयमेव अग्नि का स्थान है। तत्रस्थ बिन्दु अग्नि है। **'अष्टार'** ४ प्रकार की अग्नि का द्योतक है। **'बहिर्दशार'** १० विभूतियों का द्योतक है। **'चतुर्दशार'** १४ भुवनों का द्योतक है। इस प्रकार यह **अनलात्मक** भी है।

श्लोक क्रमांक१०—श्री चक्रस्थ नवचक्रो एवं पिण्डस्थ षट्चक्रों में अन्तसम्बन्ध—

'त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने **तेऽष्टारमनघे ।**
भवेत्**स्वाधिष्ठानं** पुनरपि **दशारं मणिपुरम्** ॥
दशारं ते **संवित्कमलमथ मन्वश्रकमुमे ।**
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो **बैन्दवगृहम्** ॥१०॥

[**अर्थ**—(हे निष्नाय सुन्दरी! महात्रिपुरे! (श्री चक्र के मध्य में अवस्थित) **त्रिकोण** (पिण्डस्थित) **'मूलाधार चक्र'** है। (श्री चक्र में अवस्थित जो) **'अष्टार'** है वह (पिण्डस्थित) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** है और जो (श्री चक्रस्थ) **'अन्तर्दशार'** है वह पण्डिस्थ **'मणिपूरकचक्र'** एवं श्रीचक्रस्थ **'बहिर्दशार'** (पिण्डस्थ) **'संवित् कमल'** या **'अनाहतचक्र'** है। हे उमा! जो (श्रीचक्रस्थ) **'चतुर्दशार'** है वह (पिण्डस्थ **'विशुद्ध चक्र'** है और (जो श्री चक्र में) शिवस्थान है वही (पिण्डस्थ) 'आज्ञाचक्र' है और उसके बाद **'बैन्दव स्थान'** है॥१०॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य शङ्कर ने श्लोक क्रमांक ८ में 'श्री चक्र' को त्रिखण्डात्मक एवं प्रकाशत्रयात्मक कहकर उनका पिण्डस्थ षट्चक्रों के साथ ऐक्य सम्बन्ध बताया था किन्तु श्लोक १० में उन्होंने 'श्री चक्र' के प्रत्येक चक्र का शरीर में स्थित सप्त चक्रों के साथ उनके अन्तसम्बन्ध पर प्रकाश डाला है।

'श्री चक्र' की नौ योनियाँ

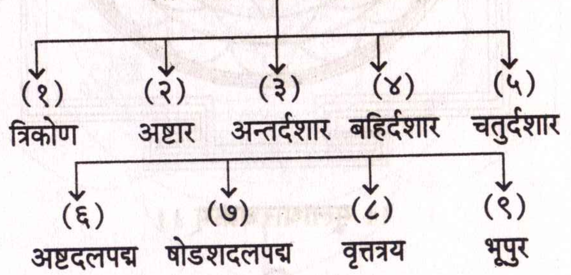

'शिवचक्र' और 'शक्तिचक्र'

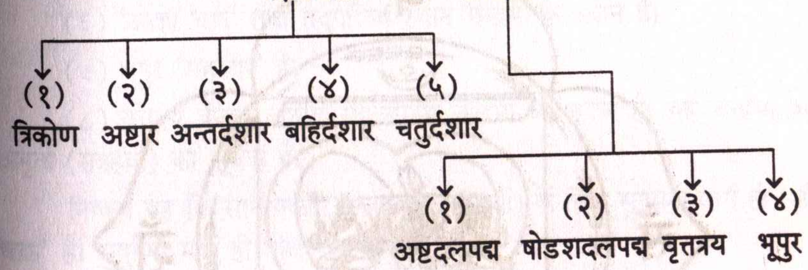

चतुष्कोण 'भूपुर' है। वही वहस्त्रार है। वृत्तत्रय बैन्दव स्थान है।

(१) ५ **शक्ति चक्र** ही पाँच पिण्डस्थ चक्र हैं अर्थात् वे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत एवं विशुद्ध चक्र हैं।

(२) 'आज्ञा चक्र' तथा इससे ऊपर के स्थान **'शिव चक्र'** है।

(३) 'अष्टदल' एवं 'षोडश दल' (शिव चक्रों के प्रथम चक्रद्वय) **चन्द्रमा के द्योतक हैं।**

।। श्रीयन्त्र ।।

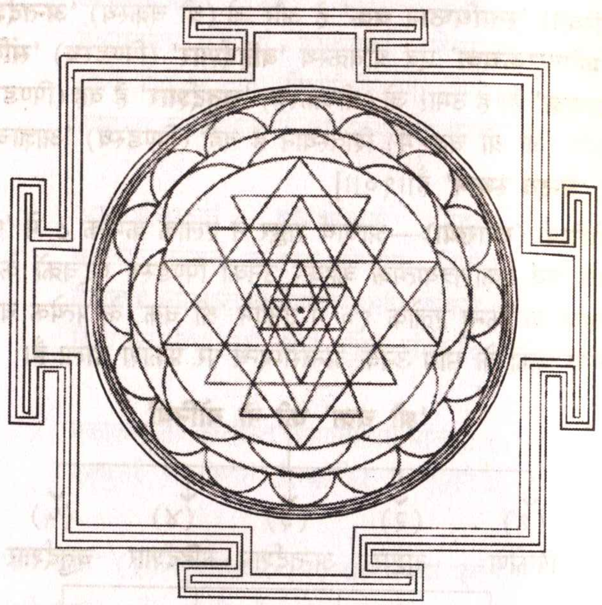

।। मूलाधारचक्रम् ।।

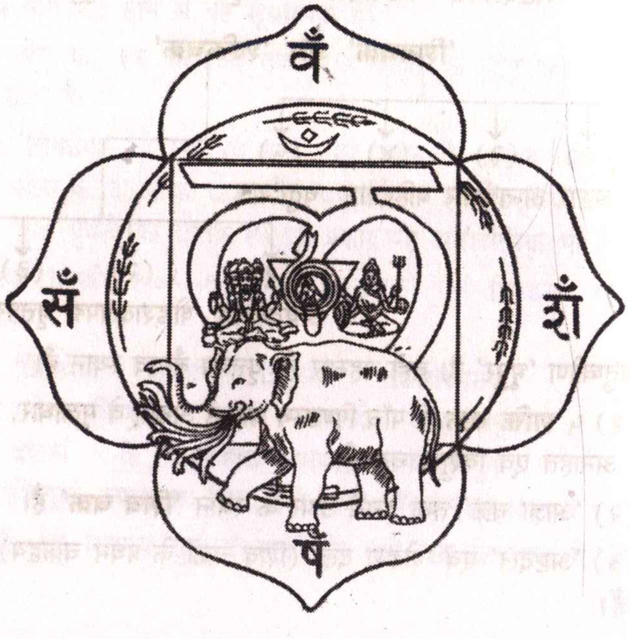

।। स्वाधिष्ठानचक्र ।।

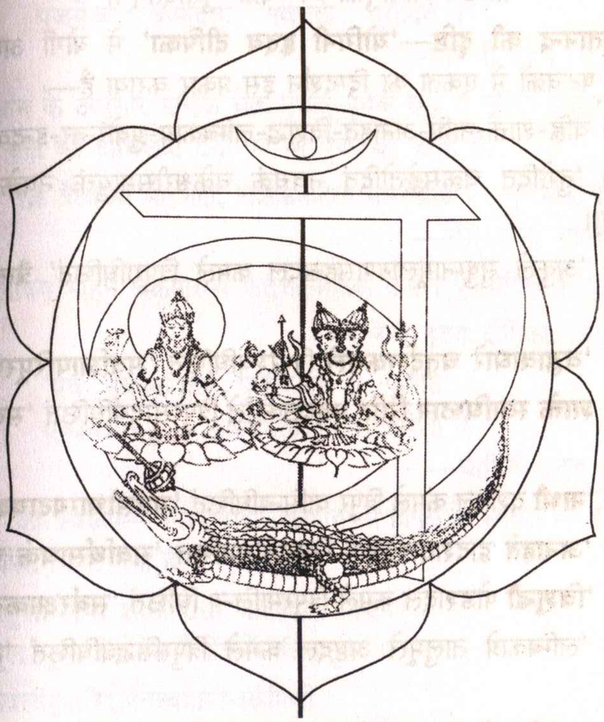

(६) 'आज्ञा चक्र' तथा तदुपरिस्थ स्थान चन्द्रमा के स्थान है।

(७) भूपुर 'सहस्रार' है।

(८) वृत्तत्रय बैन्दव अर्थात् सहस्रारस्थ चन्द्रमा का स्थान है। यह चन्द्रमा की अमृता (सत्रहवीं) का सूचक है।

निष्कर्ष यह कि सामयिकों (समयमतावलम्बियों) के लिए सुषुम्णा मार्ग ही **'श्री चक्र'** है। सुषुम्णा मार्ग ही मोक्ष का मार्ग है।

'सुषुम्ना तिसृषु श्रेष्ठा वैष्णवी मुक्तिमार्गदा। श्री चक्र की आन्तर भावना के साथ पूजा करनी चाहिए। जो देह को 'श्री चक्र' के रूप में अनुभूत कर चुका हो उसे बाह्यवर्ती पूजा की क्या आवश्यकता है?

* नव चक्र *

'श्री चक्र' नौ चक्रों की समष्टि है। **'योगिनी हृदय'** में इन्हें इस प्रकार सङ्केतित किया गया है—

'अकुलादिषु पूर्वोक्त स्थानेष परिचिन्तयेत् ।
चक्रेश्वरी समायुक्तां न चक्रं पुरोदितम् ॥'[१]

अमृतानन्द की दृष्टि—'योगिनी हृदय दीपिका' में योगी अमृतानन्द ने श्रीचक्र एवं षटचक्रों में एकता का दिग्दर्शन इस प्रकार कराया है—

(१) वह्नि-शाक्त-नाभि-अनाहत-विशुद्ध-लम्बिकाग्र-भ्रुवोरन्तर-इन्दवो गृह्यन्ते।

(२) 'तुरोदित चक्रसङ्केतोदितं नवचक्रं चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवक्रेश्वर्याधिष्ठितं परिचिन्तयेत्।।

(३) 'अकुले सुषुम्नामूलारुणसहस्रदल कमले त्रिपुराधिष्ठितं' **त्रैलोक्यमोहत चक्रंम्** ।

(४) **'वह्नावाधारे चतुर्दलकमले** त्रिपुरेश्यधिष्ठितं **'सर्वाशापरिपूरणं चक्रम्**।

(५) **शाक्ते स्वाधिष्ठान सिति** षड्दलकमले त्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितं **'सर्वसंक्षोभणं चक्रम्** '।

(६) **'नाभौ** दशदल कमले त्रिपुर वासिन्यधिष्ठितं **'सर्वसौभाग्यदायक चक्रम्**'।

(७) **'अनाहते** द्वादशदलकमले त्रिपुराश्रीसमष्ठितं **'सर्वार्थसाधकं चक्रम्**'।

(८) **'विशुद्धौ** षोडशदल कमले त्रिपुरमालिन्य धिष्ठितं **'सर्वरक्षाकरं चक्रम्**'।

(९) 'लम्बिकाग्रे तालुमूले अष्टदल कमले त्रिपुरसिद्धयधिष्ठितं **'सर्वरोगहरं चक्रम्'**।

(१०) 'भ्रुवोरन्तरे द्विदलकमले त्रिपुराम्बिकाधिष्ठितं **'सर्वसिद्धिप्रदं चक्रम्**'।

(११) 'इन्दौ ललाटे बिन्दौ महात्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितं **'सर्वानन्दमयं चक्रं**' भावयेदित्यर्थः॥-

* नव चक्र और उसमें अवस्थित शक्तियाँ *

महादेव श्री भैरव देवी को समझाते हुए प्रत्येक चक्र की अधिष्ठात्री देवी का नामोल्लेख इस प्रकार करते हैं—

'तासां नामानि वक्ष्यामि यथानुक्रमयोगतः ।
तत्राद्या **त्रिपुरा** देवी द्वितीया **त्रिपुरेश्वरी** ॥
तृतीया च तथा प्रोक्ता देवी **त्रिपुरसुन्दरी** ।
चतुर्थी च महादेवी देवी **त्रिपुरवासिनी** ॥
पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात् षष्ठी **त्रिपुरमालिनी** ।

---

[१] यो०ह० (मन्त्रसंकेत ८)

सप्तमी **त्रिपुरासिद्धिरष्टमी** त्रिपुराम्बिका ।
नवमी तु महादेवी महात्रिपुर सुन्दरी ।
पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते ॥'

—योगिनी हृदय (मं.सङ्केत)

पूजा-विधान के अनुसार प्रत्येक चक्र पृथक्-पृथक् रूप में पूजित होता है तथा साथ ही प्रत्येक चक्र की अधिष्ठत्री देवी की भी पूजा की जाती है।

(१) श्री चक्रे त्रैलोक्य मोहनादि चक्रक्रमादेता नवचक्रेश्वरी : पूजयेदित्यर्थः ।

—सेतु बन्धः भास्कर राय

(२) 'त्रैलोक्य मोहनं चक्रमारम्भ प्रतिचक्रमेकैकं क्रमेण पूजयेदित्यर्थः ।

—योगिनी हृदय दीपिकाः अमृतानन्द

'एवं नवप्रकाराद्या पूजाकाले तु पार्वति ।
एकाकारा ह्याद्यशक्तिरजरामरकारिणी ॥'

—योगिनी हृदय (मं.सं.)

'त्रिपुरा' का स्वरूप—'नित्याषोडशिकार्णव' में त्रिपुरा के स्वरूप को इसप्रकार विश्लेषित निरूपित किया गया है—

(क) **त्रिपुरा परमा** शक्ति राद्या जातादितः प्रिये ।
स्थूल सूक्ष्म विभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका ॥

(ख) कवलीकृतश्शिेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।
अस्यां **परिणातायां** तु न कश्चित् पर इष्यते ।

(ग) परोहि शक्ति रहितः शक्तः कर्तु न किञ्चन ।
शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेत् ॥

(घ) शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते ।
ज्ञातेनापि महेशानि शर्म कर्म न किञ्चन ॥

(ङ) कवलीकृतनिश्शेषा बीजाङ्कुरतया स्थिता ।
वामा शिखा ततो **ज्येष्ठा** शृंगाटाकारतां गता ॥

(च) **रौद्री** तु परमेशानि जगद्ग्रसनरूपिणी ।
एषा सा **परमा शक्तिरेकैव परमेश्वरी** ॥

(छ) त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी ।
ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति रिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ॥

(ज) त्रैलोक्यं संसृजत्येषा **त्रिपुरा** परिकर्तिता

'श्रीविद्या' की उपासना और 'श्री चक्र'—अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में श्री विद्या की उपासना प्रचलित है। आचार्य शङ्कर, उनके परम गुरु गौड़पाद, सुरेश्वर, पद्मपादा एवं विद्यारण्य आदि वेदान्ती आचार्य श्री विद्या के उपासक थे। मीमांसकों में खण्डदेव के शिष्य शम्भु भट्ट, भास्कर राय आदि भी श्री विद्या के उपासक थे। महा प्रभु चैतन्यदेव के द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के सिद्धन्तों के मूल में इसी साधना का प्रभाव परिलक्षित होता है। नित्यानन्द महाप्रभु श्री विद्या के उपासक थे। शैवाचार्यों में अभिनव गुप्तपादाचार्य **शिवोसना के साथ श्री विद्या की भी उपासना** करते थे।

'दश महाविद्या' में तृतीय महाविद्या ही **'श्री विद्या'** का स्वरूप है। इसी के अपर आरण्या है—ललिता, सुन्दरी, त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी आदि।

'चक्र' और श्री विद्या'—श्री विद्योपासना के निगूढ तत्त्व को समझने के लिए सर्वप्रथम देवी स्वरूप भूत श्री चक्र (श्री यन्त्र) का स्रूपावगाह्न परमावश्यक है।

'श्री चक्र' की उत्पत्ति—

(क) पाँच **शक्ति चक्र** रूप अधोमुख त्रिकोण एवं

(ख) चार शिवचक्र मय ऊर्ध्वमुख त्रिकोण के एकत्र होकर सम्मिलित होने से**श्री चक्र** निर्मित है।

* नव चक्र *

[१] **बिन्दु तथा 'महा बिन्दु'**—मूल कारण, महात्रिपुर सुन्दरी कामेश्वर एवं कामेश्वरी का सामरस्य तथा जगत की मूलयोनि एवं शिवभाव।

[२] **त्रिकुण**—आद्या विमर्श शक्ति या जीवभाव शब्द अर्थ रूप सृष्टि की कारणात्मिका पराशक्ति, अहंभाव एवं जीव तत्त्व।

[३] **अष्टार**—पुर्यष्टक, कारण शरीर-लिङ्ग शरीर का कारण।

[४] **अन्तर्दशार**—इन्द्रिय वासना (लिङ्गशरीर)

[५] **बहिर्दशार**—तन्मात्रा पञ्चभूत (इन्द्रिय विषय)

[६] **चतुर्दशार**—जाग्रत स्थूल शरीर।

[७] **अष्टदल**—अष्टार वासना।

[८] **षोडशदल**—द्यशारद्वयवासना।

[९] **भूपुर**—बिन्दु, त्रिकोण, अष्टदल, षोडशदल—इन चारों की समष्टि, प्रमातपुर और प्रमाणपुर का पशु पदीय प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार, शिवपदीय शुद्ध विद्यादितत्त्व चतुष्टय का सामरस्य।

नव चक्र और उनकी अधिष्ठात्री देवी

चक्रों के नाम	अधिष्ठात्री देवी	नवावरणपूजा के देवता
(१) 'सर्वानन्दमय चक्र'	महात्रिपुरसुन्दरी	नवावरण पूजा के ये ही
(२) 'सर्वसिद्धिप्रद चक्र'	त्रिपुराम्बा	देवता भी है मतान्तर से
(३) 'सर्वरोगहर चक्र'	त्रिपुरसिद्धा	इनका आख्यान्तर इस
(४) 'सर्वरक्षाकर चक्र'	त्रिापुरमालिनी	प्रकार है—प्रकटा,
(५) 'सर्वार्थसाधक चक्र'	त्रिपुराश्री	गुप्ता, गुप्त तरा, परा,
(६) 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र'	त्रिपुरवासिनी	सम्प्रदाया, कुलकौला, निर्गमा,
(७) 'सर्वसंक्षोभणकारक चक्र'	त्रिपुर सुन्दरी	अतिरहस्या, परापर रहस्या
(८) 'सर्वाशापरिपूरक चक्र'	त्रिपुरेशी	रहस्या, परापराति
(९) 'त्रैलोक्यमोहन चक्र'	त्रिंपुरा	रहस्या आदि

श्रीचक्रस्थ नवचक्र एवं पिण्डस्थ चक्रों में ऐक्य

शरीर का स्थान	चक्र का नाम	दल-संख्या	श्रीचक्र का नाम
(१) भ्रू-मध्य	आज्ञा चक्र	द्विदल	बिन्दु
(२) लम्बिका	इन्द्रयोनि	अष्टदल	त्रिकोण
(३) कण्ठ	अनाहत	द्वादशदल	अन्तर्दशार
(४) हृदय	अनाहत	द्वादशदल	अन्तर्दशार
(५) नाभि	मणिपूर	दशदल	बहिर्दशार
(६) वस्ति	स्वाधिष्ठान	षट्दल	चतुर्दशार
(७) मूलाधार	मूलाधार	चतुर्दल	अष्टदल
(८) उसके नीचे का स्थान	कुल	षट्दल	षोडशदल
(९) उसके नीचे का स्थान	अकुल	सहस्रदल	भूपुर

श्रीचक्रस्थ चक्रों के नाम	त्रिकोण	रंग वर्ण	रंग
(१) सर्वानन्दमय चक्र	केन्द्रस्थ	रक्तबिन्दु	रक्त
(२) सर्वसिद्धिप्रद चक्र	पीतवर्ण	त्रिकोण	पीत
(३) सर्वरोगहर चक्र	हरे रंग के ८त्रि.	८ त्रिकोण	हरा
(४) सर्वरक्षाकर चक्र	काले रंग के १० त्रि.	१० त्रिकोण	काला
(५) सर्वार्थसाधक चक्र	लाल रंग के १० त्रि.	१० त्रिकोण	लाल
(६) सर्वसौभाग्यदायक चक्र	नीले रंग के १४ त्रि.	१४ त्रिकोण	नीला
(७) सर्वसंक्षोभण चक्र	गुलाबी रंग के १६ त्रि.	१६ त्रिकोण	गुलाबी लाल
(८) सर्वाशापरिपूरक चक्र	पीत वर्ण के १६ दलों का पद्म	१६ दलों का कमल	पीला
(९) त्रैलोक्यमोहन चक्र	हरे रंग का बाह्य स्थल	हरे रंग का बाह्य स्थल	हरा

* 'रुद्रयामल तन्त्र' की दृष्टि एवं श्री यन्त्रस्थ ९ चक्र' *

'रुद्रयामल तन्त्र' में कहा गया है—

'बिन्दुत्रिकोण वसुकोण दशार युग्मं,
मन्वस्त्रनागदल संयुत षोडशारम्।
वृत्तत्रयं चधरणीसददनं च,
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः ॥'

अर्थात् 'श्री यन्त्र' के नौ चक्र इस प्रकार हैं—

१. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. आठ त्रिकोणों का मूहा, ४. दस त्रिकोणों का समूह, ५. दस त्रिकोणों का समूह, ६. १४ त्रिकोणों का समूह, ७. ८ दलों वाला पद्म, ८. १६ दलों वाला पद्म, ९. भूपुर ९ चक्रों में सब मिलाकर ४३ छोटे त्रिकोण हैं।

आचार्य शङ्कर की श्री चक्र सम्बन्धिनी व्याख्या—

आचार्य शङ्कर ने सौन्दर्य लहरी' 'आनन्द लहरी' में श्री चक्र का परिचय इस प्रकार दिया है—

'चतुर्भिः श्रीकण्ठेः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि,
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवनभिरपि मूल प्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंश द्वसुदलकलाब्ज त्रिवलय,
त्रिरेखभिः सार्धं तव भवनंकोणाः परिणताः ॥'

[श्री कण्ठ = ४ शिव चक्र एवं ५ 'शक्ति चक्र' मिलकर ४३ त्रिकोणों वाले 'श्री चक्र' का निर्माण करते हैं।]

अर्थात् ४ श्री कण्ठों एवं पाँच शिव युवतियों (शक्ति चक्रों)—इन नौ मूल प्रकृतियों (योनियों) से तेरे रहने के ४३ त्रिकोण निर्मित होते हैं जो कि शम्भु के बिन्दु स्थान से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों और तीन रेखाओं के सहित ८ एवं १६ दलों से युक्त हैं।

भैरवयामलकार की श्री चक्र सम्बन्धिनी व्याख्या—'भैरव यामल' में 'श्री चक्र' का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं 'श्रीचक्रं' विवयोर्वपुः ॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि **शक्तिचक्राणि** पञ्च च ॥
बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम्।
चतुरश्रं च चत्वारि शिवचक्रण्यनुक्रमात्।
त्रिकोणो बैन्दवं शिलष्टं अष्टोरऽष्टदलारम्बुजम्।
दशारयोष्षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके।
शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभाव सम्बन्धं यो जानाति चक्रवित् ॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा,
मनुकोणं चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट्क्रमात्।
मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्
अनाहतं विशुद्धयार व्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः ॥
नवाधारस्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपश्शिवस्स्मृतः।
अविनाभाव सम्बन्धः तस्माब्दिन्दु त्रिकोणयोः ॥

(१) अधोमुखं चतुष्कोणं शिवचक्रात्मकं बिन्दु।

(२) अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि।

(३) शिव चक्राणि बाह्यानि तद्रूपेशावस्यानि ॥

(४) **(कौलमत)**—'कौल मतानुसारेण अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि। ऊर्ध्वमुखानि पञ्च त्रिकोणानि शक्त्यात्मकानि।

(५) 'कौलमते संहार क्रमेण लेखने नवत्रिकोणात्मकं श्रीचक्रम्। लक्ष्मीधरा (९)

* चक्रों का स्वरूप *

[१] * महा बिन्दु *

(१) **आकार**—रक्त बिन्दु के भीतर गुप्त श्वेत बिन्दु।
(२) **रङ्ग**—श्वेत
(३) **खण्ड**—निर्गुण
(४) **चक्र**—सृष्टि-स्थिति-संहारमय अतः समष्टिरूप।
(५) **वशाक्षिर**—'क्ष' एवं 'म' का समष्टि रूप।
(६) **चक्र में स्थित मूल शक्ति**—पराशक्ति।
(७) **चक्रेश्वरी**—प्रकाश-विमर्श रूपिणीपरा भट्टारिका।
(८) **शरीर-स्थान**—ब्रह्मरन्ध्र।
(९) **शरीरस्थ चक्र**—राहस्रदल कमल
(१०) **अवस्था**—तुरीयातीतावस्था ॥

पुण्यानन्दनाथ की दृष्टि—पर शिव रवि कार निकरे प्रतिफलति विमर्श दर्पणे विशदे प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः। अर्थात् प्रकाशैक स्वभावपरशिवभट्टारक रूप सूर्य की रश्मियों के समूह का विमर्श रूपी स्वच्छ मुकुर में स्वस्वरूपाव लोकनस्वरूप प्रतिकल न होने के कारण तदुत्पन्न प्रतिप्रकाश द्वारा सुरम्य चित्त रूपी दीवार पर **'महाबिन्दु'** प्रकाशित होता है।

प्रतिकलनं नाम स्वरूपावलोकनम् । तादृश प्रतिकल न स्वरूपावलोकने सति चित्तमये ज्ञानैक स्वरूपे प्रतिरुचिरुचिरे प्रतिप्रकाशमनोहरे कुड्ये महाबिन्दु र्निविशते प्रविष्टो भवित।[१]

सारांश—(१) **महाबिन्दु** ही पर तत्त्व का आरम्भिक रूप है।

(२) महाबिन्दु में पर शिव (निर्गुण ब्रह्म) अपने रश्मि जाल द्वारा निर्मल विमर्श स्फुरण शक्ति स्वरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बत हो रहा है। उस प्रति बिम्ब का प्रातिबिम्ब जब चित्तमय (ज्ञानस्वरूपी) मिति पर पड़ता है तब **'महाबिन्दु' का आविर्भाव** है यथा सूर्य का प्रतिबिम्ब दर्पण में आता है और उस दर्पण का प्रतिबिम्ब भित्ति पर पड़ता है। तब बिन्दु रूप ग्रहण करता है

'महाबिन्दु' **श्वेत बिन्दु** है। यह **चैतन्य ज्योतिर्लिंग** भी कहा जाता है। इसे ही **'कामरूपपीठ'** भी कहा जाता है। विमर्श शक्ति सिसृक्षा के कारण 'बिन्दु' रूप धारण करती है—

---

[१] नटनानन्द : चिद्वल्ली (४)

[२] * बिन्दु (सर्वानन्दमय चक्र *

(बिन्दु चक्र)

(१) **आकृति**—बिन्दु, (२) **रङ्ग**—रक्तवर्ण, (३) **चक्र**—सृष्टि स्थितिसंहारमय सृष्टिचक्र। (४) **वर्णाक्षर**—'क्ष' मूल प्रकृति, (५) चक्र में स्थित मूल शक्ति—ललिताम्बा, (६) चक्र की अधिष्ठात्री (चक्रेश्वरी) श्री ललिता महाचक्रेश्वरी। (७) **योगिनी-चक्र**—परापर रहस्य योगिनी चक्र। (८) **मुद्रा**—योगिमुद्रा (९) देहस्थाव्यव श्रद्धा। (१०) **शरीर-चक्र**—हिदलात्मक आज्ञा चक्र। १२. **शरीरावस्था**—तुरीयावस्था-- महाकारण।

'बिन्दु' रक्त बिन्दु है। जब **'श्वेत बिन्दु'** (महाबिन्दु) 'रक्त बिन्दु' (बिन्दु) के रूप में उदित होता है उस समय अदृश्य विश्व की समस्त आत्माएँ कीड़ार्थ जाग उठती हैं। **'रकत बिन्दु'** के उदय के पूर्व विश्व ब्रह्म में (ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, भासक-भास्य-भास से शून्य स्थिति में) नयांभूत रहता ह। **'रक्त ाबन्दु'** महाबन्दु (श्वत बिन्दु) को अपने भीतर छिपा लेता है। यही है **विश्वसृजन का प्रथम स्फुरण।** यह विश्व की **मूल योनि, षोडशी कामेश्वरी, सुन्दरी, ललिता, श्री** या महात्रिपुर सुन्दरी है। महाबिन्दु देशकालातीत है। 'बिन्दु चक्र के रक्तबिन्दु में प्रपञ्च बीज रूप में सिथत है।[१]

[३] * त्रिकोण (सर्वसिद्धिप्रद चक्र) *

(१) **आकार**—त्रिकोण (२) **रङ्ग** (वर्ण)— पीत वर्ण
(३) **खण्ड**—अग्नि खण्ड (४) चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार)
(५) **वर्णाक्षर**—'म' वर्ण सृष्टि चक्र।
(६) चक्रावस्थित मूल शक्ति **कामेश्वरी शक्ति**

---

[१] 'विचिकीर्षुर्धनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्'।

जब अन्तर्जगत में विश्व की चैतन्य स्मृति जागृत हो उठती है तब अकुलस्थ किस **'गुप्त बिन्दु'** में प्रवेश करती है। उस समय पराशक्ति अपने साथ एकीभूत अतिसूक्ष्म मूल विश्वप्रकाश की दिदृक्षा युक्त से उत्कण्ठित होती है और परमशिव के साथ अपने को साम्य भाव से युक्त पाती है। उसी काल में वह गुप्त बिन्दु एक **'श्वेत बिन्दु'** के रूप में दृष्टिगत होने लगता है। यही **श्वेत बिन्दु 'महाबिन्दु'** है। यही अनन्त कलाओं से युक्त होकर निष्कल भाव से 'अह' रूप में अपने को व्यक्त करता है। जब 'महाबिन्दु' कीड़ा करता है तब शिव शक्ति का एकीभूत साम्य भंग हो जाता है अर्थात् शिव तत्त्व शक्ति से पृथक हो जाता है। 'श्वेत बिन्दु' त्रिकोणस्थ रक्त बिन्दु' में प्रविष्ट होकर तद्रूप हो जाता है। यही से महाशक्ति की स्वाभि व्यक्ति परावाक् के रूप में उदित होती है। महाबिन्दु की कला **'शन्त्यतीत कला'** है। महाबिन्दु श्वेत बिन्दु है।

(७) मूलाशक्ति के शस्त्रास्त्र धनुष-वाण-पाश-अंकुश युक्त।
(८) चक्रेश्वरी—त्रिपुराम्बा
(९) योगिनी चक्र—अतिरहस्य योगिनी चक्र
(१०) मुद्रा—बीजमुद्रा
(११) देहस्थावयव—अव्यक्त महत्तत्त्व (महा अहङ्कार) ५ तन्मात्रायें।
(१२) शरीरस्थान—लम्बिका।
(१३) शरीर चक्र—इन्द्र योनि (अष्टदल)
(१४) शरीरावस्था—सुषुप्ति—कारण।

'विमर्श शक्ति' सिसृक्षामयी होने पर 'बिन्दु' का रूप धारण करती है—'विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम् ' (शंका) और 'कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा' अर्थात् काल पाकर वही बिन्दु तीन भागों में विभक्त (त्रिकाण) होकर प्रकट होता है। बिन्दु → त्रिकोण।

'बिन्दुभाव' में समस्त प्रपञ्च-वासना जागृति-स्वप्न-सुषुप्ति एवं ज्ञेय ज्ञातृ और ज्ञान भाव से बटबीज के अन्तर्गत बीज एवं वृक्ष की भाँति सूक्ष्म भाव से लीन रहती है।[1]

[४] अष्टकोण

(सर्वरोगहर चक्र)

(१) **आकार** = अष्टार
(२) रङ्ग (वर्ण) हरा
(३) **खण्ड** = अग्निखण्ड
(४) चक्र- सृष्टि चक्र

---

[1] 'बिन्दु चक्र' में श्री **कामेश्वर** के साथ ही कामेश्वरी नित्यानन्दमय होकर विहार करती हैं। इसे ही **'सर्वानन्दमय चक्र'** कहते हैं।

कालिकापुराणकार की दृष्टि—कालिकापुराण में कहा गया है कि—'सुषुप्ति काले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरुपमेति। चित्तमयोऽहंकारः सुव्यक्तो हार्ण समरसाकारः। शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवन मण्डलो जयति।।'' **'महाबिन्दु'** अपनी विमर्श शक्ति में प्रविष्ट होकर बिन्दु का रूप धारण करता है। विमर्शशक्ति पूर्णाहन्ता स्वरूपा है।

बिन्दु चक्र सृष्टि की दृष्टि से प्रधान चक्र है। प्रलयोपरान्त ब्रह्म में शक्ति का प्रतिबिम्ब पड़ने से पूर्ण **अहंभाव विमर्श** उत्पन्न होता है। यह नाम रूप की अव्याकृतावस्था है। 'अहं' (अ + ह + ँ) ही **सहज स्फुरण है और यही 'विमर्शशक्ति'** है। विमर्श शक्ति में प्रतिबिम्बित हुए बिना आत्मा की स्फुटाभिव्यक्ति संभव नहीं है। अहंभाव विमर्शात्मक है। **'बिन्दु'** में प्रकाश (शिव विमर्श (शक्ति) का साम्य एवं चैतन्य की पूर्ण स्फुरता है। 'रक्तबिन्दु' के भीतर शुद्धाशुद्ध तत्त्व के अन्तर्गत 'विद्याकला' स्थित है।

(५) **वर्णाक्षर**—य, र,ल, व, श, ष, स, ह।
(६) **अग्नि की १० कलायें**—
(१) धूम्रार्चिषी, (२) ऊष्मा, (३) ज्वलिनी, (४) ज्वालिनी, (५) विस्फुलिङ्गिनी, (६) सुश्री, (७) सुरूपा, (८) कपिला, (९) हव्यवहा, (१०) कव्यवहा।
(७) **चक्रस्थ मूलशक्तियाँ**—
(१) वशिनी, (२) कामेश्वरी, (३) मेदिनी, (४) विमला, (५) अरुणा, (६) जयिनी, (७) सर्वेश्वरी, (८) कौलिनी
(८) **चक्रेश्वरी**—त्रिपुर-सिद्धा।
(९) **योगिनी चक्र**—रहस्य योगिनी चक्रं।
(१०) **मुद्रा**—खेचरी मुद्रा।
(११) **देहस्थ अवयव**—शीत-ऊष्ण-सुख-दुःख-स्वेच्छा-सत-रज-तम।
(१२) **शरीरस्थान**—कण्ठ
(१३) **शरीरचक्र**—विशुद्ध चक्र (षोडशदल, षोडश-स्वरमय)

'योगिनी हृदय' में कहा गया है कि—'अम्बिकारूपमेवेदमष्टारस्थं स्वरावृतम्' **पुण्यानन्द** कहते हैं—अष्ट कोणों वाला चक्र जो कि श, ष स एवं प वर्ग से निर्मित होता है—'श ष स प वर्ग भयं तद्वसुकोणं **'बिन्दु'** इच्छा शक्ति द्वारा 'सृष्टि-सृष्टि' मध्य कोण विस्तारः। (का.क.वि.)

के रूप में, **'त्रिकोण'** ज्ञान शक्ति द्वारा सृष्टि स्थति' के रूप में एवं अष्टकोण क्रिया शक्ति द्वारा **'सृष्टि संहार'** के रूप में वाचक है।

---

[1] **'त्रिकोण'** इसके अनन्तर अन्तर्लीन जगत को व्यक्त करने की आकांक्षा से यह **'बिन्दु' त्रिकोण के रूप में प्रकट** होता है या उसी के स्वरूप में परिणत हो जाता है। **'बिन्दु'** त्रैलोक्यप्रसविनीविश्वयोनि है। **'त्रिकोण'** बहिर्मुखी विलास है। अर्थ सृष्टि (त्रिकोण) बिन्दु (शब्दमूलक) है। शब्द ही अर्थसृष्टि का मूल है। प्रलयकाल में समस्त अर्थ प्रपञ्च परावाक् रूप शब्दब्रह्म में लीन हो जाता है। और सृष्टिकाल में पुनः प्रकट हो जाता है—बिन्दुरूप परावाक् से 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' 'वैखरी' का आविर्भाव होता ह। इन चारों को (१) शान्ता (२) वामा (३) ज्येष्ठा (४) रौद्री कहा जाता है। इसे अम्बिका, इच्छा, ान एवं क्रिया भी कहा जाता है।

जब 'बिन्दु' रूप 'परावाक्' पश्यन्ती, मध्यमा आदि कार्य बिन्दुओं का आविर्भव करने में प्रवृत्त होता है तब **'कारणबिन्दु' 'रेव'** कहा जाता है : 'स रव : श्रुतिसम्पन्नैः **शब्दब्रह्मेति** गीयते।।'

बिन्दु (परावाक्) समस्त शब्दों का मूल उत्स है।

'बिन्दु' ही 'त्रिकोण' के रूप में व्यक्त होता है—

'सेयं त्रिकोणरूपं माता चिगुणस्वरूपिणीमाता।।'—कामकलाविलास

* [५] अन्तर्दशार *

(सर्व रक्षाकार चक्र)

(१) **आकार**—भीतर के १० कोण। (२) **रङ्ग**—काला

(३) **खण्ड**—सूर्य खण्ड (४) **चक्र**—स्थितिचक्र

(५) **वर्णाक्षर**—ट, ठ, उ, ण, त, थ, द, ध, न।

(६) **रुद्र-दश कला**—१. तीक्ष्णा, २. रौद्री, ३. भया, ४. निद्रा, ५. तन्द्रा, ६. क्षुधा, ७. क्रोधा, ८. क्रिया, ९. उद्गारी, १०. मृत्यु।

(७) **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ**—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशाक्ते, ३. सर्वैश्वर्यप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधि विनाशिनी, ६. सर्वाधार स्वरूपा, ७. सर्व पाप हरा, ८. सर्वानन्दमयी, ९. सर्व रक्षा स्वरूपिणी, १०. सर्वेत्सित फल प्रदा

(८) **चक्रेश्वरी**—त्रिपुरमालिनी

(९) **योगिनी चक्र**—निगर्भ योगिनी चक्र।

(१०) **मुद्रा**—महाकुश मुद्रा

(११) **देहस्य अवयव**—रेचक, पूरक, शोषक, प्लावक, क्षारक, क्षोभक, ओदक, जृम्भक।

(१२) **शरीर का स्थान**—हृदय।

(१३) **शरीर-चक्र**—अनाहत (द्वादश दल—क से ठ द्वादश व्यञ्जनमय)

आचार्य पुण्यानन्द कहते है कि—(१) इस दशक के दो प्रकार १०-१० कोणों वाले दो चक्रों के रूप में फैले हुए हैं। इसके आन्तर १० कोणों के समूह तवर्ग एवं टवर्ग को तथा बाह्य १० कोणों के समूह चवर्ग एवं कवर्ग को प्रदर्शित करते हैं—

> 'तच्छाया द्वितयमिदं दशारचक्रद्वयात्मना विततम्।
> त ट च क वर्ग चतुष्टय विलसनविस्पष्टकोणविस्तारम्' ॥३०॥

'योगिनी हृदय' में दशारद्वय के विषय में कहा गया है कि—

> (१) नवत्रिकोणस्फुरित प्रभारूप दशारकम्।
> शक्त्यादिन व पर्यन्तदशार्णस्फूर्तिकारकम् ॥१५॥ (अन्तर्दशार)
> (२) भूततन्मात्रदशकप्रकाशालम्बनत्वतः ।
> द्विदशारस्फुर द्रूपं क्रोधी शादिदशारकम् ॥१६॥ (बहिर्दशार)

अन्तर्दशार चक्र को **'स्थिति चक्र' 'प्रमाणपुर'** और **'सौर खण्ड'** कहते हैं। यह शुद्ध त्वान्तर्गत विद्या तत्त्व है।

* [६] बहिर्दशार *

(सर्वार्थ साधक चक्र)

(१) **आकार**—बाहर के १० कोण

(२) **रङ्ग**—लाल (३) **खण्ड**—सूर्य खण्ड

(४) **चक्र**—स्थिति चक्र

(५) **वर्णाक्षर**—प, क, ब, भ / क, ख, ग, घ, ङ / च, छ, ज, झ, ञ।

(६) **विष्णु की कलायें**—१. जरा, २. पालिनी, ३. शान्ति। ४. ईश्वरी, ५. रति, ६. कामिका, ७. वरदा, ८. ह्लादिनी, ९. प्रीता, १०. दीर्घा।

(७) **सूर्य की कलायें**—१. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. सुषुम्ना, ८. ज्वलिनी, ६. रुचि, ७. सुषुम्ना, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा।

(८) **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ**—१. सर्व सिद्धि प्रदा, २. सर्वसम्पत् प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकाम प्रदा, ६. सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्राशमिनी, ८. सर्वविघ्न निवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी।

(९) **चक्रेश्वरी**—त्रिपुरा श्री

(१०) **योगिनी चक्र**—कुलोत्तीर्ण योगिनी चक्र।

(११) **मुद्रा**—उन्मादिनी मुद्रा।

(१२) **देहस्थ अवयव**—१० प्राणः अपान, व्यान। उदान। समान। नाग। कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय।

(१३) **शरीर का स्थान एवं चक्र**—नाभि, 'मणिपूरक चक्र' (१० दल' 'ड' से 'क' पर्यन्त १० व्यञ्जनों से युक्त मणिपूरक चक्र)

> 'बाह्यो दशार भागोऽयं बुद्धि कर्माक्ष गोचरः।'

'बाह्यदशार' विश्व का स्वप्नमय जागृतभाव है। इसी चक्र में छिपे हुए विषयादिक की अभिव्यक्ति होती है।

* [७] चतुर्दशार *

(सर्व सौभाग्य दायक चक्र)

(१) **आकार**—१५ कोण (२) **रङ्ग**—नीला र ङ्ग।

(३) **खण्ड**—चक्र खण्ड (४) चक्र—स्थिति चक्र

(५) **वर्णाक्षर**—स्वरमय।

(६) **ब्रह्मा की कलायें**—१. सृष्टि, २. ऋद्धि, ३. स्मृति, ४. मेघा, ५. क्रान्ति, ६. लक्ष्मी, ७. द्युति, ८. स्थिरा, ९. स्थिति, १०. सिद्धि।

(७) **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ**—

(१) सर्वसंक्षोभिण (२) सर्व विद्राजिणी (३) सर्वाकर्षिणी
(४) सर्वाह्लादिनी (५) सर्वसन्मोहिनी (६) सर्वस्तम्भिनी
(७) सर्वजृम्भिणी (८) सर्ववशङ्करी (९) सर्वरञ्जिनी
(१०) सर्वोंन्गार्दिनी (११) सर्वार्थसाधिनी (१२) सर्व सम्पत्तिपूरिणी
(१३) सर्वमन्त्रमयी (१४) सर्वद्वन्द्वकरी।

(८) **चक्रेश्वरी**—त्रिपुरवासिनी

(९) **योगिनी चक्र**—सम्प्रदाय योगिनी चक्र।

(१०) **मुद्रा**—सर्ववशङ्करी मुद्रा।

(११) **देहस्थ अवयव**—(नाड़ियाँ) अलम्बुषा। कुहू। विश्वोदरी। वरुणा। हस्तिजिह्वा। यशस्वती। अश्विनी। गांधारी। पूषा। शंखिनी। सरस्वती। इडा। पिङ्गला। सुषुम्ना।

(१२) **शरीर का स्थान एवं चक्र**—वस्ति। स्वाधिष्ठान (षड् दल। 'ब' से 'ल' पर्यन्त ६ व्यंजनों युक्त स्वाधिष्ठान चक्र)

(१३) **शरीर-स्थान एवं चक्र**—वस्ति।

स्वाधिष्ठान (षड् दल। 'ब' से 'ल' ६ व्यञ्जनों से युक्त चक्र)।

चतुर्दशार के १४ कोण १४ शक्तियों के प्रतीक हैं। इसे '**सुषुप्तिपुर** भी कहते हैं; क्योंकि यहाँ तक सम्पूर्ण विश्व जड़वत घोर सुषुप्ति में रहता है। इसे '**चान्द्र खण्ड**' एवं '**प्रमेयपुर**' भी कहते हैं।

* [८] अष्ट दल *

(सर्व संक्षोभण चक्र)

(१) **आकार**—अष्ट दल (२) **रङ्ग**—गुलाबी
(३) **खण्ड**—अग्नि खण्ड (४) चक्र संहार चक्र

(५) **वर्णाक्षर**—अ, क, च, ट, त, प, य, श, (८)।

(६) **चक्र की मूल शक्तियाँ**—

(१) अनङ्ग कुसुमा, (२) अनङ्ग मेखला, (३) अनङ्गमदना, (४) अनङ्ग, मदनातुरा, (५) अनङ्ग रेखा, (६) अनङ्ग वेगिनी, (७) अनङ्गांकुशा, (८) अनङ्गमालिनी।

(७) **चक्रेश्वरी**—त्रिपुरसुन्दरी

(८) **योगिनी चक्र**—गुप्ततर योगिनी चक्र

(९) मुद्रा—सर्वाकर्षिणी।

(१०) **देहस्थ अवयव**—वचन, आदान, गमन विसर्ग। आनन्द। हानि। उपेक्षा। बुद्धि।

(११) **शरीर स्थान एवं चक्र**—गुदा, मूलाधार (चतुर्दल) (व से स पर्यन्त ४ व्यञ्जनों से युक्त)

'चतुर्दशार' तक तो अनुस्वर—विसर्ग (अ) : एवं विसर्ग (अ:) तक की सम्पूर्ण मातृका सृष्टि होती है।

'**अष्टदल**' के द्वारा विसर्ग का बहिर्भाव उदित होता है। कामेश्वर एवं कामेश्वरी रूप तेज युग्म के अष्ट भेदों—(१) वचन, (२) आदान, (३) गमन, (४) विसर्ग, (५) आनन्द, (६) हान, (७) उपेक्षा, (८) उपादान की अधिष्ठात्री अष्टशक्तियों के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। ये अष्ट शक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—(१) अनङ्गकुसुमा, (२) अनङ्गमेखला आदि।

पुण्यानन्द कहते हैं—क वर्ग से आरम्भ होने वाले अक्षरों के अष्ट वर्ग जो कि वैखरी शक्ति के स्वरूप ही हैं '**अष्टदल कमल**' (सर्व संक्षोभण चक्र) के दलों पर स्थित हैं और '**षोडश दल कमल**' (सर्वाशापरिपूरक चक्र) के दलों पर **स्वर समूह** स्थित हैं

'कादिभिरष्टभिरुपचितमष्टदलाब्जं च वैखरी वर्गैः।
स्वरगणसमुदितमेतदद्वयष्टदलाम्भोरुहं चसञ्चिन्त्यम्॥'

'अष्टदलाम्बं च सर्वसंक्षोभणचक्रम्। तथा स्वरगणासमुदितम्।' (नटनानन्द : चिद्वल्ली)

* [९] षोडश दल *

(सर्वाशापरिपूरक चक्र)

(१) **आकार**—षोडश दल (२) रङ्ग (वर्ण) पीत वर्ण।

(३) **खण्ड**—चन्द्र खण्ड (४) **चक्र**—संहार चक्र

(५) वणाक्षिर—स्वरात्मक।

(६) **सदाशिव की १६ कलायें**—(१) निवृत्ति, (२) प्रतिष्ठा, (३) विद्या, (४) शान्ति, (५) इंधिका, (६) दीपिका, (७) रेचिका, (८) मोचिका, (९) परा, (१०) सूक्ष्मा, (११) सूक्ष्मामृता, (१२) ज्ञाना, (१३) ज्ञानामृता, (१४) आप्यायिनी, (१५) व्यापिनी, (१६) व्योमरूपा।

(६) **चन्द्रमा की १६ कलायें**—(१) अमृता, (२) मानदा, (३) पूषा, (४) तुष्टि, (५) पुष्टि, (६) रति, (७) धृति, (८) शशिनी, (९) चन्द्रिका, (१०) कांति, (११) ज्योत्स्ना, (१२) श्री, (१३) प्रीति, (१४) अंगदा, (१५) पूर्णा, (१६) पूर्णामृता॥

(८) **षोडश नित्यायें**—(१) कामेश्वरी, (२) भगमालिनी, (३) नित्यक्लिन्ना, (४) भेरुण्डा, (५) वह्निवासिनी, (६) महावज्रेश्वरी, (७) शिवदूती, (८) त्वरिता, (९) कुलसुन्दरी, (१०) नित्या, (११) नील पताका, (१२) विजया, (१३) सर्व मंगला, (१४) ज्वालामालिनी, (१५) चित्रा, (१६) ललितामहानिलया।

(९) **चक्र में स्थित मूल शक्तियाँ**—

(१) कामाकर्षिणी (२) बुद्ध्याकर्षिणी (३) अहंकाराकर्षिणी (४) शब्दाकर्षिणी (५) स्पर्शकर्षिणी (६) रूपाकर्षिणी (७) रसाकर्षिणी (८) गंधाकर्षिर्णी (९) चित्ताकर्षिणी (१०) धैर्याकर्षिणी (११) स्मृत्याकर्षिणी (१२) नामाकर्षिणी (१३) बीजाकर्षिणी (१४) आत्माकर्षिणी (१५) अमृताकर्षिणी (१६) शरीराकर्षिणी।

(१०) **चक्रेश्वरी**—त्रिपुरेशी

(११) योगिनी चक्र—गुप्त योगिनी चक्र

(१२) **मुद्रा**—सर्वविद्राविणी

(१३) **देहस्थावयव**—पञ्च तत्त्व। इन्द्रियाँ—श्रोत्र। त्वक्। चक्षु। जिह्वा। घ्राण। वाक्। हस्त। पाद। उपस्थ। मन।

(१४) **शरीर-स्थान**—गुदा से नीचे का स्थान।

(१५) **शरीर में स्थित चक्र**—कुल (षट् दल नादमय)।

'षोडशदल' विश्वाधार श्री चक्र का अन्तिम रूपान्तरण है। यहाँ पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु

'षोडश दल कमल' विसर्ग स्वरूप चन्द्रमा की षोडश कलाओं से युक्त है। **सुभगोदयकार की दृष्टि**—'सुभगोदय' में महा गया है कि—

'षोडशच्छदपद्माङ्कदेशोभूताक्षमानसम् ।
विकारात्मकमापन्नं देव्याः सम्भावयाम्यहम् ॥'

इस चक्र में कार्याकर्पिणी आदि १६ देवियों के रूप में तेजोमिथुन की पूजा होती है। यह **नित्यातादात्म्य** भी कहा जाता है। १६ स्वर ही इसके १६ दल हैं। इसे **'सर्वाशापरिपूरक'** भी कहते हैं। षोडश नित्याओं (कार्याकर्पिणी' बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्काराकर्षिणी आदि नित्याओं) की तृप्ति से सारी आशायें परिपूर्ण होती हैं। अतः इस चक्र को **'सर्वाशापरिपूक'** कहते हैं।

इस जडात्मक **चान्द्र खण्ड** का सौर खण्ड रूप दशार द्वय में अन्तर्भाव है।

षोडशार चक्र में **पञ्चमहाभूत, दस इन्द्रियाँ** एवं **सोलहवाँ मन** निवास करता है। श्री विद्या की यह विशेषावस्था है। १६ स्वर प्रतिदल पर कामाकर्षिणी आदि नित्य षोडश कलाओं के प्रतीक हैं।

षोडशदल दशारद्वयवासना है।

सारांश- * [९] चक्र *

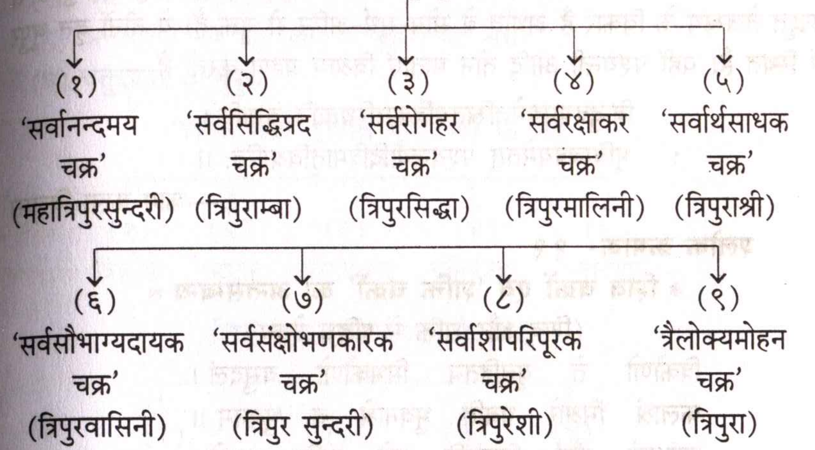
(१)
'सर्वानन्दमय चक्र'
(महात्रिपुरसुन्दरी)
(२)
'सर्वसिद्धिप्रद चक्र'
(त्रिपुराम्बा)
(३)
'सर्वरोगहर चक्र'
(त्रिपुरसिद्धा)
(४)
'सर्वरक्षाकर चक्र'
(त्रिपुरमालिनी)
(५)
'सर्वार्थसाधक चक्र'
(त्रिपुराश्री)
(६)
'सर्वसौभाग्यदायक चक्र'
(त्रिपुरवासिनी)
(७)
'सर्वसंक्षोभणकारक चक्र'
(त्रिपुर सुन्दरी)
(८)
'सर्वाशापरिपूरक चक्र'
(त्रिपुरेशी)
(९)
'त्रैलोक्यमोहन चक्र'
(त्रिपुरा)

* [१०] भूपुर *

(१) **आकार**—चतुर्द्वार (२) **रङ्ग**—हरा (३) **चक्र**—संहार चक्र

(४) **ईश्वर कलायें**—(१) पीता, (२) श्वेता, (३) अरुण, (४) असिता।

(५) **दिग्पाल (१०)**—(१) इन्द्र, (२) अग्नि, (३) यम, (४) निऋृत, (५) वरुण, (६) वायु, (६) कुबेर, (८) ईशान, (९) ब्रह्मा, (१०) अनन्ता।

(६) **१० सिद्धियाँ**—(१) अशिमा, (२) लघिमा, (३) महिमा, (४) ईशत्व, (५) वशित्व, (६) प्राकाम्य, (७) भुक्ति, (८) इच्छा, (९) प्राप्ति, (१०) सर्वकामसिद्धि।

(७) **अष्ट शक्तियाँ**—(१) ब्राह्मी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) वैष्णवी, (५) वाराही, (६) माहेन्द्री, (७) चामुण्डा, (८) महालक्ष्मी।

(८) **चक्र में स्थित मूल शक्तियाँ**—(१) सर्व संक्षोभिणी, (२) सर्व विद्राविणी, (३) सर्वाकर्षिणी, (४) सर्ववशंकरी, (५) सर्वोन्मादिनी, (६) महांकुशा, (७) सर्व खेचरी, (८) सर्वबीज, (९) सर्वयोनि, (१०) सर्वत्रिरवाडा।

(९) **चक्रेश्वरी** त्रिपुर १०. **योगिनी चक्र**—प्रकट योगिनी

(११) **मुद्रा**—सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा।

(१२) **देहस्थावयव**—नवरन्ध्रात्मक शरीर। ७ त्वगादि धातुएँ। षड् रस। ज्ञान, इच्छा, क्रिया। शक्ति। 'अयमात्मा ब्रह्म'।

(१३) **शरीर स्थान एवं चक्र**—गुदा से नितान्त नीचे का स्थान। अकुल (सहस्र दल कमल)।

'अष्टदल' एवं **'षोडशदल'** के ऊर्ध्व देश में अवस्थित तीन वृत्त बिन्दुत्रय से उद्भूत तेजस्त्रय के विकार हैं अर्थात् वे सोम-सूर्य-अग्नि से युक्त हैं। ये तीनों वृत्त भूपुर में स्थित हैं। यहीं पश्यन्ती आदि तीन माताएँ विश्राम ग्रहण करती हैं—

> बिन्दुत्रयमयमेतस्त्रितयविकारस्थितानि वृत्तानि ।
> भूबिम्बत्रयमेतत् पश्यन्त्यादित्रिमातृविश्रान्तिः ॥

—काम कला विलास

श्लोक क्रमांक- ११

* शिव चक्रों एवं 'शक्ति चक्रों' का अन्तसम्बन्ध *

(शिव और शक्ति में षड्ध ऐक्य)

त्रिकोणो ते वृत्तत्रितय मिभकोणो वसुदलं ।
कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम् ॥
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्ति कमुमे ।
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्ति शिवयोः ॥११॥

[**अर्थ**–(हे भगवती) आपके त्रिकोण में तीन वृत्त अवस्थित हैं। (आपके) 'इभकोण (अष्टार) में 'वसुदल' (अष्टदल पद्म), 'मिश्रार' या दशार द्वय में 'कलाश्र' (षोडशदल पद्म) तथा 'भुवनाश्र' (चतुर्दशार) में 'भुवन' (भूपुर) अवस्थित हैं।

(ये जो) चतुर्विधात्मक शैव चक्र हैं (वे) पञ्चात्मक शाक्त योगिनयों में (निवास करती है) हैं। पञ्चात्मक शाक्त योनियों में (निवास करती है) हैं। 'शक्ति' एवं 'शिव' के मुख्य-मुख्य ऐक्यों के द्वारा यह (शिव शक्ति में विद्यमान) ऐक्य षड्घ हो जाता है।]

सरोजिनी (व्याख्या)—इभ कोणो = इभ का अर्थ है हाथी, दिग्गज आठ होते हैं। यहाँ 'इभ' शब्द आठ का द्योतक है।

(१) **'इभ कोणो'** = अष्टार चक्र में।

(२) **'वसुदलं'** = वसुओं की संख्या आठ है। यहाँ 'वसु' का अर्थ है आठ।
'वसुदलं' = **'अष्टदलपद्म'**

(३) **'कलाश्रं'** = कलायें १६ हैं। यहाँ कला का अर्थ है १६।
'कलाश्रं' = षोडशदल पद्म।

(४) **'भुवनाश्रे'** = भुवन १४ हैं। भुवन का अर्थ १४ हैं।
'भुवनाश्रे' = 'चतुर्दशार', में।

(५) **भुवनम्** = भुवन शबद का लक्ष्यार्थ है 'भू'। **भुवनम्** = भूपुर।

सारांश–

(क) त्रिकोण = वृत्तत्रय

(ख) अष्टार = अष्टदलपद्म।
(ग) अन्तर्दशार एवं बहिर्दशार = षोडश दल पद्म।
(घ) चतुर्दशार = भूपुर।

'शक्ति चक्र' (शिव युवतियाँ) के भेद

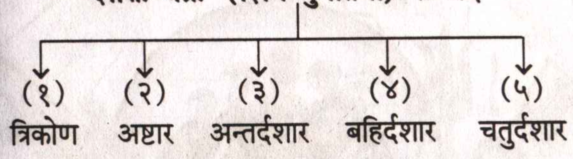

शिव चक्र (श्री कण्ठ) के भेद

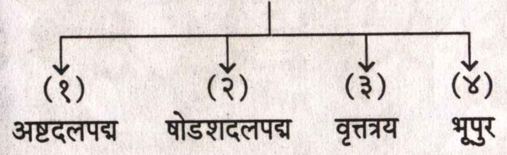

(क) आचार्य गौड़पाद ने यहाँ पर 'शक्ति' एवं 'शिव' चक्रों में एकता बतायी है।

(ख) शिव एवं शक्ति में यह ऐक्य षड्विध है—

(१) 'प्रधानैक्य **षोढा** भवति च तयोः शक्तिशिवयोः ॥११॥
(२) 'तदेवं **षोढैक्यं** भवति हि सपर्या समयिनाम् ॥१२॥
(३) 'तदेवं **षोढैक्यं** भवति खलु येषां समयिनाम् ॥१३॥

'श्री चक्र' की उत्पत्ति कैसे होती है?

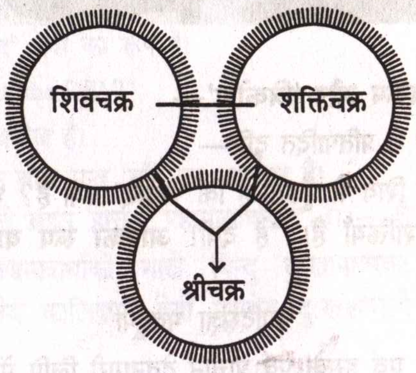

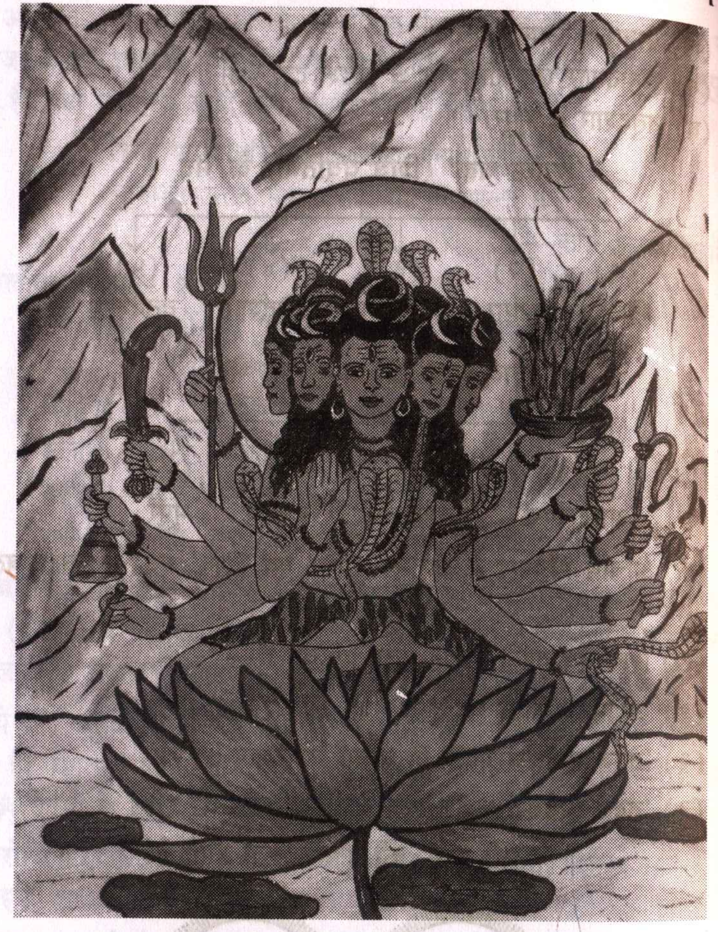

देवी का स्वरूप और 'त्रिकोण'—

'तन्त्रराजतन्त्रं में प्रतिपादित दृष्टि—

देवी भगवान शिव से पूँछती हैं कि **'कादि'** क्या है? भगवान शिव कहते हैं 'कादि एवं काली शक्तियाँ हैं।' 'हे देवी! **आपका रूप या स्वरूप कादि का निहितार्थ है**—

'कादिसंज्ञा भवद्रूपा'

बँगला भाशा एवं इसके पूर्व प्राचीन देवनागरी लिपि में जो 'क' वर्ण लिखा जाता था वह बायीं ओर **त्रिकोणात्मक** रहता था। **'वर्णोद्धार' एवं 'कामधेनुतन्त्र'** में कहा गया है।

('शब्द कल्पद्रुम' में भी देखिए)—कि त्रिकोण का स्वरूप ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-सरस्वती कुण्डलिनी श्वेत सुदर्शन 'ज्येष्ठा' 'वामा' एवं 'रौद्री' एवं त्रिपुरा—अब से समलंकृत है।

त्रिकोण = 'योनिमण्डल'

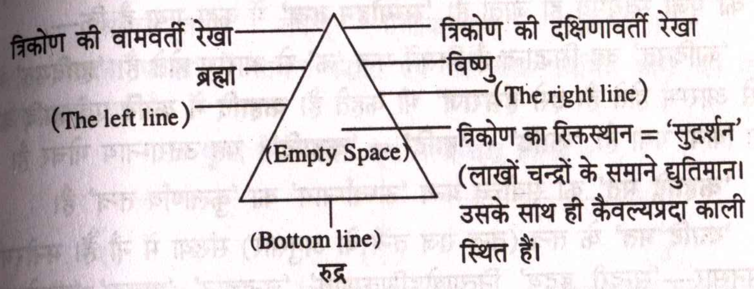
त्रिकोण की वामवर्ती रेखा
त्रिकोण की दक्षिणावर्ती रेखा
ब्रह्मा
विष्णु
(The right line)
(The left line)
त्रिकोण का रिक्तस्थान = 'सुदर्शन'
(Empty Space)
(लाखों चन्द्रों के समाने द्युतिमान।
उसके साथ ही कैवल्यप्रदा काली
स्थित हैं।
(Bottom line)
रुद्र

(१) **'मात्रा'** = सरस्वती शक्ति है।

(२) दाहिनी ओर (Crooked pontion) है जो कि 'अङ्कुश' (Good) की भाँति दृष्टिगोचर होता है। यह विद्युत्प्रभ (Lightning-like) 'कुण्डलिनी' शक्ति है।

(३) त्रिकोण के तीनों कोणों (Corners) में (क) 'ज्येष्ठा' (ख) 'वामा' एवं (ग) 'रौद्री' शक्तियाँ अवस्थित हैं।

(४) **'त्रिकोण'** = त्रिपुरा देवी का आसन है।

भवगती त्रिपुरा 'ज्ञानात्मा' हैं उनमें चार कलायें अवस्थित हैं। वे 'ज्ञान' 'इच्छा' एवं 'क्रिया' की समष्टि हैं। वे 'प्रकृति' का विग्रह हैं।

(She is the emlodimend of ofprakriti Triangle)[1]

(५) **'त्रिकोण'** देवी का रूप है।

Is the form of the DEVI"

(६) 'ह' शिवबीज है।

'क' काली के बीज मन्त्र 'क्रीं' का आद्यक्षर है।

'क काली ब्रह्मर प्रोक्तम् महामायार्थकिः ई। —बीजाभिधान

'विश्वमात्रार्थाको नादो बिन्दु दुःखापहारकः ।
तनैव कालिकाम् देवीं पूजयेद दुःखशान्तये ॥'

—बीजाभिधान

---

[1] सरजान वुडरक : 'तंत्रराज तंत्र' (भूमिका)

'ककार' से 'काम' का उद्भव होता है।

यह समस्त अक्षरों की मूल प्रकृति है और यह समस्त देवताओं की माता है। कैवलय प्रदायिका है तथा अक्षर (Imperashable) है। छान्योग्योपनिषद में 'कं ब्रह्म' कहा गया है। 'शिव' एवं 'शति' मूलतः एक ही हैं। इनमें से एक की पूजा होने पर दूसरे की पूजा स्वयमेव हो जाती है। **'सम्मोहन तन्त्र'** में कहा गया है कि—

'कादिमत' वह सिद्धान्त है जिसमें मन्त्र 'क' से आरम्भ होते हैं। **'हादिमत'** में 'ह' से आरम्भ होते हैं। इसे **हंसराज'** भी कहते हैं। **कहादि में कादि** एवं **हादि** का संयोग किया गया है। **'कादि'** + **'हादि'** = **'कहादि'**। यह उत्तराम्नाय गोचर है।

'कहादि मत' का सर्वोच्च ग्रन्थ 'ऊर्ध्वाम्नाय' का 'कुलार्णव तन्त्र' है।

'कादि मत' के तन्त्र (तन्त्र राज तन्त्र के अनुसार) संख्या में नौ हैं। **मनोरमा** के अनुसार—'सुन्दरी हृदय' नित्याषोडशिकार्णव' 'चन्द्रज्ञान' 'मातृक' 'सम्मोहन' 'वामकेश्वर' 'बहुरूपाष्टक' 'प्रस्तार चिन्तामणि' एवं 'मेरुप्रस्तार'—ये नौ ग्रन्थ 'कादिमत' के हैं।

भास्कर राय 'सेतुबन्ध' में कहते हैं कि 'मनोरमा' का मत सङ्गत नहीं है। वे कहते हैं कि 'नित्याषोडशिका' वामकेश्वर तन्त्र का ही एक भाग है। 'सुन्दरी' या 'योगिनी हृदय' पूर्ववर्ती साहित्य का अङ्ग है। 'सम्मोहन' तो वैष्णव तन्त्र है। अतः **कादिमत** का कैसे हो सकता है?

'कादि' तन्त्र शक्ति की उपासना (पूजा) के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हैं। ये पूजा-प्रकार

(१) स्थूल (Gross) (२) सूक्ष्म (Subtle) एवं (३) पर (Supreme)—तीन प्रकार के हैं। साधक 'स्थूल पूजा (उपासना) से पूजा का प्रारम्भ करता है। साधना का अन्तिम लक्ष्य है अद्वैत वेदान्त के सत्य का साक्षात्कार उसकी अनुभूति।

त्रिपुर सुन्दरी या ललिता के स्वरूप के तीन पक्ष हैं—'स्थूलं', 'सूक्ष्म' एवं 'पर'। भगवती की पूजा के भी तीन प्रकार हैं—(१) 'कायिक' (२) वाचिक (३) मानस या (१) **'बाह्य याग'** (२) **'अन्तर्याग'** (३) **'भावना'**

तन्त्र पूजा के इन तीनों का विधान प्रस्तुत करता है और इनकी सहायता से अद्वैत सिद्धि प्राप्त करता है।

गुरु 'विमश्रमयी आद्या शक्ति' से एकीभूत है। उसके शरीर का स्वरूप नवात्मक है—

'गुरुराद्या भवच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता।
नवत्वम् तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते॥'

साधक का शरीर नौ चक्रों से निर्मित 'श्री चक्र' है। श्री चक्रोपासना (श्री चक्र की पूजा) का उद्देश्य है—

(१) **ज्ञाता** होता (२) **ज्ञान** (अर्घ्य) एवं (३) **ज्ञेय** (हवि)।

'ज्ञाता स्वात्मा भवेज ज्ञानम् अर्घ्यं ज्ञेयम् हविः स्थितम्।
श्रीचक्रपूजनम् तेषाम् एकीकरणाम् इतीरितम्॥'

'वासना पटल' में साधना-पद्धति एवं 'श्री चक्र' विभिन्न भागों की विशद विवेचना की गई है।

*** पूजा के प्रकार एवं तत्सम्बद्ध शास्त्र ***

(१) 'कायिक उपासना' (त्रिपुरतापिनी उपनिषद)

(२) 'वाचिक उपासना' (त्रिपुरतापिनी उपनिषद)

(३) भावना एवं मानस कर्म (भावनोपनिषद्)

'भावनोपनिषद' ही तंत्रराजतन्त्र के वासना पटल को सर्वाधिक प्रभावित करता है। इसका आरम्भ निम्नांकित सूत्र से होता है—

क 'श्री गुरुः सर्व कारणा भूता शक्तिः।

इसका समापन इस सूत्र के साथ होता है कि—

'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति।'

'श्री यन्त्र'—श्री यन्त्र **मानव शरीर एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड** (विश्व) का प्रतिनिधित्व करता है—

Yantra nepresents the humam body and the **Whole uniense** and man as also the sina sakti Suarupa or Atma[1]

'श्री यन्त्र' = मानव शरीर। सम्पूर्ण विश्व शिवशक्ति या आत्मा It is thus the I symlool of the devi as she is in then own torm (स्वरूप) and as she is in the torm of the Univene (विश्वात्मा)

श्लोक क्र. १२

*** शिवशक्ति में षड्विध ऐक्य एवं सामयिकों की सपर्या का विधान ***

कालायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे।
तयोर्नादिनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः।
तयोर्बिन्द्वादैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे।
तदेवं षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम्॥१२॥

---

[1] तन्त्रराजरातत्र (भूमिकाः वुडरक)

[**अर्थ**—(१) कला में बिन्दु का ऐक्य (२) उसके बाद इन दोनों का नाद के विभव के साथ ऐक्य (३) फिर उन दोनों का नाद के साथ ऐक्य (४) फिर उसके बार इन दोनों का कला के साथ ऐक्य (५) फिर दोनों का बिन्दु के साथ ऐक्य (६) और फिर तीनों के विभव का परशिव के साथ ऐक्य—इस प्रकार यह छः प्रकार का ऐक्य होता है और यही समदाचार वालों की पूजा है।]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद ने श्लोक क्र. ११ में छः प्रकार के ऐक्य का उल्लेख किया था—

'प्रधानैक्य' षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः'

शिवशक्ति में अनुगत उसी षडिध ऐक्य का यहाँ वर्णन किया गया है।

*** शिवशक्ति में षड्विध ऐक्य ***

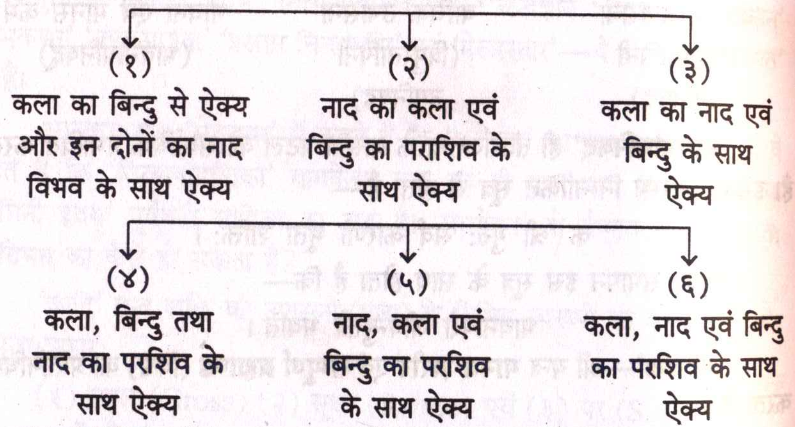
(१)
कला का बिन्दु से ऐक्य और इन दोनों का नाद विभव के साथ ऐक्य
(२)
नाद का कला एवं बिन्दु का पराशिव के साथ ऐक्य
(३)
कला का नाद एवं बिन्दु के साथ ऐक्य
(४)
कला, बिन्दु तथा नाद का परशिव के साथ ऐक्य
(५)
नाद, कला एवं बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य
(६)
कला, नाद एवं बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य

नादबिन्दु का ऐक्य—मूलाधारादिकषट् चक्रों का त्रिकोण-अष्टकोण दशारद्वितय मन्वश्र का **शिवचक्र से तादात्म्य** है। इसे ही **नादबिन्दु का ऐक्य** कहते हैं।

'नाद' है क्या? **'नादो'** नाम श्री चक्रम्।
'बिन्दु' क्या है? बिन्दुर्नाम षट्कमलगहनं वक्ष्यते ॥

इन दोनों के ऐक्य का नाम ही है **'नाद-बिन्दु'** का ऐक्य।

कमल	**दलों की संख्या**	**कर्णिका**
(१) 'आधार चक्र'	४ दल	त्रिकोणात्मिका
(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र'	६ दल	अष्टकोणात्मिका
(३) 'मणिपूर चक्र'	१० दल	दशकोणात्मिका
(४) 'अनाहत चक्र'	१२ दल	द्वितीयदशकोणात्मिका
(५) 'विशुद्धि चक्र'	१६ दल	चतुर्दशकोणात्मिका

यहाँ तक 'शक्ति चक्र'—ऐक्य है। जहाँ तक **'आज्ञा चक्र'** का प्रश्न है उस विषय में यह कहना है कि **'आज्ञा चक्र'** द्विदलात्मक है। यहाँ एक 'अष्टकोण' एक दल है। दूसरा 'षोडशकोण' द्वितीय दल है। ये ही दो कर्णिकायें हैं। आशय यह है कि—दो भेद (द्विदल) हैं—

चतुरश्रप्रकृतिक शिवचक्रचतुष्टयात्मक एवं आधारस्वाधिष्ठानात्मक।

अमृतानन्द की दृष्टि—योगी अमृतानन्द कहते हैं कि **श्री चक्र** और पिण्डस्थ चक्र देखने में तो पृथक् - पृथक् दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु वे वस्तुतः एक ही हैं। उनमें निम्न प्रकार से ऐक्य है।

*** षटचक्र एवं नव चक्रों में ऐकात्म्य ***

(१) अकुल, सुषुम्नामूल में स्थित अरुण सहस्र दल पद्म में—त्रिपुराधिष्ठित **'त्रैलोक्यमोहन'** चक्र स्थित है।

(२) वह्नि पूर्ण आधार चक्र में (चतुर्दल कमल) में त्रिपुरेशीसे अधिष्ठित सर्वाशापरिपूरण चक्र में स्थित है।

(३) शाक्त स्वाधिष्ठान में स्थित षड्दल कमल में त्रिपुर सुन्दरी से अधिष्ठित सर्वसंक्षोभण चक्र है।

(४) दशदलकमलात्मक नाभि में—त्रिपुरवासिनी से अधिष्ठित **'सर्वसौभाग्यदायक चक्र'** स्थित है।

(५) द्वादश दल कमलात्मक 'अनाहत चक्र' में त्रिपुराश्रीसमधिष्ठित **'सर्वार्थसाधक चक्र'** है।

(६) षोडशदलात्मक विशुद्धि चक्र में त्रिपुरमालिनी से अधिष्ठित **'सर्वरक्षाकर चक्र'** है।

(७) अष्टदलात्मक, तालुमूल में स्थित, 'लम्बिकाग्र' में—त्रिपुरासिद्धि से अधिष्ठित **'सर्वरोगहर चक्र'** हैं।

(८) दो भ्रुवों के मध्य में स्थित, द्विदलात्मक आज्ञा चक्र में—'त्रिपुराम्बिका' से अधिष्ठित **'सर्वसिद्धिप्रदचक्र'** है।

(९) इन्दु, ललाट या बिन्दु में महात्रिपुर सुन्दरी से अधिष्ठित **'सर्वानन्दमय चक्र'** है।[1]

योगिनी हृदयकार की दृष्टि—'योगिनी हृदय' में इसी की पुष्टि करते हुए पहले ही कहा जा चुका है कि—

---

[1] योगिनी हृदय दीपिका।

'अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्त्येत् ।
चक्रेश्वरीसमायुक्तं नव चक्रं पुरोदितम् ॥[1]

ऐकात्म्य एवं ऐक्य के अन्य बिन्दु—

लक्ष्मीधराचार्य कहते हैं—

(१) 'वृत्तत्रयं स्वाधिष्ठनान्ते एकं वृत्तं **रुद्रग्रन्थ्यात्मकं ।**

(२) 'अनाहतान्ते एकं **विष्णुग्रन्थ्यात्मकं ।**

(३) 'आज्ञाचक्रान्ते' एकं **ब्रह्मग्रन्थ्यात्मकम् ।**

(३) ततउपरि चतुर्द्वारोपेतं भूपुर त्रिलयं द्वारेषु चतुर्षु सोपान युक्तम् । तच्च सहस्रदलकर्णिका। तस्य कमलस्य दलानि स

(४) **बैन्दवस्थानं** चतुर्द्वारोपेतं कर्णिकामध्ये ।

(५) एवं प्रासादन्यायेन श्रीचक्रस्य कमलानां चैक्यम नुसन्धेयम् ।

(६) एतच्च नादबिन्द्वैक्यं गुह्यात् गुह्यतमं शिष्या। **नुग्रहात उपदिष्टम् ।**

....

(१) योगिनी हृदयदीपिका (२) योगिनी हृदय (मन्त्र संकेत ८)

(४) अस्मिन् षट्चक्रे पञ्चाशत्कलानामन्तर्भाव कथितः (६ चक्रों में ५० कलाओं का अन्तर्भाव है।)

५० कलाओं का अन्तर्भाव

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
चन्द्र खण्ड में स्वर	सूर्य खण्ड में स्पर्श	अग्नि खण्ड में अन्तस्थ ऊष्मवर्ण (किन्तु 'ह' नहीं)	बैन्दव चक्र में हकार, लकार	क्षकार सर्वत्र स्थित

(६)	(७)	(८)	(९)	(१०)
मूलाधार आदि चक्रों के दलों में 'कलायें' अन्तर्भूत है।	कलायें तिथि रूप है।	नित्यायें कलात्मक है।	कलायें मूलमंत्रगत ५० अक्षर रूप है।	५० अक्षर त्रिखण्डात्मक है।

---

[1] योगिनीहृदय (मंत्र संकेत ८)

(११)	(१२)	(१३)	(१४)
त्रिखण्ड सोम-सूर्य-अनल से युक्त है।	सोम-सूर्यग्रंथित्रय अनल ग्रंथित्रयात्मक है।	मंत्रगत ह्रींकारत्रय से युक्त है।	भुवनेश्वरी मंत्र मूलमंत्र युक्त है।

(१५)	(१६)
मूल मंत्र चक्रों से युक्त है।	चक्रनवक मूलाधारादि षटचक्रों में ब्रह्म ग्रंथि आदि ग्रंथियों से युक्त होने पर भी सहस्रकमल की कर्णिका आदि के साथ तादात्म्य है।

ऐक्य प्रकार

(१)	(२)	(३)	(४)
नाद एवं बिन्दु का ऐक्य	बिन्दु एवं कलाओं का ऐक्य	कलाओं का नाद से ऐक्य	कलाओं का बिन्दु से ऐक्य

(५)	(६)		(७)
नाद का कला से ऐक्य	श्रीविद्या के साथ पञ्चक का ऐक्य एवं षड्विध का ऐक्य	इसीलिए तो भगवती की षोढैक्य	षोढैक्यानुसन्धान के बाद दशभुजा भगवती श्रीविद्या मणिपूर में प्रत्यक्ष परिदृश्यमाना होती है। इस प्रकार सपर्या के साथ भगवती का भी ऐक्य सिद्ध होता है।

'बिन्दु' का स्वरूप—मूलाधार आदि षट् चक्र ही बिन्दु कहलाते हैं—

'बिन्दुरिति मूलाधारादिचक्रषट्कम्' (लक्ष्मीधर)

'बिन्दु' का स्वरूप-लक्षण—(१) षटचक्र ही बिन्दु है।

(२) जगत की उत्पत्ति एवं प्रलय का कारण शिव की विशेष ही बिन्दु है।

'बिन्दुः जगदुत्पत्तिलयहेतुः शिवस्य शक्तिविशेषः ।'

(३) **'बिन्दु'** एक है और वह सहस्रकमलान्तर्गत चतुर्द्वारात्मक कर्णिका के मध्य चतुष्कोणात्मक शक्ति तत्त्व है—

'स च एक एव सहस्रकमलान्तर्गतचतुर्द्वारात्मक कर्णिका मध्यगत चतुष्कोणात्मकं शक्तितत्त्वम् ।

'नाद' क्या है? (१) उसी बिन्दु मध्यगत शिवतत्त्व ही 'नाद' है—'तन्मध्यगत शिवतत्त्वं नाद इत्युच्यते।

(२) नाद के चार भेद हैं—

(१) परा (२) पश्यन्ती (३) मध्यमा (४) वैखरीवाक्।

इन 'शक्ति' एवं 'शिव' के शब्द एवं अर्थ स्वरूप होने के कारण इनमें साम्य भी है। इसीलिए इनका मेलन और नाद बिन्दु कला तीत साम्य भी है। इसीलिए इनका मेलन और नाद बिन्दु कला तीत का प्रतिपादन समयमत का रहसय है—

'अतश्च मेलनं नाद बिन्दु कलातीतमिति **समयमत रहतस्ययम्।**

'बिन्दु के १० भेद

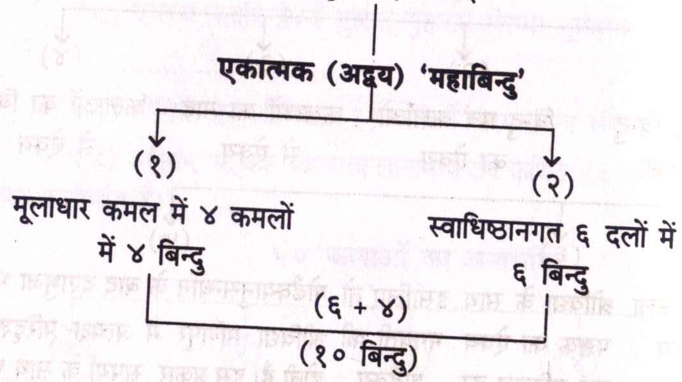
एकात्मक (अद्वय) 'महाबिन्दु'
(१)
मूलाधार कमल में ४ कमलों में ४ बिन्दु
(२)
स्वाधिष्ठानगत ६ दलों में ६ बिन्दु
(६ + ४)
(१० बिन्दु)

एक ही बिन्दु के १० भेद हैं।

'दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः ।
चतुर्धाऽऽधारकमले षोढाऽधिष्ठान पंकजे ।
उभयाकाररूपत्वात् इतरेषां तदात्मता ।।'

(१) मूधा. (चतुष्पन्न सरसिज) (२) स्वा. (षड्दल) (३) मणि. (१० दल) (४) अना. (११ दल) (५) विशुद्धि (१६ दल) आज्ञा. (०२ दल) = ४ + ६ + १० + १२ + १६ + २० = ५०

आधार पद्म के ४ दल = बिन्दु चतुष्टय। (मन, बुद्धि, चित्ता अहंकार): जगन्निमणि के कारक तत्त्व।

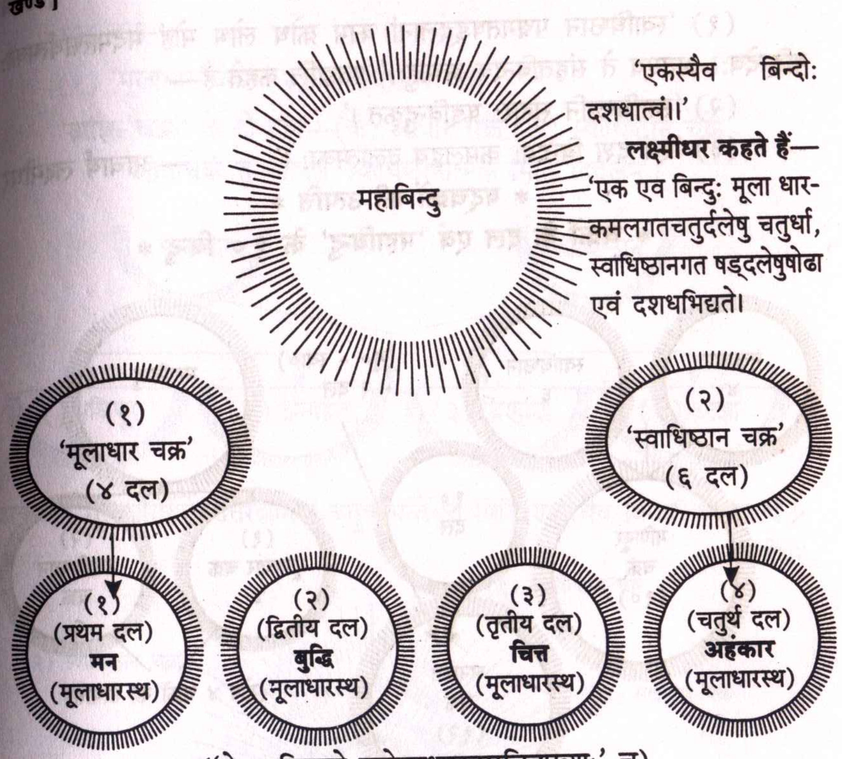
महाबिन्दु
(१)
'मूलाधार चक्र'
(४ दल)
(२)
'स्वाधिष्ठान चक्र'
(६ दल)
(१)
(प्रथम दल)
मन
(मूलाधारस्थ)
(२)
(द्वितीय दल)
बुद्धि
(मूलाधारस्थ)
(३)
(तृतीय दल)
चित्त
(मूलाधारस्थ)
(४)
(चतुर्थ दल)
अहंकार
(मूलाधारस्थ)

'एकस्यैव बिन्दोः दशधात्वं।।'

लक्ष्मीधर कहते हैं—

'एक एव बिन्दुः मूला धारकमलगतचतुर्दलेषु चतुर्धा, स्वाधिष्ठानगत षड्दलेषुषोढा एवं दशधभिद्यते।

('ते च बिन्दवो मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्याः' च)

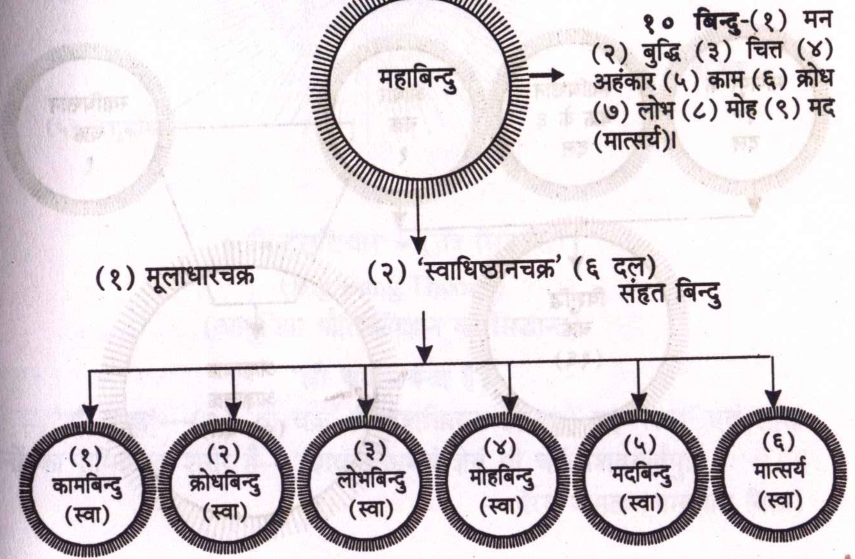
महाबिन्दु
(१) मूलाधारचक्र
(२) 'स्वाधिष्ठानचक्र' (६ दल)
संहत बिन्दु
(१)
कामबिन्दु
(स्वा)
(२)
क्रोधबिन्दु
(स्वा)
(३)
लोभबिन्दु
(स्वा)
(४)
मोहबिन्दु
(स्वा)
(५)
मदबिन्दु
(स्वा)
(६)
मात्सर्य
(स्वा)

१० बिन्दु-(१) मन (२) बुद्धि (३) चित्त (४) अहंकार (५) काम (६) क्रोध (७) लोभ (८) मोह (९) मद (मात्सर्य)।

(१) 'स्वाधिष्ठान पद्मगतषड्दलानां काम क्रोध लोभ मोहं मदमात्सर्थत्मकाः षड्न्दिेवः। अतएव ते संहतबिन्दव इत्याहुः।' पतञ्जलि कहते हैं—

(२) 'स्वाधिष्ठानि संहारः षड्बिन्दुकृत ।'

(३) 'एवं दश बिन्दवः कमलद्वय दलात्मकाः ।'

—आचार्य लक्ष्मीधर

* षट्चक्रों की उत्पत्ति *

* चक्रों के दल एवं 'महाबिन्दु' के १० बिन्दु *

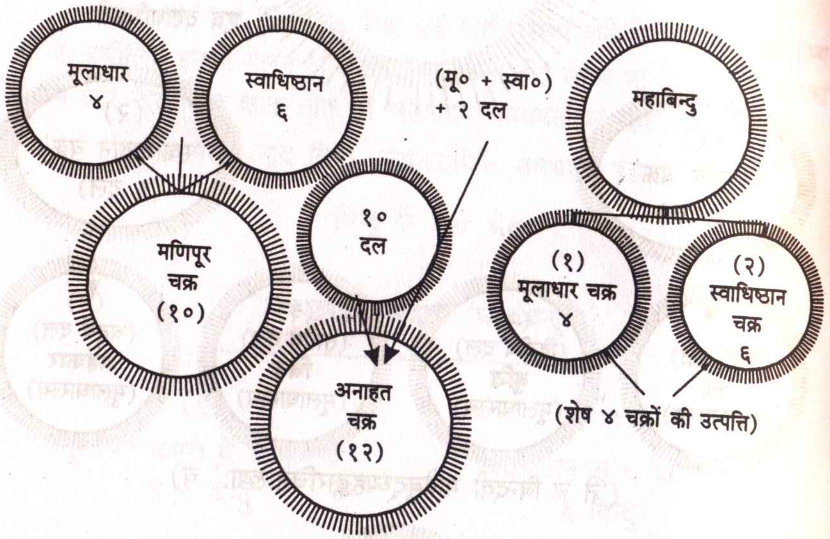
मूलाधार
४
स्वाधिष्ठान
६
(मू० + स्वा०)
+ २ दल
महाबिन्दु
मणिपूर
चक्र
(१०)
१०
दल
(१)
मूलाधार चक्र
४
(२)
स्वाधिष्ठान
चक्र
६
अनाहत
चक्र
(१२)
(शेष ४ चक्रों की उत्पत्ति)

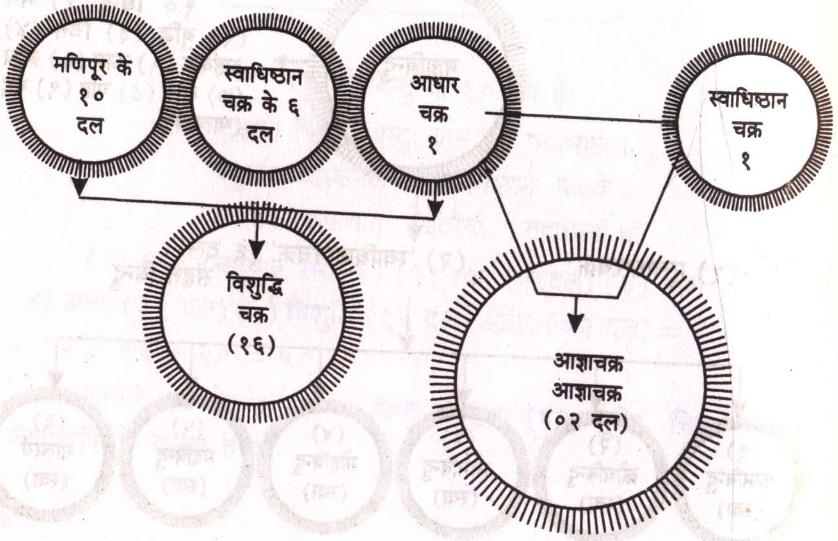
मणिपूर के
१०
दल
स्वाधिष्ठान
चक्र के ६
दल
आधार
चक्र
१
स्वाधिष्ठान
चक्र
१
विशुद्धि
चक्र
(१६)
आज्ञाचक्र
आज्ञाचक्र
(०२ दल)

मूल चक्र—

(१) 'मूलाधार चक्र' (२) 'स्वाधिष्ठान चक्र'

'आज्ञा चक्र' के दो दल—(क) आधार चक्र (ख) स्वाधिष्ठान चक्र

आज्ञाचक्रं तु आधार स्वाधिष्ठानात्मक मिति द्विदलम् ।

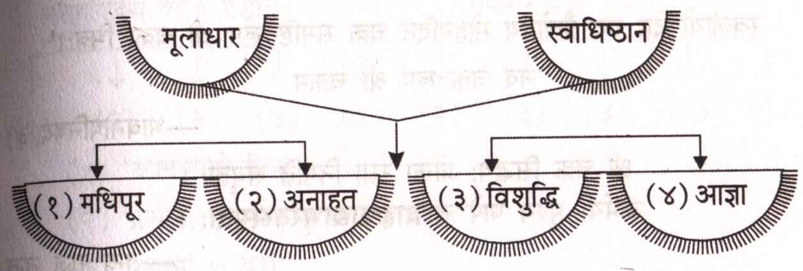
मूलाधार
स्वाधिष्ठान
(१) मधिपूर
(२) अनाहत
(३) विशुद्धि
(४) आज्ञा

अत एवं मूलाघौरद्विके उत्तरकामल चतुष्कमन्तेर्भूतं मिति एकस्यैव विन्दोः दशधात्वं ॥

—लक्ष्मीधर

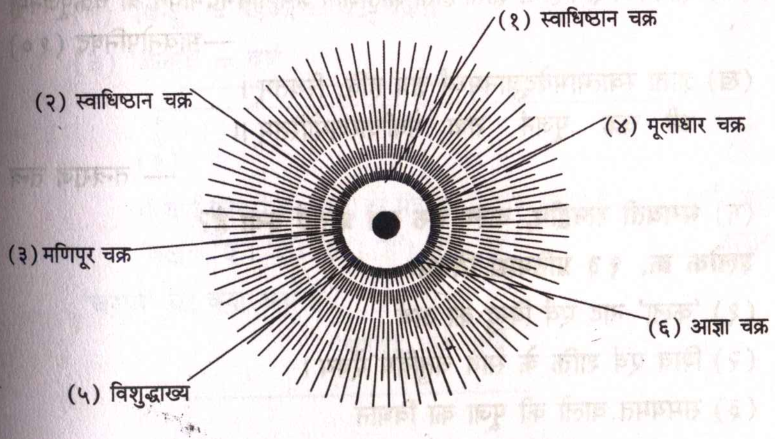
(१) स्वाधिष्ठान चक्र
(२) स्वाधिष्ठान चक्र
(४) मूलाधार चक्र
(३) मणिपूर चक्र
(६) आज्ञा चक्र
(५) विशुद्धाख्य

* बिन्दुसृष्टिवार * (तंत्र सिद्धान्त)

(Big Bang Theory)

(आधुनिक भौतिकविज्ञान का सिद्धान्त)

'श्री चक्र' क्या है?

'श्री चक्र'—(१) 'श्री चक्र' **शिवशक्तिमय** है। (२) यह 'शिव' एवं शक्ति दोनों का सम्मिलित शरीर है—**'शिवशक्तिमयं** ज्ञेयं श्री चक्रं शिवयोर्वपुः।

—भैरव यामल (चन्द्रज्ञान विद्या)

(३) **'नव चक्र रूपं श्री चक्रम्'** (भावनोपनिषत्)। **'भावनोपनिषद'** के इस सूत्र की व्याख्या में आचार्य भास्कर राय कहते है कि **अपनी देह ही श्री चक्र** है।

भास्कर राय की दृष्टि—आचार्य भास्कर की दृष्टि यह है कि—'त्रैलोक्य मोहन' आदि नौ चक्रों की समष्टि रूप जो **'श्री चक्र'** है वह अपने शरीर से अभिन्न है—

'स्वकीयो देह एव त्रैलोक्य मोहनदिन चक्र समष्टि रूप श्री चक्रा भिन्नः।[1]
'नव चक्र रूपं श्री चक्रम् '
—भावनोपनिषद(३)

श्री चक्र सिद्धयः प्रोक्ता रसा नियति संयुताः ।
ऊर्मयः पुण्य पापे च **ब्राह्मयाद्याभरतस्स्मृताः** ।
—तन्त्र राज तन्त्र

श्री चक्र के पूजन का यथार्थ स्वरूप क्या है?

(क) 'ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेयानामभेदभावनं श्री चक्रपूजनम्।
—भावनोपनिषद (१०)

(ख) ज्ञाता स्वात्माभवेद्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः स्थितम् ।
श्री चक्र पूजनं तेषा मेकीकरणमीरितम् ।।
— तन्त्रराज तन्त्र

(ग) भगवती रत्नद्वीप, कल्प तरु एवं ऋतुएँ क्या हैं?

श्लोक क्र. १३ प्रतिपाद्य विषय—

(१) 'कला' नाद एवं बिन्दु का अर्थ
(२) शिव एवं शक्ति के साथ चतुर्विध ऐक्य।
(३) समयमत वालों की पूजा का विधान

कला नादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं
षडब्जं चाधार प्रभृतिकममीषां च मिलनम्।
तदेवं षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनाम्,
चतुर्धैक्य तेषां भवति हि समर्यासमयिनाम् ।।१३।।

[**अर्थ**—कला, नाद तथा बिन्दु क्रमशः वर्ण, चरण एवं छः कमल (मूलाधारादि षट्चक्र) हैं। इनका मिलन ही **'समयाचार'** वालो का छः प्रकार का ऐक्य है। इनका चार प्रकार का ऐक्य भी समयाचार वालों की पूज-पद्धति है।।१३।।]

---

[1] भावनोपनिषद् भाष्य

सरोजिनी (व्याख्या)—

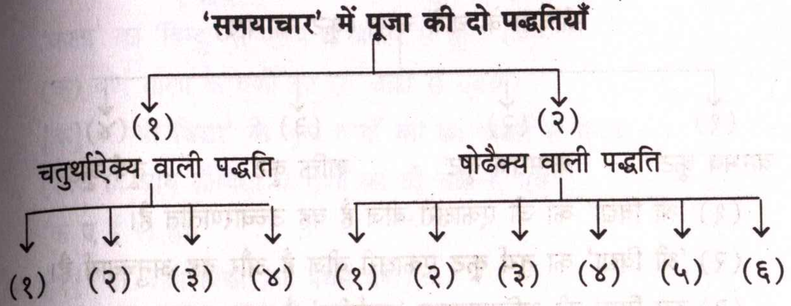
'समयाचार' में पूजा की दो पद्धतियाँ
(१)
चतुर्थाऐक्य वाली पद्धति
(२)
षोढैक्य वाली पद्धति
(१) (२) (३) (४)
(१) (२) (३) (४) (५) (६)

(१) **'कलानादौ बिन्दुः'**

(२) 'क्रमशः इह **वर्णाश्च चरणं, षडब्जं'**।

(क) **'कला'** = वर्ण

(ख) **'नाद'** = चरण।

(ग) **'बिन्दु'** = षडब्ज = षट् चक्र।।

(३) **'कला'** = वर्ण

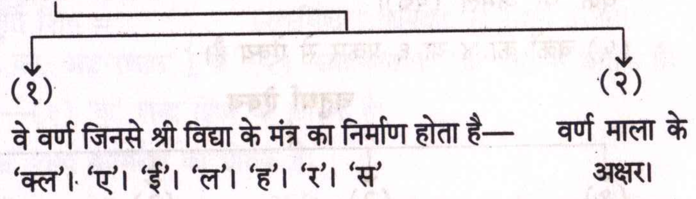
(१)
वे वर्ण जिनसे श्री विद्या के मंत्र का निर्माण होता है—
'क्ल'। 'ए'। 'ई'। 'ल'। 'ह'। 'र'। 'स'
(२)
वर्ण माला के अक्षर।

'चरण' का क्या अर्थ है?

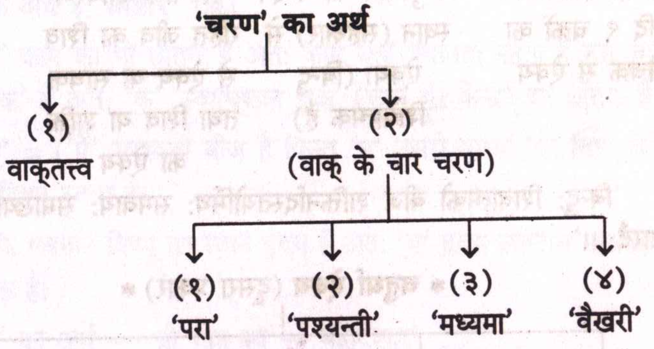
'चरण' का अर्थ
(१)
वाक्तत्त्व
(२)
(वाक् के चार चरण)
(१) 'परा'
(२) 'पश्यन्ती'
(३) 'मध्यमा'
(४) 'वैखरी'

वाक् ही **'नाद'** है अतः चरण का अर्थ पाद। **नाद = 'नादब्रह्म'**

'चरण' (अन्य अर्थ)

श्रीविद्या के चारों चरण (कूट या पाद)

(१) वाग्भव कूट

(२) कामराज कूट

(३) शक्ति कूट

(४) तुर्य कूट

(१) 'श्री विद्या' का जो एकाक्षरी बीज है वह उच्चारणतीत है।

(२) 'श्री विद्या' का **तुर्य कूट** एकाक्षरी बीज है और वह अनुच्चार्य है।

(३) इस विद्या की अन्तिमावस्था 'तुर्यातीत' है अतः उसका उच्चारण करना सम्भव नहीं है। इस स्थिति में—

(४) 'मन्त्र' महामंत्र (महानाद) में विलीन हो जाता है।

'बिन्दु' का यहाँ क्या अर्थ है? यहाँ 'बिन्दु' का अर्थ है 'महाबिन्दु' से आविर्भूत (१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूर (४) अनाहत (५) विशुद्धारव्य (६) आज्ञा चक्र।

'चक्र' या 'कमल' (पद्म)।

(५) चक्रों का ४ या ६ प्रकार से ऐक्य है।

चतुर्धा ऐक्य

(१) आधार, स्वाधिष्ठान आदि ९ चक्रों का श्रीचक्र से ऐक्य

(२) बिन्दुस्थान का बैन्दव स्थान (सहस्रार) से ऐक्य। (बिन्दु शिवात्मक है)

(३) मल तथा आवरण रहित जीव का शिव से ऐक्य या साधक तथा शिव या शक्ति का ऐक्य

(४) 'श्रीयन्त्र' एवं मन्त्र का ऐक्य

'बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः समवायः समाख्यातः सर्वागम-विशारदैः ॥'

*** चतुर्धा ऐक्य** (दूसरा प्रकार) *

(१) मातृका एवं मंत्र का ऐक्य

(२) मंत्र एवं चक्र का ऐक्य

(३) चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य

(४) नित्याओं एवं तिथियो का ऐक्य

---

[१] * 'कला' का 'बिन्दु' से ऐक्य *

'कला' का 'बिन्दु' से ऐक्य दो प्रकार से होता है—

(क) वर्ण माला के वर्णों का छः चक्रों से ऐक्य।

[क] * 'श्री विद्या' के मूल वर्णों का छः चक्रों से ऐक्य *

(साथ ही साथ श्रीविद्या के वर्णों का श्री चक्र से ऐक्य)

'क ए ई ल ह्रीं।'

[१] **'क'** (श्री विद्या' का प्रथम वर्ण) =

'ककार' = काम एवं शिव दोनों का वाचक है 'ककार'। चूँकि शिव अष्टमूर्ति हैं अतः **'क'** वर्ण श्री चक्र के **'अष्टार चक्र'** सभी द्योतक है।

[१] 'क' वर्ण (श्री विद्या-मन्त्र का प्रथम वर्ण)

(१) शिव

(२) कामदेव

अष्टमूर्ति शिव = (स्वाधिष्ठान कामदेव का स्थान है अतः

(१) श्रीचक्र का. **'अष्टारचक्र'** { 'क' (२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** का भी द्योतक है।

सारांश—(१) 'क' शब्द **शिव** का द्योतक है।

(२) 'क' शब्द **कामदेव** का द्योतक है।

(३) चूँकि (क-द्योतित शिव) अष्टमूर्ति हैं अतः 'क' का अर्थ है अष्टमूर्ति शिव। इसका लाक्षणिक अर्थ है **'अष्टार'** चक्र।

(४) 'क' काम का भी द्योतक है अतः काम जहाँ प्रधानतः रहता है उस चक्र का द्योतक ही 'क' है अतः 'क' 'स्वाधिष्ठान चक्र' (काम का केन्द्र) का द्योतक है।

[२] **'ए'** = ('ऐं' सरस्वती बीज है किन्तु 'ए' उससे पृथक 'ए' विष्णुयोनि होने के कारण विष्णु स्वःप है।

(१) चूँकि भवगान विष्णु का स्थान हृदय है अतः 'ए' हृदय स्थानीय **'अनाहत चक्र' का द्योतक है।**

(२) 'ए' का अर्थ — श्री चक्र का —'बहिर्दशार'

(३) 'ए' का अर्थ—पिण्डस्थ चक्र का—'अनाहत' चक्र'

[३] **'ई'** = (१) 'ई' माया का द्योतक है।

(२) **'ई'** = (माया स्वरूप 'ई') 'माया' १४ भुवनों की स्वामिनी है अत: माया का अर्थ है= 'चतुर्दशार' चक्र।

(१) पिण्ड में 'ई' = विशुद्ध चक्र

(२) श्री चक्र में 'ई' = चतुर्दशार चक्र

[४] **'ल'** —(१) 'ल' = शिव =

(२) 'ल' = भूमि =

(१) **'ल'** = 'ल' शिववाच्य होने से शिव के स्थान **'सहस्रार'** का द्योतक है।

(२) **'ल'** = 'ल' भूमिवाचक है। 'श्री चक्र' में 'ल' **'भूपुर'** का द्योतक है।

[५] **'ह'** = 'ह' शब्द = **आकाश** का द्योतक है।

'ह' शब्द = **शिव** का द्योतक है।

(१)
'ह' षट्चक्रों या शरीर में
(आज्ञा चक्र)

(२)
श्री चक्र में
(अष्टादल पद्म)

(१) **'आज्ञा चक्र'** मनस्तत्त्वात्मक तो है किन्तु आकाश प्रधान भी है।

'ह' के अर्थ

(१)
षटचक्रों में
(आज्ञा चक्र)

(२)
श्रीचक्र में
(अष्ट दल पद्म)

'परमे व्योमन' आदि श्रुतिवचन **'व्योम'** (आकाश) को पर ब्रह्म कहते हैं। 'आज्ञा चक्र' व्योम प्रधान है।

(१) यदि व्योम 'ब्रह्म' (परमे व्योमन') है तो ब्रह्म स्वयप शिव तो **अष्टमूर्ति हैं** अत: 'ह' = **'अष्ट दल पद्म'** का द्योतक है।

(२) 'आज्ञा चक्र' (विशुद्ध चक्र के बाद) सर्वाधिक व्योमात्मक है अत: 'ह' आज्ञा चक्र का द्योतक है।

[६] **'र'** = (ह्रीं = ह + र + ई + —)

'र' = 'र' अग्नि का वाचक है।

'र' का अर्थ

(१)
श्री चक्र में
अग्नि (र) की १० जिह्वायें हैं अत: **'र'** (अग्नि) १० कोणों वाले **'चतुर्दशार'** का द्योतक है।
('चतुर्दशार चक्र')

(२)
पिण्डस्थ षटचक्रों में
(अग्नि के केन्द्र)
'मणिपूर चक्र।'
('मणिपूर चक्र')

'सकल ह्रीं' (मंत्र)—

'स' = 'स' शब्द—'शक्ति' एवं 'चन्द्र' का द्योतक है।

'स' शब्द के अर्थ (शक्ति चन्द्रमा)

(१)
'षोडशदलपद्म'
'स' चन्द्र वाच्य होने के कारण **'षोडशदलपद्म'** का द्योतक है।
(श्री चक्र में)

(२)
'आज्ञाचक्र'
'स' शक्तिवाच्य होने के कारण **'आज्ञाचक्र'** का द्योतक है।
(आज्ञाचक्र'—सदाख्य तत्त्व या अर्धनारीश्वर का स्थान है जो कि शक्तिमय शिव-स्थान है।[1]

(१)	(२)	(३)
वर्ण अर्धमात्रा =	वर्ण का अर्थ त्रिकोण या योनि। (क) श्रीचक्र में—त्रिकोण (ख) शरीर में—मूलाधार (चूँकि मूलाधार नाद रूप है अत: अर्धमात्रा भी नाद रूप है।	वर्ण और वर्ण का अर्थ **'बिन्दु'** = शशि, मीम, चेतेना शिव, पूर्ण, शून्य, व्योम, 'कलानिधि', अमृताकर्षिणी **'श्रीचक्र'** में—बैन्दवस्थान का द्योतक है। शरीर में यह 'सहस्रार' का द्योतक है।

---

१. 'Anatomy of Alphabet and comprerative stydy of Silenature
—स्वामी शङ्करानन्द

'ज्ञानार्णव' के आधार पर वर्णों के अर्थ—

वर्ण	अर्थ	प्रमाण
'ल'	पृथ्वीबीज	**'लकारः** पृथिवी बीजं तेजो भूमिबम्बच्यते।
'स'	चन्द्रमा	'सकारश्चन्द्रमा भद्रे। कलाषोडशकात्मकः। तस्मात् षोडश पत्रं च।।
'ह'	शिव	'हकारः शिव उच्यते, अष्टमूर्तिः सदाभद्रे। तस्माद्वसुदलं भवेत् ।
'ई'	माया	'इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश। पालयन्ती परात्साच्छककोणं भवेत् प्रिये।।
'ऐ'	विष्णु	शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूत, जगत् त्रयम् विष्णोर्योनिरिति ख्याता सा विष्णोर्दशरूपकम् एकारात्, परमेशानी चक्र व्याप्य व्यवस्थिता।
'र'	वह्नि	दशकोण करं तस्मात् प्रकारे ज्योतिराख्यः कलादशान्वितो वह्निर्दशकोण प्रवर्तकः।
'क'	शिव। मदन	ककारान्मदनोदेवि! शिवं चाष्ट स्वरूपकं। योनिवश्यं तदा चक्रं वसुयोन्यङ्कितं भवेत्।
◡	उनाद। त्रिकोण	'अर्धमात्रागुणान् सूतेनादरूपा यत स्मृतः त्रिकोणरूपा योनिस्तु।।'
⊙	बिन्दु सम्बद्ध 'बन्दवस्थान'	बिन्दुना बैन्दवं भवेत् । कामेशवरस्वरूपं तद्विश्वाधार स्वरूपकम् श्रीचक्रन्तुर्वियत सम्भवमिति।।

'कला' (वर्ण) का 'बिन्दु' (षटचक्र) से ऐक्य

अक्षर	तत्त्व/अर्थ	चक्र
(१) 'ल'	पृथ्वी तत्त्व	मूलाधार चक्र
(२) 'क'	जल तत्त्व	स्वाधिष्ठान चक्र
(३) 'र'	अग्नि तत्त्व	मणिपूरक चक्र
(४) 'ई'	चतुर्थ स्वर	अनाहत चक्र
(५) 'ऐ'	वाणी 'ऐ' (वाणी का स्थान वैखरीवाक्)	विशुद्ध चक्र
(६) ◡⊙	अर्द्धेन्दु और चन्द्र	आज्ञा चक्र
(७) 'स'	शक्ति।सोम	सहस्रार (शक्ति एवं चन्द्रमा)
(८) 'स'	अमृता	अमृत का स्थान—सहस्रार
(९) 'ह'	गगन मण्डल का सूचक/ शिव का सूचक	सहस्रार गगन मण्डल परम-शिव का स्थान

अक्षर	अर्थ	चक्र
(१) 'ल'	सर्वजन्मदात्री माता। सर्वयोनि	त्रिकोण मूलाधार
(२) 'क'	प्रथमाक्षर, प्रथम प्रसर=	त्रिकोणों का अष्टार = स्वाधिष्ठान चक्र
(३) 'र'	अग्नि जिह्वा 'अन्तर्दशार चक्र	अग्नि की १० होती हैं। अतः = मणिपूर चक्र
(४) 'ई'	विष्णु की माया	अवतार १० हैं १० अवतारों के कारण = बहिर्दशार = अनाहत चक्र
(५) 'ऐ'	विश्वयोनि भुवन योनि	भुवन १४ हैं। अतः चतुर्दशार = विशुद्धि चक्र।।
(६) ◡⊙	अर्धचन्द्र =	अष्टदल पद्म
(७) 'स'	= सोम = षोडशदलपद्म	= चन्द्रमण्ड आज्ञा चक्र
(८) 'स'	**'बैन्दव स्थान'** त्रिवृत्त चन्द्रमण्डल	या वृत्त सहस्रारस्थ
(९) 'ह'	शिव = चतुष्कोण सहस्रार	शिव का स्थान भूपुर =

(विष्णु के २४ अवतार हैं तथा विष्णु के १० अवतार भी हैं किन्तु अनाहत चक्र के दल तो १२ हैं अतः दलसंख्या के आधार पर दोनों में साम्य नहीं है।

भुवन १४ हैं किन्तु विशुद्ध चक्र के दल तो १६ हैं, अतः दलों के आधार पर इनमें साम्य तो नहीं है। 'ए वणी बीज है और विशुद्ध चक्र वैखरीवाणी का केन्द्र है।

[२] * 'कला' (वर्ण) का 'नाद' (चरण) से ऐक्य *

मंत्रावय व वर्ण	मंत्रा वयवभूत वर्ण का अर्थ	श्रीचक्र की उत्पत्ति 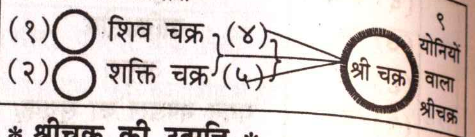 (१) शिव चक्र (२) शक्ति चक्र (४) (५) श्री चक्र ९ योनियों वाला श्रीचक्र
'क'	(१) कवर्ग का प्रथमाक्षर है। (२) स्फोट का सूचक है। (३) प्रथम स्फोट का अभिव्यञ्जक है।	* **श्रीचक्र की उत्पत्ति** * 'चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदल कलाब्ज त्रिवलय (श्री चक्र में ९ त्रिकोणों में से ४ शिवात्मक एवं ५ शक्त्यात्मक है। त्रिकोणों की सम्पूर्ण संख्या ४३ है।
'ए'	वाणी का सूचक है।	'ए' वाणी का सूचक इसलिए है क्योंकि 'ऐं' वाणी का बीज है। यह वैखरी वाक् को लक्षित करता है।
'क' एवं 'र'	**'र'** = अग्नि है। यह अग्नि का कारण है। 'क' वर्ग का प्रथमाक्षर है।	अग्नि प्रथम स्फोट की शक्ति है। 'क' एवं 'र' = 'पश्यन्ती वाक्' के द्योतक हैं। क + र = पश्यन्तीवाक् के द्योतक हैं।
'इ'	इच्छा का द्योतक (मध्यमा वाक्)	'इच्छाशक्ति' का संयोग (वाक् से) होने पर **'मध्यमावाक्'** का उदय होता है।
'ह'	शिववाच्य है।	'शिव' एवं 'शक्ति' (ह + स) के संयोग से (शिव-शक्तिमिथुन) से 'नाद' की उत्पत्ति होती है।
'स'	शक्ति वाच्य है।	शिव दोनों का संयोग शक्ति—नाद की उत्पत्ति। 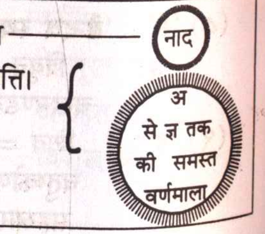

(३) बिन्दु (चक्रों) का नाद से ऐक्य—

'बिन्दु' और 'नाद' इस प्रकार ऐक्य है—

बिन्दु (चक्र)	नाद	श्री चक्र के भाग
(१) मूलाधार चक्र	परावाक्	त्रिकोण चक्र
(२) स्वाधिष्ठान चक्र	पश्यन्ती वाक्	अष्टार चक्र
(३) मणिपूर अनाहत	मध्यमा वाक्	दशार (द्वय) चक्र
(४) विशुद्ध चक्र	वैखरी वाक्	चतुर्दशार चक्र
(५) आज्ञा चक्र	नाद एवं नादान्त	शिव चतुष्कोण
(६) सहस्रार चक्र कलातीत	नाद बिन्दु परा संवित्[1]	भगवती त्रिपुर सुन्दरी

श्लोक क्रमांक १४ मणिपूरक चक्र में भगवती का साक्षात्कार

[तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती।
चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता॥
धनुर्वाणानिक्षूद्भव कुसुमजाङ्कुशवरं।
तथा पाशं विभ्रत्युदित रविबिम्बाकृति रुचिः ॥१४॥]

[**अर्थ**—'मणिपूरक चक्र' में भगवती त्रिपुरा विद्युत की रेखा के मध्य स्फुरित होती हैं उनका चार प्रकार का ऐक्य होता है और भगवती चतुर्भुजात्मिका स्वरूप में उदित होती हैं। वे अपने उन चतुर्बाहुओं में इक्षु-निर्मित **धनुष,** पुष्पनिर्मित **वाण,** श्रेष्ठ **अङ्कुश** एवं **पाश** धारणा किए हुए हैं। उन भगवती की कान्ति उदीयमान सूर्य के बिम्ब के सदृश (अर्थात् रक्तवर्ण की) है।॥१४॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—जब साधक शक्ति के चतुर्विध ऐक्य को ज्ञात कर लेता है अर्थात् उक्त चार प्रकार के ऐक्य को जान लेता है तब वह तडित की भाँति प्रकाशपुञ्जात्मिका भगवती त्रिपुरा अपने विद्युदाभ आलोक पुञ्ज से समावृत स्वरूप में साधक को दर्शन देती है।

भगवती इस समय साधक को जो दर्शन देती हैं उसमें हाथों में (१) धनुष (२) वाण (३) पाश एवं (४) अंकुश धारण किये रहती हैं।

भगवती का यह मंगलमय दर्शन गुरु द्वारा **'महाबेध दीक्षा'** देने पर ही प्राप्त

---

[1] आचार्य लक्ष्मीधर (सो०ल० श्लोक ४१ की व्याख्या)

होता है। **आचार्य लक्ष्मीधर** इसी तथ्य को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'गुरुकटाक्षसञ्जाता महावेध महिम्ना च भगवती झटति मूलाधार स्वाधिष्ठानात्मक चक्रद्वयं भित्वा मणिपूरे प्रत्यक्षं प्रतिभाति। —लक्ष्मीधरा

'स्फुरति मणिपूरे भगवती'—कहकर आचार्य गौड़पाद ने यह संकेतित किया है कि—

'मूलाधार चक्र' एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में भगवती प्रकट नहीं हुआ करती है।

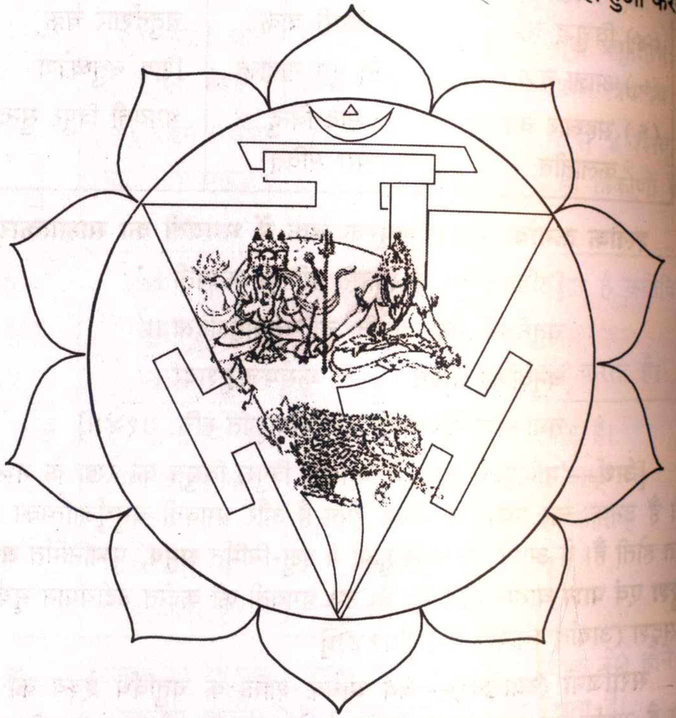

'नाभिस्त्र्यर्धाङ्गुलोपरि।
पत्पद्मं मणिपूरम्चदशपुत्रं सुशोभनम् ।
लाकिनीमध्यंग तच्च डामयोदिभिरावृतम् । —स्वच्छन्दतन्त्र

'तडित्वन्तंशक्त्यातिमिरपरिपन्थस्फुरमणाया
स्फुन्नानारत्नाकमणपरिणाद्धिन्द्रधनुषम् ।
तव श्याममेधं कमपि मणिपूरैक शरणाम्
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिाभुवनम् ॥
शङ्कराचार्य—सौन्दर्यलहरी

मणिपूरक चक्र में देवी का साक्षात्कार—

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'अत्र शङ्कर भगवत्पादानां चतुर्विधैक्यानुसन्धानानन्तरं **मणिपूरे** प्रत्यक्षाया: भगवत्या: स्वरूपं **'क्वणत्काञ्चीदामा'**—इत्यादि ध्यान प्रतिपादितं चतुर्भुजं धनुर्बाणपाशङ्कुशयुक्तहस्तम्। 'तन्मतानुसारिणामपि तथैव प्रतिभाति भगवती।

(२) 'अस्माकं तु षड्विधैक्यानुसन्धानानन्तरं मूलाधार द्विकं भित्वा **मणिपूरे प्रासन्ना** भगवती दशभुजा धनुर्बाणपाशाङ्कुशवरदाभय पुस्तकाक्षमालावीणाहस्ता। **मन्मतैकदेशिनां** पाशाङ्कुशपुण्ड्रेक्षुचाप पुष्प वाण जपमालिका शुकाभय वरकरा कर द्वयवक्ष स्थल स्थापित वीणा। उभयभस्माकं सम्मतमेव।[1]

* भगवती के स्वरूप में दृष्टि भेद *

(क) दशभुजा भगवती

- (१) धनुष
- (२) बाण
- (३) पाश
- (४) अंकुश
- (५) वरदान मुद्रा
- (६) अभय मुद्रा
- (७) **पुस्तक***
- (८) अक्षमाला
- (९) वीणा

(ख) सामयिकों के दूसरे मत में स्वीकार्य स्वरूप

- (१) पाश
- (२) अंकुश
- (३) **पुण्ड्र***
- (४) **इक्षुचाप***
- (५) पुष्पबाण
- (६) जपमालिका
- (७) अभय मुद्रा
- (८) वरदमुद्रा
- (९) वीणा

'उभयभस्माकं सम्मतभेव' (लक्ष्मीधर)

भवानि श्री हस्तैर्वहसि कणिपाशं सृणिमधो,
धनुः पाण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रक् शुकवरम् ।

---

[1] सौन्दर्यलहरी (४१)

अथ द्वाभ्यां मुद्रामभय वरदानैकरसिके,
क्वणद्वीपां द्वाभ्याभुरसि च कराभ्यां च विभृषे ।।

लक्ष्मीधर — कर्णावतंस स्तृति

'ब्रह्म पूजानिषेधात् सूर्यमण्डलान्तर्गतत्वेन पूजनं निषिद्ध मित्याहुः ।[१]

भगवती की पूजा में दृष्टि भेद— भगवती ललिता की पूजा—(१) कौल (२) मिश्र एवं (३) समय मत के सिद्धान्तों एवं उपासना—भेदों को लेकर भिन्न-भिन्न है।

वामकेश्वर तन्त्र में प्रतिपादित दृष्टि—यहाँ आत्मपूजा की सर्वोच्च पूजा है अतः यहाँ शङ्कर की 'परापूजा' स्वीकृत है। कहा गया है—

'पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ ।
शब्द रूपर्शादयो वाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः ।
करणोन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम् ।
विश्वाहङ्कारपुष्पेणा पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक् ।।'

(१) **'तर्पण'** का स्वरूप क्या है?

'भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणाम्' —भावनोपनिषद (३२)

(२) **'होम'**—'अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासित व्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः।

—भावनोपनिषद (३१)

(३) **देवता**—स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपासितिरिति भावना।

—तन्त्रराज तन्त्र

(४) **भगवती ललिता**—सदानन्द पूर्णः स्वात्मैव परदेवता ललिता।

—भावनोपनिषद (२७)

(५) **कामेश्वर**—निरुपाधिक संविदेव कामेश्वरः। (२६)

(६) देवी का धनुष—'मन इक्षु धनुः। (२२)

(७) देवी का पाश—'रागः पाशः। (२३)

(८) देवी का अङ्कुश—द्वेषोङ्कुशः। (२४) —भावनोपनिषद्

(९) देह क्या है? देहो नवरत्नद्वीपः।।६।।

(१०) कल्पतरु एवं कल्पतरु उद्यान क्या है?

'सङ्कल्पाः कल्पतर वस्तेजः कल्पकोद्यानम् ।।८।।

---

[१] लक्ष्मीधरा (४१)

(११) **सर्वकारणभूता शक्ति**—

श्री गुरुस्सर्वकारणभूता शक्तिः।। —भावनोपनिषद (१)

'स्फुरति मणिपूरे भवगती' (गौड़पाद)

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' में भगवती का प्राकट्य नहीं हुआ करता क्योंकि ये मलिन चक्र हैं।

(२) **'मूलाधार चक्र'** एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** मलिन एवं अन्धकार चक्र हैं अतः ये दोनों त्याज्य हैं।

(३) **मूलाधार चक्र** अन्धतामिश्र है।

(४) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** सूर्य-रश्मियों के सम्पर्क में स्थित रहने के कारण **'मिश्रलोक'** है।

(५) जहाँ तक **'मणिपूर चक्र'** की बात है वह अग्नि का स्थान है। **'मणिपूरक चक्र'** में मेघरूपी जल सूर्य की रश्मियों से प्रतिबिम्बित है अतः यह भी **'मिश्र लोक'** ही है किन्तु यहाँ **'मूलाधार'** एवं **'स्वाधिष्ठान'** की तुलना में अधिक ज्योति विद्यमान रहती है। यहाँ भगवती का साक्षात्कार होता है।

(६) **'अनाहत चक्र'** सूर्य का स्थान होने के कारण **'ज्योतिलोक'** है।

(७) **'अनाहत चक्र' पर्यन्त**—(१) अन्धतामिश्र (२) मिश्र एवं (३) ज्योतिलोक हैं।

(८) 'विशुद्ध चक्र' चन्द्र लोक है।

(९) **'आज्ञा चक्र'** चन्द्रस्थान होने के कारण **'अमृत लोक'** है।

(१०) **'विशुद्ध चक्र'** के अधोदेश में चन्द्र-चन्द्रिका विद्यमान नहीं रहती है।

(११) **'सहस्त्रदलकमल'** ज्योत्स्नालोक है, क्योंकि वहाँ ज्योत्स्ना-निलय है। **'सहस्त्रदल पद्म'** में अवस्थित चन्द्रमा नित्यकला से विभूषित है।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद भगवान शङ्कराचार्य के **'परम गुरु'** थे अतः आचार्य शङ्कर पर उनका यथेष्ट प्रभाव था। आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'तडित्वन्तं शक्त्या तिमिर परिपन्थस्फुरणाया,
स्फुन्नानारत्नाभरण परिशाद्धेन्द्रधनुषम् ।
तव श्यामः मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं,
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिर तप्तं त्रिभुवनम् ।।(४०)

अर्थात् तेरे मणिपूरक चक्र के शरणागत श्याम मेघों के रूप धारणा करने वाले

'कं' (जल) की भी मैं सेवा करता हूँ जिसमें तम की परिपन्थिनी (प्रति द्वन्द्विनी) बिजली की चमक, आभूषणों में जटिल रतनों की चमक के सदृश इन्द्र धनुष का रूप धारण किए हुए हैं और जो अग्नि तथा सूर्य के ताप से सन्तप्त त्रिभुवन पर वर्षा कर रहे हैं।

इस श्लोक में (मणिपूरक चक्र में) मेघेश्वर एवं विद्युत के रूप में **शिव तथा शक्ति का ध्यान** समझाया गया है।

(१) **सूर्य का स्थान** तो ऊपर सूर्य मण्डल में है और

(२) **अग्नि का स्थान** नीचे स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित अग्निमण्डल में है।

(३) दोनों (सूर्य एवं अग्नि) के उत्ताप से समस्त देहरूपी तीन खण्डों वाला त्रिभुवन उत्तप्त होने पर जल वाष्प के रूप में 'मणिपूरक चक्र' में मेघों का स्वरूप धारण कर लेता है और मेघों में अग्नि विद्युत का आकार धारण करके चमकने लगती है। इन्हें ही मेघेश्वर एवं सौदामिनी (विद्युत) कहते हैं। इन दोनों के योग से वर्षा की भाँति समस्त शरीर में रस का सिञ्चन होने लगता है।

आचार्य गौड़पाद ने इसी (मणिपूर चक्र) में भगवती के दर्शन का वर्णन किया है। **'सिद्धघुटिका'** में कहा गया है—

'मणिपूरैकवसतिः प्रावृषेण्यस्सदाशिवः।
अम्बुदात्मतयाभाति स्थिरसौदामिनी शिवा ।।'

लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'मणिपूर स्थाने जलतत्त्वं उत्पन्नम्।

(२) 'सूर्य किरणाः एव अग्नि सम्भिन्नाः मेघत्वामा पन्नाः जल रूपेणेति मणिपूरस्य आधार-स्वाधिष्ठान योर्मध्वे निवेशः।

(३) 'अनाहतीपरिस्थित सूर्य किरणाः स्वाधिष्ठानाग्निना संवालिताः सन्तः मणिपूरं प्रविश्य जलत्व मापन्नाः तेन जलेन स्वाधिष्ठानाग्निना दग्धं जगत् आप्लावयन्तीति आगम रहस्यम्

(४) अस्य स्फुन्नानारत्नाभरणा परिणाद्धेन्द्रधनुषम्' इत्यनेन मौवीरिहितं धनुरित्याहुः आगमविदः।।

'अरुणोपनिशद' में कहा भी गया है—

'तदिन्द्रधनुरित्यज्यम् अभ्रवर्णेषु चक्षते।
एतदेव शयोर्बार्हस्यत्यस्या। एतद्रुद्रस्य धनुः ।।'

मणिपूर में जल उत्पन्न होता है।

मणिपूरक का जल

(१) 'स्वाधिष्ठान चक्र' में **अग्नि** का उत्पादन करता है।

(२) आज्ञा चक्र में **चन्द्रमा** को उत्पन्न करता है।

(३) अनाहत चक्र में **सूर्य** को उत्पन्न करता है।

उस सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्र का यहाँ उल्लेख किया गया है।

(१) जल के रस चन्द्रमा को योगी प्राप्त करते हैं।

(२) सूर्य मण्डल में 'शुक्र' (अमृत) पूरित है।

(३) चन्द्र मण्डलगत पीयूष धारा से ही सूर्य का निर्वाह हुआ करता है।

(४) जल के रस अर्थात् पुष्प रूप चन्द्रमा का जो रस बैन्दव स्थान में स्थित है वह रस नित्य कलात्मक है।

(५) उदक (जल) का अभिमुख्य मणिपूर चक्र में उदक उत्पन्न करता है—

'अपां रस मुदयँ सन्। सूर्ये शुक्रं समाभृतम्।
अपां रसस्य यो रसः। तं वो गृह्यम्युत्तमम् ।।'

—तैत्तिरीय आरव्यक १.१२

'योप्सु नावं प्रतिष्ठितां वेद। प्रत्येव तिष्ठिति। —तैत्तिरीय आरव्यक १-१२

'अप्सु' अर्थात् उदकतत्त्वात्मक 'मणिपूरक चक्र' में श्री चक्र प्रतिष्ठित है।

सुषुम्ना में स्थित जो छः चक्र एंव 'सहस्रार' है वह **'श्री चक्र'** ही है।

(१) आज्ञा चक्र में स्थित चन्द्रमा में १५ कलायें हैं। १६वीं कला प्रतिकलित होती है।

(२) १६ हवीं कला **'सहस्रार चक्र'** में स्थित चन्द्रमा में है। इसका प्रकाश आज्ञा चक्र में स्थित चन्द्रमा पर पड़ता है तथा आज्ञा चक्र में स्थित चन्द्रमा के प्रकाश से विशुद्ध चक्र आलोकित होता है।

सारांश यह है कि **मूलाधार चक्र** एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** दोनों में भगवती की पूजा निषिद्ध है। ये चक्र प्रवृति प्रधान हैं। **कौलमत** में यह अवश्य स्वीकार्य हैं।

(१) **'आधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' तामिश्र लोक हैं—**

'आधार स्वाधिष्ठानयोः तामिश्र लोकत्वात ।।'

(१) इस तामिश्र लोक में या **'मूलाधार-स्वाधिष्ठान'** चक्र में कौलों को तो पूजा का अधिकार है किन्तु समय मत वालों को नहीं।

(२) समयमत में तो भगवती की पूजा **'सहस्रदलकमल'** में ही स्वीकार्य है—

(क) 'तत्र कौलानां अधिकारात् समयिनां आराधनाभावडिप स्वमतानुसारेण सहस्र कमले निषेव्यैव भगवती।[1]

(ख) 'आधार स्वाधिष्ठानयोः सेव्येति महामेखी समयापदेन' उच्यत इति।'[2]

'मणिपूर चक्र' में भगवती का साक्षात्कार

आचार्य गौड़पाद तो कहते हैं—

'तडिल्लेखा मध्ये **स्फुरति मणिपूरे भवगवती'**[3]

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर ने 'सौन्दर्य लहरी' (४१) की व्याख्या करते हुए कहा है—

(१) 'महावेधे जाते भगवती **मणिपूरे** प्रत्यक्षा भवति। सा समाराध्या। अर्ध्यपाद्यादि भूषणा प्रतिपादनपर्यन्तं पूजा कलापं मणिपूरे निर्वर्त्य अनाहत मन्दिरं भगवतीं नीत्वा ...... पूजयेत्।[4]

सामयिकों के लिए **'मूलाधार' 'स्वाधिष्ठान'** दोनों चक्र पूजनोपयोगी नहीं हैं।

कुण्डलिनी चार स्तर

(१) अधः
(२) मध्य
(३) ऊर्ध्व
(४) परा

[१] **अधः शक्ति** = यह शक्ति जीव को संसारोन्मुखी बनाकर प्रवृत्तिमार्ग में भ्रमित करती है।

'मूलाधार एवं 'स्वाधिष्ठान' चक्र प्रजनन शक्ति काम-प्रवृत्ति, बाह्यमुखी वृत्ति एवं दैहिक क्रिया कलापों से सम्बद्ध है अतः अधः पतन के मार्ग हैं।

[२] **'मध्य शक्ति'**—बौद्धिक एवं वैचारिक क्षेत्र से ही सम्बद्ध है 'मध्यशक्ति'। यह शक्ति वैचारिक क्षमता के कारण अङ्कुश एवं नियन्त्रणा का अधिकार रखती है।

[३] **'ऊर्ध्व शक्ति'** यह शक्ति आध्यात्मिक मार्ग की ओर उन्मुख करती है।

---

[1] १. लक्ष्मीधरा (४१)

[2] २. लक्ष्मीधरा (४१)

[3] ३. सभगोदय स्तुति (१४)

[4] ४. लक्ष्मी धरा (४१)

[४] **परा शक्ति**—यह शक्ति शिवभावात्मक चतुर्थ स्तर है। यही स्तर वरेण्य है क्योंकि समय मत में 'सहस्रादल कमल' में पूजा करना ही स्वीकार्य है श्रन्यत्र नहीं—

(क) 'समय पूजकाः **समयिनः।** तेषां षट्चक्रपूजा न नियता। अपितु सहस्र कमल एवं पूजा।

(ख) **सहस्र कमल पूजा है क्या है?**

'सहस्र कमल पूजा नाम सहस्र कमलस्य बैन्दवस्था नत्वेन तन्मध्यगत चन्द्र मण्डलस्य चतुरश्रात्मना तन्मध्य बिन्दोः पञ्चविंशतितत्त्वातीतं षड्शात्मक शिवशक्ति मेलन रूप सादारख्यात्मना अनुसन्धानम् ।

(ग) 'समयिमते बाह्याराधनं दूरत एव निरस्तम् ।

(घ) 'षोडशोपचार रूप पूजाङ्ग कलापश्च ततोडिप दूरत एव ।

(ङ) समयमतावलम्बी चतुर्विध ऐक्य का अनुसन्धान करके भगवती की पूजा करते हैं।

(च) कतिपय समयमत वाले षोढाऐक्य स्वीकार करते हैं।

पञ्च विध साम्य

(१) अधिष्ठान साम्य
(२) अवस्थान साम्य
(३) अनुष्ठान साम्य
(४) रूप साम्य
(५) नाम साम्य

चतुर्विध साम्य को सभी रामयत वाले मानते हैं।

श्लोक क्र.१५ षोढा ऐक्य

भवेत्यैक्यं षेढा भवति भगवत्याः समयिनां,
भरुत्वत्कोदण्ड द्युतिनियुत भासा समरुचिः।
भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे,
भवानि प्रत्यक्षं तव वपुरूपास्ते नहि परम्॥१५॥

[समयमत के उपासकों के लिए भगवती त्रिपुरा के छः प्रकार के ऐक्य होते हैं। मणिपूर में (वह) इन्द्रधनुष की कान्ति युक्त सुदीप्ति एवं दश प्रकार के हाथों के समूह हो जाती है। हे भवानी! (इस प्रकार के) तेरे प्रत्यक्ष शरीर की ही (तेरे उपासक) उपासना करते हैं निश्चय है कि किसी अन्य प्रकार की नहीं।]

सरोजिनी (व्याख्या)—भगवती 'मणिपुर चक्र' में इन्द्र धनुष के सौन्दर्य या रमणीय स्वरूप वाली एवं दशभुजा धारिणी देवी के रूप में प्रकट होती हैं। मणिपूर चक्र के जो १० दल हैं वे ही भगवती की १० भुजाएँ हैं। श्री चक्र तो भगवती का स्वशरीर है। **'मणिपूरक चक्र'** (अग्नि तत्त्व का स्थान है तथापि) वहाँ जल मेघों के रूप में विद्यमान रहता है। **'स्वाधिष्ठान** चक्र' का जल मणिपूर की अगिन से वाष्प बनकर मणिपूरक चक्र में मेघों के रूप में विद्यमान रहता है। इसीलिए मणिपूर को जल का स्थान भी कहा गया है।

* षोढ़ा ऐक्य *

जिस षोढ़ा ऐक्य की बात की गई है वह इस प्रकार है—

(१) मन्त्र तथा मातृकाओं का ऐक्य।

(२) मातृका तथा श्री चक्र का ऐक्य।

(३) मन्त्र और नित्याओं का ऐक्य।

(४) मातृका तथा नित्याओं का ऐक्य।

(५) मन्त्र एवं चक्र का ऐक्य।

(६) नित्याओं तथा चक्र का ऐक्य।

'मणिपूर' के मेघों पर 'अनाहत चक्र' के सूर्य की रश्मियाँ पर वहाँ 'इन्द्रधनुष' बन जाता है। देवी भी १० भुजाएँ कहीं भगवती के ६ प्रकार के एवं ४ प्रकार के ऐक्य का प्रतीकात्मक स्वरूप तो नहीं है? क्या ये ऐक्य ही देवी की १० भुजाएँ तो नहीं हैं?

अद्वैतवाद और शाक्तमत—शाक्त मत या शाक्त तन्त्र अद्वैतवादी है। उसके अनुसार साधक को देवी के साथ तादात्म्य या एकत्व का सम्बन्ध स्थापित करके उपासना करनी चाहिए। 'शक्ति' और साधक दोनों में ऐकात्म्य है—सामरस्य है—एकत्व है अतः साधक को अपनी उपासना के समय यह कल्पना करनी चाहिए कि—

'अहं देवी न नान्योस्मि।'

'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' में भी वही दृष्टि अनुस्यूत है।

अद्वैतवाद की दृष्टि से—(१) केवलाद्वैत वेदान्त (२) विज्ञानाद्वैतवाद (३) शून्याद्वैतवाद (४) शब्दब्रह्मवाद (५) अजातिवाद आदि भी दृष्टियाँ समतुल्य हैं।

'इन्द्रा मायाभिः पुरुरूप ईयते' 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' आदि समस्त उदाहरण परासत्ता की एकात्मता एवं अद्वैत के ही प्रमाण हैं।

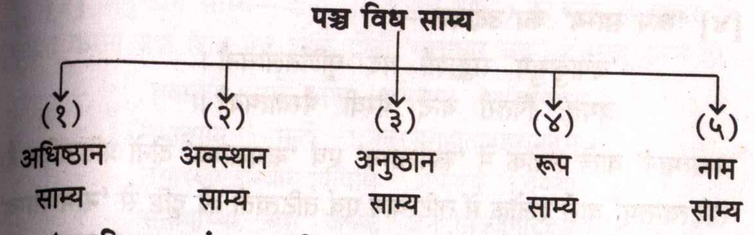

'पञ्चविध साम्यं तु—अधिष्ठान साम्यं, अवस्थान साम्यं, अनुष्ठान साम्यं, रूपसाम्यं, नामसाम्यं चेति पञ्चविधं सम प्रधानयोरे व शिवयोः।[1]

[१] 'अधिष्ठान साम्य'का उदारण—

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया,
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्।
उभाभ्यामेताभ्यामुदय विधिमुद्दिश्य दयया,
सनाथाभ्यां जज्ञे जनक जननीमज्जगदिदम्॥[2]

यहाँ अधिष्ठान साम्य इसलिए है, क्योंकि दोनों आधार चक्र के अधिष्ठान हैं।

मणिपूरस्थान अधिष्ठान है। श्लोक (४०) में कहा गया है—'तवश्यामं मेघं कमपि **मणिपूरैकशरणाम्'**। यहाँ भी **अधिष्ठान साम्य** है।

'तव स्वाधिष्ठाने' इत्यादि श्लोकों में भी **'अधिष्ठान साम्य'** है।

अनाहत चक्र में अनाहत अधिष्ठान है अतः यहाँ भी **'अधिष्ठान साम्य'** है। 'विशुद्धि चक्र' स्वयमेव अधिष्ठान है अतः यहाँ भी अधिष्ठान साम्य है।

[२] 'अनुष्ठान साम्य' का उदाहरण—

'सान्दर्य लहरी' के श्लोक—'जनक जननीमज्जगदि दम्' में अनुष्ठानसाम्य ह। उत्पादन क्रिया में व्याप्रियमाणत्व के कारण यहाँ अनुष्ठान साम्य है।

वातु तत्त्वोत्पादकत्व के कारण यहाँ भी अनुष्ठान साम्य है। 'व्योम जनक'—यहाँ भी अनुष्ठान साम्य है।

[३] 'अवस्थासाम्य' का उदारण—'सौन्दर्य लहरी' में लास्य-ताण्डव शब्दों द्वारा भी अवस्था साम्य प्रतिपादित किया गया है। 'लास्य' एव 'ताण्डव' दोनों हैं पृथक्-पृथक् किन्तु हैं नृत्य ही।

'स्फुरन्नानारत्नाभरणापरिणोद्धेन्द्र धनुषम् ' में अवस्थासाम्य है।'

---

[1] लक्ष्मीधर

[2] सौन्दर्यलहरी (४१)

[४] **'रूप साम्य' का उदारण—**

'जपाकुसुम सङ्काशौ मद घूर्णितलोचनौ।
जगतः पितरौ बन्दे भैरवी भैरवात्मकौ॥'

'नवात्मानं' वाले श्लोक में **'रूपसाम्य'** एवं **'नामसाम्य'** दोनों प्रतिपादित है।

'तटित्वन्तम्' वाले श्लोक में तटित्वान एवं तटित्वती की दृष्टि से **'नाम साम्य'** एवं **'रूप साम्य'** दोनों है।

['महतीं' वाले श्लोक में महासंवर्तात्मक **रूप साम्य** एवं **नामसाम्य** दोनों हैं।]

(स्वाधिष्ठान गताग्निसंश्रयणा में **अवस्थान साम्य** है।)

['यमाराध्यन् भक्त्या' में **अवस्थान साम्य** है।]

[५] **'नाम साम्य' का उदाहरण**—'परं शंभुं' वाले श्लोक में तो **'नामसाम्य'** है किन्तु 'तपनशशिकोटिद्युतिधरं' वाले श्लोक में तो **'रूपसाम्य'** है।

साम्य के भेद—शाक्त दार्शनिकों ने साम्य के निम्न भेद बताये है—

(१) **चतुर्विध ऐक्य रूप साक्य**

(२) (पञ्चविध ऐक्य रूप साम्य (शिव एवं शक्ति में)

(३) **षड्विध ऐक्य रूप साम्य** 'षोढा ऐक्य'

लक्ष्मीधर कहते हैं—

(क) उभयोः समप्राधान्येनैव साम्यं विज्ञेयम् पञ्चविध साम्यं तु—

(१) अधिष्ठान साम्यं (२) अवस्थान साम्यं

(३) अनुष्ठान साम्यं (४) रूपसाम्यं

(५) नम साम्यं—चेति **पञ्चविधं** समप्रधान योरेव शिवयोः।

(क) 'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धान मेव भगवत्याः समाराधनमित्येतत् सर्वसम्मतम्। (चतुर्विध ऐक्य)।

(ख) केचित्तु **षोढा ऐक्यमाहः**।[1]

* शिव एवं शक्ति में साम्य के प्रकार *

शिव एवं शक्ति समप्रधान हैं और दोनों में पञ्चविध साम्य है जो इस प्रकार है—

[१] **'अधिष्ठान साम्य'** = शिव एवं शक्ति का एक ही स्थान में रहना ही अधिष्ठान-साम्य है।

---

[२] **अनुष्ठान साम्य**—दोनों (शिव एवं शक्ति) का एक ही प्रकार के कार्य निष्पादित करना यथा शिव एवं शक्ति दोनों 'मूलाधार चक्र' में नृत्य करते हैं।

'तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया,
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्।
उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधि मुद्दिश्य दयया,
सनाथाभ्यां जज्ञे जनक जननीमज्जगदिदम्॥[1]

[३] **'अवस्थान साम्य'**—दोनों अर्थात् शिव शक्ति दोनों का एक अवस्था में रहना 'अवस्थान साम्य' है।

[४] **'रूप साम्य'**—शिव एवं शक्ति दोनों का एक समान रूप होना ही **'रूपसाम्य'** है।

[५] **'नाम-साम्य'**—एक जैसा ही दोनों का नाम होना (जैसे व्योमेश्वर एवं व्योमेश्वरी) ही नाम-साम्य कहलाता है।

यह पाँच प्रकार का साम्य इस प्रकार भी हो सकता है।

साम्य पञ्चक का द्वितीय प्रकार

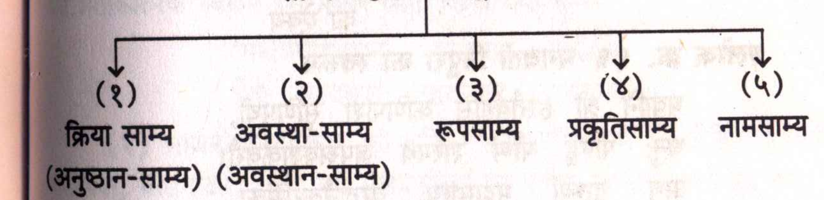
(१)
क्रिया साम्य
(अनुष्ठान-साम्य)
(२)
अवस्था-साम्य
(अवस्थान-साम्य)
(३)
रूपसाम्य
(४)
प्रकृतिसाम्य
(५)
नामसाम्य

षोढ़ा ऐक्य

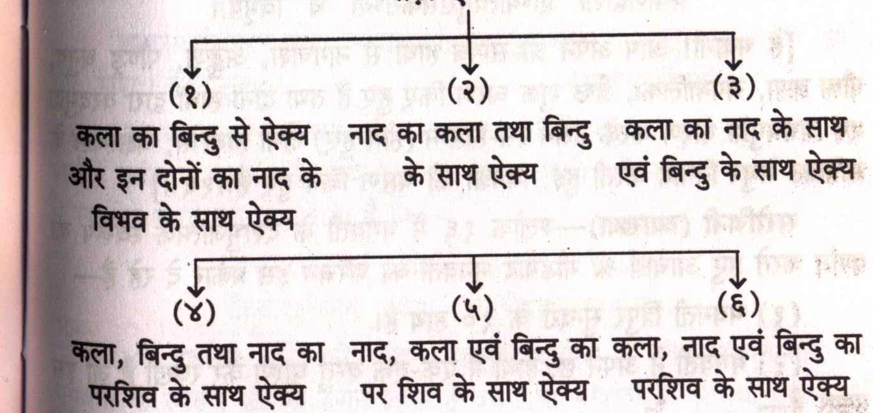
(१)
कला का बिन्दु से ऐक्य और इन दोनों का नाद के विभव के साथ ऐक्य
(२)
नाद का कला तथा बिन्दु के साथ ऐक्य
(३)
कला का नाद के साथ एवं बिन्दु के साथ ऐक्य
(४)
कला, बिन्दु तथा नाद का परशिव के साथ ऐक्य
(५)
नाद, कला एवं बिन्दु का पर शिव के साथ ऐक्य
(६)
कला, नाद एवं बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य

---

१. आचार्य लक्ष्मीधर (श्लोक ४१)

२. सौन्दर्य लहरी (४१)

चतुर्धा ऐक्य

(१) मातृ एवं मन्त्र का ऐक्य

(२) मन्त्र एवं चक्र का ऐक्य

(३) चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य

(४) नित्याओं तथा तिथियों ऐक्य

चतुर्धा ऐक्य का द्वितीय रूप

(१) आधार आदि ६ चक्रों का श्रीचक्र के साथ ऐक्य

(२) बिन्दुस्थान का बैन्दव स्थान या सहस्रार के साथ ऐक्य (शिव-शक्ति का ऐक्य)

(३) अमल एवं अनावरण शुद्ध जीव का शिव के साथ ऐक्य। साधक एवं शिव या शक्ति का ऐक्य

(४) श्री यन्त्र एवं मन्त्र का ऐक्य

श्लोक क्र. १६ भगवती त्रिपुरा का स्वरूप

भवानि श्री हस्तैर्वहसि कणिपाश सृणिपथी,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रक्शुकवरौ।
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभय वरदानैकरसिंका,
क्वाणद्वीणां द्वाभ्यांत्वमुरसिकराभ्यां च विभृषे।।

[हे भवानी! आप अपने श्री सम्पन्न हाथों से नागपाश, अङ्कुश, पौण्ड्र धनुष, पौष्प बाण, जपमालिका, श्रेष्ठ शुक धारण किए हुए हैं तथा दोनों हाथों द्वारा वरदमुद्रा एवं अभयमुद्रा धारण करके उसमें रस-निमग्न (होते हुए) दोनों हाथों से, वक्षस्थल के सन्निकट मधुर निनाद करती हुई, विपञ्ची को धारण किये हुए हैं।।१६।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—श्लोक १६ में भगवती के दशभुजात्मक स्वरूप का वर्णन करते हएु आचार्य श्री गौड़पाद भगवती का परिचय इस प्रकार दे रहे है—

(१) भवगती त्रिपुर सुन्दरी के १० हाथ हैं।

(२) भगवती ने अपने छः हाथों में एक-एक वस्तु धारण कर रक्खी हैं जो इस प्रकार है—

(क) पाश। अङ्कुश। धरुष। बाण। जपमाला। शुक।

(ख) (शेष चार हाथों में धार्य वस्तुएँ)—

---

१. एक हाथ **वरदमुद्रा** धारण किए हुए है।

२. दूसरा हाथ **अभयमुद्रा** धारण किए हुए है।

३-४. दो हाँथ वीणा-वादन में निरत हैं अर्थात् उन्होंने दोनों हाथों में वीणा धारण कर रक्खी हैं।

श्लोक १४ देखिए। इसमें भगवती के हाँथों में धार्म वस्तुओं का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

(१) इक्षु-धनुष (२) पुष्प बाण (३) श्रेष्ठ अङ्कुश (४) पाश।

'धनुर्बाणनिक्षूद्भव कुसुमजानङ्कुशवरं
तथा पाशं बिभ्रत्युदितरविबिम्बाकृतिरुचिः ।।'

धार्य आयुधों का प्रतीकात्मक स्वरूप—भगवती के हाथों में धारित आयुध केवल भौतिक पदार्थ ही नहीं हैं प्रत्युत् वे प्रतीक भी हैं। **'तन्त्रराज तन्त्र'** की दृष्टि यही है।

(१) तन्त्रराज तंत्रकार की दृष्टि—'तन्त्रराजतन्त्र' के वासना पटल में आयुधों का प्रतीकात्मक स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

'मनोभवेदिक्षुधनुः पाशोराग उदीरितः ।
द्वेषः स्यादङ्कुशः पञ्चतन्मात्र पुष्प्सायकाः ।।'

(२) **भावनोपनिषदकार की दृष्टि**—भावनोपनिषद में भी भौतिक पदार्थों को मनोभवों, वासनाओं, उद्वेगों एवं मूलप्रवृत्तियों का प्रतीक स्वकीार करते हुए कहा गया है कि—

'शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्चतन्मात्राः पञ्च पुष्पवाणा मन इक्षु धनुः वश्यो बाणो रागः पाशः। द्वेषोऽङ्कुशः।। —(भावनोपनिषद)

(३) **चतुःशतीकार की दृष्टि—'चतुश्शती'** में स्थूल वस्तुओं की उसी स्थूल अर्थ में गृहीत न करके उन्हें उनके गुप्त एवं रहस्यात्मक) प्रतीकार्थ का लाक्षणिक अर्थ में स्वकीार करते हुए कहा गया है कि—

'इच्छाशक्तिमयं पाशं मङ्गलज्ञानरूपिणाम् ।
क्रियाशक्तिमये बाण धनुषीदधदुज्ज्वत्लम् ।।'

(४) **दुर्वासा मुनि की दृष्टि**—महामुनि दुर्वासा ने 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' में भगवती के स्वरूप का जो वर्णन किया है उसमें भी भगवती के आयुधों एवं उनके आध्यात्मिक तथा लाक्षणिक रहस्यार्थों एवं उनके आध्यात्मिक तथा लाक्ष्द्वाणिक रहस्यार्थों एवं उनके आध्यात्मिक तथा लाक्षणिक रहस्यार्थों पर प्रकाश डाला है। महर्षि

दुर्वासा करहते हैं—कि भवगती त्रिपुरा के आयुधों का अतिशय महत्व एवं अतुल्य प्रभाव है—

'अथ तव धनुः पुण्ड्रेक्षुकृत्पसिद्धमति द्युति,
त्रिभुवन व धूमुद्यज्योत्स्नाकलानिधिमण्डलम् ।
सकल जननि स्मारं स्मारं गतः स्मरतां नर,
त्रिभुवनवधूमोहाम्मोधेः प्रपूर्णविधुर्भवेत् ॥४१॥
प्रसूनशरपञ्चक प्रकटजृम्भणागुक्तितं,
त्रिकोकमवलोकयत्यमलचेतसा चिन्तयन् ।
अशेषरमणीजनस्मरविजृम्भणो यः सदा,
पटुर्भवति ते शिवे त्रिजगदङ्गवाक्षोभणो ॥४२॥
पाशं प्रपूरितमहासुमतिप्रकाशो,
यो वा तव त्रिपुरसुन्दरि सुन्दरीणाम् ।
आकर्षणोऽखिल वशीकरणों प्रवीणं,
चित्ते दधाति स जगत्त्रयवश्यकृत् स्यात् ॥४३॥
यः स्वान्ते कलयति कोविदस्त्रिलोक,
स्तम्भारम्भणचणमत्युदार वीर्यम् ।
मातस्ते **विजयमहाङ्कुशं** सयोषान्,
देवान् स्तम्भयति च भूभुजोऽन्यसैन्यम् ॥४४॥
चापध्यानवशाद्भवोद्भवमहामोहस्‍ व्युज्जृम्भणं,
प्रख्यातं प्रसवेषुचिन्तनवशात्तत्तच्छख्यं सुधीः ॥
पाशध्यानवशात् समस्त जगतां मृत्योर्वशत्वं महा,
दुर्गस्तम्भमहाङ्कुशस्य मननान्मायाममेयां तरेत् ॥४५॥

(५) **'ललितासहस्रनाम' में प्रतिपादित दृष्टि**—'ललितासहस्रनाम' में भगवती के आयुधों को भौतिक अर्थों में स्वीकार न करके तन्निहित लाक्षणिक प्रतीकार्यों में गृहीत करते हुए कहा गया है कि उद्यद् भानुसहस्राभां चतुर्बाहु समन्विता

रागस्वरूप पाशाठ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला ।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पंचतन्मात्र सायका ।
निजारुण प्रभापूर पंचतन्मात्र सायका ।
निजारुण प्रभापूर मज्जदबह्माण्डमण्डला ॥

यहाँ **'पाश'** राग का स्थूल रूप हैं।

अङ्कुश—क्रोध का प्रतीक है।

'धनुष' मन का प्रतीक है।

'बाण'—पञ्चतन्मात्राओं के प्रतीक हैं। 'महामाया' इनहीं आयुधों से पुरुष (जीव) का आखेट किया करती है। अर्थात् जीव को सांसारिक बन्धन में डाला करती है।

(६) **औपनिषदिक दृष्टि**—उपनिषदों में भी आयुधों को प्रतीकार्थ में ग्रहण किया गया है। यथा—

'प्रणवो **धनुः शरोह्यात्मा**, ब्रह्म **तल्लक्ष्य** मुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयोभवेत् ॥'

श्रुति कहती है—

'धनुगृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं,
शरं ह्युपासानि निशितं सन्धयीत् ।
आयम्य तद्मावगतेन चेतसा,
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥'

सौन्दर्यलहरीकार भगवती के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

शिवश्शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलस्स्पन्दितु मपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रशान्तुं स्तोतं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ।
सौन्दर्य लहरी(१)

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुल पथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥
सौन्दर्य लहरी (९)

क्रोध महाभट्टारक दुर्वासा ऋषि कहते हैं—

गेहं नाकति गर्वितः प्रवणति स्त्री सङ्गमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृततिक्ष्मावल्लभो दासति ।
मृत्युर्वैद्यति दूषणां सुगुणति त्वत्पादसंसंवनात्
त्वां वन्देभवमीतिमञ्जनकरीं गौरीं गिरीशप्रियाम् ॥
दुर्वासा— 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र

सच्चिदानन्द वासनाकार की दृष्टि—'सच्चिदानन्दवासना' में भगवती को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया है—

(१) विश्वात्मिका (२) विश्वोत्तीर्ण (३) प्रकाशामर्शरूपिणि, (४) परापरमयी एवं (५) आत्मस्वरूपा।

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णं प्रकाशामर्शरूपिणीम् ।
परापरमयी देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम् ॥
—सच्चिदानन्दवासना

श्लोक क्र. १७ श्री चक्र में स्थित योनियाँ एवं विभिन्न उपचक्र

त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुदभूत,
दृशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रं समभवत् ।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात्त्रिवलय,
चतुर्द्वाः प्राकारत्रितयमिदमेवाम्ब शरणाम् ॥१७॥

[त्रिकोणों द्वारा **'अष्टार'** एवं त्रिकोणों के द्वारा ही **'दशार'** उत्पन्न हुआ। फिर इस नीचे के दशार' के अनन्तर दशर एवं 'चतुर्दशार' (उत्पन्न) होते हैं फिर 'अष्टदलपद्म' 'षोडशदलपद्म' वलयत्रय एवं फिर चतुर्द्वारात्मक त्रिरेखाङ्कित प्रकार (स्थित) है। हे जननी! यह तेरा शरण स्थल (भक्तों को शरण प्रदान करने वाला एवं तुम्हारा निवास स्थान) है॥१७॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—'भून्नागारं' = भूः + नागार। भूः नागः = दिग्गज = आठ की संख्या का सूचक है।

'नृपति दलं' = **'नृपति'** = १६ की संख्या का सूचक है नृपति शब्द। **'नृपति'** यहाँ **षोडश दल पद्म।**

प्रस्तार के भेद से 'श्री यंत्र' के तीन भेद हैं—

(१) मेरु प्रस्तार (२) कैलास प्रस्तार (३) भू प्रस्तार

(क) भूपृष्ठ श्री यन्त्र—यह समतल हुआ करता है।

(ख) कर्म पृष्ठ श्री यन्त्र—यह यन्त्र कच्छपाकार हुआ करता है।

(ग) मेरु पृष्ठ श्री यन्त्र—यह पर्वताकार एवं मध्य में उभरा हुआ होता है।

श्री चक्रम्

विन्दु-त्रिकोण-वसुकोण-दशारयुग्मम्,
मन्वस्र-नागदल-संयुत-षोडशारम् ।
वृत्त-त्रयं च धरणी-सदन-त्रयं च,
श्रीचक्रमेतदुदितं पर-देवतायाः ॥

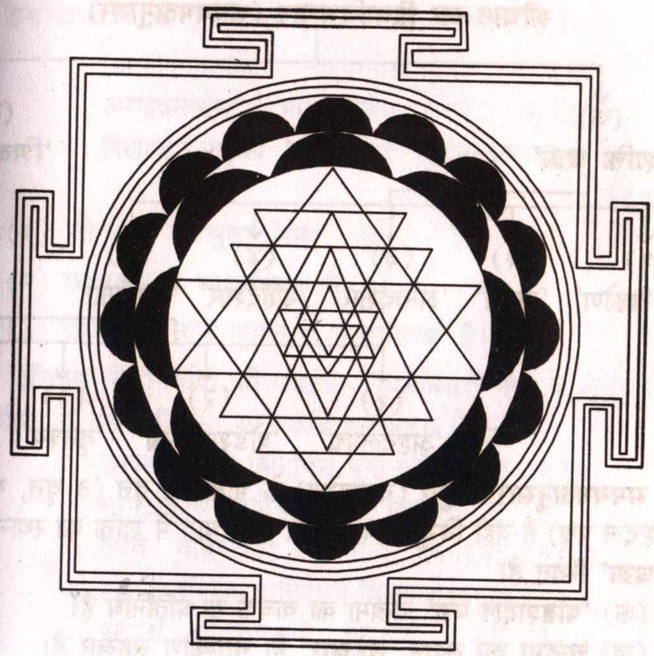

कोटि-लिङ्ग-प्रतिष्ठायां यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं लभते नूनं श्री-चक्रस्य प्रपूजने ॥
सर्व-देव-गणास्तत्र सर्वे धर्माश्च तत्र वै ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः पुष्कराद्या जलाशयाः ॥
पुरुषोत्तम-मुख्याश्च क्षेत्रानन्दा वनादयः ।
वाजिमेधस्य यज्ञस्य पूण्यं त्वविकलं भवेत् ॥

'श्रीचक्र' और उसका सामान्य स्वरूप

(क) 'समय मत'—

(१) श्री चक्र की नौ योनियाँ हैं जो इस प्रकार है—

(१) मध्यस्थ त्रिकोण (२) अष्टार (३) अन्तर्दशार
(४) बहिर्दशार (५) चतुर्दशार (६) अष्टदलपद्म
(७) षोडशदलपद्म (८) वृत्तत्रय (९) भूपुर ॥

इसमें से प्रथम पाँच योनियाँ **'शक्तिचक्र'** एवं शेष चार योनियाँ **शिवचक्र** कहलाते हैं।

श्रीचक्र का द्विधाविभाजन (समयमतानुसार)

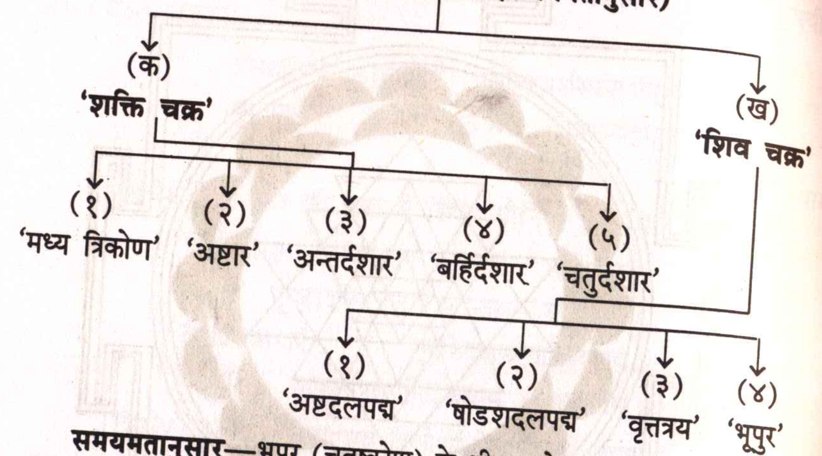
(क)
'शक्ति चक्र'
(ख)
'शिव चक्र'
(१)
'मध्य त्रिकोण'
(२)
'अष्टार'
(३)
'अन्तर्दशार'
(४)
'बर्हिर्दशार'
(५)
'चतुर्दशार'
(१)
'अष्टदलपद्म'
(२)
'षोडशदलपद्म'
(३)
'वृत्तत्रय'
(४)
'भूपुर'

समयमतानुसार—भूपुर (चतुष्कोण) के भीतर जो वृत्त (३ वृत्त, षोडश दल एवं अष्टदल पद्म) है वही **बिन्दुस्थान** है और मध्य भाग में शक्ति का स्थान है अर्थात् **'शक्तिचक्र'** स्थित है।

(क) **'षोडशदल पद्म'** चन्द्रमा का वाचक या प्रतिनिधि है।

(ख) **चन्द्रमा का स्थान 'सहस्रार'** है। चतुष्कोण सहस्रार है।

(ग) उसके मध्य में स्थित **'षोडशदल पद्म'** वह **चन्द्रमण्डल** है जिसमें अमृत का सिन्धु है।

(घ) इसी **सुधासिन्धु** के मध्य महामाया शक्ति भगवती **कुण्डलिनी का निवास** है।

(ङ) आचार्य शङ्कर के **'सुधासिन्धु'** का परिचय इस प्रकार दिया है—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते ।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमाविपर्यङ्कनिलयां,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।'

(सौन्दर्य लहरी) (८)

* श्री चक्र के खण्ड *

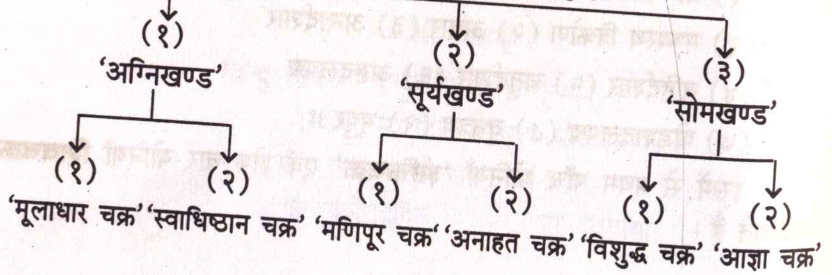
(१)
'अग्निखण्ड'
(२)
'सूर्यखण्ड'
(३)
'सोमखण्ड'
(१)
(२)
(१)
(२)
(१)
(२)
'मूलाधार चक्र'
'स्वाधिष्ठान चक्र'
'मणिपूर चक्र'
'अनाहत चक्र'
'विशुद्ध चक्र'
'आज्ञा चक्र'

इस खण्डत्रय की (तीनों खण्डों की) ३६० रश्मियाँ हैं ।

'अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीसोममयं जगत् ।
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोम मयं स्मृतं ।
त्रिखण्ड मातृका चक्रं सोम सूर्यानलात्मकम् ॥'

(रुद्रयामल तन्त्र)

(१) 'श्री चक्र' में **'सुधा सिन्धु'** है।

(२) सहस्रार में **'सुधासिन्धु'** है।

(३) सहस्रार के चन्द्रमण्डल में **'सुधासिन्धु' है।**

'श्रीचक्र' के निर्माण की पद्धति—'वामकेश्वरी मत' के अनुसार 'श्री चक्र' के निर्माण एवं उसके विकास की पद्धति इस प्रकार है—

'शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्य भूयो वह्निपुरेण तु ॥२९॥
सम्पुटीकृत्य सर्वोर्ध्वं शक्तिं विस्तारयेदधः ।
तथैव वह्निचक्रेण तामेवोर्ध्वं विभेदयेत् ॥३०॥
तत ऊर्ध्वस्थितां शक्तिमूर्ध्वं विस्तारयेत्क्रमात् ।
पुनराद्यं वह्निचक्रमधो विस्तार्य सुन्दरि ॥३१॥
ग्रंथिभेद क्रमेणौव शकितमाद्यां विभेदयेत् ।
तथा सर्वेर्ध्ववह्नयन्तःशक्तिं विस्तारयेदधः ॥३२॥
तामादिचक्राधः शक्त्या वह्निोर्ध्वं विभेदयेत् ।
पुनः पूर्वदेवाऽऽद्यां शक्तिं विस्तार्य भेदयेत् ॥३३॥
ऊर्ध्ववह्निमधोवह्निमध्येवह्निविर्जितम् ।
विस्तार्य भेदयेच्छक्तिमधस्तादूर्ध्ववह्निना ॥३४॥
अतो मध्यादिशक्त्यर्ध्वशक्तिं विस्तारयेदधः ।
तथैव सम्पुटीकुर्यात्सर्वचक्रं सुरेश्वरि ॥३५॥
तां च तेन महेशानि वह्निचक्रेण भेदयेत् ।
ग्रन्थिभेदक्रमेणाधः सर्वोध्वात्सर्वबाह्यतः ॥३६॥
मध्योर्ध्वशक्तिपर्यन्तमादिशक्त्यवधि प्रिये ।
ततो बाह्यस्थशक्त्यन्तः शक्तिमूर्ध्वं विकासयेत् ॥३७॥
सर्वोर्ध्ववह्नयधोवह्निपर्यन्तं वीरवन्दिते ॥३८॥
तथा विस्तारयेच्छक्तिमाद्यामप्यूर्ध्वमीश्वरि ।
तया विभेदयेद्वह्नि चक्रं सर्वोर्ध्व संस्थितम् ।
सर्वोर्ध्ववह्नयधोभागग्रन्थिपर्यन्तन्तःप्रिये ॥३९॥

विस्तार्य बाह्यशक्तिं तु सर्वाधस्ताद्विभेदयेत् ।
ततः सृष्ट्वा **महाचक्रं** प्रथमं तु हुताशनम् ।।४०।।
मध्ये तु द्वितीयं स्थित्वा संहारं पञ्चमं च यत् ।
एवमेतन्महाचक्रं महात्रिपुराभयम् ।।४१।।'[1]

'योगिनी हृदय' नामक प्रसिद्ध तन्त्र के ग्रन्थ में 'श्री चक्र' के आविर्भाव के विषय में यह विचार व्यक्त किया गया है।

श्री चक्र (श्री यन्त्र)

'श्री चक्र' भवगती महात्रिपुर सुन्दरी का 'आसन' है। यह महाचक्र **'महात्रिपुर सुन्दरीमय'** है—

'एवमेतन्महाचक्रं महाश्रीपुरामयम् ।'[2]

'यन्त्र' देवता की आत्मा कहा जाता है।

'श्री चक्र' ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड दोनों का प्रतीक है। इसकी रचना चार शिव चक्रों एवं पाँच शक्ति चक्रों से की जाती है अतः 'श्री चक्र' शिव एवं शक्ति से युक्त है। **'सृष्टि क्रम'** में पाँच **'शक्ति त्रिकोण'** ऊर्ध्वमुख रखे जाते हैं। और चार शिवत्रिकोण' ऊर्ध्व मुख रखे जाते हैं। इसके त्रिकोणों की संख्या ४३ है।

'श्री चक्र' का स्वरूप—आचार्य शङ्कर ने 'सौन्दर्य लहरी' में श्री चक्र के स्वरूप को (१) ४ 'श्री कण्ठ चक्र' (२) ५ 'शिव युवति चक्र'—इन नौ मूल प्रकृतियों से रचित, (३) ४३ त्रिकोणों से (४) तीन वृत्तों (५) तीन रेखाओं एवं (६) अष्ट-षोडश दलों से युक्त माना है—

'चतुर्भिः श्री कण्ठैः शिवयुतिभिः पञ्चभिरपि ।
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः ।।
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्र त्रिवलय ।
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणा कोणाः परिणताः ।।'[3]

वामकेश्वरी तन्त्रोक्त श्री यन्त्र की महत्ता—'वामकेश्वरीमतम्' 'वामकेश्वर तन्त्र, के प्राथमिक पाँच पटल) में 'श्री यन्त्र' की बड़ी महिमा गाई गई है और कहा गया है कि यह 'महायन्त्र' महाभुत है और इसमें—

(१) क्लेदन (२) द्रावणा (३) क्षोभण (४) मोहन (५) आकर्षण (६) जंभन

---

[1] १. वामकेश्वरीमतम् (प्रथम पटल : २९-४१)
[2] २. वामकेश्वरीमतम् (४१)
[3] ३. सौ. ल. (११)

(७) स्तंभन (८) 'व्याधि-दारिदय शमन (९) 'सर्वदुर्नीतिनाशन' (१०) शान्ति पुष्टि' वर्धन (११) आरोग्यवर्धन (१२) सर्वसिद्धिदान आदि शक्तियाँ तो हैं ही साथ ही साथ यह यन्त्र—(१३) भोगप्रदायक (१४) मोक्षप्रदायक (१५) खेचरत्व प्रवर्तक (१६) सर्वरक्षाकर (१७) सर्वानन्दकर (१८) सर्वकर्मकर (१९) सर्वकार्यार्थ साधक (२०) सर्वविशकर (२१) सर्व वेधकर (२२) सर्वतत्त्वकर (२३) सर्वज्ञान निलय (२४) सर्वसिद्धि संयुत (२५) सर्वश्रेयस्कर (२६) सर्वमन्त्रमय (२७) सर्वतीर्थमय (२८) सर्वव्रत मय (२९) सर्वामृतमय (३०) सर्वदुःखनाशक (३१) सर्वशोक निवारक (३२) सर्वोन्मादकर (३३) सर्वयोगीश्वरीमय (३४) सर्वपीठमय (३५) सर्वज्ञानमय (३६) सर्वदेवभय (३७) सर्वाह्लादन कारक (३८) सर्वदौर्भाग्यशामक (३९) सर्वविघ्न निवारक (४०) सर्व सिद्धिकर (४१) सर्वाशापरिपूरक (४२) रौद्राभिचारनाशक (४३) परमंत्रौधभक्ष (४४) परसिद्ध्या कर्षक (४५) पराज्ञाकर्षक (४६) परसैन्यस्तंभक (४७) परंविज्ञान मोहक (४८) पर वक्त्रस्तंभकर (४९) परशस्त्रस्तंभकर (५०) महाचमत्कारकर (५१) महाभुक्तिप्रवर्तक (५२) महावश्यकर (५३) महासौभाग्यदायक (५४) महाज्वरहर (५५) महाविष हर (५६) महामृत्युशामक (५७) महाभय विनाशक (५८) महापुर क्षोभकर (५९) महासुख शुभप्रद (६०) महालक्ष्मीमय (६१) महामाङ्गल्यदायक (६२) महाप्रभावकारी एवं (६३) महापातक नाशक है। ये कतिपय महिमायें ही उसकी सम्पूर्ण महत्ता का परिचायक या बोधक नहीं है। 'श्री चक्र' महाद्भुत है अतः इस दृष्टि से उसकी महत्ता अवर्ण्य है—

एवमेतस्य चक्रस्य प्रभावो विर्णिंतु मया।
न शक्यते महादेवि। कल्पकोटिशतैरपि।।

इस चक्र में भवगती महात्रिपुर सुन्दरी समस्त नित्याओं के साथ निवास करती हैं—

'संस्थिताऽत्र महाचक्रे महात्रिपुर सुन्दरी ।'

वाणी की अधीश्वरी अष्ट शक्तियों समस्त वर्णों (संपूर्ण वर्णमाला) के साथ भवगती महात्रिपुर सुन्दरी इस 'महायन्त्र' में निवास करती हैं।[1]

इस कथन की पुष्टि में कतिपय श्लोक (प्रमाण) भी प्रस्तुत हैं—

भोगदं मोक्षदं चैव खेचरत्वप्रवर्तकम् ।
सर्वरक्षाकरं देवि! सर्वानन्दकरं तथा ।।
सर्वकर्मकरं चापि सर्वकार्यार्थसाधकम् ।
सर्वा वेशकरं देवि! सर्ववेधकरं पुनः ।।

---

[1] १. वामकेश्वरीमतम्

सर्व तत्त्वं करं देवि! सर्वज्ञान निलयं तथा।
सर्वसिद्धिसंयुतं चैव सर्वश्रेयस्करं परम्॥
सर्वसिद्धिसंयुतं चैव सर्वाभृतमयं तथा॥
सर्वपीठमयं देवि। सर्वज्ञानमयं प्रभो।
सर्व देवमयं देवि! सर्वाह्लादनकारकम्॥
सर्वदौर्भाग्यशमनं सर्व विघ्ननिवारणाम्।
सर्व सिद्धिकरं चक्रं सर्वाशा परिपूरकम्॥
महाचमत्कारकरं सर्वाशा परिपूरकम्॥
महाचमत्कारकरं महामुक्तिप्रवर्तकम्॥
महावश्यकरं देवि! महासौभाग्यदायकम्॥[1]

त्रिकोणों के द्वारा **'अष्टार चक्र'** एवं त्रिकोणों द्वारा ही **'दशा चक्र'** भी उत्पन्न हुआ।

फिर अष्टदलपद्म 'षोडशदलपद्म' 'वलयत्रय' एवं चार द्वारों वाला त्रिरेखाङ्कित प्रकार है। हे माँ! यही तुम्हारा शरण-स्थल (निवास स्थान) है।

'भूनाग' = दिग्गज **'दिग्गज'** आठ संख्या का बोधक शब्द है। **'नृपतिदल'** = (नृपति = १६ की संख्या) षोडशदल पद्म।

(१) चार **'श्री कण्ठों'** एवं पाँच **'शिवयुवतियों'**—इन नौ मूल प्रकृतियों से भगवती के निवास हेतु तैंतालिस निर्मित होते हैं। ये शम्भु के बिन्दु स्थान से भिन्न हैं। ये तीन वृत्तों एवं तीन दे रेखाओं के सहित आठ एवं षोडश दलों से युक्त हैं।

* 'श्री चक्र' निर्माण के भेदत्रय *

'श्री चक्र' के बनाने के तीन भेद होते हैं—

(१) **'मेरु प्रस्तार'** (२) **'कैलास प्रस्तार'** (३) **'भूः प्रस्तार'**।

इन तीनों भेदों में शक्तियों और पूजन-विधान में भेद है।

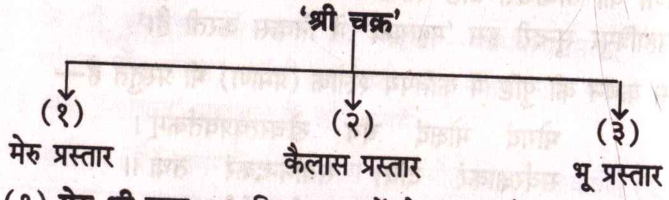

(१) **मेरु श्री चक्र** १६ नित्य कलाओं से सम्बद्ध है।

---

[1] १. वामकेश्वरीमतम्

(२) **कैलास श्री चक्र** ०८ मातृका शक्तियों से सम्बृद्ध है।

(३) **भू श्री चक्र** ०८ वशिनी देवियों से सम्बृद्ध है।

श्री चक्रोपासना की वैदिकता—'श्री चक्र' की उपासना वैदिककाल से अधपर्यन्त प्रचलित है।

तैत्तिरीयारण्यक में प्रतिपादित दृष्टि—'तैत्तिरीय आरण्यका' में कहा गया है कि पृश्नि नामक ऋषियों ने 'श्री चक्र' की पूजा की थी और उसकी सहायता से कुण्डलिनी शक्ति को उद्बुद्ध (जाग्रत) करके उसे सहस्त्रार में उत्थापित किया था।

श्री चक्र का आविर्भाव—

(१) **श्री चक्र** ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड दोनों का प्रतीक है।

४ श्री कण्ठ (शिव त्रिकोण) + ५ 'शिव युवति' (शक्ति त्रिकोण) के योग से 'श्री चक्र' का आविर्भाव होता है।

(२) **'शिव'** एवं **'शक्ति'** त्रिकोणों की स्थिति (अवस्थान) परस्पर विपरीत है अर्थात् एक-दूसरे के विपरीत स्थित हैं, यथा—

(३) 'सृष्टि क्रम' में पाँच 'शक्ति त्रिकोण' हैं जो कि ऊर्ध्व मुख हैं। ४ शिव त्रिकोण अधोमुख हैं।

अप्यय-क्रम में 'शक्तित्रिकोण' अधोमुख एवं **'शिवत्रिकोण'** ऊर्ध्वमुख रहते हैं।

(४) जो प्रथम **केन्दीय त्रिकोण** है उसके केन्द्र में भगवान् **शिव (शंभु) का स्थान** है। उसे छोड़कर शेष सारे त्रिकोण संख्या में ४३ हैं। ये त्रयश्चत्वारिंशत्' कहे गए हैं।

(५) **'अष्टकोण'**—प्रथम मध्य त्रिकोण के बाहर चारों ओर द्वितीय क्रम में ८ कोण बनते हैं और इन्हें ही **'अष्टकोण'** कहा जाता है।

(६) तृतीय एवं चतुर्थ स्तर पर १०-१० कोण बनते हैं इन्हें **'अन्तर्दशार'** और **'बर्हिर्दशार'** कहते हैं। उनके ऊपर जो १४ कोण निर्मित होते हैं उसको **'चतुर्दशार'** कहते हैं।

(७) इन सभी का योग एक + आठ + दश + (१ + ८ + १० + १४ = ४३)॥

(८) मध्य केन्द्र में स्थित जो बिन्दु है वह शम्भु का स्थान है जो नौ त्रिकोणों (प्रकृति स्वरूप) के योग से निर्मित सम्पूर्ण चक्र से पृथक है।

(९) चक्र के ४३ कोणों के बाहर प्रथम वृत्त (सर्किल) पर **'अष्टदलपद्म'** एवं उसके बाहर द्वितीय वृत्ता पर **'षोडशदल पद्म'** अवस्थित है।

(१०) **'षोडशदल पद्म'** वृत्तत्रय से आवृत है।

(११) सबसे बाहर तीन रेखाओं का **'चतुष्कोण'** है। इसे ही 'भूगेह' (भूगृह) कहते हैं।

(१२) भूगृह की चारों भुजाएँ बराबर हैं और चारों दिशाओं में चार द्वार होते हैं।

(१३) ४३ कोण २ किसके प्रतिनिधि हैं?

३६ तत्त्व + (सप्त) ७ धातुएँ = ४३ (तैंतालिस)। **'सप्त धातु'** रक्त, मांस, मेदा, स्नायु, अस्थि। मज्जा, शुक्र।

(१४) **पाँच शिवयुक्तियाँ** किसकी प्रतिनिधि हैं?

पाँच शिवयुवतियाँ = ५ कलायें (या शक्ति, शुद्ध विद्या, माया, कला और अशुद्ध विद्या हैं।

(१५) **चार श्री कण्ठ**—सदाख्य, महेश्वर, महत्तत्त्व एवं पुरुष (जीव) हैं या—

पुरुष, अव्यक्त, महत् और अहङ्कार ये ही चार श्री कण्ठ है।

५ तन्मात्रायें ही शिवयुवतियाँ है।

(१६) गीता की 'अष्टधा प्रकृति' तथा **'नवधा प्रकृति'** =

(क) एक जीवमूता **'परा प्रकृति'**

(ख) अष्टधा **'अपरा प्रकृति'**

(आकाशादि ५ तन्मात्रायें, मन, बुद्धि, अहङ्कार से समष्टि अहङ्कार, महत्, अव्यक्त।)

(१७) **'श्री चक्र'** के नौ विभाग हैं।

(१८)

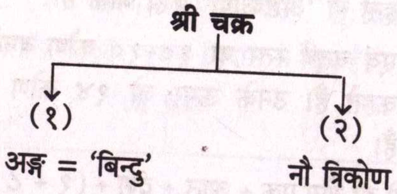

(१८) प्रत्येक विभाग (श्री चक्र का विभाजन) को **'आवरण'** कहते हैं।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'चतुर्भिः श्री कण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि।
प्रमिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः।

त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलास्त्र त्रिवलय
त्रिरेखाभिः सार्धं तवशरण कोणाः परिणताः ॥'[1]

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद ने 'श्री यंत्र' का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

त्रिकोणौरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुद्भू-
दृशारं भूगेहादपि च भुवनाश्र समभवत्।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलभस्मात्त्रिवलय,
चतुर्द्धाः प्रकार त्रितयमिदमेवाम्ब शरणाम् ॥[2]

'श्री यन्त्र' के नौ चक्र

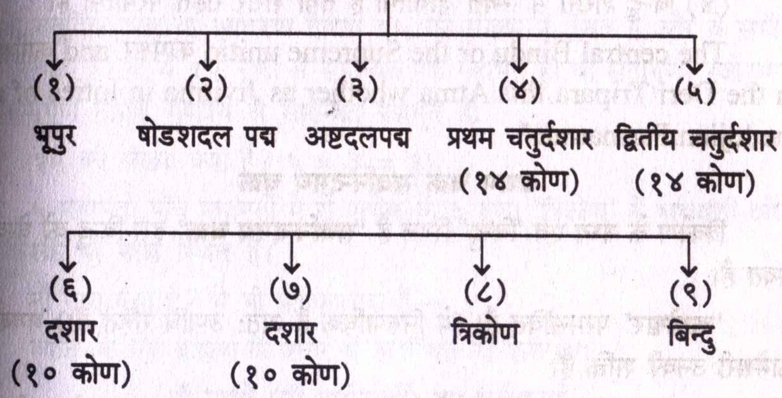

(१) 'त्रैलोक्यमोहन चक्र' (२) 'सर्वाशापरिपूरक
(३) 'सर्वसंक्षोभण' (४) 'सर्वसौभाग्यदायक'
(५) 'सर्वार्थसाधक' (६) 'सर्वरक्षाकर' (नौ चक्र)
(७) 'सर्वरोगहर' (८) 'सर्वसिद्धिप्रद'
(९) 'सर्वानन्दमय'

श्री यंत्र के स्वरूप—निरूपण की पद्धति—

लयक्रम—श्री यन्त्र का वर्णन दो प्रकार से किया जा सकता है—

(क) हम बाह्यवर्ती चक्र से प्रारम्भ करके भीतरी चक्र की ओर प्रवेश करें तो यह प्रक्रिया **'लयक्रम'** कहलायेगी।

सृष्टिक्रम—(ख) या हम अन्तरतम अङ्ग 'बिन्दु' से प्रारम्भ करे बाहर की ओर बढ़ते हुए आयें तो यह प्रक्रिया **'सृष्टिक्रम'** कहलायेगी।

---

१. सौन्दर्य लहरी (११)
२. सुभगोदय स्तुति (१७)

‘बिन्दु’ Central Point क्या है?

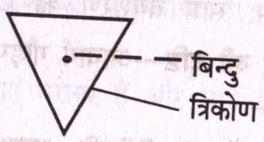

(१) ‘बिन्दु’ कामेश्वर एवं कामेश्वरी का सामरस्य है

(२) ‘बिन्दु’ देवी त्रिपुरा हैं या आत्मा हैं।

(३) ‘बिन्दु’ वेदेवी त्रिपुरा है जो सर्वात्मा हैं।

(४) बिन्दु शरीरों में स्थित जीवात्मा है तथा शरीर रहित परमात्मा है।

The central Bindu or the Supreme unitid कामेश्वर and कामेश्वरी in the Deri Tripara this Atma whether as Jivitma in loties of as the lojien Parmatma.[१]

प्रथम चक्र सर्वानन्दमय चक्र

त्रिकोण के मध्य एव ‘बिन्दु’ स्थित है **‘सर्वानन्दमय चक्र’** इस बिन्दु को घेरकर स्थित है।

‘कामेश्वर’ परमसंवित् है। (ये निरुपाधिक हैं अतः उपाधि रहित हैं।) भगवती कामेश्वरी उनकी शक्ति हैं।

यह ‘बिन्दु’ अन्तरतम त्रिकोण Innermest Triangle (में है। इसे ही Allblissful **‘सर्वानन्दमय चक्र’** कहते हैं।

नौ योनियें शब्द में प्रयुक्त ‘योनि’ नारी का प्रजननाङ्ग (Generative crgan नहीं है प्रत्युत् यह विश्वगर्भ Woml of intere का परम कारण है।

बिन्दुत्रय (बिन्दु के भेद)

(१) देवी का मुख

(२) देवी के दो स्तन (मुख के नीचे स्तनद्वय)

यही पूजा की प्रातीकात्मकता है। इसमें Anthropomor phic Forem प्रयुक्त किये गऐ हैं **‘बिन्दुत्रय’** प्रतीकात्मक है।

---

१. वुडरक : तंत्रराजतंत्र (भूमिका)

‘बिन्दु’ के भेद त्रय

(१) ‘सूर्यबिन्दु’

(२) ‘चन्द्रबिन्दु’

(३) ‘अग्निबिन्दु’

यहाँ ‘सूर्य’ ‘चन्द्र’ शब्द आकाश के ग्रहों (Cumamiries) से सम्बद्ध नहीं है और न तो वे ग्रह ही है प्रत्युत ये पर बिन्दु के प्रकाश एवं **‘विमर्श’** नामक पक्ष (Aspects) हैं ये ही ‘अनुस्वार’ एवं ‘विसर्ग’ ँ ा:’ भी हैं।

भगवती ललिता की पूजा ‘श्री विद्या’ का एक भाग है। भगवती **ललिता देवी आद्या** या अङ्गि नित्या देखता है जो कि ‘सत् ’ आनन्द एवं ‘पूर्ण’ है और जिनके चतुर्दिक अङ्ग या **आवरण देवता** १५ की संख्या में स्थित हैं और वे सभी १५ नित्यायें हैं। या ये १५ गुणों से समन्वित पञ्च महाभूत हैं। या सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण नामक गुणत्रय से समन्वित पञ्चभूत हैं।

१५ की संख्या क्या है? ५ × ३ = १५

५ महाभूत। पाँच महाभूतों में से प्रत्येक के ३-गुण। ‘त्रिकोण’ में **भगवती को घेर करके नौ नाथ स्थित हैं।**

नौ नाथ क्या है? ये भी प्रतीकात्मक हैं—

व्यक्ति के एवं ब्राह्मण के शरीर में अवस्थित नौ शरीराङ्ग।

नौ नाथों (नौ शरीराङ्गों) का प्रतीकार्थ

(१) २ आँखें (२) १ मुख = **‘दिव्यौघ’**

(१) २ कान (२) १ जननेन्द्रिय (लिङ्ग) = **‘सिद्धौघ’**

(१) २ नासारन्ध्र (Nortnils) (२) मलेन्द्रिय = (Anus) **‘मानवौघ)**

गुरु मण्डल (९ शरीराङ्ग)

ललिता देवी क्या है? वे प्रकाश शिव की **विमर्श शक्ति** है। भवगती ललित लाल रङ्ग की हैं।

भावनोपनिषद में कहा गया है—'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः। (Redness) (इस सब का विमर्श लौहित्य है।)

'सर्वस्य' का अर्थ? (भास्कर राय कहते हैं)—

'सर्वस्य' = (१) कामेश्वर का (२) ललिता का (३) साधक का।।

'राग' एवं 'लौहित्य' दोनों अभिन्न हैं अत: दोनों एक हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि—

(१) अपनी स्वयं की आत्मा ही देवी ललिता हैं।

(२) उनका स्वयं का शरीर ही यह विराट विश्व है तथा वे विश्वविग्रहा हैं।

(३) रक्तिमा (अरुणिमा) उनका 'विमर्श' है।

(४) पूजा उनके इस रक्तिमा पर ध्यान केन्द्रित किया जाना है।'

* द्वितीय चक्र 'सिद्धिप्रद चक्र' *

(५) यह बिन्दु एक त्रिकोण से आच्छापित आवृत है।

इस त्रिकोण की ही आख्या है—**सिद्धिप्रद चक्र'**। इस **'त्रिकोण'** के कोणों पर (जो कि द्वितीय चक्र है) नित्या नामक शक्तियों से भिन्न शक्तियों अवस्थित हैं जो निम्नाङ्कित हैं—

(क) **'कामेश्वरी'** (परम कामेश्वरी एवं नित्या कामेश्वरी से पृथक कामेश्वरी ही ये कामेश्वरी हैं।) इन्हें 'अव्यक्त' प्रकृति 'महत्त्वत्त्व' एवं 'अहंकार' कहा जा सकता है।

(ख) **'वज्रेश्वरी'**

(ग) **भगमालिनी**

त्रिकोण के कोणत्रय

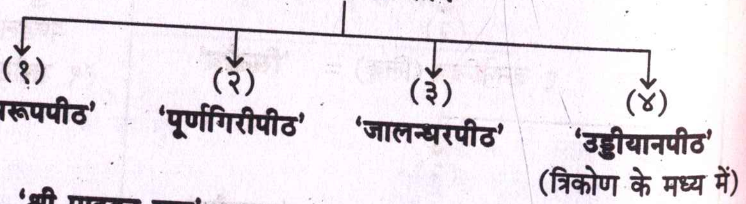

'श्री पादुका मन्त्र' =

'हूं श्रीं समस्ताम् मूलविद्याम् **उड्डीयान पीठे**

श्रीमहात्रिपुर सुन्दरी देवी श्री पादुकाम् पूजयामि नमः ।।

इस त्रिकोण के बाहर पाँच तन्मात्रायें हैं जो कि कामदेव के पञ्च बाण हैं अर्थात्—(१) काम (२) मनस (३) काम का इक्षु धनुष (४) राग (५) पाश (५) द्वेष (अङ्कुश)।

'सर्वानन्दमय चक्र' कौन है?

श्री चक्र के अन्तरतम में एक बिन्दु है।

"This Bindu is in the innsemost tniangle or All-Blinsfull Chakra or सर्वानन्दमय चक्र[1]

तृतीय चक्र = सर्व रोग हर चक्र'

[१] यह तृतीय चक्र अष्ट कोणों से निर्मित है।

[२] इस चक्र की अधिष्ठात्री देवियाँ भी आठ ही है। वे इस प्रकार है—

(१) वशिनी (२) कामेश्वरी (३) मोहिनी (४) विमला (५) अरुणा (६) जयिनी। (७) सर्वेश्वरी (८) कौलिनी।

ये निम्न मनोवृत्तियों एवं संवेदनाओं की देवता हैं—**शीत** की देवता। ऊष्मा की देवता। **सुख** की देवता। **दुःख** की देवता। **इच्छा** की देवता। **सत्व रजस् - तमस** की देवता।

इस स्तर पर साधक गुणों पर अधिकार करना चाहता है तथा द्वन्द्वों से अप्रभावित (द्वन्द्वातीत) रहने का प्रयास करता है। १ नव चक्रों में ही एक चक्र सर्वरोगहर चक्र हैं।[2]

* नव चक्र *

(१) **'महाबिन्दु' बिन्दु**—महात्रिपुर सुन्दरी, कामेश्वर एवं कामेश्वरी का सामरस्य। जग की मूल योनि एवं शिवभावा।

(२) **त्रिकोण**[3] आधा विमर्श शक्ति या जीवभाव। शब्दार्थ रूप सृष्टि की कारणात्मिका पराशक्ति। अहंभाव एवं जीवभाव।

(३) **'अष्टार'**—पुर्यष्टक। कारण शरीर, लिङ्ग शरीर का कारण।

(४) **'अन्तर्दशार'**—इन्द्रिय वासनाओं एवं लिङ्ग शरीर का अधिष्ठान।

(५) **बहिर्दशार**—तन्मात्रा एवं पञ्चभूत (ऐन्द्रिय विषय)

---

[1] सर जॉन वुडरक (तंत्रराज तन्त्र की भुमिका)

[2] तन्त्रराज तन्त्र (सर जॉन वुडरक)

[3] एवं कामकलात्मा . त्रिबिन्दुतत्त्वस्वपवर्णमयी ।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता ।।(का०क०वि०)

(६) **'चतुर्दशार'**—जाग्रत स्थूल शरीर का प्रतीक।

(७) **'अष्टदल'**—अष्टार वासना।

(८) **'षोडश दल'**—दशार द्वय वासना।

(९) **'भूपुर'**—'बिन्दु' त्रिकोण, अष्टदलं एवं 'षोडशदल'—इन चारों की समष्टि ॥

'प्रमातृपुर' एवं 'प्रमाणपुर' का पशु पदीय प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार और शिव पदीय शुद्ध विद्यादितत्व चतुष्य का सामरस्य।

चतुर्थ चक्र—'सर्व रक्षाकर चक्र' (अन्तर्दशार चक्र)—

[१] **सर्वरक्षाकर चक्र'** दश कोणों से निर्मित है।

[२] **'सर्वरक्षाकर'** की **अधिष्ठात्री देवियाँ** निम्नाङ्कित हैं—

(१) सर्वज्ञाना' (२) सर्वशक्तिप्रदा (३) सर्वैश्वर्यप्रदा (४) सर्वज्ञानमयी (५) सर्वव्यापर्णाविनाशिनी (६) सर्वाधारा (७) सर्वपापहरा (८) सर्वानन्दमयीं (९) सर्वरक्षा (१०) सर्वेप्सितकलप्रदा।

ये शक्तियाँ निम्न कार्यों की निष्पादिका हैं—

(१) **वह्निकला के कार्य**— (१) रेचक रेचन या बहिः निस्सारणकार्य (२) **पाचक** (Digestion) (३) **शोषक**—जठराग्नि के दोषों को दूर करने का कार्य) (४) **प्लावक** (जठराग्नि को उदीप्त करने वाले शरीर रस को शरीर में फैलाने का कार्य) (५) **'क्षरक'** (पेट के रसद्रवण की क्रिया) (६) **'उद्गारक** (Belching) (७) 'क्षोभक' भोजन की (Chunning) (८) **जृंभक** (जँभाई) (Yauning) (९) 'दाहक' (जलाना) (१०) मोहक (कष्ट एवं संज्ञाहीन करने का कार्य।

'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' चक्रों के द्वारा लिङ्ग शरीर के आविर्भाव को द्योतित किया गया है।

'अन्तर्दशार' के दश कोण = पञ्च ज्ञानेन्द्रियों एवं पञ्च कर्मेन्द्रियों से घटित हैं।

सुभगोदयकार की दृष्टि—सुभगोदय में कहा गया है—

'अन्तर्दशार वसुधाज्ञान कर्मेन्द्रियाणि च।
महात्रिपुर सुन्दर्या इति सञ्चिन्तयाम्यहम्।'

योगिनीहृदयकार की दृष्टि—योगिनी हृदय में कहा गया है—

'नवत्रिकोणास्फुरित प्रभारूप दशारकम्।
शक्त्यादिनव पर्यन्तदर्शास्फूर्तिकारकम्। (चक्र सङ्केत)

'अन्तर्दशार' के १० कोण—(क) ५ ज्ञानेन्द्रियों (ख) ५ कर्मेन्द्रियों से घटित हैं **'अष्टार चक्र'** में कामेश्वर कामेश्वरी रूप जो तेज युग्म वशिनि आदि के रूप में या पुर्यष्टक रूप में स्थित था वही युग्म **'अन्तर्दशार'** में इन्द्रिय रूप से दशधा विभक्त हो जाता है।[1]

पञ्चम चक्र–सर्वार्थसाधक चक्र

(बर्हिर्दशार चक्र)

[१] यह पञ्चम चक्र **दश कोणों से निर्मित है।**

[२] इस चक्र की **अधिषात्री देवियों का नाम** इस प्रकार है—

(१) सर्व सिद्धिप्रदा (२) सर्वसम्पत प्रदा (३) सर्वप्रियङ्करी (४) सर्व मङ्गल कारियों (५) सर्वकाम प्रदा (६) सर्वदुःख विमोचिनी (७) सर्व मृत्यु प्रशमिनी (८) सर्वविघ्ननिवारिणी (९) सर्वाङ्ग सुन्दरी (१०) सर्वसौभाग्यदायिनी।

बहिर्दशार (सर्वार्थ साधक चक्र) के १० कोण १० इन्द्रियों के विषयों गन्ध, रसादि तथा वचनादान आदि के आभ्यान्तर रूप आकाशादि १० विषयों से निर्मित हैं—

'बाह्यो दशार भागोऽयं बुद्धिकर्माक्षगोचरः।'

'बहिर्दशार चक्र' को **'सर्वाथ साधकचक्र'** कहा जाता है क्योंकि विषय ही समस्त अर्थों के साधक हुआ करते हैं। इस चक्र में उक्त तेजो युग्म ही दशधा विभक्त होकर 'सर्वसिद्धिप्रद' आदि १० देवताओं के रूप पूजा जाता है। **'बर्हिर्दशार'** के चतुर्दिक कोणों में ४ मर्म स्थान हैं इनके अन्तर्भागों में चार त्रिकोण की भावना की जाती है। इन ४ त्रिकोणों का एक 'चतुरस्र' माना जाता है।[2]

सर्वरक्षाकर चक्र—१० इन्द्रियों के रूप में विभाजित यह दशार (अन्तर्दशार) है और १० देवताओं के रूप में पूजित होता है। इसकी आख्या है—

'सर्वरक्षाकर चक्र। इसकी रक्षा द्विविध इन्द्रियों कर्मेन्द्रियों। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होती है अतः इसका नाम **सर्वरक्षाकर चक्र** है।

षष्ठ चक्र : सर्व सौभाग्यदायक चक्र

(चतुर्दशार चक्र)

[१] इस चक्र का निर्माण १४ कोणों से हुआ है।

[२] इस चक्र की अधिष्ठात्री देवियों का नाम इस प्रकार है—

---

[1] तन्त्रराजतन्त्र

[2] तन्त्रराजतन्त्र

(१) सर्व संक्षोभिणी (२) सर्वविद्राविनी (३) सर्वाकर्षिणी (४) सर्वाह्लादिनी (५) सर्वसम्मोहिनी (६) सर्वस्तम्भिनी, (७) सर्ववजृंभिणी (८) सर्ववशंकरी (९) सर्वरञ्जिनी (१०) सर्वोन्मादिनी (११) सर्वार्थसाधिनी (१२) सवसम्पत्तिपूरणी (१३) सर्वमन्त्रमयी (१४) सर्वद्वन्द्वक्षयकारिणी।

[३] ये अधष्ठित्री देवियाँ १४ नाड़ियों की भी अधिदेवता हैं। निम्नांङ्कि नाड़ियाँ ही प्रधान १४ नाड़याँ हैं—

(क) अलम्बुषा
(ख) कुहू
(ग) विश्वोदरा
(घ) वारणा
(ङ) हस्तिजिह्वा
(च) यशोवती
(छ) पयस्विनी
(ज) गांधारी
(झ) पूषा
(ञ) शंखिनी
(ट) सरस्वती
(ठ) इडा
(ड) पिङ्गला
(ढ) सुषुम्ना।

योगिनी हृदयकार की दृष्टि—योगिनीहृदय में कहा गया है कि—

‘चतुश्चक्रप्रभारूप संयुक्त परिणामतः ।
चतुर्दशाररूपेणा संवितिकरणात्मना ॥’ (च.सं. १४)

कामला विलासकार की दृष्टि—काम.क.वि. (३१) में कहा गया है—

एतच्चक्रचतुष्क प्रभासमेतं दशार परिणामः,
आदिस्वरगणागत चतुर्दशवरमियं चतुर्दशारमिदम् ॥३१॥

(१) बहिर्दशार—इसके एक-एक कोण में (१) प्रकृति (२) अहङ्कार (३) बुद्धि एवं (४) मन—ये चार तत्व एवं प, फ, ब एवं भ ये चार मातृका मन्त्र स्थित हैं। मकार जीव रूप त्रिकोण में सश्लिष्ट है।

(क) **‘अन्तर्दशार’** में ट वर्ग एवं तवर्ग तथा—

(ख) **‘बहिर्दशार’** में क वर्ग एवं च वर्ग = कुल मिलाकर २० मातृका बीज दोनों दशारों के बीस कोणों में संश्लिष्ट हैं। इनमें चतुरस्रों के चार बीज मिला देने पर २४ वर्ण हो जाते हैं।

सप्तम चक्र–‘सर्वसंक्षोभण चक्र’

(अष्ट दल चक्र)

[१] यह सप्तम चक्र **‘अष्टदलात्मक** (Eight Petalled) चक्र है।

[२] इसका नाम है—**सर्वसंक्षोभण।**

[३] यह उस वृत्त को आवृत (आच्छादित) करके अवस्थित है जिसमें अन्य त्रिकोण अन्तर्निविष्ट हैं।

[४] इस चक्र की अधिष्ठात्री देवियाँ निम्नाङ्कित हैं—

(१) अनङ्गकुसुमा (२) अनङ्गमेखला (३) अनङ्गमदना (४) अनङ्गमदनातुरा (५) अनङ्गरेखा (६) अनङ्गवेगिनी (७) अनङ्गमदनाङ्कुशा (८) अनङ्गमालिनी

[५] ये देवियाँ निम्न कार्यों की निष्पादिका एवं उनकी स्वामिनी या देवता है—

(क) वचन या बुद्धि की देवता (ख) आदान (Grasping) की देवता (ग) गमन की देवता विसर्ग (Rejecting Excreting) की देवता आनन्द की देवता (ङ) (Rlinquishment) की दवेता (छ) उपदान (Concentration) की देवता (ज) उपेक्षा की देवता (झ) उपादान (Concentration) की देवता उपेक्षा (Detachment) की देवता ‘क्षोभ’ सृष्टि को कहते हैं। कारणात्मक होने के कारण यह सृष्टिकारक है। यह अष्टार चक्र के अन्तर्भूत है। अतः **आग्नेय खण्ड** एवं प्रमातपुर है। अन्तर्भाव का रूप त्रिकोणे बैन्दवश्लिष्टमष्टोडष्टदलाम्बुजम् । दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके।

चतुर्दशार—कामेश्वरी रूप तेजोयुग्म **चतुर्दशार** के १४ कोणों में विभक्त होकर सर्वसंक्षोभिणी सर्वविद्राविणी सर्वाकर्षिणी आदि १४ शक्तियों के रूप में पूजा जाता है। ये १४ शक्तियाँ पिण्डाण्ड में १० इन्द्रियाँ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप अन्तःकरणा चतुष्टय के साथ १४ करणों में निवास करती हैं।

सुभगोदयकार की दृष्टि—सुभगोदय में लिखा गया है कि—चतुर्दशार वसुधा करणानि चतुर्दशा। यह **‘चान्द्रखण्ड’** एव सुषुप्तिपुर कहा जाता है।

अष्टम् चक्रः सर्वाशापरिपूरक चक्र

(षोडश दल पद्म)

[१] इस सप्तम चक्र के बाहर एक और चक्र है जो कि १६ दलों का है।

[२] यहाँ (इस चक्र में) १६ देवियाँ निवास करती हैं। ये ही शक्तियाँ (देवियाँ) इस चक्र की अधिष्ठात्री एवं एतन्निहित कार्यों की निष्पादिका है।

[३] इन शक्तियों का नाम इस प्रकार है—

(१) कामाकर्षिणी (२) बुद्ध्याकर्षिणी (३) अहङ्काराकर्षिणी (४) शब्दाकर्षिणी (५) स्पर्शाकर्षिणी (६) रूपाकर्षिणी (७) रसाकर्षिणी (८) गन्धाकर्षिणी (९) चित्ताकर्षिणी (१०) धैर्याकर्षिणी (११) स्मृत्याकर्षिणी (१२) नामाकर्षिणी (१३) बीजाकर्षिणी (१४) आत्माकर्षिणी (१५) अमृताकर्षिणी (१६) शरीराकर्षिणी।[१]

[४] (१) स्वाभीष्ट (काम) की पूर्ति (२) बुद्धि-नियंत्रण (३) अहंकार नियंत्रण

---

[१] तन्त्रराजतन्त्र (वुडरक)

(४) शब्द नियंत्रण (दूरश्रुति) (५) स्पर्श-नियंत्रण (६) रूप नियंत्रण (७) रस-नियंत्रण (८) गंध-नियंत्रण (या वशीकरण) (९) चित्त-वशीकरण (१०) गतिवशीकरण (११) स्मृति-नियंत्रण एवं वशीकरण (१२) नाम (वचनाकर्षण) पर नियंत्रण (१३) विकास पर नियंत्रण (१४) सूक्ष्म शीरर-वशीकरण (१५) स्थूल शरीर क परिशोधन आदि पर स्वामित्व आदि।।

इस प्रकार में पूजा करने पर ये समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

'षोडशदलकमल' विसर्गरूप चन्द्रमा की षोडश कलाओं से युक्त है। सुभगोदय में कहा गया है—

'षोडशच्छदपद्माङ्क भूताक्षमानसम्।
विकारात्मकमापत्रं देव्याः संभावयाम्यहम् ।।'[1]

नवम् चक्र :

[१] षोडश दल पद्म के बाहर भूपुर में १० मुद्रा शक्तियाँ अवस्थित हैं। इनका नाम इस प्रकार है—

(१) सर्वाशासंक्षोभिणी (२) सर्व विद्राविणी (३) सर्वाकर्षिणी (४) सर्वविशकारिणी (५) सर्वोन्मादिनी (६) महाङ्कुशा (७) खेचरी (८) बीज मुद्रा (९) महायोनि (१०) त्रिखण्डा

[२] इनमें से प्रथम नौ मुद्रायें तो **'श्री यन्त्र'** के यन्त्रों से सम्बद्ध हैं। १०वीं मुद्रा इन सभी से ऊपर है।

[३] नौ मुद्राशक्तियाँ (जो नौ आधारों का प्रतिनिधित्व करती हैं) प्रतीकात्मक स्वरूप में अवस्थित हैं।

भास्करराय की दृष्टि—आचार्य भास्कर राय कहते हैं कि—**नौ आधार** निम्नांकित हैं—

(१) मूलाधारादिक ६ चक्र।

(२) १००० दलों के २ पद्म।

(३) लम्बिकाग्र १ (नाक के पृष्ठ भाग में एवं आँखों के नीचे।)

[४] षोडशदलों के बाहर चार वृत्ताकार रेखायें (Cinculan Sine) ह जो कि तीन वृत्ताकारित स्थानों (Cinculans paces) को अन्तर्निविष्ट किए हुए हैं।

(१) **बाह्य वृत्त** (Unter Circele) षोडल दल, अष्ट दल एवं प्रथम बाह्यवर्ती चतुर्दशकोणीय चक्र से सम्बद्ध है।

---

[1] सुभगोदय

(२) **मध्यवर्ती वृत्त** दशकोणीय दो युग्म एवं अष्ट कोणीय चक्र से सम्बद्ध है।

(३) **अन्तरतम वृत्त** (Inner must Crucle) तीन कोणों के चक्र से सम्बद्ध है।

(४) इन सबसे बाहर तथा भूपुर की सबसे बाहरी रेखा (Outermust Line of the Bhura) पर दश सिद्धियों की उपासना या पूजा की जाती है जो कि अणिमादिक हैं।

'मनोरमा' के अनुसार ये नियति से अभिन्न हैं। ये नौ रसों से भी अभिन्न हैं।

'भूपुर' वह है जिसमें संपूर्ण श्री यन्त्र स्थित है।

श्लोक क्र०१८ = कौल एवं मिश्रमत का खण्डन एवं समयाचार मत का प्रतिपादन

चतु:षष्टिस्तन्त्राव्यपि कुलमतं निन्दितमभू,
द्यदेतन्मिश्राख्यं मतमपि भवेन्निन्दितमिह।
शुभाख्याः पञ्चैताः श्रुतिसरणिसिद्धाः प्रकृतयो,
महाविद्यास्तसां भवति परमार्थो भगवती।।

[हे भगवती ! चौंसठ तन्त्र भी कौलमत के ग्रन्थ हैं और वे (प्राचीन काल से साधन सम्प्रदाय में) निन्दित माने गये थे। यह मिश्र नामक शाक्तमत भी यहाँ समयाचार मत में निन्दित है।

'शुभ' नाम वाले (शुभागम पञ्चक) ये पाँच ग्रन्थ ही वेदमार्गानुयायी होने के कारण सिद्ध हैं। उनकी (शुभागम पञ्चक की) प्रकृति वाली यह समयमत की श्री विद्योपासना ही पारमार्थिकी (परमार्थसाधिनी) है।।१८।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—शाक्त मार्ग के तीन सम्प्रदाय है—

(१) **कौल मार्ग** (२) **मिश्र मार्ग** एवं (३) **समय मार्ग** आचारों की दृष्टि से तीन आचार है—

(१) **कौलाचार** (२) **मिश्राचार** (३) **समयाचार**।

[क] **आचार्य गौड़पाद की दृष्टि**—आचार्य गौड़पाद शाक्तमत के अनुयायी एवं **'श्रीविद्या'** के उपासक हैं तथापि वे वेदमार्गानुयायी हैं अतः उनकी दृष्टि में शाक्तमत की श्रुति परिपन्थी शाखायें—(१) 'कौल शाखा' एवं (२) 'मिश्र शाखा' त्याज्य हैं। आचार्य गौड़पाद शाक्त सम्प्रदाय की समयमत वाली शाखा के ही अनुयायी हैं इसीलिए वे कहते हैं—

चतु:षष्टिस्तन्त्राण्यपि कुलमतं निन्दित मभू,
द्यदेतन्मिश्राख्यं मतमपि भवेन्निन्दितमिह।।

(ख) समय पारदृश्वा आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर भी 'समयमत'

के अनुयायी हैं अतः आचार्य शङ्कर भी **कौलमार्ग** एवं **मिश्रमार्ग** को त्याज्य मानते हुए कहते हैं—

चतुःष्षट्या तन्त्रैः सकल मतिसन्धाय भुवनं,
स्थितस्तत्तत्सिद्धि प्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ॥[१]

लक्ष्मीधर पदयोजना में कहते हैं—

'हे भगवति! पशुपतिः सकलं भुवनं तत्तसिद्धिप्रसव परतन्त्रैः चतुष्वष्टया तन्त्रैः अतिसन्धाय स्थितः॥

चतुश्शती में ६४ तन्त्रों के नामों का उल्लेख है।

चतुश्शती और चौंसठ तन्त्र—चतुश्शती में ६४ तन्त्रों का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है—

चतुष्षष्टिश्च तन्त्राणि मातॄणामुत्तमानि च।
महामायाशम्बरं च योगिनीजालशम्बरम् ॥
तत्त्वशम्बरकं चैव भैरवाष्टकमेव च।
चन्द्रज्ञानं मालिनी च महासम्मोहनं तथा।
वामजुष्टं महादेवं वातुलं वातुलोत्तरम् ॥
हृद्येदं तन्त्रभेदं च गुह्यतन्त्रं च कामिकम्।
कलावादं कलासारं तथाऽन्यत् कुण्डिकामतम् ॥
मतोत्तरं चवीणाख्यं त्रोतलं त्रोतलोत्तरम्।
पञ्चामृतंरुपभेदं भूतोड्डामरमेव च ॥
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलचूडामणिस्तथा।
सर्वज्ञानोत्तरं चैवं महाकालीमतं तथा ॥
अरुणेशं मोदिनीशं विकुण्ठेश्वरमेवं च।
पूर्वपश्चिमदक्षं च उत्तरं चं निरुत्तरम्।
विमलं विमलोत्तं च देवी मतमतःपरम् ॥

ये सभी ६४ तन्त्र भगवान शिव ने भगवती पार्वती से कहा था 'इत्येवं चतुष्पष्टिन्त्राणि पार्वती प्रति कथितानि॥'[२]

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर ने कहा है ये चौंसठ तन्त्र (१) वैदिक मार्ग से दूर (वेद विरोधी) एवं (२) विनाश करने वाले हैं—

---

१. सौन्दर्य लहरी (३१)
२. लक्ष्मीधरा (श्लोक ३१)

'एतानि तन्त्राणि जगतां अतिसन्धान कारणानि विनाश हेतु भूतानि वैदिक मार्गदूवर्तित्वात् ॥'[१]

शुभागमपञ्चक और उसकी श्रुतिपरकता—शुभागम पञ्चक अर्थात्—

(१) वसिष्ठ (२) सनक (३) शुक (४) सनन्दन (५) सनत्कुमार नामक पाँच मुनियों के द्वारा प्रतिपादित मार्ग का अनुगमन करने वाली पञ्च संहितायें—ही आचार्य गौड़पाद, आचार्य शङ्कर समयमत एवं समयमतानुयायी आचार्य लक्ष्मीधर को स्वीकार्य हैं तथा समस्त 'समयमत' के सिद्धान्तों के मूल ग्रन्थ भी ये ही 'शुभागम पञ्चक' है।

लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) शुभागम तन्त्र पञ्च के वैदिक मार्गेणैव अनुष्ठान कलापो निरूपितः। अयं शुभगम् पञ्चक निरूपितो मार्गः वसिष्ठ सनक शुकसनन्दन सनत्कुमारै पञ्चभिः मुनिभिः प्रदर्शितः।

(२) शुभागम प्रतिपादित मत ही **'समयाचार'** कहलाता है—'अयमेव समयाचार' इति व्यवह्रियते।

(३) लक्ष्मीधर की भी वही दृष्टि है—

तथैवास्माभिरपि शुभागम पञ्चकानुसारेण समयमत मलम्ब्यैव **भगवत्पादमतमनुसृत्य** व्याख्या रचिता।

(४) ६४ तन्त्र केवंल **'कुलमार्ग'** के ही प्रतिपादक हैं

'चतुष्षष्टि तन्त्राणि कुल मार्ग एव'[२]

शाक्तमत में कौन सम्प्रदाय त्याज्य हैं?

आचार्य लक्ष्मीधर ही नहीं उनके पूर्व भी शास्त्रकारों ने (१) कौल एवं (२) मिश्र—दोनों शाक्त मतों को त्याज्य कहा था—

'मिश्रकं **कौलमार्गं** च परित्याज्यं हि शाङ्करि ॥'
'ईश्वरवचनात् मिश्रकमतं कौलमार्गं च परित्याज्यम् ॥'[३]

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक ३१)
२. लक्ष्मीधर (३१)
३. लक्ष्मीधरा (श्लोक ३१)

शुभागमपञ्चक

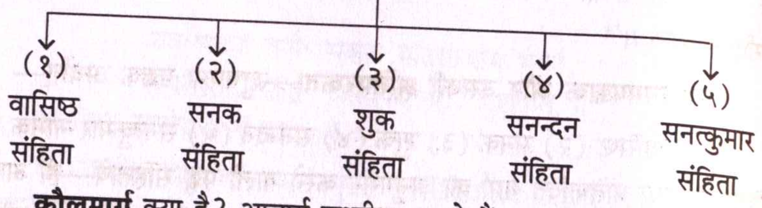
(१)
वासिष्ठ संहिता
(२)
सनक संहिता
(३)
शुक संहिता
(४)
सनन्दन संहिता
(५)
सनत्कुमार संहिता

कौलमार्ग क्या है? आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

चतुष्टष्टिविद्यान्तर्भूतायां चन्द्रज्ञानविद्यायां षोडशनित्याः प्रधानत्वेन प्रतिपादिता इति तत्प्रतिपादकं तन्त्र **कौलमार्गः**।।[१]

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि—कौलों के द्वारा जिस मार्ग का अवलम्बन ग्रहण किया जाता है उस मार्ग का नाम है—**'कौलमार्गः'**

'कौलैः मृग्यते अवलम्ब्यत इति **कौलमार्गः कौलमतम् ।'**

आचार्य लक्ष्मीधर 'कौलमत' को नहीं प्रत्युत् शुभागम पञ्चक को स्वीकार्य मानते हैं क्योंकि शुभागम पञ्चक वैदिक मार्ग के उपासकों में भी आदरणीय हैं—

'शुभागम पञ्चक मेव वैदिकैरादरणीयम् ।'[२]

समयमत की (६४ तन्त्रों के प्रति) दृष्टि—

आचार्य लक्ष्मीधर ६४ तन्त्रों को वञ्चक मानते हैं—'एवं चतुष्षष्टि तन्त्राणि परिज्ञातृणामपि **वञ्चकानि।।'** ये वेदवार्ग से दूर भी हैं—'ऐहिकसिद्धिमात्रपरत्वात् **वैदिकमार्गदूराणि।'**

लक्ष्मीधर का कथन है कि ६४ तन्त्रों में शूद्रादिक समस्त जातियों का अधिकार है—शूद्रादीनां चतुष्षष्टितन्त्रेष्वधिकारः। एवमधिकारभेदमजानानाः अमीमांसकाः व्यामुह्यन्ति। तेषामेवायं दोषः न पशुपतेः परमेश्वरस्यं

अर्थात् जो अधिकार का ज्ञान नहीं रखते और वे इनकी साधना करते हैं वे व्यामोहित होते हैं। इसमें पशुपति का कोई दोष नहीं है।[३]

* क्या ६४ तन्त्र 'श्रीविद्या' के प्रतिपादक नहीं हैं?

---

१. आचार्य लक्ष्मीधर (श्लोक ३१)
२. लक्ष्मीधरा (३१)
३. लक्ष्मीधरा (श्लोक ३१)

चौंसठ तन्त्र

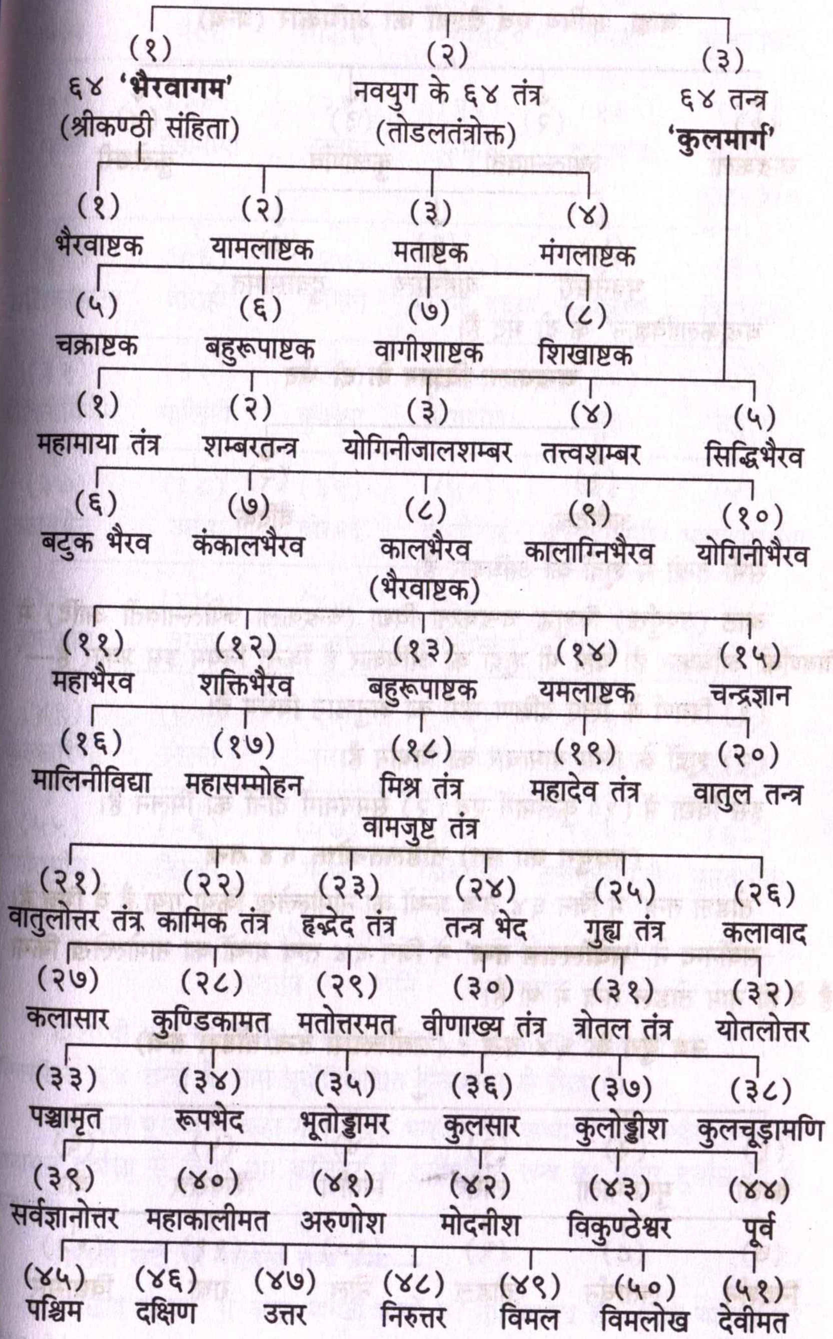
(१)
६४ 'भैरवागम'
(श्रीकण्ठी संहिता)
(२)
नवयुग के ६४ तंत्र
(तोडलतंत्रोक्त)
(३)
६४ तन्त्र
'कुलमार्ग'
(१)
भैरवाष्टक
(२)
यामलाष्टक
(३)
मताष्टक
(४)
मंगलाष्टक
(५)
चक्राष्टक
(६)
बहुरूपाष्टक
(७)
वागीशाष्टक
(८)
शिखाष्टक
(१)
महामाया तंत्र
(२)
शम्बरतन्त्र
(३)
योगिनीजालशम्बर
(४)
तत्त्वशम्बर
(५)
सिद्धिभैरव
(६)
बटुक भैरव
(७)
कंकालभैरव
(८)
कालभैरव
(९)
कालाग्निभैरव
(१०)
योगिनीभैरव
(भैरवाष्टक)
(११)
महाभैरव
(१२)
शक्तिभैरव
(१३)
बहुरूपाष्टक
(१४)
यमलाष्टक
(१५)
चन्द्रज्ञान
(१६)
मालिनीविद्या
(१७)
महासम्मोहन
(१८)
मिश्र तंत्र
(१९)
महादेव तंत्र
(२०)
वातुल तन्त्र
वामजुष्ट तंत्र
(२१)
वातुलोत्तर तंत्र
(२२)
कामिक तंत्र
(२३)
हृद्भेद तंत्र
(२४)
तन्त्र भेद
(२५)
गुह्य तंत्र
(२६)
कलावाद
(२७)
कलासार
(२८)
कुण्डिकामत
(२९)
मतोत्तरमत
(३०)
वीणाख्य तंत्र
(३१)
त्रोतल तंत्र
(३२)
योतलोत्तर
(३३)
पञ्चामृत
(३४)
रूपभेद
(३५)
भूतोड्डामर
(३६)
कुलसार
(३७)
कुलोड्डीश
(३८)
कुलचूड़ामणि
(३९)
सर्वज्ञानोत्तर
(४०)
महाकालीमत
(४१)
अरुणोश
(४२)
मोदनीश
(४३)
विकुण्ठेश्वर
(४४)
पूर्व
(४५)
पश्चिम
(४६)
दक्षिण
(४७)
उत्तर
(४८)
निरुत्तर
(४९)
विमल
(५०)
विमलोख
(५१)
देवीमत
= ६४ तन्त्र।

६४ तन्त्रों में केवल शूद्रों को अधिकार हैं

बाह्य, क्षत्रिय एवं वैश्यों का अधिकार (ग्रन्थ)

(१) चन्द्रकला
(२) ज्योत्स्नावती
(३) कुलार्णव
(४) कुलेश्वरी

(५) भुवनेश्वरी
(६) बार्हस्पत्य
(७) दुर्वासामत

'चन्द्रकलाविज्ञान' के दो भेद हैं।

चन्द्रकला विज्ञान के दो भेद

(१) अवैदिक
(२) वैदिक

सभी तन्त्रों में शूद्रों को अधिकार है।

आठ (उपर्युक्त) विशुद्ध चन्द्रकला विद्या (चन्द्रकला ज्योत्स्नावती आदि) में त्रिवर्णको अधिकार है। यहाँ भी शूद्रों को अधिकार है किन्तु नियम इस प्रकार है—

(१) त्रिवर्ण के लिए दक्षिण मार्ग का अनुष्ठान विधेय है।

(२) शूद्रों के लिए वामाचार का विधान है।

इस विद्या में (१) कुलमार्ग एवं (२) समयमार्ग दोनों का मिलन है।

(नवयुग का मत) तोडलतन्त्रोक्त ६४ तन्त्र

'तोडल तन्त्र' में जिन ६४ तन्त्र ग्रन्थों का नामोल्लेख किया गया है वे भिन्न हैं।

सर्वानन्द ने **'सर्वोल्लास तन्त्र'** में जिन ६४ तन्त्र ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है वे ही नाम तोडल तन्त्र में भी हैं।

नव युग के ६४ तन्त्र : (सर्वोल्लास तन्त्र/तोडल तन्त्र)

(१) काली (२) मुण्डमाला (३) तारा (४) निर्वाण (५) शिवस्तर (६) वीर
(७) निदर्शन (८) लतार्चन (९) तोडल (१०) नील (११) राधा (१२) विद्यासार

(१३) भैरव (१४) भैरवी (१५) सिद्धेश्वर (१६) मातृभेद (१७) समया (१८) गुप्तसाधन
(१९) माया (२०) महामाया (२१) अक्षया (२२) कुमारी (२३) कुलार्णव (२४) कालिका कुलसर्वस्व
(२५) कालिकाकल्प (२६) वाराही (२७) योगिनी (२८) योगिनी हृदय (२९) सनत्कुमार (३०) त्रिपुरासार
(३१) योगिनीविजय (३२) मालिनी (३३) कुक्कुट (३४) श्रीगणेश (३५) भूत (३६) उड्डीश
(३७) कामधेनु (३८) उत्तम (३९) वीरभद्र (४०) वामकेश्वर (४१) कुलचूड़ामणि (४२) भावचूड़ामणि
(४३) ज्ञानार्णव (४४) वरदा (४५) तंत्रचिन्तामणि (४६) वाणीविलास (४७) हंसतंत्र (४८) चिदम्बरतंत्र
(४९) केत्कारिणी (५०) नित्या (५१) उत्तर (५२) नारायणी (५३) ऊर्ध्वाम्नाय (५४) ज्ञानद्वीप
(५५) गौतमीय (५६) निरुत्तर (५७) गर्जन (५८) कुब्जिका (५९) तन्त्रमुक्तावली (६०) बृहतश्रीक्र
(६१) स्वतंत्र (६२) योनि (६३) कामाख्या

दाशरथी तन्त्र के द्वितीय अध्याय में ६४ तन्त्रों के नामों का उल्लेख है। इसमें उल्लिखित ६४ तन्त्रों के नाम पूर्वोल्लिखित तंत्रग्रन्थों से भिन्न हैं।

हरिवंश पुराण में कहा गया है कि भगवान श्री कृष्ण ने ६४ अद्वैत तन्त्रों का अध्ययन दुर्वासा से किया था। कलियुग में अद्वैतनिष्ठ तन्त्र का प्रसार दुर्वासा ने ही किया है।

आठवीं सदी के पूर्ववर्ती तन्त्र ग्रन्थ—

'जयद्रथ यामल' में आठ यामल ग्रन्थों का नामोल्लेख है—आठ यामलों का

मूल है 'ब्रह्मयामल'। 'रुद्रयामल', यमयामल 'वायुयामल' इन्द्रयामल के नाम 'ब्रह्मयामल' में भी है।

जयद्रथयामल के अनुसार—

यामलाष्टक

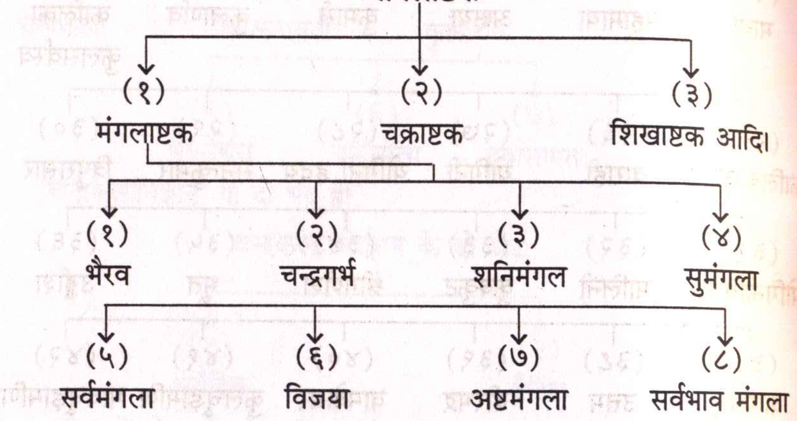
(१) मंगलाष्टक
(२) चक्राष्टक
(३) शिखाष्टक आदि।
(१) भैरव
(२) चन्द्रगर्भ
(३) शनिमंगल
(४) सुमंगला
(५) सर्वमंगला
(६) विजया
(७) अष्टमंगला
(८) सर्वभाव मंगला

चक्राष्टक

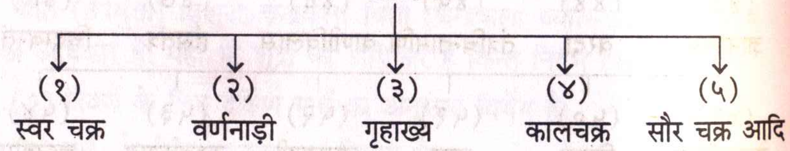
(१) स्वर चक्र
(२) वर्णनाड़ी
(३) गृहाख्य
(४) कालचक्र
(५) सौर चक्र आदि

शिवाष्टक

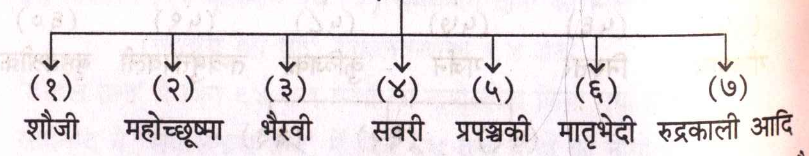
(१) शौजी
(२) महोच्छूष्मा
(३) भैरवी
(४) सवरी
(५) प्रपञ्चकी
(६) मातृभेदी
(७) रुद्रकाली आदि

६४ तन्त्रों में से सभी तन्त्रों में तो श्रीविद्या का प्रतिपादन नहीं किया गया है किन्तु **'चन्द्र कलाविद्याष्टक'** में अवश्य उनका प्रतिपादन किया गया है।

श्रीविद्या प्रतिपादक श्रीचन्द्र कलाविद्याष्टक

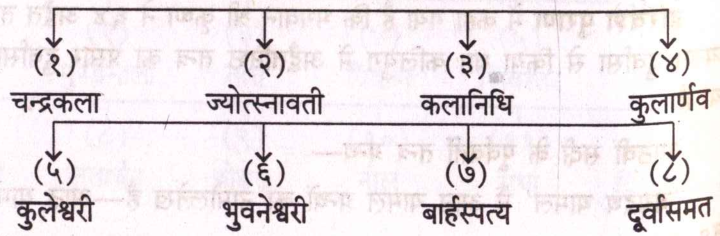
(१) चन्द्रकला
(२) ज्योत्स्नावती
(३) कलानिधि
(४) कुलार्णव
(५) कुलेश्वरी
(६) भुवनेश्वरी
(७) बार्हस्पत्य
(८) दूर्वासमत

जयद्रथयामल (विद्यापीठ के तन्त्र)

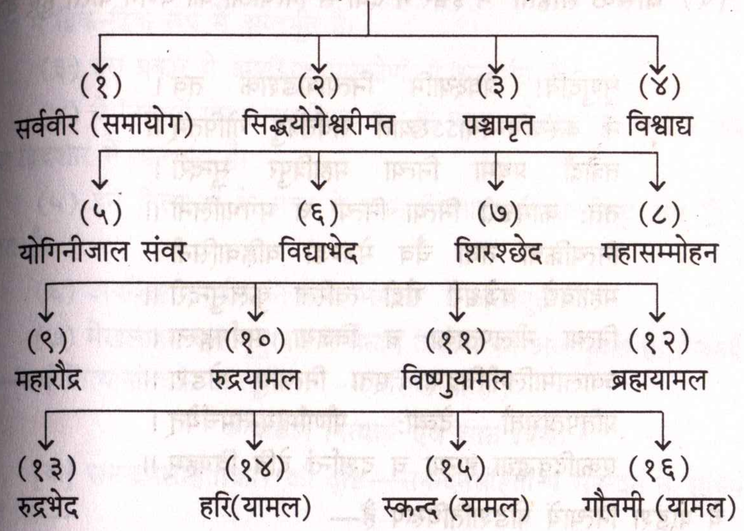
(१) सर्ववीर (समायोग)
(२) सिद्धयोगेश्वरीमत
(३) पञ्चामृत
(४) विश्वाद्य
(५) योगिनीजाल संवर
(६) विद्याभेद
(७) शिरश्छेद
(८) महासम्मोहन
(९) महारौद्र
(१०) रुद्रयामल
(११) विष्णुयामल
(१२) ब्रह्मयामल
(१३) रुद्रभेद
(१४) हरि(यामल)
(१५) स्कन्द (यामल)
(१६) गौतमी (यामल)

'समयमार्ग' के मूल स्तम्भ

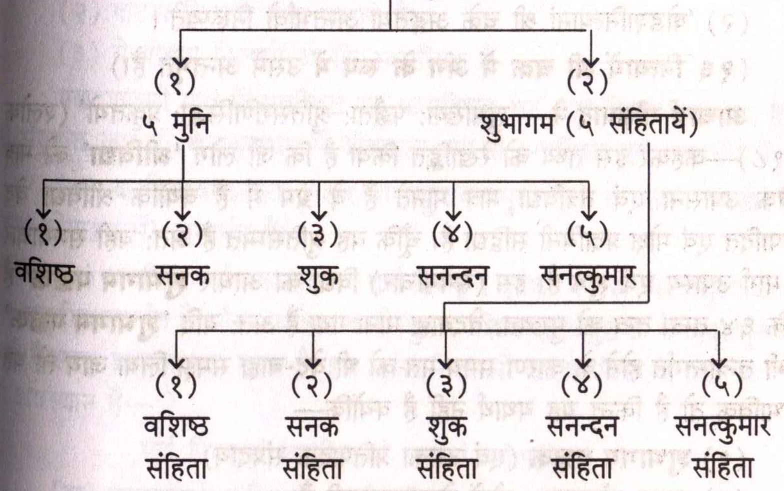
(१) ५ मुनि
(२) शुभागम (५ संहितायें)
(१) वशिष्ठ
(२) सनक
(३) शुक
(४) सनन्दन
(५) सनत्कुमार
(१) वशिष्ठ संहिता
(२) सनक संहिता
(३) शुक संहिता
(४) सनन्दन संहिता
(५) सनत्कुमार संहिता

(१) सारे शुभागम शुद्ध समय मार्ग के प्रतिपादक हैं।

(२) 'शुभागम' में **षोडश विद्या** का प्रतिपादन किया गया है।

(३) इनमें इन **१६ विद्याओं** को मूल श्रीविद्या में अन्तर्भूत करके स्वीकार किया गया है। अतः १६ विद्यायें मूल श्रीविद्या के अङ्ग हैं।

(४) **६४ विद्याओं** में अन्तर्भुक्त जो **चन्द्रज्ञानविद्या** है उसमें **षोडश नित्याओं की प्रधानता** प्रतिपादित की गई है। इसी कारण यह मार्ग **कौलमार्ग** है।

(५) **'वसिष्ठ संहिता'** में ईश्वर ने देवी से नित्याओं का वर्णन करते हुए कहा है—

श्रृणुदेवि! प्रवक्ष्यामि नित्याषोडशकं तव।
न कस्यचिन्मयाऽऽख्यातं सर्वतंत्रेषु गोपितम् ॥
तत्रादौ प्रथमा नित्या महात्रिपुर सुन्दरी।
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च मगभालिनी ॥
नित्यक्लिन्ना तथा चैव मेरुण्डा वह्निवासिनी।
महाविद्ये वज्रेश्वरी रौद्री त्वरिता कुलसुन्दरी ॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालिनीचिद्रूपाः एता नित्यासु षोडश ॥
प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णामायन्तमर्चयेत्।
एकादिवृद्ध्या हान्या च दर्शान्तं देवि विग्रहम् ॥

ये षोडश नित्यायें षोडशतिथिरूप हैं—

(१) 'शोषशनित्यानां षोडशतिथ्यात्मकत्वं'

(२) 'षोडशनित्यानां श्री चक्रे अङ्गतया अन्तर्भावो निरूप्यते।

(**१६ नित्यायें श्री चक्र में अंग के रूप में** उसमें अन्तर्भूत हैं।)

आचार्य गौड़पाद ने—'शुभाख्याः पञ्चैताः श्रुतिसरणिसिद्धाः प्रकृतयो' (श्लोक क्र १८)—कहकर इस तथ्य को रेखाङ्कित किया है कि जो लोग **'श्रीविद्या'** को मात्र तांत्रिक उपासना एवं तंत्रविद्या मात्र मानते हैं वे भ्रम में हैं क्योंकि श्रीविद्या वेद प्रतिपादित एवं मोक्ष प्रदायिनी सद्विद्या है। चूँकि यह श्रुतिसम्मत है अतः यही समयाचार का मार्ग उपास्य एवं शुभ है। इस (समयाचार) विद्या का आधार **शुभागम पञ्चक'** है न कि ६४ तन्त्र। तन्त्र को मुख्यतः वेदबाह्य माना गया है अतः यदि **'शुभागम पञ्चक'** के भी तन्त्रान्तर्गत होने के कारण समय मत को भी वेद-बाह्य समझ लिया जाय तो यह स्वाभाविक तो है किन्तु यह यथार्थ नहीं है क्योंकि—

(१) **शुभागम पञ्चक** (एवं उसका प्रतिपादक संप्रदाय)

(२) **समय संप्रदाय**—दोनों वेदमतानुयायी हैं।

* श्री चक्र और षोडश नित्याओं का सम्बन्ध *

वसिष्ठ संहिताकार की दृष्टि—

* श्रीचक्र के अङ्ग—षोडश नित्यायें *

* श्री चक्र और षोडश नित्याओं का सामरस्य *

(१) षोडश नित्यायें अष्टवर्मात्मिक रूप से **अष्टदल पद्म** के अष्ट पत्रों में स्थित हैं।

(२) ये अष्टकोण चक्र में यथाक्रम प्रागादि कोण से आरम्भ करके एक-एक कोण में द्विक-द्विक रूप में अन्तर्भूत हैं।

(३) इस प्रकार ये अष्टद्विक अष्टकोणों में अन्तर्भूत हैं।

(४) ये नित्यायें षोडशस्वरात्मिक होने के कारण षोडश दल पद्मों में स्थित हैं तथा द्विदशार में अन्तर्भूत है।

(५) इन नित्याओं के मध्य में प्रथम नित्याद्वय त्रिकोणबिन्दु रूप से अवस्थित है।

(६) अवशिष्ट चतुर्दश नित्यायें **'मन्वश्र'** में अन्तर्भूत हैं।

(७) मेखलात्रय एवं भूपुरत्रय में बैन्दव त्रिकोण की अन्तर्भूतता है। निष्कर्ष यह कि—एवं नित्यानां चक्रे अन्तर्भाव:।[१] —(वसिष्ठसंहिता)

* षोडश नित्यायें एंव चक्र विद्या *

[क] **सनन्दनसंहिताकार की दृष्टि**—सनन्दनसंहिता में सनन्दन ने ऋषियों से कहा कि—

(१) ये षोडश नित्यायें चक्र विद्या' के अंग हैं।

(२) षोउश नित्यायें चन्द्र कलायें हैं।

(३) ये षोडंश नित्यायें जो कि स्वरात्मिक हैं—

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में अवस्थित 'ए' कारादिभूत 'अ' कार विसर्गात्मक 'स' कार से संगृहीत रूप में **'वैन्दवस्थान** में जीवकला रूप से अवस्थित एवं अन्तर्भूत हैं।

(४) **कादिमावसानान्त अक्षर** पाशाङ्कुशबीजयुक्त होने के कारण **अष्टार** में (दश कोणद्वय में) अन्तर्भूत हैं।

(५) अवशिष्ट वर्ण यकारादि नव वर्ण द्विरावृत्ति पूर्वक **'मन्वश्र'** में (चतुर्दशकोणों में) चतुर्दशअन्तर्भूत हैं और अवशिष्ट वर्णाचतुष्टय **'शिवचक्रचतुष्टय'** में अनतर्भूत हैं। यही **कैलास प्रस्तार** कहा जाता है। इस प्रकार नित्याओं का चक्रविद्या के अङ्ग के रूप में अवस्थान है—

एवं नित्यानां चक्रविद्यायां अङ्गत्वं प्रतिपादितम् ॥[२]

[ख] **सनत्कुमार संहिताकार की दृष्टि**—**'सनत्कुमार संहिता'** में भी षोडश नित्याओं को चक्रविद्या का अङ्ग स्वीकार किया गया है। मुनि सनत्कुार कहते हैं।—

(१) श्री चक्र की अङ्गभूत नित्यायें वशिन्यादिं के द्वारा द्विक-द्विक रूप में मिलकर बैन्दव त्रिकोण को छोड़कर अष्टकोणों में अन्तर्भूत हैं।

---

[१] लक्ष्मीधरा (श्लोक ३१)

[२] आचार्य लक्ष्मीधर

(२) मध्य में भगवती त्रिपुर सुन्दरी अन्तर्भाव्य है।

(३) अष्टवर्ग अष्ट वशिन्यादि, षोडश नित्यायें, द्वादश योगिनियाँ (चतस्र गन्धाकर्षिणी आदि)—ये सब मिलाकर चतुश्चत्वारिंशत (४४ की संख्या) संख्या में निबृद्ध हैं (४४ हैं।)

(४) यहाँ एक शक्ति को छोड़कर त्रयश्चत्वारिंशत (४३) कोणों में ४३ देवताओं को अन्तर्भूत मानना चाहिए।

(५) एक रूपात्रिपुर सन्दरी बैन्दवस्थान के अधोदेश में गन्धाकर्षिणी आदि के रूप में चतुर्द्वार में स्थित है और इन प्रकार नित्याओं का चक्रविद्या के अंग के रूप में अवस्थित होना सिद्ध होता है। इसे ही **'भूप्रस्तार'** कहते हैं।

श्लोक क्रमांक १९-

पञ्चदशाक्षरी विद्या और उसका स्वरूप

'स्मरो मारो मारः स्मर इति परो (स्मरो) मारं मदन'
स्मरानङ्गाश्चेति स्मर मदन माराः स्मर इति।
त्रिखण्ड खण्डान्ते कलित भुवनेश्वक्षर युत,
श्चतुः पञ्चार्णास्तेत्रय इति च पञ्चाक्षर मनुः ॥१९॥

[स्मर' 'मारो' 'मारः' तथा 'स्मर' फिर 'पर' (स्मर) 'मार' 'मदन' 'स्मर' एवं 'अनङ्ग' फिर 'स्मर' 'मदन' एवं 'स्मर' को स्मरण करें।

इस प्रकार ये तीन खण्ड हुए फिर इन खण्डों के अन्त में (पञ्च वर्ण वाले) मनोज्ञ भुवनेश्वरी-बीज—इस प्रकार चार, पाँच, तीन अक्षर—पाँच-पाँच अक्षर के मन्त्र निर्मित होते हैं॥१९॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—इस १९वें श्लोक के अन्त में गौड़पादाचार्य कहते हैं—'इति च पञ्चाक्षर मनुः'

(१) यहाँ पर प्रयुक्त 'इति' शब्द का सम्बन्ध 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' के कूटत्रय से है। ये क्रमशः चार, पाँच एवं तीन वर्णों से निर्मित हुए हैं। इनमें से प्रत्येक खण्ड के अन्त में 'भुवनेश्वरी बीज' स्थित है। आचार्य ने इसके अनन्तर यह वाक्य लिखा है—'च पञ्चाक्षर मुनः।'

(२) 'च' का क्या अभिप्राय है?

(क) 'च' माने 'और' लिया जाय या कि इसे

(ख) पदपूर्त्यर्थ प्रयुक्त निरर्थक शब्द माना जाय?

इस सन्दर्भ में अन्त में विवेचना की जाएगी।

श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) के खण्ड

(१) (२) (३)
(प्रथम खण्ड) (द्वितीय खण्ड) (तृतीय खण्ड)
४ अक्षर ५ अक्षर ३ अक्षर
'क ए ई ल' 'ह स क ह ल' 'स क ल' = ११ वर्ण

प्रत्येक खण्ड के अन्त में 'भुवनेश्वरी बीज' **'ह्रीं'** जुड़ा हुआ है।

इसका स्वरूप इस प्रकार हो जाएगा—

(१) (२) (३)
'क ए ई ल ' ह स क ह ल 'स क ल
ह्रीं' ह्रीं' ह्रीं'
(४)—वर्ण (५)—वर्ण (३)—वर्ण

आचार्य ने श्रीविद्या के अक्षरों को संकेतात्मक रीति से प्रस्तुत किया है।

अन्तिम मन्त्र भी पाँच वर्णों से निर्मित होता है।

प्रथम कूट में—'वाग्भव कूट' — पाँच वर्ण + (ह्रीं को जोड़ने पर)
द्वितीय कूट—'कामराज कूट' — छः वर्ण (ह्रीं जोड़ने पर)
तृतीय कूट—'शक्ति कूट' — आठ वर्ण (ह्रीं जोड़ने पर)

चूँकि 'कामराजकूट' का 'ह्रीं' बीज (भुवनेश्वरी बीज) तृतीय कूट ('स' क 'ल') के साथ जोड़ा जाता है अतः तीनों कूटों के मन्त्रों की संख्या पाँच-पाँच हो जाएगी।

'श्चतुः पञ्चार्णास्ते **त्रय** इति च पञ्चाक्षर मनुः॥'

अर्थात् चार, पाँच एवं तीन वर्णों के मन्त्र अन्त में—'हिं' (भुवनेश्वरी बीज) जोड़ देने पर ५,५,५ वर्णों के बन जाते हैं और इसीलिए 'श्री विद्या' को 'पञ्चदशाक्षरी' या 'पञ्चदशी' कहा जाता है।

प्र. 'श्रीविद्या' में प्रारम्भ में पाँच फिर छः एवं फिर चार 'वाग्भव कूट' में पाँच, 'कामराज कूट' में छः एवं 'शक्तिकूट' में चार वर्ण है अतः मन्त्र में ५ + ६ + ४ = १५ वर्ण अन्तर्गर्भित हैं।

आचार्य ने कहा है कि—वाग्भव कूट के पाँच वर्ण तो यथावत रहेंगे किन्तु 'कामराज कूट' के 'श्री' को 'शक्तिकूट' के साथ जोड़ देने पर अर्थात्

'ह्री सकल ह्री' रूप दे देने पर तीनों कूटों के मन्त्र ५-५-५ संख्या वाले हो।

श्लोक क्रमांक २०—'श्रीविद्या' के खण्डत्रय

त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे शशि सवितृवह्नयात्मकतया
स्वराश्चन्द्रे लीना सवितरि कलाः कादय इह।
यकाराद्या वन्हावथ कषयुगं बैन्दवगृहे,
निलीनं सादाख्ये शिवयुवति नित्यैन्दवकले ॥२०॥

[हे भगवती! तुम्हारा मन्त्र सोमात्मक, सूर्यात्मक एवं अनलात्मक होने के कारण तीन खण्डों वाला है। (उस मन्त्र में प्रयुक्त) स्वर वर्ण चन्द्रमा में लयीभूत हैं (चन्द्रात्मक हैं) यहाँ क आदि कलायें (वर्ण) सूर्य में लयीभूत हैं (सूर्यात्मक हैं)। यकारादि वर्ण अग्न्यात्मक हैं। 'क' 'ष' का युगल (अर्थात् क्ष) **'बैदनगृह'** है। हे शिव की राजमहिषी भगवती तुम सादाख्य तत्त्व में लयीभूत होकर चन्द्रमा की नित्यकला के स्वरूप में समासीन है॥२०॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पद ने श्लोक क्रमांक ८ में 'श्री चक्र' के तीन खण्ड बताए थे।

श्री चक्र के खण्डत्रय	मन्त्र के खण्डत्रय
१. सोम खण्ड, २. सूर्य खण्ड, ३. अनल खण्ड —(श्लोक ८)	१. सोम खण्ड, २. सूर्य खण्ड, ३. अनल खण्ड —(श्लोक ८)

मन्त्र की त्रिखण्डात्मकता—

मन्त्र में प्रयुक्त वर्ण	खण्ड के नाम
(१) मन्त्र के स्वर वर्ण	मन्त्र का चन्द्र खण्ड।
(२) मन्त्र के क आदि वर्ण	मन्त्र का सूर्य खण्ड।
(३) मन्त्र के य वर्ग के वर्ण	मन्त्र का अग्नि खण्ड।
(४) मन्त्र का 'क्ष' वर्ण (मन्त्र का अन्तिम कूट)	मन्त्र का अन्तिम कूट। (बैन्दव स्थान)

*** 'मन्त्र, यन्त्र एवं षट्चक्रों में ऐक्य ***

क्र०	खण्ड नाम (१)	श्रीयन्त्र के भाग/चक्र (२)	पिण्डस्थ षट् चक्र (३)	मन्त्र के कूट (४)	'मन्त्र' में प्रयुक्त वर्ण (५)
[१]	सोम खण्ड	चतुर्दशार अष्टदल षोडशदल	१. विशुद्धचक्र २. आज्ञा चक्र	शक्ति कूट	स्वर वर्ण
[२]	सूर्य खण्ड	दशारद्वय	१. मणिपूर चक्र २. अनाहत चक्र	कामराज कूट	'क' आदि वर्णसमूह
[३]	अग्नि खण्ड	१. त्रिकोण २. अष्टार	१. मूलाधार चक्र २. स्वाधिष्ठान चक्र	वाग्भव कूट	'य' वर्ग के वर्ण
[४]	बैन्दव स्थान	१. वृत्तत्रय २. भूपुर	सहस्रार चक्र	अन्तिम तूर्य/कूट	नाद

जिस प्रकार 'श्रीयन्त्र' में चन्द्रमा सूर्य एवं अग्नि नामक तीन खण्ड एवं बैन्दव स्थान (सहस्रार) है उसी प्रकार में भी ये सभी विद्यम्रन हैं। 'पिण्ड' एवं श्री यन्त्र में भी ऐक्य है।

मन्त्र का अन्तिम कूट सहस्रार में अवस्थित है अर्थात् मन्त्र के अन्तिम कूट का स्थान 'सहस्रदल पद्म' है।

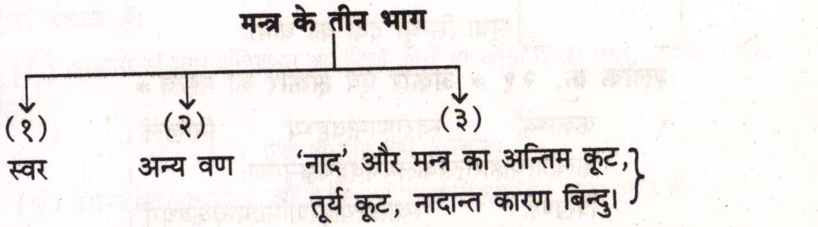
मन्त्र के तीन भाग
(१)
स्वर
(२)
अन्य वण
(३)
'नाद' और मन्त्र का अन्तिम कूट, तूर्य कूट, नादान्त कारण बिन्दु।

इस श्लोक में 'मन्त्र' एवं 'कला' (वर्ण-समूह) का ऐक्य भी बताया गया है।

[१] **मन्त्र का सोम खण्ड**—यह चन्द्रात्मक होने के कारण समस्त स्वरों का द्योतक है।

[२] **मन्त्र का सूर्य खण्ड**—यह सूर्यात्मक होने के कारण 'क' से 'म' पर्यन्त समस्त वर्ण समूह का द्योतक है।

[३] **मन्त्र का अग्नि खण्ड**—यह अग्न्यात्मक होने के कारण 'य' 'र' 'ल' 'व' 'श' 'ष' एवं 'स' का द्योतक है।

[४] **मन्त्र का बैन्दव खण्ड**—यह वर्ण 'क्ष' का द्योतक है। शेष वर्ण 'ह' विसर्गान्तर्गत है औ 'ळ' 'ल' के अन्तर्गत है।

सारांश—समस्त मातृकाएँ **'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र'** के अन्तर्गत एवं उसी के रूप में हैं।

'बैन्दव स्थान' सहस्रार शून्य चक्र, वियच्चक्र या सहस्रदल पद्म को कहते है। यही तांत्रिकों का 'सुधासिन्धु' भी है।

सारांश यह कि—

[क] मन्त्र-प्रयुक्त **'स्वर वर्ण'** = 'चन्द्र' = चन्द्रमा के प्रतीक हैं।

[ख] मन्त्र प्रयुक्त क से म पर्यन्त वर्ण = 'सूर्य' = सूर्य के प्रतीक हैं।

[ग] मन्त्र-प्रयुक्त-य वर्ग के वर्ण = 'अग्नि' = अग्नि के प्रतीक हैं।

[घ] मन्त्र-प्रयुक्त अन्तिम कूट = 'क्ष' = बैन्दव खण्ड) = बैन्दव खण्ड के प्रतीक हैं।

मन्त्र में प्रयुक्त जो **'नाद'** (बिन्दु एवं अर्धेन्दु, अर्धमात्रा) भी **बैन्दव स्थान** का द्योतक है।

'क्ष' = वर्ण माला का अन्त्याक्षर होने के कारण 'पञ्चदशी मन्त्र' के अन्तिम कूट का भी द्योतक है।

(क) **'क्ष'**— (क + ष) (क से ष तक की समस्त वर्ण माला)
= समस्त मातृकाओं का केन्द्र/प्रत्याहार।
(ख) **'क्ष'**— बैन्दव स्थान/सहस्त्रार/
सुधा सिन्धु। देवी का धाम।

श्लोक क्र. २१ * अकार एवं **क्षकार** का महत्व *

ककाभ्यां स्वरगणमावष्टभ्य निखिलं।
कलाप्रत्याहारात्सकलमभवद्व्यञ्जनगणः।
त्रिखण्डे स्यात्प्रत्याहरणमिदमन्वकषयुगं।
क्षकारश्चाकारोऽक्षर तनुतया त्राक्षरमिति ॥२१॥

अर्थ—[ककारों में (स्थित ध्वनि) से 'अकार' समस्त स्वरों पर सम्पूर्ण अधिकार स्थापित करके स्थित है। 'कला' (स्वर) के प्रत्याहरण से समस्त व्यञ्जन समूह का अभाव हो जाता है। तीनों खण्डों, का प्रत्याहरण 'क' एवं 'ष' के युग्म (अर्थात् 'क्ष' में हो जाता है। 'क्षकार' एवं 'अकार' ही अक्षरों का शरीर है इसीलिए इसे 'अक्षर' कहा जाता है।।२१।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

[१] जितने भी व्यञ्जन हैं वे सभी स्वराश्रित हैं। क्योंकि अनका स्वरों की सहायता के बिना उच्चारण सभव ही नहीं है।

[२] 'क' में दो अक्षर हैं 'क' एवं 'अ'। 'क' व्यञ्जन है किन्तु यह अनुच्चार्य है। जब 'क' के साथ 'अ' (स्वर) जुड़ जाता है तभी 'क' व्यञ्जन उच्चारण के योग्य बन पाता है। यही स्थिति समस्त व्यञ्जनों की है।

[३] **'कला' (१६ स्वर) का 'प्रत्याहरण'** (खींच लिया जाता। पृथक कर दिया जाना) कर दिए जाने पर अवशिष्ट व्यञ्जन यथा 'क' 'ख' 'ग' 'घ' 'च' 'छ' 'ज्' 'झ' 'त्' 'थ्' 'द्' 'न्' 'प्' आदि अनच्क (स्वर हीन) व्यञ्जन का 'अभाव' हो जाता है अर्थात् उनका व्यवहार (उच्चारण) सम्भव नहीं हो पाता।

[४] 'क कार' में जो 'अ' (वर्ण, है वह समस्त स्वरों पर अधिकार किए हुए है अर्थात् 'ककार' के साथ स्थित 'अकार' समस्त स्वरों का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात् 'अकार' समस्त स्वरों का द्योतक है।

[५] प्रत्याहारों में जो 'अच्' प्रत्याहार है उसमें स्थित 'अ' ही आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ आदि समस्त १६ स्वरों का बोधक है अतः 'अ' समस्त स्वरों का बोधक है और इस प्रकार 'अकार' समस्त स्वरों एवं व्यञ्जनों में सर्वप्रधान है।

सारांश यह कि 'अ' से समस्त स्वरों का सम्बोधन या द्योतक हो जाता है। **अवर्ग** का अर्थ है = स्वर समूह।

यहाँ **'कला'** शब्द भी स्वरों का द्योतक है क्योंकि कलायें १६ हैं और १६ संख्या की बोधक हैं।

[६] व्यञ्जनों से स्वर बहिष्कृत कर दिये जायँ तो व्यञ्जनों का प्रयोग सम्भव नहीं रह जाता।

स्वर एवं व्यञ्जन का सम्बन्ध

(१) शारदातिलककार की दृष्टि—'शारदातिलक' में कहा गया है—

'बिना स्वरैस्तु नान्येषां जायते व्यक्तिरञ्जसा।
शिवशक्तिमयान् प्राहुस्तस्माद्वर्णान् मनीषिणाः।'

(२) आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर स्वर-व्यञ्जन को शिव शक्ति का स्वरूप मानकर कहते हैं कि—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितु'।

वर्णों की शिवशक्ति मयता

(३) मातृका हृदयकार की दृष्टि—'मातृका हृदय' में भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि—

'ककारादि क्षकारान्ता वर्णास्ते शिवरूपिणाः।
समस्तव्यस्तरूपेण षट्त्रिशत्तत्व विग्रहाः॥
अकारादिविसर्गान्ताः **स्वराः षोडश शक्तयः**।
नित्याषोडशकात्मानः परस्परममी युताः॥
शिवशक्तिमयाः वर्णाः शब्दार्थ प्रतिपादकाः।
शिव स्वर पराधीनो न स्वतन्त्रः कदाप्यसौ।
स्वराः स्वतंत्राः जायन्ते न शिवस्तु कदाचन।

(१) स्वर शक्ति रूप हैं एवं स्वतन्त्रसत्ताक हैं।

(२) व्यञ्जन शिवरूप हैं और पर सत्ताक हैं।

(३) स्वरों के बिना व्यञ्जन या 'शक्ति' के बिना 'शिव' अव्यवहार्य और इस प्रकार व्यवहार जगत में अस्तित्वहीन हैं।

[७] 'त्रिखण्डेस्यात प्रत्याहारणमिदमन्वक्कषयुगं' 'मन्त्र' के तीनों खण्डों का 'क' + 'ष' युग्म (क्ष) में प्रत्याहरण होता है।

'क्ष' का अर्थ आकाश भी है। आकाश का व्यञ्जक 'नाद' है। मन्त्र के तीनों खण्डों का लय 'नाद' (आकाश = 'क्ष' = 'नाद') में हो जाता है।

(क) **क्षकार** ही 'बैन्दवग्रह' है।

(ख) स्वरों के बिना व्यञ्जन अनुपयोगी एवं व्यर्थ हैं तथा नाद के बिना 'स्वर' अस्तित्वहीन है।

(ग) स्वरों का प्रादुर्भाव 'नाद' से होता है।

'आसीच्छक्तिस्ततो **नादः** नादाद् बिन्दु समुद्भवः' कहकर शारदातिलककार ने 'नाद' को सृष्टि के कारणों में (शिव-शक्ति के बाद) सर्वोपरि स्थान दिया है। **'वरिवस्या रहस्यम्'** में भास्कर राय कहते हैं कि समस्त वर्णों में प्राणरूप से जो सञ्जीवनी शक्ति या आत्मशक्ति विद्यमान है वह है—**'चेतन नाद'**।

[८] 'मन्त्र' के तीन खण्ड हैं—(१) वर्ण (२) स्वर (३) नाद।

गौड़पादाचार्य कहते हैं कि—

'त्रिखण्डेस्यात्रत्याहारणमिदमन्व ....।'

(क) 'वर्ण' स्वरों पर निर्भर हैं।

(ख) 'स्वर' नादों पर निर्भर है।

(ग) 'नाद' प्रणव (ओंकार) पर निर्भर हैं।

(घ) 'वर्ण' 'स्वर' एवं 'नाद' नाद की कारणावस्था **'नादान्त'** पर निर्भर हैं।

[९] 'क्ष' (क्षकार) ही अक्षरों का शरीर है। अव्यक्त नाद ही शब्दों का कारण है इसीलिए इन्हें अक्षर कहते हैं। 'वर्ण' का बाह्य स्वरूप, उसका उच्चारण नष्ट (क्षर) है किन्तु उसकी आत्मा (चैतन्य = चेतना) अक्षर है। इसीलिए वर्णों को **'अक्षर'** कहते हैं। 'अक्षर' = अ (नहीं) + क्षर (नश्वर) = क्षरातीत) 'अक्ष'—अ से क्ष पर्यन्त समस्त वर्ण 'क्ष' क से ष पर्यन्त समस्त वर्ण

सारांश = 'अ' समस्त स्वरों का द्योतक है।

'अ' = समस्त स्वर समुदाय **'क्ष'** = आकाश 'ह' विसर्ग।

त्रिपुरामहिम्न स्तोत्रकार की दृष्टि—

बिन्दुप्राण विसर्ग जीव सहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं।
षट्कूटानि विपर्यपेण निगदेत्तारत्रिबालावलैः।
एभिः संपुटितं प्रजप्य विरहेत्रासादमन्त्रं परं।
गुह्यादगुह्यतमं सयोग जनितं सद्योग मोक्षप्रदम्॥

मन्त्र—'क ए ई ल ह्रीं।'

मन्त्र का प्रथमाक्षर 'क'—क् + अ से निर्मित हैं।

(क) **'क'**—'क' समस्त व्यञ्जनों का द्योतक है।

(ख) **'अ'** 'अ' समस्त स्वरो का द्योतक है।

'स्व' = ' च् ' (**अ इ**^{१} **उ** ण्। **ऋ**^{१} ऌ क्। **ए**^{३} **ओङ् ऐ औ**^{४} च।) = [अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ।]

(ग) **'कला'** भी १६ हैं और **स्वर भी १६** हैं। 'कला' स्वर को भी कहते हैं क्योंकि दोनों की संख्या १६ है। **(कला' का अर्थ** १६ नहीं है तथापि **'कला १६ संख्या की द्योतिका है।)**

निष्फल व्यञ्जन (स्वर हीन व्यञ्जन) अनुच्चार्य हैं। क कार + ल कार = कल या 'कला'।

'कल' 'कला' = क से ल पर्यन्त समस्त वर्ण।

(घ) **कला और उनकी संख्या**

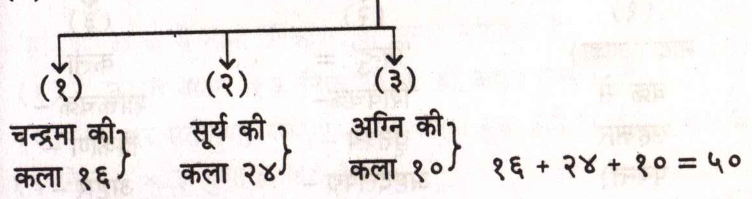

(i) अक्षरों की संख्या = ५०

(ii) कला की संख्या = ५०

(iii) वर्ण	वर्ण की शक्ति
(क) वर्ण शरीर है।	'स्वर' वर्ण की शक्ति है।
(ख) शिव 'शक्तिमान' है।	भगवती उसकी 'शक्ति है।
(ग) वर्ण 'शिव' है।	स्वर 'शक्ति' है।
(घ) मन्त्र का प्रत्येक अक्षर	(मन्त्र का प्रत्येक अक्षर) शिव शक्तिमय है।
(ङ) वर्ण कला प्रधान हैं।	(कलाप्रधान होने के कारण)

(ङ) वर्ण कला प्रधान हैं।	(कला प्रधान होने के कारण) समस्त वर्ण कलात्मक हैं।
(च) श्री विद्यामन्त्र में ४ अनुस्वार हैं = ँ = चन्द्र + बिन्दु = 'अनुस्वार'	अनुस्वार 'बिन्दु' हैं। चन्द्रमा 'नाद' है।
(छ) 'नाद' बिन्दु के ऊपर है। वर्त्तमान में लेखन ँ	प्राचीन लेखन पद्धति में '◠' लेखन होता था जो ठीक था।

'आधिदैविक दुःख' (देवोत्पन्न दुःख)

- (१) 'नाद' से नादान्त तक (अर्द्धचन्द्र। रोधनी। नाद। नादान्त। शक्ति। व्यापिका। समनी। उन्मनी)
- (२) अनुस्वार (बिन्दु) 'बिन्दु'।।
- (३) कला मंत्र के व्यंजन वर्ण एवं एवं सभी स्वर।

अब रहा मन्त्र का चतुर्थ खण्ड— 'मन्त्र' का चतुर्थ खण्ड = **'सादाख्य'** है। सादाख्य तत्त्व नाद, बिन्दु एवं कला से अतीत है।

*** श्री चक्र का विभाजन ***

- (१) नाद (आज्ञा) चक्र से सहस्त्रार पर्यन्त) 'भूपुर'
- (२) 'बिन्दु' = 'शिवचक्र– वृत्तत्रय – अष्टदलपद्म – षोडशदलपद्म –
- (३) कला शक्तिचक्र – त्रिकोण – अष्टार – दशारद्वय – चतुर्दशार

अक्षरों का षोडशात्मक विभाजन यदि किया जाय तो

- (१) स्वर = १६
- (२) व्यञ्जन 'क' से 'त' तक
- (३) व्यञ्जन 'थ' से 'स' तक = १६

अर्द्ध चन्द्र बिन्दु ँ 'चन्द्र बिन्दु' ँ चन्द्र बिन्दु

(१) अनुस्वार बिन्दु है। ◡ यह अनुस्वार या 'बिन्दु' है।
(२) चन्द्रमा नाद है। ◆ यह शून्याकार ही 'नाद' है।
यही चन्द्र है।

(३) चन्द्र बिन्दु का प्राचीन लेखन = ◠

यदि हम वर्णों को भी तीन वर्ग में विभाजित कर दें तो—

(१) 'अ' = १६ स्वर } 'अ' } 'अकथ' त्रिकोण
(२) 'क से त = १६ व्यञ्जन } 'क' } निर्मित हो जाएगा
(३) 'थ' से 'स' तक व्यञ्जन } 'थ' } और 'गुरुमण्डल' को द्योतित करेगा।

'अकथ त्रिकोण'

- (क)
  - (१) ज्येष्ठा
  - (२) वामा
  - (३) रौद्री
  - = ३ शक्तियाँ
- (ख)
  - (१) इच्छा
  - (२) ज्ञान
  - (३) क्रिया
  - = ३ शक्तियाँ

'ह' 'क्ष' ळ = ये तीनों 'त्रिकोण' के अन्दर समाहित है।

(१) ये समस्त **अक्षर १६ नित्याओं के ही अपने स्वरूप हैं।**

(२) ये अक्षर सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण युक्त होने से तीन प्रकार के हैं अत: १६ नित्यायें × ३ गुणा = ४८ अक्षर।

'अक्ष' (माला = वर्ण माला) = समस्त स्वर एवं समस्त व्यञ्जन वर्णों की समष्टि। यही **अक्षमाला** श्रीविद्या या वर्ण स्वरूपा 'कुण्डलिनी शक्ति' है।

'श्रीचक्र' तो भगवती का शरीर है।

भगवती अक्षर स्वरूपिणी भी हैं और श्रीचक्रात्मिका भी हैं अत: **'श्रीचक्र'** एवं अक्षमाला (वर्ण समुदाय) अभिन्न है।

'क्ष' = (क + ष) 'क्ष' 'बैन्दवगृह' है। यह चन्द्रस्थान एवं आकाश का द्योतक है।

(A) **४ शिव चक्र** (भूपुर। वृत्तत्रय। षोडशदल पद्म। अष्टदल पद्म)

(B) १४ स्वर = चतुर्दशार हैं।

(C) **दशार युग्म** (२० वर्ण)

(i) क । ख । ग । घ ।
(ii) च । छ ज । झ ।
(iii) ट । ठ । ड ढ ।
(iv) त । थ । द । ध ।
(v) प । फ । ब । भ ।

(D) **अष्टार**—य । र । ल । व ।
श । ष । स । ह ।

(E) **अनुस्वार एवं विसर्ग**—ङ । ञ । ण । न । म ।

'अनुस्वार' एवं **'विसर्ग'**—'त्रिकोण' एवं बिन्दु। ङ, ञ, ण, न एवं म ये अनुस्वार (अनुस्वार पञ्चक) बिन्दु के ही स्वरूप हैं।

(क) अनुस्वार (ख) विसर्ग (ग) बिन्दु—ये तीनों **'त्रिकोण'** के रूप या उनके द्योतक हैं। अन्य ऐक्यों के अतिरिक्त श्लोक १३ में निम्न ऐक्य भी बताए गए हैं—

'कला नादो बिन्दु क्रमशः इस वर्णाश्च चरणं।
षडब्जं चाधार प्रभृतिकममीषां च मिलनम्।
तदेवं **षोढैक्यं** भवति खलु **येषां समयिनाम्।**
चतुधैक्यं तेषां **भवति हि सपर्या समयिनाम।'**

६ प्रकार का ऐक्य

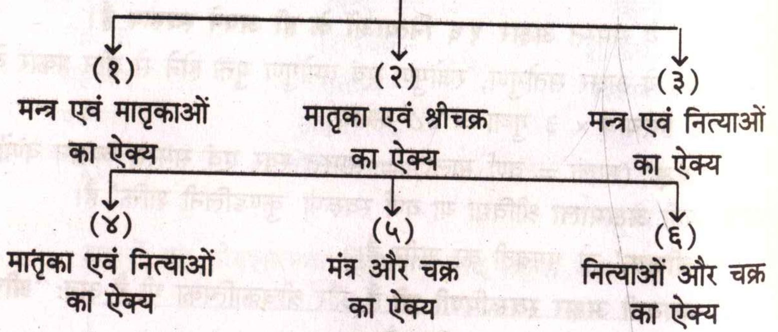
(१)
मन्त्र एवं मातृकाओं का ऐक्य
(२)
मातृका एवं श्रीचक्र का ऐक्य
(३)
मन्त्र एवं नित्याओं का ऐक्य
(४)
मातृका एवं नित्याओं का ऐक्य
(५)
मंत्र और चक्र का ऐक्य
(६)
नित्याओं और चक्र का ऐक्य

चतुर्धा ऐक्य

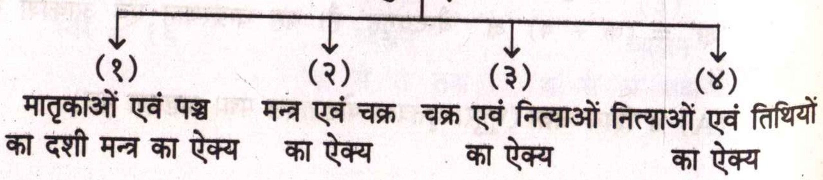
(१)
मातृकाओं एवं पञ्च का दशी मन्त्र का ऐक्य
(२)
मन्त्र एवं चक्र का ऐक्य
(३)
चक्र एवं नित्याओं का ऐक्य
(४)
नित्याओं एवं तिथियों का ऐक्य

यदि हम पञ्चदशी के **मन्त्र, तिथि तिथियों के नाम त्यिा, तृत्त्व, खण्ड** एवं **श्री चक्र के भाग** का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करें तो उसका स्वरूप इस प्रकार होगा।

'मन्त्र' (पञ्चदशी मन्त्र)—

*** 'क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं' ***

(क) इसमें प्रथम मंत्र-भाग 'अग्नि खण्ड' का है।

(ख) (इसमें द्वितीय मंत्र-भाग 'सौर खण्ड' का है।

(ग) (इसमें) तृतीय मंत्र-भाग 'चन्द्र खण्ड' का है।

(घ) ये सभी मंत्राक्षर **नित्यात्मक, तत्त्वात्मक, खण्डात्मक, श्रीचक्रात्मक** एवं **तिथ्यात्मक** हैं।

* मन्त्र का **'अग्निखण्ड'** और उसका विवरण *

मन्त्राक्षर	तिथि	तिथि की वैदिक संज्ञा	नित्या	तत्त्व	खण्ड	श्रीचक्र का चक्र (भाग)
'क'	१	दर्शा	कामेश्वरी	शिव	अग्नि	त्रिकोण
'ए'	२	दृष्टा	भगमालिनी	शक्ति	अग्नि	अष्टार
'ई'	३	दर्शता	नित्यक्लिन्ना	माया	अग्नि	अन्तर्द
'ल'	४	विश्वरूपा	भेरुण्डा	शुद्धविद्या	अग्नि	शार

* 'पञ्चदशी'मन्त्र का **'सौरखण्ड'** एवं उसका विवरण *

मन्त्राक्षर	तिथियाँ	तिथियों की वैदिक संज्ञा	नित्यायें	तत्त्व	खण्ड	श्रीचक्र के खण्ड
ह्रीं	५	सुदर्शना	वह्निवासिनी	जल	सौर	
'ह'	६	आप्यायमाना	महावज्रेश्वरी विद्येश्वरी	तेज	सौर	
'स'	७	आप्यायमाना	शिवदूती रौद्री	वायु	सौर	बहिर्दशार
'क'	८	आप्याया	त्वरिता	मन	सौर	
'ह'	९	सूनृता	कुलसुन्दरी	पृथ्वी	सौर	चतुर्दशार
'ल'	१०	इरा	नित्या	आकाश	सौर	
'ह्रीं'	११	आपूर्यमाना	नीलपताका	विद्या	सौर	

* 'पञ्चदशी' मंत्र का 'चन्द्रखण्ड' एवं उसका विवरण *

मन्त्राक्षर	तिथियाँ	तिथियों की वैदिक संज्ञा	नित्यायें	तत्त्व	खण्ड	श्रीचक्र के खण्ड
'स'	१२	आपूर्यमाना	विजया	महेश्वर	चन्द्र	शिव के चार चक्र
'क'	१३	पूरयन्ती	सर्वमङ्गला	परतत्त्व	चन्द्र	
'ल'	१४	पूर्णा	ज्वाला-मालिनी	आत्म	चन्द्र	
'ह्रीं'	१५	पौर्णमासी	चित्रा या चिद्रूपा	सदा-शिव	चन्द्र	
श्रीं	अमावस्या	चिद्रूपा	महात्रिपुर सुन्दरी	सादाख्य	चन्द्र नित्या	कला

सारांश—(१) १ से ५ मन्त्राक्षर = **'अग्निखण्ड'** से सम्बद्ध हैं।

(२) ६ से १० तक के मन्त्राक्षर = **'सौर खण्ड'** से सम्बद्ध है।

(३) ५ एवं ११ सौर खण्ड के अन्तर्गत स्वीकार किये जाते है।

(४) इसी प्रकार 'अन्तर्दशार' की १० अग्निकलायें सूर्यान्तर्गत हैं।

तिथियों के खण्ड

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
नन्दा	**भद्रा**	**जया**	**रिक्ता**	**पूर्णा**
१, ६, ११	२, ७, १२	३, ८, १३	४, ९, १४ (त्याज्य)	५, १०, १५

'मन्त्र' चन्द्रकला, तिथि, नित्या, योगिनी, शिव शक्ति आदि सभी से युक्त हैं। यह भी ध्यातव्य है कि—'तिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनम् ।

नित्याः पञ्चदशैनास्युः इति प्रोक्तास्तु वासनाः। —तन्त्रराजतन्त्र

चक्रभावना—

'कादिमतेनाश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः।।' —(भावनोपनिषद (३६)

श्लोक क्रमांक २२ समयाचार में पूजा-विधान का स्वरूप—

'विदेहेन्द्रापत्यंश्रुत इह ऋषिर्यस्य च मनो,
रयं चार्थः सम्यक् श्रुति-शिरसि तैत्तिर्यकऋचि।
ऋषिं हित्वा चास्या हृदयकमले नैतमृषिभि,
त्यृचाभ्युक्तः पूजा विधिरिह भवत्या : समयिनाम्' ॥२२॥

[शरीर-रहित इन्द्रपुत्र कामदेव यहाँ जिस मन्त्र के ऋषि सुने जाते है। ऐसा अर्थ (रहस्योद्घाटन) श्रुतियों के सिर तैत्तिरीय ऋचा में सम्यक् रीति से कहा गय है। 'न एतं ऋषिं' आदि ऋचा के अनुसार इस हृत्पद्म में ऋषि का त्याग करके कहा गया है। यहाँ (समयाचार पथ में) ऋचाभ्युक्त पूजा-विधि ही आपके समय मार्गियों की सपर्या-विधि है॥२२॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—'पुत्रो निऋत्या वैदेहः' (निऋति अर्थात् लक्ष्मी के पुत्र = कामदेव) कृष्णा यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक (प्र. प्रपाठक, एकादश अनुवाक) के अनुसार भगवती निऋति (लक्ष्मी) के जो पुत्र हैं वे ही 'वैदेह' कहलाते हैं। चूँकि कामदेव शरीर-रहित (अलङ्ग) हैं और भगवती के कृपापात्र हैं अतः यहाँ वैदेह शब्द कामदेव का वाचक है। तैत्तिरीयाण्यक में कहा गया है—

'जनको ह वैदेहः । अहो रात्रे समाजगाम् ।
पुत्रो निर्ऋत्या **वैदेहः।।'**

पाठान्तर—विदेहो नैऋत्याः सुत इह ऋषिर्यः स च'।

इस श्लोक में 'तैत्तिर्यक् ऋचि' शब्दों का एवं तैत्तिरीयारण्यक के प्रमाण को उद्धृत करके श्री गौड़पादाचार्य ने 'श्रीविद्या' को वेद-विहित सिद्ध करने का प्रयास किया है।

श्री विद्या के ऋषि कामदेव हैं। आचार्य श्री इस श्लोक में 'नैतभृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्' के सिद्धान्त (या नियम) को दृष्टि में रखकर यह कहना चाहते हैं कि 'श्रीविद्या के ऋषि को जानकर श्री चक्र रूप नगर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। सारंश यह है कि—पूजाङ्ग के रूप में (१) 'बहिर्याग' एवं (२) 'अन्तर्याग' दोनों स्वीकृत हैं किन्तु समय मतावलम्बी बहिर्याग एवं स्थूलोपासना को स्वीकार नहीं करते। इसी दृष्टि को पुरस्सर करते हुए यह कहा गया है कि—

'यदि श्री चक्र की पूजा करनी ही है तो मन्त्र के बाह्यांग यथा 'ऋषि' आदि मान को ही जानकर भवगती की या उनके 'श्रीयन्त्र' की पूजा न की जाय। स्पष्ट है कि समयाचारी **'आन्तर पूजा'** मात्र को स्वीकार करते हैं। इसीलिए आचार्य लक्ष्मीधर ने समयाचारावबलम्बियों को बाह्यपूजा करने से मना करते हुए कहा है कि 'बाह्य पूजा न कर्तव्या'।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'आन्तर पूजायां तदात्म्यानुसंधानात्मिकायम् ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव। अतो वस्तुसिद्धऋष्यादिपर्युदासमुखेन श्री चक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्शिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते तदुक्त सनत्कुमार संहितायाम् —

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः ।
साक्षुद्रकलदा नृणामैहिकार्थैकसाधनात् ।
बाह्य पूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कापालिकाः ।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः ।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा ।।'

पूजा के अङ्ग

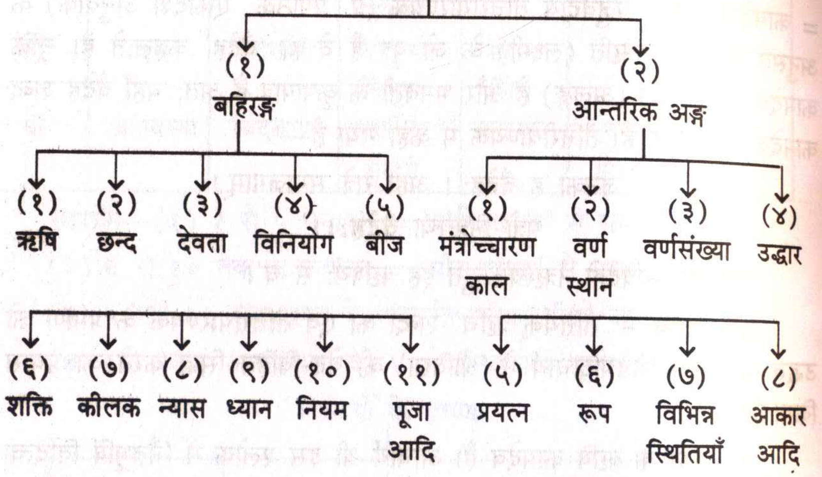
(१)
बहिरङ्ग
(२)
आन्तरिक अङ्ग
(१) ऋषि
(२) छन्द
(३) देवता
(४) विनियोग
(५) बीज
(६) शक्ति
(७) कीलक
(८) न्यास
(९) ध्यान
(१०) नियम
(११) पूजा आदि
(१) मंत्रोच्चारण काल
(२) वर्ण स्थान
(३) वर्णसंख्या
(४) उद्धार
(५) प्रयत्न
(६) रूप
(७) विभिन्न स्थितियाँ
(८) आकार आदि

—भास्करराय (वरिवस्यारहस्यम्)

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—श्रीविद्या के मन्मथ (कामदेव) ऋषि हैं।

'जनको ह वैदेहः। **'अहोरात्रै'**स्समाजगाम्। अर्थात् **'जनकः'** उत्पादकः श्री विद्यायाः ऋषिः। विदेह एवं **वैदेह' मन्मथः। 'अहोरात्रैः'** अहोरात्रात्मकैः पञ्चदशाक्षरी-मन्त्रवर्णौः दर्शादिपूर्णिमान्तकलात्मकैः समाजगाम् तं मन्त्रं आहृतवानित्यर्थः। यस्तु मन्त्रं आहरति स **ऋषि** रित्युच्यते। अतएव अरुणोपनिषदि—'पुत्रो निर्ऋत्याः वैदेहः।[1]

निर्ऋत्याः लक्ष्म्याः। यद्वा अनिर्ऋत्याः लक्ष्म्याः पुत्रः वैदेहः मन्मथः।'

'अचेता यश्च चेनः।।'[2]

अनङ्गत्वादेवचेतोरहितः। चेतनश्च सर्वभूतान्तर्या मित्वात् ।।

'स तं मणिमविन्दत् ।'[3]

सः अनङ्गः तं प्रसिद्धं विद्यात्मकं रत्नं अविन्दत लब्धवान अपश्यत्। असौ

---

१. तैत्तिरीय आरण्यक (१/११)
२. तैत्तिरीय आरण्यक
३. तैत्तिरीय आरण्यक (१/११) लक्ष्मीधरः लक्ष्मीधरा (३२)

अनङ्ग विद्यात्मकं रत्नं अविन्दत लब्धवान अपश्यत् । असो अङ्ग अन्धोऽपि अपश्यादिति 'अन्धो मणिमविन्दत् '—इति वाक्य शेष बलात् लभ्यते।

अतएव परिचित्कलायाः विद्यायाः त्रिपुरसुचन्दर्याः मन्मथ ऋषिरभूत्' ।।[1]

आचार्य **लक्ष्मीधर** कहते हैं कि—

(१) 'वैदेह' का अर्थ है कामदेव।

(२) कामदेव लक्ष्मी (निर्ऋति) के पुत्र हैं।

(३) वे अनङ्ग होने से अचेत हैं किन्तु समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी हैं अतः चेतन भी हैं।

(४) उन कामदेव ने **श्रीविद्यारूप मणि** प्राप्त किया।

(५) वे अहोरात्रात्मक (पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के वर्णों तथा दर्शा आदि तिथियों से युक्त) भगवती के श्रीविद्या को (पञ्चदशी विद्या) को लायें। उन्होंने पञ्चदशी रूप मणि प्राप्त किया।

'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्' (तै.आ. १/११) अर्थात् 'एतं ऋषिं मन्मथं विदित्वा नगरं श्रीचक्रात्मकं न प्रविशेत्। ऋषिज्ञान पूर्वकं श्री चक्रात्मकं नगरं न पूजयेत्। बाह्यपूजां न कुर्यादिति निषेधविधिः।

'बाह्य पूजायामेव ऋषिच्छन्दः प्रभृतिज्ञान पूर्वकत्वम् । आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायां ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव।।'

सारांश यह कि ऋषि आदि के ज्ञान की आवश्यकता तो बाह्य पूजा में होती है **'तादात्मानुसन्धान'** में तो इनकी आवश्यकता है ही नहीं अतः इनका ज्ञान ही आवश्यक नहीं है तो उनके उपयोग की तो बात ही क्या?

विभिन्न उपासक और उनकी पूजा-विधियाँ

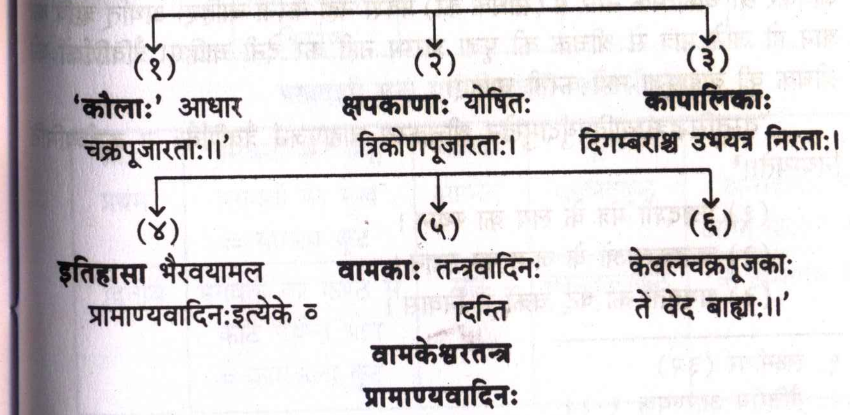
(१)
'कौलाः' आधार चक्रपूजारताः।।'
(२)
क्षपकाणाः योषितः त्रिकोणपूजारताः।
(३)
कापालिकाः दिगम्बराश्च उभयत्र निरताः।
(४)
इतिहासा भैरवयामल प्रामाण्यवादिनःइत्येके ०
(५)
वामकाः तन्त्रवादिनः ।दन्ति वामकेश्वरतन्त्र प्रामाण्यवादिनः
(६)
केवलचक्रपूजकाः ते वेद बाह्याः।।'

---

१. लक्ष्मीधर (३२)

कामदेव और श्रीविद्या

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि में वेदों ने इस बात को स्वीकार किया है कि श्रीविद्या के क्षेत्र में अनङ्ग ने महनीय भूमिका का निर्वहन किया है। श्रुति कहती 'सोऽनङ्गुलिरावयत' 'सोऽग्रीव प्रत्यमुञ्चत्' 'सोऽजिह्वो असश्चत् ।' (तै. आरण्यक १-११)

(१) अनङ्ग ने पञ्चादशद्वर्णात्मक, षोडश नित्यात्मक, षोडशकलात्मा विद्यारत्न को अनेक स्मृतियों, पुराणों एवं नानाविध आगमों विप्रकीर्ण स्वरूप में देखना। किफर उन्होंने उस विप्रकीर्ण मन्त्र को एकीकृत करके एक दूसरे के साथ सिया।।

(२) उन्होंने पञ्चाशद वर्णों को तीन खण्डों में विभाजित करके त्रिपुर सन्दरी आदि **नित्याओं** को उनमें अन्तर्भूत करके प्रतिपदा आदि १६ **तिथियों** को भी उसमें अन्तर्भूत करके पञ्चदशवर्णात्मक विद्या को भी खण्डत्रय में वर्गीकृत करके और वहाँ सोम-सूर्य एवं अनल बह्म-विष्णु-महेश्वर, सत्व-रज-तम, जाग्रत-स्वान-सुषुप्ति एवं सृष्टि-स्थिति-लय को भी गर्भीकृत या संकेन्द्रित करके श्रीविद्या के चतुर्थ खण्ड में **पञ्चदशकलाओं** को भी अन्तर्भूत करके भुवनेश्वरी प्रभृतिगिनि **योगिनी विद्याओं कोत्रिकों** के साथ ह्रींकार के साथ **अन्तर्भूत** करके—(१) सर्वभूतात्मक (२) सर्वमन्त्रात्मक (३) सर्वतत्त्वात्मक (४) सर्वावस्थात्मक (५) सर्वशब्दात्मकं (८) सर्वशक्त्यात्मक (९) त्रिगुणात्मक, (१०) त्रिखण्डात्मक (११) त्रिगुणातीत (१२) सादझाख्यपरपर्यात्मक (१३) एवं षडिंशशिवशक्तिसंपुटात्मक मूल श्रीविद्या को पञ्चदश वर्णों से स्यूत श्री विद्या (मन्त्र) रूप 'मन्त्रराज' को **गले में धारण किया** और चिरकाल तक 'ध्यान योग' के साथ उसकी पूजा की। उसके बाद उन्होंने चन्द्रकला के अमृत स्वाद का रसास्वादन किया। वे मन्मथ इस पञ्चदशी मन्त्र के ऋषि हैं।[1]

(४) **'नैतभृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्'**[2] अर्थात् इस ऋषि कामदेव को जानकर श्री चक्रात्मक नगर में (साधक को) प्रवेश नहीं करना चाहिए। अर्थात् ऋषि का ज्ञान हो जाने मात्र से श्रीचक्र की पूजा प्रारम्भ नहीं कर देनी चाहिए। त्रैविर्णिकों को श्रीचक्र की बाह्यपूजा नहीं करनी चाहिए।

'वस्तुसिद्धऋष्यादिपर्युदामुखेन श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते।।[3]

(१) पञ्चदशी मंत्र के लय का स्थान।
(२) चन्द्रकलाओं के जन्म का स्थान।
(३) भगवती का षट् चक्रों में निवास।

---

[1] लक्ष्मीधर (३२)
[2] तैत्तिरीय आरण्यक १-११
[3] लक्ष्मीधर (सौ.ल. ३२)

श्लोक क्रमांक २३—

त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरधायां निविशते।
श्रियो देव्याः शेषोयत इह समस्ताः शशिकलाः।
त्रिखण्डे त्रैरण्यं निवसति समन्त्रे च सुभगे।
षडब्जारण्यानो त्रितययुतखण्डे निवसति ॥२३॥

[(हे भगवती।) तुम्हारा खण्डों वाला यह **पञ्चदशी मन्त्र** सरघा (सहस्रदल पद्म) में लयीभूत हो जाता है। तुझ श्री देवी! का जो भाग यहाँ शेष उसी से समस्त चन्द्रकलाओं का प्राकट्य होता है। हे सुभगे! (महात्रिपुर सुन्दरी देवी।) तू त्रिखण्डात्मक मन्त्र के सहित त्रिखण्ड में निवास किया करती है। (तू) छः पद्मों के समूह रूप अरण्य में खण्डत्रय के साथ निवास किया करती है।।२३।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—भगवती का त्रिखण्डात्मक स्वरूप इस प्रकार है—

(१) मन्त्र के भाग की संज्ञा	(२) श्रीयन्त्र का भाग	(३) षड्कमल में से सम्बद्ध कमल	(४) कुण्डलिन्री का सम्बद्ध प्रकार	(५) खण्ड
(१) शक्तिकूट	शिवचक्र चतुष्ट्य	आज्ञाचक्र विशुद्धचक्र	सोमकुण्डलिनी	सोमखण्ड
(२) कामकूट	चतुर्दशार बहिर्दशार	अनाहत चक्र मणिपूर चक्र	सूर्यकुण्डलिनी	सूर्यखण्ड
(३) वाग्भवकूट	अन्तर्दशार अष्टार बिन्दुसमन्वित त्रिकोंण	स्वाधिष्ठान चक्र।	अग्निकुण्डलिनी	अग्नि खण्ड

पञ्चदशी मन्त्र एवं भगवती–अन्तर्संबन्ध

क्र०	भगवती का अङ्ग	खण्ड	कूट	
प्रथम	भगवती का मुख = वाग्भव कूट	आग्नेय	वाग्भवकूट	'अन्तर्दशार की अग्नि कलायें सूर्य
द्वितीय	भगवती का कण्ठ से कटि पर्यन्त भाग = कामकला कूट	सौर	कामकलाकूट	के अन्तर्गत हैं।

क्र०	**कूट**	**श्रीयन्त्र का भाग**	**पद्म**	**कूट**
तृतीय	'वाग्भवकूट'	अन्तर्दशार अष्टार एवं सबिन्दु त्रिकोण	(१) स्वाधिष्ठान चक्र (२) मूलाधार चक्र	शक्ति कूट

अन्तर्दशार की १० अग्नि कलायें सूर्यान्तर्गत हैं। सोलहावाँ अक्षर ही भगवती का स्वरूप है। यह वह 'नित्यकला' है जिससे सभी का आविर्भाव एवं उदय होता है।

'सरधा' शब्द सहस्र दल कमल के चन्द्रमण्डल को कया गया है।

वेदों में इसका उल्लेख किया गया है—

(१) 'इयं वाव**सरघा'**

(२) 'तस्या अग्नि रव **सारघं** मधु

(३) या एता : पूर्वपक्षा पर पक्षयो रात्रयः।

(४) ता मधुकृतः।।

(१) **'इयं वाव सरधा'** (तै.ब्रा.) यह चन्द्रकला **'सरघा'** के समान (मधुस्थान वाले छत्ते के समान) मधुस्यन्दिनी है—

यह अमृतस्यन्दिनी है। **चक्रात्मक चन्द्र** सरघा के समान है।[१]

(२) **'तस्य अग्नि रेव सारघं मधु'** (तै.ब्रा.)

उस सरघा की अग्नि ही (अग्नि स्थान ही) बैन्दव त्रिकोण है जो कि सारघ (सरघोद्भूत मधु) है कारण यह कि चन्द्रमण्डल सुधा सिन्धु है।

(३) ता मधुकृतः। (तै.ब्रा. ३/१०/१०)

शुक्ल-कृष्ण की रात्रियाँ ही मधु संग्रह करने वाली हैं। रात्रि के समय ही चन्द्र कला रूप श्रीविद्या का अनुष्ठान किया जाता है कि दिन में। मधुमक्खियाँ भी रात्रि में ही मधु संग्रह करती हैं 'रात्रिष्वेव मधुनः संग्रहः इति श्लोक प्रसिद्धिः।। (लक्ष्मीधर)

'सरघा' = मधु का स्थान। सहस्रार

(१) **'नाद'** का लय सहस्रार में होता है।

(२) मंत्र का लय स्थान सरस्रार है।

(३) वर्णों का लय 'नाद' में एवं 'नाद' का लय 'सहस्रार' में होता है।

(४) 'नाद' का लय नाद के कारण 'सहस्रार' में हुआ करता है।

(५) शशिकला चन्द्रमा की १६वहीं कला (या अमावस्या) है।

(६) षोडशीकला (१६वीं कला) नित्यकला है क्योंकि सोम का यथार्थ स्वरूप क्या है? यह सूर्य के प्रकाश से घटती-बढ़ती कलाओं के रूप में चमकता है।

(७) चन्द्रमा की १५ कलायें पञ्चदशाक्षरी विद्या (श्री विद्या का पञ्चदशी मन्त्र) के मंत्राक्षरों १५ अक्षरों से सम्बृद्ध हैं।

---

[१] लक्ष्मीधर (२)

(८) चन्द्रमा की १६हवीं कला विशुद्ध चिति शक्ति चिन्मात्र (निर्विकल्प समाधि में अवस्थित महात्रिपुर सुन्दरी) शक्ति है।

(९) चन्द्रमा की शेष कलायें घटती-बढ़ती रहती हैं किन्तु चन्द्रमा का बिम्बसदा एक समान रहता है।

(१०) प्रत्येक चन्द्रकला 'षोडशी कला' (१६हवीं कला) का अङ्ग है।

(११) चन्द्रमा की प्रत्येक कला का ही उपासना या पूजन तथा ध्यान उस कला से सम्बृद्ध तिथि में १६हवीं कला सहित किया जाता है।

(१२) सहस्रसार चक्र के मध्य स्थित चन्द्रमण्डल को **'बैन्दव स्थान'** कहते हैं।

(१३) **शुद्धचिति 'शक्ति'** की आनन्दमयी कला का स्थान है इसे ही 'श्री' कहते हैं। इसे ही **'महात्रिपुर सुन्दरी'** भी कहते हैं।

'सरघा' सुधासिन्धु का पर्याय है। 'सरघां' है मधु का स्थान। सहस्रार (सुधासिन्धु) अमृत का स्थान है अतः सहस्रार की 'सरघा' कहा गया है। **'षडब्याजण्यानो** त्रितययुत खण्डे निवसति।'

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी षट्चक्रों में निवास किया करती हैं। **'सरघा'** एवं **षटचक्र'**

सुधासिन्धेर्मध्ये सुर विटपिवाटी परि वृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कलियाम,
भजन्ति त्वां धन्या : कतिचन चिदानन्द लहरीम्।
(शङ्कराचार्य-सौन्दर्यलहरी)

'सरघा' *** सहस्त्रदलपद्म *** **सरघा (सुधासिन्धु)**

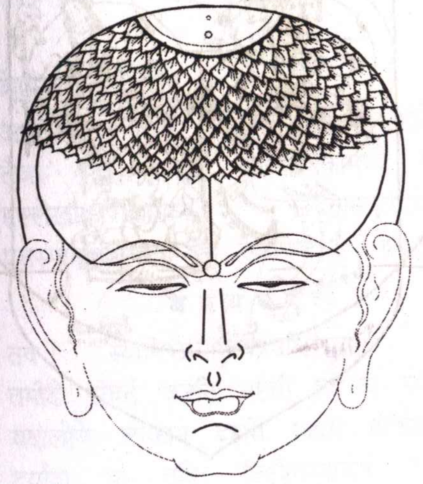

‘बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः ।
तत्रैव नीपश्रेणि च तन्मध्ये मणिमण्डपम् ।
तत्र चिन्ता मणिकृतं देव्या मन्दिर मन्दिर मुत्तमम् ।
शिवत्मके महामञ्चे महेशानोप बर्हणे ।
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः ।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः ।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ।
शिवाकमण्डलंमित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम् ।
तदुद्भूतामृतक्ष्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ॥’

—(भैरव यामल)

* मूलाधार चक्र *

‘षडब्जाख्यानो’— सु० स्तुति

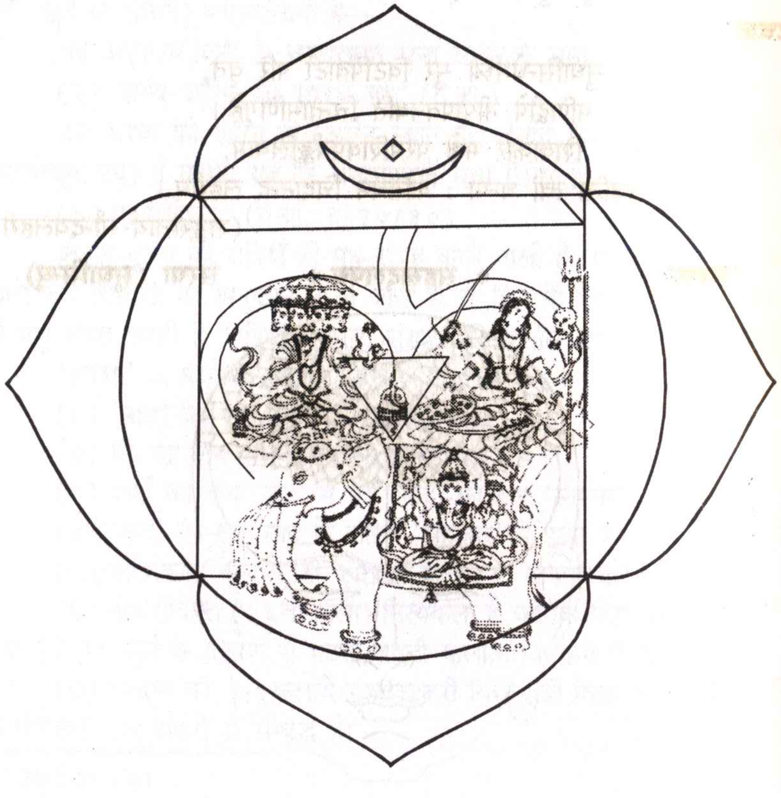

* स्वाधिष्ठान चक्र *

‘षडब्जाख्यानो’— सु० स्तुति

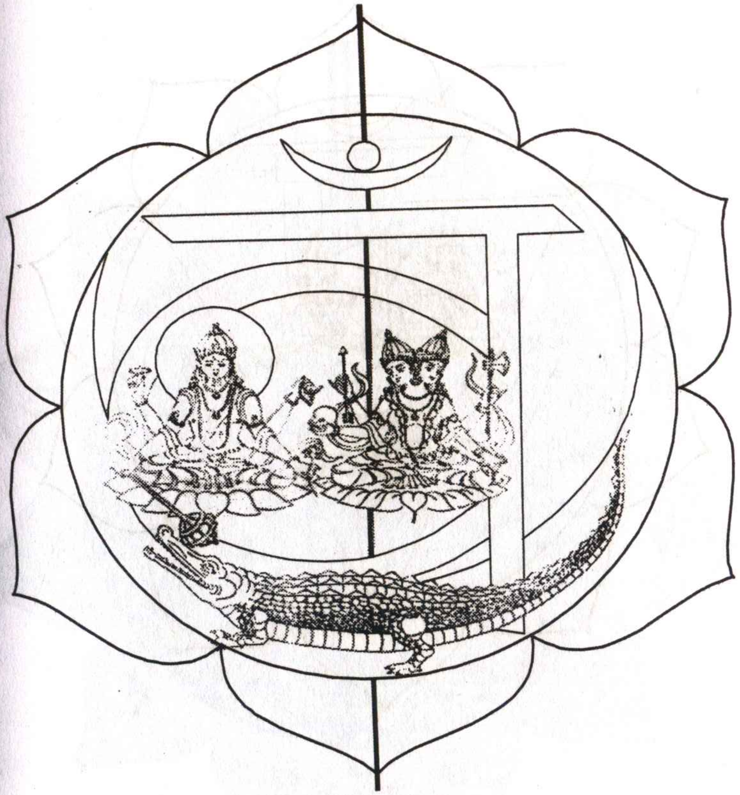

स्वच्छन्दसंग्रहकार की दृष्टि—

आधारपङ्कजस्योर्ध्वे, सार्धद्वयङ्गुलिकोपरि ।
तैजरु साष्टा पत्रश्च, पीतकर्णिकामध्ये युतम् ।
हृल्लेखाकर्णिकामध्ये स्थितानङ्गादिदेवता,
एतस्माद्द्व्यङ्गुलादूर्ध्वे स्वाधिष्ठानं षडस्त्रकम् ॥

बं मं मं यं रं लं

तव स्वाधिष्ठानेहुतवहमधिष्ठाय निरतं ।
तमीडे संवर्त जननि महतीं तां च समयाम् ॥
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते ।
दर्याद्रा या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ॥

* मणिपूरक चक्र और उसका स्वरूप *

'षडब्जाख्यानो'— सु० स्तुति

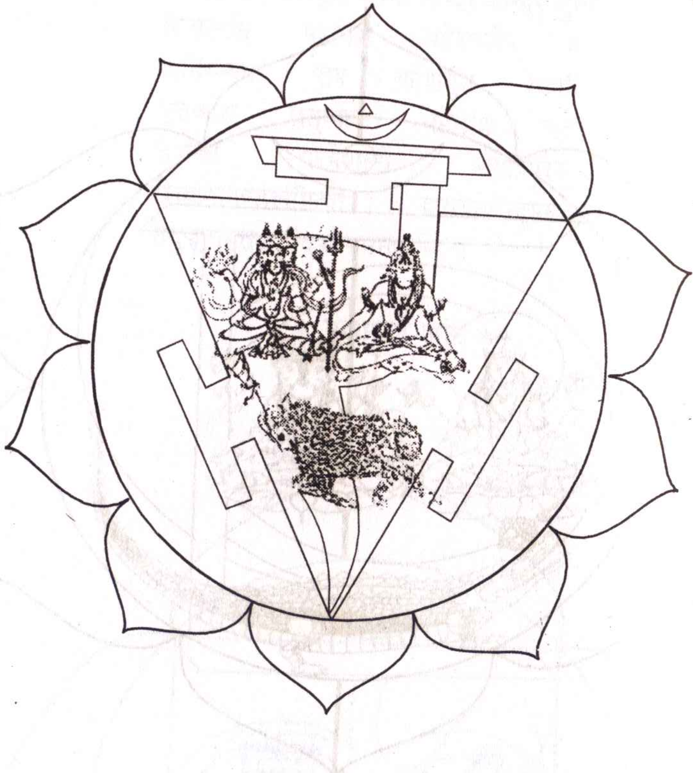

'नाभिस्त्र्यर्धाङ्गुलोपरि।
पत्पद्मं मणिपूरम्चदशपुत्रं सुशोभनम् ।
लाकिनीमध्यंग तच्च डामयोदिभिरावृतम् ।

—स्वच्छन्दतन्त्र

तडित्वन्तंशक्त्यातिमिरपरिपन्थस्फुरमणाया
स्फुन्नानारत्नाकमणपरिणाद्धिन्द्रधनुषम् ।
तव श्याममेधं कमपि मणिपूरैक शरणाम्
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिाभुवनम् ।।

शङ्कराचार्य—सौन्दर्यलहरी

---

* अनाहत चक्र (संविच्चक्र) *

'षडब्जाख्यानो'— सु० स्तुति

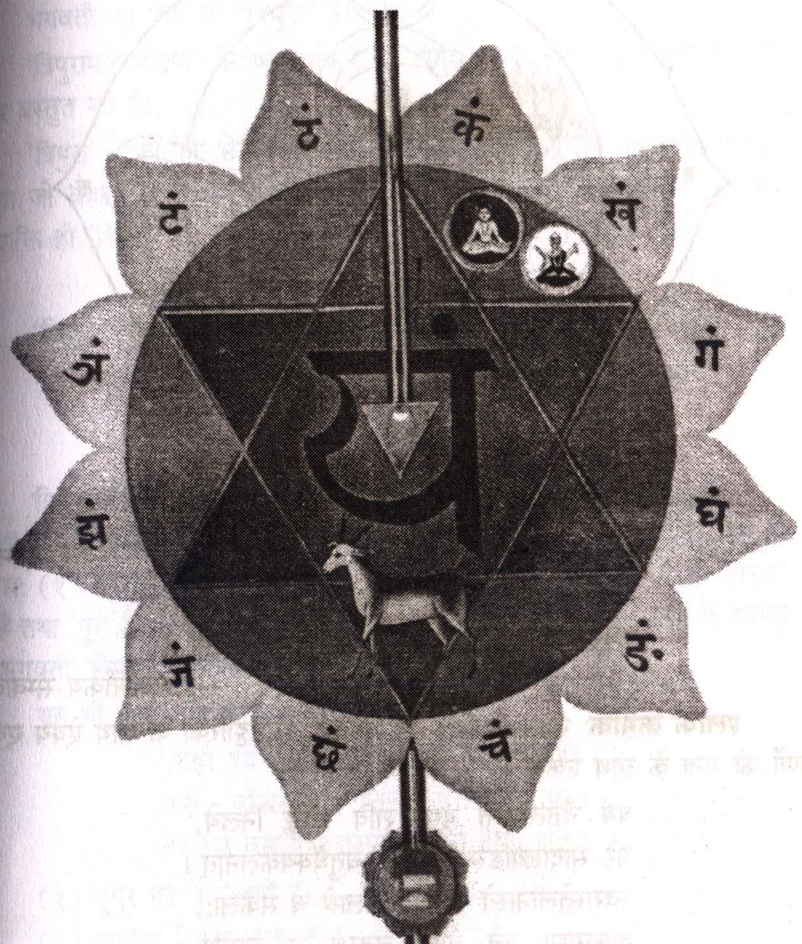

* आज्ञा चक्र *

'षडब्जाख्यानो'— सु० स्तुति

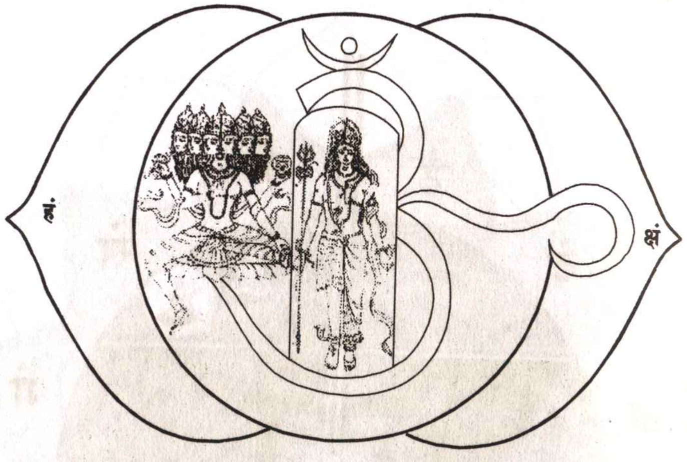

आज्ञाधारंद्विपत्राब्जं हक्षद्विदलसंयुतम् ।
हंसवतीक्षमापार्श्व, तयोर्मध्ये तु हाकिनी ॥

—स्वच्छन्दतन्त्र

आज्ञा चक्रं तदूर्ध्वे तु शुक्लं द्विदलमण्डितम् ।
कर्बूर 'ह-क्ष' लसितं मनोऽधिष्ठतरज्जितम् ॥

—ईश्वरकार्तिकेय सम्वाद

श्लोक क्रमांक २४—* विश्व की भगवती पराभट्टारिका के साथ ऐक्य एवं वर्णों की यन्त्र के साथ एकता *

त्रयं चैतत्स्वान्ते परम शवि पर्यङ्क निलये,
परे सादाख्यडिस्मन्निवसति चतुर्धैक्यकलनात् ।
स्वरास्तेलीनास्ते भगवति कलाश्रे च सकलाः,
ककाराद्या वृत्ते तदनु चतुरश्रे च यमुखाः ।

[हे परात्मपर महाशक्ति! यह सब कुछ जो तीन भेदों वाला है वह सब कुछ तुम्हारें अपने अन्तर्जगत में परमशिव रूपी पर्यङ्क पर समासीन 'सादाख्य कला' के रूप में **चार प्रकार के ऐक्य** के रूप में निवास करता है।

हे भगवती! जो स्वर हैं वे सभी **'षाडश दल पद्म'** में लीन हो जाते हैं। 'ककार' आदि सभी व्यञ्जन वर्ण **'वृत्तों'** में एवं 'य' आदि सभी (वर्ण) **'चतुष्कोण'** में लीन हो जाते हैं।]

सरोजिनी (व्याख्या)—'त्रयं'—परामहारिका, राजराजेश्वरी, भगवती अहात्रिपुर सुन्दरी का समस्त स्वरूप त्रिखण्डात्मक है। उनके **यन्त्र, मन्त्र** एवं पूजा आदि सभी त्रिखण्डात्मक हैं।

भगवती का नाम भी **'त्रिपुरा'** है।

'त्रिपुरामहिम्नस्तव' के व्याख्याकार ने 'त्रिपुरा' शब्द की नवीन व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की है।

'त्रिपुरा' = जो 'त्रि' से पूर्व पुरा काल में विद्यमान रही है। **'त्रि'** = ब्रह्मा, विष्णु, महेश। जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश से भी प्राचीनतर कलाओं विद्यमान रही हो वह महाशक्ति ही 'त्रिपुरा' है।

तृसृभ्यो मूर्तिम्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा इति।'

'त्रिपुरा' नाम पड़ने के अनेक कारण हैं—

त्रिमूर्ति सर्गाच्च पुराभवत्वात् ।
लये त्रिलोक्य अपि पूरकत्वात् ।
प्रायोम्बिका या त्रिपुरेति नाम ।

त्रिपुरार्णवकार की दृष्टि—'त्रिपुरार्णव' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि (१) **'इड़ा'** ('२) **'पिङ्गला'** एवं (३) **'सुषुम्णा'** नामक तीन प्रधान नाड़ियाँ है। इन्हें ही क्रमशः (१) **'गंगा'** (२) **'यमुना'** एवं (३) **'सरस्वती'** भी कहते हैं। ये ही 'त्रिपुरा' भी है तथा 'पुरं' हैं—(१) मन (२) बुद्धि एवं (२) चित्त। इनमें निवास करने के कारण भी भगवती 'त्रिपुंरा' कहलाती है।

यह भी कहा गया है कि—

'नाड़ी त्रयं तु त्रिपुरा', सुषुम्ना पिङ्गलत्विड़ा
मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्र्यमुदाहृतम् ।
तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा अता इति ।

(१) भूपुर की ३ रेखायें हैं।
(२) मण्डल त्रिकोणात्मक है।
(३) मन्त्र त्र्यक्षरात्मक है।
(४) ब्राह्म, रौद्री एवं वैष्णवी तीन शक्तियाँ हैं।
(५) इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्ति संख्या में तीन हैं।
(६) वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री—ये शक्तियाँ भी तीन हैं।
(७) पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के रूप में व्यक्त वाणियों के भी तीन प्रकार हैं।

कामकला विलासकार की दृष्टि—'कामकलाविलास' में रचनाकार (पुध्यानन्द) कहता है—

माता मानं अेयं **बिन्दुत्रयं,** भिन्नबीजरूपाणि **धामत्रय, पीठत्रय, शक्तित्रय,** भेदवा वितान्यपि च॥१३॥

तेषु क्रमेणालिङ्गत्रयं तद्वच्च मातृका त्रितयम्।
इत्थं त्रितयपुरीया तुतीयपीठा च भेदिनी विद्या॥१४॥

अर्थात् (१) मातृ, मान एवं मेय = ईश्वर, विद्या एवं महात्रिपुर सुन्दरी। **'धामत्रय'**—(१) वाग्मवकूट (२) कामराजकूट एवं (३) शक्तिकूट॥

'पीठत्रय' = (१) पूर्णगिरि पीठ (२) कामरूप पीठ, (३) जालन्धर पीठ।

'शक्तित्रय' —(१) इच्छा शक्ति (२) ज्ञान शक्ति (३) क्रिया शक्ति।

'लिङ्गत्रय' = (१) स्वयंभू लिङ्ग (२) बाण लिङ्ग (३) इतर लिङ्ग।

मातृकाचय—तीन मातृकायें।

भगवती त्रिपुरा 'त्रिपथगा' हैं—

'तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षिणी।'

विष्णुपुराण की दृष्टि—विष्णुपुराण में (तृतीय अंश में) तीन मार्ग इस प्रकार बताए गए हैं—

'**उत्तरं** यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च **दक्षिणाम्**।
पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद् बहि'॥

मार्ग तीन हैं तो **पुरियाँ** भी तीन हैं।

तीन पुरियों की प्राप्ति अभीष्ट होने से इस परदेवता को 'त्रिपुरा' कहा गया है। उस देवता की उपासना भी त्रिविध है—

'आत्मबुद्ध्या प्रतीकेन, मातृबुद्धात्महं धिया
कर्मणाऽपि भजन्मर्व्यः कैवल्यं पदमश्नुते।'

इस त्रिविध मार्ग से प्राप्य होने के कारण वह शक्ति **'त्रिपुरा'** कही जाती है। इसी त्रिविधोपासना के कारण साधक त्रैपुर प्राप्त करता है। तीन मार्ग ही 'त्रिपुरा' है।

'कालिकापुराण' में प्रतिपादित दृष्टि—'कालिका पुराण' में कहा गया है कि 'त्रिपुरा' नामकरण का कारण यह है कि—

त्रिकोणमण्डलं चास्या = भूपुरश्च **त्रिरेवकम्**।
मन्त्रोऽपि **त्र्यक्षरः** प्रोक्तस्तया **रूपत्रयं** पुनः॥
त्रिविधा कुण्डली शक्ति स्त्रिदेवा नाञ्च सृष्टये
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु **त्रिपुरा** मता।

---

(१) त्रिकोणामण्डल (२) त्रिरेवात्मक भूपुर (३) त्र्यक्षर मन्त्र (४) रूपत्रय (५) त्रिविधा कुण्डली शक्ति (६) त्रिदेवों की प्रसवित्री होने के कारण परात्मपर शक्ति 'राजराजेश्वरी' 'त्रिपुरा' कही जाती हैं।[1]

बिन्दु चक्र एक है फिर भी त्रिविधात्मक है।

[१] शान्तात्व के अवच्छेद से—

(क) इच्छा शक्ति (ख) ज्ञान शक्ति (ग) क्रिया शक्ति (तीन. भेद)

[२] अम्बिकात्व के अवच्छेद से—

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु एवं (ग) रुद्र ३ की समष्टि
(क) वामा (ख) ज्येष्ठा एवं (ग) रौद्री

[३] परा तत्त्व के अवच्छेद से—

(क) पश्यन्ती वाक् (ख) मध्यमा वाक् एवं (ग) वैखरी वाक् वाणीत्रय की समष्टि॥

ये ९ देवता ही ९ योनि चक्रों में परिणत हुए हैं।

(क) २ शक्ति त्रिकोण (ख) १ बह्वित्रिकोण : ३ त्रिकोण

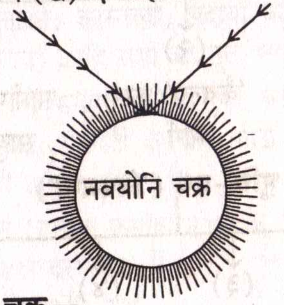

भूगृहात्मक नवम चक्र—

तिस्रश्च रेखा : सदनानि भूमे,
स्त्रविष्टपा स्त्रिगुणास्त्रिप्रकाशाः।
रतत्पुरं पूरकं पूरकाणा
मत्र प्रथेते, मदनो मदन्या।[2]

त्रिपुरा का धाम भी **'त्रैपुर'** कहलाता है। जो (१) परदेवता की उपासना विधि जानकर उपासना करते हैं (२) अपने शरीर को श्रीचक्र से अभिन्न मानकर पीयूषीकृत परिस्रुत द्रव से तृप्त करते हुए ऐन्द्रिय विषयों को निर्विकल्प रूप से भोग करते हैं वे महदाकाश पृष्ठ पर स्थित त्रिपुरा-धाम—**'त्रैपुर धाम'** में निवास करते हैं—

---

१. भास्कर राय : त्रिपुरा महोपनिषद् भाष्य।

२. त्रिपुरामहोपनिषद (५)

इमां विज्ञाय सुधया मदन्ति, परिस्नुता तर्पयन्तः स्वपीष्म्।
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति' **परन्धाम त्रैपुरं चाविशन्ति** ॥[1]

'त्रिपुरामहोपनिषद' में व्यक्त दृष्टि—विषय में 'त्रिपुरामहोपनिषद' में कहा गया है—

'तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी'
अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा।
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी।
महत्तरा महिमा देवतानाम् ॥१॥

आचार्य भास्कर राय की दृष्टि—आचार्य भास्कर राय ने उपर्युक्त ऋचा की इस प्रकार व्याख्या की है।

(१) **त्रिपुरा**—तीन पुरों के अधीश्वरी है अतः 'त्रिपुरा' कहलाती है। (तिस्रःपुरः')।

(२) **'त्रिपथा'**—त्रिपुरा 'त्रिपथा' है।

'त्रिपथा' (भास्कर राय)

(१) सालोक्य का मार्क सारांश

(२) 'कैवल्य' का मार्ग

(३) सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य का मार्ग।

भुक्ति-पथ ('त्रिपथगा')

(१) सालोक्य का एक मार्ग आश्रमोक्त कर्मों का ऊर्ध्व रेता रहते हुए अनुष्ठान

(२) सामीप्य (३) सारूप्य (४) सायुज्य
(इन तीनों का एक मार्ग)
(१) प्रतीकोपासना का मार्ग
(२) स्वाभिमान से की गई उपासना का मार्ग
अहंग्रहोपासना का मार्ग

(५) कैवल्य का एक मार्ग ब्रह्मज्ञान एवं निगुणोपासना

मार्गत्रय

बह्मा, विष्णु एवं रुद्र—तीन देवों की महिमा का **अधिष्ठान** = 'त्रिपुरा' (महत्तरा महिमा देवतानाम्।)

---

१. त्रिपुरामहोपनिषद (७)

वर्णों का समष्टित्रय

(क) 'अकथा'—'अ' = अकारादि १६ 'अः'।
(ख) 'अकथा' = 'क' =ककारादि १६ 'क'
(ग) 'अकथा' = 'थ' = थ से स १६ (थ)
'अकथा'

(ह, क्ष, त्र, ज्ञ = क्यों छोड़े गए? 'ह' विमर्श (शक्ति) ही है। क्ष, त्र, ज्ञ संयुक्ताक्षर हैं अतः मूल वर्ण नहीं हैं।)

'सदारव्य तत्त्व' = मन्त्र का अन्तिम कूट। १६हवाँ अक्षर या १६हवीं कला (चन्द्रकला)।

चार प्रकार का ऐक्य

(१) मन्त्र एवं देवता का ऐक्य

(२) यन्त्र एवं देवता का ऐक्य

(३) षट्पद्म एवं देवता का ऐक्य

(४) कुण्डलिनी शक्ति एवं देवता का ऐक्य।

विश्व की समस्त सत्ताओं, अस्तित्वों, पदार्थों की एवं विश्व की उत्पत्ति एवं उसके विनाश (सृष्टि एवं प्रलय) आदि सभी की मूल भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ही हैं।

'नित्याषोडशिकार्णव' में भगवती को मातृका रूपा, वर्णामालास्वरूपणी एवं अक्षरस्वरूपा कहा गया है अतः भगवती का वर्ण माला के सभी अक्षरों से भी ऐक्य है। मातृकायें भगवती का ही अपना स्वरूप है।

उपर्युक्त श्लोकानुसार (श्लोक क्रमांक २४) के अनुसार—

(क) १६ स्वर 'षोडश दल पद्म' में,
(ख) सारे व्यञ्जन वृत्तत्रय में, एवं
(ग) य वर्ग के अक्षर चतुष्कोण में आ जाते हैं।

शारदातिलककार की दृष्टि—शारदा तिलक में कहा गया है भगवती कुण्डलिनी **'शब्दब्रह्ममयी'** है। वह 'वर्णमालिका' है। वह 'पञ्चाशद्वराभिलिका' है—**'सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्द ब्रह्ममयी विभुः।'**

उसी पराशक्ति से—'शक्ति, 'ध्वनि, 'नाद' निरोधिका 'अर्द्धेन्दुं' 'बिन्दु', 'पश्यन्ती', 'मध्यमा', वैखरी, 'इच्छा', 'ज्ञान', 'क्रिया', 'गुणत्रय', वर्णमाला' ५० वर्ण्या आदि सभी उत्पन्न हुए हैं।—

'शक्ति ततो ध्वनिस्मरमान्नाद स्मर मन्निरोधिका।
ततोऽर्द्धेन्दु स्मृतो बिन्दुः स्मरतादासीत परा ततः।
पश्यन्ती मध्यकावाचि वैखरी शब्द जन्मभूः
इच्छा, ज्ञान क्रियात्माऽसौ तेजोरूपा गुणाम्बिका ॥'

क्रमेणानिन सृजति कुण्डलिनी वर्णा मालिकाम् ।
अकारादि सकारान्तां द्विचत्वारिं शदात्मिकाम् ।
पंचाशद्वार गुणितां पश्चाट शदवर्णमालिकाम् ।
सूतेऽतद्वर्णताऽभिता कला रुद्रादिकाम् क्रमात् ॥

—शारदा तिलक (पटल १)

श्लोक क्रमांक २५ :

* वर्णों की यन्त्र के साथ एवं तिथियों एवं नित्याओं की 'श्रीविद्या' के साथ एकता *

हलोबिन्दुर्वर्गाष्टकभिदलं शांभववपु ।
श्चतुश्चक्रं शक्रस्थितमनुभयं शक्तिशिवयोः ।
निशाद्या दर्शाद्याः श्रुतिनिगदिताः पञ्चदशधा ।
भवेयुर्नित्यास्तास्तव जननि मंत्राक्षर गणः ॥२५॥

['ह' और 'ल' वर्णद्वय **बिन्दुस्थान** हैं। वर्गाष्टक **'अष्टदलपद्म'** है। भगवान शिव के चार चक्र (शिवचक्र) तुम्माहरा शामभव शरीर है। (शिव के चार चक्र भगवती शक्ति के ही शिवस्वरूप के चार चक्र हैं क्योंकि शिव का शरीर ही शक्ति का शरीर है।[१]

तुम्हारी स्थिति शिव एवं शक्ति दोनों से श्रेष्ठतर है। हे जननी! वेदों में वर्णित पन्द्रह प्रकार की **रात्रियाँ** तथा दर्श आदि **तिथियाँ** तुम्हारी **नित्यायें** हैं जो कि तुम्हारे (पञ्चदशाक्षरी/पञ्चदशी) मंत्र के अक्षर-समूह हैं॥२५॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—(१) चूँकि 'शिव' और 'शक्ति' दोनों 'चन्द्रचन्द्रिकावत्' अभिन्न हैं अतः शक्ति का शरीर शक्तिमान का ही शरीर है या शक्तिमान का शरीर शक्ति का ही शरीर है। शंकराचार्य (सौ.ल. ३४) कहते हैं—

'शरीरं त्वं शम्भोः ।'

'हे भगवति! शम्भोः आनन्दभैरवस्य शशिमिहिर वक्षोरुहयुगं शरीरं भवसि। हे भगवति! शशिमिहिर वक्षोरुहयुगं शरीरं शम्भोस्त्वमेव।'

—आचार्य लक्ष्मीधर-लक्ष्मीधरा (३४)

सारांश—(१) 'ह' ए 'ल' = 'बिन्दुस्थान'।
(२) अ, क, च, त, प, य, श, क्ष = 'अष्टदलपद्म'

* शक्रास्थितर, पाठान्तर

(१) 'शरीरं त्वंशम्भोः (श्लोक ३४)

* 'शक्रस्थितमनुभयं' = शक्र (ऐश्वर्यवान। श्रेष्ठ)

अन् + उभयं = दोनों में से एक भी नहीं। दोनों से पृथक।

(१) 'ह' आज्ञा चक्र का अक्षर है।

(२) 'ल' सहस्रार का अक्षर है।

(३) इन दोनों से 'बिन्दुस्थान' का निर्माण होता है।

(४) वर्ण माला की जो **अक्षर रूपी कलायें** हैं शंभु स्थान (सहस्रार) में लय हो जाता है।

(५) अक्षररूपिणी शक्ति अपने शाम्भव शरीर (सहस्रार) में लयीभूत हो जाती है। यह **'महानाद'** का स्थान है।

(६) 'ह' 'ल' अकथ त्रिकोण का भी वाचक हो सकता है। यह 'गुरु त्रिकोण' है जहाँ सबका लय हो जाता है।

(७) श्रुतियों के अनुसार १५ रात्रियाँ एवं १५ तिथियाँ दोनों ही भगवती की १५ नित्यायें हैं। ये १५ नित्यायें भगवती के 'पञ्चदशी' मन्त्र के १५ वर्ण हैं।

१५ नित्यायें तो १५ वर्णों के प्रतीक हैं। १६हवाँ वर्ण भगवती स्वयं ही हैं।

तिथि	**तथियों के नाम**	**सम्बद्ध नित्याओं का नाम**	**मन्त्र का अक्षर/ मंत्र का खण्ड**	
१	दर्शा	कामेश्वरी	क	पञ्चदशी मन्त्र का **'अग्निखण्ड'**
२	दृष्टा	भगमालिनी	ए	
३	दर्शता	नित्यक्लिन्ना	ई	
४	विश्वरूपा	भेरुण्डा	ल	
५	सुदर्शना	वह्निवासिनी	ह्रीं	
६	आप्यायमाना	महावज्रेश्वरी या विद्येश्वरी	ह	'पञ्चदशी' मंत्र का **'सौरखण्ड'**
७	आप्यायमाना (प्यायमाना)	शिवदूती या रौद्री	स	
८	आप्याया	त्वरिता	क	
९	सूनृता	कुलसुन्दरी	ह	
१०	इरा	नित्या	ल	
११	आपूर्यमाणा	नीलपताका	ह्रीं	पञ्चदशी मंत्र का **'चान्द्रखण्ड'**
१२	पूर्यमाणा	विजया	स	
१३	पूरयन्ती	सर्वमङ्गला	क	
१४	पूर्णा	ज्वालामालिनी	ल	
१५	पौर्णमासी	चित्रा, चिद्रूपा	ह्रीं	
१६	अमा	महात्रिपुरसुन्दी। 'श्री'	श्रीं	

(क) १५ नित्यायें ही १५ तथियाँ हैं।

(ख) ये १५ नित्यायें ही पञ्चदशी मंत्र के १५ वर्ण हैं।

(ग) १५ नित्याओं, १५ तथियाँ एवं मंत्र के १५ अक्षरों में

नित्याओं का पूजन—चूँकि प्रत्येक 'नित्या' दूसरे कणेवर में तिथि भी है अतः प्रत्येक नित्या का सम्बद्ध तिथि पर ही पूजन किया जाता है। उदाहरण

प्रथम नित्या का पूजन—प्रथमा तिथि को किया जाता है।

द्वितीय नित्य का पूजन—द्वितीया तिथि को किया जाता है।

(तृतीय नित्य का पूजन—तृतीया तिथि को किया जाता है।

'षोडश नित्या'—शुक्लप्रतिपमारभ्य पौर्णमास्यान्ततिथि रूपाः। एता एव **चन्द्रकलाभिधानाः। 'चन्द्रकला'** एवं प्रतिपदादितिथय इति सुप्रसिद्धम्। यथोक्तं ज्योतिश्शास्त्रे **प्रतिपन्नाम** विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला। द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्लकृष्णयोः।।

(१) अयमर्थः—चन्द्रस्य प्रथमायाः कलायाः प्रतिपदिति नामधेयम्। सैव कलात्मिका सूर्यमण्डलान्निर्गता। कृष्णापक्षे तु सूर्यमण्डलं प्रविष्टा। एवं शुक्लपक्षे सूर्यमण्डलान्निर्गता **द्वितीया कला द्वितीया तिथिः।** कृष्णापक्षे तु सूर्यमण्डं प्रविष्टा **द्वितीया कला द्वितीया तिथिरिति।** एवं सर्वत्र ऊपहनीयम्।

प्रश्न—'पौराभिसी' एवं 'अमावस्या' किसे कहते हैं?

(१) अतश्च पञ्चदश कलाव्यवधानं सूर्यचन्द्रयोर्यत्र सा **'पौर्णमासी'**।

(२) पञ्चदश्यां कलायां सूर्य चन्द्रयोरत्यन्तसंयोगः। सा **अमावस्येति ज्ञेयम्।**

(३) अतः **कौलमते** चन्द्रकलात्मिकानां षोडशानां नित्यानां प्रतिदिनं एकस्या एवानुष्ठानम्। सर्वासां **समयिमते।**

(४) षोडश्या : कलायायास्तु पञ्चदशस्वपि तिथिषु अनुष्ठान सिद्धम्।। **पञ्चदशानां नित्यानां** तत्रैव अन्तर्भावात्।

(५) प्रतिपदि **त्रिपुरसुन्दरी कला** ध्येया। आदि।

* तिथियाँ एवं चन्द्रकलायें *

(१) **प्रतिपदि त्रिपुरसुन्दरी कला** ध्येया।

(२) **द्वितीयायां** कामेश्वरी कला।

(३) **तृतीयां भगभालिनी कला**

(४) चतुर्थ्यां नित्यक्लिन्ना उपास्या।

(५) **पञ्चभ्यां मेरुण्डाख्या कला।**

(६) **षष्ठ्यां वह्निवासिनी** कला।

(७) सप्तम्यां महाविद्ये **(वज्रे)श्वरी कला**

(८) **अष्टभ्यां** रौद्रीकला

(९) नवभ्यां **त्वरिता कला।**

(१०) **दशम्यां कुलसुन्दरी कला**

(११) **एकादश्यां नीलपताकारख्या कला**

(१२) **द्वादश्यां विजयाख्याकला**

(१३) **त्रयोदश्यां** सर्वमङ्गलाख्या कला।

(१४) **चतुर्दश्यां ज्वालाख्या** कला।

(१५) **पञ्चदश्यां मालिन्यारख्या कला।**

(१६) सर्वासु तिथिषु **चिद्रूपाख्या** कला **'षोडशी'** उपास्या।

(१७) प्रतिपदि या त्रिपुरसुन्दरी कला सा चिद्रूपात्मिका न भवति, **चिद्रूपात्मिकायाः मूलविद्यायाः भिन्नत्वेन** अनुष्ठानात्।

(१८) मन्त्रभेदश्च—स मन्त्रः प्रतिपद्येव। अनुष्ठेयो न द्वितीयायामिति। त्रिपुरसुन्दरीनित्यायाः नामसाम्यमित्य वगन्तव्यम्।

(१९) एतासां षोडशनित्यानां चन्द्रकलात्मिकानां

* विशुद्धिचक्रं **षोडशारं स्थानम्।** तत्र प्रागादि क्रमेण **षोउश नित्याः तत्कोणेषु** परिवर्तन्ते। **तदधस्सिथतद्वादशरि संवित्कमले द्वादशसूर्यमण्डलानि** प्रादक्षिण्य क्रमेण परिवर्तन्ते। तेषां द्वादशानां सूर्याणां द्वादशभासेषु अधिकारः।[1]

* कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष तथा पूर्णमासी एवं अमावस्या *

'सनत्कुमार संहिता' में प्रतिपादित सनत्कुमार की दृष्टि—

(१) सूर्यचन्द्रयो : देवयान-पितृयानात्मकेऽपिङ्गलानाडीमार्गेण अहोरात्रयोः सञ्चरणम्।

(देवयान = इड़ा नाडी। **'पितृयान'** = पिङ्गला नाड़ी।

(२) **चन्द्रस्तु वामनाडीमार्गेण** संचरन् हिसप्ततिसहस्त्र नाडीमार्णं अमृतेन सिञ्चति।

(चन्द्रमा वामनाड़ी मार्ग में सञ्चरण करता हुआ शरीर की ७२००० नाड़ियों को अमृत से खींचता है।)

(३) **सूर्यस्त दक्षिण नाडी मार्गेण** सञ्चरन् तदुत्क्षिप्तान् अमृतविन्दून उपाहरति।

(सूर्य दक्षिण नाड़ी—'पिंगला नाड़ी' रूप मार्ग में सञ्चरन् करता हुआ उन अमृत बिन्दुओं का हरण कर लेता है।)[2]

(४) यदा चन्द्रसूर्ययो : उभयोः **'आधार चक्रे'** समावेशः तदा **अमावास्यातिथिरुत्पद्यते।**

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक ३२)

२. लक्ष्मीधरा (३२), 'सनत्कुमार संहिता,

(जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का मूलाधार चक्र में समावेश होता है तब **अमावस्या तिथि** की उत्पत्ति होती है।

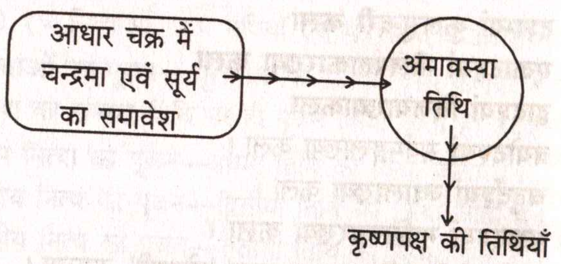

(कृष्णपक्ष की तिथियों का जन्म)

(५) अतएव **कुण्डलिनी शक्तिः आधार कुण्डे सूर्यकिरण सम्पर्कात्** विलीन चन्द्रमण्डलमध्यगलत्पीयूषपरिपूरिते स्वपिति।

(कुण्डलिनी सूर्य किरण के सम्पर्क से अमृत बिन्दुओं का हरण करके अमृत पीती हुई आधार कुण्ड में सोती रहती है।)

(६) **'कृष्णपक्ष'** है क्या? कुण्डलिनी शक्ति का सोते रहना (शक्ति का सोते रहना, शक्ति की निद्रा)। ही **कृष्णपक्ष'** है। 'स्वापावस्थैव **कृष्णपक्ष** इत्युच्यते।'

(७) जब योगी समाहि चित्त होकर चन्द्रमा को चन्द्र स्थान में एवं सूर्य का सूर्य स्थान में (वायु के द्वारा) निरुद्ध करने में सक्षम होता है तब **चन्द्रमा एवं सूर्य निरुद्ध** होकर **अमृत सेचन** एवं **अमृत-आहरण** में अशक्त हो जाते हैं।

(८) इस स्थिति में वायु से प्रेरित स्वाधिष्ठान वह्नि के कारण **अमृत कुण्ड** के शुष्कीभूत होने से निराहारा कुण्डलिनी सोते से जग उठती है और सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई ग्रंथित्रय का भेदन करती हुई सहस्त्रदल कमल में स्थित चन्द्रमण्डल को उसती है। उसके द्वारा डंसे जाने से चन्द्रमा से पीयूष की धारा आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती है।

(९) उन अमृत-धाराओं से समस्त देह आप्लावित हो उठता है।

(१०) उस अमृत-प्लावन के कारण आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित १५ चान्द्रकलायें **'नित्य' कलायें** हो जाती हैं।

(११) ये १५ चान्द्रकलायें आज्ञा चक्र के नीचे स्थित 'विशुद्धि चक्र' में आकर भ्रमण करती हैं।

(१२) 'सहस्त्रदल कमल' में स्थित चन्द्रमण्डल ही **'बैन्दव स्थान'** कहलाता है—

'सहस्त्रदलकमलान्तस्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम् ।'

---

(१३) इस **बैन्दवस्थान'** की चान्द्रकला 'चिन्मयी' 'आनन्दरूपा' है और उसे ही आत्मा कहा जाता है। वही **भगवती त्रिपुर सुन्दरी है—**

'सहस्त्रदल कमलान्तस्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानं। तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते। सैव त्रिपुरसुन्दरी।'

(१४) योगी लोग केवल शुक्लपक्ष में ही भगवती कुण्डलिनी को जागृत करते हैं न कि कृष्ण पक्ष में क्योंकि कुण्डलिनी कृष्णपक्ष में जागती ही नहीं अतः शुक्लपक्ष की समस्त तिथियाँ **'पौर्णामासी'** हैं—

'सर्वाः शुक्ल पक्षतिथयः **पौर्णभासीसंज्ञकाः।**'

(१५) कृष्ण पक्ष की समस्त तिथियों का 'अमावस्या' तिथि में अन्तर्भाव है। एक 'अमावस्या' तिथि ही **'कृष्णपक्ष'** (१५ तिथियाँ) भी कही जाती है।

(१६) **'आधार चक्र' 'अन्धतामिश्र'** लोक है।

(१७) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** सूर्य किरण के सम्पर्क के कारण **'मिश्र लोक'** है।

(१८) **मणिपूर चक्र** अग्नि स्थान में स्थित रहने पर भी तत्रस्थ जल में सूर्य किरणों का प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण यह चक्र भी **'मिश्रम लोक'** है।

(१९) **अनाहत चक्र** ज्योतिर्लोक है।

(२०) इस प्रकार अनाहत चक्र पर्यन्त सारे लोक **'योतिस्तमोमिश्रक लोक'** है।

(२१) 'विशुद्धि चक्र' **'चान्द्रलोक'** है।

(२२) **आज्ञा चक्रं** तु चन्द्र स्थानत्वात् **सुधालोकः।**

(२३) अनयोर्लोकयोः सूर्यकिरणसम्पर्कात् **ज्योत्स्नानास्ति।**

(२४) **सहस्त्रकमलं तु ज्योत्स्नामय एव लोकः।** तत्र स्थितचन्द्रो नित्यकलायुक्तः। चन्द्रबिम्बं **श्री चक्रम्** '

[क] श्री चक्र का स्वरूप क्या है?

'चन्द्र बिम्बं श्री चक्रम् '

[ख] * महात्रिपुरसुन्दरी क्या हैं ? *

'सहस्त्रदल कमलान्तस्थितचन्द्रमण्डलं **बैन्दव स्थानम्।** तत्कला चिन्मयी **आनन्दरूपा आत्मेति** गीयते। सैव **'त्रिपुर सुन्दरी'।**

(२५) कला सादाख्या।

*** पिण्डस्थ 'षट् चक्र' एवं 'श्री चक्र'***

(क) **'त्रिकोण'** ही **'आधार चक्र'** है।

(ख) **अष्टकोण** ही **'स्वाधिष्ठान चक्र' है।**

(ग) **दशार** ही **'मणिपूर चक्र'** है।

(घ) **द्वितीय दशार** ही **'अनाहतचक्र'** है।

(ङ) **चतुर्दशार** ही **विशुद्धि चक्र'** है।

(च) **शिवचन्द्र चतुष्टय** ही 'आज्ञाचक्र' है।

(छ) बिन्दुस्थान ही चतुरस या सहस्रकमल है।

(ज) आज्ञा चक्रगत चन्द्रमा में १५ कलायें हैं और साथ ही **'षोडशी कला'** का प्रतिफलन भी है

(झ) **श्री चक्र रूप चन्द्र बिम्ब** में केवल एक ही कला है। और वह कला है— **'परमा कला'।**

(ञ) सब मिलाकर १६ कलायें हैं—

'श्रीचक्ररूपचन्द्रमिबम्बे एकैव कला, सा 'परमा कला'। मिलित्वा **षोडश कलाः।** यथा—

षोडशेन्दोः कला भानों द्विद्विदिश दशानले ।
सा **पञ्चाशत्कला** ज्ञेया **मातृका चक्ररूपिणी** ॥

(२६) ये सभी ५० कलायें ५० वर्णों का ही अपना रूपान्तर हैं। 'पञ्चदशीं (पञ्चदशाक्षरातमक) मन्त्र में ५० वर्णों के स्वरूप वाली पञ्चाशत कलायें अन्तर्भूत हैं—

'एताः पञ्चाशत्कलाः पञ्चाशद्वर्शात्मिकाः पञ्चदशाक्षररीमन्त्रे अन्तर्भूताः।'

यथा—**आदि ककार** से **अन्तिम लकार** पर ध्यान दें—

'क' ए ई ल ह्रीं। ह स क ह ल ह्रीं। सकल' ह्रीं,

'आदिमेन ककारेण अन्तिमो लकारः प्रत्याहृतः तन्मध्यवर्तिनां वर्णानां ग्राहकः। अयमेव लकारः एकार पूर्ववर्तिना अकारेण प्रत्याहृत पञ्चाशद्वर्णै ग्राहकः।।'

'कलं प्रत्याहार—'क, ए, ई, ल, ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क **ल**'—इन समस्त वर्णों का सूचक है।

चारों **'अनुस्वार'** बिन्दु के लक्षक हैं उस बिन्दु से तदुपरि प्रतीय मान **'नाद'** संगृहीत् होता है और इस प्रकार एवं नादबिन्दु कलात्मकं **'श्रीचक्रं'** त्रिखण्डम् कथितम्।

'सादाख्या कला' कला है? **'सादाख्या कला'** श्री श्रीविद्याऽपरपर्याया नाद बिन्दुकलातीत।।'

'सादारख्या कला'—(१) यह श्री विद्या का ही अपर पर्याय है। (२) यह नाद बिन्दु कलातीत है।[1]

षोडश नित्यायें और उनका एकत्व—

(१) षोडश नित्यायें मंत्रगत (पञ्चदशी' मंत्र में प्रयुक्त) **षोडशवर्णों** से युक्त हैं।

---

१. लक्ष्मीधरा (३२हवाँ श्लोक)

(२) **षोडश वर्ण** ५० वर्ण से युक्त हैं।

(३) **५० वर्ण** सूर्यचन्द्राग्नि कला युक्त है।

(४) सूर्य-चन्द्र-अग्नि—ये तीनों मंत्र के खण्डत्रय हैं।

(क) **'षोडशनित्यानां** मन्त्रगतषोडशवर्णात्मकत्वं ।

(ख) **'षोडशवर्णानां** पञ्चादशद्वणात्मिकत्वं ।

(ग) **'पञ्चाशद्वर्णानां** सूर्यचन्द्राग्निकलात्मकत्वं ।

(घ) सूर्यचन्द्राग्नि त्रिखण्डत्वम् ।

—इति ऐक्य चतुष्टयम् अनुसन्धेयम् ।[1]

इसी प्रकार 'चक्र' एवं मन्त्र में भी ऐक्य है।

(क) ह्रींकारत्रये एवं श्री बीज शिवचक्रचतुष्टयात्मक 'त्रिकोण' में बिन्दुरूप से अन्तर्भूत है।

(ख) 'स क ल' इस वर्णात्रय के द्वारा कलात्मिका मातृका संगृहीत हैं।

(ग) अक्षमालात्मिका मातृका स्वसम्बद्ध चक्र में अन्तर्भूत हैं।

(घ) चार **अन्तस्थ वर्ण** चार **ऊष्म वर्ण**

इस प्रकार ८ वर्ण **अष्टकोणात्मक** हैं।

(ङ) 'क' से 'म' पर्यन्त समस्त व्यञ्जन वर्ण दशार युग्म में अन्तर्भूत हैं किन्तु—

'कादयो मावसानाः वर्गपञ्चमान् विहाय दशारयुग्मे अन्तर्भूताः ।'

(च) (वर्ग पञ्चमास्तु अनुस्वार रूपेणा बिन्दावन्तर्भूताः) प्रत्येक वर्ग के पञ्चम वर्ण (ङ। ञ। ण। न। म) 'बिन्दु' में अन्तर्भूत हैं।

(छ) 'चतुर्दशार' में १४ स्वर अन्तर्भूत हैं।

(ज) अनुस्वार एवं विसर्ग बिन्दु में अन्तर्भूत हैं।

इसी प्रकार **'श्रीचक्र' एवं 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र'** में ऐक्य स्थापित है।

* पूर्णोदयमत और ऐक्यानुसन्धान

पूर्णोदय मत के अनुसार—(१) 'श्री चक्र' त्रिखण्डात्मक है।

(२) इसके तीन खण्ड इस प्रकार हैं—

(क) 'सोम खण्ड' (ख) 'सूर्यखण्ड' (ग) 'अनल खण्ड'[2]

(३) इसी प्रकार 'मंत्र' के भी तीन खण्ड हैं।

---

१. लक्ष्मीधरा (३२)

२. 'सोमसूर्यानलात्मकतया चक्रस्य **त्रिखण्डत्वम्**' (लक्ष्मीधर)

(क)

*** श्रीचक्र का खण्ड-त्रयात्मक विभाजन ***

(१) 'सोमखण्ड'
(२) 'सूर्यखण्ड'
(३) 'अनलखण्ड'

(ख)

*** पञ्चदशाक्षरी विद्या का खण्डत्रयात्मक विभाजन ***

(१) सोमखण्ड
(२) सूर्यखण्ड
(३) अनलखण्ड[1]

[क] **'इन्दुखण्ड'**—चन्द्रमा की कलायें १६ हैं। और ये **'इन्दुखण्ड'** में अन्तर्भूत हैं। यह **'इन्दुखण्ड'** इन्द्वात्मक यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।

[ख] **'भानु खण्ड'**—इसी भानु की २४ कलायें भानु खण्ड में अन्तर्भूत हैं—और वह खण्ड **'यत्र खण्ड'** में अन्तर्भूत है।

[ग] **आग्नेय खण्ड**—इसी प्रकार १० कलायें आग्नेय खण्ड में अन्तर्भूत है। वह खण्ड यन्त्र में 'आग्नेयखण्ड में अन्तर्भूत है। इससे सिद्ध होता है कि चान्द्र कलाओं का **श्री यंत्र** एवं **पञ्चदशी** के साथ सामरस्य है।

(क) चान्द्र कलाओं को **'श्रीयंत्र'** एकता।
(ख) चान्द्र कलाओं का **'पञ्चदशी मंत्र'** से एकता।[2]

'सुभगोदय' में नित्याओं का स्वरूप

'सुभगोदय' में नित्याओं के स्वरूप का इस प्रकार निर्वचन किया गया है—

'दर्शाद्याः, पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
'षोडशी' तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।'

अर्थात् 'दर्शा' से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त तिथियाँ हैं। **'दर्शा'** अमावस्यानन्तरभाविनी **प्रतिपत्कला** की संज्ञा है। इसका नाम 'दर्शा' इसलिए है क्योंकि यह बहुत कम दृष्टिगोचर होती है—

'तस्या ईषदृर्शनात **दर्शा**'

वेदों में तिथियों के नाम

(१) दर्शा
(२) दृष्टा
(३) दर्शिता
(४) विश्वरूपा
(५) सुदर्शना

---

१. 'एवं मंत्रस्यापि **त्रिखण्डत्वम्** सुप्रसिद्धम्।
२. लक्ष्मीधर (२)

(६) आप्यायमाना
(७) आप्यायमाना
(८) आप्याया
(९) सूनृता
(१०) इरा
(११) आपूर्यमाण
(१२) आपूर्यमाणा
(१३) पूरयन्ती
(१४) पूर्णा
(१५) पौर्णमासी

दर्शा आदि पञ्चदश कलाओं के **'त्रिपुरसुन्दरी'** आदि १५ नित्यायें अधिदेवता हैं।

'षोडशी कला' का वैशिष्ट्य

* **'षोडशी कला'** चिद्रूपात्मिका कला है और यह सादाख्यतत्त्वरूपात्मिका है अतः इसका कोई दूसरा अधिदेवता नहीं है। यह स्वयमेव सभी की अधिदेवता है। इन **नित्याओं का अभिमानी** देवता स्वयं **कामदेव** हैं। वे एक हैं इनका **'अधिष्ठान देवता'** एकात्मिका भगवती **'कामेश्वरी'** हैं।

मूलविद्या (श्री विद्या) के अन्तर्गत—

(१) १५ वर्ण मूल मंत्र के अक्षर के रूप में स्थित हैं।
(२) दर्शा आदि **तिथियाँ** स्थित हैं।
(३) समस्त **नित्यायें** स्थित हैं।
(४) समस्त **चान्द्र कलायें** स्थित हैं।

वेदोक्त दर्शादिक कलाओं का विभाजन

(१) 'आग्नेय खण्ड'

(१) 'दर्शा'
(२) 'दृष्टा'
(३) 'दर्शिता'
(४) 'विश्वरूपा'
(५) 'सुदर्शना'

(२) 'सौर खण्ड'

(१) 'आप्यायमाना'
(२) 'आप्यायमाना'
(३) 'आप्याया'
(४) 'सूनृता'
(५) 'इरा'

(३) 'चान्द्र खण्ड'

(१) 'आपूर्यमाण'
(२) 'आपूर्यमाणा'
(३) 'पूरयन्ती'
(४) 'पूर्णा'
(५) 'पौर्णमासी'

कलाओं का स्वरूप

(क) * आग्नेय खण्ड *

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
‘दर्शाकला’	‘दृष्टाकला’	‘दर्शिताकला’	‘विश्वरूपाकला’	‘सुदर्शनाकला’
(शिवतत्त्वात्मिका)	(शक्तितत्त्वात्मिका)	(मायातत्त्वात्मिका)	(शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका)	(जलतत्त्वात्मिका)

(क) यहाँ (आग्नेयखण्ड में) ‘अग्नि’ **अधिदेवता है।**

(ख) **कामदेव** सर्वत्र **अधिदेवता** है।

(ग) **कामेश्वरी** सर्वत्र अधिष्ठात्री है।

(ख) * सौर खण्ड *

(१)	(२)	(३)
‘आप्यायमानाकला’	‘आप्यायमानाकला’	‘आप्यायाकला’
(तेजस्तत्त्वात्मिका)	(वायुतत्त्वात्मिका)	(मनस्तत्त्वात्मिका)

(४)	(५)	(६)
‘सूनृताकला’	‘इराकला’	‘आपूर्यमाणकला’
(पृथिवीतत्त्वात्मिका)	(आकाशतत्त्वात्मिका)	(विद्यातत्त्वात्मिका)

(क) इस ‘सौरखण्ड’ में **सूर्य** ही **देवता** हैं।

(ख) **कामदेव** सर्वत्र **अधिदेवता हैं।**

(ग) **कामेश्वरी** सर्वत्र **अधिष्ठात्री** हैं।

(घ) **आपूर्यमाणा कला’** की चन्द्रमण्डल में स्थिति रहने पर भी उसका **‘सौरखण्ड’** में अन्तर्भाव है। **‘इराकला’** एवं आपूर्यमाण कला में **ऐक्य** है।

(३) ‘चान्द्र खण्ड’

(१)	(२)	(३)	(४)
‘आपूर्यमाणाकला’	‘पूरयन्तीकला’	‘पूर्णाकला’	‘पौर्णमासीकला’
(महेश्वरतत्त्वात्मिका)	(परतत्त्वात्मिका)	(आत्मतत्त्वात्मिका)	(सदाशिवतत्त्वात्मिका)

(१) इसे ही **‘सौम खण्ड’** कहते हैं।

(२) इस खण्ड का **अधिदेवता ‘सोम’** है।

(३) कामदेव सर्वत्र **अधिदेवता** है।

(४) कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री देवता है।

(क) ‘नित्या कला’—यह सादाख्य तत्त्वात्मिका है।

(ख) ये सभी कलायें विशुद्धि चक्र (षोडशार) में प्रागादिक्रम से १६ दिशाओं में घूमती रहती हैं।

(ग) ‘आज्ञा चक्र’ के ऊर्ध्व में स्थित चन्द्रमण्डल की १६ कलायें जो कि ‘सुभगोदय’ में वर्णित हैं। इनमें से १५ कलायें ‘षोडशार’ में परिभ्रमण करती रहती हैं।

(घ) ‘सहस्रदल कमल’ में ‘षोडशी कला’ भी स्थिति है।—‘षोडश्याः कलायाः सहस्र दल कमले एव अवस्थानं।

उस **सहस्रदल कमल में स्थित षोडशी नामक नित्य कला** प्रभापटल ‘षोडशार’ में स्फुरित होता है।

शाङ्कर दृष्टि—भगवान आदि शङ्कराचार्य ने ‘सौन्दर्य लहरी’ के ३२हवें श्लोक में कहा है कि—

‘शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथरविश्शीत किरणः। इस वाक्य में **‘शिव’** का अर्थ क्या है?

(१) **‘शिव’** शब्द के द्वारा शिव तत्त्वात्मिका **दर्शाख्या** कला **त्रिपुर सुन्दरी** को अभिहित किया गया है।

(उसके द्वारा उसकी प्रकृति ‘ककार’ लक्षित किया गया है जो कि पञ्चदशी विद्या का आद्यक्षर है। अर्थात् ‘क ए ई ल ह्रीं’।) **[‘क’।]**

(२) **शक्ति** शब्द के द्वारा शक्ति तत्त्वात्मिका **दृष्टा** कला लक्षित है एव **‘एकार’** को भी लक्षित् किया गया है। ‘पञ्चदशीविद्या’ का द्वितीयाक्षर ‘ए’ है। = **[‘ए’]**

(३) **‘काम’**—यहाँ प्रयुक्त ‘काम’ शब्द **‘दर्शता कला’** को इङ्गित करता है तथा इसके द्वारा पञ्चदशी विद्या का तृतीयाक्षर **‘ईकार’** भी लक्षित है। = **[‘ई’]**

(४) **‘क्षिति’**—‘लकारः क्षिति तत्त्वः।’ ‘क्षिति’ का अर्थ है ‘लकार’। यही लकार ‘पंचदशी विद्या का चतुर्थाक्षर है—‘क ए ई ल’। = **[‘ल’]**

(५) **‘रविः’**—‘रवि’ सूर्य खण्डात्मकता की ओर संकेत करता है। ‘रवि’ हकार है। ‘रवि’ हकार की लक्षित करता हुआ ‘ह्रीं’ के ‘ह’ की ओर संकेतित करत है। ‘ह्रीं’ प्रथम कूट का अन्तिम अक्षर है = **[‘ह’]**

‘क ए ई ल ह्रीं’।

(६) **‘शीतकिरण’** (चन्द्र)। चन्द्रमा क्या लक्षित करता है? ‘सकारः चन्द्रबीजं’। ‘सकार’ चन्द्रमा का बीजाक्षर है अतः, चन्द्रमा का अर्थ है ‘सकार’। श्रीविद्या का छठवाँ शब्द ‘स’ है।

'ह **स** कहल ह्रीं, द्वितीयकूट। [**'स'**]

'स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामार हरयः ।'

—शङ्कराचार्य सौन्दर्य लहरी (३२)

(७) **'स्मर'** (कामदेव) शब्द कामराज प्रकृतिभूत ककार लक्षित करता है। **'स्मर'** = 'ककार'। **'स्मर'** = [**'क'**]

(८) **'हंसः'** (सूर्य) = हकाराधिपति आदित्य। [**'ह'**]

'शक्र' (इन्द्र) = 'लकारः इन्द्रबीजं' 'शक्र' का अर्थ है—इन्द्र का बीजाक्षर अर्थात् 'ल' (लकार)।

'शक्र' = लकार = [**'ल'**]।

(९) **'परा'** = 'परा' शब्द चन्द्रकला अर्थात् चान्द्र बीज **'सकार'** सङ्केतित करता है। **'परा'** स। [**'स'**]।

(१०) **'मार'** (कामदेव) = कामबीज। उसका प्रकृतिभूत तत्त्व है 'ककार'। **'मार'** = ककार।

'मार' = 'क' [**'क'**]।

(११) **'हरयः'** = 'हरि' = इन्द्र।

'हरि' = लकार संकेतित करता है। 'ल' पञ्चपदाक्षरी विद्या' का अन्तिम वर्ण है—

'स क ल ह्रीं'। अतः—

'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः ।'

श्रीविद्या की साधना का विधान—यहाँ ध्यातव्य बिन्दु यह भी है कि—

(१) पञ्चदशनित्यात्मक श्रीविद्या का अनुष्ठान पञ्चदश तिथियों में किया जाना उचित है। पृथक रूप से सम्पादित नित्यानुष्ठान तो प्रतिदिन पृथक रूप से नियत ही है। श्रुति कहती है कि तिथियों का प्रयोग भी मन्त्रों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। तिथियाँ १५ हैं। ये ही १५ कलायें भी हैं—'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु'

'सादाख्या कला'—'इयं वाव सरघा'(तै.ब्रा. ३/१०/१०)

(इयं चन्द्रकला सादाख्या सरघा सरघावत मधुस्यन्दिनी अमृतस्यन्दिनी)। **'सादाख्या कला'** = सरघा की भाँति मधुमती, आनन्ददायिनी है।

उस 'सरघा' का अग्नि स्थान ही बैन्दव त्रिकोण है। वह 'सारघ' (सरघोद्भूत मधु) है। यह **'सुधासिन्धु'** है।

'तस्या अग्निरेव सारघं मधु' (तै.ब्रा. ३/१०/१०)

'ता मधुकृतः।' (तै.ब्रा. ३/१०/१०)

वे रात्रियाँ मधु उत्पन्न करती हैं। रात्रि में ही मधुमक्खियाँ मधुसंग्रह किया करती हैं।

* रात्रि के समय ही **चन्द्रकलारूपा श्री विद्या** का अनुष्ठान विहित है—

'रात्रावेवं चन्द्र**कलारूपायाः श्रीविद्यायाः अनुष्ठानं** न च दिवसे इति उपदेशः।।[१]

कुण्डलिनी का प्रबोध भी रात्रि में ही करणीय है दिन में नहीं—अतएव कुण्डलिनी प्रबोधो रात्रावेव, न दिवा,।[२] 'अतएव दिवा योगिनः कुण्डलिनीं बोधयन्तीति।।[३]

कृष्णपक्ष की रात्रियों में **'कौल'** तो साधना किया करते हैं किन्तु 'समयी नहीं किया करते वे शुक्ल पक्ष की रात्रियों में ही साधना (उपासना) किया करते हैं।

'कृष्णापक्षरात्रीणां आधारचक्रे एव अमावास्यात्मकतया अवस्थानात्। समयिनां तत्र व्यवहारा भावात्।।[४]

साधनोपयोगी रात्रियाँ (शुक्लपक्ष की रात्रियाँ)

कृष्णापक्ष एवं शुक्लपक्ष की रात्रियों के नाम—वेदों में कृष्णपक्ष एवं शुक्ल पक्ष की रात्रियों का पृथक-पृथक् नाम बताए गए हैं ये निम्नांकित हैं—

* कृष्ण पक्ष की रात्रियाँ और उनका नाम *

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में इनका नाम इस प्रकार बताया गया है—

'सुता सुन्वती प्रसुता सूयमानाऽभिषूयमाणा ।
पीती प्रपा संपा तृप्तिस्तर्पयन्ती ।
कान्ता काम्या काम जाताऽऽयुष्मती काम दुधा ।'

—तैत्तिरीय ब्राह्मण (३/१०/१)

शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम

'तैत्तिरीय ब्राह्मण (३/१०/१) में कहा गया है—

'संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्। सङ्कल्पमानं प्राकल्पमानमुपकल्पमान मुपक्ल्प्तं क्लप्तम्। श्रेयोवसीय आयत् संभूतं भूतम्।'

—तैत्तिरीय ब्राह्मण

उपासना सम्बंधिनी विविध दृष्टियाँ

सनत्कुमारसंहिताकार की दृष्टि—'सनत्कुमार संहिता' में बाह्याचार, स्थूलोपासना एवं स्थूल पूजा का विरोध करते हुए कहा गया है कि—

---

१. लक्ष्मीधरा (३२)
२. लक्ष्मीधरा
३. लक्ष्मीधरा (३२)
४. लक्ष्मीधरा (३२)

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभः।
साक्षुद्रकलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्॥
बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।
आन्तराराधनपरा **वैदिका** ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा॥'

अन्य उपासकों की (समयाचार-प्रतिकूल) उपासनायें—

(१) **कौलोपासना—'कौलाः** आधार चक्रपूजारताः।'

(२) **क्षपणकोपासना—'क्षपणकाः** योषितत्रिकोणपूजारताः।'

(३) **कापालिकोपासना—'कापालिकाः'** दिगम्बराश्च उभयत्र निरताः।'

(४) **इतिहासकोपासना—'इतिहासा** भैरवयामल प्रामाण्य वादिनः।'

(५) **'वामकोपासना' —'वामकाः** तन्त्रवादिनः इत्येके वदन्ति। वामकेश्वर-तन्त्रप्रामाण्यवादिनः।'

(६) **'केवलचक्रोपासना'**—केवलचक्रपूजकाः ते वेदबाह्याः।

(७) **आन्तरोपासना—'आन्तरपूजारताः ब्रह्मवादिनः शुभागमतत्त्ववेदिनः। शुभागमतत्त्ववेदिनः। शुभागमपञ्चकम्** पूर्वमेवोक्तम्।'[1]

शुभागम पञ्चक (समयाचारियों के मान्य ग्रंथ)

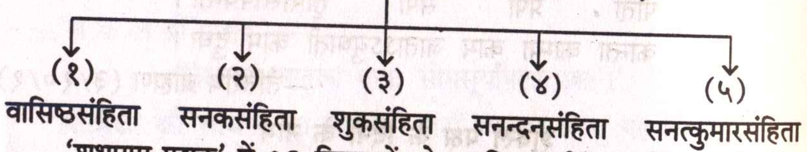
(१)
वासिष्ठसंहिता
(२)
सनकसंहिता
(३)
शुकसंहिता
(४)
सनन्दनसंहिता
(५)
सनत्कुमारसंहिता

'शुभागम पञ्चक' में १६ नित्याओं को मूलविद्या (श्रीविद्या) में अन्तर्भूत किया गया है। वे 'चक्रविद्या' में भी अन्तर्भूत हैं।

* नित्याओं का नाम *

'वसिष्ठ संहिता' में भगवान् (ईश्वर) देवी से जो कहते हैं वह (वसिष्ठ जी के अनुसार) इस प्रकार है—

शृणु देवी प्रवक्ष्यामि नित्याषोडशकं तव।
न कस्यचिन्मयाऽऽख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
तत्रादौ प्रथमा नित्या महात्रिपुर सुन्दरी।
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी॥
नित्यक्लिन्ना तथा चैव भेरुण्डा वह्निवासिनी।
महाविद्ये (वज्रे)श्वरी रौद्री त्वरिता कुल सुन्दरी।

---

[1] लक्ष्मीधरा (३२)

नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालिनिचिद्रूपाः एता नित्यास्तु षोडश।
प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तमर्चयेत्।
एकादिवृद्धया हान्या च दर्शान्तं देवि विग्रहम्॥

इन नित्याओं का (१) भगवती के साथ (२) चान्द्रकलाओं के साथ (३) श्री यन्त्र के साथ एवं (४) श्री विद्या के साथ ऐक्य है।

श्लोक क्रमांक २६ :

* 'षोडशीकला' का सर्वकारणत्व की दृष्टि से सर्वोच्च महत्त्व *

इमास्ताः षोडश्यास्तव च सरघायां शशिकला
स्वरूपायां लीना निवसति तव श्री शशि कला।
अयं प्रत्याहारः श्रुत इह कला व्यञ्जन गणः।
ककारेणाकारः स्वगणमशेषं कथयति॥२६॥

[हे भगवती शशिकला! ये समस्त कलायें तेरी **'षोडशी कला'** में जो सरघा (सहस्त्रार) में स्थित है लीन होकर निवास करती हैं।

ये समस्त एकत्र संगृहीत 'ककार' आदि सब व्यञ्जनगण एवं समस्त स्वर ही 'कला' कहलाते हैं और इन सबका तेरी **'षोडशी कला'** में लय होता है।]

सरोजिनी (व्याख्या)—चन्द्रमा की १६वीं कला ही **'षोडशी'** है। चूँकि पञ्चदशाक्षरी मंत्र का अन्तिम अक्षर गोपनीय है और उसका १६हवाँ अक्षर ही इस पञ्चदशी मंत्र को **'श्रीविद्या' 'षोडशी विद्या'** बनाता है तथा मंत्र का यह १६हवाँ अक्षर 'श्री' = लक्ष्मीबीज) स्वयं भगवती महात्रिपुर सुन्दरी हैं और वे इसी षोडशाक्षर के कारण 'श्री' भी कहलाती हैं अतः पञ्चदशाक्षरी मन्त्र को भी **'श्रीविद्या'** कहा जाता है।

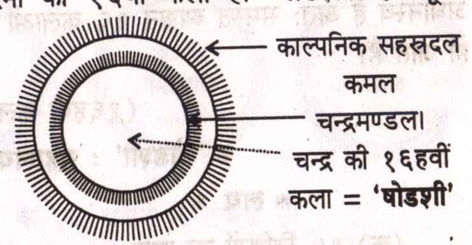
काल्पनिक सहस्त्रदल कमल
चन्द्रमण्डल।
चन्द्र की १६हवीं कला = 'षोडशी'

श्रीविद्या (पञ्चदशाक्षरी विद्या)

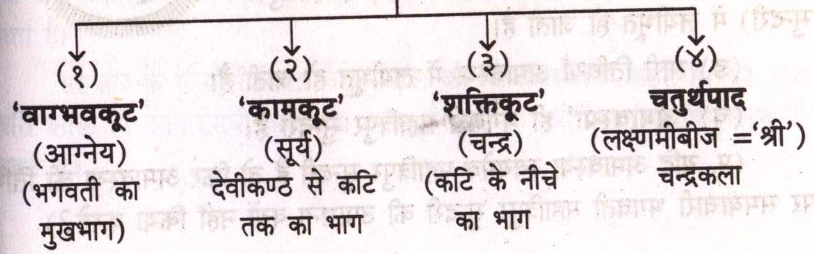
(१)
'वाग्भवकूट'
(आग्नेय)
(भगवती का मुखभाग)
(२)
'कामकूट'
(सूर्य)
देवीकण्ठ से कटि तक का भाग
(३)
'शक्तिकूट'
(चन्द्र)
(कटि के नीचे का भाग
(४)
चतुर्थपाद
(लक्ष्णमीबीज ='श्री')
चन्द्रकला

१६ अक्षरों का मन्त्र = **'षोडशीविद्या'** १६ अक्षर १६ नित्यायें हैं। लक्ष्मी बीज **'परकला'** है। वही यथार्थ नित्या है।

इसी लक्ष्मीबीज 'श्री' के कारण समस्त पञ्चदशी मन्त्र 'श्रीविद्या' कहलाता है। यह शुद्ध चितिस्वरूपा है और सहस्रार में स्थित चन्द्रमा की १६हवीं कला है और **'षोडशी'** कहलाती है। प्रत्येक कला १६हवीं कला का एक अंगमात्र है।

१६हवीं कला का आश्रय लेकर चन्द्रमा की १५ कलायें घटती और बढ़ती है। किन्तु षोडशीकला क्षय-वृद्धि रहित नित्य है।

अक्षरों की उत्पत्ति

(१) नाद से उत्पत्ति।

(२) परा वाक् से उत्पत्ति।

(३) षोडशी से उत्पत्ति।

(४) कुण्डलिनी से उत्पत्ति।

(५) सहस्रारस्थ चन्द्रमा के अमृत से

(६) सहस्रारस्थ चन्द्रमा के अमृत से 'महाबिन्दु' से (गौड़पाद)।

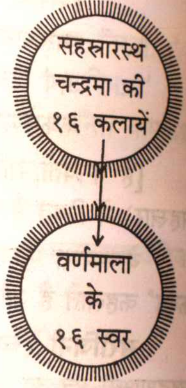
सहस्रारस्थ चन्द्रमा की १६ कलायें
वर्णमाला के १६ स्वर

१६ स्वर १६ कलायें हैं। चूँकि व्यञ्जन तो स्वरों के अधीनस्थ हैं अत: समस्त व्यञ्जन १६ कलाओं में लयीभूत हो जाते हैं।

(१६हवी कला)

*** 'षोडशी' : महालयाधिष्ठान ***

*** लय ***

(क) १५ तिथियों का **लय**

(ख) १५ नित्याओं का **लय**

(ग) पञ्चदशी विद्या के १५ अक्षरों का **लय**

(घ) समस्त नित्यायें **सोलहवीं नित्या** (महात्रिपुर सुन्दरी) में लयीभूत हो जाती हैं।

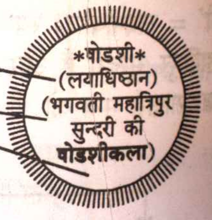
षोडशी
(लयाधिष्ठान)
(भगवती महात्रिपुर सुन्दरी की षोडशीकला)

(ङ) सारी तिथियाँ अमावस्या में लयीभूत हो जाती हैं।

(च) **'अमावस्या'** ही भगवती महात्रिपुर सुन्दरी हैं।

(प्र. यदि अमावस्या स्वयमेव महात्रिपुर सुन्दरी हैं तो फिर अमावस्या की तिथि पर समयाचारी भगवती महात्रिपुर सुन्दरी की उपासना क्यों नहीं किया करते?)

(छ) **पञ्चदशाक्षरी** विद्या के १५ वर्णा मंत्र के १६हवें अक्षर (षोडशी = श्रीं) में लयीभूत हो जाते हैं।

(ज) भगवती की १६हवीं कला षोडशी है। षोडशी भगवती का **स्वस्वरूप** भी हैं। १६हवाँ अक्षर ही **'श्री बीज'** है। यही 'लक्ष्मी बीज' भी कहलाता है।

१५ नित्यायें १५ तिथियाँ हैं और ये ही मन्त्र के १५ अक्षर हैं।

नित्या १५, **तिथि** १५, **मन्त्राक्षर** १५—तीनों में ऐक्य है।

'सहस्रार' में स्थित चन्द्रमा की १६हवीं कला

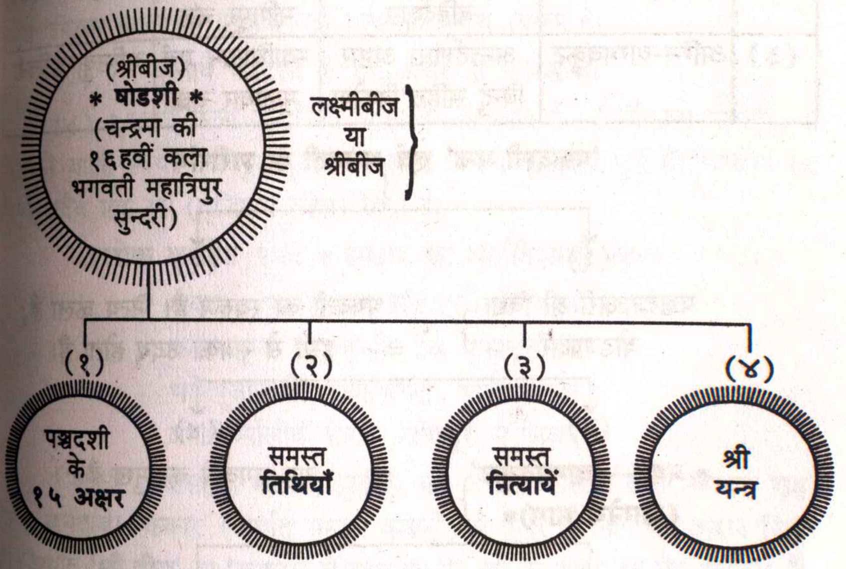
(श्रीबीज)
* षोडशी *
(चन्द्रमा की १६हवीं कला भगवती महात्रिपुर सुन्दरी)
लक्ष्मीबीज या श्रीबीज
(१)
(२)
(३)
(४)
पञ्चदशी के १५ अक्षर
समस्त तिथियाँ
समस्त नित्यायें
श्री यन्त्र

(१) १५ कलायें **'पञ्चदशी'** के १५ अक्षरों से सम्बद्ध हैं।

(२) १६हवीं कला 'शुद्ध चितिशक्ति' चिन्मात्र निर्विकल्प समाधि में विराजने वाली स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी हैं।

क्योंकि अन्य कलायें घटती एवं बढ़ती रहती हैं किन्तु चन्द्रमा का बिम्ब सदैव एक समान रहता है। प्रत्येक कला को १६हवीं कला का ही एक अंश या अङ्ग माना जाता है।

सहस्रार के मध्य में स्थित चन्द्रमण्डल को **'बैन्धवस्थान'** कहते हैं। यह शुद्ध चिति शक्ति ही आनन्दमयी कला का स्थान है। इसे ही 'श्री' या **'महात्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं।**

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का त्रिखण्डात्मक रूप

सं.	मंत्रभाग (१)	यंत्र का भाग के भाग (२)	षट्कमलों के भाग (३)	कुण्डलिनी के भाग (४)
(१)	सोम-शक्तिकूट	शिव के ४ चक्र	आज्ञा एवं विशुद्ध चक्र	सोमकुण्डलिनी
(२)	सूर्य-कामकूट	चतुर्दशार एवं बहिर्दशार	हृदय एवं मणिपूर चक्र	सूर्यकुण्डलिनी
(३)	अग्नि-वाग्भवकूट	अन्तर्दशार। अष्टार बिन्दु सहित त्रिकोण	स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र	अग्निकुण्डलिनी

'पञ्चदशी मन्त्र' एवं भगवती के शरीरांग

(१) पञ्चदशाक्षरी श्री विद्या षोडशाक्षर } = (२) भगवती का स्वरूप है। नित्य कला है, इसी से सबका उदय होता है।

(३) * प्रथम—**'वाग्भवकूट' (आग्नेय भाग)***} = (४) यह भगवती का मुख है।

(५) * द्वितीय—**'कामकला कूट' (सौरभाग)***} = (६) भगवती के कण्ठ से उनके कटि पर्यन्त का भाग

(७) * तृतीय—**'शक्तिकूट'*** (चन्द्रखण्ड) } = (८) (तृतीय शक्तिकूट)—भगवती की कटि के नीचे का भाग है। जो कि सृजन-शक्ति का रूप है।

(१) **तीन खण्डों वाला भगवती का मन्त्र**—'सरघा' में लय होता है।

(२) भगवती के अवशिष्ट भाग से—समस्त चन्द्र कलायें प्रकट।

(३) जहाँ समस्त चन्द्र कलायें लयीभूत हो जाती है—तू वही **अमावस्या** है।

---

* भगवती अमावस्या हैं *

(४) भगवती 'खण्डत्रय' एवं 'षट्चक्र' दोनों में निवास करती है। **प्रत्येक कला सोलहवीं कला** का अङ्ग है।

(५) भगवती 'सरघा' (मधु का स्थान = 'सहस्रार') में निवास करती है।

(६) नाद का लय **'सहस्रार'** में मंत्र का लय **'सहस्रार'** में होता है। वर्णों का लय **'नाद'** में, नाद का लय उसके कारण में होता हैं अर्थात् 'सहस्रार' में होता है। **'शशिकला'** अर्थात् चन्द्रकला चन्द्रमा की १६हवीं कला या **अमावस्या** है। सोलहवीं कला **'नित्या कला'** है क्योंकि यही चन्द्र का यथार्थ स्वरूप है।

(७) १५ कलायें पञ्चदशी के १५ अक्षरों से सम्बद्ध हैं।

(८) १६हवीं कला शुद्धचिति शक्ति है—चिन्मात्र है—निर्विकल्प समाधि में विराजने वाली स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी हैं। अन्य कलायें वृद्धिक्षय पूर्ण हैं। चन्द्रमा का बिम्ब सदैव एक रस (वृद्धिक्षय रहित) रहता है।

श्लोक क्रमांक २७: * क्षकार का सर्वातिशायी महत्त्व *

क्षकार : पञ्चाशत्कल इति हलो बैन्दवगृहं ।
ककारादूर्ध्वं स्याज्जननि तव नामाक्षरमिति ।
भवेत्पूजाकाले मणिखचित भूषाभिरभितः ।
प्रमाभिर्व्यालीढं भवति **मणिपूरं** सरसिजम् ॥

['क्षकार' पचासहवीं कला है इसलिए यह 'ह' 'ल' (शिव) रूपी **'बैन्दव गृह'** है। हे जगदम्बे! 'ककार' (अर्थात् समस्त व्यञ्जनों) से ऊपर तेरे नाम का अक्षर स्थित है। (अर्थात् **'श्री बीज'** या **'ककार'** से ऊपर यह तेरे नाम का अक्षर 'क्ष' तेरा स्वरूप है।)

(हे भगवती!) पूजा के काल में **'मणिपूरक चक्र'** में तेरा स्वरूप मणियों से जड़े आभूषणों की उद्दाम दीप्ति से चतुर्दिक आच्छादित (युक्त) है।]

सरोजिनी (व्याख्या)—'क्षकार' = क + ष = 'क्ष'। क्षकार क एवं ष दो शब्दों से निर्मित एक संयुक्ताक्षर भी है और साथ ही यह 'क' से लेकर 'ष' पर्यन्त सभी वर्णों को अन्तर्गर्भित करके स्थित (इन सभी वर्णों का वाचक) प्रत्याहार भी है।

'क्षकार' पञ्चाशत् कला है। यह वर्णों की माला का सुमेरु है।

'अक्षमालिकोपनिषद' में प्रतिपादित दृष्टि यह है कि 'क्ष' परात्पर तत्त्व होने के कारण परमोच्च है। क्षकार भगवती का स्वरूप है।

जिस प्रकार **चन्द्रमा की समस्त कलायें** सोलहवीं कला में लय हो जाती हैं उसी प्रकार अक्षर स्वरूपिणी महामाया **'क्षकार'** में लय हो जाती है।

गुरु त्रिकोण बैन्दवस्थान है क्योंकि यह सहस्रार में संस्थित है। 'ह', 'ल' एवं 'क्ष' वर्ण त्रिकोण में स्थित हैं अतएव ह ल बैन्दव गृह है।

मातृकाचक्रविवेककार की दृष्टि—स्वतन्त्रानन्दनाथ ने 'मातृका चक्र विवेक' के पञ्चम खण्ड के उन्नीसहवें सूत्र में कहा है कि—

(१) भगवती क्ष्माङ्गिनी हैं।

(२) **'क्षकार'** एवं 'मकार' त्रिपुरेश्वरी के बीच मन्त्र हैं।

(३) शिवात्मक निर्विकल्प पद का बोधक **'क्षकार'** है। अत: त्रिपुरेश्वरी के तुर्य पद का बीज भी **'क्षकार'** है।

(४) जीव का बोधक **मकार** है। **'मकार'** विकल्प पद का बीज है।

(५) त्रिपुरेश्वरी का स्वरूप सविकल्प एवं निर्विकल्प उभयात्मक है अतएव **'क्षकार'** एवं **'मकार'** उभय बीजों के योग से त्रिपुरेश्वरी **'क्ष्माङ्गिनी'** हैं।

(६) त्रिपुरेश्वरी 'क्षकार' एवं 'मकार' की संसृष्टि स्वरूपा हैं, अर्थात् 'क्षकार' 'मकार' सुप्ति आदि दशाचतुष्टय से अधिष्ठित है। क्षकार एवं 'मकार' की संसृष्टि ही त्रिपुरेश्वरी का अङ्गित्व (प्राणस्वरूपता) है।

भाष्यकार शिवानन्द इसी बात को अपने शब्दों में इस प्रकार निरूपित करते हैं—

(१) 'सा क्ष्मात्माङ्गिनी। 'क्षकार'—'मकार' संसृष्टि रूपा अङ्गिनी **'क्षकार मकाराभ्यामेव** दशाचतुष्टयमधिष्ठितमिति। तदुभय संसृष्टिरङ्गित्वं त्रिपुरेश्वर्या: प्राण स्वपतेति सम्यगुपपत्ति:।

(२) 'निर्विकल्पपदस्य तुरीयस्य माध्यमिकत्वेना धिष्ठातृतया **'क्षकारो'** बीजभूत:।

(३) 'विकल्पपदस्य सुषुप्त्यादि दशा त्रयात्मनो माध्यमिकत्वेन **'मकारो'** बीजभूत: तदुभय संसृष्टिरेव सर्वमूलत्वात्तुर्यातीत स्वभाव इति समुपदिशति।[1]

स्वतंत्रानन्दनाथ कहते हैं—

'क्ष्मात्माङ्गिनी जयति मध्यपदेऽति तुर्या।'[2]

'क्षकार' कूटस्थ है।

मातृका महामंत्र

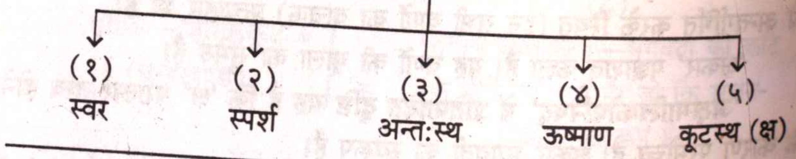

---

[1] शिवानन्द

[2] मातृका चक्रविवेक (५/१९)

'क्ष' को चक्रेश्वर भी कहते हैं। 'क' से 'स्' तक के समस्त वर्ण-चक्र 'क्ष' के रूप में व्यक्त होते हैं।

'मणिपूरक चक्र'

पूर्णानन्द की दृष्टि—श्री पूर्णानन्द ने षट् चक्रनिरूपणम' में 'मणिपूरक' चक्र का स्वरूप इस प्रकार बताया है—

(१) 'तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदललसिते पूर्णमेघप्रकाशे नीलाम्भोज प्रकाशैरूपहित जठरे अदिकान्तै: स चन्द्रै:। ध्याययेद् वैश्वानरस्याऽरुणभिहिरसमंमण्डलं तत् त्रिकोणं तद्बोह्ये स्वस्तिकारव्यैस्त्रिभिरभिलसितं तत्र वह्ने: स्वबीजम्।

—षट्चक्र निरूपणम् १९

(२) ध्यायेन मेघाधि रूढं नवतपननिभं वेदबाहूज्वलाङ्गं
तत्क्रोडेरुद्रमेर्तिर्निवसति सततं शुद्धसिन्दूर राग: ।
भस्मालिप्ताङ्गभूषाभरणसितवपुर्वृद्धरूपी त्रिनेयो,
लोकानामिष्टदाताऽभयलसितकर: सृष्टिसंहारकारी
अत्रास्ते लाकिनी मा सकल शुभकरी वेदबाहूज्वलाङ्गी
श्यामा पीताम्बराद्यैर्विविधविरचनालंकृता मत्तचित्ता ।

—षट्चक्रनिरूपणम्

शिवसंहिताकार की दृष्टि—'शिव संहिता' में 'मणिपूर चक्र' का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम् ।
दशारं डाकिकान्तार्णौ: शोभितं हेमवर्णकम् ।
रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायक: ।
तत्रस्था लाकिनी नाम्नी देवी परम धार्मिका ।

गोरक्षनाथ कहते हैं—

'तृतीयं नाभिपद्मं पञ्चावर्तं सर्पवत् कुण्डलाकारं तन्मध्ये कुण्डलिनी शक्ति बालार्क कोटिसदृशीं ध्यायेत् सा मध्यमा शक्ति: सर्वसिद्धिदा भवति। सिद्धसिद्धान्त पद्ति।

भगवती का मणिपूरक चक्र में प्राकट्य—

'मणिपूरक चक्र' का स्वरूप क्या है ?

* मणिपूरक चक्र और उसका स्वरूप *

'षडब्जाख्यानो'— सु० स्तुति

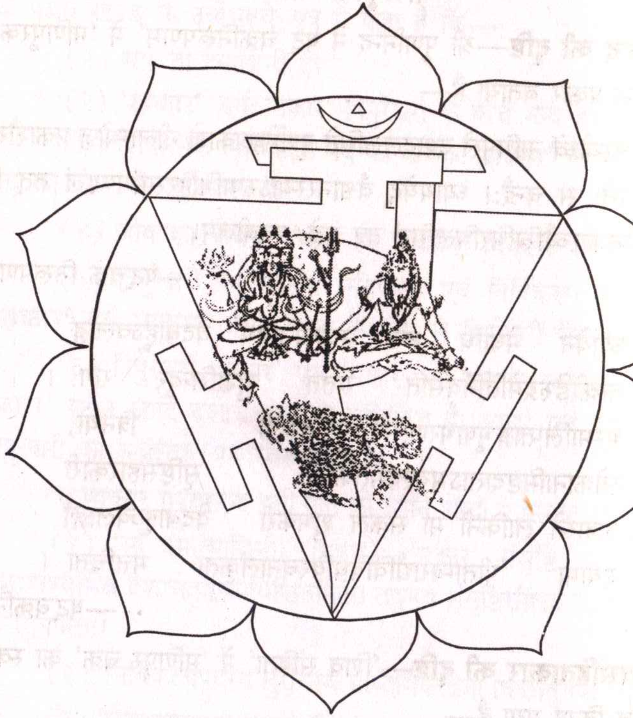

'नाभिस्त्र्यर्धाङ्गुलोपरि।
पत्पद्मं मणिपूरम्चदशपुत्रं सुशोभनम्।
लाकिनीमध्यंग तच्च डामयोदिभिरावृतम्।

—स्वच्छन्दतन्त्र

'तडित्वन्तंशक्त्यातिमिरपरिपन्थस्फुरमणाया
स्फुन्नानारत्नाकमणपरिणाद्धिन्द्रधनुषम् ।
तव श्याममेधं कमपि मणिपूरैक शरणाम्
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिाभुवनम्॥

शङ्कराचार्य—सौन्दर्यलहरी

श्लोक क्रमांक २८ : **'मणिपूरक चक्र' एवं भवगती का स्वरूप**

'वदन्त्येके वृद्धा मणिरिति जलं तेन निविडं।
परे तु त्वद्रूपं मणिधनुरि तीदं मययिनः।
अनाहत्या नादः प्रभवति सुषुम्णाध्वजननित।
स्तदा वायोस्तत्र प्रभव इदमाहुः समयिनः॥२८॥'

अर्थ—[एक दृष्टि के वृद्ध समयमतोपासकों का कथन है कि 'मणिपूर चक्र' में जल को ही 'मणि' कहा गया है जिससे कि वह परिपूरित है किन्तु दूसरे समयमतोपासक तुम्हारे स्वरूप को मणिधनु (इन्द्र धनुष) के स्वरूप वाला मानते हैं। 'अनाहत चक्र' में जो अनाहत नाद है वह सुषुम्णा से आविर्भूत वायु से उद्भूत होता है। यही समयाचार वाले उपासक कहते हैं॥२८॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—इस श्लोक में 'मणिपूर चक्र' पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इसे मणिपूर इसलिए कहा गया है क्योंकि मणिपूर में जल को ही **'मणि'** कहा गया है।

प्रश्न—भगवती का स्वरूप मणिस्वरूपी है या कि इन्द्रधनुषी?—यही विवेच्य विषय है। **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में एकत्रित **जलराशि** अनाहत चक्र में स्थित सूर्य के ताप से **वाष्प रूप** में परिणत हो जाती है और वही **मेघों के रूप में मणिपूर चक्र** में स्थित होती है।

मेघों में विद्युत रहती है और विद्युत तत्त्वतः तो अग्निस्वरूप ही है।

'अन्तरिक्षगतो वह्नि वैंद्युतः ॥'[१]

* इसी के परिणाम स्वरूप **'मणिपूर चक्र'** को (क) अग्नि एवं (ख) जल दोनों का स्थान माना जाता है।[२]

जब **मेघों पर सूर्य की रश्मियाँ** पड़ती हैं तब इन्द्रधनुष का रङ्गउदित हो उठता है। इसीलिए कहा गया है कि 'मणिपूर चक्र' में भगवती इन्द्रधनुष के रज में प्राकट होती हैं।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर 'सौन्दर्य लहरी' में कहते हैं—

'तटित्त्वन्तं शक्त्या तिमिरपनिन्थिस्फुरणाया'
स्फुरन्नानारत्नापरिणाद्धेन्द्र धनुषम्।
तब श्याम मेघं कमपि मणिपूरैकशरणम्।
निषेवे वर्षन्तं हरमिहित तप्तं त्रिभुवनम्॥४०॥

---

१. योग शिरवोपनिषद (५-३२)
२. **'मणिपूर'** = अग्नि एवं मेघ (जल)

अर्थात् हे भगवती! मैं तेरे मणिपूर चक्र की शरण में समागत श्याम वेघों के रूप धरने वाले 'जल' की मैं पूजा करता हूँ जिसमें कि तिमिर-विरोधिनी विद्युत की दीप्ति (कान्ति), अलंकारों में जटित नाना रत्नों की चमक के सदृश इन्द्र धनुष का रूप धारण किए हुए है और जो कि अग्नि एवं सूर्य के ताप से सन्तप्त त्रिभुवन पर वर्षा कर रहे हैं।

'मणिपूर चक्र' में मेघेश्वर एंव सौदामिनी विद्युत) के रूप में शिव एवं शक्ति का ध्यान करने का उपदेश दिया गया है।

(१) अग्नि का स्थान नीचे स्वाधिष्ठान चक्र में है। क्योंकि स्वाधिष्ठान चक्र में अग्निमण्डल है।

(२) सूर्य का स्थान ऊपर सूर्य मण्डल में है।

(३) ऊपर एवं नीचे दोनों स्थानों में ताप है अतः देह स्वरूप त्रिखण्डात्मक त्रिभुवन प्रतप्त होने की दशा में वाष्प रूप से 'मणिपूर चक्र' में मेघों कर रूप धारण करे लेता है और जलधरों में अग्नि विद्युत के रूप में चमकने लगती है। इन्हें ही 'मेघेश्वर' एवं सौदामिनी (विद्युत) कहते हैं। इन दोनों के योग से वर्षा की भाँति समस्त शरीर में रस वर्षा होने लगती है।

समस्या और समाधान—षट्चक्रों में जो 'मणिपूर वक्र' है वह जल का नहीं अग्नि तत्त्व केन्द्र है—

'तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदललसिते पूर्णमेघ प्रकोशे।
नीलाम्भोज प्रकाशै रूपहित जठरे अदिकान्तैः स चन्द्रैः ॥
ध्यायेद् वैश्वानरस्याऽरुणमिहिरसमं मण्डलं तत् त्रिकोणं।
तद् बाह्ये स्वस्तिकार व्यैस्त्रिभिरभिलिसितं तत्र वह्नेः स्वबीजं।'

—षट्चक्रनिरूपणम्

वह्निमण्डल वह्निबीज 'रँ' से मण्डित है। 'मणिपूर' नाम की सार्थकता क्या है ? कहा गया है कि—

मणिवदभित्रं तत् पद्मं मणिपूरं तथोच्यते। (गौतमीय)

यह वाह्नेय मण्डल है—

'दशपत्रं पयोजातं कर्णिकायां महेश्वरि।
वाह्नेयं मण्डलं रक्तं स्वस्तिकान्वितम्।'

—माया तन्त्र

इसे मणिपूर क्यों कहा जाता है?

आचार्य लक्ष्मीधर का कथन हैं कि—

'यत्र स्थित भगवती मणिभिः तत्प्रदेशं पूरयति, स देशो 'मणिपूरः'। समयिनां आन्तर पूजावसरे तृतीयकमले नानाविध **मणिगण**खचितभूषणार्पणं देव्या। कर्तव्यमिति रहस्यम्॥[1]

आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमाकाक्षमुपरि।'(९)

अर्थात् मूलाधार चक्र में पृथ्वी तत्त्व एवं जलतत्त्व को भी 'मणिपूर चक्र' में अग्नि तत्त्व को जिसकी स्थिति 'स्वाधिष्ठान चक्र' में है।

योगदर्शन की दृष्टि के अनुसार स्थिति इस प्रकार है—

(१) मूलाधार चक्र — पृथ्वी तत्त्व का चक्र
(२) स्वाधिष्ठान चक्र — जल तत्त्व का चक्र
(३) मणिपूर चक्र — अग्नि तत्त्व का चक्र
(४) अनाहत चक्र — वायु तत्त्व का चक्र
(५) विशुद्धाख्य चक्र — आकाश तत्त्व का चक्र
(६) आज्ञा चक्र — मनस तत्त्व का चक्र

किन्तु आचार्य शङ्कर ने 'महीं मूलाधारे ....मरुतमाकाशमुपरि।' (सौ.ल.) कहकर तत्व-व्यवस्था के सिद्धान्त को ही निराकृत कर दिया है।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर इस कथन के औचित्य को सिद्ध करने की दिशा में अनेक तर्क देते हुए कहते हैं कि—

(१) 'यद्यपि आधारचक्रस्योपरि स्वाधिष्ठानं वर्णनीयं, तथाऽपि आकाशादितत्त्वोत्पत्ति क्रममवलम्ब्य **व्युत्क्रमेण 'मणिपूरचक्र वर्णनं'** कृतमित्यनुसन्धेयम्॥[2]

(२) मूलाधारस्वाधिष्ठान मणिपूरानाहत विशुद्ध्याज्ञात्मकानि षट्चक्राणि। एतानि पृथिव्यग्नि जल पवनाकाशमनस्तत्त्वात्मकानि। तानि तत्त्वानि तेषु चक्रेषु तन्मात्रतयाऽवस्थितानि। तन्मात्रास्तु गन्धरूपरसस्पर्शाब्दात्मकाः। आज्ञाचक्रस्थितेन मनस्तत्त्वेन एकादशेन्द्रियगणः संगृहीतः। एव मेकविंशतितत्वानि प्रतिपादितानि।'[3]

आचार्य लक्ष्मीधर ने चक्रों में तत्त्वों की स्थिति योगक्रमानुसार न देकर विपरीत क्रम में कहा है कि—

'एतानि पृथिव्यग्नि जल पवनाकाश.....।'होना चाहिए था—'एतानि **पृथिवीजल अग्नि** पवनाकाश..........।'

---

[1] लक्ष्मीधरा (श्लोक ९)

[2] लक्ष्मीधरा (९)

[3] लक्ष्मीधरा (९)

लक्ष्मीधर पदयोजना में कहते हैं—

'हे भगवति! मूलाधारे महीं' कं **मणिपूरे** हुतवहमपि, **स्वाधिष्ठाने** हुतवहमेव।'

* आचार्य गौड़पाद की दृष्टि का ही अनुवर्तन समर्थन एवं प्रतिपादन आचार्य शङ्कर ने भी किया है।

(१) आचार्य शङ्कर ने **तत्त्वों का क्रम** तो वही रखा है क्योंकि उन्होंने कहा है—(१) 'महीं' (२) 'कमपि' (३) 'हुतवहं'।

(२) उन्होंने चक्रों के नाम में परिवर्तन अवश्य किया है। उन्होंने उपस्थ के चक्र का नाम **'मणिपूर'** एवं **'नाभिचक्र** का नाम **'स्वाधिष्ठान'** कहकर दिया है।

क्या आचार्य शङ्कर को उपस्थ वाले चक्र का नाम **'मणिपूर'** एवं नाभि के चक्र का नाम **'स्वाधिष्ठान'** अभित तथा? आचार्य शङ्कर की दृष्टि एवं उद्देश्य क्या था?

आचार्य शङ्कर के कथन का औचित्य

तत्त्वों के क्रमवेध पर दृष्टिपात करें।

(१) 'समय मत' के अनुसार उपस्थ से सम्बृद्ध चक्र का वेध करना समुचित नहीं है। कारण सुस्पष्ट है। **इस चक्र के वेध से काम-वासना में वृद्धि** होती है। कामवृद्धि पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए कौलाचारी 'वज्रोजी' आदि क्रियाओं का आश्रय लेते हैं किन्तु समयाचारी इस क्रिया को भी ग्राह्य नहीं मानते।

(२) आचार्य शङ्कर ने यहाँ पर **'कौलाचार'** के विपरीत समयमत के पक्ष में वेध-क्रम प्रस्तुत किया है।

(३) वेध-क्रम का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए—

(क) मूलाधार चक्र के वेध के द्वारा पृथ्वी तत्त्व के साथ वहीं **जलतत्त्व** का वेध कर देना चाहिए। 'कमपि' का अर्थ यही है। 'कमपि' = जल भी।

(ख) इसके बाद **'स्वाधिष्ठान चक्र'** का स्वतंत्र रूप में वेध किये जाने का त्याग करना चाहिए। फिर

(ग) नाभिपद्म वाले **'मणिपूर चक्र'** में अग्नि का वेध करना चाहिए।

(घ) चूँकि **अग्नि तत्त्व** की विद्यमानता **'योनिस्थान'** में है अत: उसे स्वाधिष्ठान चक्र में दिखाया गया है। (स्वाधिष्ठान चक्र में नीचे **अग्नि** एवं ऊपर **जल** दोनों की सन्धि का स्थान है क्योंकि 'योनि स्थान' 'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' के मध्य है। अग्नि के उद्दीप्त होने पर मूलाधारस्थ मही एवं स्वाधिष्ठानगत जल तत्त्व दोनों का वेध मूलाधार के वेध के साथ ही निष्पन्न हो जाएगा।

'हंसोपनिषद' में प्रतिपादित दृष्टि—'हंसोपनिषद में कहा गया है कि—गुदा द्वार को रोकर (१) 'मूलाधार चक्र' से वायु तत्त्व को उत्थापित करके **'स्वाधिष्ठान चक्र'** की तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए, फिर (२) **'मणिपूर चक्र'** में प्रवेक्ष करना चाहिए। (३) फिर 'अनाहत चक्र' का अतिक्रमण करके फिर (४) **'विशुद्ध चक्र'** में प्राणों का निरोध करना चाहिए, फिर (५) **'आज्ञा चक्र'** में प्रवेश करके उसका ध्यान करते हुए **'ब्रह्मरंघ्र'** का ध्यान करते हुए **'ब्रह्मरंध्र'** का ध्यान करते हुए 'मैं तीन मात्राओं से सम्पन्न ॐ हूँ।—इस प्रकार सदैव ध्यान करना चाहिए।

(क) मैं जागृतावस्था में 'वैश्वानर' — 'अकार' हूँ।

(ख) मैं स्वप्नावस्था में 'तैजस'—'उकार' हूँ।

(ग) मैं सुषुप्ति की अवस्था में—'प्राज्ञ' हूँ—'मकार हूँ'

—इस प्रकार निरन्तर ध्यानरत रहकर शुद्ध स्फटिक सदृश नाद का आधार चक्र से ब्रह्मरंध्र पर्यन्त ध्यान करना चाहिए।

'गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रि:प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं च गत्वाऽनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान् निरुध्याज्ञान मनुध्यायन ब्रह्मरंध्रं ध्यायन त्रिमात्रोऽहमित्येवं सर्वदा ध्यायेत्।'

'हंसोपनिषद' की इस दृष्टि से स्पष्ट है कि यह उपनिषद 'स्वाधिष्ठान चक्र' की तीन बार प्रदक्षिणा करके ऊर्ध्वोन्मुख उठने के साधन में **'स्वाधिष्ठान चक्र'** के **वेध का निषेध करता है।** उसकी मात्र तीन बार प्रदक्षिणा करने का विधान अवश्य है।

सारांश—(१) 'मूलबन्ध' लगाने से आधार चक्र में 'पृथ्वी' का वेध तो होता ही है साथ ही 'जल तत्त्व' का भी वेध होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि मूलबन्ध के अभ्यास से **'योनिस्थान'** चक्रद्वय का मध्यस्थान) **अग्निस्थान** है। **'योनिस्थान'** पर दबाव पड़ने पर अग्नि प्रदीप्त होती है और वह पृथ्वी तथा जल दोनों तत्त्वों का एक साथ वेध कर देती है।

(२) **'अग्नि तत्त्व का वेध'** मणिपूर चक्र (नाभिचक्र) में होता है। यहाँ वह विद्युत का रूप धारण कर लेती है। (ग्रीष्म ऋतु में जल का वेध होकर वर्षा ऋतु में बादलों में तड़ित प्रकट होता है।)

इसी प्रकार योनि स्थान में सुदीप्त एवं उद्दीप्त **अग्नि** नीचे मूलाधार चक्र में पृथ्वी तत्त्व को प्रतप्त करता है और **ऊर्ध्व प्रदेश** में वह **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में ज को प्रतप्त करता है।

(३) जल भाप (वाष्प) बनकर नाभिचक्र (मणिपूरक) में **मेघों की भाँति** छा जाती है और **वहीं अग्नि** का **वेध निष्पन्न** हो जाता है। यह अग्नि और वाष्प वेधापरान्त विद्युत् का रूप धारण कर लेते हैं। कारण यह है कि यहाँ अग्नि और वाष्प सम्मिलित होकर मेघरूप रहते हैं और मेघों में विद्युत प्रवाह होता ही है।

ग्रीष्म ऋतु में ऊष्मा या प्रचण्ड ताप से पृथ्वी प्रतप्त होने लगती है और उसका

जल सूखने लगता है। यह **'जलवेध'** है। वर्षा में वही जल मेघों के रूप में परिणत हो जाता है और उसके ताप से विद्युत प्रकट होती है—यही **'अग्नि-वेध'** है।

'कौलाचार' की विधि में ऊर्ध्व रेतसत्व की सिद्धि' **स्वाधिष्ठान चक्र के वेध'** द्वारा निष्पादित की जाती है। **समयाचार-विधान** में समयाचारी 'आज्ञाचक्र' में मन का वेध करके यह विधान निष्पादित किया जाता है।

'योगशिरवोपनिषद' में प्रतिपादित दृष्टि—

'योगशिरवोपनिषद' में कहा गया है कि—'अग्नि' अन्तरिक्ष में उठकर विद्युत का रूप धारण कर लेती है। आकश में स्थित अग्नि सूर्यरूप है। यह नाभिमण्डल (मणिपूर एवं अनाहत चक्र) में स्थित है। वह निम्नाभिमुखी होने पर विष-वर्षा करता है और ऊर्ध्वोन्मुख होने पर पीयूष-श्रवण करने लगता है।

तालू के मूल स्थान (आज्ञा चक्र) में चन्द्रमा का स्थान है और वह निम्नाभिमुखी है और अमृत की वर्षा किया करता है।

जहाँ तक **अनाहतचक्र'** है उसके १२ दल हैं और ये द्वादश दल द्वादशादित्य स्वरूप हैं। ऊर्ध्वमुखी सूर्य एवं अधोमुखी चन्द्रमा के मध्य 'विशुद्ध चक्र' के १६ दल चन्द्रमा की १६ कलाओं के सदृश चमकने लगते हैं। जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सूर्य मण्डल से ऊपर चढ़ती है तब सूर्य को ऊर्ध्व मुख कर देती है। फिर कुण्डलिनी शक्ति उससे ऊर्ध्व प्रदेश में जाकर सहस्त्र में स्थित **चन्द्रमण्डल का वेध** करती है। इसके परिणाम स्वरूप (सहस्त्रारोत्थित कुण्डलिनी के द्वारा) सहस्त्रास्थ चन्द्रमा अमृत की वर्षा करने लगता है और समस्त शरीर की समस्त नाड़ियाँ अमृत से परिप्लावित हो उठती है और योगी का शरीर दिव्यता से परिपूर्ण हो उठता है।

अन्नेय भूमिका एवं प्रत्यावृत्ति भूमिका—

वेध के समय शक्ति की गति—वेध के समय शक्ति की गति 'मूलाधार चक्र' से सहस्त्रार की ओर होती है। सहस्त्रार से नीचे उतरते हुए समय वह नाड़ियों को अमृत से खींचती है और मूलाधार की ओर लौट जाती है। **आरोहण की यह भूमिका 'उन्नेय भूमिका'** कहलाती है। अवरोह (अवरोहण) को **'अन्वय भूमिका'** कहते हैं।

प्रत्यावृत्ति या अवतरण भूमिका में कुण्डलिनी शक्ति ऊपर से नीचे की ओर उतरकर अपने गुहास्थान में प्रत्यावृत्त होती है।

'मणिपूरक चक्र' को भी लक्ष्मीधर ने तामिश्र लोक कहा है—**'मणिपूर चक्रं तामिश्रलोक इति प्रागुक्तः।'** 'सिद्धघुटिका' में कहा गया है कि

'मणिपूरैकवसतिः प्रावृषेण्यस्सदाशिवः ।
अम्बुदात्मतया भाति स्थिरसौदामिनी शिवा ।'

लक्ष्मीधराचार्य—अग्नि स्थान मणिपूर में जल तत्त्व की विद्यमानता का प्रतिपादन करते हुए लक्ष्मीधर कहते हैं कि—

'मणिपूर स्थाने जल तत्त्वं उत्पन्नमिति प्राक् प्रतिपादितम्। तत्प्रकार—सूर्यकिरणा एव अग्निसम्भिन्ना : मेघत्वमापन्नाः जलरूपेणेति मणिपूरस्य आधारस्वाधिष्ठानयोर्मध्ये निवेशः। **अनाहतोपरिस्थितसूर्यकिरणाः स्वाधिष्ठानाग्निना** संवलिताः सन्तः **मणिपूरं** प्रविश्य जलत्वमापन्नाः तेन जलेन **स्वाधिष्ठानाग्निना** दग्धं जगत आप्लवयन्तीति आगमरहस्यम्।'[1]

'अनाहत चक्रोपरिस्थिति सूर्यस्यापि ।'

'मणिपूरे उदकमुत्पन्नमिति।' 'ता आपः स्वाधिष्ठानाग्नेः उत्पादिकाः। उदकतत्त्वात्मकेमणिपूरे।।[2]

आचार्य लक्ष्मीधर 'मणिपूर चक्र' के महत्व को भी प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि—

(१) 'महावेध' के निष्पन्न होने पर भगवती 'मणिपूर' में प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देती हैं—

'एवं महावेधे जाते भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति। सा समाराध्या ।'

(२) 'अर्ध्यपाद्यादिभूषणप्रतिपादनपर्यन्तं पूजाकलापं मणिपूरे निर्वर्त्य अनाहत मन्दिरं भगवतीं नीत्वा धूपादिनैवेद्यहस्तप्रक्षालनान्तं कर्मकलापं तत्रैव समाप्य विशुद्धौ भगवती सिंहासनासीनां सरवीभिः सल्लापान् सम्भाषमाणां शुद्धस्फटिकसदृशैः मणिभिःपूजयेत्। शुद्धस्फटिकसदृशमणये न मौक्तिकादयः, किन्तु तदीयषोडशदलगतषोडश चन्द्रकला इति रहस्यम्।।

(३) अस्माकं तु षडिधैक्यानुसन्धानानन्तरं मूलाधार द्विकं भित्वा **मणिपूरे प्रसन्ना** भगवती दशभुजा धनुर्बाणपाशाङ्कुशवरदाभयपुस्ककाक्षमालावीणाहस्ता। मन्मतैकदेशिनां पाशाङ्कुशपुण्ड्रेक्षुचापपुष्पवाण जपमलिकाशुभाभयकरा करद्वयवक्षस्स्थलस्थापित वीणा। उभयमस्माकं सम्मतमेवः,

'भवानि श्री हस्तैर्वहसि कणिपाशं सृणिमधो,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रकशुकवरम् ।
अथ द्वाभ्यां मुद्राभयवरदानैकरसिके,
क्वाणद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां चविभृषे ।।'

समयिनां प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना आस्ते भवगती। समयिनां सहस्त्रकमलपर्यन्तं आन्तर पूजा कर्तव्या। सहस्त्रकमले तुतिरकरिणीप्रसारणापर्यन्तं दर्शनमेव समाराधनम्।।

---

[1] लक्ष्मीधरा

[2] लक्ष्मीधरा (४०)

सुभगोदय में कहा भी गया है—

सूर्यमण्डल मध्यस्थां देवी त्रिपुरसुन्दरीम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः ।
त्रैलोक्यं मोहयेदाशुवरनारीगणैर्युतम् ॥

अत्र **समयिनां** बाह्यपूजानिषेधात् सूर्यमण्डलान्तर्गत्वेन पूजनं निषिद्धमित्याहुः॥[१]

श्लोक क्रमांक २९ : **संवित्कमल में संवित पूजा** एवं 'विशुद्ध चक्र' में आकश तत्त्व की स्थिति

तदेतत्ते संवित्कमलमिति संज्ञान्तरमुमे,
भवेत्संवित्पूजा भवति कमलेऽस्मिन्सयिनाम् ।
विशुद्ध्याख्ये चक्रे विपदुदितमाहुः समयिनः,
सदापूर्वो देवः शिव इति हिमानी समतनुः ॥२९॥

(हे पार्वती! यह जो तेरा संवित् (हृदय) पद्म है—

यह इसकी अपर संज्ञा है। समयाचारियों की इस कमल में संवित की पूजा होती है। विशुद्धि चक्र में आकाश का उदय होता है—ऐसा ही समयाचारी कहा करते हैं यहाँ हिमसदृशशरीर वाले 'सदाशिव' रहते हैं।॥२९॥

सरोजिनी (व्याख्या)—'अनाहत चक्र' ही 'संवित् पद्म' भी कहा जाता है। इसे 'संवित् कमल' इसलिए कहते हैं क्योंकि समयाचारी यहाँ संवित् की पूजा करते हैं। हृदयपद्म में ही मानसिक पूजा होती है एवं इसी में ही ध्यान भी किया जाता है। यहाँ (हृत्पद्म में) भगवती की चिति के रूप में उपासना या पूजा निष्पादित की जाती है। यहाँ भगवती कुण्डलिनी के आरोहण करने पर साधक उनका साक्षात्कार करता है। **नाद की प्रथमानुभूति** भी अनाहत चक्र (संवित् पद्म) में होती है।

मेघों में अग्नि तड़ित (बिजली) के स्वरूप में स्थित रहता है। चूँकि तड़ित की दीप्ति के साथ ही मेघों का गर्जन भी होता है (विद्युत नाद या शब्द में बदल जात है। नाद की प्रथमाभिव्यक्ति हृदय (संवित् पद्म) में ही होती है।

आचार्य शङ्कर ने भी 'संवित् कमल' के नाम से 'अनाहत चक्र' का वर्णन किया है। वे कहते हैं—

'समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं,
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानस चरम् ।
यदालापादष्टादशगुणित विद्यापरिणतिः,
यदादत्ते दोषाद्गुणमखिन्नमदभ्यः पय इव ।'

—सौदर्य लहरी (३८)

---

१. लक्ष्मीधरा श्लोक ४१

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'संवित्कमलं अनाहत चक्रनामकमिति पूर्वमेवोक्तम् ।

(२) 'उपासकाः परमहंसमिथुनं संवित्मकले उपासते इति समयैकदेशिमतम् ।'

(३) 'भगवत्पादमतं तु शिखिज्वालारूपः परमेश्वरः शिखिन्या स्वशक्त्या संवलितः अनाहत चक्रे दीपाङ्कुरवत् प्रतिभाति। यथोक्तं भगवत्पादैः सुभगोदय व्याख्याने—

'शिखिज्वालारूपः समय इह सैवात्र समया ।
तयोस्सम्भेदो मे दिशतु हृदयाब्जैकनिलय ।'

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि—'एतदेव अस्माकमपि अभिमतम्।'[१]

'संवित्' का अर्थ है ज्ञान—'संवित् ज्ञानं'।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—'हृदयकमल' में भगवती की पूजा होने पर भगवती समस्त ऐहिक फल प्रदान करती हैं—

(१) 'एवं हृदयकमले एव समाराधिता भगवती ऐहिकानि कलानि सर्वाणि ददाति।'—समस्त ऐहिक फलों की प्राप्ति।

(२) यदि यहाँ वशिन्यादि युक्त ध्यान किया जाय तो यह ध्यान **सारस्वत विभूति** प्रदान करता है।

(३) यावकरसाप्लुत ध्यान **वशीकरण-सिद्धि** प्रदान करता है।

(४) 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' आदि के रूप में कामकला को ध्यान करने पर यह ध्यान तदवत फल प्रदान करता है।

(५) हृदय कमल मात्र में ही होमादिक, तर्पणादिक ऐहिक कार्यों का भी निष्पादन करना चहिए।

(६) सामयिकों की ऐहिक एवं आमुष्मि दोनों प्रकार की उपलब्धियाँ केवल आन्तर पूजा पर ही आश्रित है—'अतः समयिनां ऐहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्रपूजेति समयमततत्त्वम्।'[२]

श्लोक क्रमांक ३० : 'विशुद्धिचक्र' — १५ चान्द्र कलाओं १५ नित्याओं एवं १५ तिथियों के आलोक में।

'तदीयैरुद्द्योतैर्भवति च विशुद्धाख्य सदनं ।
भवेत्पूजा देव्या हिमकर कलाभिः समयिनाम् ।
सहस्रारे चक्रे निवसति कलापञ्चदशकं ।
तदेतन्नित्याख्यं भ्रमति सितपक्षे समयिनाम् ॥३०॥

[(हे भगवती!) तुमसे उदित होने वाली ज्योति के फलस्वरूप यह चक्र विशुद्धि सदन (या विशुद्धाख्य चक्र) कहलाता है। (इस चक्र में) समयाचारा पासकों द्वारा तुम्हारी की जाने वाली पूजा चन्द्रकलाओं के रूप में निष्पादित की जाती है। 'सहस्रार

---

१. लक्ष्मीधरा (३८)
२. लक्ष्मीधरा (४१)

चक्र' में चन्द्रमा की जो पन्द्रह कलायें रहती हैं वे समयमार्गियों की दृष्टि में पन्द्रहनित्यास्वरूपा हैं और ये शुक्ल पक्ष में भ्रमण करती हैं (अर्थात् पन्द्रह नित्यायें शुक्र पक्ष की पन्द्रह तिथियों के रूप में स्थित हैं।।३०।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद ने २९हवें श्लोक में कहा है कि—

(१) विशुद्ध चक्र से ही आकाश का उदय होता है।

'विशुद्धयाख्ये चक्रे विपदुदितमाहुः समयिनः।' और फिर कहा है कि

(२) यहीं **हिमश्वेत सदाशिव** निवास करते हैं।

(३) अब वे यह कहते हैं कि यह चक्र **'विशुद्ध चक्र'** केवल इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह भवगती (महात्रिपुर सुन्दरी) की ज्योति से आलोकित है—यही सामयिकों की मान्यता है।

(४) 'विशुद्धि चक्र' में स्थित उसे सोलह दल सहस्रारस्थ चन्द्रमा की सोलह कलाओं के प्रतिनिधि हैं या ज्ञापक हैं। इसी कारण इस चक्र में पराभट्टारि का महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा चान्द्रकलाओं के रूप में की जाती हैं।

(५) **आचार्य शङ्कर की दृष्टि**—आचार्य शङ्कर ने 'सौन्दर्यलहरी' में विशुद्ध चक्र के विषय में कहा है कि—

(१) विशुद्धि चक्र में शुद्धस्फटिकवत विशद शिवस्थित हैं।

(२) वे आकाश को उत्पन्न करते हैं।

(३) जगत शिव एवं शिवा दोनों की चान्द्रकान्ति के कारण ही अन्धकार को नष्ट करके चकोरीवत आनन्दित है—

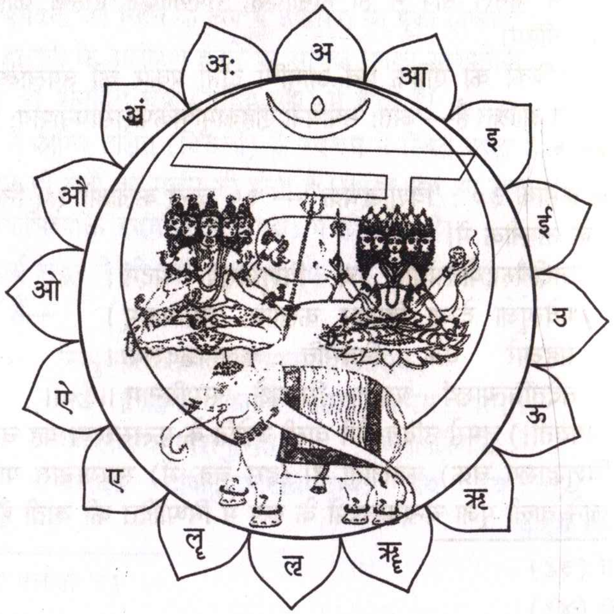

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं।
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।
ययोः कान्त्यायान्त्या शशिकिरणसारूप्य सरणिं।
विधूतान्तर्ध्वान्ताविलसति चकोरीव जगती ॥३६॥

(क) 'विशुद्ध चक्र' के अधिष्ठाता भगवान सदाशिव हैं।

(ख) यह चक्र आकाश तत्त्व का स्थान है।

(ग) चूँकि कामेश्वर एवं कामेश्वरी व्योम तत्त्व के कारण (उपादान) हैं अतः वे 'व्योमेश्वर-व्योमेश्वरी' भी कहलाते हैं।

(घ) चिदम्बर सदाशिव शुद्धस्फटिकसंकाश निर्मल हैं।

(ङ) कण्ठ प्रदेश में जो 'विशुद्ध चक्र' (या विशुद्ध अवस्थित है उसके १६ दल हैं।

इस चक्र में १६ दलों पर पूर्व दिशा से अग्निकोण, दक्षिण दिशा, नैऋत्य, पश्चिम दिशा, वायव्य, उत्तर दिशा एवं ईशान् दिशा के क्रमानुसार—पञ्च दशी के १६ अक्षरों के विद्यमान होने की कल्पना की जाती है या इन १६ दलों को मंत्र के १६ अक्षरों की स्थूलाभिव्यक्ति माना जाता है। ये सभी चान्द्र कलाओं की भाँति द्योतित होते हैं। इनमें चान्द्र आलोक क्यों है? यथार्थता यह है कि सहस्रार में स्थित पूर्णकला (परा कला) के बिम्ब से जो रश्मियाँ अधोन्मुखी होकर उतरती हैं वे प्रथमतः **'आज्ञा चक्र'** में उतरती हैं और 'आज्ञा चक्र' से विशुद्धाख्य चक्र पर उतरती हैं। उन चान्द्र किरणों का 'विशुद्ध चक्र' के दलों पर प्रतिबिम्बन ही उन्हें आलोक प्रदान करता है।

योगशास्त्र की दृष्टि से विशुद्धाख्य में स्थित वर्ण—

विशुद्ध चक्र का स्वरूप—

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलं धूमधूम्रावभासं।
स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिलसितैर्दीपितं दीप्तबुद्धेः।
समास्ते पूर्णेन्दुप्रथिततमनभोमण्डलं वृत्तरूपम्।
हिमच्छायानागोपरिलसिततनोः शुक्लवणम्बिरस्य ॥

पूर्णानन्द यति—'षट् चक्र निरूपणम्'

योगशास्त्र की दृष्टि—

'विशुद्ध चक्र' के षोडश दल (अ से अः तक)

अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ आँ औँ अँ अँः॥ } षोडशाक्षर
(१)(२)(३)(४)(५)(६)(७)(८)(९)(१०)(११)(१२)(१३)(१४)(१५)(१६)

विशुद्ध पद्म की कर्णिका के मध्य चन्द्रमण्डल के समान शुक्ल वर्ण वाला गोलाकार एक **आकाश मण्डल** है। आकाश मण्डल के मध्य **आकाश बीज** है ओर आकाश बीज की गोद में भगवान **सदाशिव** स्थित हैं। (आकाश बीज (शुक्ल वर्ण का) 'हँ' अक्षर है। आकाश बीज की चार भुजाएँ हैं। यह भुजाओं में (१) पाश (२) अङ्कुश (३) नर एव (४) अभय मुद्रा धारणा फिर हुए है। सदाशिव **त्रिनेत्री, पञ्चमुखी, दशभुजी** एवं व्याघ्रचर्मासीन, श्वेत एवं स्फटिकाम स्वच्छ एवं सुद्दीप्त हैं।

'श्रीविद्या' की दृष्टि से विशुद्ध चक्र के षोडशाक्षर

'श्रीविद्या' एवं 'समयमत' के अनुसार 'विशुद्ध चक्र' के १६ दल सहस्रास्थ चन्द्रमा की १६ कलाओं के प्रतिनिधि हैं अतः यहाँ वर्णों के रूप में (विशुद्ध पद्म के दलों पर)

(क) 'क' 'ए' 'ई' 'ल' 'ह्रीं'
(ख) 'ह' 'स' 'क' 'ह' 'ल' 'ह्रीं' } पञ्चदशाक्षरी विद्या के वर्ण।
(ग) 'स' 'क' 'ल' 'ह्रीं' —अङ्कित हैं।

ये 'वर्ण' चन्द्रमा की कलाओं की भाँति ही चमकते हैं।

शारांश—'चितिशक्ति' (१६हवीं चान्द्रकला, लक्ष्मी बीज, 'परा कला') का सम्बन्ध-जाल इस प्रकार है—

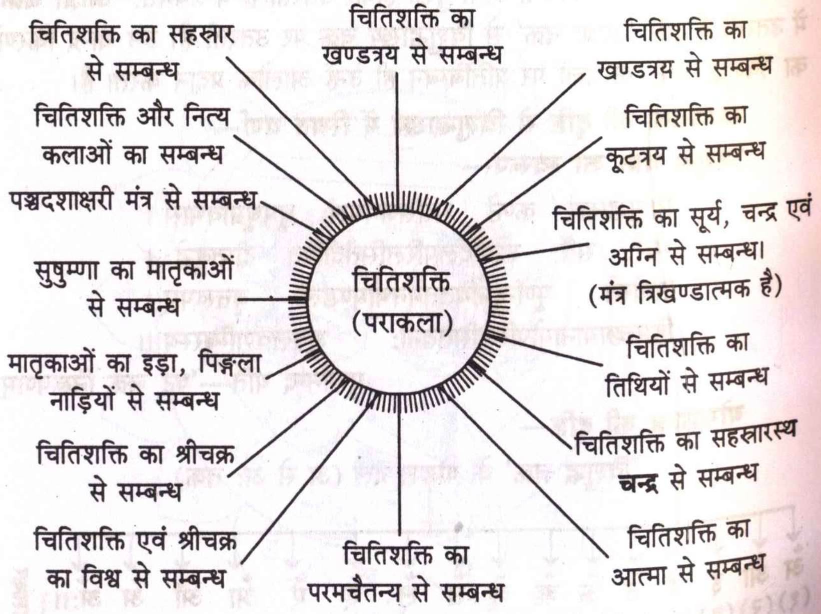
चितिशक्ति (पराकला)
चितिशक्ति का सहस्रार से सम्बन्ध
चितिशक्ति का खण्डत्रय से सम्बन्ध
चितिशक्ति का खण्डत्रय से सम्बन्ध
चितिशक्ति और नित्य कलाओं का सम्बन्ध
चितिशक्ति का कूटत्रय से सम्बन्ध
पञ्चदशाक्षरी मंत्र से सम्बन्ध
चितिशक्ति का सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि से सम्बन्ध। (मंत्र त्रिखण्डात्मक है)
सुषुम्णा का मातृकाओं से सम्बन्ध
मातृकाओं का इड़ा, पिङ्गला नाड़ियों से सम्बन्ध
चितिशक्ति का तिथियों से सम्बन्ध
चितिशक्ति का श्रीचक्र से सम्बन्ध
चितिशक्ति का सहस्रारस्थ चन्द्र से सम्बन्ध
चितिशक्ति एवं श्रीचक्र का विश्व से सम्बन्ध
चितिशक्ति का परमचैतन्य से सम्बन्ध
चितिशक्ति का आत्मा से सम्बन्ध

'श्रीविद्या' चान्द्रकला, षोडशनित्या एवं तिथियों के आलोक में।

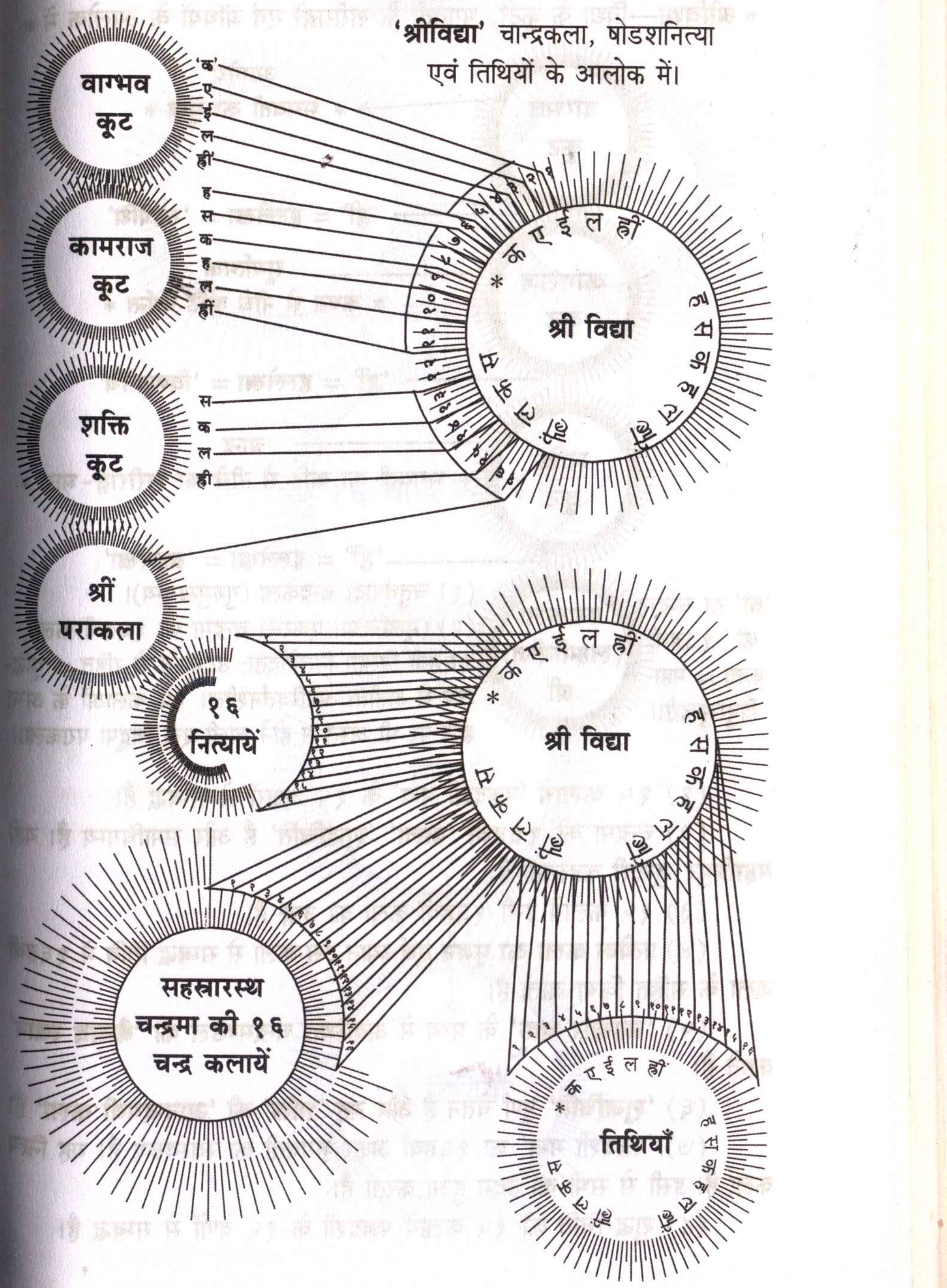
वाग्भव कूट
'क' ए ई ल ह्रीं
कामराज कूट
ह स क ह ल ह्रीं
शक्ति कूट
स क ल ह्री
श्रीं पराकला
श्री विद्या
* क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
१६ नित्यायें
श्री विद्या
सहस्रारस्थ चन्द्रमा की १६ चन्द्र कलायें
तिथियाँ

*** श्रीविद्या—विद्या के कूटों, भगवती के शरीराङ्गों एवं ग्रंथियों के आलोक में ***

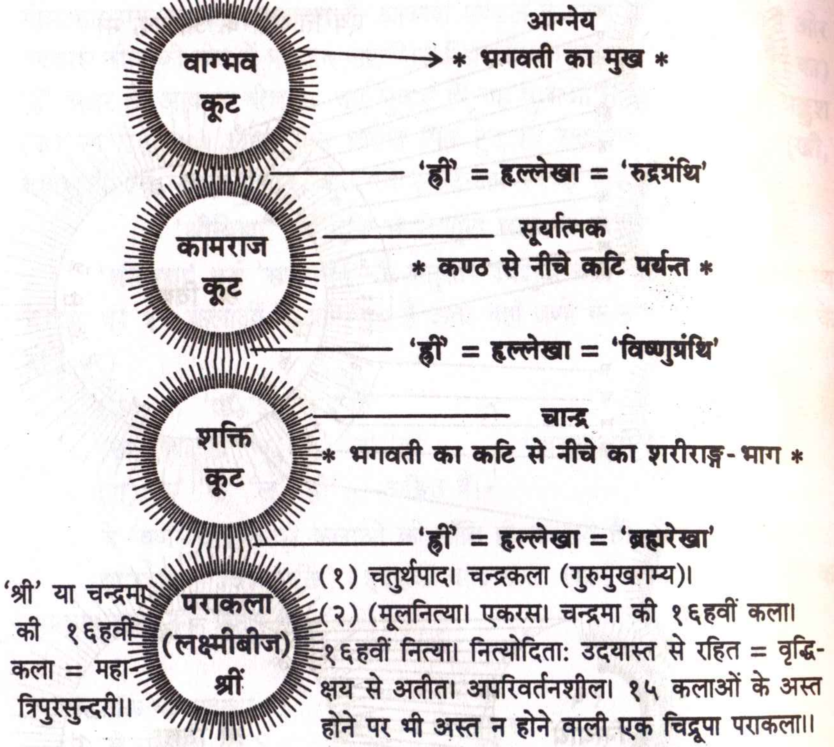
आग्नेय
* भगवती का मुख *
वाग्भव कूट
'ह्रीं' = हल्लेखा = 'रुद्रग्रंथि'
कामराज कूट
सूर्यात्मक
* कण्ठ से नीचे कटि पर्यन्त *
'ह्रीं' = हल्लेखा = 'विष्णुग्रंथि'
शक्ति कूट
चान्द्र
* भगवती का कटि से नीचे का शरीराङ्ग-भाग *
'ह्रीं' = हल्लेखा = 'ब्रह्मरेखा'
पराकला (लक्ष्मीबीज) श्रीं

'श्री' या चन्द्रमा की १६हवीं कला = महात्रिपुरसुन्दरी।।

(१) चतुर्थपाद। चन्द्रकला (गुरुमुखगम्य)।

(२) (मूलनित्या। एकरस। चन्द्रमा की १६हवीं कला। १६हवीं नित्या। नित्योदिता: उदयास्त से रहित = वृद्धि-क्षय से अतीत। अपरिवर्तनशील। १५ कलाओं के अस्त होने पर भी अस्त न होने वाली एक चिद्रूपा पराकला।।

(१) **१५ कलायें** 'पञ्चदशी मन्त्र' के १५ अक्षरों से सम्बद्ध हैं।

(२) चन्द्रमा की **१६हवीं 'कला' 'शुद्धचिति'** है और समाधिगम्य है। यही **महात्रिपुर सुन्दरी** कहलाती है।

(३) १५ कलायें इसी १६हवीं कला का अङ्ग हैं।

(४) **प्रत्येक कला का पूजन एवं** ध्यान उस कला से सम्बद्ध तिथि में १६हवीं कला के सहित किया जाता है।

(५) **'सहस्रार चक्र'** के मध्य में अवस्थित चन्द्रमण्डल को **'बैन्दव स्थान'** कहते हैं।

(६) **'शुद्धचिति'** पूर्ण चेतन है और यह **'शक्ति'** की **'आनन्दमयी कला'** है।

(७) 'पञ्चदशी मन्त्र' का १६हवाँ अक्षर भगवती का स्वस्वरूप है। यह नित्य कला है। इसी से सभी का उदय हुआ करता है।

(८) शुद्ध चिति की १५ कलायें पञ्चदशी के १५ वर्णों से सम्बद्ध है।

श्रीविद्या

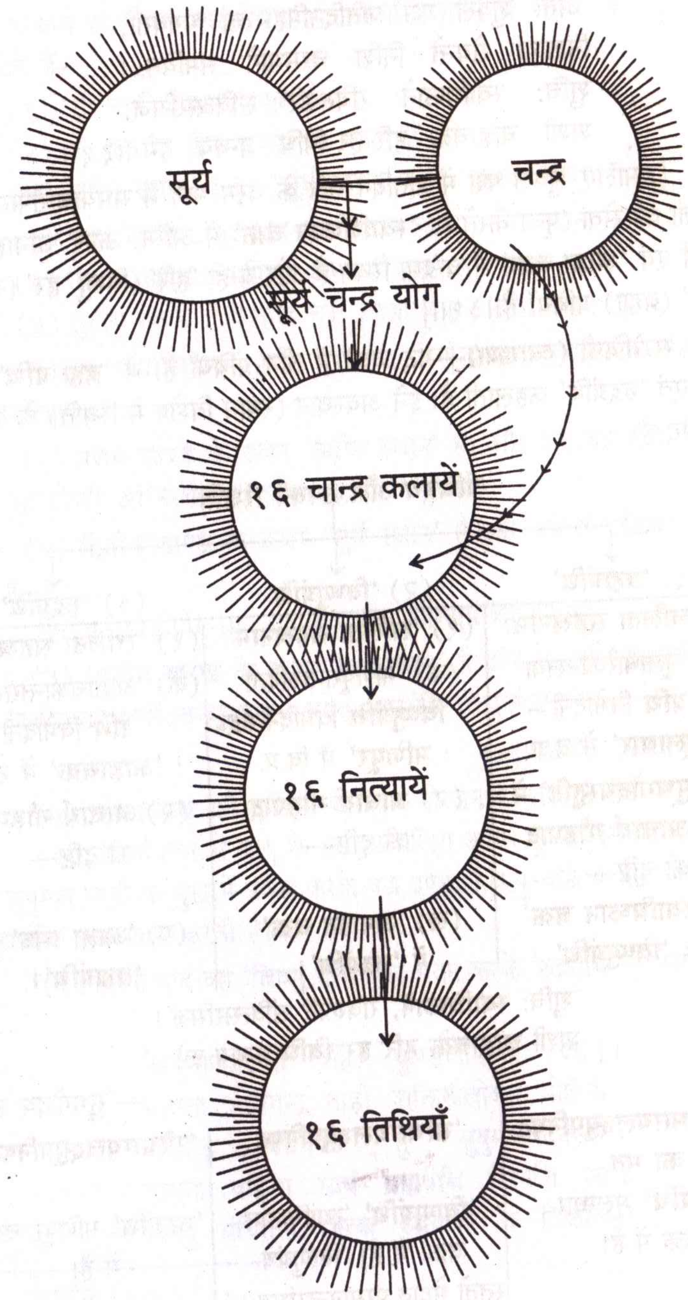
सूर्य
चन्द्र
सूर्य चन्द्र योग
१६ चान्द्र कलायें
१६ नित्यायें
१६ तिथियाँ

श्लोक क्रमांक ३१ : समया की पूजा शुक्ल पक्ष एवं ग्रंथित्रय

'अतः शुक्ले पक्षे प्रतिदिनमिह त्वां भगवतीं,
निशायां सेवन्ते निशि चरमभागे समयिनः।
शुचिः स्वाधिष्ठाने रविरुपरि संवित्सरसिजे,
शशी चाज्ञाचक्रे हरि-हर-विधि ग्रन्थय इमे ॥३१॥

[इसलिए शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन रात्रि के चरम भाग में समयाचारोपासक आप भगवती की सेवा (पूजा करते है। **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में अग्नि, ऊपर **'अनाहत पद्म'** में सूर्य एवं **'आज्ञा चक्र'** में चन्द्रमा स्थित हैं और ये ही 'हरि' (विष्णु 'हर' (रुद्र) एवं 'विधि' (ब्रह्मा) ग्रंथियाँ हैं।।३१।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—षट् चक्रों में तीन ग्रंथियाँ हैं। ये **'ब्रह्म ग्रंथि'** 'विष्णु ग्रन्थि एवं 'रुद्रग्रंथि' कहलाती हैं। इने अवस्थान (स्थान विशेष में स्थिति) के विषय में दृष्टि-भेद है।

ग्रंथित्रय और उनकी स्थिति

(१) **'ब्रह्मग्रंथि'**	(२) **'विष्णुग्रंथि'**	(३) **'रुद्रग्रंथि'**
(१) **'ललिता सहस्रनाम'** (क) मूलाधारैकनिलया **ब्रह्म ग्रंथि** विभेदिनी'– * **'मूलाधार'** में ब्र.ग्र.	(१) **'ललिता सहस्रनाम'** (क) 'मणिपूरान्तरुदिता **विष्णुग्रंथि** विभेदिनी**रुद्रग्र** : **मणिपूर'** में वि.ग्र.	(१) **'ललिता सहस्रनाम'** (क) 'आज्ञाचक्रान्तरालस्था **ंथि** विभेदिनी।। : **'आज्ञाचक्र'** में रु.ग्रं
(२) **'सुभगोदयस्तुति'** में व्यक्त **आचार्य गौड़पाद** की दृष्टि— (क) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में = **'विष्णुग्रंथि'**	(२) **आचार्य गौड़पाद** की दृष्टि— (ख) **'अनाहत चक्र'** में **'रुद्रग्रंथि'**।	(२) **आचार्य गौड़पाद** की दृष्टि— (ग) **'आज्ञा चक्र'** में **'ब्रह्मग्रंथि'**।

'शुचिः **स्वाधिष्ठाने**, रविरुपरि संवित्सरसिजे।
शशी **चाज्ञाचक्रे हरि हर विधि** ग्रन्थय इमे ॥'

—'सुभगोदय स्तुति'

(३) **'सौभाग्यलक्ष्युपनिषद का मत** **'ब्रह्मग्रंथि'** मूलाधार चक्र में है।	**'सौभाग्यलक्ष्युपनिषद** **'विष्णुग्रंथि'** 'स्वाधिष्ठान चक्र' में है। 'विष्णुग्रंथे स्ततो भेदात् परमानन्दसंभवः।।'	**'सौभाग्यलक्ष्युपनिषद** **'रुद्रग्रंथि'** मणिपूर चक्र में है।

(४) आचार्य लक्ष्मीधर की ग्रंथि विषयक दृष्टि—

आचार्य लक्ष्मीधर **'लक्ष्मीधरा'** (१४हवाँ श्लोक) में ग्रंथियों का परिचय इस प्रकार देते हैं—

(१) 'श्री चक्र' त्रिखण्डात्मक है।

(२) श्री चक्र के तीन खण्ड इस प्रकार हैं—

(क) **'सोम खण्ड'** (ख) **'सूर्य खण्ड'** (ग) **'अनल खण्ड'**

(१) प्रथम खण्ड : मूलाधार-स्वाधिष्ठान चक्र। अग्नि स्थान

(२) द्वितीय खण्ड : मणिपूर अनाहत चक्र' सूर्य स्थान

(३) तृतीय खण्ड : विशुद्धि चक्र आज्ञा चक्र : सोम स्थान

'आधार स्वाधिष्ठान—मणिपूरानाहत-विशुद्धयाज्ञा चक्रात्मकं **'श्रीचक्र'** सोमसूर्यालात्मकम्।

(१) **प्रथम खण्ड के ऊपर 'अग्नि स्थान'** है। और वही रुद्र ग्रंथि है—'अत्र प्रथम खण्डोपरि अग्निस्थानम्। तदेव **रुद्रग्रंथि**रित्युच्यतै।'

(२) **द्वितीय खण्ड के ऊपर 'सूर्य स्थान'** है और उसे ही **'विष्णु ग्रंथि'** हा गया है—

'द्वितीय खण्डोपरि सूर्य स्थानम्। तदेव **विष्णुग्रंथि**रित्युच्यते।

(३) **'तृतीय खण्ड के ऊपर 'चन्द्रस्थान'** है और उसे ही **'ब्रह्मग्रंथि'** कहते हैं—'तृतीयखण्डोपरि चन्द्रस्थानम्। तदेव **ब्रह्मग्रंथि** रित्युच्यते ॥'

—लक्ष्मीधरा (१४हवाँ श्लोक)

(५) **गोरक्षनाथ की दृष्टि**—योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

(१) प्राणसंयमन से वायु के द्वारा प्रज्वलित अग्नि कुण्डलिनी को प्राप्त करती हुई सुषुम्णा नाड़ी के मुख में प्रवेश करके वज्र दण्ड में वायु-वह्नि के साथ प्रविष्ट होकर **'ब्रह्मग्रंथि'** का भेदन करती है।

(२) इसके बाद वह **'विष्णु ग्रंथि'** का भेदन करके 'रुद्रग्रंथि' में स्थित हो जाती है—

'वायुनाज्वलितो वह्निः कुण्डलीमनिशं दहेत्।
संतप्ता सागिना नाड़ी शक्तिस्त्रैलोक्य मोहिनी ॥
प्रविशेद वज्रदण्डे तु सुषुम्णावदनन्तरे।
वायुना वह्निना सार्धं **ब्रह्मग्रंथि भिनत्ति सा** ॥
विष्णु ग्रंथिततो भित्वा रुद्रग्रन्थौ च तिष्ठति।[1]

---

[1] योगबीज (९७-९८)

सारांश यह कि—

(१) मूलाधार चक्र से सम्बद्ध **'ब्रह्मग्रंथि'** है।

(२) **'विष्णु ग्रंथि'** एवं **'रुद्रग्रंथि'** ब्रह्मग्रंथि के बाद यथाक्रम स्थित हैं।

'रुद्रग्रंथि, सर्वोपरि ग्रंथि है क्योंकि उसका भेदन करने के बाद शिवात्मकता की प्राप्ति होती है—

'रुद्रग्रंथि' सर्वोपरि ग्रंथि है क्योंकि उसका भेदन करने के बाद शिवात्मकता की प्राप्ति होती है—

'रुद्रगंथि ततो भित्वा सैव याति शिवात्मकाम् ।'[1]

(६) **'अमरौघप्रबोध' में गोरक्ष-प्रतिपादित दृष्टि**—गुरु गोरक्षनाथ **'ग्रथित्रय'** की विवेचना **'अमरौघ प्रबोध'** में भी की है। उसके अनुसार—

बह्मग्रन्थेर्भवेद वेधादानन्दा .... न्यसंभवम् ।
विचित्रक्वणको देहऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥४६॥
दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगन्धस्त्वरोगवान् ।
सम्पूर्ण हृदयश्शूर आरम्भो योगिनो भवेत् ॥४७॥

द्वितीयां घटी कृत्य, वायुर्भवति मध्यगः ।
दृढ़ासनो भवेद् योगी ज्ञानी देवसमप्रभः ॥४८॥
विष्णुग्रन्थेस्तथा वेधात् परमानन्दसूचकः ।
अतिशून्ये विमर्दश्च मेरीशब्दस्तथा भवेत् ॥४९॥

तृतीयायां ततो भित्वा विपाको मर्दलध्वनिः ।
महाशून्यं तदा जातं सर्वसन्धि समाश्रयम् ॥
चित्तानन्दं ततो जित्वा सहजानन्दसम्भवः ।
दोषमृत्युजरादुःखक्षुधा निद्राविवर्जितः ।
रुद्रग्रंथि ततो भित्वा सत्वपीठगतोऽनिलः ॥

(७) **हठयोगप्रदीपिका में प्रतिपादित दृष्टि**—हठयोग प्रदीपिकाकार का कथन है कि—

'**ब्रह्मग्रंथेर्भवेद ध्यानन्दं** शूनयसम्भवः ।
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ।
दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्य गन्धस्त्वरोगवान्
सम्पूर्णा हृदयः शून्यः आरम्भे योगवान भवेत् ॥'

---

[1] योग बीज (१२७)

द्वितीयायां घटी कृत्य वायुर्भवति मध्यगः ।
दृढ़ासनो भवेद् योगी ज्ञानी देवसमस्तदा ।
विष्णुग्रंथेस्ततो भेदात्परमानन्दसूचकः ।
अति शून्ये विमर्दश्च भेरी शब्दस्तदा भवेत् ॥

तृतीयां तु विज्ञेयोविहायो मर्दल ध्वनिः ।
महाशून्यं तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ।
चित्तानन्दं तदा जित्वा सहजानन्दसम्भावः ।
दोषदुःखजरा व्याधि क्षुधानिद्राविवर्जितः ।
रुद्रग्रंथि यदाभित्वा शर्वपीठगतोऽनिलः ॥

'शुचिः स्वाधिष्ठाने'—

'स्वाधिष्ठान चक्र' का स्वरूप एवं अन्य विवरण आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्त जननि! महतीं तां च समयाम् ।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते,
दयार्द्रा या दृष्टिश्शिशिर मुपचारं रचयति ॥३९॥

—सौन्दर्य लहरी

'स्वाधिष्ठान चक्र' शिवसंहिताकार की दृष्टि—

द्वितीयन्तु सरोजं च लिङ्गमूले व्यवस्थितम् ।
बादिलान्तं च षडवर्णं परिभास्वरषड्दलम् ।
स्वाधिष्ठानाभिधं तत्तु पंकजं **शोणरुपकम्** ।
वाणख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी ।
मो ध्याययति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम् ।
तस्यकामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः ॥
विविधं चाक्षुतं शास्त्रं निःशंको वै वदेद् ध्रुवम् ।
सर्वरोग विनिर्भुक्तो लोके चरति निर्भयः ।
मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते ।
तस्य स्यात् परमा सिद्धिरणिमादि गुण प्रदा ।
वायु सञ्चरते देहे रसवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
आकाशपङ्कजगलत्पीयूषमपि वद्धे वर्द्धते ।

(१) विशुद्ध चक्र के १६ दल चन्द्रमा की १६ कलाओं के प्रतिनिधि हैं। (विशुद्ध चक्र = १६ दल = चन्द्रमा की १६ कलायें) इस चक्र में राजराजेश्वरी का पूजन चन्द्रकलाओं के रूप में किया जाता है।

(२) शुक्ल पक्ष की **१५ तिथियाँ नित्यास्वरूपा** हैं। इसीलिए भवगती का पूजन शुक्ल पक्ष में ही होता है।

(३) **भगवती कुण्डलिनी** का उब्दोधन (जागरण/उत्थापन) भी शुक्लपक्ष में निष्पन्न किया जाता है।

(४) प्र. **ऐसा क्यों किया जाता हैं?** यह इसलिए किया जाता है क्योंकि **'शुक्लपक्ष'** में ही अमृत का अधिक्य होता है।

शुक्लपक्ष में ही चन्द्रमा से अमृत का क्षरण होता है। अतः उसी समय अमृत की प्राप्ति होती है।

(५) चन्द्रमा सूर्य से ताप लेकर शुक्लपक्ष में चाँदनी बिखेरता है। चूँकि चन्द्रोदय दिन में नहीं रात्रि में होता है अतः चन्द्रकला की उपासना भी रात्रि में ही होती है।

(६) **'तैत्तिरीय ब्राह्मण'** (३/१०/१०) में कहा गया है कि योगी को रात्री के अन्तिम प्रहर में ही योग-साधना करनी चाहिए।

(७) **नामधुकृतः** की व्याख्या करते हुए आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—[1]

'ताः रात्रयः' मधु कुर्वन्तीति **'मधुकृतः'।** रात्रिष्वेव मधुनः संग्रह इति लोक प्रसिद्धिः। रात्रावेव चन्द्रकला रूपायाः श्री विद्यायाः अनुष्ठानम् न च दिवसे इति उपदेशः।।[2]

आचार्य श्री **गौड़पाद** ने जो ग्रंथिक्रम बताया है वह 'ललिता सहस्रनाम' आदि अनेक ग्रंथों से भिन्न है।

प्र. **'आज्ञा चक्र'** को **गौड़पादाचार्य ने 'ब्रह्मग्रंथि' क्यों कहाँ ?**

उत्तर—(१) 'आज्ञा चक्र' चन्द्रमा का स्थान है।

(२) चन्द्रमा से ही नित्याओं (चान्द्र किरणों) की उत्पत्ति होती।

(३) आज्ञा चक्र आत्मा एवं मन दोनों का स्थान है।

(४) यही से समस्त तत्त्वों की उत्पत्ति होती है।

इन्हीं सब कारणों से गौड़पाद ने इसे **'ब्रह्मग्रंथि'** कहा।

योग के कई ग्रंथों में ग्रंथियों का क्रम इस प्रकार भी मिलता है।

(१) 'रुद्र ग्रंथि' (२) 'विष्णु ग्रंथि' (३) 'ब्रह्मग्रंथि'।

ग्रंथि और ग्रंथित्रय—'ग्रंथि' गाँठ को कहते हैं। दो पृथक्-पृथक् वस्तुओं को जोड़ने से या गट्ठर आदि बाँधने से रस्सी में गाँठ पड़ जाती है। इसे ही 'ग्रंथि' कहते हैं।

---

[1] आचार्य लक्ष्मीधर

[2] लक्ष्मीधरा

कभी-कभी एक ही पदार्थ या वस्तु में विकारोद्भव के कारण द्वन्द्वों की ग्रंथियाँ (उलघनों की ग्रंथियाँ) उसी प्रकार पड़ जाती है यथा उलझे बालों या धागों में।

तुलसीदास जी ने 'ग्रंथि' को जड़ प्रकृति एवं चेतन आत्मा में पड़ने की बात करते हुए कहा है कि—

'जड़ चेतन हिं ग्रंथि पड़ि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ।'

(१) आत्मा में देह, इन्द्रिय आदि का अध्यास (अध्यारोप)

(२) तथा देह एवं इन्द्रियादि में आत्मा का अध्यास ही इस 'ग्रंथि' का कारण है—

आत्मा में देहाध्यास या देह में आत्मा ध्यास इसी विपर्यय ज्ञान (अध्यास) का कारण है।

(१) सत्व गुण के योग से उत्पन्न अध्यास : 'विष्णु ग्रंथि'
(२) रजोगुण के योग से उत्पन्न अध्यास : 'ब्रह्मग्रंथि'
(३) तमोगुण के योग से उत्पन्न अध्यास : 'रुद्रग्रंथि'

कहा गया है। सारांश यह कि—

(क) स्थूल देहाध्यास	—	'रुद्रग्रंथि'	'मूलाधार'
(ख) इन्द्रियाद्भूत अध्यास	—	'ब्रह्मग्रंथि'	'आज्ञाचक्र'
(ग) अन्तःकरण के योग से आविर्भूत ग्रंथि	—	'विष्णु ग्रंथि'	हृदय

इस अध्यास की निवृत्ति ही **'ग्रथि-उद्भेदन'** है।

इतरेतर अध्यारोपण एवं मिथ्या ज्ञान ही 'अध्यास' है।

'अतस्मिंस्तद् बुद्धिः अध्यासः।' अतद् में 'तद् की प्रतीति या 'तद्' का ज्ञान ही अध्यास है। अध्यास (मिथ्याज्ञान) के अनेक रूप हैं।

शास्त्रों के नाम		**भ्रम या मिथ्या ज्ञान का नाम**
(१) पूर्व मीमांसा	—	'अख्याति वाद'
(२) वैशेषिक एवं न्याय शास्त्र	—	'अन्यथा ख्याति'
(३) बौद्धों का शून्य वाद	—	'असत् ख्याति वाद'
(४) सांख्य दर्शन	—	'सद्सत ख्याति वाद'
(५) वेदान्त दर्शन	—	'अनिर्वचनीय ख्याति'

एक वस्तु का अन्यत्र मिथ्या वभास ही भ्रम ज्ञान है—अध्यास है—विपर्यय ज्ञान है।

अध्यास ही ग्रंथि का कारण, अध्यास क्या है? भगवान राम लक्ष्मण से कहते हैं—

'यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा
दध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा
रज्जवादिके तद्वदजीश्वरे जगत् ।।[1]

यह भी कहा गया है कि—

(१) भूत-जय द्वारा — 'रुद्रग्रंथि' का वेध होता है।

(२) इन्द्रिय-जय द्वारा — 'ब्रह्मग्रंथि' का वेध होता है।

(३) मनो-जय द्वारा — 'विष्णु ग्रंथि' का वेध होता है।

'संवित् सरसिजे'—संवित् सरसिज का उल्लेख आचार्य शङ्कराचार्य ने भी किया है—

'समुन्मीलत्संवित् कमलमकरन्दैकरसिकं,
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम् ।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणतिः ।
यदादत्ते दोषाद्गुणमखिलमभ्द्यःपय इव ।।[2]

'संवित कमल' अनाहत चक्र का नामान्तर है।

समयैकदेशिमत में उपासक परमहंसमिथुन की संवित् कमल में उपासना किया करते हैं—

'संवित्कमलं अनाहत चक्रनामकमिति। उपासकाः परमहंस मिथुनं संवित्कमले उपासते इति समयैकदेशिमतम्। भगवत्पादमतं तु—शिखिज्वालारूपः परमेश्वरः शिखिन्या स्वशक्त्या संवलितः अनाहत चक्रे दीपाङ्कर वत प्रतिभातीति। यथोक्तं भगवत्पादैः—

सुभगोदय व्याख्याने—

'शिखिज्वालारूपः समय इह सैवात्र समया ।
तयोस्सम्भेदो मे दिशतु हृदयाब्जैकनिलयः ।।'[3]

लक्ष्मीधर की दृष्टि—'एतदेव अस्माकमपि अभिमतम्' (लक्ष्मीधरा ३८)

'शशी चाक्षाचक्रे'—आज्ञा चक्र में चन्द्रमा स्थित है।

ब्रह्मानन्द की दृष्टि—'हठयोग प्रदीपिका' के प्राख्यात टीकाकार ब्रह्मानन्द गिरि का कथन है कि ग्रंथियों का परिचय इस प्रकार है—

(१) **'ब्रह्म ग्रंथि'** 'अनाहत चक्र' में है।

---

१. अध्यात्म समापण (उत्तरकाण्डासर्ग ५/३७)

२. सौन्दर्य लहरी (३८)

३. लक्ष्मीधरा ३८

(ब्रह्मग्रंथेरनाहत चक्रे वर्तमानाया भेद : प्राणायामाभ्यासेन भेदनं।। 'ज्योत्स्ना')

'अनाहत चक्र' या हृदय में 'विचित्र क्रणाक' (अलंकारों की ध्वनि) श्रुतिगोचर होते हैं।

(२) **'रुद्र ग्रंथि'** आज्ञा चक्र में है।

'**रुद्रग्रंथिं** यदा भित्वा शर्वपीठगतोऽनिलः ।
निष्पत्तौ वैशवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत् ।।'[1]

ज्योत्स्नाकार कहते हैं—'यदा रुद्रग्रंथिं भित्वा आज्ञा चक्रे रुद्रग्रन्थिः शर्वस्येश्वरस्य पींठभ्रूमध्यं तत्र गतः प्राप्तोऽनिलःप्राणो भवति तदा।।'

अर्थात् 'आज्ञा चक्र' में 'रुद्रग्रंथि' है।

(३) **'विष्णु ग्रंथि'**—ज्योत्स्नाकार कहते हैं कि—

'ततो ब्रह्मग्रंथि भेदनानन्तरं **विष्णुग्रन्थे :** कण्ठे वर्तमाना या भेदात्कुम्भकैर्भेदनात् परमानन्दस्य भाविनो ब्रह्मानन्दस्य सूचको ज्ञापकः ।।

ज्योत्स्नाकार कहते हैं कि—

(क) **'अनाहत चक्र'** में—'ब्रह्मग्रंथि' है।

(ख) कण्ठ या **'विशुद्धि चक्र'** में — 'विष्णुग्रंथि' है।

(ब्रह्मग्रंथि के बाद 'विष्णु ग्रंथि' आती है अतः टीकाकार का कथन है कि 'ब्रह्मग्रंथि भेदानन्तरं विष्णु ग्रंथेः')

यह विष्णु है कहाँ? कण्ठ में।

(ग) **'आज्ञा चक्र'** में 'रुद्रग्रंथि' है।

सारांश—

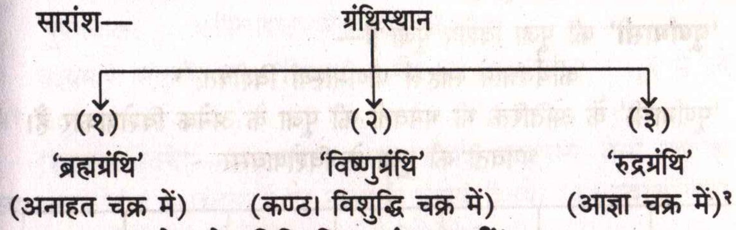

'अतः शुक्ले पक्षे प्रतिदिनमिह त्वां भगवतीं'—

(भगवती ललिता की उपासना का आदर्श समय)

वैसे तो भगवान एवं भगवती की उपासना साधक द्वारा अपनी अहोरात्र भी २१ हजार ६०० साँसों के द्वारा प्रतिक्षण की जा सकती है। किन्तु उनकी साङ्गोपाङ्ग आदर्श साधना का समय पृथक रूप से निर्धारित किया गया है।

---

१. हठयोग प्रदीपिका (७६)

२. ज्योस्त्ना

(१) **साधना के लिए वरेण्य पक्ष—**

(क) **आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद** कहते हैं कि यदि श्री देवी (राज राजेश्वरी) की उपासना करनी हो तो **शुक्ल पक्ष** में और वह भी तुरीय (चरम) भाग में करनी चाहिए।

अतः शुक्ले पक्षे प्रतिदिन मिहत्वां भगवतीं,
निशायां सेवन्ते निशि चरमभागे समयिनः ॥[1]

सारांश यह कि भगवती की उपासना—

(क) प्रतिदिन (ख) रात्रि के समय (ग) रात्रि के चरम भाग में (घ) शुक्लपक्ष में की जा सकती है।

(ख) **ललितासहस्रनामोक्त दृष्टि—**'ललिता सहस्रनाम' में हयग्रीव अगस्त्य से कहते हैं—

'प्रतिमासं **यश्चक्रराजस्थामर्चयेत् परदेवताम्** ।
स एव ललितारूपस्तद्रूपा ललितास्वयम् ॥'

सारांश यह है कि साधक को प्रतिमास **'पूर्णमासी'** की तिथि को **रात्रि के समय चक्रराज में भगवती को** अवस्थित मानकर उन परदेवता राजराजेश्वरी की पूजा करनी चाहिए। (यह पूजा का विशेषावसर है।)

जो भी व्यक्ति (१) प्रतिमास (२) पूर्णमासी की तिथि को(३) रात्रि में **ललिता सहस्रनाम का पाठ** करते हुए (४) **श्री यंत्र** (चक्रराज) में स्थित भगवती **महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा** (उपासना) करता है वह भगवती ललिता के समान ही हो जाता है यह वह स्वयं ललिता देवी ही है।(२)

'पूर्णमासी' की पूजा विशेष पूजा है—

'कीर्ययेन्नाम साहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः'[3]

'पूर्णमासी' के अतिरिक्त भी भगवती की पूजा के अनेक विशेषाकार हैं।

भगवती की पूजा के विशेषावसर

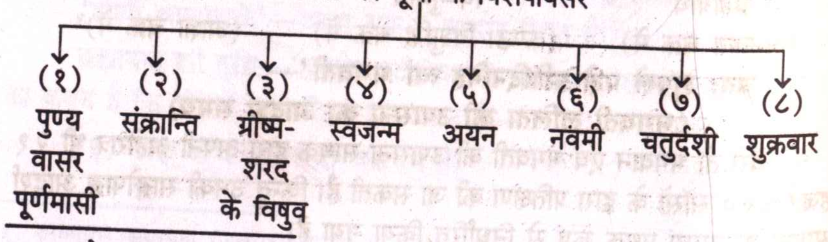

---

१. सुभगोदय स्तुति (३१)
२. ललिता सहस्रनाम (अध्याय ३/५ = ५६
३. ललिता सहस्रनाम (अ.३/२१)

'स्वजन्मत्रितय' = (क) (१) अपना जन्म दिन (२) अपनी पत्नी का जन्म दिन (३) अपने पुत्र का जन्म दिन। या

(ख) (१) अपना जन्मदिन (२) दीक्षादिवस (३) पूर्णाभिषेक दिवसाया

(ग) नक्षत्रत्रय — (घ) प्रत्येक नवाँ नक्षत्र। (अनुजन्म)

(ग) **नक्षत्रय =** अपने जन्म के समय से सम्बृद्ध एवं उसके आगे के दो और नक्षत्र। **'ललितासहस्रनाम' में कहा गया है—**

संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्मत्रितयेऽयने ॥२५३॥
नवम्यां वा चतुर्दश्यां सितायां शुक्रवासरे ।
कीर्तयेन्नामसाहस्रं पौराभिस्यां **विशेषतः** ॥२५४॥
'पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्री ललिताम्बिकाम् ।
पञ्चोपचारै संपूज्य पठेन्नामासहस्रकम् ॥२५५॥

जो लोग भगवती की सविध पूजा करने में अशक्त हैं उनके लिए 'पुण्यवासरों' में पूजा करने का विधान रखा गया है—

'नित्यं संकीर्तनाशक्तः कीर्तयेत्पुण्यवासरे ।
संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्मत्रितयेऽयने ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां सितायां शुक्रवासरे ।
कीर्तयेन्नाम साहस्रं **पौर्णमास्यां** विशेषतः ।'
पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्री ललिताम्बिकाम् ।
पञ्चोपचारैः संपूज्य पठेन्नाम सहस्रकम् ॥२५५॥

आचार्य भास्कर राय ('सौभाग्य भास्कर' में) कहते हैं।

'पुण्यवासरे' = कपिलाषष्ठ्यर्धोदयदिदिवसे'॥[1]

वक्ष्यमाण संक्रान्ति पर। **'विषुव'** = मेष एवं तुला राशि के सूर्य में प्रवेश के दिन।[2]

'स्वजन्मत्रितये'—(१) स्वस्य, स्वभार्यायाः, स्वपुत्रस्य जन्म नक्षत्रेषु। (२) स्वस्य जन्मकालीनं नक्षत्रंततपूर्व पर नक्षत्रे द्वे इत्येवं त्रितये। (३) स्वस्य जन्म नक्षत्र मारभ्य गणनायां प्रथमदशमैकोनविंशनक्षत्रय दिवसेषु।[3]

(४) स्वजन्मदिवस दीक्षा दिवस-पूर्णाभिषेकदिनत्रये

(५) एवं व्याख्या वैचित्र्यस्थले यथा संप्रदायं व्यवस्था। इस दिशा में शास्त्र विधान यह है कि—

---

१. सौभाग्य भास्कर
२. सौभाग्य भास्कार
३. सौभाग्य भास्कर

'तन्त्राणां बहुरूपत्वात्कर्तव्यं गुरुसंभतम्'

'अयने' = कर्क एवं मकर के सूर्य में प्रवेश के दिन। पूर्णमासी के दिन 'ललिता सहस्रनाम' का पाठ करना चाहिए और यह कल्पना भी करनी चाहिए कि भगवती महात्रिपुर सुन्दरी चन्द्रमा में आसीन है। चन्द्रमण्डलासीना भगवती का ध्यान करते हुए ही भगवती के सहस्रनाम का पाठ करना चाहिए।

पूर्णचन्द्र में **'सादाख्या कला'** भगवती त्रिपुरसुन्दरी के स्वयप में आसीन रहती हैं। अन्य १५ चान्द्र कलायें (भाग) कामेश्वरी की देवियाँ हैं जो कि प्रतिपदा से लगातार १५ दिन का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये १५ कलायें १६वीं कला से सम्बृद्ध हैं और साथ ही अणिमादिक से भी सम्बद्ध हैं।

चन्द्रमण्डल (Dise of the moon) 'श्रीचक्र' ही है। यह देवी का 'श्री यंत्र) है न कि श्रीयंत्र की प्रतिकृति। इसलिए यहाँ (मूर्ति में देवी के उपस्थित होने के लिए की जाने वाली प्रार्थना रूप) आवाहन की आवश्यकता भी नहीं है। भगवती का **पञ्चोपचारपूजन** करके 'ललितासहस्रनाम' का पाठ करना चाहिए।

'पञ्चोपपचारैः संपूज्य पठेन्नाम सहस्रकम् ।'

आचार्य भास्कर राय की दृष्टि—आचार्य भास्कार राय कहते हैं कि 'ललितासहस्रनाम' में नवम्यां **वा'** वाक्य में जो 'वा' (या) शब्द का प्रयोग किया गया है कि वा **'अष्टमी तिथि'** को भी पूजा के शुभावसर के रूप में ग्रहण करने का सङ्केत देती है। 'नवम्यां वेति वाकारोऽष्टभी संग्रहार्थः।' **'सितायाम्'** का क्या अर्थ है? **भास्कर राय** कहते हैं—'सितायामिति नवम्यादिषु तिसृष्वन्वेति।'

'चतुर्थशी' = चतुर्दशी का अर्थ है शुक्ल पक्षी या चतुर्दशी। (भास्कर राय)।

'चैव' का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि अशक्त (यावज्जीवन अशक्त) व्यक्ति उन दिनों में अवश्य भगवती का कीर्तन करें।

* **भगवती** त्रिपुरा की **पूजा का ललिता सहस्रनामोक्त विधान***

भगवी महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा का संक्षिप्त विधान इस प्रकार है—

(१) भगवती को प्रसन्न करने के लिए प्रतिदिन 'ललिता सहस्रनाम' का पाठ करना चाहिए—

'श्रीमातुः प्रीतये तस्मादनिशं कीर्तयेदिदम् ।'[1]

(२) बिल्वपत्र, पद्म एवं तुलसीपत्र के द्वारा 'चक्रराज' (श्रीयंत्र) में भगवती की पूजा करनी चाहिए क्योंकि इससे भगवती तत्काल प्रसन्न हो उठती हैं—

---

[1] ललिता सहस्रनाम (१/२०)

'बिल्वपत्रैश्चक्रराजे योऽर्चयेल्ललिताम्बिकाम् ।
अद्मैर्वा तुलसीपुष्पैरेभिनभिसहस्रकैः ।।'
सद्यः प्रसादं कुरुते तत्र सिंहासनेश्वरी ।।

(३) प्रथमतः **चक्राशिराज की पूजा** करके एवं उसे बाद **'पञ्चदशाक्षरी' मन्त्र का** जप करके जप के अन्त में **'ललितासहस्रनाम'** का प्रतिदिन पाठ करना चाहिए। 'चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम् जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नाम सहस्रकम् ।'

(४) किन्तु यदि कोई व्यक्ति यह पूजा-विधान भी सम्पन्न करने में अशक्त हो तो उसके लिए विधान यह है कि (वह जप एवं पूजा भले ही निष्पादित न कर पये किन्तु) वह भगवती के 'सहस्रनाम' (ललितासहस्रनाम') का पाठ अवश्य करे— 'जपपूजाद्यशक्तश्चेत् पठैन्नामसहस्रकम्'[1]

(५) 'सहस्रनाम' का पाठ नित्यकर्मवत करना चाहिए भगवती की संक्षिप्त तम पूजा का विधान तो 'सहस्रनाम' का पाठ मात्र करना है किन्तु यदि इस पूजा को थोड़ा सा और विस्तार दे दिया जाय तो इसके अन्य अंग निम्नाङ्कित हैं—

(क) **'चक्रराजार्चनं** , देव्या, **जपो** , नाम्नां-च कीर्तनम् ।।'[2]

(ख) 'भक्तस्यावश्यकमिदं नाम सहस्रकीर्तनम् ।[3]

(ग) तत् पठध्वं सदा यूयं स्तोत्रं 'पत्प्रीतिवृद्धये ।'

(घ) इद नामसहस्त्रं ये यो भक्तः पठते सकृत ।

(ङ) स मेप्रियतमो ज्ञेयस्तस्मै कामान् ददाम्यहम् ।

(च) **श्री चक्रे मां समभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्। पश्चान्नामसहस्त्रं मे कीर्तयेन्मम** तुष्टये।।

(छ) मामर्चयतु वा मा वा विद्यां जपतु वा न वा ।
कीर्तयेन्नामसाहस्रमिदं मत्प्रीतये सदा ।।

(ज) मत्प्रीत्या सकलान् कामांल्लभते नामसांयः ।
तस्माननामसहस्त्रं मे कीर्तयध्वंसदादरात् ।

(झ) कुरुध्वमङ्कितं **स्तोत्रं मम नामसहस्रकैः** ।
येन भक्तैः स्तुताया मे **सद्यः प्रीतिः परा भवेत्** ।

(ञ) **पठन्ति भक्त्या** सततं **ललितापरितुष्टये** ।
तस्मादवश्यं भक्तेन **कीर्तनीयमिदं** मुने ।।

---

[1] ललिता सहस्रनाम

[2] ललितासहस्रनाम

[3] ललितासहस्रनाम

(ट) **चिन्तामणिगृहानतः** स्था **पञ्चब्रह्मासन** स्थिता।
महापद्माटवीसंस्था **कदम्बवन**वासिनी।
सुधासागरमध्यस्था कामाखी कामदायिनी'
'**पञ्चप्रेतासनासीना** **पञ्चब्रह्मस्व**रूपिणी।'
'श्री चक्रराजनिलया श्रीमत् त्रिपुर सुन्दरी।'
श्री शिवा शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका'[१]

(ठ) इसी भगवती त्रिपुर सुन्दरी का पूजा-विधान संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) इदं विशेषाच्छीदेव्याः **स्तोत्रं** प्रीतिविधायकम्।
जपेन्नित्यं प्रयत्नेन ललितोपास्तितत्परः।
(२) प्रातः **स्नात्वा** विधाने न संध्याकर्म समाप्य च।
पूजागृहं ततो गत्वा चक्रराजं समर्चयेत्।
(३) **विद्यां जपेत् सहस्रं वा त्रिशतं** शतमेव वा
(४) रहस्यनाम साहस्रमिदं पश्चात् पठेन्नरः ॥
(५) **जन्ममध्ये सकृच्चापि** य एतत् पठते सुधीः ॥[२]

(६) भगवती के 'श्रीचक्र' का दर्शन मात्र भी एक बहुत बड़ी पूजा है क्योंकि—

'सम्यक् शत क्रतून् कृत्वा, यत् फलं समवाप्नुयात्।
तत् फलंलभते भक्त्या' कृत्वा श्रीचक्र-दर्शनम्॥
महाषोडशदानानि, कृत्वा यल्लभते फलम्।
तत् फलं समवाप्नोति, कृत्वा श्रीचक्र दर्शनम्
सार्द्ध त्रिकोटि-तीर्थेशु, स्नात्वा यत् फलमश्नुते।
तत् फलं लभते भक्त्या, कृत्वा श्रीचक्र दर्शनम्॥[३]

'शशी चाज्ञा चक्रे'—

'आज्ञा चक्र' का स्वरूप क्या है?

आचार्य शङ्कर कहते हैं—

तवाज्ञाचक्रस्थं तपन शशिकोटिद्युतिधरं,
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचित।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये,
निरालोकेऽलोके निवसति हिमालोकभुवने॥३६॥

---

१. ललितासहस्रनाम
२. ललितासहस्रनाम
३. यामल

शिवसंहिता कार की दृष्टि—

आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्।
शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी।
शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृंभितम्।
पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नाव सीदति॥
तत्र देवः परं तेजः सर्वतंन्त्रेषु मन्त्रिणाः।
चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नाम संशयः॥
तुरीयं त्रितयं लिङ्गं तदाहं मुक्तिदायकः।
ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम्॥
इडा हिपिङ्गला ख्याता **वरणासीति** होच्यते।
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्र भाषितः।
एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यमृषिभिस्तत्वटर्शिभिः।
शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्त्वं सुभाषितम्।
सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरन्ध्रं यतोऽस्तिवै।
ततश्चैषा परावृत्य तदाज्ञापद्मदक्षिणे।
वामनासापुटं याति **गंगेति** परिगीयते।

—शिव संहिता

स्वच्छन्द संग्रहकार कहते हैं—

आज्ञाधारं द्विपत्राब्जं हक्ष द्विदलसंयुतम्।
हंसवतीक्षमापार्श्वं तयोर्मध्ये तु हाकिनी॥

इड़ा और पिङ्गला गंगा और यमुना नदियाँ हैं। उनके ही मध्य 'वारणसी' है। इनमें एक 'वरणा' नदी है और दूसरी 'असी' नदी है। दोनों का मिलन केन्द्र वाराणसी है। इड़ा-पिंगला के मध्य भ्रूद्वय के मध्य 'आज्ञा चक्र' स्थित है।[१]

तिथियाँ, चन्द्रकलाएँ एवं षोडशीविज्ञान

[१] *तिथियाँ और चन्द्रकलायें *

प्रत्येक 'तिथि' किसी न किसी 'चान्द्रकला' से सम्बद्ध है। दोनों (तिथि एवं तत्सम्बद्ध चान्द्रकला) का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

१. शिवसंहिता

तिथियाँ	(तिथियों के खण्ड)	चन्द्रकलायें
(१) 'प्रतिपदा'	(१) *आग्नेयखण्ड*	चन्द्रमा की प्रथमा कला 'त्रिपुरसुन्दरीकला'
(२) 'द्वितीया'		'कामेश्वरीकला'
(३) 'तृतीया'	(१) (२) (३) (४) (५)	'भगमालिनीकला'
(४) 'चतुर्थी'	दर्शा दृष्टा दर्शता विश्वरूपा सुदर्शना	'नित्यक्लिन्नाकला'
(५) 'पञ्चमी'	(२)	'भेरुण्डाकला'
(६) 'षष्ठी'	*सौरखण्ड*	'वह्निवासिनीकला'
(७) 'सप्तमी'	(१) (२) (३) (४) (५)	'महाविद्येश्वरीकला'
(८) 'अष्टमी'	आप्या आप्याय आप्याया सूनृता इरा	'रौद्रीकला'
(९) 'नवमी'	यमाना	'त्वरिताकला'
(१०) 'दशमी'	(३)	'कुलसुन्दरीकला'
(११) 'एकादशी'	*चान्द्रखण्ड*	'नीलपताकाकला'
(१२) 'द्वादशी'		'विजयाकला'
(१३) 'त्रयोदशी'	(१) (२) (३) (४) (५)	'सर्वमङ्गलाकला'
(१४) 'चतुर्दशी'	आपूर्य आपूर्य पूर- पूर्णा पौर्ण-	'ज्वालाकला'
(१५) 'पञ्चदशी'	माणा माणा यन्ती मासी	'मालिनीकला'

(१) प्रतिपदा तिथि में जिस **'त्रिपुरसुन्दरी कला'** का अवस्थान बताया गया है वह **चिद्रूपात्मिका कला** नहीं है।

(२)' नित्याषोडशिकार्णव' में उल्लिखित 'एकादशी तिथि' का **आचार्य लक्ष्मीधर** नित्या नहीं मानते।

(३) 'त्रिपुरसुन्दरी कला' (प्रतिपदावासिनी) को आचार्य लक्ष्मीधर **'चिद्रूपात्मिका मूलविद्या'** इसलिए नहीं मानते क्योंकि वह **'त्रिपुरसुन्दरी कला'** से पृथक रूप में विद्यमान हैं।

[२] **षोडशी** (१) अङ्गिनित्या है। १५ कलायें उसके अङ्ग हैं।

(२) (सर्वाद्या **'भगवतीमहात्रिपुर सुन्दरी)** चिद्रूपा 'षोडशी कला' हैं।

(३) अन्य १५ तिथियों अङ्गी **'षोडशीकला'** के अङ्ग हैं। अतः इन १५ तिथियों में से (१५ चान्द्र कलाओं में) प्रत्येक तिथि पर **'चिद्रूपाषोडशी कला'** का ही सकाराधन करना चाहिए।

नायिकाओं के अङ्गों में भी तिथि क्रमानुसार चन्द्रकला का प्रभाव उन-उन अङ्गों में व्यक्त होता है।

नारीशरीर के अङ्ग एवं चान्द्र कलायें

'रतिरहस्य' के चन्द्रकलाधिकार में देखिए जो इस प्रकार है—

> अङ्गुष्ठे पद गुल्क जानुजघने नामौ च वक्षस्तने।
> कक्षा-कण्ठ-कपोल-दन्तवसने नेत्रालिके मूर्धनि।
> शुक्लाशुक्लविभागतो मृगदृशामङ्गेष्वनङ्ग स्थिति।
> रूर्ध्वाधोगमनेन वामपदतः पक्षद्वये लक्षयेत्॥

गोणीपुत्रकमत—इसके अनुसार—

> 'मूर्धोरः स्थलवामदक्षिणकरे वक्षोरुहोरुद्वये।
> नाभीगुह्यललाटजाठरकटीपृष्ठेषुतिष्ठत्यसौ।
> कक्षाश्रोणिभुजेषु च प्रतिपदं प्रारम्भ्य कृष्णामथ।
> श्वेतायाः प्रभृति क्रमेण मदनो मूर्धानभारोहति।
> **अङ्गेष्वेषु मृगीदृशां मनसिज** प्रस्तावना पण्डिता।
> मात्राः षोडशः चिन्तयति बहलज्योतिः स्फुलिङ्गाकृतीः।'

नन्दिकेश्वर के मत—इसके अनुसार

> 'एकारौकारयुक्ता हरिहरजहराः **पञ्चबाणाः स्मरस्य।'**

कामदेव के पञ्चबाण बीज

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
ह्रीं	क्लीं	ऐं	ब्लूं	स्त्रीं

'भोगच मोक्षश्च करस्थ एव' कहकर त्रिपुरोपासकों के लिए भोग एवं मोक्ष दोनों की सम्प्राप्ति का विधान किए जाने की पृष्ठ भूमि में यही सिद्धान्त अन्तर्निहित है।

* षोडश नित्यायें *

(१) षोडश नित्यायें ही तिथियों के 'मूल' में विद्यमान हैं या नित्यायें ही तिथियों के रूप में प्रकट होती हैं।

(२) १६ कलाओं या तिथियों का मूल केन्द्र **'सहस्रार चक्र'** में स्थित **'चन्द्रमा'** है।

(३) १६हवीं कला **चितिशक्ति'** है। यह न तो उदित होती है और न तो अस्त होती है। यह नित्योदया है। यथार्थतः **'षोडशी कला'** ही नित्या है। अन्य कलायें अर्थात् १५ कलायें इसी **'षोडशीकला'** का आश्रय लेकर विकसित होती हैं किन्तु **'षोडशीकला'** उदयास्तातीता (उदय एवं अस्तमन से अतीत) है। यह चिद्रूपा है। यह चिदात्मिका ही नहीं प्रत्युत् **चितिशक्ति'** है।

षोडश नित्याओं का नाम—

'नित्याषोडशिकार्णव' के प्रथम पटल में इन नित्याओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'शृणु देवि! प्रावक्ष्यामि नित्याषोडशिकार्णवम् ।
न कदाचिन्मयाख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥
तत्रादौ **प्रथमा नित्या** महात्रिपुर सुन्दरी ॥२५॥
ततः **कामेश्वरी नित्या** नित्या च **भगमालिनी** ।
नित्यक्लिन्नाभिधा नित्या **भेरुण्डा** वह्निवासिनी ॥२६॥
महाविद्येश्वरी दूती **त्वरिता** कुलसुन्दरी ।
नित्या **नीलपता** का च विजया सर्वमङ्गला ॥२७॥
ज्वालामालिनी चित्रा चेत्येवं नित्यास्तु षोडश ।
शृणु देवि! महानित्यामादौ त्रिपुर सुन्दरीम् ॥२८॥

तिथियों का रहस्य—

(१) समस्त तिथियाँ उदयास्त-हीन **'षोडशी नित्या कला'** का विस्तार हैं।

(२) 'आज्ञा चक्रं' के ऊर्ध्व भाग में स्थित **चन्द्रमा की १५ कलायें हैं।**

(३) **ये १५ कलायें** 'आज्ञा चक्र' के नीचे कण्ठ में अवस्थित षोडश दलात्मक **विशुद्ध चक्र के १६ दलों में अवस्थित हैं।**

(४) 'सूर्य' एवं 'चन्द्र' देवयान-पितृयान के स्वरूप वाली इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों के मार्ग से अहोरात्र का सञ्चरण होता है।

(५) **'चन्द्रमा'** तो इड़ा नाड़ी-मार्ग से यात्रा करता हुआ ७२००० नाड़ियों को अमृत से सींचता है।

(६) **'सूर्य'** दक्षिण नाड़ी (पिङ्गला नाड़ी) के मार्ग से यात्रा करता हुआ अमृत-बिन्दुओं का उपाहरण करता है। अमृत बिन्दुओं को सोख लेता है।

(७) जब **चन्द्रमा एंव सूर्य** दोनों **'आधार चक्र'** में समाविष्ट (प्रविष्ट) होते हैं तब **'अमावस्या तिथि८** का आविर्भाव होता है।

(८) **कृष्णपक्ष की समस्त तिथियाँ** उसी से आविर्भूत होती हैं। **कृष्णपक्ष'** है क्या?

(९) उपर्युक्त कारणवश 'कुण्डलिनी शक्ति' सूर्य किरण के सम्पर्क से चन्द्रमण्डल से गलती हुई (क्षरित) आमृत बिन्दुओं से परिपूरित आधर कुण्ड में अमृत पीती हुई **सोया करती है।** उसकी यह स्वापावस्था सुषुप्ति) ही **'कृष्णपक्ष'** के नाम से प्रख्यात है। आधार चक्र में अवस्थित शक्ति (कुण्डलिनी की स्वापावस्था ही **'कृष्णपक्ष'** है।

मानव पिण्ड में **शक्ति की सुषुप्ति** ही **'कृष्णपक्ष'** है जो कि प्राणी को अमृत से वञ्चित रखता है।

(१०) जब कोई योगी समाहित चित्त होकर चन्द्रस्थान में चन्द्रमा को एवं सूर्य स्थान में सूर्य को वायु के द्वारा निरुद्ध करने में समर्थ हो पाता है। तब

(क) चन्द्रमा अमृत-क्षरण करने में असमर्थ हो जाता है तथा

(ख) सूर्य अमृत-पान करने में असमर्थ हो जाता है।

(ग) ऐसा होने पर वायु से उत्त्प्रेरित **स्वाधिष्ठानाग्नि के द्वारा** आधार चक्रस्थ अमृत कुण्ड शुष्क हो जाता है।

(घ) अमृत कुण्ड (मूलाधारस्थ अमृत कुण्ड) के शुष्क हो जाने पर कुण्डलिनी विराहार होने के कारण सोते से जाग उठती है और सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई **तीनों ग्रंथियों** (ब्रह्मग्रंथि। विष्णु ग्रंथि एवं रुद्र ग्रंथि) का भेदन करती हुई एवं इसी क्रम में षट् चक्रों का भेदन करती हुई **'सहस्त्रदल कमल' के मध्य** अवस्थित चन्द्रमण्डल को उसती है।

(ङ) चन्द्रमण्डल के उसे जाने के कारण वह **पीयूष धर चन्द्रमा** से क्षरित पीयूष धारा 'आज्ञाचक्र' में स्थित **'चन्द्रमण्डल'** को अपने पीयूष बिन्दुओं से आप्लावित कर देती है।

(च) उन क्षरित पीयूष-बिन्दुओं से सारा शरीर ही अमृतात्मक (अमृत-प्लावित) हो उठता है।

(छ) आज्ञा चक्र में उवस्थित चन्द्रमा की १५ नित्य कलायें हैं। ये 'आज्ञाचक्र' के ऊपर अवस्थित १५ कलायें ही १५ नित्यायें हैं जो कि आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा से आविर्भूत होती हैं।

(ज) ये ही १५ कलायें या १५ नित्यायें कण्ठस्थ 'विशुद्ध चक्र के १६ दलों में अवस्थित हैं।

(झ) **सहस्त्रादल कमल'** के मध्य में एक चन्द्रमण्डल अवस्थित है उसे ही **'बैन्दव स्थान'** कहते हैं।

(ञ) इस **बैन्दव स्थान'** की कला का नाम है—

'चित्कला' 'बैन्दव कला'। यह कला चिन्मयी एवं आनन्दरूपा है और 'आत्मा' कही जाती है। उसे ही 'त्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं।

(११) **'अङ्ग नित्या'**—१५ कलायें हैं १५ नित्यायें हैं १५ तिथियाँ हैं। (अङ्गनित्या) = १५ कलाएँ, १५ नित्यायें, १५ तिथियाँ)

'अङ्गिनित्या' 'अङ्गिनित्या' तो केवल एक है और वह है **'षोडशी'**।

(१२) **चन्द्रमा की प्रथम कला** का नाम है **'प्रतिपदा'**।०ाह प्रतिपदा नामक 'कला' **सूर्यमण्डल से आविर्भूत** होती है। और कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है।

(१३) **शुक्ल पक्ष में** सूर्य मण्डल से निकली हुई **'द्वितीया कला'** ही **'द्वितीया तिथि'** कहलाती है और वह कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है। इसे ही **'द्वितीया तिथि'** कहते हैं। इसी प्रकार **समस्त कलाओं एवं तिथियों का उदयास्त** हुआ करता है।

(१४) **'पौर्णमासी'** किसे कहते हैं?

जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा की १५ कलाओं का व्यवधान होता है उसे **'पौर्णमासी'** कहते हैं।

(१५) **'अमावस्या'** किसे कहते हैं?

जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का १५ कलाओं के साथ अत्यन्त संयोग होता है उसे **अमावस्या** कहते हैं।

(१६) **'कौल मत' एवं 'समपि मत' में दृष्टिभेद**—

'कोलमत' के अनुसार के प्रत्येक दिन (१६ नित्याओं में से) एक-एक (चन्द्रकलात्मिका) नित्या की पूजा-उपासना करनी चाहिए। किन्तु 'समयिमत' के अनुसार सभी नित्याओं की उपासना करनी चाहिए सरांश यह कि (१) **महात्रिपुर सुन्दरी** ही एकमात्र **'अङ्गिनित्या'** है। वे ही 'चिद्रूपा' एवं 'षोडशीकला' कहलाती हैं। वे १५ कलाओं से अतीत हैं और १५ कलायें उनका ही आंशिक स्वरूप हैं। १५ नित्यायें **'अङ्गनित्या'** है और १५ तिथियों के रूप में (उनमें) अवस्थित हैं।

'षोडशी', अमावस्या और प्रतिपदा—तांत्रिक शैवमत के अनुसार—

(क) **'प्राण'** सूर्य है और **'अपान'** चन्द्रमा है।

(ख) प्राण (सूर्य) के आक्रमण से चन्द्रमा एक-एक कला का त्याग करता जाता है और अन्त में **अमावस्या'** के दिन **चन्द्रमा, सूर्य** में विलीन हो जाता है। इसके अनन्तर चन्द्रमा पुनः उदित होता है। चन्द्रमा में १६ कलाएँ हैं जिनमें केवल १५ कलाएँ ही विलीन हो पाती हैं। **'षोडशी कला'** नित्य है।

(ग) **'षोडशी कला'** सूर्य में विलीन या अस्त नहीं हो पाती वह कभी भी (अन्य १५ कलाओं की भाँति) क्षीण नहीं हुआ करती।

(१७) चन्द्र की **'षोडशी कला'** शुद्ध चिति शक्ति है। वह चिन्मात्र है। वह **'महात्रिपुर सुन्दरी'** का अपर अभिधान है। **'षोडशी'** ही महात्रिपुर सुन्दरी हैं। अन्य सभी चान्द्र कलायें घटती-बढ़ती रहती हैं। (उनका उदय एवं अस्त दोनों होता रहता है अतः वे क्षीणस्वभावा हैं) किन्तु **'षोडशीकला'** जो कि है तो चन्द्रमा की ही कला किनतु यह उदयास्त से रहित, नित्यादित एवं चिन्मात्र आद्या शक्ति है। **चन्द्रमा का बिम्ब** सदैव एक रस, एक समान एवं एकरूप रहा करता है उसमें परिवर्तन (परिवर्धन एवं परिक्षरण, उदय एवं अस्त, क्षीणता एवं वृद्धि आदि) नहीं हुआ करते।

(१८) प्रत्येक कला १६हवीं कला (षोडशी) का अङ्ग मात्र है और क्षीण तथा असत हो जाने पर **'षोडशी'** से ही आविर्भूत होती हैं।

(१९) प्रत्येक कला की उपासना एवं वरिवस्या (पूजन एवं ध्यान) उससे सम्बद्ध तिथि में १६हवीं कला के साथ की जाती है।

(२०) **'षोडशी कला'** भगवती राजराजेश्वरी ही हैं—

पराभट्टारिका महात्रिपुर सुन्दरी ही हैं। इन्हीं के नाम पर इससे सम्बद्ध विज्ञान **'षोडशी विज्ञान'** कहलाता है।

(२१) **'षोडशी कला' का निवास** कहा है?

'षोडशी कला' का निवास **'सहस्रार चक्र'** में है।

(२२) **'षोडशी कला'** के प्रकाश से ही समस्त कलाएँ प्रकाशित होती हैं।

(२३) यद्यपि भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का मन्त्र १५ अक्षरों का है किन्तु एक अक्षर गुप्त है अतः उसको भी लेकर 'पञ्चदशी' या पञ्चदशाक्षरी' में १५ अक्षर नहीं प्रत्युत् १६ अक्षर हैं। चूँकि १६हवाँ अक्षर निर्विकल्प निर्बीज समाधि में योगियों को ही प्रत्यक्षीकृत एवं अनुभूत हो पाता है। अतः इसे प्रत्यक्ष दृष्टि से **'पञ्चदशाक्षरी'** या **'पञ्चदशी'** मन्त्र ही कहा जाता है।

यदि साधना की दृष्टि से देखें तो **'पञ्चदशी'** मन्त्र १६हवें अक्षर (षोडशाक्षर) का विकास है, उसका प्रस्तार है उसका प्रकाश है, अर्थात् बिम्ब की रश्मियों का एकीभूत (समष्टिगत) एवं अक्षरात्मक श्रीविग्रह है। **'षोडशी'** यदि चन्द्रमा है तो १५ अक्षर या १५ कलाएँ या १५ नित्यायें या १५ तिथियाँ—उसक अभिव्यक्तियाँ हैं।

(२४) १६ अक्षरों के इस मन्त्र में **१५ अक्षर साधन रूप हैं** और **१६हवाँ अक्षर** (भगवती षोडशी = महात्रिपुर सुन्दरी) साध्य है।

(२५) षोडशाक्षर-संघटित यह (पञ्चदशी कलाने वाला) मन्त्र **'षोडशी विद्या'** कहलाता है। पुरुष देवता के मन्त्रों को **'मन्त्र'** एव नारी देवताओं के मन्त्र को **विद्या** कहा जाता है अतः षोडशाक्षर मन्त्र = **'षोडशीविद्या'**।।

(२६) **मन्त्राक्षर एवं नित्यायें**— भगवती राजराजेश्वरी के मन्त्र 'पञ्चदशी' मन्त्र या 'विद्या' के जितने भी अक्षर हैं वे सभी षोडश नित्याओं के रूप में अर्थात् वे षोडश नित्यायें ही अक्षराकार रूप में षोडशीविज्ञान के रूप में (पञ्चदशी विद्या के रूप में अवस्थित हैं। अर्थात् यदि हम 'क' 'ए' 'ई' 'ल' 'ह्रीं' 'ह' 'स' 'क' 'ह' 'ल' 'ह्रीं', 'स' 'क' 'ल' 'ह्रीं'—अक्षरों का उच्चारण करते हुए भगवती राजराजेश्वरी के मन्त्रों का जप करते हैं तो इस जप के साथ ही साथ हम—

(क) महात्रिपुर सुन्दरी के (अक्षरात्मक) **'सूक्ष्मशरीर'** का ध्यान करते हैं या पूजा करते हैं—

(ख) **१६ नित्याओं** का ध्यान एवं पूजा करते हैं,

(ग) १६ **चान्द्रकलाओं** (सहस्रारस्थ चन्द्रमा की १६ कलाओं) का ध्यान एवं पूजा करते हैं।

(घ) १६ चान्द्र कलाओं की स्थूलाभिव्यक्तस्वरूप **१५ तिथियों का ध्यान एवं पूजा** करते हैं।

(ङ) भगवती का ध्यान चन्द्रमा के बिम्ब के मध्य करने का विधान है अतः हम उक्त पञ्चदशी मंत्र का जप करते हुए एक साथ—

(१) समस्त चान्द्र कलाओं (२) समस्त नित्याओं (३) समस्त तिथियों एवं (४) भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का भी ध्यान एवं उनकी पूजा करते हैं।

(२७) पञ्चदशी मंत्र और साम्य (सामरस्य)

(१) **पञ्चदशी और त्रिपुरसुन्दरी** के साथ साम्य या **सामरस्य**

(२) **'पञ्चदशीविद्या' और चान्द्र-कलाओं** के **सामरस्य**

(३) **'पञ्चदशीविद्या'** और **नित्याओं** के साथ **सामरस्य**

(४) **'पञ्चदशीविद्या'** और **तिथियों** के साथ **सामरस्य**

(५) **'पञ्चदशीविद्या'** एवं **लक्ष्मीबीज** पराकला 'श्री' के साथ **सामरस्य**

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के शरीराङ्गों का 'श्रीविद्या' से सम्बन्ध

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का **श्रीविद्या** के त्रिखण्डात्म स्वरूप का उनके **त्रिखण्डात्मक शरीर के साथ** इस प्रकार सम्बन्ध है—

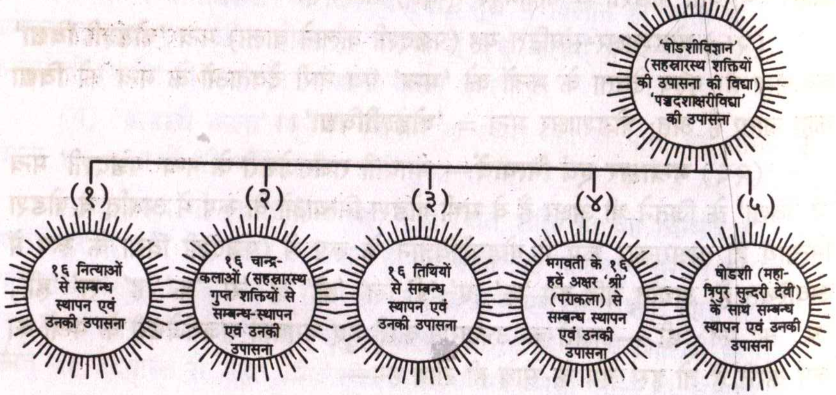
'षोडशीविज्ञान' (सहस्रारस्थ शक्तियों की उपासना की विद्या) 'पञ्चदशाक्षरीविद्या' की उपासना
(१)
१६ नित्याओं से सम्बन्ध स्थापन एवं उनकी उपासना
(२)
१६ चान्द्र-कलाओं (सहस्रारस्थ गुप्त शक्तियों से सम्बन्ध-स्थापन एवं उनकी उपासना
(३)
१६ तिथियों से सम्बन्ध स्थापन एवं उनकी उपासना
(४)
भगवती के १६ हवें अक्षर 'श्री' (पराकला) से सम्बन्ध स्थापन एवं उनकी उपासना
(५)
षोडशी (महा-त्रिपुर सुन्दरी देवी) के साथ सम्बन्ध स्थापन एवं उनकी उपासना

क्र.	मन्त्राक्षर	भगवती के शरीराङ्ग
(१) 'वाग्भवकूट'	'क, ए, ई, ल, ह्रीं	भगवती का मुख
(२) 'कामराजकूट'	'ह, स, क ह, ल, ह्रीं	भगवती के कण्ठ से नीचे के भाग से उनके कटि तक का भाग
(३) 'शक्तिकूट'	'स, क, ल ह्रीं'	भगवती के कटि से नीचे का समस्त शराराङ्ग

ग्रंथित्रय विद्या और भगवती के शरीराङ्गों के साथ सामरस्य

(१)	'रुद्रग्रंथि'	'क, ए, ई, ल, ह्रीं	आग्नेय	भगवती का मुख
(२)	'विष्णुग्रंथि'	'ह, स, क ह, ल, ह्रीं	सौर	भगवती के कण्ठ से नीचे कटि तक का शरीराङ्ग
(३)	'ब्रह्मग्रंथि'	'स, क, ल ह्रीं'	चान्द्र	कटि से नीचे तक का (भगवती त्रिपुर सुन्दरी का शरीराङ्ग)

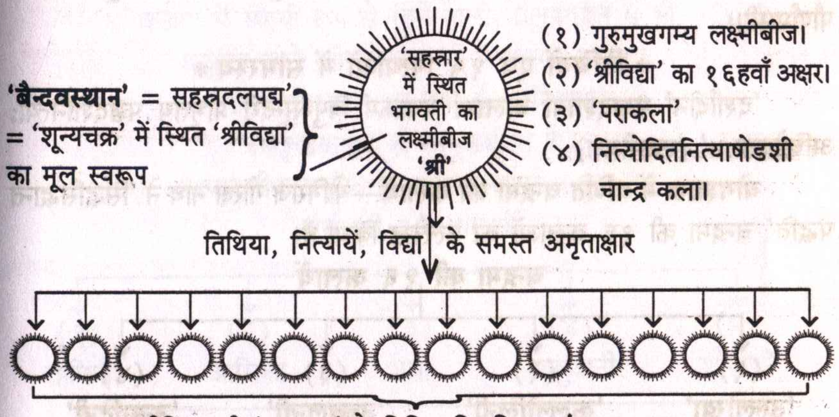
'बैन्दवस्थान' = सहस्रदलपद्म' = 'शून्यचक्र' में स्थित 'श्रीविद्या' का मूल स्वरूप
'सहस्रार' में स्थित भगवती का लक्ष्मीबीज 'श्री'
(१) गुरुमुखगम्य लक्ष्मीबीज।
(२) 'श्रीविद्या' का १६हवाँ अक्षर।
(३) 'पराकला'
(४) नित्योदितनित्याषोडशी चान्द्र कला।
तिथिया, नित्यायें, विद्या के समस्त अमृताक्षार

श्रीविद्या की 'पराकला' के विभिन्न विकसित एवं व्यक्त स्वरूप

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर 'षोडशीकला' एवं 'श्री विद्या' की इस प्रकार व्याख्या करते हैं—

(क) 'षोडशीकला'—'षोडशी कला नाम शकार—रेक—ईकार—बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम **श्रीविद्येति।**

(ख) श्री बीजात्मिका विद्या **श्रीविद्येति** रहस्यम्।

(ग) **ककारादिक वर्ण एवं षोडशनित्याओं का सम्बन्ध**—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि ककाराधिक वर्ण षोडश नित्याओं की प्रकृति या स्वरूप के हैं—

'एवं षोडश नित्यानां प्रकृतिभूता ककारादयः ।'

षोडश नित्याओं का तिथियों से सम्बन्ध—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि

(क) **षोडश नित्यायें**—षोडशनित्यायें शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पौर्णमासी की तिथि पर्यन्त तिथि रूप में विद्यमान है।

(ख) **षोडश नित्यायें**—ये (नित्यायें) कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि से अवस्या की तिथ पर्यनत भी तिथि रूप से विद्यमान हैं। इनका ना **'चन्द्रकला'** है।**ज्योतिषशास्त्र** में कहा गया है—

'प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्लकृष्णयोः ।।'
'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशीतु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।'

—सुभगोदय

तिथियों के वैदिक नाम—(१) दर्शा (२) दृष्टा (३) दर्शता (४) विश्वरूपा (५) सुदर्शना (६) आप्यायमान्ना (७) आप्यायमाना (८) आप्याया (९) इरा (१०) सूनृता (११) आपूर्यमाणा (१२) आपूर्यमाणा (१३) पूरयन्ती (१४) पूर्णा (१५) पौर्णमासी।।

* तिथियों एवं १५ नित्याओं में सामरस्य *

'दर्शादीनां **पञ्चदशानां कलानां** यथाक्रमं त्रिपुरसुन्दरी प्राभृतय पञ्चदशनित्याः अधिदेवताः।।' (लक्ष्मीधरा)

योगशास्त्र में वर्णित चन्द्रमा की कलायें—योगिराज गोरक्ष नाथ ने 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' चन्द्रमा की १६ कलाओं का उल्लेख किया है।

चन्द्रमा की १६ कलायें

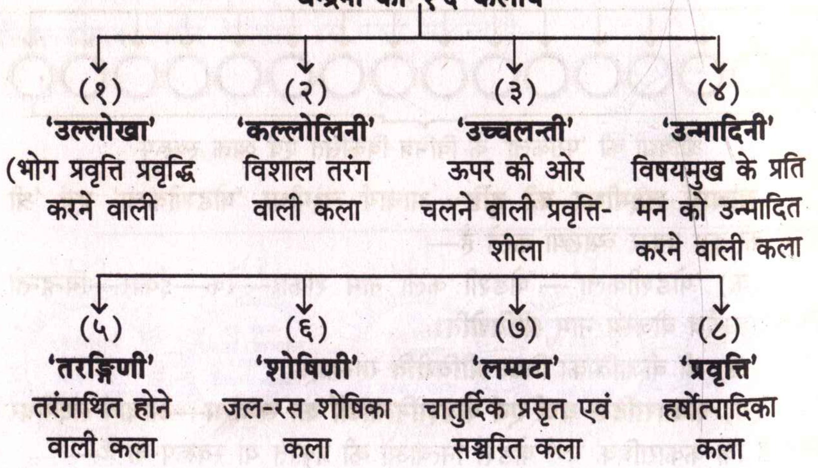
(१) **'उल्लोखा'** (भोग प्रवृत्ति प्रवृद्धि करने वाली
(२) **'कल्लोलिनी'** विशाल तरंग वाली कला
(३) **'उच्चलन्ती'** ऊपर की ओर चलने वाली प्रवृत्ति-शीला
(४) **'उन्मादिनी'** विषयमुख के प्रति मन को उन्मादित करने वाली कला
(५) **'तरङ्गिणी'** तरंगाथित होने वाली कला
(६) **'शोषिणी'** जल-रस शोषिका कला
(७) **'लम्पटा'** चातुर्दिक प्रसृत एवं सञ्चरित कला
(८) **'प्रवृत्ति'** हर्षोत्पादिका कला

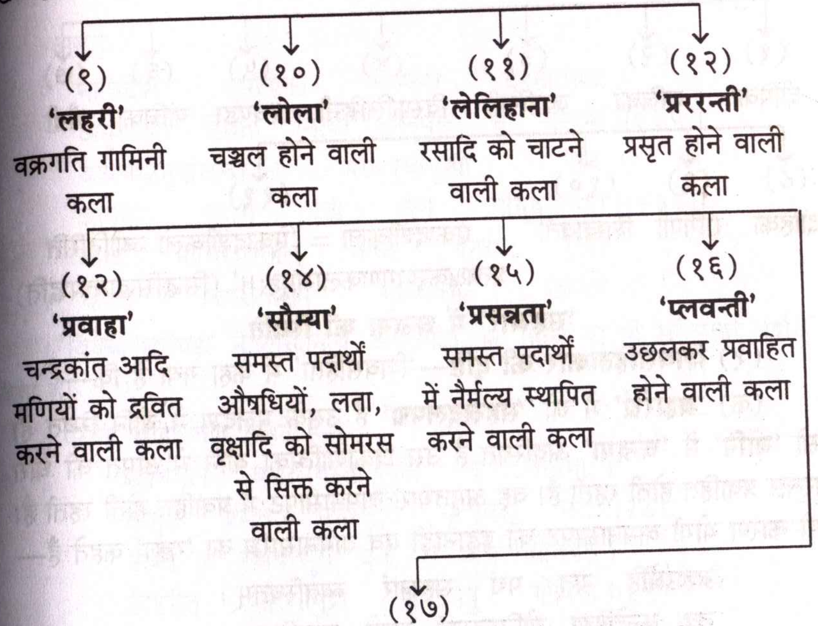
(९) **'लहरी'** वक्रगति गामिनी कला
(१०) **'लोला'** चञ्चल होने वाली कला
(११) **'लेलिहाना'** रसादि को चाटने वाली कला
(१२) **'प्ररन्ती'** प्रसृत होने वाली कला
(१२) **'प्रवाहा'** चन्द्रकांत आदि मणियों को द्रवित करने वाली कला
(१४) **'सौम्या'** समस्त पदार्थों औषधियों, लता, वृक्षादि को सोमरस से सिक्त करने वाली कला
(१५) **'प्रसन्नता'** समस्त पदार्थों में नैर्मल्य स्थापित करने वाली कला
(१६) **'प्लवन्ती'** उछलकर प्रवाहित होने वाली कला
(१७)

चन्द्रमा में स्थायी रूप से रहने वाली, प्रलयकाल में भी
अक्षुण्य रहने वाी सोमरसमयी निजकला नामक
'सप्तदशीकला' का नाम है—**'निवृत्ता'**
'निवृत्ताकला' ही **अमृतकला** है।

'सप्तदशीकला निवृत्तिः **साऽमृतकला** ।। (६५)

सूर्य की १२ कलायें

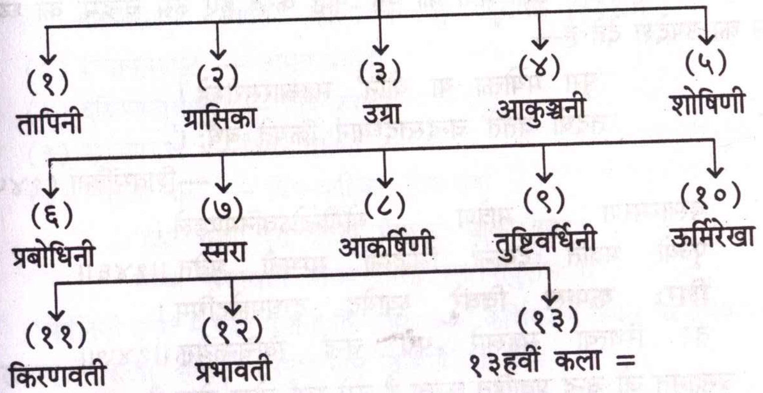
(१) तापिनी
(२) ग्रासिका
(३) उग्रा
(४) आकुञ्चनी
(५) शोषिणी
(६) प्रबोधिनी
(७) स्मरा
(८) आकर्षिणी
(९) तुष्टिवर्धिनी
(१०) ऊर्मिरेखा
(११) किरणवती
(१२) प्रभावती
(१३) १३हवीं कला =

'त्रयोदशी स्वप्रकाशता **निजकला**' (६६)

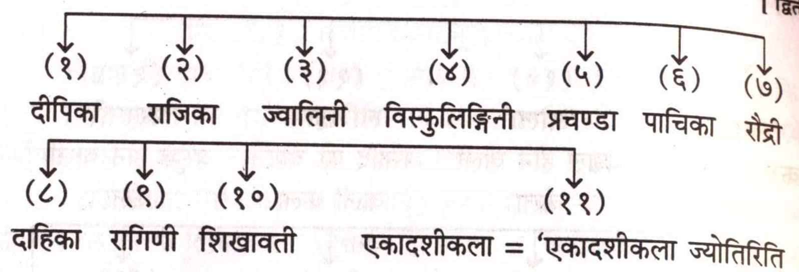

एकादशीकला = ‘एकादशीकला ज्योतिरिति
प्रत्यक्षकरणगुणकलासमूहः॥’ (सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

‘सहस्रार’ में चन्द्रमा की स्थिति

(१) **शिवसंहिताकार की दृष्टि**—‘शिवसंहिता’ में कहा गया है कि—

(क) **‘ब्रह्मरंध्रं’** में जो **‘सहस्रदलपद्म’** है उसके मूलदेश में योनि स्थित है। उसी **‘योनि’** में **‘चन्द्रमा’** अवस्थित हैं उस त्रिकोणात्मिका योनि से अमृत की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। वह अमृतधारा वामनासापुट में प्रवाहित होती रहती है। इसी कारण योगी वामनासापुट की इड़ानाड़ी एवं वामनासारंध्र का ‘गङ्गा’ कहते हैं—

ब्रह्मरंध्रेहि यत् पद्मं सहस्रारं व्यवस्थितम्।
तत्र कन्देहिया योनिस्तस्यां चन्द्रो व्यवस्थितः।
त्रिकोणाकारतस्तस्याः सुधाक्षरति सन्ततम्।
इडायाममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः।
अमृतं वहते धारा धारारूपं निरन्तरम्।
वामनासापुटं याति गंगोत्युक्ता हि योगिभिः ॥१०३॥
वामनासापुटं’ याति गङ्गेति परिगीयते ॥१०२॥

‘शिवसंहिताकार’ उसी बात की पुनः पुष्टि करते हुए उस चन्द्रमा का ध्यान करने का उपदेश देते है—

‘पुरा मयोक्ता या योनि’ सहस्रारसरोरुहे।
तदधो वर्तते चन्द्रस्तद्ध्यानं क्रियते बुधैः।’

—शिवसंहिता (१४५)

यस्यस्मरण मात्रेण योगीन्द्रोऽवनिमण्डले।
पूज्यो भवति देवानां सिद्धानां सम्भतो भवेत् ॥१४६॥
शिरः कपाल विवरे ध्यायेद् दुग्धमहोदधिम्।
तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्रं विचिन्तयेत् ॥१४७॥

चन्द्रामृत जो चन्द्र प्रवाहित करता है उसे सूर्य सोख लेता है—

‘यत्किचित्स्रवते चन्द्रदमृतं दिव्यरूपिणः।
तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः॥’ (हठयोग प्र. ७७)

अमृत

नाभिदेशे वसत्येको भास्करो दहनात्मकः।
अमृतात्मा स्थितो नित्यं तालुमूले च चन्द्रमा ॥१३५॥
वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रो ग्रसत्पूर्ध्वमुखो रविः।
ज्ञातव्यं करणं तत्र येन पीयूषमाप्यते ॥१३६॥
ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालु चोर्ध्वं भानुरघः शशी।
करणं विपरीताख्यं गुरुवाक्येन लभ्यते ॥[1]

‘विवेक मार्तण्ड’ में गोरक्षनाथ ‘अमृतपान’ की विधि का भी सविस्तार वर्णन किया है।

घेरण्ड संहिताकार कहते हैं—

नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमाः।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशे नरः ॥२८॥
ऊर्ध्वे च गमयेत्सूर्यं चन्द्र च अध आनयेत्।
विपरीत करणीमुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥२९॥

शिवसंहिताकार कहते हैं—

मूलाधारेहियत्पद्मचतुष्पत्रं व्यवस्थितम्।
त मध्ये हि या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः।
तत्सूर्य मण्डलाद्वारं विषं क्षरति सन्ततम्।
पिंगलायां विषं यत्र स्वयं यात्यतितापनम्।
विषं तत्र वहन्ती या धारारूपं निरन्तरम्।
दक्षनासापुटं याति कल्पितेयं तु पूर्ववत् ॥१०८॥

(१) वामानासापुट — अमृत-प्रवाह।
(२) दक्षिणानासापुट — विष-प्रवाह।
(३) सूर्यमण्डल — विष- वर्षण।
(४) पिङ्गला नाड़ी — विष-वाहिका। विष-वर्षा

‘इडा गङ्गा पुरा प्रोक्ता पिङ्गला चार्कपुत्रिका।
मध्या **सरस्वती** प्रोक्ता तासां सङ्गोतिदुर्लभः ॥[2]

‘मालिनी तन्त्र’ में कहा गया है कि सहस्रार की कर्णिका में स्थित **‘चन्द्रमण्डल’** में **‘सप्तदशी कला’** है और उसका नाम ‘उन्मनी’ भी है—

---

[1] विवेक मार्तण्ड
[2] शिवसंहिता

'सहस्रारकर्णिकायां **चन्द्रमण्डलमध्यगा** ।
सर्वसंकल्परहिता कला 'सप्तदशी' भवेत् ।
'उन्मनी' नामतस्या हि भवपाशनिकृन्तनी ।'

त्रिकोणस्थ कर्णिका में **'पूर्णचन्द्र'** की कल्पना करनी चाहिए—

'कर्णिकायां त्रिकोणस्थं **पूर्णचन्द्रं** तु चिन्तयेत् ।'

पूर्णानन्द की दृष्टि—पूर्णानन्द 'षट्चक्र निरूपणम्' में कहते हैं कि—'उस सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य परमामृत समूह से अत्यन्त स्निग्ध दीप्तिवाला, रश्मियों के समूह को स्फुरित करता हुआ निश्कलङ्क एवं निर्मल **पूर्णचन्द्र मण्डल** विद्यमान है। उसके मध्य में विद्युत के रुप वाला एक 'त्रिकोण' निरन्तर स्फुरित हो रहा है। उसके मध्य **बिन्दुरूप शून्य'** स्फुरित हो रहा है जो कि सर्वदेव सेवित एवं अत्यन्त गुप्त है—

'समास्ते तस्यान्तः शशपरि रहितः **शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः** ।
स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासी ।
त्रिकोणं' तस्यान्त स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं ।
तदन्तःशून्यंतत् सकलसुरगणैः सेवितं चाति गुप्तम् ।'

(१) 'सहस्रार' की कर्णिका के मध्य एक **'चन्द्रमण्डल'** है ।

(२) उसके मध्य में स्थित **'त्रिकोण'** के अन्तर्गत बिन्दुरूप शून्य है ।

(३) **चन्द्रमण्डल में परमामृत** है। यहीं से **परमामृत** का क्षरण हुआ है ।

(४) इसी **चन्द्रमण्डल के मध्य** एं **'त्रिकोण'** है ।

(५) यह चनद्रस्थ **'त्रिकोण'** विद्युदाम ह। त्रिकोण में बिन्दु रूप शून्य है। इसे ही **'परम बिन्दु'** कहते हैं। यह चैतन्यस्वरूप है। यह शून्याकार है। इसे **'शून्य'** भी कहते हैं 'परमबिन्दु' अतिगुप्त सर्वदेवोपासित, सर्ववन्दित एवं परमध्येय है।

(६) 'सहस्रार' में ही **निर्वाणकला'** एवं १६हवीं कला ('अमा कला') स्थित है। **'निर्वाण कला'** के मध्य **'निर्वाणशक्ति'** है। 'निर्वास शक्ति' में नित्यानन्द स्वरूप (शून्यरूप) शिव का स्थान हैं।

श्लोक क्रमांक ३२ : अमावस्या तिथि पर पूजा का निषेध

कलाया : षोडश्याः प्रतिफलित बिम्बेन सहितं,
तदीयैः पीयूषैः पुनरहिधकाप्लावित तुनः ।
सिते पक्षे सर्वस्तिथय इह कृष्णेऽपि च समा,
यदा चामावास्या भवति न हि पूजा समयिनाम् ।।३२।।

[(हे भगवती!) तेरी (सहस्रास्थ) **'षोडशी कला'** एवं उसके प्रतिफलित बिम्ब (आज्ञा चक्र के चन्द्रमा) से **सुधा-स्राव** के द्वारा समस्त शरीर अधिकाधिक आप्लावित होता रहा है। यह शरीर का सुधासिञ्चन शुक्ल पक्ष की समस्त तिथियों एवं इसी प्रकार समान रूप से कृष्णपक्ष में भी होता रहता है किन्तु जब अमावस्या आती है तब नहीं होता अतः अमावस्या की तिथि पर सामयिकों द्वारा पूजा निष्पादित नहीं की जाती।।३२।।)

सरोजिनी (व्याख्या)—* 'षोडशी' और पञ्चमी मंत्र' *

(१) **'षोडशी कला'** स्वयं राजराजेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी ही हैं। **'षोडशी'** पञ्चदशी विद्या का १६हवाँ अक्षर है। इसका स्थान **'सहस्रार'** है।

(२) **'षोडशी'** के प्रकाश से समस्त कलायें प्रकाशित होती हैं।

(३) १६ अक्षरों से निर्मित यह श्री विद्या **'षोडशीविद्या'** कहलाती है। 'श्रीविद्या' (पञ्चदशी मन्त्र) में प्रयुक्त १६ अक्षरों को १६ नित्याओं के रूप में ग्रहण करना चाहिए अर्थात् = 'पञ्चदशी मन्त्र' के—

* १६ अक्षर = १६ नित्यायें।

(४) भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के तीन कूट हैं—पञ्चदशी विद्या, कूटत्रद में विभक्त है।

(क) **'वाग्भवकूट' (ख) 'कामकला कूट'** (ग) **'शक्ति कूट'**

इस विद्या में १५ अक्षर है। इसीलिए इसे **'पञ्चदशी'** या **'पञ्चदशाक्षरी'** कहा गया है।

पञ्चदशी मन्त्र का स्वरूप

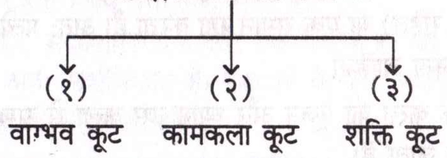

१६ अक्षरों की यह 'श्रीविद्या' (यह पञ्चदशी मन्त्र) ही **'षोडशी विद्या'** है। ये १६ अक्षर १६ नित्यायें हैं। 'श्रीविद्या अन्तिम अक्षर = **एकाक्षरी लक्ष्मीबीज (श्रीं)** ही—**'पराकला'** एवं नित्या है। इस **'पराकला'** (श्रीं)

सारांश यह कि 'एकाक्षरीलक्ष्मी बीज' ही नित्या है। उसके द्वारा ही समस्त विद्या **'श्रीविद्या'** कहलाती है क्योंकि यही एकाक्षरी लक्ष्मी बीज **'श्रीं'** है। यह शुद्ध चिति शक्ति के रूप में संस्थित

सहस्रारस्थ चन्द्रमा की **सोलहवीं कला** है। यह विशुद्ध चक्र के १६ दलों पर प्रतिबिम्बित होती है।

प्रथम कला का प्रकाश पूर्व दिशा से आरम्भ होकर १६हवीं कला के ईशान पूर्व कोण के पत्र पर होता है।

षोडशी (१६हवीं) कला के अधीनस्थ ही अन्य समस्त कलाओं में वृद्धि एवं क्षय (घटा बढ़ी) होता रहता है। अन्य कलायें स्वतंत्र नहीं है वे सभी 'षोडशी' पर नर्भिर हैं। इसी कारण इस विद्या की संज्ञा **'श्रीविद्या'** है।

(१) कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष की जो भी तिथियाँ होती हैं वे सभी १६ चन्द्र कलायें कहलाती हैं। इन तिथियों में पूर्णिमा एवं अमावस्या भी सम्मिलित है।

(२) ये समस्त कलायें शुक्ल पक्ष में सूर्य के योग से उद्भूत होती हैं। कृष्ण पक्ष में ये कलायें सूर्य में अस्त (निलीन) हो जाती हैं।

(३) **कलाओं का अस्तक्रम इस प्रकार है—**

प्रथम कला शुक्ल पक्ष की **प्रतिपदा को उदित** होकर कृष्ण पक्ष की **प्रतिपदा में अस्त** हो जाती है। इसी प्रकार समस्त कलाओं का उदयास्त क्रम है।

(४) **पूर्णिमा की सम्पूर्ण** कला **अमावस्या** में **अस्त** हो जाती है।

(५) **अमावस्या को** (पूर्णिमा की कला अस्त हो जाने पर) जो चन्द्रकला रहती है वही **'षोडशी'** १६हवीं नित्या कला है। ऐसा इसलिए है क्योंकि चन्द्रमा का यही यथार्थ बिम्ब प्रत्येक कला में सूर्य के प्रकाश से क्षय-वृद्धि करती हुई कलाओं के रूप में प्रकाशित होता है।

(६) चितिशक्ति की १५ कलायें पञ्चदशाक्षरी के १५ अक्षरों से सम्बद्ध हैं तथा १६हवीं कला शुद्ध चिति शक्ति चिन्मात्र 'निर्विकल्प समाधि' में संस्थित स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी हैं क्योंकि अन्य सभी कलाओं में वृद्धि-क्षय होता रहता है किन्तु चन्द्र बिम्ब एकरस (क्षय वृद्धि रहित) या एक समान रहा करता है। अत: प्रत्येक कला को १६हवीं कला का अङ्ग मानना चाहिए।

(७) प्रत्येक कला का पूजन और ध्यान उस कला से सम्बद्ध तिथि में १६हवीं कला सहित किया जाता है।

(८) षट् चक्र वेधन की प्रक्रिया के अन्तर्गत भगवती कुण्डलिनी सहस्रारस्थ चन्द्रमा को उस कर उसमें छिद्र कर देता है और उससे अमृत-स्राव होन पर वह अमृत 'आज्ञा चक्र' को अमृतायित कर देता है। इसका प्रभाव यह होता है कि वहाँ चन्द्रमा की **समस्त कलायें नित्य चमकने लगती** हैं जिसके कारण वे **'नित्या'** कही जाती हैं।

(९) इसके उपरान्त ये नि:शेष कलायें **'विशुद्धि चक्र'** पर अवतरण करके इस पद्म की १६ पंखुड़ियों पर दीप्तिमान हो उठती हैं।

(१०) अन्तिम चक्र (सहस्रार) के मध्य में संस्थित **चन्द्रमण्डल को 'बैन्दवस्थान'** कहा जाता है। यह शुद्ध चितिशक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है। इसे ही **'श्री'** या **'महात्रिपुर सुन्दरी** कहते हैं।

त्रिपुरसुन्दरी षोडश कलात्मिका है।

'वासनासुभगोदय' का मत—

'दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताद्या कला: पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।'

१५ कलायें क्या है?

(११) **१५ कलायें**

(१) दर्शा (२) दृष्टा (३) दर्शिता (४) विश्वरूपा (५) सुदर्शना (६) अपप्यायमाना
(७) आप्यायमाना (८) आप्याया (९) आप्याया (१०) सूनृता (११) दूरा (१२) आपूर्यमाणा
(१३) आपूर्यमाण (१४) पूरयन्ती (१५) पूर्णा (१६) पूर्णमासी —ये १५ कलायें हैं।

(१२) शुक्ल पक्ष की तिथियों की अधिष्ठात्री देवियाँ 'श्रीचक्र' में निवास करने वाली १५ नित्यायें हैं।

= तिथियों की अधिष्ठात्री देवियाँ = १५ नित्यायें।

(१३) १६हवीं नित्या चिद्रूपात्मिका है।

यह 'षोडशी' सदाशिवरूपा है और सर्वाधिष्ठात्री है। वह स्वयं नित्याओं के रूप में प्रकाशमान है अत: सर्वाधिष्ठातृ है। पञ्चदशी के १५ अक्षरों को १५ नित्या और १६हवीं को स्वयं श्री समझना चाहिए।

१५ कलायें

(क)	मंत्र के अक्षर	खण्ड	(ख)
(१) १५ कलायें	५	अग्निखण्ड	(१) १६हवीं कला =
(२) १५ नित्यायें =	५	सूर्यखण्ड	(२) 'षोडशी'
(३) १५ पञ्चदशी विद्या के अक्षर =	५	सोमखण्ड	(३) **महात्रिपुरसुन्दरी**
१५ कलायें	(पञ्चदशी के ५, ५ एवं ५ अक्षर तो खण्डत्रय में विभाजित हैं। किन्तु १६हवीं कला खण्डत्रय से अतीत है।)		१६हवीं कला सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि से अतीत है **'षोडशी'**

'षोडशी'—इसकी उपमा **'सरघा'** से दी जाती है।

—'इयं वाव सरघा' (तै.ब्रा. ३/१०/१०)

'सरघा' (मधुमक्खी)। मधुमक्खियाँ रात्रि के समय अमृत का निर्माण करती हैं।

'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मनुः॥'

योगी रात्रि के समय ही कुण्डलिनी का प्रबोधन (जागरण) किया करते हैं।, दिन में नहीं, योगी शुक्ल की रात्रियों में ही जागकर शक्ति को जागृत करते हैं। श्रीविद्या के साधक भी रात्रियों में ही शक्तिसाधना करते हैं।

जो १६ नित्यायें है। उनका स्थान विशुद्ध चक्र है। जो शुद्ध चिति है उस अमल शक्ति का अमल स्वरूप 'सहस्रार' में है। इसी की सब कलायें हैं।

कृष्णा पक्ष को लीजिए। उसकी समस्त रात्रियों का समावेश अमावस्या में होता है। ये सभी वर्जित है। दिन में अमृत टपकता है अतः दिन में भी कुण्डलिनी जागरण निषिद्ध है।

चन्द्रमण्डल में **षोडशी कला** को छोड़कर शेष निःशेष कलायें वृद्धिक्षय वाली हैं। १५ कलायें = वृद्धिक्षय वाली हैं।

शुक्ल प्रतिपदा ही **'दर्शा'** है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी पर्यन्त जो कलायें होती हैं वे सभी कलायें पञ्चदशी मंत्र के १५ अक्षर हैं।

१५ कलायें (दर्श, दृष्टा, दर्शिता, विश्वरूपा, सूनृता, इरा आदि) नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा के भेद से एवं 'वाग्भव', 'कामकला' एवं 'शक्तिकूट'—इस प्रकार से बढ़ती है किन्तु दूसरे कूट में ६ अक्षर एवं 'शान्तिकला' में ४ अक्षर है अतः 'पञ्चदशी' के पाँच-पाँच अक्षरों से तीन खण्ड निर्मित होते हैं।

'कामराज कूट' की जो अन्तिम हृल्लेखा एकादशी होती है और दशमी से विद्धा होने के कारण वह दशमी कलान्तर्गत ही मानी जाती है किन्तु उसका योग 'शक्तिकूट' के प्रथमाक्षर (द्वादशी को ही एकादशी मानकर दोनों कूटों का योग स्वीकार कर लेना चाहिए। इस स्वीकृति (भावना) से प्रथम कूट को **'अधः सहस्रार'** से उठाकर अनाहत में उसका विलीनीकरण होता है, दूसरे को अनाहत से उठाकर उसका **'निरोधिका'** में एवं तृतीय को **'निरोधिका'** से उठाकर **'व्यापिका'** में विलीनीकरण होता है। किन्तु **'निरोधिका'** से नाद तक एकादशी का द्वादशी में एवं नीचे अर्द्ध चन्द्रिका से दशमी में संक्रमण समझना चाहिए।

'पञ्चदशाक्षरी मंत्र' एवं कूटत्रयात्मक ५-५ अक्षरों के खण्ड

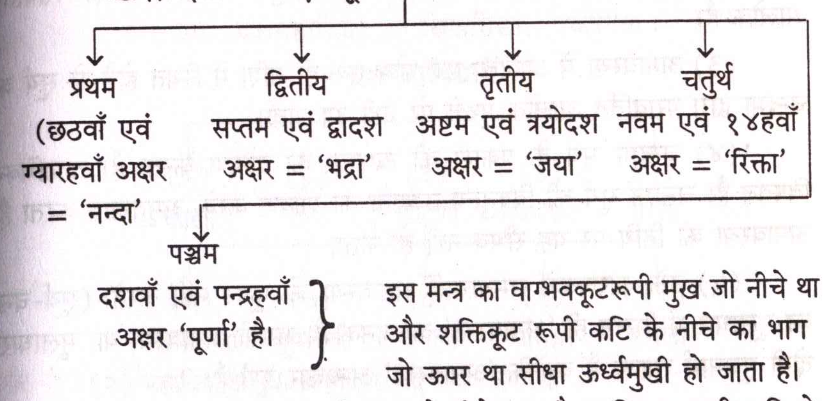
प्रथम
(छठवाँ एवं ग्यारहवाँ अक्षर = 'नन्दा'
द्वितीय
सप्तम एवं द्वादश अक्षर = 'भद्रा'
तृतीय
अष्टम एवं त्रयोदश अक्षर = 'जया'
चतुर्थ
नवम एवं १४हवाँ अक्षर = 'रिक्ता'
पञ्चम
दशवाँ एवं पन्द्रहवाँ अक्षर 'पूर्णा' है।
इस मन्त्र का वाग्भवकूटरूपी मुख जो नीचे था और शक्तिकूट रूपी कटि के नीचे का भाग जो ऊपर था सीधा ऊर्ध्वमुखी हो जाता है।

इस मन्त्र का वाग्भवकूटरूपी मुख जो नीचे था और शक्तिकूट रूपी कटि के नीचे का भाग जो ऊपर था सीधा ऊर्ध्वमुखी हो जाता है।

भावना की द्वितीय दृष्टि के अनुसार—

विशुद्ध चक्र के १६ दलों पर — पूर्व से अग्नि, दक्षिण नैऋता, पश्चिम, वायव्य, उत्तर एवं ईशान के क्रम से १६ अक्षरों की भावना की जाती है। ये सभी चन्द्रमा की कलाओं के समान दीप्तिमान हैं जो कि **'सहस्रार'** की पूर्ण कला के बिम्ब से आज्ञा चक्र पर अवतरित होती हुई नीचे के विशुद्ध चक्र पर प्रतिबिम्बित होती हैं।

सम्बन्धों का जाल-तंत्र (नेटवर्क)

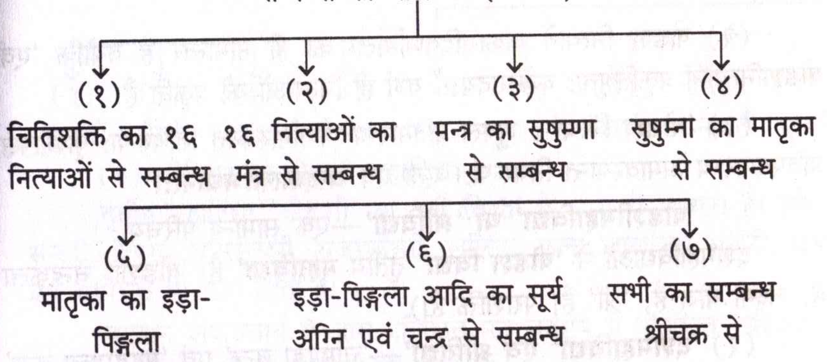
(१)
चितिशक्ति का १६ नित्याओं से सम्बन्ध
(२)
१६ नित्याओं का मंत्र से सम्बन्ध
(३)
मन्त्र का सुषुम्णा से सम्बन्ध
(४)
सुषुम्ना का मातृका से सम्बन्ध
(५)
मातृका का इड़ा-पिङ्गला
(६)
इड़ा-पिङ्गला आदि का सूर्य अग्नि एवं चन्द्र से सम्बन्ध
(७)
सभी का सम्बन्ध श्रीचक्र से

'यदा चामावस्या'—

'अमावस्या'—

(१) मूलाधार चक्र में जब सूर्य एवं चन्द्रमा का मिलन होता है तब उसे **'अमावस्या'** कहते हैं।

(२) जो आदित्यालोक होता है वही चन्द्रमा द्वारा परावर्तित होकर चन्द्रमा को

आलोकित करता है और इस प्रकार चन्द्रमा की कौमुदी आदित्य का ही परावर्तित आलोक है।

(३) अमावस्या में आदित्य एवं सोम एक ही राशि में स्थित होने से सूर्य का चन्द्रमा द्वारा परावर्तित आलोक पृथ्वी पर नहीं आ पाता।

(४) चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश की ऊष्णता का शोषण करता है। तापाधिक्य विषवत है। चन्द्रमा सूर्य की विषतुल्य ऊष्णता का शोषण करके अमृतस्राव करता है। अमावस्या की तिथि पर यह संभव नहीं हो पाता।

(५) उक्त कारणवश समयाचारी अमावस्या को पूजन नहीं करते। (सूर्य-चन्द्र का मूलाधार में मिलन ही 'अमावस्या' का जनक है। समयी अमावस्या या 'मूलाधार' दोनों पूजनार्थ त्याज्य हैं क्योंकि 'अमावस्या' अन्धकार पूर्ण है।

'कलायाः षोडश्याः—षोडशी का स्वरूप

प्रश्न—**'षोडशी'** कौन है? **'षोडशी'** का स्वरूप क्या है? **'श्रीविद्या'** क्या है? **चन्द्रकला** क्या है?

(१) **'षोडशी'** सहस्रारस्थ चन्द्रमा की १६हवीं कला है। **आचार्य लक्ष्मीधर** कहते हैं—

'षोडशी कला' नाम—रुफ—ईकार

बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम **श्रीविद्या** श्री बीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्

(२) षोडश नित्यायें ककारादिवर्णमाला का ही नामान्तर है क्योंकि 'एवं षोडशनित्यानां प्रकृतिभूताः ककारादयः।' वर्ण ही नित्याओं की प्रकृति है।

(३) **'षोडश नित्या :** शुक्ल प्रतिमारभ्य पौर्णामास्यनत तिथिरूपाः कृष्णापक्ष प्रतिपदमारभ्य अमावस्यान्त तिथरूपाः। एता एव **चन्द्रकलाभिधानाः**।[१]

'षोडशीमहाविद्या' या **'श्रीविद्या'**—एक सामान्य परिचय

दशमहाविद्याओं में **'षोडश विद्या'** तृतीय **महाविद्या'** है। 'षोडशी' चन्द्रकला है, लक्ष्मी बीज है, 'श्रीं' है, पराशक्ति है।)

(१) **'दशमहाविद्या' एवं श्रीविद्या'**—'चामुण्डा तन्त्र' एवं 'मुण्डमाला तन्त्र' में दशमहाविद्याआं का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'काली तारा **महाविद्या षोडशी** भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।

---

[१] लक्ष्मीधरा = श्लोक ३२

बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता **दशमहाविद्या : सिद्धविद्याः** प्रकीर्तिता।'

* दशमहाविद्यायें *

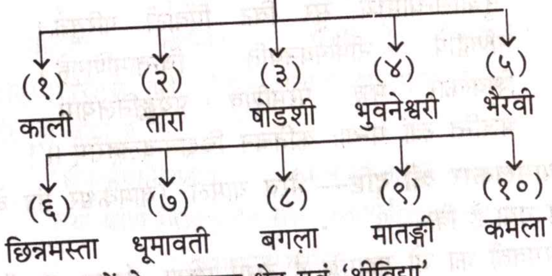
(१) काली
(२) तारा
(३) षोडशी
(४) भुवनेश्वरी
(५) भैरवी
(६) छिन्नमस्ता
(७) धूमावती
(८) बगला
(९) मातङ्गी
(१०) कमला

(२) महाविद्याओं के अष्टादश भेद एवं 'श्रीविद्या'

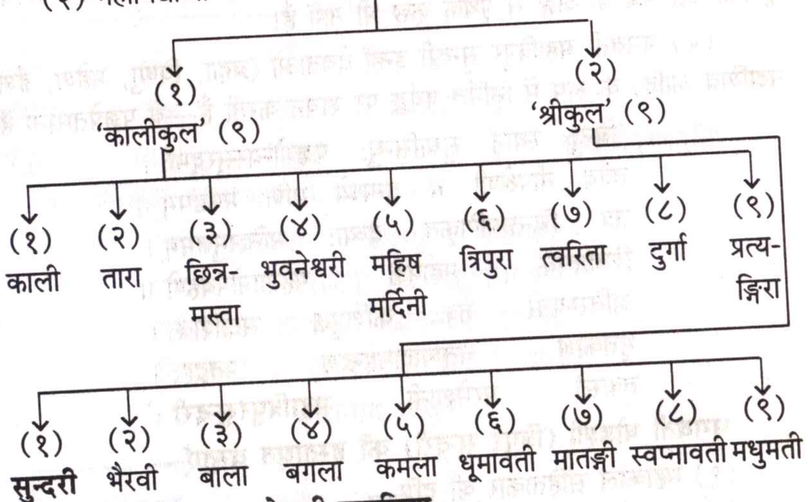
(१) 'कालीकुल' (९)
(२) 'श्रीकुल' (९)
(१) काली
(२) तारा
(३) छिन्न-मस्ता
(४) भुवनेश्वरी
(५) महिष मर्दिनी
(६) त्रिपुरा
(७) त्वरिता
(८) दुर्गा
(९) प्रत्य-ङ्गिरा
(१) सुन्दरी
(२) भैरवी
(३) बाला
(४) बगला
(५) कमला
(६) धूमावती
(७) मातङ्गी
(८) स्वप्नावती
(९) मधुमती

(३) श्रीविद्या या षोडशी महाविद्या—

तृतीय महाविद्या **'षोडशी'** या **'श्री विद्या'** के नाम से प्रख्यात है। इसे ही सुन्दरी, त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कला, बालत्रिपुर सुन्दरी, सुभगा एवं कामेश्वरी भी कहा जाता है।

भगवान शंकराचार्य के द्वारा प्रतिष्ठित मठ चतुष्टय में प्रतिष्ठित **'श्रीयन्त्र'** में भगवती 'श्रीविद्या' की ही उपासना की जाती है।

पञ्चप्रेतासना भगवती षोडशी का स्वरूप

यामलकार की दृष्टि—'यामल' में कहा गया है कि—भगवती के पर्यङ्क के चतुष्पाद त्रिदेवादिक हैं।

(क) ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं ईश्वर—ये चार महान शक्तियाँ षोडशी देवी के पर्यङ्क के चार पाये हैं।

(ख) सदाशिव उस पर्यङ्क का फलक है।

आचार्य शङ्कर ने भी 'सौन्दर्यलहरी' (श्लोक ८) में इस पर्यङ्क (मञ्च) को **'शिवाकार'** कहा है—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुर विट पिवाटी परिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिव पर्यङ्कनिलयाम
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥'[१]

भैरवयामलकार की दृष्टि—'भैरव यामल' (वामकेश्वर तंत्र के बहुरूपाष्टक विद्या) में कहा गया है कि—

(१) भगवती का जो महामञ्च है उसमें महेश, ईशान, सदाशिव आदि की भूमिका उस मञ्च के अङ्ग से पृथक् कुछ भी नहीं है।

(२) भगवती महात्रिपुर सुन्दरी इन्हीं देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईशान, सदाशिव आदि) के रूप में निर्मित पर्यङ्क पर शयन करती हैं—वे पञ्चप्रेतासना हैं—

'बिन्दु स्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणि मण्डपम्॥
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्याः मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबहणे॥
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादामहेन्द्रश्च पतद्गहः।
तत्रास्ते परमेशानी **महात्रिपुरसुन्दरी**।'

भगवती षोडशी (त्रिपुर सुन्दरी) की हस्ताधृत वस्तुएँ—

(१) महाकाल संहिताकार की दृष्टि—

'रक्तवस्त्र परिधानां पाशांकुशकरोद्यताम्। चतुर्भुजांत्रिनेत्रान्तु पञ्चबाण धनुर्द्धणम्।'

भगवती के स्वरूप एवं उनके द्वारा हस्त-धारित आयुधों के विषय में दृष्टि भेद भी मिलता है। **'महाकाल संहिता'** में कहा गया है कि—(**'चतुर्भुजां त्रिनेत्रान्तु पञ्चबाणाधनुर्धराम'।**

(क) भगवती **चतुर्भुजा** एवं **त्रिनयना** हैं।

(ख) उनके दो हाथों में **'पाश'** एवं 'अङ्कुश' हैं तथा

(ग) अन्य दो हाथों में **'पञ्चबाण'** एवं **'धनुष'** है।

---

[१] सौन्दर्य लहरी (८) (२)

*** भगवती के हाँथी में धृत वस्तुएँ ***

(१)	(२)	(३)	(४)	
पाश	अङ्कुश	पञ्चबाण	धनुष	**'महाकालसंहिता'**

(२) **गौड़पादाचार्य की दृष्टि**—आचार्य गौड़पाद ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **'सुभगोदयस्तुति'** में कहा है कि

'**धनुर्बाण**निक्षूद्भव कुसुमजानङ्कु**शवरं**
तथा **पाशं** बिभ्रत्युदित रवि बिम्बाकृतिरुचिः।'

हस्तधृत वस्तुए

(१)	(२)	(३)	(४)	
इक्षुनिर्मित धनुष	पौष्प सायक	श्रेष्ठ अङ्कुश	पाश	**'सुभगोदयस्तुति'**

(३) **'ललिता सहस्रनाम'** के अनुसार—

'उद्यद्भानुसहस्राभां चतुर्बाहु समन्विता।
रागस्वरूप पाशाठ्या क्रोधाङ्कुशोज्ज्वला॥
मनोरूपेक्षु कोदण्डा पञ्चतन्मात्र सायका।
निजारुणा प्रभापूर मज्जदब्रह्माण्ड मण्डला।'

हस्ताधृत वस्तुएँ

(१)	(२)	(३)	(४)	
रागरूपी 'पाश'	क्रोधरूपी 'अंकुश'	मनरूपी 'धनुष'	पञ्चतन्मात्रा-रूपी ५ बाण	**'ललितासहस्रनाम'**

(४) भावनोपनिषदोक्त मत—

(१)	(२)	(३)	(४)	
५ तन्मात्रारूप ५ **पुष्पबाण**	मनरूपी इक्षु **धनुष**	रागरूपी **'पाश'**	द्वेषरूपी **'अंकुश'**	**'भावनोपनिषद'**

(५) **चतुःशती में प्रतिपादित मत—**

'चतुःशती' में इन आयुधों का प्रतीकार्य दूसरा बताया गया है—

'इच्छा शक्तिमयं 'पाशं' मङ्गल ज्ञानरूपिणाम्
क्रियाशक्तिमये 'बाण', 'धनुषी' दधदुज्ज्वलम् ।

यहाँ पर (१) **'पाश'**—इच्छाशक्ति का प्रतीक एवं
(२) **'बाण'**—क्रियाशक्ति का प्रतीक कहा गया है।

(६) **तन्त्रराजतन्त्रोक्त दृष्टि** (वासना पटल)

- (१) 'मनोभव**इक्षुधनुष'** (कामदेवरूपी 'धनुष')
- (२) रागरूप **'पाश'**
- (३) द्वेष रूप 'अंकुश'
- (४) पञ्चतन्मात्रा रूप 'बाण'

(७) **आचार्य गौड़पाद की दूसरी दृष्टि—**

आचार्य गौड़पाद ने 'सुभगोदय स्तुति' में कहा है कि भगवती **'मणिपूरक चक्र'** में प्रत्यक्षीकृत होने पर **दशभुजारूपावस्था** धारणा करती हैं—

'भवत्पाणिव्रातो **दशविध** इतीदं मणिपुरे ।
भवानि प्रत्यक्षं तव वपुरूपास्ते नहि परम् ।।'[१]

१० भुजाओं का स्वरूप क्या है?

(क) भगवती की १० भुजाओं को 'मणिपूर चक्र' के १० दलों का प्रतीक भी बताया गया है तथा

(ख) भगवती का ६ एवं ४ प्रकार का ऐक्य भी भगवती के १० हाथों का प्रातीक कहा गया है।

आचार्य गौड़पाद ने श्लोक १६ में भगवती के हाथों में धारित वस्तुओं की संख्या ०४ से अधिक बताया है। वे कहते हैं—

'भवानि श्री हस्तैर्वहसि **फणिपाश** सृणिमथो ।
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शर मथ जपस्रक्शुकवरौ ।।'[२]
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभय वरदानैक रसिकां ।
क्वणद्वीणां द्वाभ्यां त्वमुरसिकराभ्यां च विभृषे ।।[३]

---

[१] सुभगादय स्तुति (१५)
[२] शुक का अर्थ = शिरस्राण। (वस्त्र, आँचल, पगड़ी साफा)
[३] सुभगोदय स्तुति (१६)

भगवती के हाथों में धृत वस्तुएँ (९)

- (१) पाश (सर्पपाश)
- (२) अंकुश
- (३) पौण्ड्र धनुष इक्षुचाप
- (४) पौष्ण बाण
- (५) जपमाला
- (६) 'शुकवरौ'
- (७) वरमुद्रा
- (८) अभयमुद्रा
- (९ + १०) दोनों हाथों से वीणा धारण किए हुए हैं।

आचार्य शङ्कर कहते हैं—

क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तननता ।
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्र वदना ।।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः ।
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका ।।[१]

श्लोक क्रमांक ३३ अमावस्या का यौगिक स्वरूप

'इडायां पिङ्गलां चरत इह तौ सूर्यशशिनौ,
तमस्याधारे तौ यदि तु मिलितौसा तिथिरमा ।
तदाज्ञाचक्रस्थं शिशिरकर बिम्बे रवि निभं,
दृढ़व्यालीढं सद्विगलित सुधासार विसरम् ।।'

[इस शरीर में इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों में वे दोनों (प्रख्यात) 'सूर्य एवं चन्द्रमा परिभ्रमण करते रहते हैं। यदि वे दोनों तमोगुण के अधिष्ठान मूलाधार चक्र) में मिल जाते हैं तब वह तिथि अमावस्या कही जाती है। तब आज्ञा चक्र में स्ंस्थित चन्द्रमा द्वारा प्रतिबिम्बित सूर्यालोक की शीतल रश्मियाँ वहाँ दृढ़ता पूर्वक पीयूष-प्रवाह की वर्षा किया करती हैं।।३३।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—'इह' = यहाँ। इस शरीर में।

'तमस्याधारे' = अन्धकार के आधार (मूलाधार) में

'विसर' = प्रस्थान। गमन। वृद्धि। अत्यधिक ढेर। रुवानगी।

'व्यालीढ़' = सर्प दंश का वह प्रकार जिसमें सर्प के दोनों दाँत गढ़ गए हों तथा रक्त भी प्रवाहित हो रहा हो।

जब सूर्य और चन्द्रमा मूलाधार चक्र में मिलते हैं तब **'अमावस्या तिथि** का जन्म होता है। **'अमावस्या तिथि** में अमृत की वर्षा नहीं हुआ करती। **अमावस्या तिथि** पर समयाचारी भगवती का पूजन भी नहीं किया करते।

---

[१] सौन्दर्यलहरी (७)

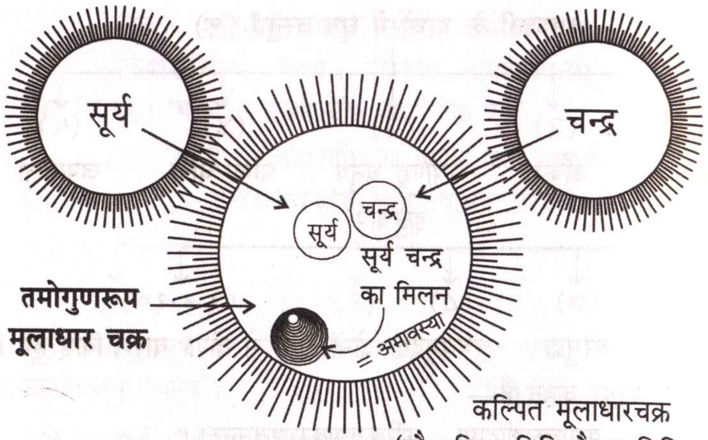

कल्पित मूलाधारचक्र

'तौ यदि तु मिलितौ सा तिथिरमा।।'

* सूर्य और चन्द्रमा की यौगिक गतियाँ *

(१) **'सूर्य'** दक्षिण नाड़ी (पिङ्गलानाड़ी) में निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। (स्वर शास्त्र का सिद्धान्त)।

(२) **'चन्द्रमा'** वाम नाड़ी (चन्द्र नाड़ी = इड़ा नाड़ी) में निरन्तर प्रवाहित होता रहता है।

इसी बात को गौड़पादाचार्य इस प्रकार कहते हैं—

'इडायां पिङ्गल्यां चरत इह तौ सूर्य शशिनौ'

'इड़ा नाड़ी' एवं 'पिङ्गला नाडी' का मार्ग एवं मूलाधार

मेरुदण्ड के बाह्य प्रदेश में वाम एवं दक्षिण दिशा में (या वाम-दक्षिणा पार्श्व में) 'शशिमिहिर' (इड़ा-पिङ्गला) नाड़ियाँ स्थित हैं और इनके मध्य 'सुषुम्णा नाड़ी' स्थित है—

'वागमा या इड़ा नाड़ी शुक्ला चन्द्रस्वरूपिणी।
शक्तिरूपा हिं सा देवी साक्षदमृतविग्रहा।
दक्षे तु पिङ्गला नाम पुंरूपा सूर्य विग्रहा।
रौद्रात्मिका महादेवी याडिमीकेसरप्रभा।।'[१]
'वाममुष्कात् तु सम्भूता नाड़ी दक्षिणगामिनी।
सुषुम्णाकलिता जाता वामभागं समाश्रिता।
हङ्गता दक्षभागस्था जत्रुमध्यं समाश्रिता।
वामं तु नासिकाद्वारं प्राप्नोति गिरिजेऽमले।

---

[१] सम्मोहन तंत्र

नाडी दक्षिणामुष्कात् तु सञ्जातोत्तरगामिनी।
सुषुम्णाफलिता जाता भाग दक्षिणमाश्रिता।।
हृद्गता वामभागस्था जत्रुमध्य समाश्रिता।
दक्षिणां नासिकाद्वारं प्राप्नोति गिरिजेडमले।।
'इडा च पिङ्गला चैव तस्य वामे च दक्षिणे।
ऋज्वीभूते शिरे ते च वामदक्षिणभेदतः।
सर्वपद्मानि संवेष्ट्य नासारन्ध्रगते शुभे।।'

—सम्मोहन तन्त्र

इसी 'इड़ा' एवं 'पिङ्गला' को यथाक्रम 'गङ्गा' एवं 'यमुना' भी कहते हैं। कही-कहीं इनका नाम भिन्न-भिन्न है—

'इडायां यमुना देवी पिङ्गलायां सरस्वती।
सुषुम्णायां वसेद गङ्गा तासां योगस्त्रिधा भवेत्।'

(**इड़ा नाडी** = यमुना। **पिङ्गलानाड़ी** = सरस्वती। **सुषुम्णा नाड़ी** = गङ्गा। **गंगा** + यमुना + सरस्वती का मिलन = प्रयागराज का **'सङ्गम तीर्थ'**।) = **'त्रिवेणी'**

'सङ्गता ध्वजमूले च विमुक्ता भ्रूविभोगतः।
त्रिवेणीयोगः इन प्रोक्तस्तत्र स्नानं महाकलम्।'

'त्रिवेणी' गङ्गा + यमुना + सरस्वती की धाराओं के एकत्रित होने का स्थान (सङ्गम) त्रिवेणी कहलाता है।

'सङ्गम' = मिलना। तीन नदियों के मिलने के कारण प्रयाग के नदीत्रय मिलन स्थान को 'सङ्गम' कहते हैं।

'**मेरोर्वामे** स्थिता नाडी इड़ा चन्द्रामृता शिवे
दक्षिणे सूर्य संयुक्ता **पिङ्गला** नाम नामतः।
तद् बाह्ये तु तयोर्मध्ये **सुषुम्णा** वह्निसंयुता।'

—तन्त्र चूड़ामणि

शरीर में ७२००० नाड़ियाँ हैं। ये सभी नाड़ियाँ **'मूलकन्द'** में आकर मिल जाती हैं। या साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं—

'तिस्रः कोट्यस्तदर्द्धेन शरीरे नाड्या मताः।।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासुतिस्रो (व्यवस्थिताः)।

साढ़े ३ करोड़ नाड़ियों में (या ७२००० नाड़ियों में) १० नाड़ियाँ एवं १० नाड़ियों में मात्र तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं। ये ३ नाड़ियाँ ही कहलाती हैं—

(१) **'इड़ा नाड़ी'** (२) **'पिङ्गला नाड़ी'** (३) **'सुषुम्णा नाड़ी'**।

'नाड़ी कन्द एवं इड़ा-पिङ्गला नाड़ियाँ—

'गुदात् तु द्वयाङ्गुलालादूर्ध्वं मेढ्रात् तु द्वयङ्गुलादधः
चतुरङ्गुले विस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत्।
नाड्यस्तस्मात् सुमुत्पन्नाः सहस्त्राणां द्विसप्ततिः ।'

७२००० नाड़ियाँ कन्दमूल से एक साथ निकली हैं। **'कन्दमूल' का स्थान और इड़ा पिंगला** का सम्बन्ध मलद्वार से दो अङ्गुल ऊपर एवं मूत्रेन्द्रिय से दो अंगुल नीचे चार अङ्गुल का एक स्थान है। इसे ही **'मूल कन्द'** कहते हैं। यही सं 'इड़ा' पिंगला' 'सुषुम्णा' 'पूषा' 'अलम्बुषा' 'हस्तिजिह्वा' 'पयस्विनी' 'गान्धारी' आदि सारी नाड़ियाँ निकल कर शरीर में फैल जाती हैं।

'मूलाधारचक्र' 'ध्वजाधो गुदोर्ध्वम्' (लिङ्गमूल से नीचे एवं मलद्वार से ऊपर और सुषुम्णा नाड़ी के मुख में संलग्न है। 'वज्रा नाड़' लङ्गुमूल में स्थित है। 'मूलाधार चक्र' लिङ्गमूल के नीचे है। अतः 'वज्रा' के अन्दर 'मूलाधार' नहीं है।

'मूलाधार चक्र' सुषुम्णा नाड़ी के मध्य भाग में है और अन्य कमल (चक्र) वज्रा नाड़ी के मध्य स्थित हैं। **'मूलाधार पद्म'** वज्रा नाड़ी के अधोभाग में स्थित है। **'मूलाधार चक्र' सुषुम्णा** के मध्य भाग में है।

(१) **मेरुदण्ड के बाह्य प्रदेश** में (वाम-दक्षिण भाग में) इड़ा-पिङ्गला नाडियाँ स्थित हैं।

(२) मेरुदण्ड के मध्यरन्ध्र में सुषुम्णा स्थित है। यह सत्व-रज-तम गुणों से युक्त है।

(३) इड़ा नाड़ी की अधिष्ठान देवता—चन्द्रमा है।

पिङ्गला नाड़ी का अधिष्ठाता देवता—सूर्य हैं।

(४) **'इड़ा'** मेरुदण्ड के वामभाग में एवं 'पिङ्गला' मेरदण्ड के दक्षिण भाग में स्थित हैं।

(५) ये दोनों नाड़ियों 'मूलकन्द' से उठकर दोनों नासारन्ध्रों में प्रवाहित होती रहती हैं।

(६) मेरुदण्ड के मध्य में **सुषुम्णा नाड़ी** है। यह नाड़ी कन्द (मूल कन्द) के मध्यभाग से निकलकर ऊपर भ्रूमध्य एवं आगे तक चली गई है। **'सुषुम्णा'** ब्रह्मरन्ध्रं तक गई है।

(७) सारांश यह कि (क) इड़ा (ख) पिङ्गला एवं (ग) सुषुम्णा तीनों नाड़ियाँ **'मूलकन्द'** से निकली हैं इड़ा-पिङ्गला नासान्त, ऊर्ध्वभाग तक गई हैं।

(८) **मूलाधार का स्थान**—'ध्वजाधो गुदोर्ध्वम' है। इस पद्म का मुख नीचे की ओर है।

(९) **मूल कन्द का स्थान—**

'गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधात् द्वयङ्गुलं विदुः ।'

'मूलाधार चक्र' एवं 'नाड़ी कन्द'

'नाड़ी कन्द' —(सोढ़े तीन कोटि नाड़ियों का उत्पत्ति स्थान)

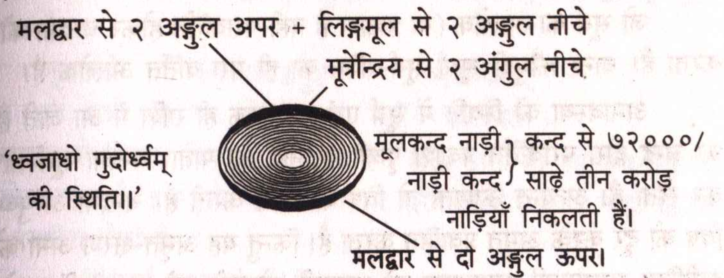
मलद्वार से २ अङ्गुल अपर + लिङ्गमूल से २ अङ्गुल नीचे
मूत्रेन्द्रिय से २ अंगुल नीचे
'ध्वजाधो गुदोर्ध्वम् की स्थिति॥'
मूलकन्द नाड़ी
नाड़ी कन्द
कन्द से ७२०००/ साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ निकलती हैं।
मलद्वार से दो अङ्गुल ऊपर।

(१) **'मूलकन्द'** 'ध्वजाधोगुदोर्ध्वम्' है। (४)

(२) **'मूलाधार चक्र'** 'ध्वजाधोगुदोर्ध्वम्' है।

* नाड़ी कन्द' (मूल कन्द)[1] *

'गुदात् तुद्वयङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात् तु द्वयङ्गुलादधः ।
चतुरङ्गु विस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत् ।
नाड्यस्तस्मात् समुत्पन्नाः सहस्त्राणां द्विसप्ततिः ॥'

—'कन्द' = समस्त नाड़ियों का मूलस्थान।

'मूलाधार चक्र'

'अथाधारपद्मं सुषुम्णास्य लग्नं **ध्वजाधोगुदोर्ध्वं** चतुः**शोणपत्रम् ।'**

—षट्चक्र निरुपणम्

दो दृष्टियाँ—(१)'मेरोर्मध्य पृष्ठ गतास्तिस्त्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः। ('निगमतत्त्वसार')

(२) द्वितीय दृष्टि—(षट् चक्रनिरूपरमकार की दृष्टि) **'मेरोर्बाह्य प्रदेशे** शशिमिहिर शिरे सव्यदक्षे निषण्णे।

(१) एक मत — इड़ा-पिंगला मेरुदण्ड के बाहर स्थित है।

(२) दूसरा मत — इड़ा-पिंगला मेरुदण्ड के भीतर स्थित हैं।

षट् चक्र निरुपण कार	निगमतत्त्व सार
नाड़ी त्रय मेरुदण्ड के बाहर स्थित हैं।	नाड़ीत्रय मेरुदण्ड के भीतर स्थित है।

---

[1] 'षण्णवत्यङ्गुलायामं शरीरमुभयात्मकम् ।
गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद् द्वयङ्गुलं विदुः ॥'

यदि प्रथम दृष्टि मानी जाय तब तो गौड़पादाचार्य की दृष्टि (श्लोक ३३) 'इड़ायां पिङ्गल्यां चरतइह तौ सूर्य शशिनौ' के सूर्य-चन्द्र तमस्याधारे तौ यदि मिलितौ सा तिथिरमा' की स्थिति (मूलाधार चक्र में सूर्य चन्द्र मिलन की स्थिति) कैसे घटित कर सकते हैं? द्वितीय दृष्टि (निगम तत्त्व सार की दृष्टि) मानने पर यह संभव है।

जो सूर्य का आलोक (या प्रकाश है वही परावर्तित होकर चन्द्रमा को आलोकित करता है। चान्द्र कौमुदी सूर्या सूर्य-रश्मि का ही परा वर्तित आलोक है।

अमावस्या की स्थिति में सूर्य एवं चन्द्र एक ही राशि में आ जाते हैं अतः सूर्य का चन्द्र द्वारा परावर्तित प्रकाश पृथ्वी पर नहीं आ पाता। चन्द्रमा सूर्य-ताप का हरण कर लेता है। अत्यन्त ऊष्णता तो विष का कार्य करती है। चन्द्रमा अत्युष्णता स्वरूप विष को दूर करके अमृत प्रवाहित करता है। किन्तु यह अमृत-क्षरण अमा को नहीं होता इसीलिए समयमार्गी अमावस्या को भगवती 'षोडशी' की पूजा नहीं करते।

अमावस्या की तिथि पर भगवती की पूजा का निषेध है। अर्थात् '**मूलाधार चक्र**' में भगवती की पूजा का निषेध है। कारण यह है कि **मूलाधार चक्र' अन्धकार एवं तमोगुणपूर्ण है।**

प्रश्न—यदि '**मूलाधार चक्र**' एवं '**मूल कन्द**' का स्थान एक ही है। ('ध्वजाधो गुदोर्ध्वम्' स्थान ही है) तो दोनों में अन्तर क्या है?

उत्तर—'**मूलकन्द**' ३।। करोड़ नाड़ियों का उद्भव केन्द्र है किन्तु '**मूलाधार चक्र**' तो उस कन्द की साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों में से मात्र एक नाड़ी '**सुषुम्णा**' ही स्थित है और उसी में (या मेरुदण्ड की 'वज्रा' चित्रा ब्रह्मनाड़ी आदि नाड़ियों में ही) सारे चक्र स्थित हैं। यही दोनों में प्रधान अन्तर है। 'कन्द' सारी नाड़ियों एवं अप्रत्यक्षतः सारे चक्रों का भी (सुषुम्णा नाड़ी की दृष्टि से) आधार पर किन्तु 'मूलाधार चक्र' साढ़े तीन कोटि नाड़ियों का आधार तो नहीं है। स्पष्ट है कि '**नाड़ी-कन्द नीचे** होगा और मूलाधार चक्र' ऊपर होगा।। यह भी एक अन्तर है। 'सूर्य एवं 'चन्द्र' से सम्बद्ध अनेक दिशायें—

(१) प्राणापानसमायोगाच्चन्द्रसूर्यैकता भवेत् (योग बीज)

(२) योऽपान प्राणयोर्योग स्वरजोरेतसोस्तथा।
सूर्या चन्द्रमसोर्योगो जीवात्म परमात्मनोः।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।

—योग बीज

बिन्दुः शिवोरजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दूरजो रविः।
उभयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम्।

इड़ा-पिङ्गला-सुषुम्णा नाड़ियाँ

'पृष्ठवंशं समाश्रित्य सोमसूर्याग्निरूपिणी'

इड़ाः = चन्द्रमा पिङ्गला = सूर्य। सुषुम्णा = अग्नि।

'शिव संहिता' में कहा गया है कि चतुर्दलात्मक आधार पङ्कज है उसकी योनि में 'सूर्य' रहता है।

'मूलाधारे हियत्पद्मञ्चतुष्टयं व्यवस्थितम्।
तत्र मध्ये हि या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः ।।'

सूर्यमण्डल से निरन्तर विष की धारा प्रवाहित होती रहती है। वह विष पिङ्गला में प्रवाहित होता रहता है। इस विष धारा को वह न करने वाली पिङ्गला नाड़ी दाहिने नासारन्ध्र में प्रवाहित होती है—

'सत्सूर्य मण्डलांद्वारं विषं क्षरति सन्ततम्।
पिंगलायां विषं यत्र स्वयंयात्यतितापनम्।।
विषं तत्रवहन्ती या धारारूपं निरन्तरम्।
दक्षनासापुटं याति कल्पितेयं तुपूर्ववत्।'

—शिव संहिता

विवेक मार्तण्डकार (गोरक्षनाथ) कहते हैं—

'नाभिदेशे वसत्येको भास्करो दहनात्मकः।
अमृतात्मा स्थितो नित्यं तालुमूले च चन्द्रमा।
वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रो ग्रसत्यूर्ध्वमुखो रविः।
ज्ञातव्यं करणं तत्र येन पीयूषमाप्यते।
ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालु चोर्ध्वं भानुरधः शशी
करणं विपरीताख्यं गुरुवाक्येन लभ्यते।'

श्लोक क्रमांक ३४ ब्रह्मग्रंथि का उद्भोदन—

महाव्योमस्थेन्दोरमृतलीरी प्लावितततनुः।
प्रशुष्य द्वै नाड़ीप्रकरमनिशंप्लावयति तत्।
यदाज्ञायां विद्युन्नियुताभाक्षरमयी,
स्थिता विद्युल्लेखा भगवति विधि ग्रन्थिमभिनत् ।।३४।।

[महाकाश में संस्थित सोम अपनी पीयूष की वर्षा द्वारा समस्त शरीर को आप्लावित करता रहता है। किन्तु यह पीयूष नाड़ी-समूह के द्वारा निरन्तर शोषित भी होता रहता है। यदि योगी 'आज्ञा चक्र' में विद्युत संवलित दीप्ति को सुस्थिर करके उसे अक्षरान्वित कर लेता है तो वह विद्युदाभा भगवती विद्युल्लेखा बन जाती है और तब ब्रह्मग्रंथि का उद्भेदन होता है।३४।।]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) इड़ा नाड़ी (चन्द्रनाड़ी = वाम नाड़ी) के द्वारा चन्द्रमा शरीर में अमृत प्रवाहित करता रहता है किन्तु सूर्य अपनी रश्मियों के द्वारा उस अमृत प्रवाह का शोषण करता रहता है। सूर्य विष का एवं चन्द्रमा अमृत का प्रतीक है और नाड़ी-मण्डल की दृष्टि से उनके ये कार्य भी तत्सम हैं।

(२) योगी (इड़ा' (चन्द्र) एवं 'पिङ्गला' (सूर्य) नाड़ी में अपने प्राणों के सञ्चार को बन्द करने का प्रयास करता है और इस साधना में साकल्प मिलने पर प्राण **'इड़ा'** एवं **'पिङ्गला'** नाड़ी के मार्ग का त्याग करके **'सुषुम्णा नाड़ी' में** प्रवाहित होने लगता है। इसे ही **'इड़ा-पिङ्गला'** की मृत्यु कहा जाता है।

(३) **'सुषुम्णा'** में प्राण प्रवाहित होने की अवस्था में ही भगवती कुण्डलिनी **'ब्रह्मद्वार'** के मार्ग के अवरोध का त्याग करके एवं सुषुम्ना-पथ में (ऊर्ध्वोन्मुख) यात्रा करने लगती है।

(४) इस समय भगवती कुण्डलिनी विद्युत की भाँति देदीप्यमान होकर **'मणिपूर चक्र'** में विद्युल्लेखा' के रूप में प्रकट होती है—

'तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती ।'[1]

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'गुरुकटक्षसञ्ज्ञात महावेध महिम्ना च भगवती झटति मूलाधारस्वाधिष्ठानात्मक चक्रद्वयं भित्वा मणिपूरे प्रत्यक्षं प्रतिभाति।'

समयाचारी **'मूलाधार'** एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में भगवती की पूजा करते ही नहीं क्योंकि ये दोनो चक्र सान्धकार है। इनमें **'मूलाधार चक्र'** अन्धतामिश्र है और **'स्वाधिष्ठान चक्र'** मिश्र लोक' है। **'मणिपूर चक्र'** अग्नि का स्थान है। यहाँ। स्थित मेघरूपी जल सूर्य की रश्मियों से प्रतिबिम्बित होते रहते हैं अतः यह चक्र **'मिश्र लोक'** है। 'अनाहत चक्र' **'योति लोंक** है क्योंकि वह सूर्य का स्थान है।

'यदा ज्ञाया'—जब विद्युल्लेखा आज्ञाचक्र में उपस्थित होकर अक्षर ब्रह्म में लयीभूत हो जाती है तब **ब्रह्मग्रंथि का वेधन** होता है। जब मंत्र के समस्त अक्षरों का उस अन्तिम अक्षर (१६हवीं नित्या कला) में लय हो जाता है जो कि क्षरण रहित (अक्षर) है तब **'ब्रह्मग्रंथि'** का वेध होता है।

जब पञ्चदशाक्षरी मंत्र को **'अधःसहस्रार'** से समुत्थित करके उसका विषुस्थान में लय कर दिया जाता है। **द्वितीय वर्ण** को विषुस्थान से समुत्थित करके उसका मूलाधार चक्र में **तृतीय वर्ण** को मूलाधार से उत्थित करे स्वाधिष्ठान चक्र' में चतुर्थ

---

[1] सुभगोदय स्तुति (१४)

वर्ण का स्वाधिष्ठान से उठाकर 'मणिपूर चक्र' में **पञ्चम वर्ण** को 'मणिपूर चक्र' से उठाकर अनाहत चक्र में **षष्ठ वर्ण** को अनाहत चक्र से समुत्थित करके 'विशुद्ध चक्र' में **सप्तम वर्ण'** को विशुद्ध चक्र में **सप्तमवर्ण'** को विशुद्ध चक्र से समुत्थित करके 'लम्बिका' में अष्टम वर्ण का लम्बिका से समुत्थित करके आज्ञा चक्र में, नवम वर्ण

ऊर्ध्वोत्थित समुत्थित करके 'अर्धचन्द्र' में **एकादशवर्ण** को 'अर्धचन्द्र' से ऊर्ध्वोत्थित करके 'निरोधिका' में **द्वादशवर्ण** को निरोधिनी से ऊर्ध्वोत्थित करके 'नाद' में **'त्रयोदश वर्ण** को नाद से समुत्थित करे 'नादान्त' में **चतुर्दश** वर्ण को ऊर्ध्वोत्थित करे'नादान्त से समुत्थित करके) **'शक्ति'** में एवं **पञ्चदश वर्ण** को ऊर्ध्वोत्थित करके 'व्यापिका' में और इसी प्रकार जब प्रत्येक पूर्ववर्ती वर्ण को उत्तरवर्ती वर्ण में लयीभूत कर दिया जाता है तब समस्त **'पञ्चदशी मंत्र'** एवं तन्निहित समस्त वर्णों को परा कलास्वरूपा 'श्रीकला' को **'उन्मनी'** में लय कर दिया जाता है।

'विधिग्रंथिमभिनत'—**'आज्ञा चक्र'** में **ब्रह्मग्रंथि का उद्भेदन** थोड़ी सी समस्या या संशय का विषय बनता है क्योंकि **'ललितासहस्रनाम'** में ग्रंथित्रय स्थान इस प्रकार बताया गया है—

(१) 'ब्रह्मग्रंथि' — 'मूलाधार चक्र'
(२) 'विष्णुग्रंथि' — 'मणिपूरक चक्र'
(३) 'रुद्रग्रंथि' — 'आज्ञाचक्र'

'मूलाधारैकनिलया **ब्रह्मग्रंथि** विभेदिनी ।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रंथि-विभेदिनी ।
आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थि-विभेदिनी ।
सहस्राराम्बुजारूढा सुधाधाराभिवर्षिणी ॥'

'ललितासहस्रनाम' में **'ब्रह्मग्रंथि'** का स्थान 'मूलाधार' में बताया गया है अतः 'मूलाधार चक्र' में ही 'ब्रह्मग्रंथि' का एवं 'आज्ञाचक्र में **'रुद्रगंथि'** का उद्भेदन होना स्वीकार किया गया है किन्तु 'सुभगोदयस्तुति' में गौड़पादाचार्य इसके विपरीत कहते हैं कि—

(१) **ब्रह्मग्रंथि का उद्भेदन'** आज्ञा चक्र में किया जाता है।

(२) **'रुद्रग्रंथि'** का उद्भेदन आज्ञा चक्र में नहीं किया जाता।

(३) **आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि**—आचार्य लक्ष्मीधर भी आचार्य गौड़पाद की दृष्आि के अनुगामी हैं और कहते हैं कि—

'ब्रह्मग्रंथि भेदनातिव्यग्रतया भगवत्या **आज्ञा चक्रे** क्षणमात्रावस्थानात् साधकानां **तटिल्लेखा रूपेण** अवभासनात् **आज्ञाचक्रं** नामास्या॥'[1]

---

[1] लक्ष्मीधरा (श्लोक ९)

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) 'श्री चक्र त्रिखण्ड सोम सूर्यानलात्मकम्।

('श्री चक्र' सोम-सूर्य-अनल रूप खण्डत्रय के रूप में विभाहित है।)

इसमें—

(क) मूलाधार-स्वाधिष्ठान चक्र का एक खण्ड है।

(ख) मूणिपूरक चक्र एवं अनाहत चक्र का एक खण्ड है।

(ग) विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र का एक खण्ड है।

(१) **प्रथम खण्ड** के ऊपर **'अग्निस्थान'** है और उसे ही **'रुद्रग्रंथि'** कहा जाता है—

'अत्र प्रथमखण्डोपरि अग्निस्थानम्। तदेव रुद्रग्रंथि रित्युच्यते।'

(२) **द्वितीय खण्ड के** ऊपर **'सूर्यस्थान'** है और उसे ही **विष्णु ग्रंथि'** कहते हैं—

'द्वितीयखण्डोपरि **'सूर्यस्थानम्'**। तदवे **'विष्णुग्रन्थिरि**त्युच्यते ॥'

(३) **तृतीय खण्ड** के ऊपर **'चन्द्रस्थान'** है और वही **'ब्रह्मग्रंथि'** है—

'तृतीय खण्डोपरि चन्द्रस्थानम्। तदेव **ब्रह्मग्रन्थिरित्युच्यते** ॥
'सोमसूर्यानलामकं' इति अवरोहण क्रमेणावगन्तव्यम्।'

(४) प्रथम खण्ड के ऊपर—वह्नि। प्रथम खण्ड को ज्वालामय बना देत है वह्नि।

(५) द्वितीय खण्ड के ऊपर—सूर्य सूर्य द्वितीय खण्ड को अपनी किरणों से आच्छादित किए हुए है।

(६) तृतीय खण्ड के ऊपर—चन्द्रमा तृतीय खण्ड को अपनी किरणों से आच्छादित करके स्थित है।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर दूसरी दृष्टि को उपन्यास्त करते हुए कहते हैं कि—

(१) वर्ण पञ्चक (रवि। शीतकिरण। स्मर। हंस। शक्र) **'सौर खण्ड'** है।

(२) शिव, शक्ति, काम एवं क्षिति—वर्णचतुष्टय **'आग्नेय खण्ड'** है।

इन दोनों खण्डों के मध्य हल्लेख बीजात्मक **'रुद्रग्रंथि'** है—

'उभयोः खण्डयोः मध्ये **रुद्रग्रन्थि** स्थानीयं हल्लेखबीजम्।'

(२) 'परामाहरय इति वर्णत्रयेण **सौम्यखण्डं।**

सौम्य-सौर खण्ड के मध्य भुवनेश्वरी बीजात्मक 'विष्णु ग्रंथि' है—

'सौम्यसौरखण्डयोर्मध्ये **विष्णुग्रन्थि** स्थानीयं भुवनेश्वरी बीजम् ॥'

(३) चन्द्रकला खण्ड तुरीय एवं एकाक्षर है—

'तुरीयमेकाक्षरं चन्द्रकलाखण्डम्।'

(४) सौम्य-चन्द्रकलाखण्डों के मध्य ब्रह्मग्रंथि स्थानीय हल्लेखाबीज है—

'सौम्यचन्द्रकलाखण्डयोर्मध्ये ब्रह्मग्रंथिस्थानीयं हल्लेखा बीजम्।'

('चन्द्रकलाखण्ड' तो गुरुमात्र मुखैकगम्य है।)

'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः'[1]

श्लोक क्रमांक ३५ : 'श्रीचक्र' 'सरघा' एवं बैन्दव स्थान' का स्वरूप

ततो गत्वा ज्योत्स्नामय लोकं समयिनां,
पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता।
सहस्रारे पद्मे शिशिर महसां बिम्बपरं,
तदेव **'श्रीचक्र'** सरघमिति तद्बैन्दवमिति।३५॥

[उसके बाद (अर्थात् आज्ञा चक्र में ब्रह्म ग्रंथि का वेध करने के बाद) चन्द्रिकासंवलित समय लोक (सहस्रार) में जाकर 'परा' नाम वाली शैवी शक्ति शिवतत्त्व से मिलकर 'सादाख्या' (सदाशिव तत्त्व) पर विजय प्राप्त करती है। सहस्रार सरसिज में चन्द्रमा का दूसरा बिम्ब है। वही 'श्रीचक्र' 'सरघा' एवं 'बैन्दवस्थान' है॥३५॥]

सरोजिनी (व्याख्या)— 'समयिनाम्' = सामयिकों की।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर ने **'श्रीचक्र' बैन्दवस्थान' 'सुधासिन्धु' 'सहस्रकमल'** एवं **'सरघा'** की व्याख्या करते हुए कह है कि—

(१) **'सहस्रकमलं** बिन्द्वतीतं **बैन्दवस्थानात्मकं सुधासिन्ध्व** परपर्यायं **सरघा** शब्द वाच्यम्।[2]

(२) 'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्री चक्र शिवयोर्वपुः ॥'

(३) **शिव शब्देन** नवयोनिचक्रमध्ये चतुर्योन्यात्मकमर्ध चक्रभुच्यते। **शक्तिशब्देन** अवशिष्ट पञ्चयोन्यात्मकर्धचक्रमुच्यते। एममर्धद्वयमिलितं नवयोन्यात्मकं चक्रं भवति। एतस्माच्चक्रादेव जगदुत्पत्तिस्थिति लया भवन्तिति॥[3]

(४) 'श्री चक्रस्य वियच्चक्रमिति नामान्तरमस्ति।'

---

१. लक्ष्मीधरा : (श्लोक ३२)

२. लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१)

३. लक्ष्मीधरा (श्लोक १)

(५) **'बैन्दवस्थानं** श्रीचक्रस्य मध्यस्थितं, शिवचक्राणां चतुर्णामुपरि शक्ति चक्राणां पञ्चानामधस्तादवस्थिततत्वात् ।'

'श्री चक्र' का अन्तर्विभाजन

(१) 'शिवचक्र'
- (१) अष्टदल
- (२) षोडश दल
- (३) मेखलात्रितय
- (४) पुरत्रय

(२) 'शक्ति चक्र'
- (१) त्रिकोण
- (२) अष्टकोण
- (३) दशार-अन्तः
- (४) दशार-बहिः
- (५) चतुर्दश कोण

ऐक्यानुसन्धान—

(१) बिन्दु एवं त्रिकोण में ऐक्य
(२) अष्टकोण एवं अष्टदलपद्म में ऐक्य } शिव-शक्ति में ऐक्य
(३) दशारयुग्म एवं षोडशदलपद्म में ऐक्य
(४) चतुर्दशार एवं भूपुर में ऐक्य

(क) त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा । } (शक्ति चक्र)
चतुर्दशारं चैतानि **शत्विक्राणि** पञ्च च॥

(ख) बिन्दुश्चाष्टदलं पद्म पद्मं षोडशपत्रकम् । } (शिवचक्र)
चतुरस्त्रं च चत्वारि शिवचक्राष्यनुक्रमात् ।

'शिव चक्र' एवं 'शक्ति चक्र' में ऐक्य या सामरस्म

(१) बिन्दुश्चाष्ट दलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम् ।
चतुरस्त्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ।
(२) **त्रिकोणो बैन्दवं** श्लिष्टं अष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोष्षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके ।
(३) शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम् ।
अविनाभावसम्बंधं यो जानातिस चक्रवित् ॥
(४) त्रिकोणामष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा ।
मनुकोणं चतुष्टोणं कोणचक्राणि। षट्कमात् ।
(५) मूलाधारं तया स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम् ।
अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः ॥

(६) तवाधारस्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति ।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरुपश्शिवस्मृतः ॥

जब कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वारोहण करती है अर्थात् जब वह सहस्रारोन्मुख यात्रा करती है तब वह ऊर्ध्वयात्रा के प्रत्येक सोपान (प्रत्येक चक्र) पर यथाक्रम सारे तत्त्वों को अपने में लयीभूत कर लेती है। सारे तत्त्व एक दूसरे में एवं कुण्डलिनी में लय हो जाते हैं। यही 'लय क्रम' है। सहस्रार में जाते हुए भगवती महाशक्ति सदाख्य तत्त्व (सदाशिव या अर्धनारीश्वर तत्त्व) को जीतकर शिवतत्त्व में लीन हो जाती है और फिर **'परासंवित्'** रूप धारण कर लेती है। यही **'निर्विकल्प समाधि'** की अवस्था है।

समयमत की दृष्टि यह है कि भगवती का स्थान (परा शक्ति का ध्यान) सहस्रार है न कि कौलों के मतानुसार 'मूलाधार चक्र'।

सहस्रार ही 'श्री चक्र' है (अर्थात् भगवती पराशक्ति या संवित्तत्व सहस्रार में निवास करता है।

'भैरव यामल (वामकेश्वरमहातन्त्र की दृष्टि)—भैरव यामल' में कहा गया है—

'बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः ।
तेत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिभण्टपम् ॥
तत्रचिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिर मुत्तमम् ।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणी ॥
अतिरम्यतरे तत्र-कशिपुश्च सदाशिवः ।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतदग्रहः ।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्
तदुद्भूतामृतस्यान्दि परमानन्दनन्दिता
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणामेत्य सा ।'
'सुधाब्दौ नन्दनोद्याने रत्नमण्टपमध्यगाम् ।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् ॥
पाशंकुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम् ।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम् ।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमाचरेत् ॥'

श्लोक क्रमांक ३६ देवी का स्वरूप

'वदन्त्येके सन्तः परशिव पदे तत्व मिलिते ।
ततस्त्वं षट्त्रिंशी भवसि शिवयोर्मेलनवपुः ।

त्रिखण्डेडस्मिन्स्वान्ते परमपद पर्यङ्क सदने ।
परे सादाख्येऽस्मिन्त्र वसति चतुर्धैक्यं कलनात् ।।३६।।

[हे भगवती! एक दृष्टि वाले सन्तों का यह कथन है कि तू परम शिव पद तत्त्व में मिलकर ३६ प्रकार वाली शिवशक्तिमय शरीर वाली हो जाती है और तीन खण्डों वाले अपने इस अन्तर में परमपद रूपी पर्यङ्क पर सादाख्य तत्त्व से परे चार प्रकार के ऐक्य पूर्वक रहा करती है।।३६।।)]

सरोजिनी (व्याख्या)—'ततस्त्वं षटत्रिंशी भवसि'। आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि भगवती का वह अनुत्तर 'परा संवित् स्वरूप' ही समस्त ३६ तत्त्वों का जनक है। भगवती ही सांख्य दर्शन के २६ एवं शैवशक्त दर्शन के ३६ तत्त्वों का स्वरूप धारण करती है। इसी **'परा संवित्'** परम तत्त्व में ही समस्त तत्त्व लयीभूत हो जाते हैं और सारे तत्त्व उसी से उत्पन्न होते हैं, उसी में रहते हैं सभी उसी में उपसंहत हो जाते हैं।

'त्रिखण्डेऽस्मिनस्वान्ते'—भगवती, भगवती का श्री यंत्र एवं भगवती का मंत्र—ये तीनों ही त्रिखण्डात्मक हैं। समस्त शरीरस्थ षट्चक्र भी त्रिखण्डात्मक हैं।

'परा संवित्' जो कि **'चन्द्रकला'** या **'पञ्चदशाक्षरी विद्या'** का अन्तिम अक्षर है—१६हवाँ अक्षर है—वही भगवती का यथार्थ स्वरूप है।

राजराजेश्वरी अपने 'परा संवित्' स्वरूप में अपने **'सहस्रार'** रूपी गृह में परमपद रूपी पर्यङ्क पर सादाख्या तत्त्व से परे चार प्रकार के ऐक्य के साथ रहा करती है। यहाँ ' **शक्ति'** एवं **'परमशिव'** का चतुर्विध ऐक्य है।

'परा संवित्' के रूप में भगवती का परम शिव के साथ चार प्रकार का ऐक्य है। यहाँ—

'शक्ति' एवं 'शिव' का 'नाम' 'रूप' 'अवस्था' एवं अनुष्ठानगत साम्य है अर्थात् 'शिव' एवं 'शक्ति' दोनों तत्त्वों का एक ही 'नाम' है, एक ही 'रूप' है, एक ही **'अवस्था'** है एवं एक ही 'कार्य' है।

सामय के ५ भेद

(१) नामसाम्य
(२) रूपसाम्य
(३) अवस्थासाम्य
(४) अनुष्ठानसाम्य
(५) अधिष्ठानसाम्य

यद्यपि ५ प्रकार के साम्य हैं किन्तु यहाँ आचार्य गौड़पाद ने केवल **'साम्य चतुष्टय'** का ही उल्लेख किया है।

यहाँ **'अधिष्ठान-साम्य'** के उल्लेख की आवश्यकता इसलिए नहीं है क्योंकि

'शिव' एवं 'शक्ति' दोनों का ऐक्य होने पर ही वे दोनों एक ही स्थान—'परम पद पर्यङ्क सदने' (३६) पर निवास किया करते हैं अन्यथा नहीं।

१३हवें श्लोक पर ध्यान दें—

'कला नादोबिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं ।
षडब्जं चाधार प्रभृतिकममीषं च मिलनम् ।
तदेवं षोढैक्यं भवति खलुयेषां समयिनां ।
चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्यासमयिनाम् ।।'

—सुभगोदय स्तुति (१ श्लोक १३)

१३हवें श्लोक में षोढैक्य

षोढैक्य

(१) शिव और शक्ति का मूलाधार आदि ६ में से प्रत्येक चक्र में साम्य होने से यह ऐक्य ६ प्रकार का होता है।

(२) 'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः समाराधनमित्येतत् सर्वसम्मतम्।। के चित्तु षोढाऐक्यमाहुः ।' —लक्ष्मीधराः श्लोक ४१

तादात्म्य चतुष्टय

(१) 'आधारदिषट्चक्राणां त्रिकोणादिषट्चक्रत्वेन **तादात्म्यम्।।'**
(२) बिन्दुस्थानस्य चतुरश्रस्य सहस्र कमलत्वेन तादात्म्यम्।
(३) बिन्दुशिवयोस्तादात्म्यम् एवं हि शिवयोस्तादात्म्यमिति तादात्म्य त्रयम् ।
(४) चक्रमन्त्रयोः ऐक्यं पूर्वमेवोक्तमिति तेन सह चतुर्धा ऐक्यं समयिनां समाराधनमिति ।

'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेवभगवत्याः समाराधनमित्येत् सर्वसम्मतम् ।'

वाणीचतुष्टय एवं चक्र के साथ ऐक्य

(१) **'परा'** त्रिकोणात्मिका
(२) **'पश्यन्ती'** अष्टकोणचक्ररूपिणी
(३) **'मध्यमा'** द्विदशाररूपिणी
(४) **'वैखरी'** चतुर्दशाररूपिणी

शिवचक्राणां अत्रैव अन्तर्भावः प्रतिपादित इति चतुश्चक्रात्मकं 'श्री चक्रं' नाद शब्द वाच्यम्।

बिन्दुर्नाम—षट् चक्राणि—

मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरानाहतविशुद्ध्याज्ञात्मकानि बिन्दु शब्द वाच्यानि पूर्वमेव उक्तानि।

षड्विध ऐक्य—लक्ष्मीधर कहते हैं कि—

(१) साधक भगवती के साथ षड्विध ऐक्य द्वारा पूजा करके सादाख्या में विलीन हो जाती है।

(२) इसके बाद षड्विधैक्यानुसन्धान की महत्ता से भगवती शीघ्र ही मूलाधार स्वाधिष्ठान नामक चक्र द्वय का भेदन करके 'मणिपूर चक्र' में प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कृत होती है।[1]

श्लोक क्रमांक ३७ षट्चक्र एवं श्रीचक्र में एकता

क्षितौ वह्निर्वह्नौ वसुदलजलेदिङ्मरुति दिक्
कलाश्रे मन्वश्रं दृशि वसुरथो राजकमले।
प्रतिद्वैतग्रन्थि स्तदुपरि चतुर्द्वार सहितं,
महिचक्रं चैकं भवति भगकोणैक्य कलनात् ॥३७॥

[(पृथ्वी में अग्नि, वह्नि (या अग्नि) में वसुदल, जल में दिशायें, वायु में दिशाएँ, कलाश्र में मन्वश्र, दृशि में वसुरथ तथा राजकमल तथा इन सभी के ऊपर प्रतिद्वैत ग्रन्थि में चतुर्द्वार सहित महिचक्र (श्री चक्रान्तर्गत भूपुर) तथा भगकोणों (षट्चक्रों) का श्री चक्र के साथ ऐक्य होता है॥३७॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—

[क] **'क्षितोवह्निः'**—पृथ्वी अग्नि में।

(१) पृथ्वी तत्त्व का स्थान 'मूलाधार चक्र' है। 'पृथ्वी' 'मूलाधार चक्र' का प्रतीक या वाचक है।

(२) यहाँ **'त्रिकोण'** शब्द का अर्थ है अग्नि का स्थान अग्नि का स्थान त्रिकोण है। अग्नि त्रिकोण स्वयप है। **'त्रिकोण'** = श्रीचक्र में स्थित त्रिकोण।

यहाँ 'मूलाधार' एवं श्री चक्र के त्रिकोण की एकता का प्रतिपादन किया है।

[ख] **'वह्नौ वसुदल'**—'अग्नि वसुदल में'।

'अग्नि' = अग्नि तत्त्व। अग्नि तत्त्व का स्थान 'स्वाधिष्ठान चक्र' है।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर ने भी **'स्वाधिष्ठान चक्र'** को अग्नि का स्थान स्वीकार किया है। वह कहते हैं—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमाकाशमुपरि।

---

[1] लक्ष्मीधरा (श्लोक क्रमांक ४१)

मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वाकुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह इहसि पत्या विहरति ॥९॥

ततः स्वाधिष्ठाने हंतवहमधिष्ठाय निरतं,
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम्।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोध-कलिते,
दयार्द्राया दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति॥

यहाँ गौड़पादाचार्य ने अग्नि शब्द को **'स्वाधिष्ठान चक्र'** के वाचक के रूप में प्रस्तुत किया है।

'योग' में स्वाधिष्ठान चक्र को जल का स्थान माना है।

भारतीय योगशास्त्र की दृष्टि—

चक्रों का नाम	तत्त्वों का नाम	
(१) 'मूलाधार चक्र'	पृथ्वी तत्त्व	गंध
(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र'	तल तत्त्व	रस
(३) 'मणिपूरक चक्र'	अग्नि तत्त्व	रस
(४) 'अनाहत चक्र'	वायु तत्त्व	स्पर्श
(५) 'विशुद्धि चक्र'	आकाश तत्त्व	शब्द
(६) 'आज्ञा चक्र'	मनस्तत्त्व	

गौड़पाद एवं आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर कहते हैं कि—

'स्वाधिष्ठान चक्र' अग्नि का एवं **'मणिपूरक चक्र'** जल का स्थान है। **आचार्य गौड़पाद** ने भी यही दृष्टि स्वीकार की थी। आचार्य शङ्कर ने गौड़पाद की ही दृष्टि स्वीकार की है।

सौन्दर्यलहरी में चक्र-क्रम—(१) सहस्रार (२) आज्ञा (३) विशुद्धि (४) अनाहत (हृदय) (५) स्वाधिष्ठान (६) मणिपूर (७) मूलाधार चक्र।

प्रश्न—'स्वाधिष्ठान' को अग्नि तत्त्व का स्थान क्यों स्वीकार किया गया?

उत्तर—कुण्डलिनी शक्ति जागृतावस्था के बाद सर्वप्रथम इसी चक्र में निवास करती है।

उक्त दृष्टि का शास्त्रीय प्रमाण—

'वामकेश्वर तन्त्र' में भी स्वाधिष्ठान चक्र को ही अग्नि का स्थान स्वीकार किया गया है—

'पद्मासनगतः स्वस्थोगुदमाकुञ्चय साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।

वाटवाघातवशादग्निः **स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्**
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ॥'

'स्वाधिष्ठान चक्र' में स्थित जो जल है उसमें अग्नि की विद्यमानता होने के कारणभी स्वाधिष्ठान चक्र को अग्नि का स्थान कहा गया है। भौतिक शास्त्र के शास्त्र LATENT HEAT इसे ही कहते है। यही जल स्थित अग्नि मणिपूर चक्र में विद्युत् के रूप में निवास करती है। स्वाधिष्ठान स्थित जल **'मणिपूर चक्र'** में मेघों के रूप में रहा करता है। **'मणिपूरक चक्र'** को मेघों का स्थान होने के कारण ही जल का स्थान स्वीकार किया गया है क्योंकि मेघों में जल का निवास होता है और उनसे ही जल की वर्षा हुआ करती है।

[ग] **'वसुदल'** = वसु के अष्ट होने के कारण यहाँ वसु 'अष्टार' का सूचक है।

'वह्नौ वसुदल' = स्वाधिष्ठान चक्र ही अष्टार है।

[घ] **'जलेदिङ् =** जल में दिशायें।

(क) जल का स्थान मणिपूर चक्र है।

(ख) 'जल' = मणिपूरक चक्र।

(ग) **दिशायें =** दिशायें १० हैं अत: १० का अर्थ है अन्तर्दशार है।

(घ) **'मणिपूरक चक्र' ही अन्तर्दशार** है।

[ङ] **'दिङ्मरुति'** = वायु में दिशायें।

मरुत = मरुत का स्थान हृदय या अनाहत चक्र। हृदय चक्र। **दिशायें =** १० की संख्या की द्योतक हैं।

(१) श्री चक्र में वहिर्दशार स्थित है।

१० (मरुत) = बहिर्दशार।

'वायु में दिशा' = अनाहत चक्र में बहिर्दशार स्थित है।

[च] **कलाश्रे मन्वश्रं' =** कला = १६ की संख्या।

'कलाश्र' = १६ दलों वाला विशुद्ध चक्र।

'मन्वश्र' = श्री चक्र का चतुर्दशार।

मनु १४ की संख्या का द्योतक है। 'विशुद्ध चक्र ही चतुर्दशार है।'

[छ] **'दृशिं वसुरथो राजकमले'** =

दृशि = नेत्र। नेत्रों की संख्या है २। दृशि = २

'दृशि' = द्विदल कमल या **'आज्ञाचक्र'**

'वसु' = आठ वसु हैं अत: **'वसु'** = आठ।

'वसुरथ' = श्री चक्र का **'अष्टदल पद्म'**।

'राजकमल' = राज = १६। राजा = १६।

'राजकमल' = श्री चक्रान्तर्गत षोडशदलपद्म 'आज्ञा चक्र ही श्रीचक्र का अष्ट दल एवं षोडश दल पद्म है।'

सारांश—

पृथ्वी = मूलाधार 'अग्नि' = त्रिकाण। (श्री चक्र का त्रिकोण)

'पृथ्वी' अर्थात् मूलाधार चक्र में ही **'वह्नि'—श्री चक्र का त्रिकोण'** स्थित है इस प्रकार—

[क] **मूलाधार एवं त्रिकोण की एकता**

(मूलाधार चक्र ही त्रिकोण है।)

'अग्नि' = स्वाधिष्ठान चक्र। **'वसुदल'** = 'अष्टार'

स्वाधिष्ठान चक्र ही अष्टार है।

[ख] **स्वाधिष्ठान चक्र एवं श्री चक्र के अष्टार में एकता**

'जल' = मणिपूरक चक्र। **'दिशा'** = १० की सूचक

'मणिपूरक चक्र ही श्री चक्र का अन्तर्दशार है।'

[ग] **'मणिपूरक चक्र एवं अन्तर्दशार की एकता**

'वायु' = वायुस्थान = हृदय। अनाहत चक्र।

'दिशा' = दिशायें १० हैं। **दिशा =** १० दिशा श्रीचक्र का बहिर्दशार।

अनाहत चक्र ही बहिर्दशार है।

[घ] **अनाहत चक्र एवं श्री यंत्र के बहिर्दशार में एकता**

'कलाश्र' = कलायें १६ हैं। कलाश्र = 'षोडशदलपद्म' अर्थात् विशुद्धि चक्र।

'मन्वश्र' = मनु १४ हैं। **'मन्वश्र'** = १४ की संख्या।

'विशुद्ध चक्र ही श्री यंत्र का चतुर्दशार है।'

[ङ] **विशुद्ध चक्र एवं चतुर्दशार में एकता**

'दृशि' = नेत्र, नेत्रों की संख्या २ है। **'दृशि'** = आज्ञा चक्र द्विदलसरसिज। **'वसु'** = वसु ८ हैं। **'वसु'** = ८॥ श्री चक्र का **'अष्टदल पद्म'**।

'राजकमल' = राज = राजा। राजा (नृपति) की संख्या = १६। **'राजकमल'** = श्री चक्र में स्थित **'षोडशदल पद्म'**।

आज्ञा चक्र ही श्रीचक्र के **'अष्टदल'** एवं **'षोडशदल'** पद्म हैं॥

[च] **आज्ञा चक्र एवं श्री यंत्र के अष्टदल एवं षोडश दल पद्म की एकता**

'प्रतिद्वैत ग्रन्थिस्तदुपरि चतुर्द्वार सहितं महिचक्रं चैकं भवति भगकोणैक्य कलनात्'

प्रतिद्वैतग्रंथि—अद्वैत का स्थान—**'सहस्रार'** **'चतुर्द्वार'** = **'महिचक्र'** = **'भूपुर'** (श्री चक्र के भीतर स्थित)।

'चतुर्द्वार सहित महिचक्रं' = चतुर्द्वारसहित महिचक्र = श्री चक्र में स्थित भूपुर।

'भग' = ६। 'भग' ६ का सूचक है। **'भगकोण'** = षट्चक्र। सहस्रार ही भूपुर है और षट्चक्र ही श्री चक्र है।

[छ] 'सहस्रार' की 'भूपुर' के साथ एवं षट्चक्रों की 'श्री चक्र के साथ एकता 'मंत्र', 'यन्त्र' एवं 'षट्चक्र'—तीनों में एकता है।

साम्य (एकता) के अन्य भेद

(१) नामसाम्य
(२) रूपसाम्य
(३) अवस्थासाम्य
(४) अनुष्ठानसाम्य
(५) अधिष्ठानसाम्य

श्लोक क्रमांक ३८ : कुण्डलिनी शक्ति का जागरण

'षडाब्जाख्ये त्वां समयिन इमे पञ्चक समां,
यदा संविद्रूपां विदधति च षोटैक्यकलताम्।
मनोजित्वा चाज्ञा सरसिज इह प्रादुर भव,
तडिल्लेखा नित्या भगवती तवाधार सदनात्॥३८॥

[हे भगवती! जब समयमतानुसायी मन को आज्ञा चक्र में जीतकर ६ कमल समूह रूपी बन में तुझ संविद्रूपा पराशक्ति को साम्यपञ्चक एंव षोढैक्य वाला बनाते हैं तब विद्युल्लेखा (शम्पा की ज्योति-किरण) के समान प्रकाश वाली एवं स्वगृहस्वरूप मूलाधार चक्र से प्रादुर्भूत हुई तुझे नित्या के रूप में मानते हैं॥३८॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—समयमत एवं कौलमत—दोनों के अनुयायी भगवती कुण्डलिनी को राजराजेश्वरी, पराभिहारिका भगवती महात्रिपुर सुन्दरी मानते हैं।

योगी मन को योग साधना द्वारा जीतकर भगवती शक्ति को निद्रा से उठाकर उन्हें जागृत कर लेता है। जागृता कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में जागृत होकर वहाँ से विद्युत रश्मि के समान ऊपर उठकर समस्त चक्रों का वेध करती है।

यहाँ 'पञ्चकसमां' 'षोढैक्य कलितां' शब्दों का जो प्रयोग किया गया है वह ५ प्रकार की एकताओं का वाचक है।

पञ्चसाम्य

(१) अधिष्ठानसाम्य
(२) अनुष्ठानसाम्य
(३) अवस्थासाम्य
(४) रूपसाम्य
(५) नामसाम्य

पञ्चसाम्य के अन्य प्रकार

(१) क्रिया साम्य (अनुष्ठानसाम्य)
(२) अवस्था साम्य (अवस्थानसाम्य)
(३) रूप साम्य
(४) प्रकृति साम्य
(५) नाम साम्य

* साम्य एवं ऐक्य की विवेचना *

(१) पञ्च साम्य (२) षोढ़ा ऐक्य

षोढ़ा ऐक्य—

(१) कला का बिन्दु से ऐक्य और इन दोनों का नाद के विभव से ऐक्य।
(२) नाद का कला एवं बिन्दु से ऐक्य।
(३) कला का नाद तथा बिन्दु से ऐक्य।
(४) कला, बिन्दु तथा नाद का परशिव से ऐक्य।
(५) नाद, कला तथा बिन्दु का परशिव से ऐक्य।
कला, नाद एवं बिन्दु का परशिव से ऐक्य।

'कलायां बिन्द्वैक्य तदनु च तयोर्नादविभवे।
तयोर्नादनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः।
तयोर्बिन्द्वादैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे,
तदेवं **षोढैक्यं भवति हि समपर्या** समयिनाम्।'[1]

'षोढा ऐक्य' एवं 'चतुर्धा ऐक्य'—

'कला नादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं,
षडब्जं चाधार प्रभृतिकममीषां च मिलनम्।
तदेवं **षोढैक्यं** भवति खलु येषां समयिनां,
चतुर्धैक्य तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम्॥[2]

ऐक्य के अन्य रूप—

(१) बिन्दु त्रिकोण का ऐक्य।
(२) अष्टकोण अष्टदल कमल का ऐक्य।
(३) दशारयुग्म षोडशदलपद्म का ऐक्य।
(४) चतुर्दशार भूपुर का ऐक्य॥[3]

---

[1] 'सुभगोदय' (१२)
[2] सुभगोदय स्तुति (१३)
[3] लक्ष्मीधरा (९)

ऐक्य—

(१) 'आधारदिषट्काणां त्रिकोणादि षट्चक्रत्वेन तादात्म्यम् ।'
(२) 'बिन्दुस्थानस्य चतुरश्रस्य सहस्रकमलत्वेन तादात्म्यम्' ।
(३) 'बिन्दुशिवयोस्तादात्म्यम्'
(४) देहशिवयोस्तादात्म्यम्
(५) चक्रमन्त्रयो: ऐक्यं ।।[1]

'समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्या समाराधनमित्येतत् सर्वसम्मतम्। केचित्तु षोढा ऐक्यमाहु:।।[2]

'षडब्जारव्य' ६ अब्जों (पद्मों) का जङ्गल। शरीर में योगियों ने ६ चक्रों को स्थित माना है। इन्हीं चक्रों को 'षडब्ज' (६ पद्म) कहा है।

गोरक्षनाथ कहते- हैं—

'चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षट्दलम् ।
नाम्तै दशदलं पद्मं सूर्यसंख्या दलं हृदि ।
कण्ठे स्यात् षोडशदलं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ।
सहस्रदलभाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे ।
आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।
योनि स्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते ।।
आधारख्य गुदास्थानं पङ्कजं च चतुर्दलम् ।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनि: कामाक्षा सिद्धवन्दिता ।।
षटचक्रं षोडशाधारं चिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिन: ।।

—गोरक्ष शतक

(क) **गोरक्षनाथ = 'मूलाधार चक्र'** का स्वरूप।

(१) 'यस्माच्चराचरं जगदिदं चिद चिदात्मकं प्रभवति तदेव **'मूलाधारं'** संवित्प्रसरं प्रसिद्धम्।

(२) 'सर्वशक्तिप्रसरसंकोचाभ्यां जगत्सृष्टि:[3] संहतिश्च भवत्येव न सन्देहस्तस्मात्सा मूल मिथ्युच्यते। अत: प्रायेण सर्वे सिद्धा मूलाधारता भवन्ति।। —सिद्धसिद्धानत पद्धति

(ख) **'स्वाधिष्ठान चक्र' का स्वरूप—**

---

१. लक्ष्मीधरा (४१)
२. तत्रैव
३. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति

द्वितीयं स्वाधिष्ठान चक्रं तन्मध्ये पश्चिमा भिमुखलिङ्गं प्रवालाङ्कुर सदृशं ध्यायेत् तत्रैवोड्डी यानपीठं जगदाकर्षणं भवति।

(ग) **'नाभिचक्र' का स्वरूप—**

'तृतीयं नाभिचक्र पञ्चावर्तं सर्पवत् कुण्डलाकारं तन्मध्ये कुण्डलिनी शक्तिं बालार्ककोटिसदृशीं ध्यायेत् सा मध्यमा शक्ति सर्वसिद्धिदा भवति।।[1]

(घ) **अष्ट दल**—'चतुर्थं हृदयाधारमष्टदल कमात मधोमुखं तन्मध्ये कर्णिकायां लिङ्गाकारं ज्योतिरुपां ध्यायेत्। सैव हंसकला सर्वेन्द्रियाणि वश्यामि भवन्ति।

(ङ) **'कण्ठ चक्रं'** —पञ्चमं कण्ठ चक्रं चतुरङ्गलं तत्र वाम इड़ा चन्द्र नाड़ी दक्षिणो पिङ्गला सूर्यनाड़ी तन्मध्ये सुषुम्णा ध्यायेत् सैवानाहत कलाअनाहत सिद्धिर्भवति।।

(च) **'तालु चक्र'**—षष्ठं 'तालुचक्रं' तत्रामृतधारा प्रवाह: घण्टिकालिङ्ग-मूलरन्ध्रराजदन्तं शंखिनी विवरं दशमद्वारं तत्र शून्य ध्यायेत् चित्तजयो भवति।

(छ) **भ्रू चक्र'**—'सप्तमं भ्रचक्रं मध्यममं गुष्ठमात्रं ज्ञाननेत्र दीपशिखाकारं ध्यायेद् वाचां सिद्धिर्भवति।'

(ज) **'निर्वाण चक्र'**—अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं निर्वाण चक्रं सूचिकाग्रभेद्यं धूमशिखाकारं ध्यायेद् तत्र जालन्धर पीठं मोक्षप्रदं भवति।[2]

(झ) **'आकाश चक्र'**—नवमाकाश चक्र षोडश दल कमल मूर्ध्वमुखं तन्मध्ये कर्णिकायां त्रिकूटाकारा तदूर्ध्वशक्तिंतांण्रम शून्यां ध्यायेत् तत्रैव पूर्णगिरिपीठं सर्वेच्छा सिद्धिर्भवति। इति नवचक्रस्य विचार:।।९।।

'आधारं प्रथमं चक्रं **स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।** तृतीयं **मणिपूराख्यं चतुर्थ स्यादनाहतम्** पञ्चमं तु विशुद्धाख्यमाज्ञाचक्रं तु षष्ठकम् सप्तमं तु महाचक्र **ब्रह्मरंध्रे** महापथे।[3]

गौड़पादाचार्य की षट्चक्रों के विषय में नव्य दृष्टि

षटचक्र एवं श्रीयंत्र में अन्तसम्बन्ध—

आचार्य गौड़पादने 'षटचक्रों' एवं श्रीयंत्र के ९ चक्रां में एकता स्वीकार की है और कहा है कि—

'त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने तेष्टारमनघे,
भवेत्स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपूरम् ।
दधारं तं संवित्कामलमथ चन्चश्रकमुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दवगृहम् ।।[4]

---

१. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति
२. सिद्धसिद्धान्त पद्धति
३. गोरक्ष शतक (१७-१८)
४. सुभगोदयस्तुति (१०)

'त्रिकोणे ते वृत्तचित्तयभि कोणो वसुदलं,
कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम्।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्तिकमुर्म,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्ति-शिवयोः।

श्री चक्र के मध्य का **'त्रिकोण' मूलाधार** है और श्री चक्र का जो 'अष्टार' है। वह **'स्वाधिष्ठान चक्र'** है। **'अन्तर्दशार' 'मणिपूर** है एवं **'बाह्य दशार' 'अनाहत चक्र'** है। **चतुर्दशार'** शुद्ध चक्र है। **'आज्ञा चक्र'** शिव का स्थान (शिव चक्र) है। इसमें ही बैन्दव स्थान (सहस्रार) स्थित है।

'त्रिकोण'—तीन वृत्त हैं। इभ कोण (श्रष्टार) **'अष्टदलपद्म'** है। **'षोडशदल पद्म'** दशार युग्म है। **'भूपुर' 'चतुर्दशार'** है। चार शिव चक्रों में पाँच शक्ति योनियाँ अवस्थित हैं। शक्ति एवं शिव के प्रधान ऐक्यों से यह ऐक्य षड्विध ऐक्य है।

'श्री चक्र' की ९ योनियाँ

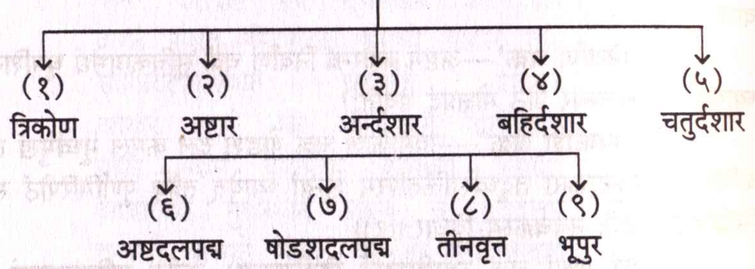

'श्री चक्र' को देह भी कहा गया है।[१]

भूपुर **'सहस्रार'** है। वृत्तत्रय बैन्दव (सहस्रास्थ चन्द्रमा) का स्थान है।

ऐक्य के अनेक रूप

(१) **'त्रिकोण'** हीं 'आधार चक्र' है।
(२) **'अष्टकोण'** ही 'स्वाधिष्ठान चक्र' है।
(३) **'दशार'** ही 'मणिपूर चक्र' है।
(४) 'द्वितीय दशार' ही 'अनाहत चक्र है।
(५) **'चतुर्दशार'** ही 'विशुद्धचक्र' है।
(६) शिवचक्र चतुष्टय ही **'आज्ञा चक्र'** है।
(७) **'बिन्दु स्थान'** चतुरस्र सहस्रकमल है।

'तीडल्लेखा' =विद्युत की रेखाओं की भाँति कुण्डलिनी आचार्य शङ्कर उसी मूलाधार सुप्ता कुण्डलिनी का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

---

१. भावनोपनिषद

'सुधा धारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः।
प्रपञ्चं सिञ्चन्तीं पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्यष्टवलयं।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिरि।'[१]

वामकेश्वर महातन्त्र में कहा गया है—

'भुजङ्गाकार रूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभाऽऽशुभा।
मूल कन्दं कणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता॥'

कुण्डली की स्थिति एवं[२]—गोरक्षनाथ कहते हैं—

'कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति॥
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानमनामयम्।
मुखेनाच्छाह तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह।
सूचीवद् गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णाया
प्रस्फुरद भुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णाया।
उद्घाटयेत् कपाटं यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्॥'[३]

श्लोक क्रमांक ३९ साम्य के प्रकार और उसका महत्व

भवत्साम्यं केचित्त्रितयमिति कौल प्रभृतयः।
परं तत्त्वाख्यं चेत्य परमिदमाहुःसमयिनः॥
क्रियावस्थारूपं प्रकृतिरमिधा पञ्चक समं।
तदेषां साम्यं स्यादवनिषु च यो वेत्ति स मुनिः॥३९॥

[कतिपय कौल आदि मत वाले तीन प्रकार का साम्य मानते हैं।

समयमत वाले कहते हैं कि 'परम तत्त्व' नाम वाला एक अन्य परम तत्त्व है। जो भी व्यक्ति परम तत्त्व से क्रिया-अवस्था-रूप-प्रकृति एवं नाम—इस प्रकार पाँच प्रकार के पाँच साम्य जानता है वह पृथ्वी पर मुनि है।॥३९॥]

---

१. सौन्दर्य लहरी (१०)
२. पुस्तक का कलेवर अधिक बढ़ न जाय अतः अनेक स्थलों पर श्लाकों की व्याख्या नहीं की गई है।
३. गोरक्ष शतक

सरोजिनी (व्याख्या)—कौलोपासना के कतिपय सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए गौड़पादाचार्य कहते हैं कि—

(१) **'कौल'** तीन प्रकार का साम्य मानते हैं।

(२) समयचारी कौलों से पृथक् किसी अन्य तत्त्व को परम तत्त्व मानते हैं।

(३) जो क्रिया, अवस्था, रूप, प्रकृति एवं नाम में अनुगत पाँच प्रकार के साम्यों को जानते हैं वे साक्षात् 'मुनि' हैं।

(४) कौल मार्गी यह मानते हैं कि—

(क) शक्ति की उपासना का स्थान **'मूलाधार चक्र'** है।

(ख) मूलाधार चक्र का त्रिकोण ही श्री चक्र का त्रिकोण है।

(ग) इस त्रिकोण के मध्य में जो बिन्दु स्थान है वही भगवती का स्थान है।

कौलों के अनुसार त्रिकोण ही योनि स्थान है अतः प्रत्यक्ष योनि ही भगवती का यथार्थ स्थान है और उसकी पूजा करनी चाहिए।

समयाचारियों के अनुसार भगवती कुण्डलिनी का स्थान **'सहस्रार'** है। भगवती कुण्डलिनी निद्रा का त्याग करके जाग जाती है तब जागरण के पश्चात् व **'परा संवित्'** के रूप में परम शिव के साथ पाँच प्रकार के साम्य (क्रिया, अवस्था, रूप, प्रकृति, नाम) के साथ रहती है।

जो व्यक्ति कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करके उसे 'परमशिव' में लीन कर देता है और निर्विकल्प समाधि' प्राप्त कर लेता है वह **'मुनि'** कहलाता है।

कौल भगवती कुण्डलिनी की उपासना **'मूलाधार चक्र'** में एवं **समयमार्गानुयायी** कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करके उसका सहस्रार में पूजन करते हैं। इस दृष्टि से भगवती कुण्डलिनी शक्ति की परम शिव से एकता है।

श्लोक क्रमांक ४० : वशिनी आदि शक्तियों की वर्णात्मकता

वशिन्याद्या अष्टावकचटतपाद्याः प्रकृतयः।
स्ववर्गस्थाः स्वस्वायुध कलितहस्ताः स्वविषयाः।
यथावर्गं वर्णप्रचुरतम वो याभिरभवं।
स्तव प्रस्तारास्ते त्रय इति जगुस्ते समयिनः॥४०॥

[(अ, क, च, ट, त, प (य, श) आदि अष्ट प्रकृतियाँ एवं वशिनी आदि अष्ट देवियाँ अपने-अपने वर्गों में स्थित, अपने-अपने अस्त्रशस्त्रों से सुशोभित हाथों वाली एवं अपने-अपने विषयों वाली, यथा वर्ग निःशेष वर्णमालिका में जिस प्रकार प्रकट हुआ करती हैं, वह तेरा त्रयात्मक प्रस्तार हैं—ऐसा समायाचारी उपासक कहा करते हैं॥४०॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—सम्पूर्ण वर्णमाला अष्ट वर्गों में विभाजित है।

* वर्णमाला का वर्गाष्टक *

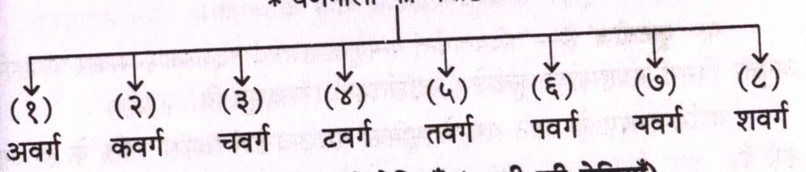
(१) अवर्ग
(२) कवर्ग
(३) चवर्ग
(४) टवर्ग
(५) तवर्ग
(६) पवर्ग
(७) यवर्ग
(८) शवर्ग

वर्णों की अधिष्ठात्री देवियाँ (वाणी की देवियाँ)

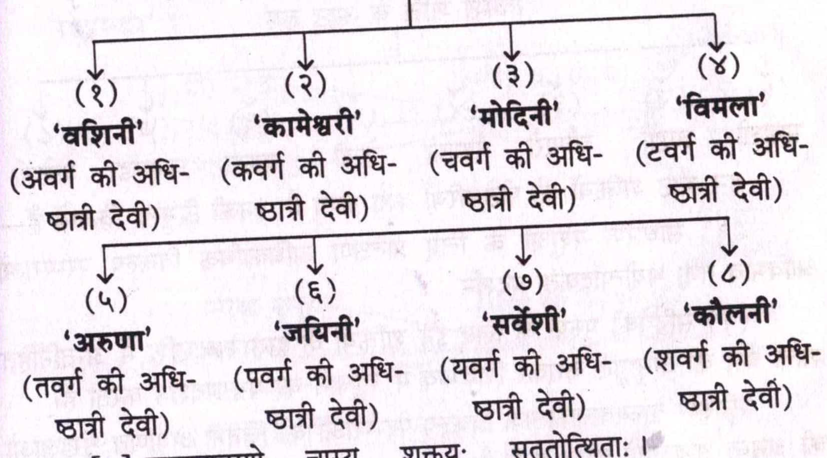
(१) 'वशिनी' (अवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(२) 'कामेश्वरी' (कवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(३) 'मोदिनी' (चवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(४) 'विमला' (टवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(५) 'अरुणा' (तवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(६) 'जयिनी' (पवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(७) 'सर्वेशी' (यवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)
(८) 'कौलनी' (शवर्ग की अधिष्ठात्री देवी)

[१] स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः।
यतः शब्दातुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भवः।
सेयंक्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्त्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्धप्रापादिका।

—स्पन्द कारिका

नव प्रकार के भेद—

(१) अवर्ग— 'अ' से 'अः' तक — 'अमा'
(२) कवर्ग — 'क' से 'ङ' तक — 'कामा'
(३) चवर्ग — 'च' से 'ञ' तक — चार्वङ्गी
(४) टवर्ग — 'ट' से 'ण' तक — टङ्कधारिणी
(५) तवर्ग — 'त' से 'न' तक — तारा
(६) पवर्ग — 'प' से 'म' तक — पार्वती
(७) यवर्ग — 'य' से 'व' तक — दक्षिणी
(८) शवर्ग —'श' से 'ह' तक — शारिका
(९) क्षवर्ग — 'क्ष' (अनुत्तर एवं अनाहत के घंघट्ट को अभिव्यक्त करने वाला कूटबीज)

क्ष = क + ष = **'ककार'** अनुत्तर वाचक है।

विसर्गसूचक सकार मिलाने से क + क्ष = क्ष॥

यह **'कूटबीज'** है—'तदियत्पर्यन्तं यन्मातृकायास्तत्वं तदेवककार- सकार प्रत्याहारेण अनुत्तर विसर्ग संघहसारेण कूबीजेन प्रदर्शितमन्ते (शिवसूत्र वि. २.७)

वर्णसमाम्नाय के आठ वर्ग भेदभूमिका पर अवतीर्ण विमर्श शक्ति के ही आठ रूप हैं।

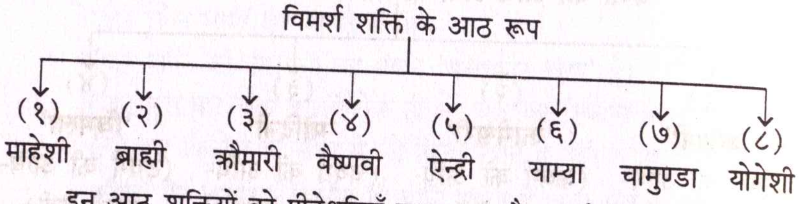
विमर्श शक्ति के आठ रूप
(१) माहेशी
(२) ब्राह्मी
(३) कौमारी
(४) वैष्णवी
(५) ऐन्द्री
(६) याम्या
(७) चामुण्डा
(८) योगेशी

इन आठ शक्तियों को पीठेश्वरियाँ कहा जाता है। इनकी द्विमुखी क्रियायें हैं—

(१) साधारण पशुओं के लिए प्रतिक्षण अधिकाधिक विकल्प परम्पराओं आविर्भाव तथा भयोत्पादकता प्रदर्शन

(२) सद्विवेकी पुरुषों के लिए इन शक्तियों के द्वारा शब्दराशि में अन्तर्निहित शाक्त बल की अनुभूति कराकर शिवभाव में पहुँचाने का पथ प्रदर्शन करती हैं।

प्रतिक्षण वाच्यवाचकात्मक विकल्प परम्पराओं की जितनी अगणित शृंखलाओं की अनन्त शृंखलायों प्रसृत होती है।

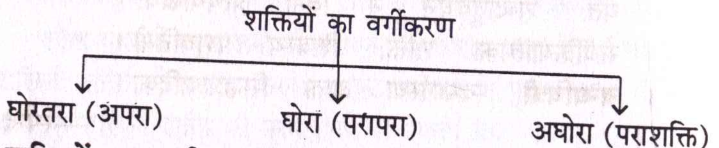
शक्तियों का वर्गीकरण
घोरतरा (अपरा)
घोरा (परापरा)
अघोरा (पराशक्ति)

शक्तियों का कार्य—(स्वरूपावरण)

स्वरूपावणे चास्य शक्तप: तततोत्थिता: ।
यत: शब्दानुधेन न बिना प्रत्ययोद्धव: ।

श्लोक क्रमांक ४१ : 'श्री चक्र' के प्रस्तारत्रय की विवेचना

इमा नित्या वर्णास्तव चरणसंमेलनवशा,
न्महामेरुस्था: स्युर्मनुमिलन कैलास वपुष: ।
वशिन्याद्या एता अपि तव सबिन्द्वात्मकतया,
मही प्रस्तारोंऽयं क्रम रहस्यम् समयिनाम् ॥४१॥

[ये नित्यायें, वर्ण और तुम्हारे श्री चरण (नाद) के सम्मेलन के वशीभूत होकर तुम महामेरु में निवास करती हो और मन्त्र ('विद्या') के साथ मिलकर कैलास रूप

शरीर वाली हो जाती हो। ये वशिनी आदि भी तेरे बिन्द्वात्मक स्वरूप (तेरे षट् चक्रात्मक शरीर से मिलकर) पृथ्वी प्रस्तार ('भूप्रस्तार' का क्रम निर्मित करती हैं। यही समयोपासकों का रहस्य है॥४१॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—'श्री चक्र' के तीन प्रस्तार हैं—

(क) **'मेरुप्रास्तार'** (ख) **कैलास प्रस्तार** (ग) **भूप्रस्तार।**

[क] **'मेरु प्रस्तार'—नित्या** समूह, **वर्ण** माला एवं **नाद** का ऐक्य ही **'मेरुप्रस्तार'** है।

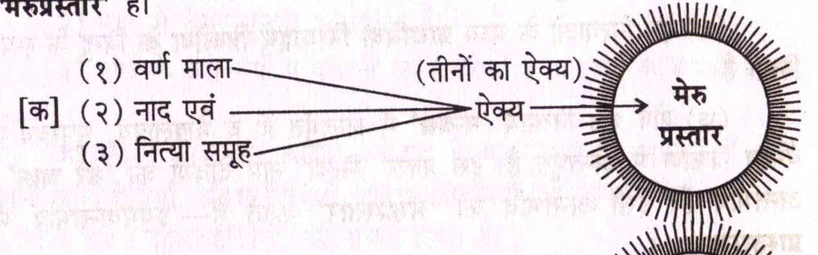
[क]
(१) वर्ण माला
(२) नाद एवं
(३) नित्या समूह
(तीनों का ऐक्य)
ऐक्य
मेरु प्रस्तार

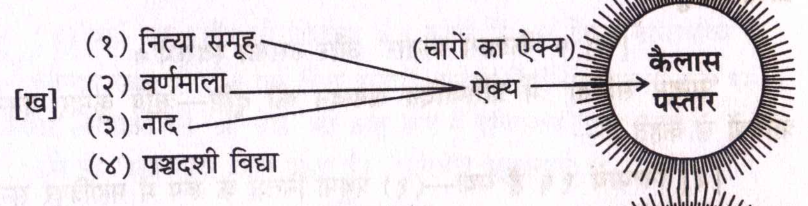
[ख]
(१) नित्या समूह
(२) वर्णमाला
(३) नाद
(४) पञ्चदशी विद्या
(चारों का ऐक्य)
ऐक्य
कैलास पस्तार

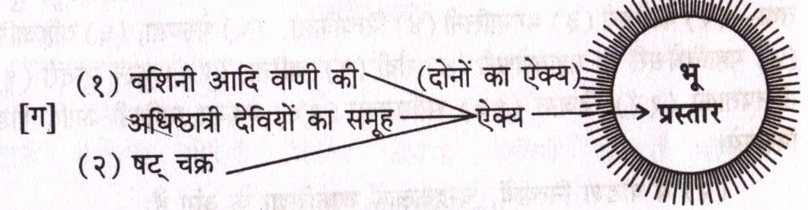
[ग]
(१) वशिनी आदि वाणी की अधिष्ठात्री देवियों का समूह
(२) षट् चक्र
(दोनों का ऐक्य)
ऐक्य
भू प्रस्तार

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि—आचार्य लक्ष्मीधर ने 'सौन्दर्य लहरी' के ३१हवें श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा कि—

* नित्याओं का 'श्री चक्र' में अन्तर्भाव *

[क] * मेरु प्रस्तार और उसका स्वरूप *

(१) जो षोडश नित्यायें हैं वे तिथ्यात्मक (षोडशतिथ्यात्मक भी हैं।

(२) **षोडशनित्यायें 'श्री चक्र' का** अङ्ग हैं। वे 'श्रीचक्र' में उसका अङ्ग बनकर उसमें अन्तर्भूत हैं।

[**'षोडशनित्यानां** षोडशतिथ्यात्मकत्वं ।'
'षोडश नित्यानां श्री चक्र अङ्गतया अन्तभावो ।]

(३) **षोडश नित्यायें** अष्ट वर्गात्मक रूप में 'अष्टदल पद्म' के अष्ट पत्रों (दलों) में स्थित हैं।

(४) वे यथा क्रम अष्टकोण चक्र में प्रागादि कोण से आरंभ करके एक-एक कोण में दो-दो के समूह के रूप में स्थित हैं। इस प्रकार वे अष्टद्विक बनकर 'अष्टपद्म' के अष्टकोणों में अन्तर्भूत हैं।

(५) ये ही नित्यायें **१६ स्वरों** के स्वरूप में **'षोडश दल पद्म'** में स्थित हैं और **द्विदशार** में अन्तर्भूत हैं।

(६) इन नित्याओं के मध्य **प्राथमिक नित्याद्वय त्रिकोण के** बिन्दु के रूप में स्थित हैं।

(७) शेष १४ नित्यायें **'मन्वश्र'** में अन्तर्भूत हैं। वे मेखलात्रय, भूपुरत्रय एवं बैन्द्रव त्रिकोण में अन्तर्भूत हैं। इस प्रकार 'नित्या' नाम देवियों का **'श्री चक्र'** में अन्तर्भाव है। इसी अन्तर्भाव को **'मेरुप्रस्तार'** कहते हैं—'इयमेवान्तर्भावं **मेरु प्रास्तारमाहुः।।**

[ख] * 'कैलास प्रस्तार' और उसका स्वरूप *

'सन्दन संहिता' में प्रतिपादित सनन्दन की दृष्टि—ऋषि कुमार सनन्दन ऋषियों से कहते हैं—

[१] **नित्यायें १६ हैं** यथा—(१) प्रथमा नित्या के रूप में महात्रिपुर सुन्दरी तथा—(२) कामेश्वरी (३) भगमालिनी (४) नित्यकिला, (५) भेरुण्डा, (६) वह्निवासिनी (७) महाविधेश्वरी या महावज्रेश्वरी (८) रौद्री (९) त्वरिता, (१०) कुल सुन्दरी (११) नीलपताका (१२) विजया (१३) सर्वमङ्गला (१४) ज्वाला मालिनी आदि षोडश नित्यायें।

(२) ये षोडश नित्यायें, चन्द्रकलायें **चक्रविद्या** के अंग हैं।

(३) ये षोडश नित्यायें (स्वरात्मिका नित्यायें) पञ्चदशारीमन्त्रगत 'ऐकार आदिभूत 'अ'कार विसर्गाविसर्गात्मक **'स'कार** से संगृहीत जीव कला रूप में **बैन्दव स्थान** में स्थापित एवं वहीं अन्तर्भूत हैं।

(४) 'क' से 'म' पर्यन्त निखिल वर्ण-समष्टि पाश, अङ्कुश एवं बीज से युक्त होकर **'अष्टार'** में दशकोणद्वय में अन्तर्भूत हैं।

(५) अवशिष्ट वर्ण — यकारादि ९ वर्ण द्विरावृत्ति द्वारा मन्वश्र में — चतुर्दश कोणों में चतुर्दश रूप में अन्तर्भूत हैं। अवशिष्ट वर्ण चतुष्टय शिवचक्र चतुष्टय में अन्तर्भूत हैं। इसे ही **'कैलास प्रस्तार'** कहते हैं।

इस प्रकार नित्यायें **'चक्रविद्या'** का अङ्ग हैं।

[ग] 'भू प्रस्तार' और उसका स्वरूप

'सनत्कुमार संहिता' में 'श्रीचक्रविद्या' का जो निरुपण किया गया है उसमें षोडशनित्याओं को 'चक्र विद्या' का अङ्ग स्वीकार किया गया है।

श्री सनत्कुमार कहते हैं—[1]

(१) 'श्री चक्र' की अङ्गभूत वशिन्यादि नित्यायें द्विक-द्विक (युग्म) के रूप में मिलकर, **बैन्दव त्रिकोण** को छोड़कर आठ कोणों में अन्तर्भाव्य हैं।

(२) मध्य में त्रिपुर सुन्दरी अन्तर्भाव्य हैं।

(३) वर्णों के अष्ट वर्गों में वशिनी आदि देवियाँ ही अष्टवर्ग के रूप में स्थित हैं—

'अष्टवर्गास्तु अष्ट वशिन्यादयः, षोडश नित्याः' वर्णों के अष्टवर्ग में **अष्ट वशिनी आदि देवियाँ, षोडश नित्यायें, द्वादश योगिनियाँ** (चार गन्धाकर्षिणी आदि)—इस प्रकार ४४ (चतुश्चत्वारिंशत) की समष्टि स्थित है।

(४) यहाँ एक शक्ति को छोड़कर ४३ कोणों में ४३ देवता अन्तर्भाव्य हैं। (बैन्दव स्थान से नीचे एक त्रिपुर सुन्दरी, गन्धाकर्षिणी आदि चारों द्वारों पर—इस प्रकार नित्याओं को 'श्री चक्र' का अङ्ग रूप में प्रतिपादन किया गया।)

इसे ही **'भूप्रस्तार'** कहा जाता है। **'इयमेव भूप्रस्तारः।'**[2]

वशिन्यष्टक

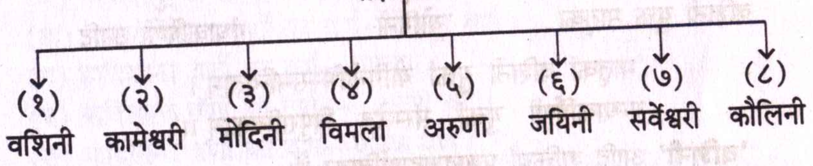

*** योगिनीद्वादशक ***

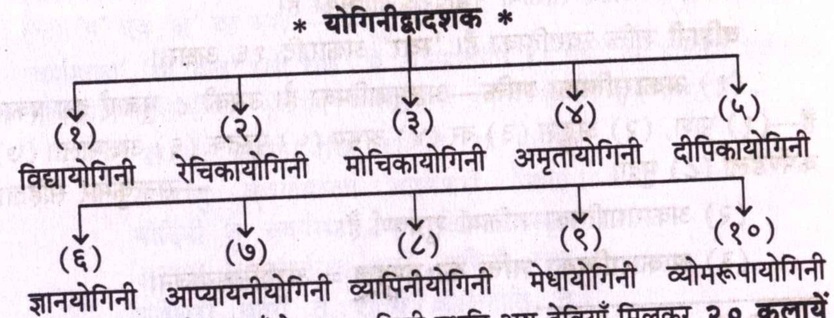

(१) १२ योगिनियाँ के साथ वशिनी प्रभृति अष्ट देवियाँ मिलकर **२० कलायें** बन जाती हैं।

---

[1] लक्ष्मीधरा

[2] **लक्ष्मीधरा (३१)**

(२) वे विंशति कलायें शुद्धस्फटिक सङ्काश स्वच्छ एवं निर्मल हैं तथा वे दशार युग्म कोणों में संस्थित् हैं।

(३) चारों द्वारों पर (१) गन्धाकर्षिणी (२) रसाकर्षिणी (३) रूपाकर्षिणी (४) स्पर्शाकर्षिणी स्थित हैं।

‘गन्धद्वारा’ दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम॥[१]

‘वशिन्यादि’ = (१) ८ शक्तियाँ (२) १२ योगिनियाँ (३) गंधाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी = ४ ०८ + १२ + २४

(३) भगवती का स्वरूप क्या है? वे मातृका हैं। वे पञ्चादद्वर्णात्मिका हैं—

‘भगवत्याः स्वरूपं तु पञ्चाशद्वर्णात्मिका मातृकैव’[२]

(५) यही **पञ्चाशक्षद्वर्णात्मिका मातृ** का अष्टवर्गात्मिका है और ये ८ वर्ग हैं—(क) अ (ख) च (ग) ट (घ) त (ङ) प (च) य (छ) शवर्ग। इसमें **अकारवर्ग = १६ स्वर।।**[३]

कवर्ग ५; **चवर्ग** ५; **टवर्ग** ५, **तवर्ग** ५, **पवर्ग** ५ **यवर्ग** ५, **शवर्ग** ५। त्रिपुरात्म्बा का जो स्वरूप वह इनसे युक्त है।

त्रिपुराम्बा का स्वरूप

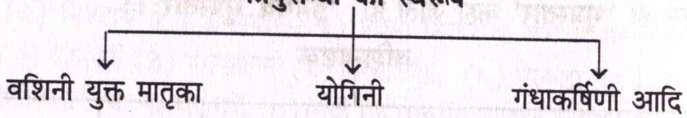

‘मातृकां वशिनी युक्तां योगिनीभिस्समन्विताम्।
गन्धाकर्षिणी युक्तां संस्मरेत् त्रिपुराम्बिकाम्॥’

‘वशिनी’ आदि शक्तियाँ पञ्चादशद्वर्णात्मिका हैं।

वशिनी शक्ति स्वरात्मिका है। **‘स्वर’** अकारादि १६ अक्षर॥

(१) **अकारात्मिका शक्ति**—अष्टभुजात्मिका है। उसकी ८ भुजाएँ इस प्रकार हैं—(१) पाश, (२) अङ्कुश (३) वर (४) अभय (५) पुस्तक (६) अक्षमाला। (७) कर्मण्डला (८) मुद्रा।

—सनत्कुमार संहिता।

(२) अकाराद्यात्मिका शक्तियाँ शुभ्रवर्ण हैं।

(३) **आकारात्मिका शक्ति का मण्डल** = अशीलिक्षयोजन।

---

१. याज्ञिकी ३०१ (श्रुति)

२. लक्ष्मीधरा (श्लोक क्रमांक १७)

३. १६ + ३५ = ५१ वर्ण।

(४) **आकार का मण्डल** = अशीतिलक्षयोजन का द्विगुणात्मक।
(५) **इकार का मण्डल** = नवतिलक्ष योजन।
(६) **ईकार का मण्डल** = नवतिलक्ष का द्विगुणात्मक।
(७) **उकार का मण्डल** = कोटियोजन परिमित परिणाह मण्डल
(८) **ऊकार का मण्डल** = उपर्युक्त का द्विगुणात्मक।
(९) **ऋकार का मण्डल** = पञ्च लक्षयोजनात्मक।
(१०) **ॠकार का मण्डल** = दश लक्ष योजन।
(११) **लृकार, लृकार का मण्डल** = २०,४० लक्ष योजन।
(१२) **एकार** का मण्डल = सार्ध कोटि परिणाह मण्डल।
(१३) **ऐकार, ओकार, औकार का मण्डल** = एकार के समान।
(१४) **बिन्दु एवं विसर्ग का मण्डल** = तद्विगुणात्मक।
(१५) **व्यञ्जन शक्तियों का मण्डल** = अकार मण्डल का अर्ध भाग है।

ये शक्तियाँ (१) पाश। (२) अङ्कुश (३) अक्षमाला एवं (४) कमण्डल धारण किए हुए हैं।

अन्तस्थ वर्ण = पाश। अङ्कुश। अभय। वर धारण किए हुए है।
ऊष्मवर्ण = पाश। अङ्कुश। अक्षमाला। वर धारण किए हुए।
लकार-क्षकार वर्ण = पाशा अङ्कुशा ऐक्षव शरासन।
पुष्पबाण—धारण किए हुए हैं। ये शक्तियाँ ५० वर्णों से युक्त हैं।

(क) **अकरादि वर्णों का वर्ण**—धूम्रवर्ण।
(ख) ककारादिठान्त वर्णों का वर्ण—सिन्दूर वर्ण।
(ग) डादिकान्त वर्णों का वर्ण—गौरवर्ण।
(घ) बादिलान्त वर्णों का वर्ण — अरुण वर्ग।
(ङ) वादिसान्त वर्णों का वर्ण—कनक वर्ण।
(च) ‘ह’ एवं ‘क्ष’ का वर्ण — विद्युदाभ वर्ण।

‘वर्णमाला’ ‘श्री यन्त्र’ (श्री चक्र) में अन्तरगर्भित है। वर्णों के अष्टवर्ग एवं उनकी अधिष्ठात्री शक्तियाँ जो ‘श्री यंत्र’ में स्थित हैं उनका परिचय इस प्रकार है—

‘अवर्गः प्रथमो देवि! वशिनी तत्र देवता।
तत्परस्तु कवर्गोयस्तत्र **कामेश्वरी** स्थिता।
मोदिनी तु चवर्गस्था टवर्ग **विमला** स्मृता॥
अरुणा तु तवर्गस्था पवर्गे **जयिनी** तथा।
सर्वेश्वरी यवर्गे तु शवर्गे कौलिनीति च।
एता वर्गाष्ट के देवि! अष्टावेवहि देवताः।
अर्चिताः पुरुषस्याशु प्रकुर्वन्ति वशं जगत्।’

—वामकेश्वरीमतम्

श्लोक क्रमांक ४ २ : चक्रों में 'तामिश्र चक्र' 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान'

'भवेन्मूलाधार तदुपरितनं चक्रमपि तत्।
द्वयं तामिश्राख्यं शिखिकिरण संमेलनवशात्।
तदेतत्कौलानां प्रतिदिनमनुष्ठेय मुदितम्।
भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्य मुभयम्॥४२॥

[अग्नि की किरणों से मिले होने के परिणाम स्वरूप मूलाधार चक्र' एवं तदुपरिस्थित (स्वाधिष्ठान चक्र) दोनों चक्र **'तामिश्र'** नाम वाले चक्र हैं। **कौलमतोपासक गण** प्रतिदिन इन्हीं की उपासना (अनुष्ठान) करके आह्लादित हुआ करते हैं। आपका (आपके अनुयायियों में) **वाममार्ग नामक मत** भी ऐसा ही है। ये दोनों (मत) परित्याज्य हैं॥४२॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद ने पिण्डस्थ षट्चक्रों में से प्रथम दो चक्रों (१) **'मूलाधार चक्र'** एवं (२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** को हेय माना है अत: वे इसे परित्याज्य भी कहते हैं।

(२) ये दोनों चक्र अन्धकारावृत होने के कारण **'तामिश्र'** भी कहलाते हैं।

(३) **'स्वाधिष्ठान'** से उच्चवर्ती चक्र सूर्य एवं चन्द्र द्वारा प्रकाशित हैं—ये **'आज्ञा चक्र'** एवं **'विशुद्ध चक्र'** के प्रकाश से प्रकाशित हैं। इन दो ('मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान') में सूर्य एवं चन्द्र की रश्मियाँ पहुँच ही नहीं पाती अत: ये दोनों अति निम्नवर्ती चक्रद्वय अन्धरावृत हैं।

(४) यद्यपि यह भी सत्य है कि 'अनाहत चक्र' सूर्य का स्थान है और इसकी प्रखर रश्मियाँ **'मणिपूर चक्र'** को दीप्तिमान बनाती हैं किन्तु समस्या यह है कि **'मणिपूरक चक्र'** के स्वस्थित मेघों के कारण सूर्य की रश्मियाँ नहीं जा पातीं अत: पूर्वोक्त चक्रद्वय आलोकित नहीं हो पाते।

(५) 'समयमत' के अनुयायी इन दोनों चक्रों ('मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र') में भगवती कुण्डलिनी की उपासना नहीं किया करते।

(६) कौल एवं वाम दोनों मार्गों वाले भगवती कुण्डलिनी की पूजा यही किया करते हैं। वे **'समयमत'** में त्याज्य (१) **'मूलाधार' चक्र** एवं (२) 'स्वाधिष्ठन चक्र' की पूजा यहीं किया करते हैं। **आचार्य गौड़पाद 'समय मत'** के अनुसार इन्हें त्याज्य मानते हुए कहते है—'तदेतत्कौलानां' प्रतिदिन मनुष्ठेय मुदितं।

'भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्य मुभयम।'

—सुभगोदय स्तुति

'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान'—योग के आलोक में वैसे तो 'ललिता सहस्रनाम' में इन चक्रों की वरेण्य भूमिका स्वीकार करते हुए कहा गया है कि—

(१) **भगवती कुण्डलिनी मलाधार चक्र में रहती** हैं और यही **'ब्रह्मग्रंथि'** है। 'मूलाधारैकनिलया **ब्रह्मग्रंथि** का भेदन करती हैं—'मूलाधारैक निलया ब्रह्मग्रंथि विभेदिनी।'

'योग शास्त्रं की दृष्टि से 'मूलाधार'—

(१) यह वह चक्र है जो समस्त शरीर एवं समस्त चक्रों का आधार है—

'सर्वाधरा मही यस्मात् मूलाधारतया स्थिता।
तदभावे तु देहस्य पातस्स्यादुद्वोपि वा॥'

(२) यहीं त्रिकोण में भगवान **'स्वयंभू लिङ्ग'** निवास करते हैं—

(३) यहीं **'स्वयंभू लिङ्ग'** को आच्छादित करके **'कुण्डलिनी शक्ति'** विद्यमान है।

(४) यहीं **'वाग्देवी'** का निवास है—'अहिवत सन्धिसंस्थान **'वाग्देवी'** बीज संज्ञका।

(५) यहीं **विष्णु शक्ति'** स्थित है—'ज्ञेया शक्तिरियं विष्णो निर्भरा स्वर्णाभास्वरा॥

(६) यही **'योगिमण्डल'** में कुण्डलिनी के साथ **'कामबीज'** भी स्थित है।

(७) यहीं पर **'काम बीज'** (सूर्य-अग्नि-चन्द्रमा के तेज से समन्वित) के स्वरूप में भगवती **'त्रिपुरा'** स्थित हैं—'एतत् त्रयं मिलित्वैव देवी **त्रिपुर भैरवी'**

(८) यहीं **द्विरण्ड'** नामक **सिद्धलिङ्ग** एवं **डाकिनी देवी** स्थित हैं।

(९) यहीं ('मूलाधार चक्र') से सहस्रार पर्यन्त ब्रह्म नाड़ी गई है—

'मूलाधारात् सहस्रारस्तदन्तर्ब्रह्मनाडिका।
शिरा स्यात् ब्रह्मपर्यन्तं तदन्तर्द्वारमुत्तरम्॥'

(१०) यहीं पर **भगवती परमेश्वरी** अपने मुख से ब्रह्मद्वार को ढककर सो रही हैं—

'मुखेनाच्छाद्य तद् द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।'

(११) यहीं **धरा, धरा बीज** एवं **'धरा चक्र'** है—

'मूलाधारे **धराचक्रं** चतुष्कोणं प्रियंवदे।'
'मूलाधारे **धराबीजं** तद्बिन्दौ ब्रह्मणः स्थितिः॥'

(१२) यही पर **'ब्रह्म'** स्थित है—'तद्बिन्दौ ब्रह्मणः स्थितिः।

(१३) यही पर **'त्रिपुरसुन्दरी'** स्थित हैं—

'तेषां मध्ये स्थिता देवी सुन्दरी परदेवता।'

(१४) यहीं त्रिकोणाकार **'शक्तिपीठ'** है।

'त्रिकोणं तत् तु विज्ञेयं **शक्तिपीठं** मनोहरम्।'

(१५) यहीं **'वामा' 'ज्येष्ठा' रौद्री** शक्तियाँ भी स्थित हैं।

'वामा ज्येष्ठा तथा **रौद्री** त्रिरेखा च तदूर्ध्वतः॥

(१६) यहीं **कन्ददेश में 'प्राण'** एवं गुदादेश में **'अपान'** वायुद्वय का निवास है—

'कन्ददेशे वसेत् प्राणो ह्यपानो शुदमण्डले।'

(१७) यहीं 'त्रिकोण' में **'इच्छा शक्ति'-'ज्ञान शक्ति' 'क्रिया शक्ति'** रूप **'शक्तित्रय'** निवास करता है—

'मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छा ज्ञान क्रियात्मिके।
मध्ये स्वयंभूलिङ्गस्तु कोटिसूर्यसमप्रभः ॥'

(१८) यहीं 'परावाक्' का निवास है जो समस्त वाशियों का मूल है—

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः ॥'

(१९) यहीं **समस्त वर्ण माला** का केन्द्र है—

'परा वाक्' ही समस्त ब्रर्णों मूल केन्द्र है अतः 'परा वाक्' के यहाँ उदित होने से यह चक्र समस्त वाणियों का केन्द्र भी है।

(२०) यही चक्र **समस्त नादों मूल केन्द्र** है क्योंकि 'परावाक्' समस्त नादों की माता है।

(२१) यहीं ऐरावत हस्ती पर **भगवान गणेश** भी विराजमान है।

(२२) यहीं **'शब्द ब्रह्म'** प्रणव या **'औकार'** स्थित है।

(२३) यहीं स्वयंभू लिङ के ऊपर **'चित्कला'** स्थित है।

(२४) यहाँ जप करने से **मंत्रसिद्धि** भी अवश्यभेव होती है—

'वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरा।
मन्त्रसिद्धिर्भ वेत्तस्य जपादेव न संशयः।

(२५) यहीं 'मूलाधार पद्म' के चारों दलों पर भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के पञ्चदशी मन्त्र से सम्बद्ध **'वाग्भव बीज'** है।

'मूलाधारेऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम् तन्मध्ये **वाग्भवं बीजं** विस्फुरन्तं तडित्प्रभम्।'

(क) 'मूलाधार चक्र' में 'वाग्भव बीज'
(ख) 'अनाहत चक्र' में 'कामबीज'
(ग) 'आज्ञा चक्र' में 'शक्ति बीज' स्थित हैं।

इन्हीं विशेषताओं के कारण 'कौल' और वाममार्गी **'मूलाधार'** एवं **'स्वाधिष्ठान'** को त्याज्य नहीं मानते बल्कि वे मूलाधार में ही भगवती महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा करते हैं। 'मूलाधार चक्र' के त्रिकोण में ही कौलगण भगवती की समाराधना करते हैं—

'त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे।[1]

---

[1] गौड़पादाचार्य 'सुभगोदय स्तुति'

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—'आधार चक्रं त्रिकोणम्। आधारे बिन्दु तिष्ठतीति च तावत् प्रसिद्धम्। अत्र **कौलमते** त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम्। स एव बिन्दुः तत्र आराध्यः। अतएव **कौला** त्रिकोणे बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति। तत्र त्रिकोणं द्विविधं—

(१) श्री चक्रान्तर्गत नवयोनिमध्यवर्तिनी योनिः।
(२) सुन्दर्याः तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिश्च।

श्री चक्र स्थित तनवयोनिमध्यगतयोनिं भूर्जहमपट्टवस्त्र पीषदौ लिखितां **पूर्व कौलाः** पूजयन्ति। तरुण्याः प्रत्यक्ष योनिं **'उत्तर कौलाः'** पूजयन्ति।[1]

सारांश यह कि रामयमत के उपासकों के विपरीत कौल मत वाले शाक्त भगवती की पूजा मूलाधार चक्र के त्रिकोणात्मक योनि में करते हैं।

'समयमत' वाले 'मूलाधार चक्र' का त्याग करके बैन्दवस्थान में ही भगवती की पूजा करते है।

'समयिनां सहस्रकमले समयायाः समयस्य च शम्भोः पूजा।' —(लक्ष्मीधरा)

* 'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' *

प्र. 'मूलाधार' और 'स्वाधिष्ठान चक्र' को कौलों ने इतना महत्व क्यों दिया?

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—जिन आचार्य गौड़पाद ने ६ चक्रों में **'मूलाधार चक्र'** एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** को उपासना एवं साधना की दृष्टि से हेय एवं परित्याज्य बताया और कहा कि—

(१) 'द्वयं **तामिश्राख्यं,** (२) तदेतत् **कौलानां प्रतिदिनमनुष्ठेय** मुदितम्' (३) **'परित्याज्य मुभयम्'**[2] (४) 'भवेदेतच्चक्रद्वितयमतियूर समयिनां।[3]

(५) **त्रिकोणं** ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे।
चतुष्कोणं प्राहुः समयिनं इमे बैन्दवमिति ॥[4]

(६) **विसृज्यैतद्युग्मं** तदनु मणिपूराख्य सदने।

(युग्मं' = मूलाधार एवं स्वाधिष्ठानं विसृज्य छोड़कर) उन्हीं **आचार्य गौड़पाद** ने 'सुभगोदय' के ४६हवें एवं ४७हवें श्लोक में ६ चक्रों में से **इन्ही दों चक्रों को सर्वाधिक महिमाण्डित** किया है और इनहें ही—

(क) समस्त शेष चक्रों का जनक स्वीकार किया है और (ख) समस्त शेष चक्रों की मूल प्रकृति या धर्मों (स्वभाव प्रवृत्ति गुण) का आधार स्रोत भी इन्हीं दो चक्रों को स्वीकार किया है।

---

[1] लक्ष्मीधरा
[2] सुभगोदय (४२)
[3] सुभगोदय (४५)
[4] सुभगोदय (७)

(७) वे कहते हैं—

‘सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं।
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणाम्।
ततो मूलाधाराद्वितयमभवत्तद्दशदलं।
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुभवत्॥४७॥

‘अधिष्ठाता धार द्वितयमिदमेव दशदलं
सहस्राराज्जात मणिपुर मतोऽभूद्दशदलम्।
हृदयम्भोजान्मूलान्नृपदलभूतस्वान्तकमलं,
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्॥[१]

‘स्वाधिष्ठान चक्र’ को इतना महत्व क्यों?

‘कौलमत’ में स्वाधिष्ठान चक्र को महत्व क्यों दिया गया?

‘स्वाधिष्ठान चक्र’ और उसका महत्त्व—पूर्णानन्द यति ‘षट् चक्र निरूपणम्’ में कहते हैं कि—

(१) यह चक्र लिङ्ग के मूलप्रदेश में स्थित है।

यह ‘वज्रा नाड़ी’ के मध्यभाग में स्थित है। ‘वज्रा’ नाड़ी के मध्य ही ‘चित्रिणी’ एवं चित्रिणी के मध्य **‘ब्रह्मनाड़ी’** है।

(२) ‘स्वाधिष्ठान चक्र’ भी कर्णिका के मध्य अर्ध चन्द्राकार ‘वरुणाबीज’ ‘वँ’ स्थित **है। ‘स्वाधिष्ठान चक्र’** की कर्णिका के मध्य में **‘लमण्डल’** ह।

(जल मण्डल के मध्य निर्मल शरत्कालीन चन्द्रवत् शुभ्र, मकरारूढ़ अर्ध चन्द्राकार **‘वरुणबीज’ ‘वँ’** सुशोभित है।

(३) यहीं पर जल के देवता वरुण, (वरुण बीज ‘वँ’ = जन का बीज ‘वं’) स्थित है।

(४) यहीं स्वाधिष्ठान चक्र के अधिष्ठता श्री हरि वरुण बीज ‘वँ’ की गोद में विद्यमान हैं।

(५) यहीं स्वाधिष्ठान चक्र की अधिष्ठात्री देवी **‘राकिणी शक्ति’** स्थित हैं।

(६) ‘स्वाधिष्ठान चक्र’ के ध्यान का फल लै—

अहंकारादिक दोषों का नाश—

‘स्तस्याऽहङ्कार दोषादिक सकलरिपुः क्षीयते तत् क्षणेन’ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य = ‘षड्रिपु’ कहलाते है। ये सभी स्वाधिष्ठान के ध्यान से नष्ट हो जाते हैं।)

---

१. सुभगोदय (४६)

इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी की **‘राकिणी’** हैं।

(७) इस चक्र का निरन्तर ध्याता अश्रुत शास्त्रों का भी अप्रतिम मर्मज्ञ, सारे लोगों से निर्मुक्त, निर्भय, मृत्युञ्जयी, अणिमादि सिद्धियों का स्वामी एवं अमृतपायी बन जाता है—

‘मरणं खाद्यते तेन स केनापि नखाद्यते’ सिद्धि रणिमादिगुणान्विता’ ‘पीयूषमपि वर्धते’ (शिव संहिता)

हंसोपनिशदकार की दृष्टि—‘हंसोपनिषद्’ में प्रत्येक चक्र से सम्बद्ध मनोभावों, भावनाओं, हसजात प्रावृत्तियों एवं धर्मों के उल्लेख के साथ प्रत्येक चक्र का परिचय दिया हुआ है। यह इस प्रकार है—

*** मूलाधार चक्र ***

(१) परमानन्द
(२) सहजानन्द
(३) वीरानन्द
(४) योगानन्द

*** स्वाधिष्ठान चक्र ***

(१) प्रश्रय
(२) क्रूरता
(३) गर्वनाश
(४) मूर्च्छा
(५) अवज्ञा
(६) अविश्वास

‘मणिपूर चक्र’

(१) सुषुप्ति
(२) तृष्णा
(३) ईर्ष्या
(४) पैशुन्य
(५) लज्जा
(६) भय
(७) घृणा
(८) मोह
(९) कषाय
(१०) विषादिता

अनाहत चक्र

(१) लौल्यप्रणाश
(२) प्रकट
(३) वितर्क
(४) अनुतापिता
(५) आशा
(६) प्रकाश
(७) चिन्ता
(८) समूहा
(९) समता
(१०) दम्भ
(११) वैकल्य
(१२) विवेक
(१३) अहङ्कृति

विशुद्धि चक्र

(१) प्रणव
(२) उद्गीय
(३) हुंफट्
(४) वषट्
(५) स्वधा
(६) स्वाहा
(७) काम
(८) धैवत
(९) निषाद
(१०) विष

ललना चक्र

(१) मद
(२) मान
(३) स्नेह
(४) शोक
(५) खेद
(६) लुभता
(७) अरति
(८) संभ्रम
(९) ऊर्मि
(१०) श्रद्धा
(११) तोष
(१२) उपरोधिता

आज्ञा चक्र

(१) सत्वाविर्भाव
(२) रजआविर्भाव
(३) तमआविर्भाव

मनस चक्र

(१) स्वप्न
(२) रसोपभोग
(३) घ्राण
(४) रूपोपलम्भ
(५) स्पर्श
(६) शब्दबोध

सहस्त्रार या सोम चक्र

(१) कृपा
(२) क्षमा
(३) आर्जव
(४) धैर्य
(५) वैराग्य
(६) धृति
(७) सम्मद
(८) हास्य
(९) रोमाञ्चनिचय
(१०) ध्यानाश्रु
(११) स्थिरता
(१२) गांभीर्य
(१३) उद्यम
(१४) अच्छत्व
(१५) औदार्य
(१६) एकाग्रता

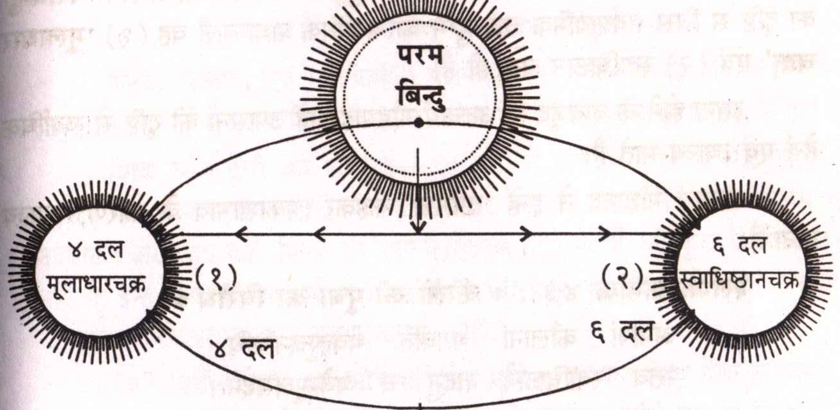

मूलाधार के ४ दल + स्वाधिष्ठान के ६ दल

‘मणिपूरक चक्र = १० दल

(१) ‘मणिपूरक चक्र’ क १० दल
(२) मूलधार चक्र संख्या १
(३) स्वाधिष्ठान चक्र संख्या १

१० + २ = १२ दल

‘अनाहत चक्र’ = १२ दल

अनाहत के १२ दल + मूलाधार के ४ दल
१२ + ४ =
१६ दल

‘विशुद्धाख्य चक्र’ = १६ दल
(१) मूलाधार चक्र + (१) स्वाधिष्ठान चक्र
(१) संख्या = २ = (१) संख्या
आज्ञा चक्र = २ दल

‘सुभगोदय स्तुति’

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—यह बिल्कुल सत्य है कि सहस्रारस्थ **'परबिन्दु'** का दृष्टि से जिस सर्वप्राथमिक चक्र युग्म का सर्वाधिक प्राधान्य है वह (१) **'मूलाधार चक्र'** एवं (२) स्वाधिष्ठान चक्र ही है।

इतना होने के बावजूद भी आचार्य गौड़पाद इन्हें उपासना की दृष्टि से सर्वाधिक हेयं एवं त्याज्य माते हैं।

आचार्य गौड़पाद ने इन्हें **'तामिस्र'** कहकर (प्रकाशाभाव के कारण) त्याज्य माना है।

श्लोक क्रमांक ४३ : * कौलों की पूजा का विरोध *

अमीषां कौलानां भगवति भेवेत्पूजनविधि,
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने।
अतो बाह्यपूजा भवति भगरूपेण च ततो,
निषिद्धा चारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते ॥४३॥

(हे भगवती! इन लोगों की (कौलों की) त्वत् सम्बद्ध पूजा पद्धति **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में एवं फिर **'मूलाधार चक्र'** में निष्पादित (निष्पन्न) होती है। इसलिए यह भगकेन्द्रिय (आपकी) कौल-पूजा बाह्यपूजा है अतः यह (कौल पूजा) शास्त्र-निषिद्ध आचरण है। हे अनिन्द्य चरित्र वाली भगवती (यह पूजा) श्रुतिविपरीत भी है।॥४३॥

सरोजिनी (व्याख्या)—आचार्य गौड़पाद ने यहाँ कौलमार्गियों की पञ्चमकारात्मिका पूजा का विरोध करते हुए कहा है कि हे भगवती! मैं यह तो मानता हूँ कि जिस प्रकार हम **'समय मत'** वाले आपकी आराधना एवं पूजा करते हैं उसी प्रकार **'तेरे ये कौल स उपासक'** भी तेरी पूजा किया करते हैं तथापि हम इस पूजा पद्धति का इसलिए विरोध करते हैं क्योंकि ये—

(१) निषिद्धाचरण को ग्रहण करते हैं।

(२) ये वेद विरुद्ध मार्ग का आत्मीकरण करते हैं।

(३) ये समयमतावलम्बियों की भाँति आन्तरपूजा न करके **'बालपूजा'** किया करते हैं।

(४) यह (समय-मत में) प्रतिषिद्ध एवं निन्द्य चक्रों में भगवती की पूजा करते हैं।

(५) हम समयमतावलम्बी 'वियच्चक्र' (सरघा। सहस्रार। सहस्रदल कमल) में ही भगवती की पूजा करते हैं किन्तु ये 'त्रिकोण' 'मूलाधार' चक्र) एवं 'स्वाधिष्ठान' चक्र में आपकी पूजा करते हैं जो कि 'तामिश्र' (अन्धकार पूर्ण) हैं।

कौलों की पूजा और पञ्चमकारोपासना—कौल अपनी पूजा में पञ्चमकारों का उपयोग करते हैं।

'पञ्चमकार' और उनके विभिन्न अर्थ

पञ्चमकारों के उपयोग के विषय में दृष्टि-भेद

अनेक आचार्यों एवं मनीषियों ने पञ्चमकारों को (कुल द्रव्यों को) प्रतीकात्मक (Symlrlic) अर्थ में ग्रहण किया है किन्तु अनेक ने भौतिक एवं बाह्य पदार्थों के रूप में।

शिव और देवी का सम्वाद—जब देवी ने भगवान शिव से पञ्चमकारों के स्वरूप पर प्रकाश डालने की प्रार्थना की तब भगवान शिव ने इनके स्वरूप का उद्घाटन करते हुए कहा कि—इन पञ्चमकारात्मक बाह्य पदार्थों की पूजा में कोई महत्ता नहीं है। इन्हें प्रतीकात्मक अर्थों में ग्रहण करके सद् द्रव्यों का ही उपयोग करना चाहिए या इनका प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

[१] **'शक्तिसंगम तंत्र और तन्निहित दृष्टि**—भगवान शिव देवी से कहते हैं कि हे देवी। जिस प्रकार किसी मार्ग पर यात्रा करने के लिए मार्गा-प्रदर्शन किया जाता है उसी प्रकार ये पञ्चमकार साधना-यात्रा के मार्गदर्शन हैं—

'मार्ग प्रदर्शनाद्देवि। गति सर्वत्र दृश्यते।
तन्मार्ग दर्शनार्थं हि मकारा पञ्च कीर्तिता ॥१९॥'

'मुद्रा' = शर्करादि से प्रपूरित, मनोहर, पक्व, शुभ, चन्द्र बिम्ब के समान व्रीहि ही देवी-पूजा में **'मुद्रा'** है—

'ब्रीहीयं मण्डलाकारं चन्द्रबिम्बनिभं शुभं।
चारुपक्व मनोहारि शर्कराद्यैः प्रपूरितं॥
पूजा काले च देवीनां मुद्रैषा परिकीर्तिता।

पञ्चमकार—(१) ब्रह्मा। विष्णु। रुद्र। ईश्वर। सदाशिव।
'ब्रह्म विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते पञ्च मकाराश्च पञ्चनामप्रकारकाः ॥२१॥
(२) ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री, ईश्वरी श्री सदाशिव।
'ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री ईश्वरी श्रीः सराशिवा।
पञ्चमुद्रा समाख्यातास्तत्वनामधरा शिवे॥'

पञ्चतत्त्व =

आत्मविद्या शिवा सर्वा पूर्णेति पंचम विदुः।
पञ्च तत्त्वानि देवेशि! केरले कीर्तितानि च ॥२२॥

कुण्डलिनी की प्रीति हेतु, सन्तर्पण-विधान में मुद्रा उपयोगी है—

'सन्तर्प्य कुण्डली शक्तिः पञ्चमुद्रा विधानतः॥
अलिना पिशितं मीनं मुद्रा मैथुन मुत्तमम् ॥२४॥
मकार पञ्चकं यत्र तत्र देवी न संशयः।

प्रश्न—प्रश्न उठता है कि इन पञ्च द्रव्यों में 'मद्य' का स्वरूप क्या है? क्या यह द्राक्षा निर्मित मद्य है या अन्य?

'शक्तिसंगत तंत्र' में कहा गया है कि—

'न मद्यं माधवी मद्यं, 'मद्यं' शक्तिरसोद्भवम् ।।२५।।
सुषुम्ना शंखिनी मुद्रा उन्मन्युत्तमं रसः ॥

(यह 'मद्य' उन्मनी नामक रस है।)

प्रश्न—'मैथुन' क्या है? सामरस्य ही मैथुन है।

'सामस्यामृतोल्लासं **मैथुनं** च सदाशिवम् ॥२६॥

प्रश्न—'शक्ति' कौन है? महाकुण्डलिनी ही शक्ति है—

महाकुण्डलिनी शक्तिस्तद्योगार्थ महेश्वरि।
शक्ति प्रोक्ता महेशानि न **भोगार्थं** मयेरिता ॥२७॥

प्रश्न—कुण्डली रसवान कैसे बनती है?

कुण्डली सामरस्यार्थं स्वयम्भूलिङ्गमीरितम्।
एतदभ्यासयोगेन कुण्डली रसवान भवेत् ॥२८॥

प्रश्न—कुण्डली का स्वरूप क्या है? उसके रस का स्वरूप कैसा है? **'कुण्डली'** अवाच्य है। समरसानद ही रस है।

'रस' एवं 'मद्य' का स्वरूप

कुण्डली कीदृशी देव। तद्रसः कीदृशो भवेत् ?

भगवान शिव कहते हैं—

अवाच्यं यद्धेद्वच्मि तद्रसस्तु यथा भवेत्।
तथा **समरसानन्द 'रसः'** सङ्कीर्तितो मया।
अज्ञानादपि देवेशि। भोगवासनयाऽपि च ॥३०॥
फल संसारजं देवि! गर्भरूपेण जाग्रति।
ज्ञात्वा फलमवाप्नोति त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥३१॥
तस्मात्तु पञ्चमी मुद्रा कीर्तिता तु मया तव।
संयोगाभृतयोगेन कुण्डल्युत्थान कारणात् ॥
चान्द्रपात्रे यदा याति तन्मद्यं परिकीर्तितम् ॥

'मत्स्य' एवं मुद्रा स्वरूप

'मस्त्य' कौन है? क्या नदी, तालाब या समुद्र में रहने वाला जीव विशेष ही 'मत्स्य' है? नहीं।

मणिपूरे दशदले सुषुम्नायां याद गतिः।
तत्करामृतयोगाद्धि **द्वितीया** परिकीर्तिता ॥

हृत्पद्मद्वारदशारे तु शंखिनी कूर्म संस्थिता।
सुधासागर क्रीडायां **मत्स्यस्तत्र** प्रकीर्तितः ॥
मुद्रातृतीया गदिता **चतुर्थी** षोडशच्छदे।
चन्द्र सूर्याग्नि संभिन्ना वर्तुला बिन्दुगर्भिता।
भगध्वाजारख्य चणकै वर्णाङ्कैर्धटिता तु **चतुर्थिका**
'पञ्च मुद्रा' मया प्रोक्ता मोक्ष भाव फलाप्तये।
मकार पञ्चकेनैव ज्ञानमेतस्य जायते ॥३७॥
मकाररूपमार्गोहि कीर्तितस्ते मया तव।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुभिच्छसि ?[1]

अन्य ग्रन्थकारों की दृष्टियाँ—

प्रश्न—'मद्य' का यथार्थ स्वरूप क्या है?

[क] **'मद्य'** (१) व्योमपङ्कज निस्यन्द सुधापान रतोनरः।
मधुपायी समः प्रोक्तस्त्वितरे मद्यपायिनः ।।

—कुलार्णव तन्त्र

'सहस्रारनिःसृत अमृत ही यथार्थ मधु एवं मद्य है।)

ब्रह्मस्थान सरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्ति प्रदा।
या **शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता** सा पान योग्या सुरा।
(२) जिह्वयागल संयोगात् पिबेत् तदमृतं तदा।
योगिभिः पीयते तत्तु **न मद्यं गौडपैष्टिकम्**।

—गन्धर्वतन्त्र

(३) (ब्रह्मस्थान सरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्ड तृप्ति प्रदा।
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पान योग्या सुरा।)
सा **हाला** पिबतामनर्थफलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता।
या मित्वा मुनयः परार्थ कुशला **निर्वाण मुक्तिं गताः ।**

[ख] **'मांस' का यथार्थ स्वरूप क्या है ?**

(१) काम क्रोध सुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः।
ते विज्ञान परा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नरा।
नाश्नीयात्पशुमांसमात्म विमतेहिंसा परं सज्जनः ॥

---

[1] **'शक्ति संगम तंत्र'** (उत्तर भाग। द्वितीय खण्ड। तारा खण्ड। अक्षोभ्य महाग्रतारा संवाद। मुद्रा संकेत नामक ३२वाँ ३५हवाँ पटल।

(२) पुण्यापुण्यं पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेत् चित्तं **मांसाशी** निगद्यते।

—कुलारावितंत्र

[ग] 'मीन' का क्या अर्थ है?

(१) मानसादीन्द्रियगुणं संयम्यात्मनियोजयेत्।
स **मीनाशी** भवेछेवि। इतरे प्राणहिंसकाः ॥

(मन एवं इन्द्रियों को संयमित रखकर उन्हें आत्म-तत्त्व में नियोजित रखना ही मीनभक्षण है।)

(२) अहङ्कारो दम्भो मदपिशुनतामत्सरद्विषः।
षडेतान्मीनान् वैविषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याऽग्नौ नियमित कृतिर्धीवर कृतिः।
सदा खादेत्सर्वान्त्र च जलचराणां तु पिशितम् ॥

[घ] 'मुद्रा' का यथार्थ स्वरूप क्या है ?

(१) आशा तृष्णा-जुगुप्ता-भयविषय मानलज्जा प्रकोपाः।
ब्रह्माग्नावष्ट **मुद्रा** परसुकृतिजनः पच्यमानः समन्तात्।

(आशा, तृष्णा, जुगुप्ता आदि अंष्टपाशों का ब्रह्माग्नि में भस्म कर देना ही 'मुद्रा' है।)

नित्यं सम्भक्षयेत्तान वहितमनसा दिव्यभावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्योमहात्मा

(२) 'सत्संगेन भवेन्मुक्तिरस त संगेषु बन्धनम्।
असत्संगमुद्रणं यत्तु **तन्मुद्रा** परिकीर्तिता।

[ङ] 'मैथुन' का यथार्थ स्वरूप क्या है?

(१) या नाडी सूक्ष्म रूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा।
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते **मैथुनं नैव योनौ।**
योगीन्द्रो विश्ववद्यः सुखमयभवनेतांपरिष्वज्य नित्यम्

(२) **रेकस्त** कुङ्कुमाभासकुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दुरूप **महायोनौ** स्थितः प्रिये।
अकारहंसमारुह्य एकात च यदा भवेत्।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् ॥

१. **'मद्य'**—निर्विकार, निरञ्जन पर ब्रह्म विषयक योगसाधना के द्वारा समुत्पन्न प्रमदोत्पादक ज्ञान ही **'मद्य'** है।

'यदुक्त परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदन ज्ञानं **तन्मद्यं** परिकीर्तितम् ॥'

२. **'मांस'**—(१) 'हेरसना प्रिये। 'मा' रसना शब्द का नामान्तर है। वाक्य उसका अंश है। जो सदा-सर्वदा उस **वाक्य का भक्षण** करते हैं (वाक् संयमी या मौनी हैं) वस्तुतः वे ही **'मांससाधक'** हैं।

'मा शबदाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रिये।
तदा योभक्षयेद्देवि! स एव **मांसभक्षकः**।'

(२) जो मनुष्य अपने समस्त सत्कर्मों को निष्फल परब्रह्म में समर्पित कर देता है उस कर्म-समर्पण की आख्या ही **'मांस'** है—

'मां सनोति हियत्कर्म **तन्मांस** परिकीर्तितम्।
न च कामप्रतीकं तु योगिभिर्मांसमुच्यते।'

३. **'मत्स्य'**—

(१) गंगा यमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भ्वेन्मात्स्यसाधकः।

(गंगा-यमुना में (इड़ा-पिङ्गला में) श्वास प्रश्वास रूप दो मत्स्य है। प्राणायाम द्वारा उनका 'कुंभक' करना (श्वास-प्रश्वास रोकना) ही मत्स्य-भक्षण है।)

(२) मत्समानं सर्वमूले सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्विकं ज्ञानं तन्मत्स्यः परिकीर्तितः ॥

(सुखदुखादि सभी मनः स्थितियों में समभाव रखना—अर्थात् सात्विक ज्ञान रखना ही मत्स्य है।)

(४) **'मुद्रा'**—

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रतश्चरेत्।

(१) आत्मा तत्रैव देवेशि! केवलः पारदोपमः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटि सुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते ॥

(५) **मैथुन**—

इडा पिंगलयो : प्राणान सुषुम्नायां प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवाऽयं तु परः शिवः।
तयोस्तु संगमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥

श्लोक क्रमांक ४४ : नवात्मा शिव के नौ व्यूह (कौलमत)

'नव व्यूहं कौल प्रभृतिक ततं तेन स विभु,
र्नवात्मा देवोऽयं जगदुदकृद्भैरव वपुः ।
नवात्मा वामादि प्रभृतिभिरिदं भैरेववपु,
र्महादेवी ताभ्यां जनक जननीमज्जगदिदम् ।।४४।।'

[कौल प्रभृति दृष्टियों के अनुसार नौ व्यूह हैं। उनके कारण ये नवात्म शरीरी देवता शिव, भैरव के रूप में विश्व की संरचना करते हैं।

ह महादेवि! वह भैरव शरीर वाला नवात्मा देव 'वामा' आदि देवियों के साथ उनके लिए **पिता एवं माता के** समान है।।४४।।]

सरोजिनी (व्याख्या)— 'नवव्यूहं' 'नवात्मा' = भगवान शङ्कर के ९ व्यूह हैं।

नव व्यूह

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)
काल व्यूह	कुल व्यूह	नाम व्यूह	ज्ञान व्यूह	चित्त व्यूह	नाद व्यूह	बिन्दु व्यूह	कला व्यूह	जीव व्यूह

'वामादिप्रभृतिभिः'—वामा आदि ९ शक्तियों के द्वारा।

वामादिक नौ शक्तियाँ

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)
वामा शक्ति	ज्येष्ठा शक्ति	रौद्री शक्ति	अम्बिका शक्ति	इच्छा शक्ति	ज्ञान शक्ति	क्रिया शक्ति	शान्ति शक्ति	परा शक्ति

४४हवें श्लोक द्वारा आचार्य गौड़पाद ने **'कौलमत'** पर प्रकाश डाला है। इस मत के अनुसार—

(१) परमात्मा (पर ब्रह्म) नौ व्यूह वाला (नव व्यूहात्मक) है।

(२) वह वामादिक देवियों के साथ ९ प्रकार के ऐक्य से **भैरव एवं भैरवी रूप** से जगत का स्रष्टा एवं पालक आदि सभी कुछ है।

नव व्यूहात्मक देव का स्वरूप—इस नवात्मा शिव के स्वरूप को उद्घाटित करते हुए कहा गया है इस देवता का स्वरूप इस प्रकार का है—

'नव व्यूहात्मो देवः परानन्द परात्मकः ।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।

परानन्द पराशक्तिश्चिद्रूपानन्द भैरवी ।
तयोर्यदा सामरस्यं जगदुत्पद्यते तदा ।।'

व्यूहों के भेद

(१)	(२)	(३)
'भोक्ता'	'भोग्य'	'भोग'
'आत्मव्यूह'	'काल व्यूह आदि'	'ज्ञान व्यूह'

९ व्यूह और उनका स्वरूप

[१] **'काल व्यूह'**—निमेषादि कलान्त (निमेष से कला तक) अवच्छिन्न काल का प्रवाह ही **'कालव्यूह'** है। 'सूर्य' एवं 'चन्द्रमा' काल तत्त्व के अवच्छेदक हैं। वे भी काल व्यूहान्तर्गत हैं।[1]

[२] **'कुल व्यूह'**—नील आदि रूप ही 'कुल व्यूह' है।

[३] **'नाम व्यूह'**—संज्ञा स्कन्ध ही नाम व्यूह है।

[४] **'ज्ञान व्यूह'**—इसे 'विज्ञान स्कन्ध' भी कहते हैं। यही 'भागव्यूह' भी कहा जाता है।

'समाग्र' का क्या अर्थ है? **'सभाग'** का अर्थ है विकल्प। 'विकल्प' एवं 'विभाग' निर्विकल्प।

[५] **'चित्तव्यूह'**—अहंकार, चित्त, बुद्धि, महत् एवं मन—इसी अहंकार पञ्चस्कंध की अपर आख्या है **'चित्त'**।

[६] **'नाद व्यूह'**—राग, इच्छा एवं कृति, प्रयन्तस्कन्ध भी इस व्यूह में विचारणीय हैं।[2]

मातृका के चार रूप नादव्यूहान्तर्गत हैं।

मातृका के रूप चतुष्टय

(१)	(२)	(३)	(४)
'परा'	'पश्यन्ती'	'मध्यमा'	'वैखरी'

'परा'—यह वाणी का वह रूप है जिसका स्वरूप अन्तःकरण में ऊहया तर्क

---

१. लक्ष्मीधरा (३४)
२. लक्ष्मीधरा (३५)

के साथ स्फुरित हुआ करता है। जब योगी योग युक्त होता है तभी इसके स्वरूप का परिचय प्राप्त कर पाता है इसके पूर्व नहीं।

'कामकला विलासकार' 'परा' का परिचय देते हुए कहते हैं—

'यासान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा।' (२०)
'एवं भूतलक्षणा सैव **पराशक्तिरे** व ॥'

सुभगोदय वासनाकार की दृष्टि—

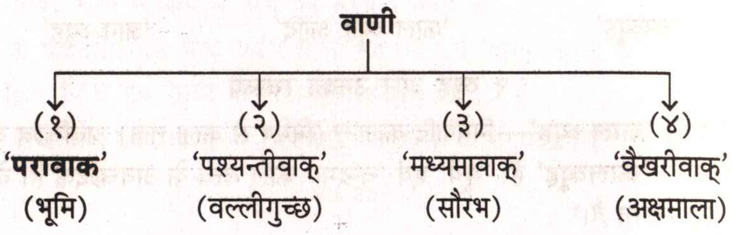

'परा भूजन्मप्रश्न्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।'

१. **'पश्यन्ती'**—'इच्छा शक्तिस्तथा वामा **'पश्यन्ती'** वपुषा स्थिता।
२. **'मध्यमा'**—'ज्ञानशतिस्तथा ज्येष्ठा **'मध्यमा'** वागुदीरित॥
३. **'वैखरी'**—'क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं **'वैक्षरी'** विश्वविग्रहा।

'पश्यन्ती वाक्—('कामकला विलास' के अनुसार)

'इच्छा शक्तिस्तथा ज्ञेया **'पश्यन्ती'** वपुषा स्थिता।'

—चतुश्शती

'मध्यमा'—एका परा तदन्या वामादिव्यष्टिमातृसृष्टयात्मा तेन नवात्मा जाता, माता सा **मध्यमा**भिधानाभ्याम्॥

'द्विविधा हिमध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृति स्थिता सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्यारख्या॥
'मध्यमा परापश्यन्त्योः समरसावस्था' (चिद्वल्ली)।'

'वैखरी वाक्'—

'परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या।
एताभिरेकपञ्चादशाक्षरात्मिका **वैखरी** जाता॥३२॥'

'कामकला विलास' में पुण्यानन्द ने 'परावाक्' को **'परा माहेश्वरी'** कहा है। अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप में आभासित होने पर यही **'परावाक्' 'पश्यन्ती वाक्'** कहलाने लगती है। यह त्रिमातृकात्मिका है और चक्र का भी स्वरूप धारण करती है।

'स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा चक्रातां याता॥'

('त्रिमातृका' = त्रिखण्डात्मिका पञ्चदशाक्षरी विद्या)

यह **चक्र रूप में भी परिणत** होने वाली पञ्चदशाक्षरीगर्भा **'परावाक्'** वर्णमात्र नहीं **'महेशी'** भी है—

'यासान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा।
स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता।
चक्रस्यापि महेश्या न भेद लेशोऽपि भाव्य तेवि बुधैः ॥२१॥'

'परा-पश्यन्ती'—इन दो से **'मध्यमावाक्'** का उदय होता है—

(१) वामा, ज्येष्ठा, रौद्री एवं अम्बिका शक्तियाँ की समष्टिगत अवस्था ही **'सूक्ष्मा मध्यमा'** है।

(२) इनकी व्यष्टि अवस्था ही **'स्थूला मध्यमा'** है।

वामादिक शक्ति चतुष्टय श्री चक्र के भीतर ऊर्ध्वमुख योनियाँ हैं। इस नव व्यूहात्मक शक्ति के कारण ही भगवती को **'नवात्मक'** कहा जाता है।

इसे इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

नवविध ऐक्य ही **कौल मत** है—'अतो नवविधैक्यं भैरवी भैरव योः ज्ञातव्य मिति. **कौलमतरहस्यम्'** (लक्ष्मीधरा)

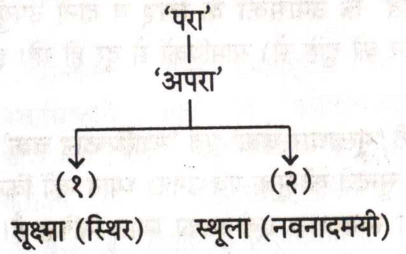

(७) **'बिन्दु व्यूह'**—षट्चक्रसमुदाय की आख्या बिन्दुव्यूह है।
(८) **'कलाव्यूह'**—यह वर्णस्वरूप ५० कलाओं की समष्टि है।
(९) **'जीव व्यूह'**—भोक्तृवृन्द का आख्यान्तर ही जीवव्यूह है।

'भोक्ता' = आत्मव्यूह। **'भोग'** = ज्ञान व्यूह। भोग्य काल व्यूह।

सारे **'जीवव्यूह'** सर्वत्र एकान्वित हैं अतः सर्वत्र ऐक्य है।

'बिन्दुव्यूह' से 'ज्ञान व्यूह' का तादात्म्य होने के कारण वहाँ भी ऐक्य है। चूँकि **'कालव्यूह'** अवच्छेदक है अतः वहाँ भी ऐक्य है। 'कुल' एवं 'नामव्यूह' निरूपक है अतः वहाँ भी ऐक्य है। **'नाद'** एवं **'कला'** तो एक हैं अतः वहाँ भी ऐक्य हैं इन कारणों से **परमेश्वर नव व्यूहात्मक** है। इस कारण **भैरव एवं भैरवी** में ९ प्रकार का ऐक्य है। यही **'कौलमत'** है। **'आनन्दभैरव'** एवं आनन्द भैरवी (परा) दोनों में तादात्म्यभाव है। **लक्ष्मीधर** कहते है—'अतएव कौला परमेश्वरं नवात्मेति व्यवहारन्ति॥

श्लोक क्रमांक : ४५ भगवती की पूजा के दो प्रकार

भवेदेतच्चक्र द्वितयमतिदूरं समयिनां।
विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्य सदने।
त्वया सृष्टैर्वारि प्रतिफलितसूर्येन्दुकिरणै।
द्विंधा लोके पूजां विदधति भवत्याः समयिनः ॥४५॥

(समयाचारमतावलम्बियों के लिए यह द्वितीय चक्र (स्वाधिष्ठान चक्र) अत्यन्त दूर रहे क्योंकि इन दोनों ('मूलाधर चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र') का त्याग करके इनके पीछे 'मणिपूर चक्र' नामक तेरे सदन में तेरे द्वारा समुत्पन्न एवं जल से प्रतिफलित आदित्य एवं शशधर की रश्मियों के द्वारा, समयाचारियों के लिए, तेरा दो प्रकार से पूजन हुआ करता है।)

सरोजिनी (व्याख्या)—शाक्तों के मुख्यतया जो दो उपसम्प्रदाय हैं—कौल और समयाचारी—इनमें पूजा-विधान पृथक्-पृथक् हैं। आचार्य गौड़पाद इस बिन्दु पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—

(१) **'कौल'** भगवती की उपासना, समाराधना एवं सर्वविध पूजा **'मूलाधार चक्र'** एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में करते हैं तो वे करते रहें किन्तु—

(२) **'समयमत' के उपासकों के लिए** ये दोनों उपर्युक्त चक्र (भगवती की सपर्या, पूजा एवं ध्यान की दृष्टि से) सामयिकों से दूर ही रहें। इसी में समयमत वालों का कल्याण है।

(३) समयाचारी **'मूलाधार चक्र'** एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में भगवती कुण्डलिनी एवं भगवती महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा एवं उनका ध्यान नहीं किया करते क्योंकि उनके लिए यहाँ भगवती की समाराधना एवं उनका ध्यान निषिद्ध है।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

'कुः पृथिवीतत्त्वं लीयते यत्र तत्कुलं आधार चक्रम्। लक्षणया सुषुम्ना मार्गः कुलमित्युच्यते। अतएव कौला कुलपूजका आधारसेवका इति कौलत्व।[१]

आचार्य गौड़पाद भी कहते हैं—

'त्रिकोणं ते **कौलाः** कुलगृहमिति प्राहुरपरे'[२]

सामायिकों का मत इस प्रकार है—

(१) **'चतुष्कोणं** प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ॥[३]

---

[१] लक्ष्मीधरा (श्लोक १०)

[२] सुभगोदय स्तुति (श्लोक ७)

[३] सुभगोदय (श्लोक ७)

(२) 'सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो,
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे।'
'त्वया सृष्टैर्वारि .... समयिनः।'

'स्वाधिष्ठान चक्र' से ऊपर 'मणिपूरक चक्र' है। **'मणिपूरक चक्र'** में मेघरूपी जल पर प्रतिबिम्बित सूर्य एवं चन्द्रमा की रश्मियों के द्वारा भगवती महा त्रिपुर सुन्दरी का ध्यान दो प्रकार से किया जाता है—

(क) सूर्य की रश्मियों के द्वारा भगवती 'समया' का स्वरूप इन्द्रधनुष की दीप्ति से युक्त एवं

(ख) चन्द्रमा की किरणों के बिम्ब से चन्द्रिकामय हो जाता है।

यदि पाठान्तर के आलोक में इसे व्याख्यात किया जाय तो इसका अर्थ इस प्रकार होगा—'मणिपूर चक्र' में मेघ रूपी जल के ऊपर प्रतिबिम्बित सूर्य एवं चन्द्रमा की रश्मियों के द्वारा भगवती का ध्यान प्रकाश के रूप में किया जाता है।[१]

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि—आचार्य गौड़पाद समयमत की साधना में (१) **'मूलाधार चक्र'** एवं (२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** का प्रवेश अत्यन्त निषिद्ध मानते हैं इसीलिए वे भगवती के उन आराधकों की पूजा पद्धति का भी तीक्ष्णता पूर्वक सर्वत्र विरोध करते हैं जिनका किञ्चिदपि राग या झुकाव इन चक्रों के प्रति हो। वे कहते हैं यह **निषिद्धाचार** है—

'अभीषां कौलानां भगवती भवेत्पूजन विधि।
स्तव **स्वाधिष्ठाने** तदनु च भवेन्मूलसदने॥
अतो बाह्यपूजा भवति भगरूपेण च ततो।
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते॥'

* चक्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण *

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि और उसकी समीक्षा—

आचार्य गौड़पाद ने 'समयमत' के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि **'समय मत'** में (१) 'मूलाधार चक्र' एवं (२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' हेय एवं त्याज्य हैं—

'भवेदेतच्चक्रद्वितयमतिदूरं समयिनां।
विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्य सदने॥' (४५)

आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के आलोक में यदि युंगीय मनोविज्ञान की कसौटी पर **'स्वाधिष्ठान चक्र'** का मूल्याङ्कन किया जाय तो अनेक शङ्का-ग्रंथियों का उद्भेदन हो सकेगा।

---

[१] पाठान्तर सृष्टैर्वारि या सृष्टेवारि। 'द्विधा' या 'विंभा'

* युगीय मनोविज्ञान Gung का मनोविज्ञान) *

'रात्रि समुद्र यात्रा' के भयावह एवं व्याकुलता पूर्ण अनुभव का वर्णन करते हैं जिसकी तुलना तंत्र शास्त्र के **'स्वाधिष्ठान चक्र'** के अनुभव से (किसी न किसी मात्रा में) की जा सकती है। **'स्वाधिष्ठान चक्र'** का वाहन **'मकर'** है (जल प्राणी है।) पाश्चात्य जगत के रहस्यवादी साहित्य में—

'सेंट जॉन ऑक दि क्रॉस' में वर्णित **'आत्मा की अन्धकार पूर्ण रात्रि'** Dark Night of the soul की **'रात्रि समुद्र यात्रा'** तथा तंत्र के **'स्वाधिष्ठान चक्र'** की यात्रा की तुलनात्मक विवेचना की जा सकती है।[१] तंत्र में **'निरोधिनी'** या **'निरोधिका'** का स्तर भी समतुल्य है।

श्लोक क्रमांक ४६ : सहस्रार से उत्पन्न मूलभूत चक्रद्वय

अधिष्ठानाधार द्वितयमिदमेव दशदलं।
सहस्राराज्जात मणिपुरमतोऽभूद्दशदलम्।
हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूतस्वान्तकमलं।
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्ति कृदयम्॥

[सहस्रार से संभूत 'मूलाधार चक्र' एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** के दश दल 'मणिपूरक चक्र' के दल दल बन जाते हैं। 'हृदय' (अनाहत चक्र' तथा 'मूलाधार चक्र' से मिलकर षोडश दल 'विशुद्ध चक्र' के (सोलह दल) बन जाते हैं और यही एक 'महाबिन्दु' (सहस्रार चक्र') बन जाता है जिससे कि उत्पत्ति आदि क्रियायें निष्पन्न होती हैं॥४६॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—इस श्लोक में आचार्य गौड़पाद ने—

'एकोऽहं बहुस्याम्' के सिद्धान्त की इस प्रकार व्याख्या की है कि एक ही परम तत्त्व ही समस्त सृष्टि का मूल केन्द्र है और वह है—सहस्रारस्थ **'महाबिन्दु'**।

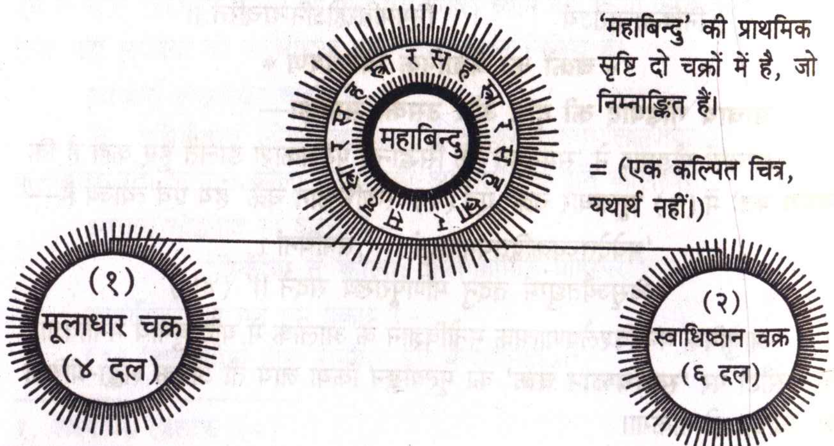

'महाबिन्दु' की प्राथमिक सृष्टि दो चक्रों में है, जो निम्नाङ्कित हैं।

= (एक कल्पित चित्र, यथार्थ नहीं।)

---

[१] टू एसेज औन एनालिटिकल साइकोलाजी'

* सहस्रार *

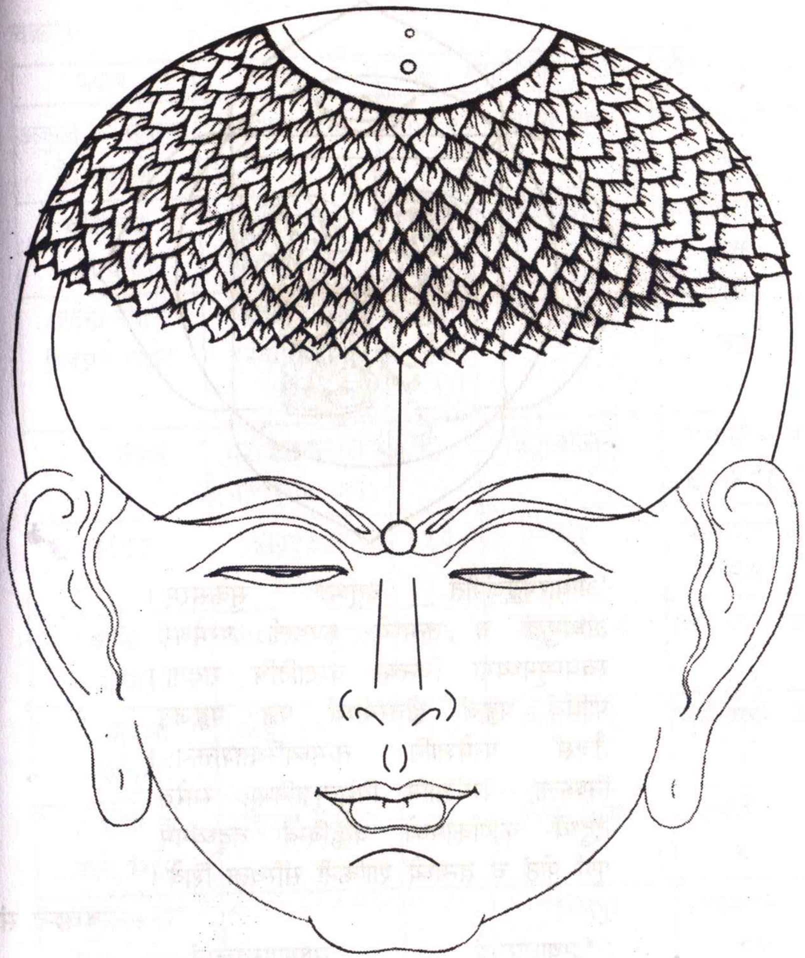

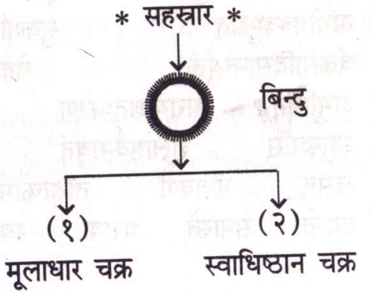

मूलाधार चक्र

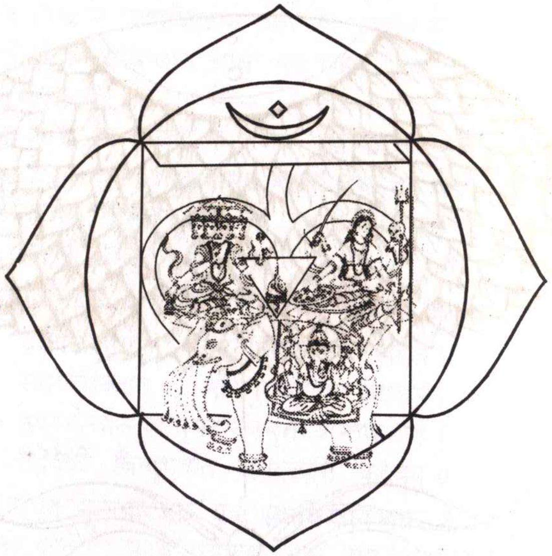

'आधारपङ्कजंपीतं चतुष्पत्रं सुकेसरम्।
अधोमुखं च तन्मध्ये कुण्डली परमेश्वरी
स्वयम्भूमध्यगा चिन्त्या वरदादिभि रावृता।
पार्थिवं पङ्कजं ह्येत्तस्योर्ध्वं पञ्च पङ्कजम्
तैजसं परमेशानि तन्मध्यस्थितशक्तयः।
निष्फलाः परमेशानि विद्युत्पुञ्जनिभाः स्मरेत
तदूर्ध्वें कर्णिकामध्ये वह्निबिम्बं तदूर्ध्वगम्
पूर्ण पीठं च तन्मध्ये शाकिनी संस्थिता शिवे।'

—स्वच्छन्द संग्रह

'अथाधारपद्मं सुषुम्णास्यलग्नं,
ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःक्षोराणत्रम्।
अधोवक्त्रमुद्यत् सुवर्णाभवर्णौ
र्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णोः॥
अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोण चक्रं,
समुद्भासि शूलाष्टकैरावृतं तत्,
लसत् पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं,
तदन्ते समास्ते धरायाः स्वबीजम्।

—षट् चक्र निरूपणम्

पिण्डस्थ षट्चक्र एवं श्रीयन्त्र के ९ चक्र—

(१) अकुले सुषुम्नामूलारूणसहस्त्र दल कमले त्रिपुराधिष्ठितं त्रैलोक्यमोहन चक्रम्॥

स्थान	चक्र	दल	अधिष्ठात्री शक्ति	श्रीयंत्र का चक्र
अकुल = सुषुम्ना के मूल में	अरुण सहस्त्र	१०००	त्रिपुरा देवी	'त्रैलोक्यमोहन चक्र
वह्नि का आधार	चतुर्दल कमल (मूलाधार चक्र)	०४	त्रिपुरेशी	'सर्वाशापरिपूरण चक्र'
शाक्त स्वाधिष्ठान स्थान	षड्दल कमल (स्वाधिष्ठान चक्र)	०६	त्रिपुरसुन्दरी	'सर्वसंक्षोभण चक्र'
नाभि-स्थान	दशदल कमल (मणिपूरक चक्र)	१०	त्रिपुरवासिनी	'सर्वसौभाग्य दायक चक्र'
अनाहत	द्वादशदल कमल	१२	त्रिपुरा	'सर्वार्थसाधक चक्र'
विशुद्धि में (कण्ठ)	षोडशदलकमल	१६	त्रिपुरमालिनी	सर्वरक्षाकर चक्र'
लम्बिकाग्र (तालुमूल)	अष्टदलकमल	०८	त्रिपुरासिद्धि	'सर्वरोगहर चक्र'
दो भौंहों का मध्य स्थान	द्विदल कमल	०२	त्रिपुराम्बिका	'सर्वसिद्धिप्रद चक्र'
इन्दु (ललाट, बिन्दु) स्थान			महात्रिपुर सुन्दरी	'सर्वानन्दमय चक्र'

'अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत्।— योगिनी हृदय
चक्रेश्वरी समायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम्।' — योगिनी हृदय

प्रत्येक चक्र की पूजा यथा क्रम करनी चाहिए—

'त्रैलोक्यमोहनं चक्रमारभ्य प्रतिचक्रमेकैकं क्रमेण पूजयेत्॥'

मन्त्रसङ्केत —योगिनी हृदय

* स्वाधिष्ठान चक्र *

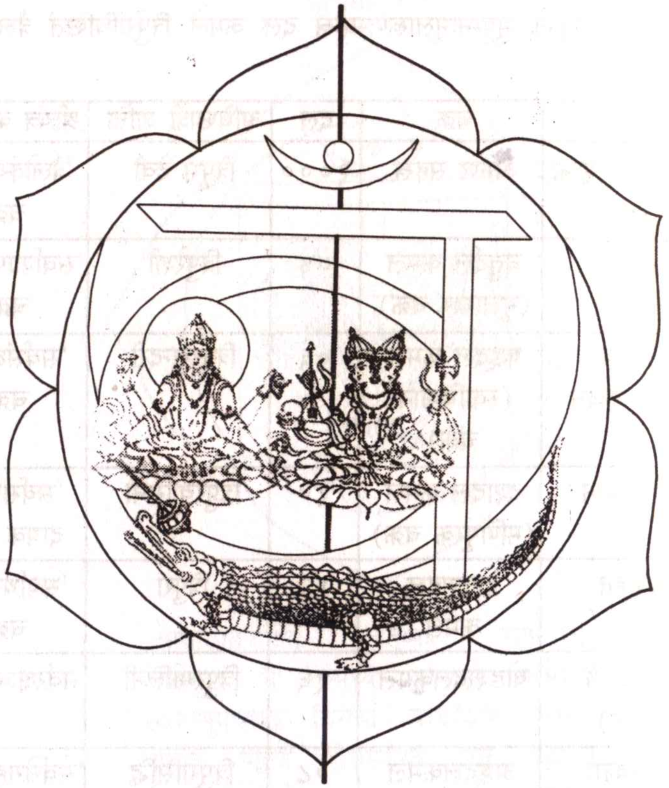

स्वच्छन्दतंत्रकार की दृष्टि—

आधारपङ्कजस्योर्ध्वें, सार्धद्वयङ्गुलिकोपरि ।
तैजस साष्टपञ्च, पीतकर्णिकया युतम् ॥
हल्लेखा कर्णिकामूध्ये, स्थितानङ्गादिदेवता,
एतस्माद्द्वयङ्गुलादूर्ध्वें, स्वाधिष्ठानं षडस्रकम् ॥

—स्वच्छन्दतन्त्र

सौन्दर्य लहरीकार की दृष्टि—

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं ।
तमीडे संवर्त जननि। महती तां च समयाम् ।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते ॥
दयार्द्रा या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ॥

—सौन्दर्येलहरी (शङ्कराचार्य)

अनाहत चक्र का स्वरूप —

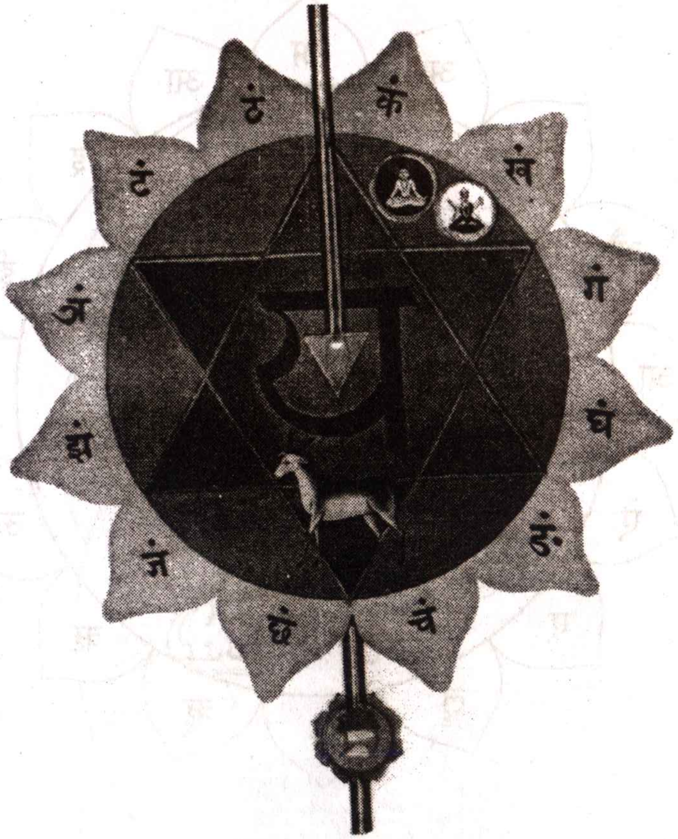

‘चतुर्दशाङ्गुलादूर्ध्वं मधिपूराख्य पंकजात् ।
पङ्कजं राकिनीमध्यं द्वादशारमनाहतम् ।
नत्रस्थकालरात्र्मादिशक्तिभिश्च समावृतम्
तत्रस्थसूर्यबिम्बंतु नादोऽयानाख्य पीठकम् ॥’

—स्वच्छन्द संग्रह

‘तस्योर्ध्वें हृदि पंकजं सुललिनं बन्धूककान्त्युज्ज्वलं ।
काद्यैर्द्वादशवर्णकैरुपहितं सिन्दूररागान्वितैः ।
नाम्नाऽनाहतसंशकं सुरतरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं ।
वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट् कोण शोभान्वितम् ॥’

—षट् चक्रनिरूपणम्

विशुद्ध चक्र

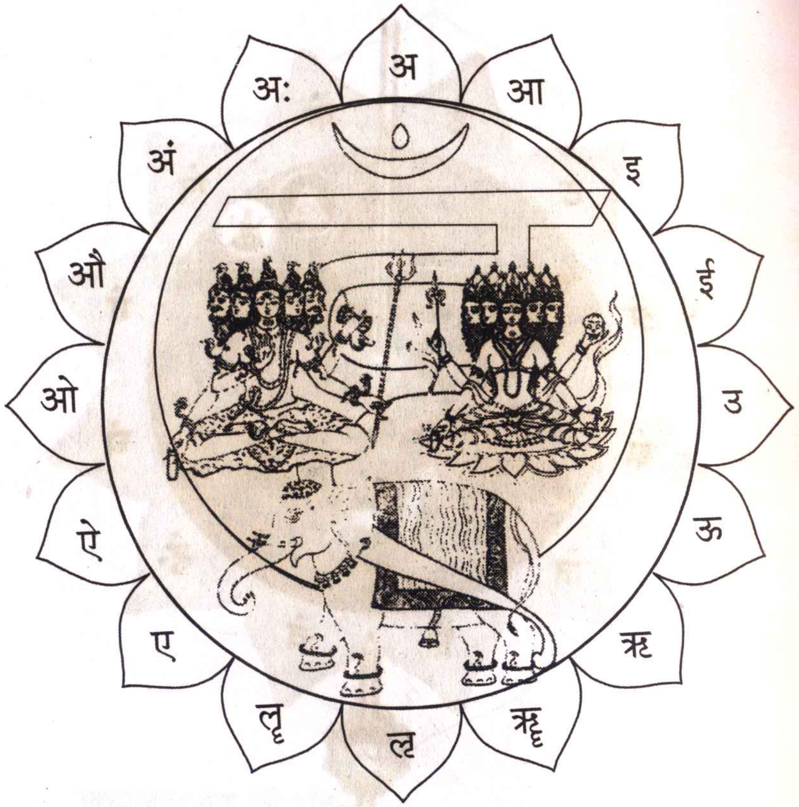

तस्मादेकाङ्गुलादूर्ध्वं, विशुद्धं षोडशारकम् ।
मध्यगा डाकिनी बाह्य, पत्रेषु परमेश्वरी ।
अमृताद्यक्षरान्ताश्च, चन्द्रबिम्बं तदूर्ध्वगम् ।

—स्वच्छन्द संग्रह

विशुद्धौ ते शुद्ध स्फटिक विशदं व्योमजनकं ।
शिवं सेवेदेवीमपि शिवसमान व्यवसितम् ।
अयोः कान्त्यायन्त्या शशिकिरणसारूप्य सरणिं
विधूतान्तध्वन्ति विलसति चकोरीव जगती ।।

—सोन्दर्य लहरी

* आज्ञा चक्र *

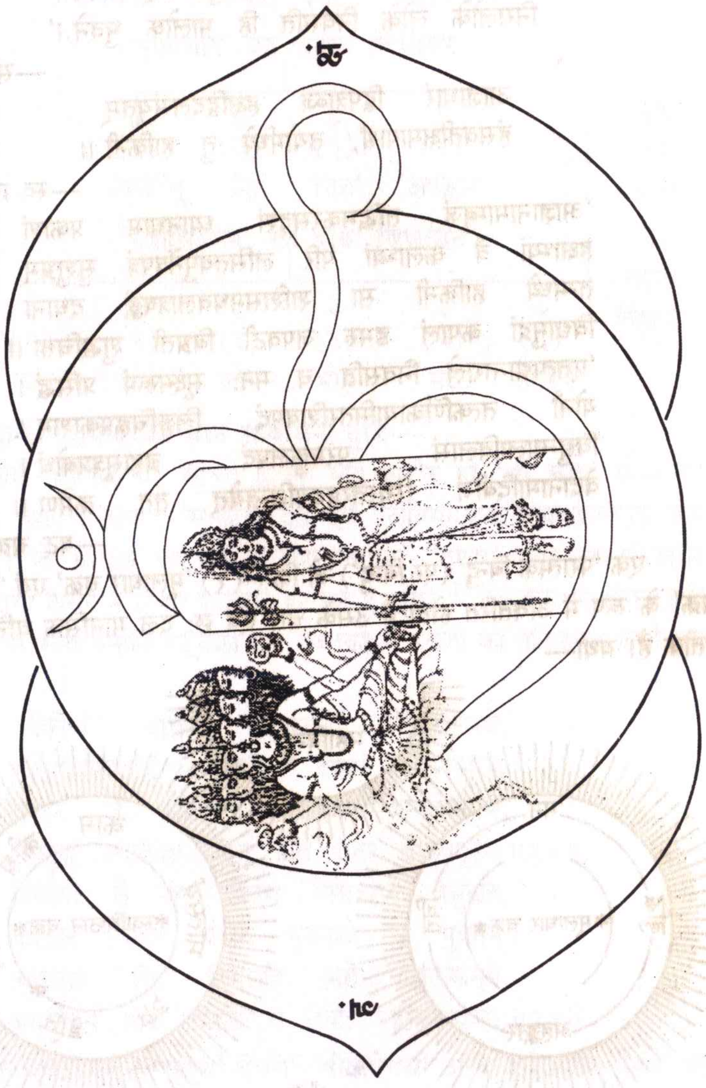

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—

'तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वे पर चिता।
यमाराध्यन् भक्त्या रवि शशिशुचीनाम् विषये।
निरालोके लोके निवसति हि भालोक भुवने।'

—सौन्दर्य लहरी

आज्ञाधारं द्विपत्राब्जं हक्षद्विदलसंयुतम्
हंसवतीक्षमापार्श्वं, तयोर्मध्ये तु हाकिनी॥

—स्० च्छन्द संग्रह

'आज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधाम प्रकाशं
हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां परि लसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम्
तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवलात्रषड्कं दधाना
विद्यामुद्रां कपालं डमरु जपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता॥
'एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धं।
योनौ तत्कर्णिकायामितरशिवपदं लिङ्गचिह्नप्रकाशम्।
विद्युन्मालाविलासं परमकुलपदं ब्रह्मसूत्रप्रबोधं।
वेदानामादिबीजं स्थिरतरहृदयश्चिन्तयेत् तत् क्रमेण॥

—षट् चक्रनिरूपणम्

एक 'परात्मक बिन्दु' (पर बिन्दु') जो कि—(१) 'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' के रूप में अवतरित होता है उसके चार एवं छः दल मानसिक वृत्तियों के भी प्रतीक हैं। यथा—

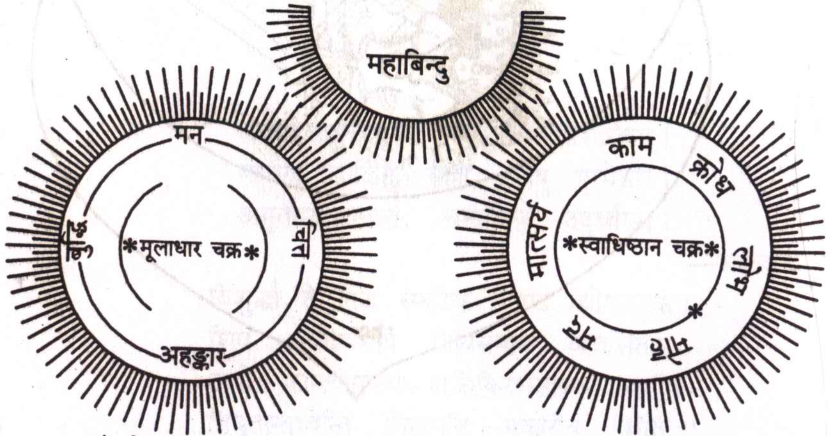
महाबिन्दु
मन
बुद्धि
चित्त
अहङ्कार
मूलाधार चक्र
काम
क्रोध
लोभ
मोह
मद
मात्सर्य
स्वाधिष्ठान चक्र

यहाँ जो चित्र दिए जा रहे हैं उनमे मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान आदि का मूलाकार इनसे १००% भिन्न है।

कहा भी गया है—

'दशधार भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽधार कमले षोढाऽधिष्ठान पङ्कजे।
उभयाकार रूपत्वात् इतरेषां तदात्मता॥'

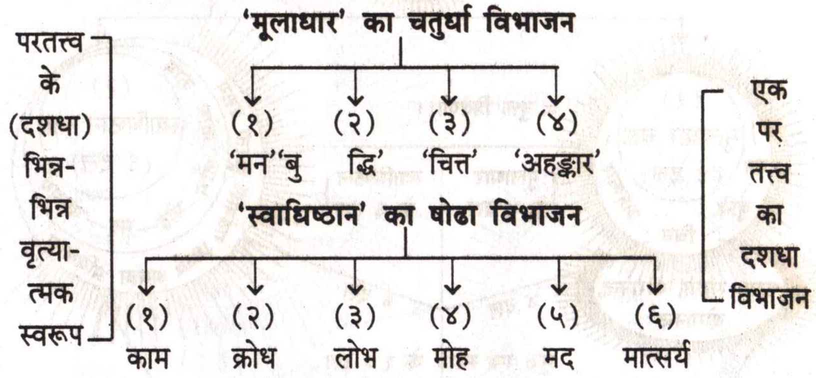
'मूलाधार' का चतुर्धा विभाजन
(१) 'मन'
(२) 'बुद्धि'
(३) 'चित्त'
(४) 'अहङ्कार'
'स्वाधिष्ठान' का षोढा विभाजन
(१) काम
(२) क्रोध
(३) लोभ
(४) मोह
(५) मद
(६) मात्सर्य
परतत्त्व के (दशधा) भिन्न-भिन्न वृत्यात्मक स्वरूप
एक पर तत्त्व का दशधा विभाजन

आचार्य गौड़पाद की चक्र सम्बंधिनी दृष्टि—

आचार्य गौड़पाद यह सोचते हैं कि यदि **शरीर ही 'श्री चक्र'** है—'नव चक्ररूपं श्री चक्र'[1]। अर्थात् 'स्वकीयो देह एव त्रैलोक्यमोहनादिनवचक्रसमष्टि रूप श्रीचक्राभिन्नः।[2] तो 'श्रीचक्र' एवं उके 'त्रिकोण' 'अष्टार', 'दशार' आदि चक्र भी शरीर में ही होंगे तथा शरीर में स्थित षट्चक्रों का इन ९ चक्रों से ऐकात्म्य भी होगा। इसी दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने षट्चक्रों एवं नवचक्रों में एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा—

'त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने तेऽष्टारमनघे,
भवेत्स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम्।
दशारं ते संवित् कमलमथ मन्वश्रकमुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दवगृहम्॥१०॥
त्रिकोणे ते वृत्त त्रितय मिभकोणे वसुदल,
कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम्।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्तिकमुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः॥११॥

इसके बाद उनहोंने **'चतुर्धा ऐक्य' 'षोढाऐक्य'** आदि अद्वैतपरक ऐक्यों का प्रतिपादन कियां (श्लोक १२,१३)

---

१. भावनोपनिषद (२)
२. भावनोपनिषदभाष्य (भास्करराय)

(ये चक्र समझाने के लिये दिए गए हैं। इनकी यथार्थ आकार इनसे १००% भिन्न-भिन्न है।)

(यहा षट्चक्रों में से जितने भी चक्र दिये गये हैं उनका मूल स्वरूप, उनकी आकृति इस प्रकार नहीं है।ये केवल प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।)

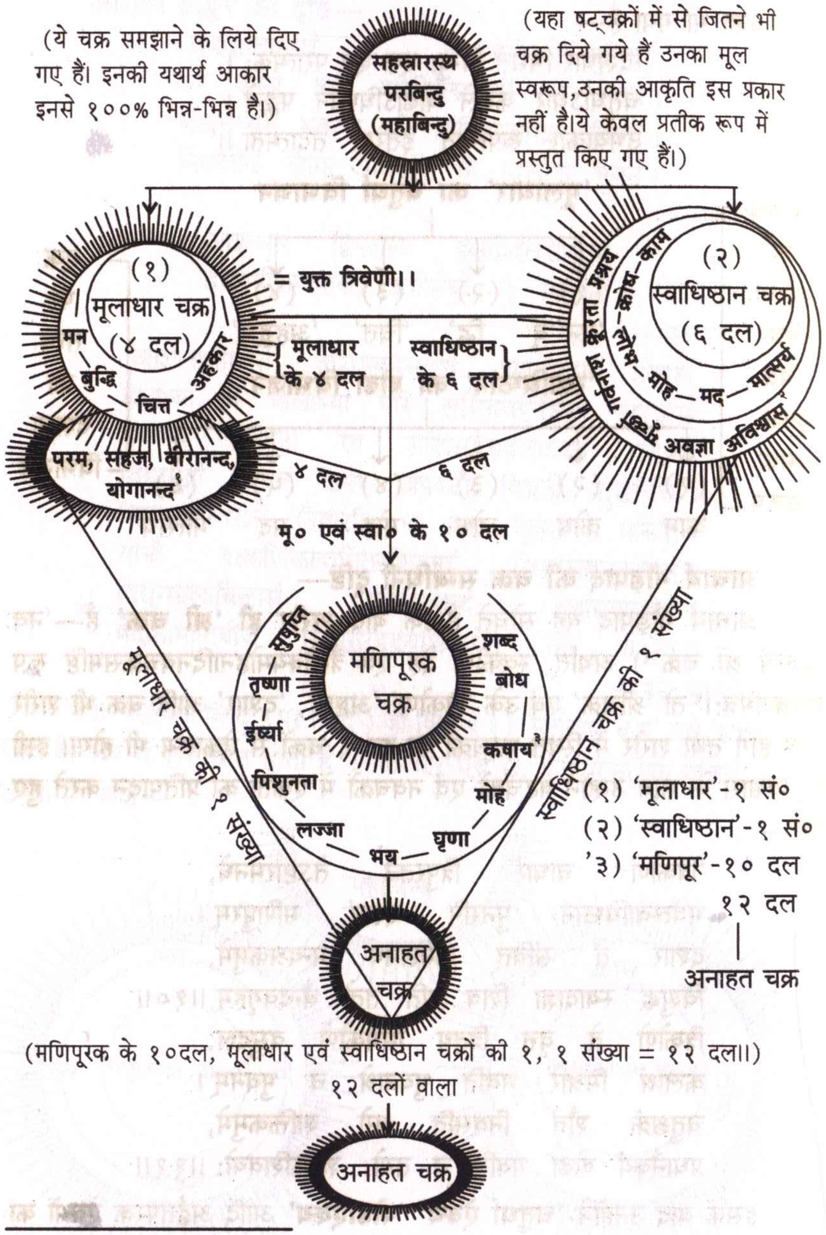
सहस्रारस्य परबिन्दु (महाबिन्दु)
(१) मूलाधार चक्र (४ दल)
मन
बुद्धि
चित्त
अहंकार
= युक्त त्रिवेणी।।
(२) स्वाधिष्ठान चक्र (६ दल)
काम
क्रोध
लोभ
मोह
मद
मात्सर्य
प्रश्रय
क्रूरता
सर्वनाश
मूर्छा
अवज्ञा
अविश्वास
मूलाधार के ४ दल
स्वाधिष्ठान के ६ दल
परम, सहज, वीरानन्द, योगानन्द¹
४ दल
६ दल
मू० एवं स्वा० के १० दल
मूलाधार चक्र की १ संख्या
स्वाधिष्ठान चक्र की १ संख्या
मणिपूरक चक्र
सुषुप्ति
तृष्णा
ईर्ष्या
पिशुनता
लज्जा
भय
घृणा
मोह
कषाय³
बोध
शब्द
(१) 'मूलाधार'-१ सं०
(२) 'स्वाधिष्ठान'-१ सं०
'३) 'मणिपूर'-१० दल
१२ दल
अनाहत चक्र
अनाहत चक्र
(मणिपूरक के १०दल, मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्रों की १, १ संख्या = १२ दल।।)
१२ दलों वाला
अनाहत चक्र

---

१. हंसोपनिषद। सङ्गीतरत्नाकर। दीपिका।
२. हंसोपनिषद, सङ्गीतरत्नाकर, दीपिका।
३. हंसो०। सङ्गीत०। दीपिका।

(यहाँ चित्रित सारे चक्र समझाने के लिए बनाए गए हैं किन्तु इनके यथार्थ आकार १००% भिन्न हैं।)

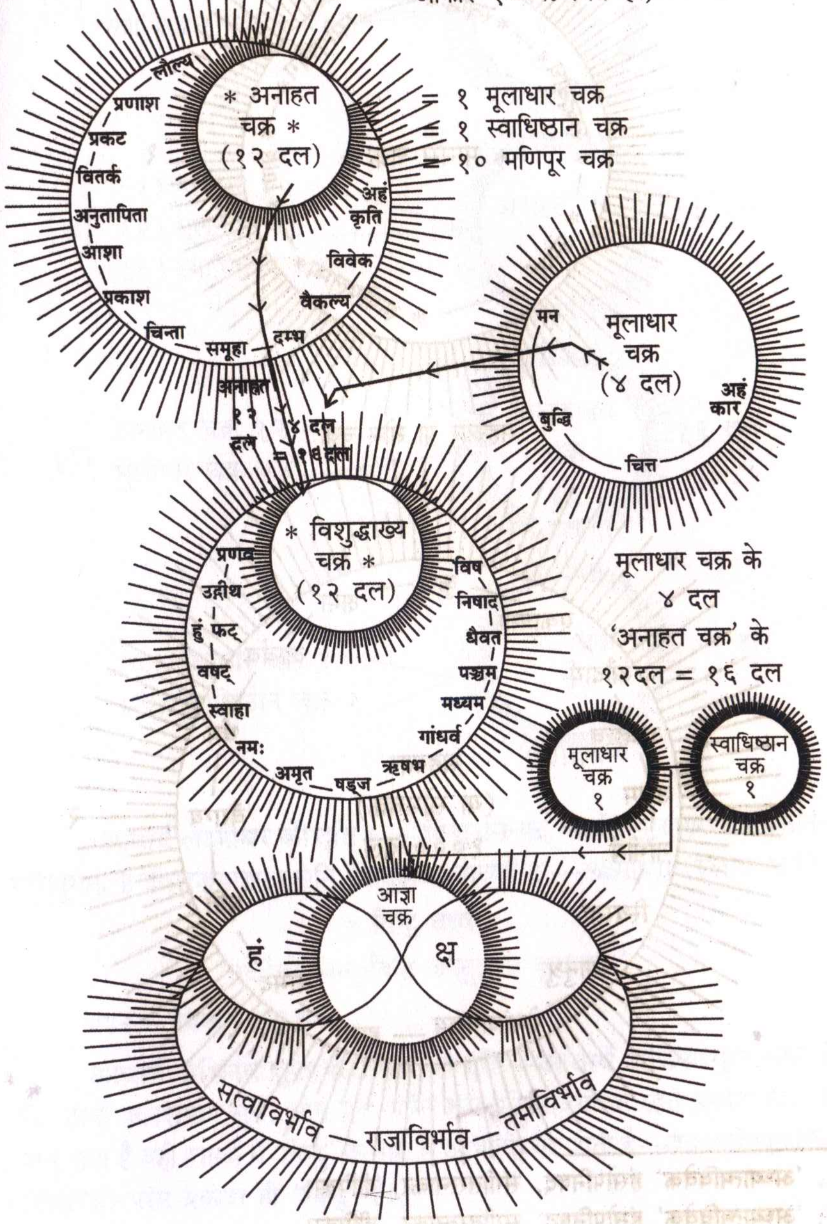
* अनाहत चक्र * (१२ दल)
लौल्य
प्रणाश
प्रकट
वितर्क
अनुतापिता
आशा
प्रकाश
चिन्ता
समूहा
दम्भ
वैकल्य
विवेक
कृति
अहं
= १ मूलाधार चक्र
= १ स्वाधिष्ठान चक्र
= १० मणिपूर चक्र
मूलाधार चक्र (४ दल)
मन
बुद्धि
चित्त
अहं कार
अनाहत १२ दल
४ दल
= १६ दल
* विशुद्धाख्य चक्र * (१२ दल)
प्रणव
उद्गीथ
हुं फट्
वषट्
स्वाहा
नमः
अमृत
षड्ज
ऋषभ
गांधर्व
मध्यम
पञ्चम
धैवत
निषाद
विष
मूलाधार चक्र के ४ दल 'अनाहत चक्र' के १२दल = १६ दल
मूलाधार चक्र १
स्वाधिष्ठान चक्र १
आज्ञा चक्र
हं
क्ष
सत्वाविर्भाव — राजाविर्भाव— तमाविर्भाव

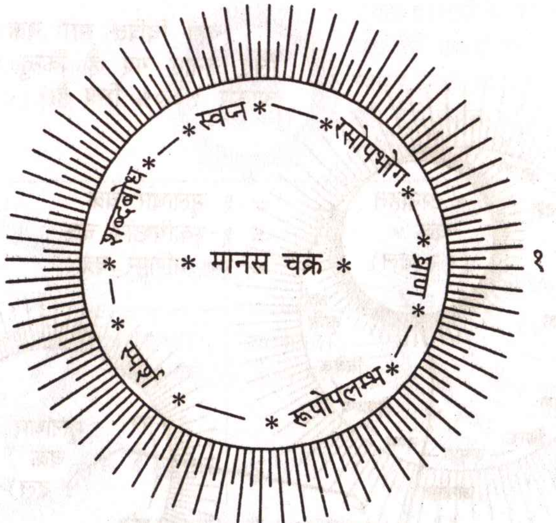
* स्वप्न *
* रसोपभोग *
* घ्राण *
* रूपोपलम्भ *
* स्पर्श
* शब्दबोध *
* मानस चक्र *
१

सहस्रार या सोम चक्र

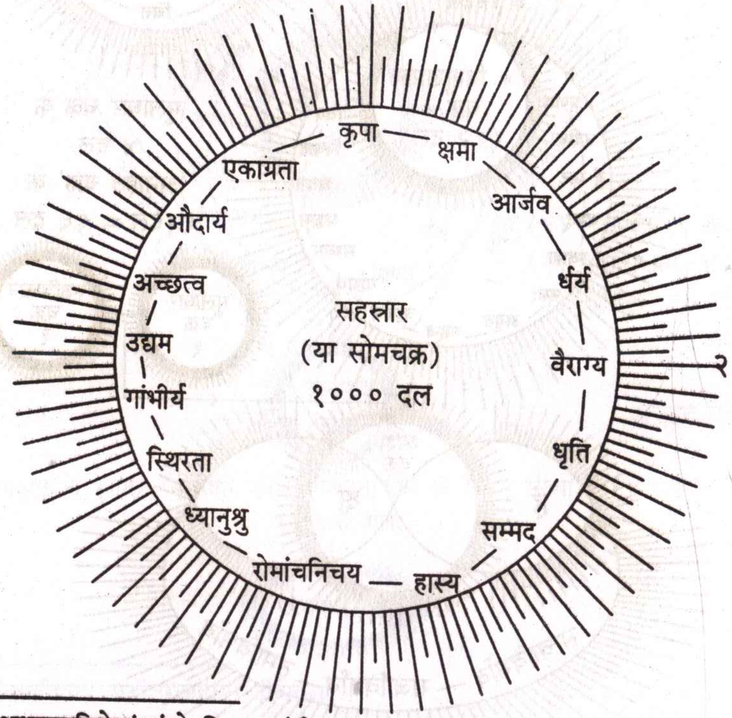
कृपा
क्षमा
आर्जव
धैर्य
वैराग्य
धृति
सम्मद
हास्य
रोमांचनिचय
ध्यानुश्रु
स्थिरता
गांभीर्य
उद्यम
अच्छत्व
औदार्य
एकाग्रता
सहस्रार
(या सोमचक्र)
१००० दल
२

---

१. 'अध्यात्मविवेक' हंसोपनिषद, संगीतरत्नाकर, दीपिका।
२. 'अध्यात्मविवेक' हंसोपनिषद, संगीतरत्नाकर, दीपिका।

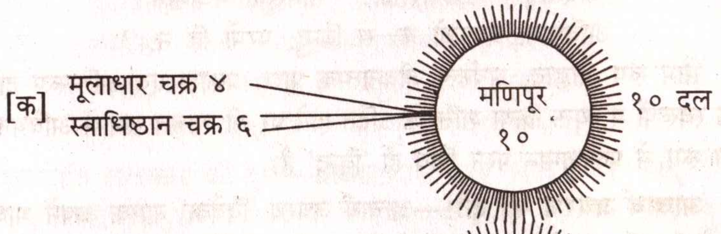
[क]
मूलाधार चक्र ४
स्वाधिष्ठान चक्र ६
मणिपूर
१०
१० दल

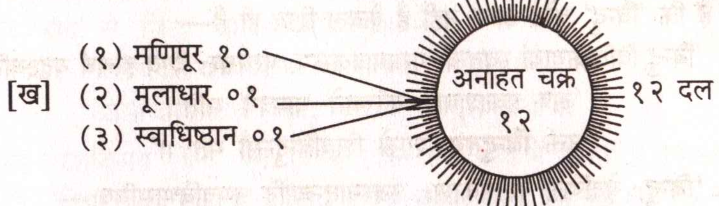
[ख]
(१) मणिपूर १०
(२) मूलाधार ०१
(३) स्वाधिष्ठान ०१
अनाहत चक्र
१२
१२ दल

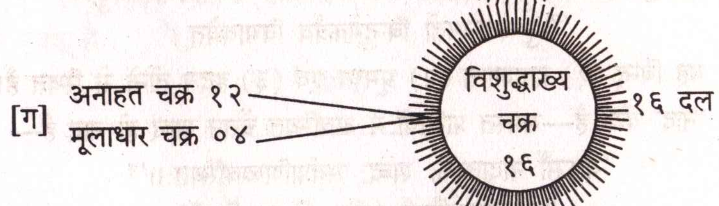
[ग]
अनाहत चक्र १२
मूलाधार चक्र ०४
विशुद्धाख्य
चक्र
१६
१६ दल

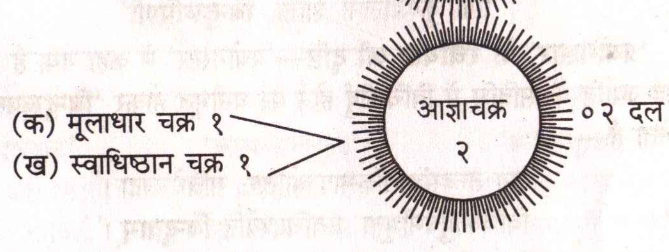
(क) मूलाधार चक्र १
(ख) स्वाधिष्ठान चक्र १
आज्ञाचक्र
२
०२ दल

***आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि ***—'**बिन्दुर्नाम**-षट् चक्राणि मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूराना हतविशुद्धयाज्ञात्मकानि **बिन्दुशब्द** वाच्यानि।'—लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१)

*** बिन्दु तत्त्व ***

'तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्ति कृद्यम्।'

प्रश्न—**'बिन्दु'** क्या है?

आचार्य अभिनव गुप्त पादाचार्य की दृष्टि—आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि 'तीनों प्रकाशमान सूर्य, सोम एवं अग्नि रूप प्रतिनिधियों के रहते प्रकाश मात्र जो परम सत्ता है वही शास्त्रों में 'बिन्दु' के नाम से अभिहित की जाती है—वह अविभागात्मक (अखण्ड) परम प्रकाश ही **'बिन्दु'** है।

'उदितायां क्रियाशक्तौ सोमसूर्याग्निधामनि ।
अविभागः प्रकाशो यः स बिन्दुः परमो हि नः।'[१]

सोम रूप आह्लाद, सूर्यरूप जीवनात्मक प्राण, प्रकाश एवं अग्निरूप दाहक, पाचक स्वरूपों में व्यक्त क्रिया शक्ति के उदित होने पर भी शाश्वत रूप में अविभक्त पर प्रकाश रूप से प्रकाशमान परम शिव ही 'बिन्दु' है।

आचार्य जयरथ की दृष्टि—आचार्य जयरथ 'विवेक' नामक अपने भाष्य मं कहते हैं कि 'बिन्दु' कोई अन्य नहीं है केवल शिव ही है—

'बिन्दु विदिक्रियायां स्वतन्त्रः परप्रमात्रेकरूपः परमेश्वरः शिव इत्यर्थ यद्वक्ष्यति—

'अत्र प्रकाशमात्रं यत्स्थिते धामत्रये सति ।
उक्तं **बिन्दुतया** शास्त्रे शिवबिन्दुरसौ मतः ।।'

'**बिन्दुः** वेदयिता पर प्रकाशः; स्वस्वातन्त्र्याद्वि श्वमवबिभासयिषुः—

'त्रिषु स्थानगतो बिन्दुमेकत्रैव विभावयेत् ।'

यह बिन्दु (१) द्वादशान्त (२) भ्रूमध्य एवं (३) हृदय तीनों से स्थित है।

'नाद' क्या है—समस्त प्राणियों में अवस्थित चेतन शब्द ही नाद है—

'योऽसौ नादात्मकः शब्दः सर्वप्राणिष्ववस्थितः।।'[२]

'एषा कुण्डलिनी शक्तिः **बिन्दुरूपिणी**'

'प्रयोगसार' के रचयिता की दृष्टि—'प्रयोगसार' में कहा गया है कि **'तत्त्व'** चिन्मात्र ज्योति के सन्निधि में विचिकीर्षु होने पर घनीभूत होकर **'बिन्दुरूपता'** धारणा कर लेता है—

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति **बिन्दुताम्** ।'

अन्यमत—एक अन्य मत के अनुसार जो अभिव्यक्त **'पराशक्ति'** है वही अन्ततः रूपान्तरण द्वारा बिन्दु बन जाती है—

'अभिव्यक्तापराशक्तिर विनाभावलक्षणा ।
अखण्डपरचिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः ।
समस्ततत्त्व भावेन विवर्तेच्छासमन्विता ।
प्रयाति बिन्दुभावश्च क्रियाप्राधान्यलक्षणम् ।'

पञ्चरात्र मत—इस मत के अनुसार 'नाद' एवं 'बिन्दू' के रूप में पराशक्ति का रूपान्तरण इस प्रकार होता है—

---

१. तन्त्रालोक (३आ.) (३/१११)
२. तन्त्रालोक (३/११३)

एवमालोक्य सर्गादौ सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
समस्त तत्त्व संघात्मस्फुत्तर्याधिष्ठानरूपिणीम्
व्यक्तां करोति नित्यां तां प्रकृतिं परमः पुमान् ।
तस्या एव नाद बिन्दू सृष्ट्युपयोगावस्थारूपौ ।।

शारदाति ललकार की दृष्टि—लक्ष्मणादेशि केन्द्र कहते हैं (१) सत्, चित् एवं आनन्द त्रिपद्विभूषित सकल परमात्मा से सर्वप्रथम 'शक्ति' हुई फिर **'नाद'** हुआ और फिर **'नाद'** से **'बिन्दु'** का आविर्भाव हुआ—

'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादात् बिन्दुसमुद्भवः ।।'

वह परशक्तिमयं 'बिन्दु' पुनः विभक्त होकर तीन रूपों में अवतरित हुआ—

(१) 'बिन्दु' (२) 'नाद' (३) 'बीज' (इसमें कथित बिन्दु एवं नाद प्रथमोक्त नाद बिन्दु से पृथक् हैं।)

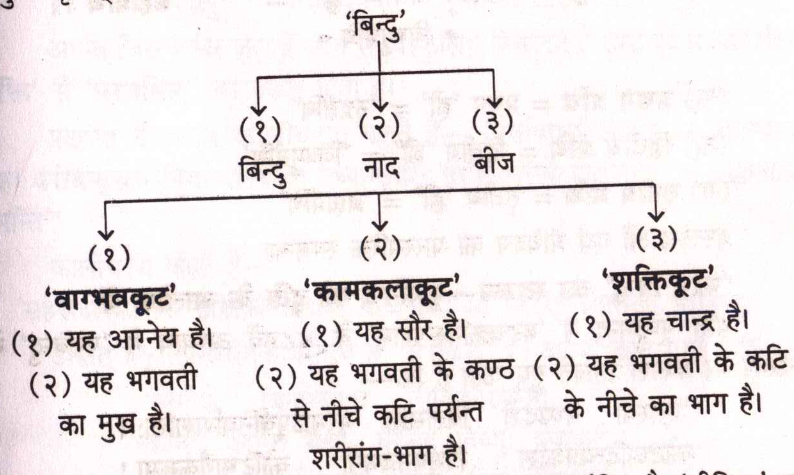
'बिन्दु'
(१) बिन्दु
(२) नाद
(३) बीज
(१) 'वाग्भवकूट'
(१) यह आग्नेय है।
(२) यह भगवती का मुख है।
(२) 'कामकलाकूट'
(१) यह सौर है।
(२) यह भगवती के कण्ठ से नीचे कटि पर्यन्त शरीरांग-भाग है।
(३) 'शक्तिकूट'
(१) यह चान्द्र है।
(२) यह भगवती के कटि के नीचे का भाग है।

द्वितीय एंव तृतीय कूट के मध्य की **'ह्ल्लेखा' विष्णुग्रंथि** है। 'श्रीविद्या' या **पञ्चदशाक्षरी विद्या** का एक पाद और है।

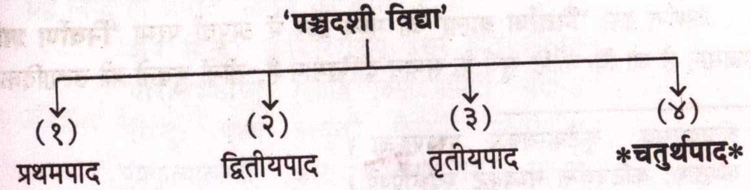
'पञ्चदशी विद्या'
(१) प्रथमपाद
(२) द्वितीयपाद
(३) तृतीयपाद
(४) *चतुर्थपाद*

'पञ्चदशाक्षरी विद्या' का चतुर्थ पाद एकाक्षरी **'लक्ष्मीबीज'** है और यह गुरु से

प्राप्य है। यह गुरुमुखैकगम्य है। यह **'चतुर्थपाद' 'लक्ष्मी बीज** (श्रीं) या **'चन्द्रकला'** है। इसके एवं तृतीय शक्ति कूट के मध्य स्थित हल्लेखा ही **'ब्रह्मग्रंथि'** है।

हल्लेखायें एवं ग्रंथित्रय

(१)	(२)	(३)
[प्रथम एवं द्वितीय कूट] ('वाग्भवकूट एवं कामकला कूट') के मध्य में स्थित **'हल्लेखा = 'रुद्रग्रंथि'** है। (प्रथम हल्लेखा) [1]***रुद्रग्रंथि* = 'ह्रीं'**	**[द्वितीय एवं तृतीय कूट]** कूटों ('कामकला कूट' एवं 'शक्तिकूट') के मध्य स्थित **हल्लेखा = 'विष्णुग्रंथि'** है। (द्वितीय हल्लेखा) द्वितीय ग्रंथि = **'ह्रीं' =** * विष्णुग्रंथि *	**तृतीय एवं चतुर्थ कूटों** (शक्तिकूट, तृ० कूट) एवं चतुर्थ पाद (चन्द्रकला = 'श्री' के मध्य स्थित हल्लेखा = 'ह्रीं' = तृतीय ग्रंथि = **'ब्रह्मग्रंथि'**।।

(क) **प्रथम ग्रंथि** = प्रथम 'ह्रीं' = 'रुद्रग्रंथि'

(ख) **द्वितीय ग्रंथि** = द्वितीय 'ह्रीं' = 'विष्णुग्रंथि'

(ग) **तृतीय ग्रंथि** = तृतीय 'ह्रीं' = 'ब्रह्मग्रंथि'

हल्लेखाओं एवं ग्रंथित्रय का पारस्परिक सम्बन्धा

'परम बिन्दु' का स्वरूप—पूर्णानन्द की दृष्टि के आलोक में

यति पूर्णानन्द ने 'षट्चक्रनिरूपणम्' के ४८हवें अध्याय में 'परबिन्दु' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

'एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वनिर्वाणशक्तिः।
कोट्यादित्यप्रकाश त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा।
केशाग्रस्याऽतिगुह्य निरवधि विगलत्प्रेमधाराधरासा।
सर्वेषां जीवनभूता मुनिमन सिमुदा तत्त्व बोध वहन्ती।।'

अर्थात् इस **'निर्वाण कला'** के मध्य देश में अपूर्वा परमा **'निर्वाण शक्ति'** विराजमान है जो कि कोटि सूर्य के समान दीप्तिमान है, तीनों भुवनों की उत्पादिका है,

---

[1] श्रीमद्वाग्भव कूटैकस्वरूप मुखपङ्कजा।
कण्ठाधः कटिपर्यन्त मध्यकूट स्वरूपिणी।
शक्तिकूटैकतापन्नकटयद्योभाग धारिणी।
मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा ।। —ललितासहस्रनाम

केशाग्र भाग के करोड़हवें भाग के समान सूक्ष्मतम, गुप्ततम् एवं निरनतर क्षरित पीयूष प्रवाह को धारणा करने वाली है। यह परमा शक्ति जीवों की प्रण्णस्वरूपपिणी है एवं मुनियों के मन में हर्ष पूर्वक तत्त्वज्ञान को प्रवाहित करने वाली है।

निर्वाण शक्ति ब्रह्म की शक्ति है। यह परब्रह्मशक्तिस्वरूपा है। **समस्त सृष्टि का मूल कारण** यहीं **'निर्वाणशक्ति'** है। इसे **'त्रिभुवनजननी'** कहा गया है।

उस 'निर्वाण शक्ति' के मध्य स्थित 'शून्य' में ही नित्यानन्द नामक **शिवपद** है जो कि निर्मल, नित्य, योगिगम्य, सर्वानन्दमय एवं शुद्धज्ञान स्वरूप है। इसे ही कोई **'विष्णुपद'** कोई **'हंसपद** एवं कोई मोक्षरूप अनिर्वचनीय आत्मसाक्षात्कार का स्थान कहते हैं।[1]

कहा गया है कि—

'ज्वलदग्नेर्यथा देवि! स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
तस्याश्च्युतं परंबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि।'

अर्थात् जिस प्रकार जलती आग से विस्फुलिंग निकलते हैं उसी प्रकार **'निर्वाण शक्ति'** से **'परमबिन्दु'** का उद्भव होता है।

प्रख्यात टीकाकार **कालीचरण** कहते हैं—**'निर्वाणशक्तिमध्ये** पर ब्रह्मस्थान माह। **परंबिन्दुरूप निर्वाणशक्त्या** मध्यान्तराले मध्यस्थशून्ये मायामलरहितं ब्रह्मस्थान लपन्ति'[2]

कालीचरण कहते हैं—

'सहस्रदलकर्णिकान्तस्त्रिकोणे माया बन्धनाच्छदित प्रकृतिपुरुषात्मकं परंबिन्दुः'

अर्थात् प्रकृतिपुरुषात्मक परतत्व ही **'परंबिन्दु'** है। अन्यत्र कहा गया है कि—

'निर्गुणो **बिन्दुरूपश्च** सिद्धिकारणमेव हि।
केचिद् वदन्ति ब्रह्मा, कैश्चिद् विष्णुः प्रकथ्यते।
कैश्चिद् रुद्रो महापूर्ण एको देवो निरञ्जनः।
आद्या शक्तियुतो देवश्चरणकाकाररूपकः।'

यह बिन्दु ही समस्त कारणों का कारण है—

'अयं **बिन्दुः** सर्वकारणरूप ईश्वर इति केचित्।'
'पौराणिकास्तु महाविष्णुरुपोऽयमिति वदन्ति।
'बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसः स्वप्रकाशेन भासते।'

---

[1] षट् चक्र निरूपणम् (४९)

[2] (षट्चक्रनिरूपणम् की टीका) 'श्लोकार्थ परिष्कारिणी' (काली चरण)

श्रीमत में कहा गया है—

'अकुलेश्वरदेवस्य सम्बंधः प्रथमः स्थितः ।
रूपातीतः **परोबिन्दुः** शक्त्या वेष्टितभास्वरः ।'

कालीचरण कहते हैं कि 'परं बिन्दु' सहस्रदल कर्णिका में स्थित है—'परमरसः परमानन्दस्तन्मये शिवे सहस्रदलकणिकास्थ परंबिन्दुरूप शिवसमीपे'[1]

कालीचरण ने विस्तार पूर्वक इस तत्त्व पर प्रकाश डालते हुए इसे इस प्रकार निरूपित किया है—

(१) 'सुषुम्णानाड्यूर्ध्वे सहस्रदलपद्मं शुक्लवर्णमधोमुखं रक्तकिञ्जल्कशोभित-मकारादिलकारानत पञ्चाशद्वर्णौः शुक्लाभैर्विंशत्यावर्त्तनेन सहस्रसंख्यकैर्युक्तं सहस्र दलम्, एतत्कर्णिकायां हंसः। ततः परमशिवरूपगुरुः।

(२) 'ततः **सूर्य मण्डलं** चन्द्रमण्डलम् ।

(३) 'ततो **महावायुः ।**

(४) ततो **ब्रह्मरन्ध्रम् ।**

(५) 'ततो महाशंखिनी ।

(६) चन्द्रमण्डले विद्युदाकार त्रिकोणम् ।

(७) तन्मध्ये मृणाल सूत्र शतभागैकभाग रूपसूक्ष्मा चन्द्रस्य **'षोडशी'** कलाऽधोमुखी रक्तवर्णा । अधोमुखी ।

(८) तदधस्ताद व्क्तनादात्मक निबोधिकाख्य वह्निः। तदुपरि निर्वाणकलाक्रोडे—

'परं बिन्दुः' शिवशक्त्यात्मकः ।[2]

(२) 'सहस्रदलपद्मकर्णिकामध्ये चन्द्रमण्डले अकथादि **त्रिकोणम्।** तन्मध्ये त्रिकोण समीपे **त्रिबिन्दुः।** तस्याधो **बिन्दुर्हकारः** पुरुषात्मकः। **ऊर्ध्वबिन्दुद्वय** रूपविसर्गः सकारः प्रकृति रूपः। एतदुभयात्मको **हंसरित्रबिन्दुरूपेण** प्रकाशते। तन्मध्ये **अमाकला। तत्क्रोडे** निर्वाण शक्तिः तस्या मध्ये **शून्यं परं ब्रह्म** इति ।।[3]

राघव भट्ट की दृष्टि—तांत्रिक व्याख्याकार राघव भट्ट कहते हैं कि बिन्दु सत्वाधिक्यात्मक होता है।

राघवभट्ट की दृष्टि—राघवभट्ट कहते हैं कि—'नाद' की तीन दशाये या अवस्थायें हैं—

(१) जब तमोगुण का आधिक्य होता है तब ध्वनि अध्यक्त रहती है और इसे **'ध्वनि'** कहते हैं।

---

[1] षट् चक्र निरूपणम् (५१)

[2] श्लाकार्थ परिष्कारिणी (४९)

[3] शलोकापरिष्कारिणी (४९)

(२) जवरजोगुण का आधिक्य होता है तब ध्वनि **किञ्चिद्वर्णरूप** में व्यक्त होता है।

(३) जब यही नाद **सत्वाधिक्यपूर्ण** होता है तब 'बिन्दु' का स्वरूप धारणा कर लेता है।

(क) 'तमोगुणधिक्येन केवल ध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनादः ।

(ख) 'रजआधिक्येन किञ्चिद्वर्णबद्धन्यासात्मकः ।

(ग) सत्वाधिक्येन बिन्दुरूपः ।

कुलार्णव तंत्र की दृष्टि—'कुलार्णव तंत्र' में कहा गया है—

'बिन्दुरूपं परं ब्रह्म सहस्रदल संस्थितम्।'

'निर्वाणशक्तिः **परबिन्दुरूपेति।'** काली चरण **'बिन्दु'** को परम कुण्डली एवं 'शून्य' को शिव एवं **'पर बिन्दु'** को सृष्टि स्थतिलय विधायक भी कहा गया है—'तन्मध्ये परबिन्दुश्च सृष्टि स्थितिलयात्मकम् ।

शून्य रूपं शिवः साक्षाद् बिन्दुः परमकुण्डली ।

निर्वाण तन्त्र में कहा गया है कि **'परंबिन्दु'** शक्ति है

बिन्दु सृष्टिवाद की अन्य दृष्टि—शैव एवं शाक्त दोनों दर्शनों में बिन्दुसृष्टिवाद स्वीकृत है। इसके अनुसार—

(१) शिव एवं शक्ति आद्य तत्त्व है 'शिव' प्रकाशस्वरूप हैं वे विमर्शमय (स्फूर्तिमय) 'शक्ति' में प्रविष्ट होते हैं और तब वे **'बिन्दु'** का स्वयप धारण कर लेते हैं।

(२) इस प्रकार 'शक्ति' भी शिव में अनुप्रविष्ट होती है। इसके उपरान्त—

(३) 'बिन्दु' संवर्द्धित होत है। तब उससे नाद (नारी तत्त्व) निर्गत होता है।

(५) 'श्वेत' और 'रक्तबिन्दु' जो पुरुष एवं स्त्री तत्त्व के प्रतीक हैं, उसके कला विशेष हैं।

(६) फिर ये तीनों एक **'संयुक्त बिन्दु** बन जाते हैं।

(७) **श्वेत, रक्त** एवं **मिश्र बिन्दु** मिलकर एक हो जाते हैं और **कामकला'** कहलाते हैं।

(८) यहाँ चार शक्तियों का सामरस्य है—

(क) **मूल बिन्दु'**—यह जगत का मूलोपादान तत्त्व है।

(ख) **'नाद'**—इसके आधार पर बिन्दु-संबर्धन से जन्म लेने वाले तत्त्वों का नामकरण होता है।

'बिन्दु' एवं **'नाद'** दोनों में उत्कट प्रेम रहता है कितने मात्र से जगत की सृष्टि नहीं हो जाती। वे केवल अर्थ और वाक् के उपादान हैं।

(८) अतः इनके साथ श्वेत पुरुष बिन्दु एवं रक्त स्त्री बिन्दु रूप में दो उत्पादक शक्तियों का योग होता है। जब ये चारों तत्त्व मिलकर **'कामकला'** का रूप धारण कर लेते हैं तब वागर्थमय सृष्टि आरम्भ होती है। जब स्त्री तत्त्व प्रथम बार बिन्दु में प्रविष्ट होता है तब नाद के साथ **'हार्ध कला'** नामक एक अन्य तत्त्व भी विकसत होता है। उच्चमता देवी **'कामकला'** हैं। सूर्य (संयुक्त बिन्दु) उसका मुख है।

अग्नि और चन्द्र (रक्त एवं श्वेत बिन्दु) उसके स्तन हैं और **'हार्धकला'** उसकी योनि है जिससे सृष्टि आरम्भ होती है। यह देवी ही विश्व का सृजन करने वाली है। यही **'परा' 'ललिता' 'भट्टारिका'** या **'त्रिपुर सुन्दरी'** कही जाती है।

(९) शिव 'अ' है और 'ह' शक्ति है। यह 'ह' ही अर्धकला है। स्त्री तत्त्व या योनि (ह) के अकार का अर्धभाग (हार्धकला' है। यह अर्धकला या 'ह' शिव के प्रतीक 'अ' अक्षर से मिलकर **'कामकला'** या **'त्रिपुर सुन्दरी'** का प्रतीकात्मक रूप है। यह शिव एवं शक्ति के संयोग का फल है। वह 'अहं' कहलाती है। सभी आत्मायें त्रिपुरसुन्दरी का रूपमात्र हैं। जब वे देवी चक्रों के साथ काम कला विद्या एवं ज्ञान का अभ्यास कर लेती हैं वे त्रिपुर सुन्दरी हो जाती है।

त्रिपुर सुन्दरी से ही समस्त अर्थ उत्पन्न होते हैं। अर्थ के व्यञ्जक सारे शब्द भी त्रिपुरसुन्दरी से ही उत्पन्न होते हैं। इसीलिए उसका नाम है—'परा'। सृष्टि उसका **परिणाम है विर्त** नहीं। प्रत्येक साधक का अन्तिम लक्ष्य होता है कि 'मैं भगवती त्रिपुरसुन्दरी के साथ अभिन्न हो जाऊँ।

श्लोक क्रमांक ४७ : * **'सहस्रार' का सर्वोत्पादक स्वरूप** *

(सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।
ततो मूलाधाराद्वितयमभवत्तच्छशदलं।
सहस्राराज्जातं तदिति दशधबिन्दुरभवत्॥४७॥)

अर्थ—['सहस्रार चक्र' ही पर बिन्दु के रूप में रूपान्तरित या आकारित हो जाता है। उसी से 'बैन्दव गृह' (परम बिन्दु गृह) भी निर्मित हुआ है। यह समस्त विश्व इसी से उत्पन्न हुआ है। वही इन सभी का साधन (अस्तित्व का साधन) है। उसी सहस्रारस्थ 'बिन्दु' से (या सहस्रार से) **'मूलाधार चक्र'** एवं **'स्वाधिष्ठान'** नामक चक्रद्वय का उद्भव हुआ और (उन दोनों चक्रों की दल संख्याओं के सम्मिलित योगाङ्क १० से) दशदलात्मक **'मणिपूर चक्र'** का जन्म हुआ।

(वह 'मूलाधार'-'स्वाधिष्ठान' चक्रद्वय **'सहस्रार'** से उत्पन्न हुआ।) 'सहस्रार चक्र' से उत्पन्न वह 'महाबिन्दु' दस रूपों में विभक्त हो गया॥४७॥]

सरोजिनी (व्याख्या)—

(१) **सहस्रार 'बिन्दु'** बन जाता है।

(२) सहस्रार 'बिन्दु' बनकर १० भागों में विभाजित हो जाता है—

(क) (सहस्रार बिन्दु' बन जाता है।)—

'सहस्रारं बिन्दुर्भवति भवति।'[1]

(ख) सहस्रार बनकर १० भागों में विभक्त हो जाता है।

* 'सहस्राराज्जात तदिति दशधा बिन्दुरभवत्।'[2]

(ग) 'बिन्दु' से समस्त जगत की उत्पत्ति होती है।

'तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।'[3]

(घ) वह एक परम तत्त्व ही बिन्दु बनकर जगत की सृष्टि का कारण बनता है। 'तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्'[4] परमतत्त्व सहस्रारस्थ **'बिन्दु'** है। यह दशधा विभक्त होकर—

(१) 'मूलाधार चक्र' एवं (२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' के १० दल निर्मित करता है।

*** सहस्रार चक्र ***

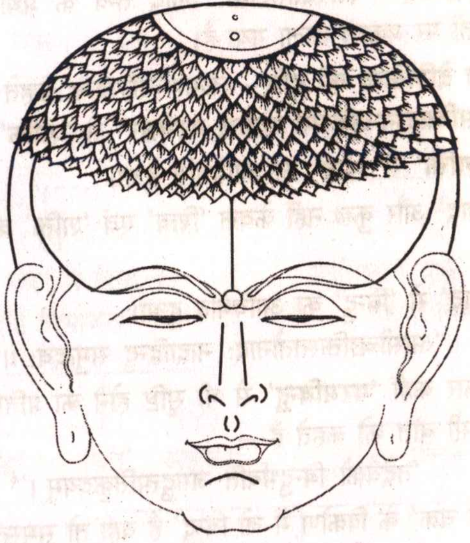

---

१. सुभगोदय (४७)
२. सुभगोदय (४७)
३. सुभगोदय (४७)
४. सुभगोदय (४६)

'शिरः पद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते।
पतत्रीणां तल्पे परमशिवरूपं निजगुरुम्।'

—अन्नदाकल्प।

'शिरः पद्मेमहादेवस्तथैव परमो गुरुः।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये।
तदंशं चिन्तयेद देवि बाह्ये गुरुचतुष्टयम्।
तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च।।'

—निर्वाण तंत्र/कंकाल मालिनीत

'इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नर वरो।
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।।
समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः।
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला।।८।।'

—षट् चक्र निरुपणम्

बिन्दुसृष्टिवाद—'शारदातिलक' आदि तन्त्र के प्रधान ग्रंथों में सृष्टि के विभिन्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है।

लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि—लक्ष्मण देशिकेन्द्र कहते हैं कि—

(१) **'सच्चिदानन्दविभव सकल परमेश्वर'** से **'शक्ति'** का प्राकट्य हुआ।

(२) **'शक्ति'** से **'नाद'** का आविर्भाव हुआ।

(यह 'नाद' और कुछ नहीं केवल 'शिव' एवं 'शक्ति' का पारम्परिक सम्बन्ध मात्र है।)

(३) 'नाद' से 'बिन्दु' का आविर्भाव हुआ।

'आसीच्छक्तिस्ततोनादः नादाद्बिन्दु समुद्भवः।।'[१]

इसी प्रकार कहीं **'परमबिन्दु'** से भी सृष्टि होने का प्रतिपादन किया गया है। गौड़पादाचार्य उसी बात को कहते हैं—

'तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्।'[२]

(४) 'श्री चक्र' के त्रिकोण में जो बिन्दु' है वही तो समस्त 'श्री चक्र' श्री चक्र के अन्य अङ्गों का योनियों का एवं समस्त विश्व का मूल कारण है। वह इस प्रकार है—

---

[१] शारदा तिलक

[२] सुभगोदय स्तृति (४६)

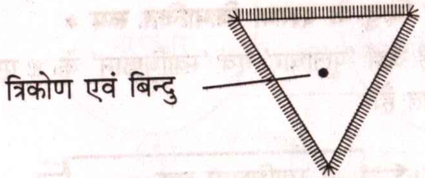

'श्री चक्र' में स्थित बिन्दु एवं सहस्त्रार रूप बिन्दु से जगत की सृष्टि होती है।

'परमबिन्दु' का दशधा विभाजन—'सहस्त्रार चक्र' में स्थित जो 'परमबिन्दु' है वही विश्व का महाकारण है। वही **'परमबिन्दु'** १० भागों में विभक्त होकर

(१) 'मूलाधार चक्र' — ४ दल
(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' — ६ दल } १० दल

के रूप में प्रकट होता है।

'मूलाधार चक्र' एवं **'स्वाधिष्ठान चक्र'** के १० दल (मूलाधार के ०४ एवं स्वाधिष्ठान चक्र के ६ = ४ + ६ = १० दल) 'परम बिन्दु' के दशधा विभाजन हैं।

◆ = परम बिन्दु और उसका विभाजन

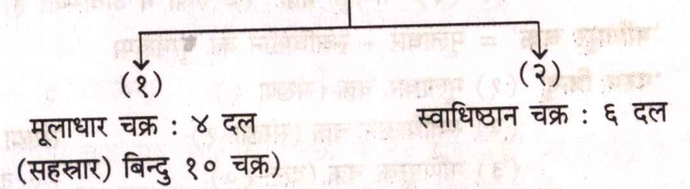
(१)
(२)
मूलाधार चक्र : ४ दल
(सहस्त्रार) बिन्दु १० चक्र)
स्वाधिष्ठान चक्र : ६ दल

'बिन्दु' का चक्रों में दशधा विभाजन

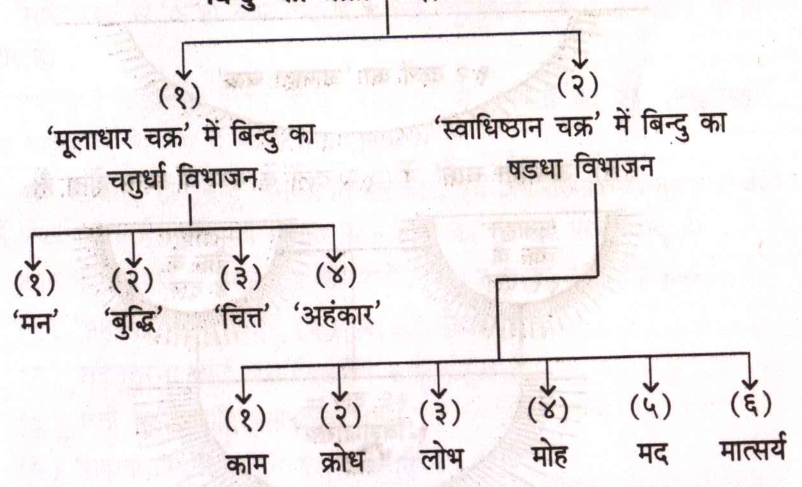
(१)
'मूलाधार चक्र' में बिन्दु का चतुर्धा विभाजन
(२)
'स्वाधिष्ठान चक्र' में बिन्दु का षडधा विभाजन
(१) 'मन'
(२) 'बुद्धि'
(३) 'चित्त'
(४) 'अहंकार'
(१) काम
(२) क्रोध
(३) लोभ
(४) मोह
(५) मद
(६) मात्सर्य

एक ही परमतत्त्व दशात्मक बनकर जगत की सृष्टि करता है और चक्रों के रूप में प्रथमतः (१) **'मूलाधार चक्र'** एवं (२) **स्वाधिष्ठान चक्र'** के रूप में प्रकट होता है।

* 'मणिपूर चक्र' एवं बिन्दु के दशधा विभाजित रूप *

'मणिपूर चक्र' वह तृतीय चक्र है जहाँ 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' के ४ एवं ६ (अर्थात् १० दल) एकत्र होकर स्थित हैं।

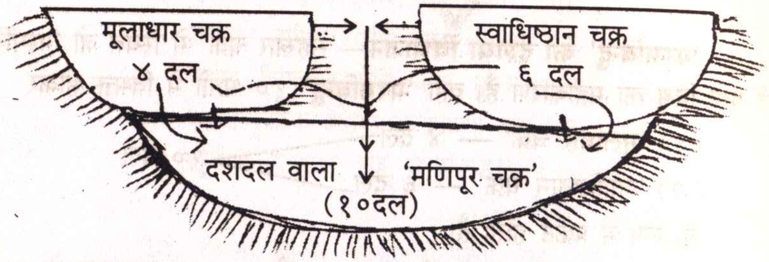
मूलाधार चक्र
४ दल
स्वाधिष्ठान चक्र
६ दल
दशदल वाला 'मणिपूर चक्र'
(१०दल)

'परमबिन्दु'—(१) 'मूलाधार चक्र' में ४ रूपों में।
(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' में ६ रूपों में।
एवं (३) 'मणिपूर चक्र' १० रूपों में अवस्थित है।

'मणिपूर चक्र' = मूलाधार + स्वाधिष्ठान का युग्मरूप।

'परम बिन्दु' (१) मूलाधार चक्र (संख्या १)
(२) स्वाधिष्ठान चक्र (संख्या-१)
(३) मणिपूरक चक्र (दल-१०)

२ संख्या +
१० दल

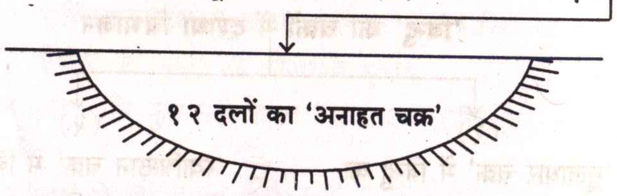
१२ दलों का 'अनाहत चक्र'

(४) **'अनाहत चक्र'** में (१२ दलों के रूप में व्यक्त होता है।

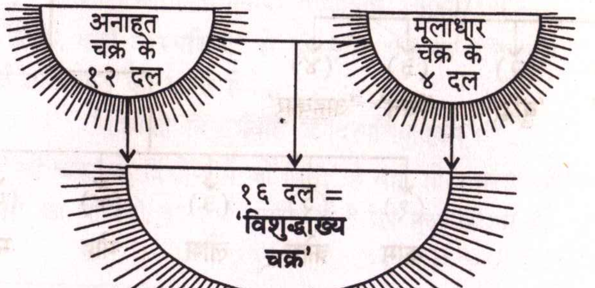
अनाहत चक्र के १२ दल
मूलाधार चक्र के ४ दल
१६ दल =
'विशुद्धाख्य चक्र'

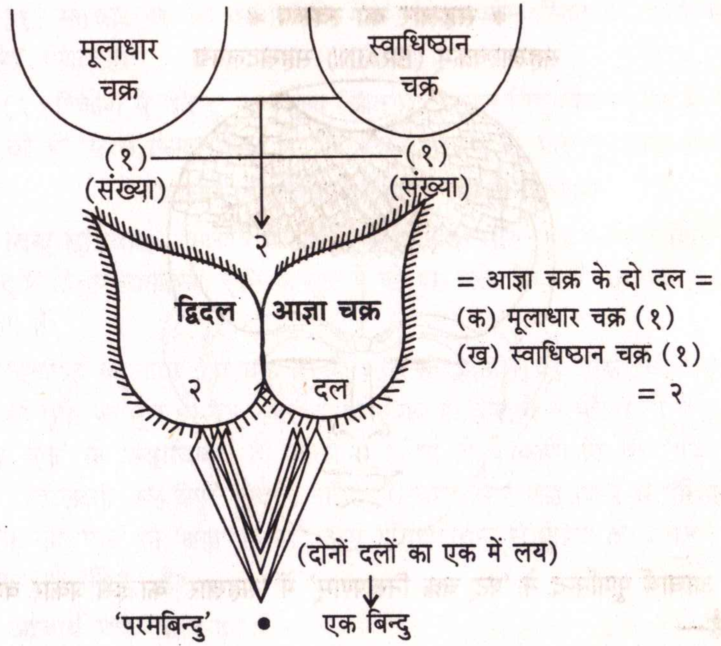
मूलाधार चक्र
स्वाधिष्ठान चक्र
(१)
(संख्या)
(१)
(संख्या)
२
द्विदल
आज्ञा चक्र
२
दल
= आज्ञा चक्र के दो दल =
(क) मूलाधार चक्र (१)
(ख) स्वाधिष्ठान चक्र (१)
= २
(दोनों दलों का एक में लय)
'परमबिन्दु'
एक बिन्दु

'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' के १० दल 'एक' 'परमबिन्दु) के प्रसार हैं। ये ही दो (आज्ञा चक्र के दो) दल मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान हैं।

'मणिपूरक' से 'आज्ञा चक्र' तक के ४ चक्र 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' के ही रूपान्तर हैं।

इन सभी चक्रों का त्याग करके 'सहस्रार' में भगवती का एक बिन्द्वात्मक स्वरूपा परासंवित् के रूप में ध्यान करना चाहिए।

यह 'सहस्रार' ही 'बिन्दु' बनकर विभिन्न चक्रों एवं अनन्तरूपात्मक ब्रह्माण्डों के रूप में प्रकट होता है। सृष्टि का (जगत का) आदि कारण यही परम बिन्दु है।

आचार्य गौड़पाद ने इसी बात को श्लोक में इस प्रकार व्यक्त की है—

(१) 'सहस्रार' बिन्दुर्भवति' (२) 'च ततो बैन्दवगृहं' ।
(३) 'तदेततस्माज्जातं **जगदिदमशेषं** सकरणम् ॥'
(४) 'ततो मूलाधाराद्वितमभवत्तछशदलं ।'
(५) 'सहस्राराज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत् ।'[1]
(६) तदेवैको **बिन्दुर्भवति** जगदुत्पत्तिकृदयम् ।'(४६)

---

[1] सुभगोदय स्तुति (४७)

* सहस्रार का स्वरूप *

सहस्रारचक्रम् (BRAIN) सहस्रदलपद्म

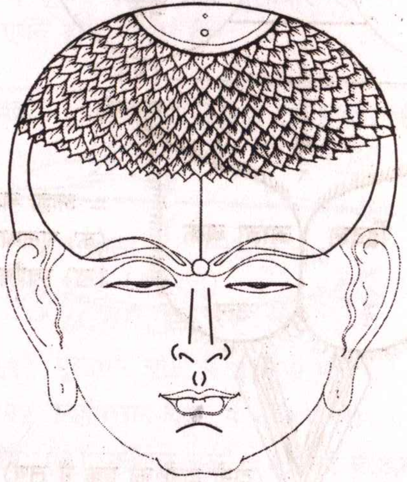

आचार्य पूर्णानन्द ने 'षट् चक्र निरूपणम्' में 'सहस्रार' का इस प्रकार वर्णन किया है—

> 'तदूर्ध्वे शंखिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशं ।
> विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णाचन्द्राविशुभ्रम् ।
> अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरवि, कला कान्तिकिञ्जल्कपुञ्जं,
> लकाराद्यैर्वर्णोः प्रविलसित वपुः केवलान्दरूपम् ।।(४०)
>
> 'समास्ते तस्यान्तः शशपरिरहितः शुद्धसम्पूर्ण चन्द्रः ।
> स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचय स्निग्धसन्तानहासी ।
> त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्यु दाकार रूपं।
> तदन्तःशून्यं तत् सकलसुर गणैः सेवितं चातिगुप्तम् ।।(४१)

शिवसंहिताकार की क्या दृष्टि है?

> ब्रह्मरंध्रे हियत् पद्मं सहस्रारं व्यवस्थितम्
> तत्र कन्दे हिया योनि स्तस्यां चन्द्रो व्यवस्थितः ।
> त्रिकोणाकारतस्तस्याः सुधाक्षरति सन्ततम्
> इडायाममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः ।
> अमृतं वहति धारा धारारूपं निरन्तरम् ।
>
> —शिवसंहिता (१२९-३०)

(१) सहस्रार पद्म की कर्णिका के मध्य चन्द्र मण्डल स्थित है। उसके मध्य **'त्रिकोण'** स्थित है।

(२) त्रिकोण में **'बिन्दु'** रुप शून्य स्थित है। त्रिकोण विद्युतवत् स्फुरित है। इस 'बिन्दु' को ही **'परम बिन्दु'** कहते हैं। यह चैतन्य स्वरूप है और शून्याकार है।[१]

आचार्य गौड़पाद का सृष्टि सम्बंधी सिद्धान्त

बिन्दु सृष्टिवाद—आचार्य गौड़पाद 'बिन्दु' से ही सृष्टि होना स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में इस नानात्मक सृष्टि के मूल में जो परा सत्ता स्थित है वह एक है और बिन्दु रुप है।

'एकोऽहं बहुस्याम' (मैं एक हूँ। मैं बहुत हो जाऊँ।) यह 'एक' की बहुत्व-कामना ही सृष्टि का मूल है। यह 'एक' तो परमशिव है। वैष्णवों से पूछिए तो वे कहेंगे कि वह 'एक' तो **'महाविष्णु'** है। शाक्तों से पूँछिए तो वे कहेंगे कि वह 'एक' तो 'शक्ति' (महालक्ष्मी, महात्रिपुर सुन्दरी, आदि) हैं। यहद आप शङ्कराचार्य से पूँछिए तो कहेंगे कि वह 'एक' तो **'ब्रह्म'** है। यदि आप गौड़पादाचार्य से पूँछिए तो वे कहेंगे कि वह 'एक' तो **'बिन्दु'** है।

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

> 'तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम् ।'(४६)[२]

यह भी कहा गया है कि—

> **'दशधा भिद्यते बिन्दुः** एक एव परात्मकः ।
> **चतुर्धाऽऽधार कमले षोढाऽ**धिष्ठान पङ्कजे ।
> उभयाकार रुपत्वात् इतरेषां तदात्मता ।।'

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

> **'सहस्रारं बिन्दुर्भवति** च ततो बैन्दवगृहं ।
> तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम् ।
> ततो मूलाधाराद्वितयममवत्तद्दशदलं ।
> सहस्राराज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत् ।।'[३]

यह 'एक' सहस्रार में है।

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र सृष्टि-प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—

---

[१] 'परं बिन्दु' समस्त देवगणों से सेवित है। सारे देवता उसकी आराधना करते हैं। यह अत्यन्त गुप्त है। यह परमानन्द रूप है। इसमें निर्वाण कला' एवं 'षोडशी' दोनों है।

[२] सुभगोदय स्तृति

[३] सुभगोदय स्तृति (४७)

'सच्चिदानन्द विनवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्विन्दुसमुद्भवः ॥[१]

'बिन्दु' का विभाजन

'मूलाधार चक्र' में बिन्दु का चतुर्धा विभाजन

(१) 'मन'
(२) 'बुद्धि'
(३) 'चित्त'
(४) 'अहंकार'

सहस्रारस्थ एक बिन्दु का विभाजन

(१) 'काम'
(२) 'क्रोध'
(३) 'लोभ'
(४) 'मोह'
(५) 'मद'
(६) 'मात्सर्य'

अन्य समस्त चक्र इन्हीं दो चक्रों के मेल से निर्मित हुए हैं। 'मणिपूर' से 'आज्ञा' तक के सभी चक्र इन्हीं दोनों के रूप हैं।

प्रश्न उठता है कि यह **'बिन्दु'** है क्या?

यह **'बिन्दु'** सहस्रार में बिन्दु रूप में स्थित भगवती का परासंविद्रूप है।

(१) 'मूलाधार चक्र'—

'तावाधारे मूले सह समयया लास्यपरया,
शिवात्मानं मन्ये नवरस महाताण्डवनटम् ।
उभाभ्यामेताभ्यामुभय विधिमुद्दिश्य दययां,
सनायाभ्यां जज्ञे जनक जननीमज्जगदिदम् ॥'

—सौन्दर्य लहरी

गोरक्षनाथ की दृष्टि—

(१) 'द्वितीयं मूलाधारसूत्रं वामपार्ष्णिना तत्राग्निदीपनं भवति ।'

—सिद्धसिद्धान्त पद्धति

(२) आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिधावर्तं भगमण्डलाकारं तत्र मूलकन्द स्तत्र शक्तिं पावकाकारां ध्यायेत् तत्रैव कामरूप पीठं सर्व कामप्रदं भवति ।

—(सौभाग्य लक्ष्म्यु/सिद्धसिद्धान्त पद्धति)

(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' **गोरक्षनाथ—**

द्वितीयं स्वाधिष्ठान चक्रं षड्दलं तन्मध्ये पश्चिमाभिमुख्यं लिङ्ग प्रवालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत् तत्रैवोड्याण पीठं जगदाकर्षणसिद्धिदं भवति ।'

—सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद

---

[१] शारदा तिलक

* बिग बैंग का सिद्धान्त *

* THEORY OF BIG BANG *

ब्रह्माण्ड (COSMOS) का उद्भव कैसे हुआ? विश्व की सृष्टि कैसे हुई?

वेदों में तो कहा गया है कि उसने कामना की कि 'मैं एक से बहुत् हो जाऊँ।' और सृष्टि हो गई।

(१) **'सोऽकामयत'** (२) **'एकोऽहं बहुस्याम'**
(उसने कामना की) (एक हूँ अनेक हो जाऊँ।

सृष्टि का मूल केन्द्र, स्रोत या उद्गम स्थान 'काम' (कामना = इच्छा) है।

परमात्मा की शक्तियाँ

(१) 'चितिशक्ति'
(२) 'आनन्दशक्ति'
(३) 'इच्छाशक्ति'
(४) 'ज्ञानशक्ति'
(५) 'क्रियाशक्ति'

↓
(काम)
'सोऽकामयत'। 'एकोऽहं बहुस्याम'
इच्छात्मक 'स्पन्द'(इच्छा ; काम)
↓
सृष्टि

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि—आधुनिक खगोलवेत्त यह मानते हैं कि विश्व umirene की रचना (सृष्टि) का आरम्भ एक **'धमाके'** के साथ हुआ। और इसे ही Big Bang कहा जाता है।

इस दृष्टि के अनुसार—(१) जब सृष्टि की रचना नहीं हुई तब सारे जड़ पदार्थ एक परमाणु के रूप में थे जिसमें द्रव्य पदार्थ दृढ़बद्ध संकुलन (Tight Packing) अवस्था में अत्यन्त संपीडित या घनीभूत था। इसे ही हम परमाणु की आद्य संरचना का काल कह सकते हैं।

आद्यकालिक परमाणु-संरचना—जब परमाणु अपने घनत्व की उच्चतम स्थिति या पराकाष्ठ में था तभी उसे परमाणु की आद्यकालिक स्थिति कहेंगे। यही है—PRIMEVAL ATOM.

इस आदिम परमाणु में अत्यधिक परिमाण के विकिरण द्वारा एक बृहत विस्फोट हुआ। इसी परमाणु आद्य पारमाणिक विस्फोट को 'BIG BANG' कहते हैं।

विश्वोत्पत्ति—विश्व की उत्पत्ति से सम्बद्ध हमारी सामान्य धारणा यही रही है कि—

(१) विश्व अपने प्रारम्भ में **एक घनीभूत गोले के रूप** में था।

(२) (हबल महोदय के अनुसार) इस ब्रह्माण्ड का सतत् प्रसार होता जा रहा है। आरंभ में ब्रह्माण्ड **अत्यधिक संपीडित** अवस्था में रहा होगा। (संपीडन = सघनता)।

विश्व का आदि काल में ठीक-ठीक कितना घनत्व था? यह अज्ञात है। इसके जानने का साधन अप्राप्त है।

(३) यदि अनुमान से निश्चय किया जाय तो उसका **घनत्व न्यूक्लीय तरल** के समान रहा होगा। जिसके एक लघुतम बिन्दु में कई अणुओं के नाभिक (केन्द्रक) होते हैं। आणविक नाभिक का घनत्व पानी की सघनता से करोड़ों गुना अधिक है।

(४) ब्रह्माण्ड का आद्य (आनुमानिक) घनत्व इतना था कि—**प्रत्येक घन संटीमीटर में १० करोड़ टन पदार्थ स्थित था।**

(५) बेल्जियम के खगोलज्ञ एवं पादरी ऐब जार्ज लेंमेतेर ने इस सिद्धान्त की विवेचना की और इसे ही BIG BANG THEORY' (बिग बैंग सिद्धान्त) कहा जाता है।

'बिग वैंग थ्योरी' के अनुसार—(महाविस्फोट)

(१) करोड़ो वर्ष पूर्व यह विश्व अत्यन्त घनीभूत स्थिति में था। इसमें से एक बहुत विस्फोट हुआ और उसका (विश्व का) विस्तार होता गया।

(२) इस महाविस्फोट ने अत्यन्त सघन पिण्ड को छिन्न-भिन्न कर दिया।

(क) बिन्दु, (२) (बिन्दु) में विम्फोट (३) (बिन्दु) बिन्दु का (विस्फोटोपरान्त होने वाला अश्रान्त, अबाध, निरन्तर एवं महात्वरित गति से आजतक होने वाला) भयानक त्वरित गति वाला प्रसार एवं विस्तार।

(३) बिन्दु का विस्फोट होने से उस आद्य सघन पिण्ड का जो छिन्न-भिन्न स्वरूप सामने आया उसके टूटे टुकड़ों के अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक छिटक जाने से) उसी से अनेक अन्तरिक्ष-पिण्ड बनें।

(४) वे टूटे टुकड़े आज भी हजारों किलो मीटर प्रतिसेकेण्ड की गति से अन्तरक्षि में भागे जा रहें हैं या वे इसी गति से गतिमान हैं।

(५) इन्हीं गतिशली अंशों से **आकाशगंगाओं का सृजन** हुआ।

(६) **आद्य विस्फोट** ही Big Bang Theory का चिह्न एवं प्रमाण है। यह ब्रह्माण्डीय उत्पत्ति के अन्य सिद्धान्तों से कई प्रकार से भिन्न है।

विभिन्न दृष्टियाँ

इस दिशा में दो सिद्धान्त प्रधान हैं—

(१) **'सतत सृष्टि सिद्धान्त'** थामस गोल्ड, हार्मन बाण्डी

(२) **'पल्सेटिंग (आसिलेटिंग) विश्व सिद्धन्त'** सडेंज।।

* [क] **सतत सृष्टि सिद्धान्त**—इसका प्रतिपादन थामस गोल्ड एवं हार्मन बाण्डी ने किया था। इसके अनुसार आकाश गंगायें आपस में दूर तो जा रही हैं किन्तु उनका आकाशीय घनत्व अपरिवर्तित रहा करता है। पुरानी आकाश गंगाओं के एक दूसरे से दूर हो जाने के कारण जो स्थान रिक्त हो जाता है उस रिक्त स्थान में **नई आकाशगंगा** का आविर्भाव होता चलता है। ये नई आकाश गंगायें नए पदार्थों से निर्मित होती हैं। पुनः स्थापन में बहुत कम सृजनात्मक शक्ति लगती है।

इंग्लैण्ड के खगोल वेत्ता **फ्रेड हायल** ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया था।

* [ख] **पल्सेटिंग (आसिलेटिंग) सिद्धान्त**—(एलेन संडेजे 'पल्सेटिंग विश्व सिद्धान्त' का प्रतिपादन **डा. एलेन संडेज** ने किया था।

एलेन सण्डेज के अनुसार—

(१) यह समस्त विश्व करोड़ों वर्षों के अन्तराल में क्रमतः **फैलता एवं सिकुड़ता** है।

(२) **डा. सण्डेज** कहते हैं कि आज से लगभग १२० करोड़ वर्ष पूर्व एक भयंकर विस्फोट हुआ और तब से विश्व विस्तृत होता जा रहा है। यह प्रसार **२९० करोड़ वर्षों** तक चलता रहेगा। फिर **गुरुत्वाकर्षण** अधिक विस्तार पर रोक लगा देगा। इसके उपरान्त परिवर्तन प्रारम्भ होगा।

(३) पदार्थ का **सिकुड़न प्रारम्भ हो जाएगा।** अर्थात् पदार्थ अपने भीतर सिमटता जाएगा। इस प्रक्रिया को **'अंतः विस्फोट'** कहते हैं। यह प्रक्रिया ४१० करोड़ वर्षों तक चलती रहेगा।

(४) जब पदार्थ सिकुड़ने-सिकुड़ते अत्यधिक सम्पीडित (घनीभूत) हो जाएगा तब एक बार पुनः विस्फोट होगा। विश्व के विकास का यह नवीनतम सिद्धान्त है।

भर्तृहरि प्रतिपादित स्फोटवाद का सिद्धान्त

आचार्य भर्तृहरि सृष्टि का मूल **वर्ण-विस्फोट** मानते हैं और इसी **'स्फोट'** से सृष्टि भी होती है। विज्ञान मानता है कि विस्फोट से (Big Bang) सृष्टि होती है। व्याकरण भी मानता है कि 'स्फोट' से सृष्टि होती है। जगत् ध्वनि के स्फोट का कार्य है और जगत का संपूर्णा प्रसार शब्द का विवर्त मात्र है—

'अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ।'[1]

---

१. वाक्पदीय (भर्तृहरि)

शाक्त तांत्रिक कहते हैं कि जगत का मूल तत्त्व बिन्दु है। वैज्ञानिक भी सृष्टि का मूल किसी सूक्ष्म बिन्दु को ही मानते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि संघनित (सघन) बिन्दु का विस्फोट होने से ही सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति पृथ्वी, अनन्त तारा समूह, आकाश गंगायें एवं नीहारिकाओं आदि का जन्म हुआ। शाक्त दार्शनिका भी यही मानता है किन्तु 'बिन्दु' के स्फोट से ही त्रिकोण, दशार, चतुर्दशा, अष्टार आदि सभी निर्मित हो जाते हैं। सभी का मूल 'बिन्दु' है। यह त्रिकोणास्थ बिन्दु इस प्रकार है।

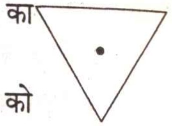

इसमें बिन्दु शिव शक्तिमय है। इसका विकास ही 'श्रीचक्र' का स्वरूप है और 'श्री चक्र' ही विश्व है।

काश्मीरी शैव योगी भी **'स्पन्दशास्त्र** के आधार पर 'स्पन्द' को ही जगत की उत्पत्ति का आधार मानते हैं।[1]

* विश्व और उसका विस्तार *

एडविन पी. हबल (अमेरिकी खगोलज्ञ) ने १९२५ में बताया था कि—

(१) विश्व में हमारी आकाश गंगा की भाँति लाखों अन्य दुग्ध मेखलायें हैं।

(२) उन्होंने १९२९ में सिद्ध किया कि आकाश गंगायें एक दूसरे से दूर होती जा रही हैं। जैसे-जैसे उनकी दूरी बढ़ती है उनके भागने की गति भी तीव्रतर होती जाती है। **ब्रह्मण्ड** एक हवा भरे गुब्बारे की भाँति फैलता जा रहा है।

(३) हमारी बाह्य आकशगंगायें तीव्रतर जाति से दूर होती जा रही हैं।

(क) विगो (कन्या नामक तारा हमारी पृथ्वी से ५ करोड़ प्रकाश वर्ष दूर स्थित 'कन्या' तारा) **१२०० कि.मी. प्रति सेकेण्ड की गति से** भागते जा रहे हैं।

(ख) हाइड्रा (यहाँ से २७० करोड़ प्रकाश वर्ष दूर) के तारा समूह ५७,६०० कि.मी. प्रतिसेकेण्ड की गति से दूर होते जा रहे हैं।

(ग) हमारी आकाश गंगा के तारा समूह **६०० कि.मी. प्रति सेकेण्ड की गति** से दूर भागते जा रहे हैं।

यदि इसी गति से इनका भागना जारी रहा तो संभव है कि ये प्रकाश की गति—(एक लाख छियालीस हजार मील प्रतिक्षणों) से भागना प्रारम्भ कर दें।

इस स्थिति में तो इनका निरीक्षण-अध्ययन असंभव हो जाएगा। दूरी के साथ प्रतिसरण की गति बढ़ती जाती है। इस गति से तो (आइजक एसी भोव के अनुसार) १२५ करोड़ वर्ष की दूरी पर आकाश गंगाओं को देखना संभव ही नहीं रह जाएगा।

हम आकाशीय **पिण्डों का अध्ययन 'सिगनल'** भेज कर करते हैं। तब यह संभव नहीं हो पायेगा।

---

[1] स्पन्दकारिका

वर्तमान खोजों के अनुसार—

(१) ब्रह्माण्ड का व्यास २५० करोड़ प्रकाश वर्ष है।

(इसके भीतर असंख्य आकशगंगायें हैं।)

(२) आकाश गंगाओं का **'डालर प्रभाव'** यही संकेतित करता है कि तारे पीछे हटते जा रहे हैं और ब्रह्माण्ड का प्रसार होता जा रहा है—

(क) आकाश गंगा या तारों की गति का प्रभाव उसके प्रकाश पर भी पड़ता है।

(ख) यदि तारा द्रष्टा की ओर बढ़ रहा हो तो उसका प्रकाश स्पेक्ट्रम **नीले रंग की ओर** बढ़ता दृष्टिगोचर होगा।

(ग) यदि तारा द्रष्टा की विपरीत दिशा में बढ़ रहा हो तो उसका स्पेस्ट्रम **लाल रंग की** ओर अग्रसर होता दृष्टिगोचर होता है। इसे ही **'डाप्लर प्रभाव'** कहते हैं।

(घ) ब्रह्माण्ड विज्ञान की आधुनिक अवधारम्याएँ आकाशगंगाओं की भागा दौड़ी पर आधृत हैं। इस धारणा पर आधृत हैं कि पदार्थ का तीव्र गति से विकास होता जा रहा है।

'विश्व' और उसका केन्द्र—सन् १५४३ में पोलैण्ड के खगोलज्ञ कोपर निकस ने (मिश्री खगोलज्ञ क्लाडियस टॉलेमी के सिद्धान्त के विरुद्ध) यह घोषण की कि विश्व के केन्द्र में 'पृथ्वी' नहीं प्रत्युत् **'सूर्य'** है और सूर्य तथा अन्य ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा नहीं करते प्रत्युत् पृथ्वी एवं अन्य ग्रह 'सूर्य' की परिक्रमा करते हैं। कोपरनिकस के विश्व की संकल्पना सौर परिवार तक ही सीमित थी। ३५० वर्षों तक विश्व की यही संकल्पना मानी जाती रही है।

१८०५ में ब्रिटेन के खगोलज्ञ हर्शेल ने दूरबीनों की सहायता से अंतरिक्ष का अध्ययन किया तो पता चला कि विश्व केवल सौर मण्डल तक ही सीमित नहीं है

बृहत्तर 'विश्व' की खोज—हर्शेल ने कहा कि **'विश्व' सौर परिवात तक ही सीमित नहीं** है क्योंकि जो विराट विश्व है उसकी तो सौर परिवार एक छोटी सी इकाई मात्र है। **'आकाशगंगा'** नामक पिण्ड का यह सौर परिवार एक क्षुद्र अंश मात्र है। 'सूर्य' एक तारा है। **'आकाश गंगा'** में लाखों-करोड़ों तारे स्थित हैं।

बीसवीं सदी के आरम्भ में वैज्ञानिकों ने यह कहा कि **'आकाश गंगा'** में १० करोड़ से अधिक तारे हैं। उनके अनुषंगी तारे एवं मैजेलेनीय मन्दाकिनी भी है। इन सबका सम्मिलित रूप ही 'ब्रह्माण्ड' (विश्व) है।

१९२५ में अमेरिकी खगोलज्ञ एडविन पी. हबल (१८८९-१९५३) ने बताया कि हम जिसे **'विश्व'** कहते हैं उसमें सूर्य और सौर परिवारों की तो बात छोड़िए उसमें हमारी **'आकाशगंगा'** के समान लाखों दुग्धमेखलाएँ हैं। अभी तक खगोल

शास्त्रियों का अनुमान है कि ब्रह्माण्ड में लगभग **८० अरब आकाश गंगायें** हैं किन्तु ताजी खोजों के अनुसार (सन् २००० तक की खोजों के अनुसार) आकाश गंगाओं की संख्या लगभग १२५ अरब है। जो हमारा सूर्य है उससे दुगुने तिगुने बड़े भी तारे हैं। आकाश गंगा के अभी तक के सबसे बड़े समूह की खोज की गई है। यह इतना बड़ा है कि हमारी आकाशगंगा (मिल्की वे) उसके एक कण के बराबर है। यह इतना विशाल है कि प्रकाश की किरण को इसके एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचने में एक अरब वर्ष लग जाएगा। इसमें लाखों आकाश गंगायें हैं और अरबों तारे हैं।

बिगबैंग महाविस्फोट और ब्रह्माण्ड—इस बृहत्तर विश्व की (जिसमें अरबों तारे एवं लाखों आकाश गंगायें स्थित हैं) संरचना का निर्धारण बिगबैंग (महाविस्फोट के कुछ क्षणों में ही हो गया था जब कि ब्रह्माण्ड अत्यन्त छोटा था और उसी क्षण उसका जन्म हुआ था।

बिगबैंग महाविस्फोट के बाद ब्रह्माण्ड के प्रसार के साथ ही इन संरचनाओं का प्रसार सेंटीमीटर के कुछ भाग से बढ़कर वर्तमान अवस्था में पहुँच गया।

इन भीमकाय आकाशगंगाओं के समूहों में एक **'ग्रेटवाल'** नामक समूह भी है। हमारी 'मिल्की वे' (आकाश गंगा) जिस **आकाशंगा समूह** की सदस्य है उसका नाम है **'लोकल ग्रुप'**।

डरहम विश्वविद्यालयों के खगोलविदों ने १५,००० आकाश गंगाओं द्वारा निर्मित संरचना का चार्ट प्रस्तुत किया है। एंग्लोआस्ट्रेलियायी वैज्ञानिकों ने २७,००० आकाश गंगाओं के मानचित्र निर्मित किए हैं। आशा की गई थी कि २००० तक यह संख्या १००,००० तक पहुँच जाएगी।

बिग बैंग विस्फोट का सैद्धान्तिक माडल

विस्फोट के बाद समय	विस्फोट के बाद तापमान	ब्रह्माण्ड की स्थिति
$१०^{-४३}$ से०	अनन्त	ब्रह्माण्ड का अकल्पनीय गति से प्रसार होता है। **अकल्पनीय अल्पकाल** में इसका आकार एक परमाणु से बढ़कर अंगूर के आकार का हो जाता है।
$१०^{-३२}$ से०	$१०^{२७}$ °C	ब्रह्माण्ड अत्यन्त गर्म एलेक्ट्रानों, क्वार्कों एवं अन्य परमाणु कणों का गर्म लावा बन जाता है।
$१०^{-६}$ से०	$१०^{७३}$ °C	अत्यन्त तीव्र गति ठण्डे होते ब्रह्माण्ड में क्वार्क परस्पर मिलकर प्रोटानों एवं न्यूट्रानों का निर्माण करते हैं।
३ मिनट	$१०^{८}$ °C	अत्यन्त गर्म होने के कारण परमाणुओं का निर्माण होना संभव नहीं है। आवेशित इलेक्ट्रान एवं प्रोटान प्रकाश को चमकने नहीं दते जिसके कारण ब्रह्माण्ड अत्यन्त गर्म कोहरे की भाँति व्यवहार करता है।
३००,००० वर्ष के बाद	१०,००० °C	इलेक्ट्रान, प्रोटॉन और न्यूट्रान परस्पर संयुक्त होकर परमाणु का निर्माण करते हैं, जिसमें अधिकांश हाइड्रोजन एवं हीलियम के परमाणु होते हैं। प्रकाश चमकना प्रारम्भ होता है।
०१ अरब वर्षों के अनन्तर	-२०० °C	गुरुत्वाकर्षण के कारण हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसें संयुक्त होकर भीमकाल **बादलों का निर्माण** करती हैं, जो कि आगे चलकर **आकाशगंगाये** बन जाती हैं। गैसों के छोटे समूह से प्रथम तारों का निर्माण होता है।
१५ अरब वर्षों के अनन्तर	-२७० °C	गुरुत्वाकर्षण के कारण **आकाशगंगाओं के समूह (झुण्ड)** बन जाते हैं। जिससे तारों की **मृत्यु-प्रक्रिया** प्रारम्भ हो जाती है। और वे भारी तत्त्वों का (अंतरिक्ष में) विकरण उत्पन्न करते हैं। इन तत्त्वों से पुनः नव्य तारों एवं ग्रहों का निर्माण होता है।

* प्रयोगशाला में कृत्रिम बिग बैंग *

न्यूयार्क के ब्रूकहेवन नामक स्थान में स्थित R.H.I.C. (रिलेटीविस्टिक हैवी आयन कोलाइडर) से वैज्ञानिक **'बिग बैंग'** महाविस्फोट के अग्रिम क्षण जैसी स्थितियाँ उत्पन्न करने का प्रयास कर रहे है।

इसके लिए उन्हें सोने के परमाणुओं का उपयोग किया जाएगा। ये परमाणु २.४ मील लम्बे दो वृत्ताकार पथों में प्रकाश के वेग के ९९.९% वेग से एक दूसरे से विपरीत दिशा में परिक्रमा करेंगे। इससे इनके नाभिक एक दूसरे से हटाकर सूर्य के केन्द्र के तापमान से १०,००० गुना अधिक तापमान पर विस्फोट करेंगे।

यह विस्फोट एक सेकेण्ड के १०० खरबहवें भाग के खरबहवें भाग तक **'बिग बैंग,** महाविस्फोट के तुरन्त बाद की परिस्थितियाँ उत्पन्न करेंगे।

इस कोलाइडर का मूल्य ३६६ मिलियन डालर है। यह भारी आयनों को अत्युच्च ऊर्जावस्था पर त्वरित करेगा।

यदि परीक्षण सफल हो गया तो R.H.I.C. 'बिग बैंग' के तुरन्त बाद जैसी

परिस्थितियाँ उत्पन्न करेगा और द्रव्य की ऐसी अवस्था उत्पन्न करेगा जो कि पृथ्वी पर पहले कभी नहीं देखी गई थी। इस स्थिति में 'ब्रह्माण्ड का निर्माण किस प्रकार हुआ?'—आदि प्रश्नों का समाधान हो सकेगा। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के भौतिकविद **निकोलस ग्यूलेस्सी** के अनुसार इसके द्वारा **ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की पुनरावृत्ति प्रयोग शाला में हो सकगी।**

R.H.I.C. का निर्माण कार्य १९९१ से जारी है और यह ब्रूकहेवन का सबसे बड़ा त्वरण यंत्र है। यह यंत्र सम्पूर्ण नाभिक का उत्पेक्षण करता है चाहे वह प्रोटान वाला हाइड्रोजन नाभिक हो या ७९ **प्रोटान और ११८ न्यूट्रान** वाला विशाल गोल्ड नाभिक हो। यह क्रिया अत्युच्च ऊर्जा का निर्माण करती है।

(१) **'गोल्ड नाभिक'** के प्रत्येक कण की ऊर्जा = १०० अरब इलेक्ट्रानबोल्ट के समतुल्य है।

(२) **त्वरणयंत्र** कई चुम्बकीय क्षेत्रों की सहायता से कणों को त्वरित करके उन्हें आपस में टकराता है जिससे कि ४० खरब इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा उत्पन्न होती है।

(३) इस उच्चतापीय ऊर्जावस्था में जबकि कणों की गति प्रकाश की गति के लगभग बराबर हो जाती है नियमों का अतिक्रमण होने लगता है।

(४) जब आवेशित आयन इस गति से घूमते हैं तब समय धीमे चलने लगता है।

(५) कण आपस में टकराव को तुरन्त ग्रहण नहीं करते प्रत्युत् टकराव के तुरन्त बाद उनमें विस्फोट होता है।

(६) आइंस्टीन का कथन है कि **ऊर्जा का परिवर्तन लाखों मूल कणों में हो जाता है।**

(७) इस उपर्युक्त ऊर्जा का तापमान १० खरब डिग्री केल्विन होता है। इस ऊर्जा द्वारा द्रव्य की नव्यावस्था का सृजन होता है और **पदार्थ की संरचना में मूलभूत परिवर्तन** हो जाता है।

(८) इस परीक्षण के सफल होने पर ऐसे द्रव्य की उत्पत्ति हो सकेगी जिसे पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं देख होगा। यह द्रव्य अत्यधिक गर्म एवं अत्यधिक घनत्व वाला होगा। इसे **'क्लार्क मग्लूआन प्लाज्मा'** कहते हैं।

(क) **'कार्क कण'**—(इनके संयोजन से प्रोटान + न्यूट्रान का जन्म हुआ करता है।) प्रोटान + न्यूट्रान।

(ख) **'ग्लूआन कण'** क्वार्कों को संयुक्त करने वाले कण।

(९) प्रोटान एवं न्यूट्रॉन के आपस में त्वरित गति से टकराने से उनका **'अवस्था संक्रमण'** होता है और वे 'क्वार्क-ग्लूआन प्लाज्मा में उसी प्रकार परिवर्तित हो जाते है यथा **पानी वाष्प** के रूप में परिवर्तन हो जाता है।

सन् २००० तक यह खोज हो चुकी है कि हमारी आकाश गंगा (मिल्की वे) में २०० अरब तारे हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में लगभग ८० अरब आकाश गंगायें होंगी।

(१०) विश्वोत्पति—

आदिकालिक परमाणु और उसका विस्फोट

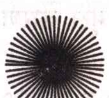
(१)

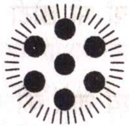
(२)

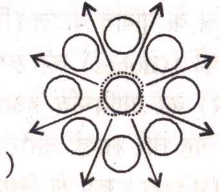
(३)

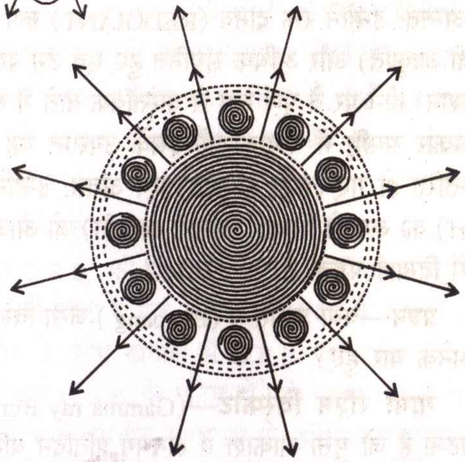
(४)

अत्यधिक परिमाण के विकिरण के द्वारा इस आदिम परमाणु में एक बृहत विस्फोट हुआ। इस धमाके से आद्यकालिक परमाणु टूट गया एवं समष्टि का प्रसार प्रारम्भ हुआ। समष्टि का यह भ्रूण (Enlryonic Vnivenre) धीरे-धीरे ठण्डा होने लगा जो कि चित्र में बाएँ से **द्वितीय आकृति द्वारा प्रदर्शित** है।

इसके विभिन्न कण संयुक्त होते हुए परमाणुओं के नाभिक (Nucleus) बनने लगे।

इसके उपरान्त धूल एवं गैस के बादल प्रसारित होने लगे जो कि मन्दाकिनी (Galaxies) की संरचना के लिए मूल सामग्री हैं। (तृतीयाकृति)।

इस प्रकार विभिन्न मन्दाकिनियों का उद्भव हुआ। अन्ततः **अन्तरिक्षीय प्रतिकर्षण** Cosmic repulsion नामक बल के द्वारा यह असंख्य मन्दाकिनियाँ एक दूसरे से पृथक्-पृथक् होने लगी। (चतुर्थ आकृति)।

इसी सोपान वद्ध पद्धति द्वारा सृष्टि का जन्म हुआ। जिसका मूल कारण Big bang था।

ये मन्दाकिनियाँ फैलते-फैलते एक दूसरे से अत्यन्त बृहत् दूरियों में चली गई, जिनके मापन में प्रकाश वर्ष (Light year) जैसी इकाइयाँ भी छोटी पड़ने लगी। (१ प्रकाश वर्ष = ९.४६ × $१०^{१५}$ मीटर)।

मन्दाकनियों में तारा मण्डल (Constellation) एवं तारों की रचना चित्र दो में प्रदर्शित है। मन्दाकनियों में गैस एवं धूल के घूर्णित बादल (चित्र २ में बाएँ से प्रथम) ने संघनित (Condenre) होकर गोलकों (Globes) का रूप से लिया जिससे यह निकाय (PLANNETARY SYSTEN) का आविर्भाव हुआ (द्वितीय आकृति) यह गोलक के अन्दर तारों का जन्म हुआ। यह तारे लाखों करोड़ों वर्षों तक प्रसारित होते रहे। अन्ततः इन्होंने रक्त दानव (REDGIANT) रूप ले लिया (चित्र २ में चौथी एवं पाँचवीं आकृति) और अधिक संघनित हुए एवं उन पर नाभिकीय अभिक्रिया (न्यूक्रियर रिऐक्शन) होने पर वे पूर्ण रूप से वास्तविक तारों में रूपान्तरति हो गए (तृतीयाकृति)। इस प्रकार समष्टि में मन्दाकनियों इसके उपरान्त यह रक्त दानव स्पंदक (Pulsar) में रूपान्तरित हो गए (छठी आकृति) एवं अंततः इन्होंने मृत श्वेत वामन (Dead white dwarf) का रूप ले लिया (आखिरी आकृति) जो आज समष्टि में असंख्य तारों के रूप में हमें दिखाई पड़ती हैं।

प्रश्न—क्या प्रकृति में (Big bang) जैसा विस्फोट (धमाका) एक ही बार हुआ या अनेक बार हुए?

गामा रश्मि विस्फोट—(Gamma ray Burst G.R.B) एक ऐसी प्रकृतिक परिघटना है जो मुक्त आकाश में लगभग प्रतिदिन घटित होती है। सीमित रूप से इस (G.R.B.) की तुलना में हम (Big Bang) कर सकते हैं। मुक्ताकाश के आयतन की तुलना में यह G.R.B. अत्यन्त सूक्ष्म एवं अल्प जीवी घटना है। प्रतिदिन घटने वाली यह घटना यादृच्छिक (Random) दिशाओं में एवं कुछ ही सेकेण्ड के लिए विकिरण उत्सर्जित करती है। किन्तु इन क्षण दीप्त विकिरणों द्वारा मनुष्य समाज के उच्चतम

अनुमान से भी कही अधिक ऊर्जा का उत्सर्जन करता है। अत्यन्त स्वल्प काल एवं स्वल्प आयु तथा यादृच्छिक दिशाओं में उत्सर्जन होने के कारण इन G.R.B. का यथार्थ संसूचन (Wetection) लगभग असंभव सी बात दिखाती देती है विशेषण जहाँ पृथ्वी से इन घटनाओं की दूरी करोड़ों प्रकाश वर्ष की भी हो सकती है।

खगोल शास्त्रियों के सामने G.R.B. का संसूचन एक विकट समस्या बनी रही। कुछ क्षणों के लिए अत्यधिक ऊर्जा का उत्सर्जन एक बृहत् धमाके के रूप में होना चाहिए एवं Gig Bang के परिणाम स्वरूप समष्टि की रचना के अनुसार G.R.B. द्वारा कुछ नई मन्दाकिनियों का जन्म होना चाहिए ऐसा यदि खगोलज्ञ सोचें तो क्या अनुचित है?

G.R.B. का प्रायोगिक संसूचन वैज्ञानिकों के सामने एक विशिष्ट चुनौती के रूप में बना रहा है।

G.R.B. का प्राथमिक प्रायोगिक अन्वेषण—यह अन्वेषण अमरीकी कृत्रिम उपग्रह वेला सेटलाइट (Vela satellite) द्वारा प्राप्त हुआ।

इन दिनों परमाणु बम विस्फोट के द्वारा उत्सर्जित विकिरणों के संसूचनार्थ अमरीकी वायु सेना द्वारा इस उपग्रह का प्रयोग किया जा रहा था। यह आकस्मिक संयोग ही था कि अपना कार्य करते हुए इस उपग्रह ने कुछ विशिष्ट G.R.B. के कोटो चित्र प्राप्त कर लिए। इसके बाद Nasa के काम्पटन गामा रे आँब्जरेवरी (Cgro) द्वारा प्रेषित कृत्रिम उपग्रहों ने लगभग २००० G.R.B. को संसूचित किया। निष्कर्ष यह निकला कि यद्यपि G.R.B. केवल कुछ क्षण के लिए ही घटित होती है इसकी उत्तर दीप्ति (After Glow) जिसमें अनेक प्रकार के विकिरण उपस्थित है, कई दिन तक या कई महीनों तक बनी रहती है। इसके बाद G.R.B. संसूचन की चेष्टा जारी रही किन्तु ३ दशकों तक कोई साफल्य नहीं मिला।

१९९६ में इटली एवं जर्मनी के संयुक्त प्रयासों द्वारा प्रामोचित Saunched कृत्रिम उपग्रह Bepposax ने कुछ G.R.B. की दिशाओं का यथार्थ निर्धारण करने में सफलता की जो G.R.B. संसूचन की दिशा में एक महत्वपूर्ण सोपान के रूप में सिद्ध हुई। (Bepposax) ने बड़ी शुद्धता के साथ खगोल में G.R.B. का स्थान निर्धारित किया जिससे पृथ्वी स्थित दूरदर्शी द्वारा G.R.B. के घटित होने के तुरन्त बाद के प्रेक्षण सही रूप से प्राप्त हो सके। इस दिशा में भारतीय खगोलज्ञ प्रो. **श्रीनिवास कुलकर्णी** की अध्यक्षता में अनेक खगोलज्ञों ने Beppo sax द्वारा संसूचित द्वितीय गामा किरण विस्फोट (G.R.B. 970508) के प्रेक्षणों द्वारा अनेक निष्कर्ष प्राप्त किए।

१९४७ में घटित विस्फोट—१४ दिसम्बर १९४७ को एक शक्तिशाली विस्फोट हुआ जिसकी सूचना सर्वप्रथम इटली के खगोलज्ञो ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय

के खगोलज्ञ डा. डेविड जे. हेल्कैन्ड को दी। खगोलज्ञों ने विस्फोट के स्रोत स्थल का बृहत दूरदर्शी द्वारा पता लगाकर उसके फोटो प्राप्त किए। १४ दिसम्बर के इस विस्फोट G.R.B. 971214 के अनेक ऑकड़े प्राप्त किए गए। विस्फोटोपरान्त Optical Ofterglow (प्राकाशिक उत्तर दीप्ति) इतनी उज्ज्वल थी कि दूरदर्शी द्वारा उसका यथेष्ट अध्ययन किया जा सका।

G.R.B. में मन्दकिनी का दृष्टिगोचर होना—फरवरी ९८ में प्रो. कुलकर्णी को (उत्तरदीप्ति का प्रकाश पूर्णतः क्षीण हो जाने पर) G.R.B. में एक नयी मन्दाकिनी दिखाई पड़ी। G.R.B.971214 के उत्तर दीप्ति के अनन्तर ही इस नूतन मन्दाकिनी का उद्भव हुआ।

सृष्टिक्रम—(१) आद्यकालिक Big Bang द्वारा मन्दाकिनियों का जन्म। (२) वर्तमान ब्रह्माण्ड की रचना (३) लगभगर १४० खरब (१४ × $१०^{१२}$) वर्षों बाद श्री कुलकर्णी ने एक बार पुनः देखा कि G.R.B. 971214 के विस्फोट (धमाके) द्वारा एक नई मन्दाकिनी का उद्भव हुआ। इसे हम **द्वितीय बिग बैंग** कह सकते हैं। इसके अनुसन्धायक श्री कुलकर्णी हैं।

ब्रह्माण्ड की सृष्टि—इस सृष्टि का सूत्रपात लगभग १४० खरब (१४×$१०^{१२}$) वर्ष पूर्व हुआ। इसमें से हमारे सौर मण्डल (Solar system) की उत्पत्ति लगभग ४५ खरब वर्ष पहले हुई। हमारे सौरमण्डल में **मानव जाति का जन्म** लगभग ५० लाख वर्ष पहले हुआ।

सारांश (१) ब्रह्माण्ड का जन्म १४० खरब वर्ष पूर्व।

(२) हमारे सौर मण्डल का जन्म ४५ खरब वर्ष पूर्व।

(३) हमारे सौर मण्डल में मानव जति का जन्म ५० लाख वर्ष पूर्व।

(४) पृथ्वी के जन्म से लगभग **८० खरब वर्ष पूर्व गामा** रिश्मियों का सञ्चार।

(५) सम्पूर्ण सृष्टि की अब तक की कुल आयु के लगभग ४०% समय से गामा किरणों का निरन्तर प्रसार।

जो धमाके **(विस्फोट)** होते हैं वे धूलभरे क्षेत्रों मं ही होते हैं। यही तारों का उद्भव भी होता है। G.R.B. विस्फोट **नये तारों के जन्म** के साथ होते हैं। के Coltch खगोलवेत्ता यह भी कहते हैं कि विस्फोटों द्वारा तारों की मृत्यु भी हो सकती है।

कुलकर्णी एवं रामप्रकाश की दृष्टि—(१) G.R.B.971214 को संभवतः द्वितीय बिग बैंग कहना उचित न हो।

(२) यह भी संभावना है कि इस G.R.B.971214 ऐसी अधिक भयावह एवं शक्तिशाली विस्फोट हुआ हो किन्तु यह ज्ञात न हो सकता।

(३) यह सैद्धान्तिक प्रतिरूप (Model) केवल गामा किरणों की ऊर्जा का ही विश्लेषण करने में सक्षम है।

(४) विकिरण के जो अन्य प्रकार हैं (जिनका संसूचन अभी असंभव सा है) यथा **न्यूट्रान** या **गुरुत्व तरंग।** इनसे तो १०० गुना से भी अधिक ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है।

(५) यदि किसी Neutron star black hol को निगल जाय तो ऐसा विस्फोट संभावित है।

(६) Black Hole ऐसा संघनित पिण्ड है जिसकी **अत्युच्च सघनता** के कारण उसका 'गुरुत्व' प्रकाश रश्मि तक को भी, निगल लेता है और इसलिए काला दिखाई पड़ता है।

(७) **प्रो. हाकिंगस** ने २००७ में अपनी मान्यता के विरुद्ध यह नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि इस ब्लैक होल में गई हुई वस्तु दूसरे छोर से बाहर निकल सकती है किन्तु छिन्न-भिन्न रूप में।

(८) Massive Collaped star (बृहत निपात तारे) को हम Neutrun (न्यूट्रान तारा) कहते हैं।

(९) G.R.B. के उपरान्त **न्यूट्रान एवं इलेक्ट्रान** लगभग प्रकाश की गति से बाहर की ओर भागते हैं। होता यह है कि एक दिन बाद सम्पूर्ण द्रव्य (गैस एवं धूल कणों के रूप में) टूट जाता है। इनके इसी संघट्ट से गामा किरणों, १० किरणों एवं दृश्य प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं।

(१०) G.R.B. तो अभी भी कभी घटित हो सकते हैं। G.R.B. को पकड़ने के लिए खगोलज्ञ सदैव सावधान रहते हैं। खगोलज्ञों को औसतन प्रतिमाह एक G.R.B. प्राप्त ही जाता है। इसका विश्लेषण लगभग २-३ मासों में हो पाता है।

(११) डा.ए.एन. राम प्रकाश कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के Instituti of Astnonomy में कार्यरत हैं। Hawaii Mavna kea observatory इन अंतरिक्षीय गति विधियों एवं उनसे प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करने वाली विश्व की बहुत बड़ी वेधशाला है।

(१२) १९९५ में श्री निवास को (Brown Dwarf) भूरा वामन) दिखाई पड़ा। ग्रहों एवं तारों के मध्य एक पिण्ड प्रजाति है जिसे **'भूरा वामन'** कहते हैं। इनमें सूर्य जैसी दीप्पि नहीं होती क्योंकि यह नाभिकीय संलयन (न्यूक्लियर फ्यूजन) द्वारा ऊर्जा का विकिरण नहीं कर पाता। सूर्य जैसे तारे में इसके कुल द्रव्यमान का ८% ही संलयन के लिए आवश्यक हाइड्रोजन उत्पन्न करता है। ग्रहों की तुलना में **'भूरा वामन'** अत्यन्त गर्म होता है ये तारे एवं ग्रहों के मध्य की श्रेणी के हैं। इनसे प्रकाशोत्सर्जन न

हो पाने के कारण पृथ्वी के टेलिस्कोट इन्हें प्रेक्षित नहीं कर सकते। ये पिण्ड केवल अनुमानित हैं प्रमाणित नहीं हैं।

अक्टूबर १९९५ में श्रीनिवास कुलकर्णी की अध्यक्षता (या नेतृत्व) में कैलीफोर्निया इन्स्टीच्यूट आफ टेक्नालाजी के दल ने भूरे वामन को केवल देखा ही नहीं प्रत्युत् इस खगोलीय पिण्ड का स्पेक्ट्रम भी प्राप्त किया। जान **हापकिन्स यूनीवर्सिटी** का (इस दिशा में) सहयोग भी उल्लेख है, हबल स्पेश टेलिस्कोप' के द्वारा ही इसका प्रेक्षण किया गया। संसार में प्रथम बार यह भूरा वामन (Gl229B) दिखाई दिया यह बृहस्पति ग्रह जैसा वामन बृहस्पति से २० से ५० गुना अधिक वजनी है। इसका परिवेश मेथेन गैस से आच्छादित है। सूर्योत्सर्जित प्रकाश की तुलना में इसमें १/२५००० गुनी उज्ज्वलता है।

(कुलकर्णी महोदय कैलीफोर्निया इन्स्टीच्यूट ऑफ टेक्नालाजी' के खगोल शास्त्र विभाग के अध्यक्ष है और जन्मना महाराष्ट्र के कुरुवाड़ ग्राम के निवासी हैं। उनके पिता डा. रामचन्द्र हुनमानथ कुलकर्णी मेडिकल कालेज के प्रोफेसर थे।) श्री निवास ने **सेकेण्ड पल्सर** की खोज द्वारा विश्व को चकित कर दिया तथा भूरेवामन की खोज द्वारा भी विश्व को स्तंभित कर दिया।)

Big Bang का सिद्धान्त और भारतीय दर्शन

काश्मीरीय 'स्पन्द शास्त्र' का **'स्पन्दसृष्टिवाद'** का सिद्धान्तं सिद्धान्ततः Big Bang का ही सिद्धान्त है जो यह स्वीकार करता है कि 'स्पन्द' (Vibration) से ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई।

पुराणों में वर्णित **'हिरण्यगर्भ सृष्टि वाद'** का सिद्धान्त भी Big Bang से समानता रखता है।

तंत्र शास्त्र का **'नाद बिन्दु वाद'** का सिद्धान्त भी (Big Bang) की सैद्धान्ति दृष्टि का समर्थक है।

शाक्त-दर्शन द्वारा प्रतिपादित **'श्री चक्र'** तांत्रिक योग शास्त्र द्वारा प्रतिपादित **'महाबिन्दु सृष्टिवाद'** एवं श्री चक्र में स्थित (त्रिकोणस्थ, अन्तरतम) बिन्दु से समस्त चक्र एवं पिण्ड-ब्रह्माण्ड की सृष्टि आदि सारे सिद्धान्त (Big Bang) के समतुल्य हैं।

श्लोक क्रमांकः ४८ * एक ही 'परमबिन्दु' से समस्त चक्रों का उद्भव *

तदेतद बिन्दोर्यदृशकमभमतस्तत्प्रकृतिकं,
दशारंसूर्यारं नृपदलमभूत्स्वान्तकमलम् ।
रहस्यं कौलानां द्वितयमभवन्मूलसदनं,
तथाधिष्ठानं च प्रकृतिमिह सेवन्त इह ते' ॥४८॥

[जो यह परम बिन्दु है उससे ही समस्त चक्रों के प्रकृतिभूत दशबिन्दु हो गए हैं। इन्हीं १० बिन्दुओं से दशदलात्मक 'मणिपूर' द्वादशदलात्मक 'अनाहत चक्र' षोडशदलात्मक विशुद्धिचक्र' एवं द्विदलात्मक 'आज्ञाचक' की उत्पत्ति हुई है।

कौलमतावलतम्बयों का रहस्य तत्त्व यही है कि वे समस्त चक्रों की मूलभूत प्रकृतिरूप 'मूलाधारचक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' की सेवा किया करते हैं।]

राजराजेश्वरी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में यह बताया गया है कि **'मणिपूरक चक्र'** में (१) 'मूलाधार चक्र' के चार दल हैं और (२) स्वाधिष्ठान चक्र के छः दल हैं— जो कि मिलकर १० की संख्या निर्मित करते हैं अर्थात् ४ + ६ = १०।

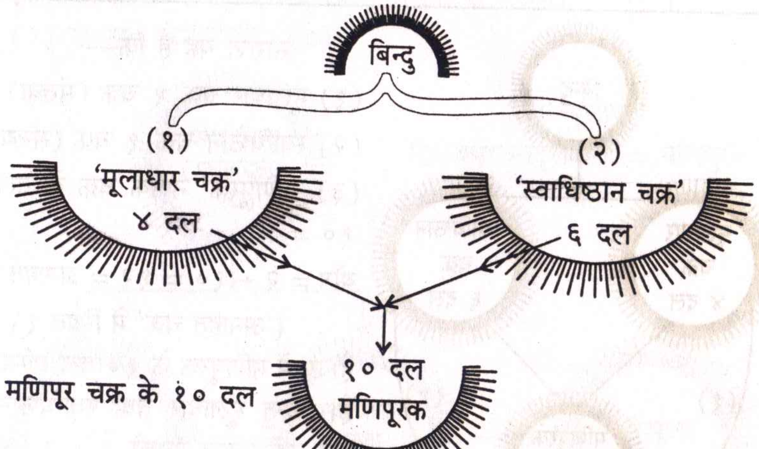

भाव यह कि **'मणिपूरक चक्र'** 'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र' की प्रकृति वाला है।

'तदेतद्बिन्दोर्यदृशकमभवत्तत्प्रकृतिकं'

मूलाधार + स्वाधिष्ठान = 'मणिपूरक चक्र'

(१) बिन्दु ⟶ (२) मूलाधार चक ⟶(३) स्वाधिष्ठान चक ⟶(४) मणिपूरक चक
(१) (४) (६) (१०)

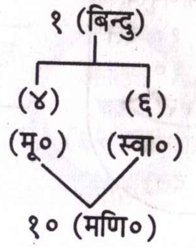

'मणिपूरक चक्र'के ऊर्ध्व में (ऊपर) हृदय में 'अनाहत चक्र' स्थित है जिसमें १२ दल होते हैं। **यह सूर्य का स्थान है।** (यह 'प्राण सूर्य' का मुख्य स्थान है।)

'अनाहत चक्र' के ऊपर 'विशुद्धाख्य चक्र' है। उसके ऊर्ध्वमें 'आज्ञा चक्र' है।

सारांश—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
चक्र का नाम	मूलाधार चक्र	स्वाधिष्ठान चक्र	मणिपूरक चक्र	अनाहत चक्र	विशुद्धाख्य चक्र	आज्ञा चक्र
दल	४	६	१०	१२	१६	०२

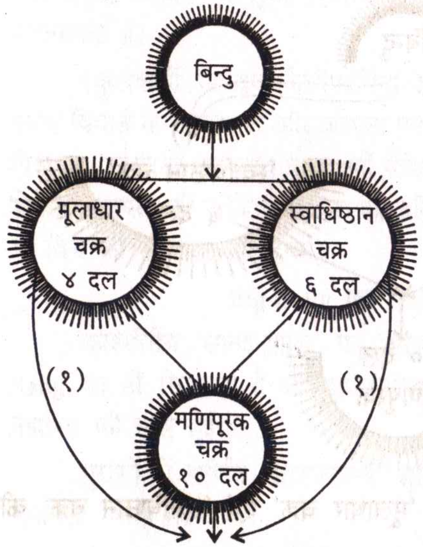
बिन्दु
मूलाधार चक्र ४ दल
स्वाधिष्ठान चक्र ६ दल
(१)
(१)
मणिपूरक चक्र १० दल

सारांश यह है कि—

(१) मूलाधार चक्र १ चक्र (संख्या)

(२) स्वाधिष्ठान चक्र १ चक्र (संख्या)

(३) 'मणिपूरक' नामक चक्र के दल = १० = ॥

योग = २ + १० = १२ = अनाहत चक्र

('अनाहत चक्र' में स्थित १२ दल हैं। उनमें मणिपूरक के १० दल सम्मिलित हैं। किन्तु मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान के दल नहीं प्रत्युत् उनकी १ + १ संख्या सम्मिलित है अतः अनाहत के १२ दल हो जाते हैं।

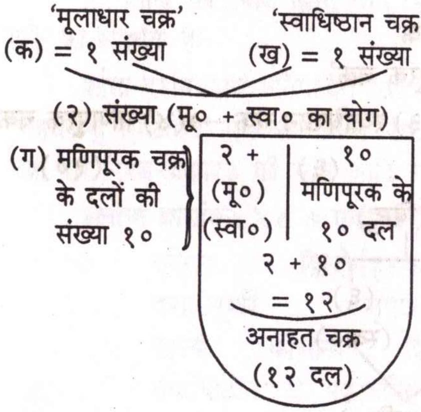
'मूलाधार चक्र'
(क) = १ संख्या
'स्वाधिष्ठान चक्र'
(ख) = १ संख्या
(२) संख्या (मू० + स्वा० का योग)
(ग) मणिपूरक चक्र के दलों की संख्या १०
२ + (मू०) (स्वा०)
१० मणिपूरक के १० दल
२ + १० = १२
अनाहत चक्र (१२ दल)

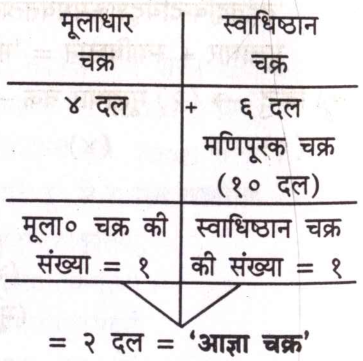
मूलाधार चक्र
स्वाधिष्ठान चक्र
४ दल
+ ६ दल
मणिपूरक चक्र (१० दल)
मूला० चक्र की संख्या = १
स्वाधिष्ठान चक्र की संख्या = १
= २ दल = 'आज्ञा चक्र'

'नृपदलमभूत्स्वान्त कमलम्' पाठभेद—'भून्नेत्र'।

'मूलाधार चक्र' एवं 'स्वाधिष्ठान चक्र'—

समस्त चक्रों की मूल प्रकृति 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' नामक दो चक्र ही हैं।

'तदेतद्बिन्दोर्यदृश**कमभवत्तत्प्रकृतिकं**।'

ये दो चक्र ही सारे चक्रों के मूल भी हैं।

कौलों का मूल सदन (१) मूलाधार चक्र एवं (२) स्वाधिष्ठान चक्र ही हैं—

'रहस्यं कौलानां द्वितयमभवन्मूलसदनं तथाधिष्ठानं च प्रकृतिमिह सेवन्त इह ते॥'

आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

(१) 'सहस्राकाज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत् ॥' (४७)

(२) 'सहस्रारं बिन्दुर्भवति (४७)

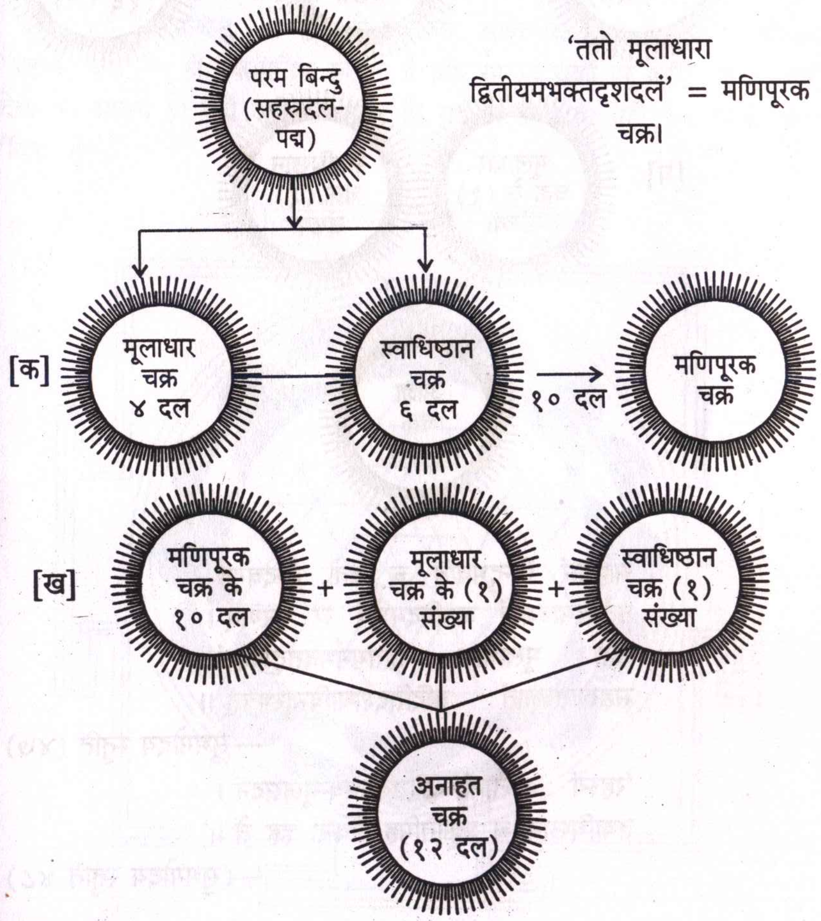
परम बिन्दु (सहस्रदल-पद्म)
[क]
मूलाधार चक्र ४ दल
स्वाधिष्ठान चक्र ६ दल
१० दल
मणिपूरक चक्र
[ख]
मणिपूरक चक्र के १० दल
+
मूलाधार चक्र के (१) संख्या
+
स्वाधिष्ठान चक्र (१) संख्या
अनाहत चक्र (१२ दल)

'ततो मूलाधारा द्वितीयमभक्तदृशदलं' = मणिपूरक चक्र।

(क)	(ख)	(ग)
मणिपूरक चक्र के १० दल	मूलाधार चक्र की संख्या—१	स्वाधिष्ठान चक्र की संख्या—१

१० + १ + १ = १२

'दशधाभिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकःचतुर्धाऽऽधारकमले षोढाऽधिष्ठान पंकजे उभयाकार रूपत्वात् इतरेषां तदात्मता। —सुभगोदय स्तुति।

[ग]

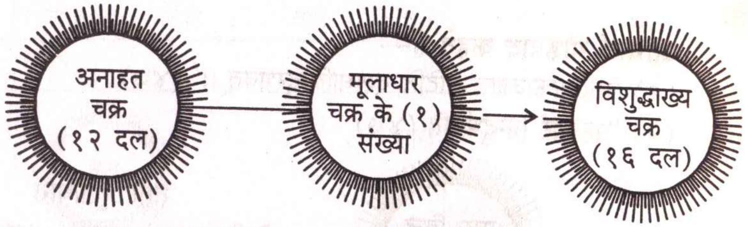
अनाहत चक्र (१२ दल)
मूलाधार चक्र के (१) संख्या
विशुद्धाख्य चक्र (१६ दल)

[घ]

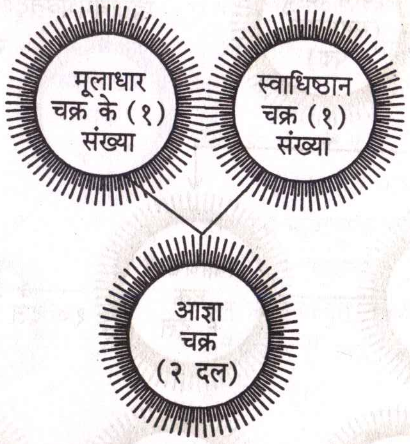
मूलाधार चक्र के (१) संख्या
स्वाधिष्ठान चक्र (१) संख्या
आज्ञा चक्र (२ दल)

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।
ततो मूलाधारा द्वितयमभवतदृशदलं
सहस्राराज्जातं तदितिदशधाबिन्दुरभवत्॥

—सुभगोदय स्तुति (४७)

'रहस्यं कौलानां द्वितयमभवन्मूलसदनं।
तथाधिष्ठानं च प्रकृतिमिह सेवन्त इह ते॥'

—(सुभगोदय स्तुति ४८)

'अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने॥'

—सुभगोदय स्तुति (४३)

(१) * 'परमबिन्दु' से (१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) 'मणिपूर' (४) अनाहत (५) विशुद्धाख्य (६) आज्ञाचक्र (७) सहस्रार की उत्पत्ति होती है।

(२) 'परमबिन्दु' से **निशेषजगत** की भी उत्पत्ति होती है—

'सहस्रारं बिन्दुर्भवति' 'तदेतस्माज्जातं **जगदिदमशेषं** स **करणम्** ।।'

(३) **'परमबिन्दु'** से बैन्दव जगत की भी उत्पत्ति होती है—

'सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो **बैन्दवगृहं**' (४७)

(४) **'परमबिन्दु'** से ही 'श्रीचक्र' का आविर्भाव हुआ है क्योंकि श्रीचक्र 'सहस्रर चक्र' का ही ज्यामितिक स्वरूप है और समस्त चक्रों का अधिष्ठान है। यही देवी का आसन है। यही देवी का शरीर है। यही ब्रह्माण्ड है। यही ३६ तत्त्वों वाला 'विश्व' है।

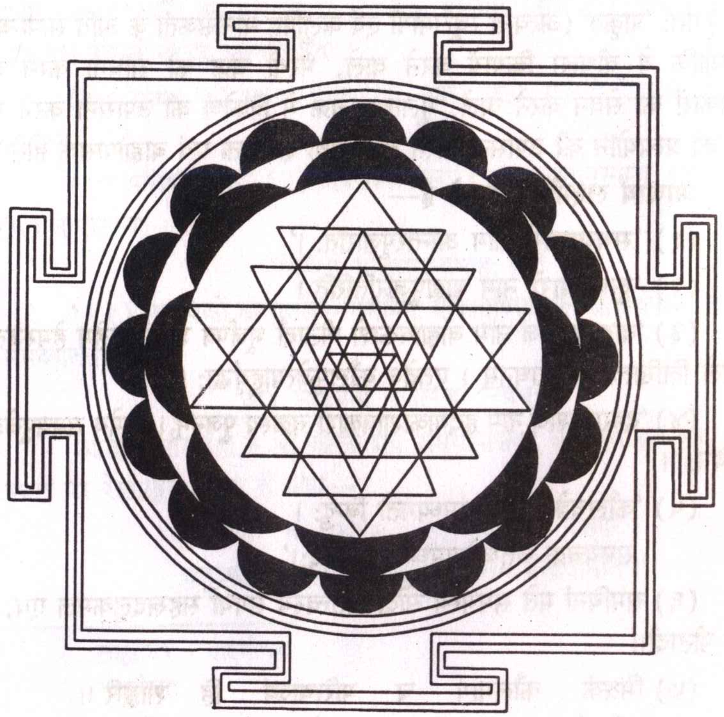

श्लोक क्रमांक ४९ :

* कौलों और समयमार्गियों की उपासना में भेद *

अतस्ते कौलास्ते भगवति दृढप्राकृतजना,
इति प्राहुः प्राज्ञाः कुलसमयमार्गद्वयविदः ।
महान्तः सेवन्ते सकलजननीं बैन्दवगृहे,
शिवाकारां नित्याममृतक्षरिकामैन्दवकलाम् ।।४९।।

[इसलिए हे भगवती! वे तेरे (उपासक) कौलमार्गी दृढ़तापूर्वक प्रज्ञकृत (अश्लाघ्य एवं अति सामान्य) साधक हैं। इस बात को 'कुलमार्ग' एवं 'समयमार्ग' दोनों के ज्ञाता विद्वान कहते हैं। महान पुरुष तो समस्त जगत की माता (जगन्माता), शिव की आकृति वाली, नित्य विद्यमान रहने वाली अर्थात् अविनाशिनी एवं अमृत का क्षरण करने वाली चन्द्रकला का बैन्दवगृह (सहस्रर के चन्द्रस्थान) में ही सेवन किया करते हैं। (परासंवित् की सहस्रर में ही उपासना करते हैं।।४९।।]

सरोजनि—'श्रीविद्या' की उपासना तो (१) **'कौल'**, (२) **'मिश्र'**, एवं (३) **'समयाचारी'** तीनों करते हैं किन्तु इनमें जो कौलमार्गी (पूर्वकौल एवं उत्तरकौल) हैं वे पूर्णतः 'प्राकृत' (अत्यन्त स्थूलमार्गी एवं कलुषित मानसिकता के अति सामान्यजन) हैं क्योंकि वे वीभत्स क्रियायें करने वाले, भैरवी चक्र की साधना करने वाले, पञ्चमकारों का सेवन करने वाले, मूलाधार चक्र में त्रिकोण की उपासना करने वाले, नारी की प्रत्ययोनि की उपासना करने वाले तथा क्षणमुक्त एवं बाह्योपासक होते हैं—

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) **'समयाचारो** नाम आन्तरपूजारतिः ।'

(२) **'कुलाचारो** नाम बाह्यपूजारतिरिति ।

(३) 'बाह्याकाशजं नाम बाह्यावकाशे पीठादौ भूर्जपत्र शुद्ध पटहेम हेमरजतादि-पट्टतले लिखित्वा समाराधनम् । एतदेव कौलपूजेत्याहुर्वृद्धाः ॥

(४) 'दहराकाशजं नाम हृदयाकाशावकाशे चक्रस्य पूजनम् । इदमेव समयपूजेत्याहुः समयिनः ॥

(५) 'कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगतो बिन्दुः ।
समयचक्रे चतुष्कोणमध्यगतो बिन्दुः।'

(६) समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।।

(७) मिश्रकं कौलमार्गं च परित्याज्यं हि शाङ्करि ॥
इति ईश्वर वचनात् मिश्रकमतं, कौलमार्गं च परित्याज्यम् ।

(८) 'कौलमते त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम् । स एव बिन्दुः तत्र आराध्यः। अतएव कौलाः त्रिकोणे बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति। तत् त्रिकोण द्विविधं, श्रीचक्रान्तर्गतनवयोनि मध्यवर्तिनी योनिः, सुन्दर्याः तरुण्याः **प्रत्यक्षयोनिश्च'** श्रीचक्रस्थितनवयोनिमध्यगत योनिं भूर्ज हेमपट्टवस्त्र पीठादौ लिखितां पूर्वकौलाः पूजयन्ति। तरुण्या प्रत्यक्षयोनि उत्तरकौलाः पूजयन्ति। उभयं योनिद्वयं बाह्यमेव न आन्तरम् । अतः तेषांआधारचक्रमेव पूज्यम् ।

(९) 'तत्र (आधार चक्रे) स्थिता कुण्डलिनी शक्तिः कौलिनी इत्युच्यते। सैव उपास्या त्रिकोणपूजकानां इति रहस्यम् । एषा कुण्डलिनी शक्तिः बिन्दुरूपिणी निद्रणैव संपूज्या, तस्याः सदा निद्राणस्वाभाव्यात् । **सा पूजा तामिश्रा।** कुण्डलिनी प्रबोधो यदा स्यात् , तत्क्षणमेव मुक्तिः कौलानाम् । अतएव क्षणमुक्ताः कौला इति व्यवहारः।।' प्रत्यक्ष त्रिकोणे बिन्दुस्थानं मन्मथच्छत्रं संपूजयन्ति, अधोमुखं त्रिकोणं अधोमुखेन छत्रं पूजयन्ति।।[1]

(१०) 'चतुष्कोणमध्यं बिन्दुस्थानमिति बाह्यपूजा। तरुणीत्रिकोणपूजा च दूरत एव निस्तेति ध्येयम् ।।' अतएव समयिनां सहस्रकमले समयायाः समयस्य च शम्भोः पूजा। **'समया'**नाम शम्भुना साम्यं पञ्चविधं यातीति **'समया'। समयत्वं** शंभोरपि **पञ्चविधं साम्यं देव्या सहयातीति।।**

जिस साम्य की बात (ऐक्य की बात) कही गई है उसका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) अधिष्ठानसाम्य (२) अवस्थानसाम्य, (३) अनुष्ठानसाम्य, (४) रूपसाम्य, (५) नामसाम्य।

'केचित्तु **षोढाऐक्य**माहुः ।।'[2]

(११) सामयिकों की पूजा—'समयिनां ऐकामुष्मिकफल साधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम् ।।'

'अत्र समयिनां बाह्यपूजा निषेधः ।।'[3]

आचार्य गौड़पाद ने भी कौलों एवं समयोपासकों के मध्य इस भेद को अनेक स्थल पर रेखाङ्कित किया है यथा—

'त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुपरे ।
चतुष्कोणं प्राहुः **समयिन** इमे बैन्दवमिति ।'

---

१. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा
२. लक्ष्मीधरा
३. लक्ष्मीधरा

सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे ।।७।।
भवेतेदच्चक्रद्वितयमतिदूरं **समयिनां,**
विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्य सदने ।
त्वया सृष्टैर्वारि प्रतिफलति सूर्येन्दुकिरणै,
द्विधा लोके पूजां विदधति **भवत्या समयिनः** ।।४५।।
अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि,
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने ।
अतो **बाह्यपूजा** भवति भगरूपेण च ततो,
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते ।।४३।।
भवेन्मूलाधारं तदुपरितनं चक्रमपि तत् ।
द्वयं तामिस्राख्यं शिखिकिरणा संमेलनवशात् ।
तदेत**त्कौलानां** प्रतिदिनमनुष्ठेय मुदितम् ।
भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्यमुभयम् ।।४२।।

(क) **'सृष्टिक्रममार्गस्तु समयमार्गः ।**
(ख) संहारक्रम **कौलमार्ग** है ।
(ग) कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगतोबिन्दुः ।
(घ) समयचक्रे चतुष्कोणमध्यगतो बिन्दुः ।।
(ङ) कौलचक्रे कोणसंख्या नास्तिः ।।

समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या
सहस्रदलकमल एव,न तु बाह्ये पीठादौ ।।
षोडशोपचार व्यतिरेकेण आत्मार्पण
बुद्ध्या त्याग एव सपर्यापर्यायः ।। (२७)
'चतुष्षष्टितन्त्राणि कुलमार्ग एव ।।[1]

अतोनवविधैक्यं भैरवीभैरवयोः ज्ञातव्यमिति कौलमतरहस्यम्। अतएव **कौलाः परमेश्वरं नवात्मेति व्यवहरन्ति।।** कौलाः आहुः—

'नवव्यूहात्मको देवः परानन्दपरात्मकः ।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।
परानन्दपराशक्तिः चिद्रूपाऽऽनन्दभैरवी ।।[2]
तयोर्यदा सामरस्यं जगदुत्पद्यते तदा ।।'

---

१. लक्ष्मीधरा
२. लक्ष्मीधरा

समयमत की पूजा—समयपूजकाः समयिनः। तेषां षट्चक्रपूजा न नियता। अपितु सहस्रकमल एव पूजा। षोडशोचाररूपपूजाङ्गकलापश्च ततोऽपि दूरत एव।।[1]

श्लोक क्र. ५० : * श्रीविद्या-सम्बद्ध शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय *

इदं कालोत्पत्तिस्थितलयकरं पद्मनिकरं,
त्रिखण्डं श्रीचक्रं मनुरपि च तेषां च मिलनम् ।
तदैक्यं षोढा वा भवति च चतुर्धेति च तथा,
तयोः साम्य पञ्चप्रकृतिकमिदं शास्त्रमुदितम् ।।५०।।

[कालतत्त्व, विश्वोत्पत्ति, स्थिति एवं लय आदि सबकी कारणभूता पराशक्ति, (षट्चक्र स्वरूप) कमलों की समष्टि, (सोम, सूर्य एवं अग्नि के रूप में स्थित) त्रिखण्डात्मक श्रीचक्र, (पञ्चदशाक्षरी रूप) विद्या (मन्त्र), उनका छः एवं प्रकार वाला ऐक्य तथा पाँच प्रकार वाला ऐक्य—श्रीविद्या के ग्रंथों द्वारा वर्णित किया गया है (कहा गया है)।।५०।।]

सरोजिनी व्याख्या—षोढाऐक्य—

(१) **कला का बिन्दु** के साथ और इन दोनों का नाद के विभव के साथ ऐक्य।
(२) नाद का कला एवं बिन्दु से ऐक्य ।
(३) **कला** का नाद एवं बिन्दु के साथ ऐक्य ।
(४) बिन्दु एवं नाद का परशिव के साथ ऐक्य ।
(५) **नाद**, कला तथा बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य ।
(६) कला, नाद तथा बिन्दु का परशिव से ऐक्य ।

'तदेवं **षोढैक्यं** भवति खलु येषां **समयिनां** ।
'कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोनदिविभवे ।
तयोनीदेनैक्यं तदनु च गलायामपि तयोः ।
तयोर्बिन्द्वाढैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे ।
तदेवं **षोढैक्यं** भवति हि सपर्या समयिनाम् ।।[2]

आचार्य गौड़पाद ने षोढ़ा एवं पञ्चधा ऐक्य का उल्लेख करते हुए कहा है—

'षडब्जारण्ये त्वां समयिन इमे **पञ्चक**समां ।
यदि संविद्रूपा विदधति च **षोढैक्यकलिताम्** ।।'

—(सु० स्तुति ३८)

किसी-किसी आचार्य ने त्रिधा साम्य का भी प्रतिपादन किया है और इसका भी उल्लेख आचार्य गौड़पाद ने इस प्रकार किया है—

---

१. लक्ष्मीधरा
२. सुभगोदयस्तुति (१२)

भवेत् साम्यं केचित् **त्रितय**मिति कौल प्रभृतय: ।—३९

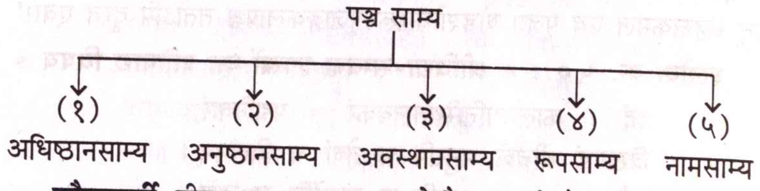

कौलमार्गी तीन प्रकार का साम्य मानते हैं। आचार्य गौड़पाद इस त्रिविध साम्य के सिद्धान्त को त्याज्य मानते हैं। इसीलिए लिखते हैं—

'भवेत्साम्यं **केचित्** त्रितयमिति कौल प्रभृतय: ।'

गौड़पादाचार्य पञ्चधा साम्य के प्रतिपादक हैं। इसीलिए वे त्रिधा साम्य को अस्वीकार करने के बाद उसी श्लोक में पञ्चधासाम्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

क्रियावस्थारूपं प्रकृतिरभिधा **पञ्चकसमं** ।
तदेषां साम्यं स्यादवनिषु च यो वेत्ति स मुनि: ॥' (३९)

चतुर्धा ऐक्य भी है—

'**चतुर्धैक्यं** तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता ।'

—(सुभगोदयस्तुति १४)

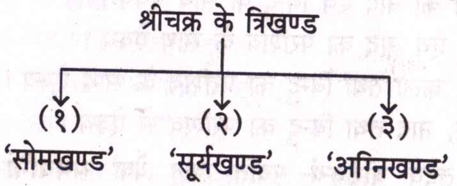

षोढैक्य—

'भवेत्यैक्यं **षोढाभवति** भगवत्याः समयिनां ।'

—सुभगोदयस्तुति १५

त्रिखण्ड : रुद्रयामलकार की दृष्टि—रुद्रयामल में कहा गया है—

अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत् ।
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोम मयं स्मृत:
त्रिखण्डं मातृका **चक्रं** सोमसूर्यानलात्मकम् ।

—रुद्रयामल

'**त्रिखण्डं** ते चक्रं **शुचि रविशशङ्कात्मकतया** ।'

—सुभगोदय स्तुति (८)

श्लोक क्र. ५१ : परमसौभाग्य स्वरूप सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति

गस्तेरेतस्याः फलमपि च सर्वाधिकमभू
तदेतत्कौलानां फलमिह चैतत्समयिनाम् ।

सहस्त्रारे पद्मे सुभग सुभगोदेति सुभगे
परं सौभाग्यं यत्तदिह तव सायुज्य पदवी ॥५१॥

[इस प्रकार की अर्थात् समयमार्ग की उपासना का फल सर्वाधिक श्रेष्ठ है। कौलमार्ग की उपासना का जो फल है वह समयाचार वालों को भी प्राप्त है। हे सुभगे! '**सहस्त्रार पद्म**' में तेरा परमैश्वर्यस्वरूप महान उदय हुआ करता है। 'सहस्त्रार पद्म' में भगवती के साथ होने वाली जो सायुज्य मुक्ति है। वही परम सौभाग्य है। (या यहाँ जो सर्वोच्च उपलब्धि रूप परमसौभाग्य प्राप्त होता है वह तुम्हारे साथ एकीभूत होने के स्वरूप में अवस्थित सायुज्य नामक महामुक्ति है।।५१।।]

सरोजिनी व्याख्या—गौड़पादाचार्य का कथन है कि 'श्रीविद्या' की साधना करने वाले साधकों एवं सिद्धों को जो उपलब्धियाँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं वे तो स्वत: समयाचारानुयायियों को भी प्राप्त हो ही जाती हैं किन्तु समयमार्गियों को सहस्त्रार चक्र में जो सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है वह दूसरे मार्गानुयायियों के लिए अलभ्य है। यह परम सौभाग्य स्वरूप सिद्ध '**सायुज्य मुक्ति**' है।

आचार्य शङ्कर कहते हैं कि मुक्ति का परम धाम मात्र यह 'सहस्त्रार चक्र' ही है और उसी में भगवती अपने पति सदाशिव के साथ विहार किया करती हैं—

'सहस्त्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ।'[1]

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—'तदनन्तरं झडिति विद्युल्लतेव सहस्त्र कमलं अनुप्रविष्टा सुधाब्धौ पञ्चकल्पतरुच्छायां मणिद्वीपे सरधामध्ये सदाशिवेन सार्धं विहरमाणा वर्तते।।'[2]

'आज्ञा चक्र' के ऊर्ध्व में '**महानाद**' है। '**महानाद**' के ऊर्ध्व में **शङ्खिनी नाड़ी**' है। शङ्खिनी नाड़ी के अग्र भाग में (शून्याकार स्थान में) तथा ब्रह्मरंध्र में अवस्थित प्रकृतिस्वरूप '**विसर्ग**' के निम्न प्रदेश में प्रकाश स्वरूप पूर्ण चन्द्र के समान अत्यन्त शुभ्रवर्ण का अधोमुखी तथा आनन्दस्वरूप '**सहस्त्रदलकमल**' है। इसका केशर समूह रक्त एवं भास्वर है तथा **अकार से क्षकार** पर्यन्त ५० मातृकाओं से यह पद्म विभूषित है।

इस पद्म के में २० वृत्ताकार घेरे हैं और प्रत्येक घेरे में ५० दल हैं तथा प्रत्येक वृत्त के दलों में 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त ५०-५० अक्षर अंकित हैं।

इस सहस्त्रदलात्मक महापाथोज की कर्णिका के मध्य में निर्मल पूर्ण **चन्द्रमा** स्थित है। इस चन्द्रमा के मध्य विद्यत्वत ज्योतिष्मान '**त्रिकोण**' है।

---

[1] सौन्दर्य लहरी

[2] लक्ष्मीधरा

इस त्रिकोण के मध्य अतिगुपत एवं शून्यरूप **'परबिन्दु'** है। यह सूक्ष्म कन्द **'अमाकला'** एवं **'निर्वाण कला'** से युक्त है।

सहस्रदल कमल के मध्य में अवस्थित चन्द्रमा में **'हंसपीठ'** या**'हंस'** के अपर नाम से युक्त **अन्तरात्मा** अवस्थित है।

परमगुरु परशिव है। परशिव के निम्नप्रदेश में पुंप्रकृत्यात्मक (प्रकृतिपुरुषस्वरूप) **अन्तरात्मा 'हंस'** अवस्थित है। (हंस पद = प्रकृतिपुरुषात्मक अन्तरात्मा।)

'शाक्तानन्द तरङ्गिणी' के अनुसार आज्ञाचक्र के ऊर्ध्वदेश में स्थित **अधोमुखी 'सहस्रदल कमल'** के नीचे **'द्वादशदलकमल'** है। इस कमल पर **'सदाशिवरूप गुरु'** अवस्थित हैं।

'पादुकापञ्चक' नामक ग्रंथ के अनुसार अधोमुख सहस्रदलकमल (शिर में स्थित 'सहस्रार') की कर्णिका के मध्य **'अकथादित्रिकोण'** में **'परम गुरु परशिव'** अवस्थित हैं।

(क) परमशिव सहस्रदल कमल में स्थित है या कि

(ख) सहस्रदल कमल से नीचे स्थित 'द्वादशदल कमल' में स्थित हैं?

'कुलार्णव तन्त्र' में कहा गया है कि स्थान का निर्णय अपनी परम्परा के अनुसार करना चाहिए।

'अमाकला' एवं 'निर्वाणकला'—'सहस्रदलपद्म के भीतर स्थित, त्रिकोण में स्थित प्रातःकालीन सूर्य की भाँति अरुणवर्णा तथा कमल के रेशे के सौवें भाग की भाँति सूक्ष्म, क्षयोदयशून्य, नित्य, अमृतवर्षिणी, अधोमुखी एवं नित्य प्रकाशमयी **'उमाकला'** स्थित हैं।

'अमाकला' के भीतर बालाग्र के हजारहवें भाग के समान सूक्ष्मतम **'निर्वाणकला'** अमाकला के मध्य में कुटिलाकारा सत्रहवीं **'कला'** है। इसे ही **'सप्तदशी कला'** कहते हैं। **'निर्वाणकला'** के मध्य वह्निस्वरूपा **'निबोधिका'** स्थित है और उसके ऊर्ध्व में **'अव्यक्तनाद'** स्थित है।

षट्चक्रनिरूपणकार 'सहस्रार' का परिचय देते हुए कहते हैं—

'तदूर्ध्वे शंखिन्या निवसतिशिखरे शून्येदेशेप्रकाशं
विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णचन्द्रातिशुभ्रम्।
अधोवक्त्रं कान्तंतरुणरविकला कान्तिकिञ्जल्कपुञ्जं
लकाराद्यैर्वर्णङ्कः प्रविलसितवपुः केवलानन्दरूपम्॥'

अमाकला—

अत्रास्तेशिशुसूर्यसोदरकला चन्द्रस्य सा **षोडशी**,
शुद्धा नीरज सूक्ष्म तन्तु शतधाभागैकरूपा परा।

विद्युत्कोटिसमानकोमल तनूर्विद्योतिताऽधोमुखी।
नित्यानन्दपरम्पराऽतिविगलत् पीयूषधाराधरा॥४६॥

निर्वाणकला—

'निर्वाणाख्यकलापरापर तरा साऽऽस्ते तदन्तर्गता
केशाग्रस्य सहस्रधा विभजितस्यैकांशरूपा सती।
भूतानामधिदैवतं भगवती नित्यप्रबोधोदया,
चन्द्रार्द्धाङ्ग समान भङ्गुरवती रुर्वार्कतुल्यप्रभा॥४७॥

'निर्वाणशक्ति—'निर्वाण कला' के मध्य परमा **'निर्वाणशक्ति'** अवस्थित है—

एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वनिर्वाणशक्तिः।
कोट्यादित्यप्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा।
केशाग्रस्याऽतिगुह्या निरवधि विगलत्प्रेमधाराधरा सा।
सर्वेषां जीवभूता मुनि**मनसि** मुदा तत्त्वबोधं वहन्ती॥
—षट्चक्रनिरूपणम् (४८)

श्लोक क्र. ५२: (अन्तिम श्लोक) *** यथा स्वेच्छा निर्विघ्न यात्रा करने एवं पीयूषपान की सिद्धि ***

'अतोऽस्याः संसिद्धौ सुभगसुभगाख्या गुरुकृपा,
कटाक्षः व्यासङ्गात्स्रवदमृतनिष्पन्द सुलभा।
तया विद्धोयोगीविचरति निशायामपि दिवा,
दिवाभानू रात्रौ, विधुरिव कृतार्थी कृतमतिः।'

[इसलिए इस समयमार्ग की सिद्ध (प्राप्त कर लेने) एवं गुरु की अनुकम्पा अधिगत कर लेने पर योगी चन्द्र-स्रवित अमृत प्राप्त कर लेता है। शक्तिपात (वेधकदीक्षा) से आविद्ध योगी अहर्निश सदैव सूर्यचन्द्रवत यथास्वेच्छा निर्विघ्न यात्रा करने लगता है और कृतकृत्यता सम्प्राप्त कर लेता है।]

सरोजिनी—इस समयमार्ग की सिद्धि होने पर तथा गुरु के कृपा-कटाक्ष से सौभाग्यप्रदा एवं सुभगा नामक कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर और गुरु के साथ रहकर साधक जब गुरु को प्रसन्न करके समयमार्ग के रहस्य से अवगत हो जाता है तथा महावेधदीक्षा प्राप्त कर लेता है तब उसे अमृतस्राव की प्राप्ति होती है। वह सहस्रार में अवस्थित चन्द्रमा से श्रवित पीयूष का पान करने लगता है—अमृतास्वादन का सौभाग्य प्राप्त करता है। इस प्रकार एक विद्धयोगी उससे कृतमति होकर रात्रि में भी दिन के ही समान एवं दिन में भी रात्रि के समान चन्द्रमा की भाँति विचरण करता है। इस प्रकार

सिद्धि प्राप्त समयाचार के योगी को देश, काल एवं परिस्थितियाँ विचलित नहीं कर सकतीं। वह समधी होकर सूर्य-चन्द्र के समान अवाधगति से इस पृथ्वी पर स्वच्छन्दरूप से विचरण करता है।

'स्रवदमृतनिष्यन्द—इस श्लोक में जिस'स्रवदमृतनिष्यन्द' का वर्णन किया गया है उसका मूल केन्द्र 'सहस्रदलकमल' में अवस्थित चन्द्रमा में है। कुण्डलिनी वहाँ पहुँचकर चन्द्रमा को डसती है। अत: उससे अमृतस्राव होता है। आचार्य गौड़पाद ने इस बात का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है—

'यदा तौ चन्द्रार्कौ निजसदन संरोधन वशा-
दशक्तौ पीयूषस्रवणहरणो सा च भुजगी।
प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं।
सुधाधारा सारै: स्नापयसि तनुं बैन्दवकले ॥[१]

भैरवयामलकार की दृष्टि—भैरवयामल में कहा गया है—

'शिवार्कमण्डल भित्वा द्रावयन्तीन्दु मण्डलम्।
तद्दुभूतामृतस्यन्दि परमानन्द नन्दिता।
कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा ॥'

—०—

---

[१] सुभगोदयस्तुति (४)

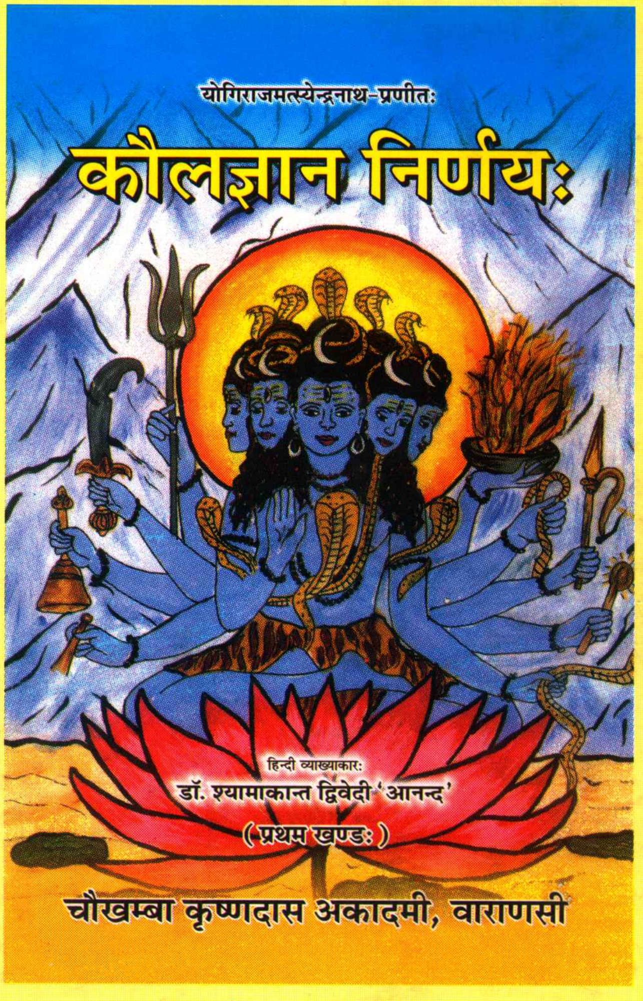

योगिराजमत्स्येन्द्रनाथ-प्रणीतः

कौलज्ञान निर्णयः

हिन्दी व्याख्याकारः

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

(प्रथम खण्डः)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कौलज्ञान निर्णयः

योगिराजमत्स्येन्द्रनाथ प्रणीत।
(मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ-परिचय-दृष्टिसमन्वितः)
'सरोजनी' हिन्दी व्याख्या संवलितश्च, हिन्दी व्याख्याकारः - डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
प्रथम खण्ड - 175.00, द्वितीय खण्ड - शीघ्र

भारतीय तन्त्रशास्त्र और सिद्धान्त साधना
हिन्दी व्याख्याकार—डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
शीघ्र

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy**, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-341-6

Price : Rs. 600.00

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9839814784